प्रकाशक :: नागरीप्रचारिणीसभा, काशी
मुद्रक :: देवताप्रसाद गहमरी, संसार प्रेस, काशी
चतुर्थ संस्करण; २००० प्रतियाँ
संवत् २००६ वि० :: मूल्य ५)

# वक्तव्य

## ( प्रथम संस्करण )

'पद्मावत' हिंदी के सर्वोत्तम प्रबंध-काव्यों मे है। ठेठ अवधी भाषा के माधुर्य्य और भावों की गंभीरता की दृष्टि से यह काव्य निराला है। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि इसके पठन-पाठन का मार्ग कठिनाइयो के कारण अब तक बंद सा रहा। एक तो इसकी भाषा पुरानी और ठेठ अवधी, दूसरे भाव भी गूढ़; अतः किसी शुद्ध अच्छे संस्करण के बिना इसके अध्ययन का प्रयास कोई कर भी कैसे सकता था? पर इसका अध्ययन हिंदी-साहित्य की जानकारी के लिये कितना आवश्यक है, यह इसी से अनुमान किया जा सकता है कि इसी के ढाँचे पर २४ वर्ष पीछे गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने लोक-प्रसिद्ध ग्रंथ 'रामचरित-मानस' की रचना की। वही अवधी भाषा और चौपाई-दोहे का क्रम दोनो मे है, जो आख्यान-काव्यों के लिये हिंदी मे संभवतः पहले से चला आता रहा हो। कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग जायसी और तुलसी को छोड़ और किसी कवि ने नहीं किया है। तुलसी की भाषा के स्वरूप को पूर्णतया समझने के लिये जायसी की भाषा का अध्ययन आवश्यक है।

इस ग्रंथ के चार संस्करण मेरे देखने में आए हैं—एक नवलकिशोर प्रेस का, दूसरा पं० रामजसन मिश्र-संपादित काशी के चंद्रप्रभा प्रेस का, तीसरा कानपुर के किसी पुराने प्रेस का फारसी अक्षरो मे और चौथा म० म० पं० सुधाकर द्विवेदी और डाक्टर ग्रियर्सन संपादित एशियाटिक सोसाइटी का, जो पूरा नहीं, तृतीयांश मात्र है।

इनमें से प्रथम दो संस्करण तो किसी काम के नहीं। एक चौपाई का भी पाठ शुद्ध नहीं; शब्द बिना इस विचार के रखे हुए हैं कि उनका कुछ अर्थ भी हो सकता है या नहीं। कानपुरवाले उर्दू-संस्करण को कुछ लोगों ने अच्छा बताया। पर देखने पर वह भी इसी श्रेणी का निकला। उसमे विशेषता केवल इतनी ही है कि चौपाइयो के नीचे अर्थ भी दिया

हुआ दिखाई पड़ता है। पर यह अर्थ भी अटकलपच्चू है; किसी मुंशी या मौलवी साहब ने प्रसंग के अनुसार अंदाज से ही लगाया है, शब्दार्थ की ओर ध्यान देकर नहीं। कुछ नमूने देखिए—

( १ ) "जाएउ नागमती नगसेनहि। ऊँच भाग, ऊँचे दिन रैनहि।"

इसका साफ अर्थ यह है कि नागमती ने नागसेन को उत्पन्न किया; उसका भाग्य ऊँचा था और दिन रात ऊँचा ही होता गया। इसके स्थान पर यह विलक्षण अर्थ किया गया है—

"फिर नागमती अपनी सहेलियों को हमराह लेकर बहुत बलंद मकान में बलंदीए वख्त से रहने लगी"। इसी प्रकार "कंवलसेन पदमावति जाएउ" का अर्थ लिखा गया है "और पदमावत, जो मिस्ल कँवल के थी, अपने मकान में गई"। बस दो नमूने और देखिए—

( २ ) "फेरत नैन चेरि सौ छूटी। मइ कूटन, कुटनी तस कूटी"।

इसका ठीक अर्थ यह है कि पद्मावती के दृष्टि फेरते ही सौ दासियाँ छूटी और उस कुटनी को खूब मारा। पर 'चेरि' को 'चीर' समझकर इसका यह अर्थ किया गया है—

"अगर वह आँखें फेर के देखे तो तेरा लहँगा खुल पड़े और जैसी कुटनी है, वैसा ही तुझको कूटे"।

( ३ ) "गढ़ सौंपा बादल कहँ, गए टिकठि बसि देव"।

ठीक अर्थ—चित्तौरगढ़ बादल को सौंपा और टिकठी या अरथी पर बसकर राजा ( परलोक ) गए।

कानपुर की प्रति मे इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है—"किलअ बादल को सौंपा गया और बासदेव सिधारे"। बस इन्हीं नमूनो से अर्थ का और अर्थ करनेवाले का अंदाज कर लीजिए।

अब रहा चौथा, सुधाकरजी और डाक्टर ग्रियर्सन साहववाला भड़कीला संस्करण। इसमे सुधाकरजी की बड़ी लंबी-चौड़ी टीका-टिप्पणी लगी हुई है; पर दुर्भाग्य से या सौभाग्य से 'पदमावत' के तृतीयांश तक ही यह संस्करण पहुँचा। इसकी तड़क-भड़क का तो कहना ही क्या है! शब्दार्थ, टीका और इधर उधर के किस्सों और कहानियो से इसका डील-डौल बहुत बड़ा हो गया है। पर टिप्पणियाँ अधिकतर अशुद्ध और टीका स्थान स्थान पर भ्रमपूर्ण है। सुधाकरजी में एक गुण यह सुना जाता है कि यदि कोई उनके पास कोई कविता अर्थ पूछने के लिये ले जाता तो वह विमुख नहीं

लौटता था—वे खींच-तानकर कुछ न कुछ अर्थ लगा ही देते थे। बस, इसी गुण से इस टीका में भी काम लिया गया है। शब्दार्थ में कहीं यह नहीं स्वीकार किया गया है कि इस शब्द से टीकाकार परिचित नहीं। सब शब्दो का कुछ न कुछ अर्थ मौजूद है, चाहे वह अर्थ ठीक हो, या न हो। शब्दार्थ के कुछ नमूने देखिए—

(१) ताईं = तिन्हें ( कीन्ह खंभ दुइ जग के ताईं )। ( २ ) आछहि = अच्छा ( बिरिछ जो आछहि चंदन पासा )। (३) अबराउ = आम्रराज, अच्छे जाति का आम या अमरावती। ( ४ ) सारउ = सारा, दूर्वा, दूब ( सारिउ सुआ जो रहचह करहीं )। (५) खँड़वानी = गड्ढ़वा, झारी। ( ६ ) अहुठ = अनुत्थ, न उठने योग्य। ( ७ ) कनक-कचोरी = कनिक या आटे की कचौड़ी। (८) करसी = कर्षित की, खिंचवाई ( सिर करवत, तन करसी बहुत सीझ तेहि आस )।

कहीं कहीं अर्थ ठीक बैठाने के लिये पाठ भी विकृत कर दिया गया है, जैसे, "कतहुँ चिरहँटा पंखिन्ह लावा" का "कतहुँ छरहटा पेखन्ह लावा" कर दिया गया है और 'छरहटा' का अर्थ किया गया है 'क्षार लगानेवाले, नकल करनेवाले'। जहाँ 'गथ' शब्द आया है ( जिसे हिंदी-कविता का साधारण ज्ञान रखनेवाले भी जानते हैं ) वहाँ 'गाँठि' कर दिया गया है। इसी प्रकार 'अरकाना' (अरकाने दौलत अर्थात् सरदार या उमरा) का 'अरगाना' करके 'अलग होना' अर्थ किया गया है।

स्थान स्थान पर शब्दों की व्युत्पत्ति भी दी हुई मिलती है जिसका न दिया जाना ही अच्छा था। उदाहरण के लिये दो शब्द काफी हैं—

पउनारि—पयोनाली, कमल की डंडी।

अहुठ = अनुत्थ, न उठने योग्य।

'पौनर' शब्द की ठीक व्युत्पत्ति इस प्रकार है—सं० पद्म + नाल = प्रा० पउम् + नाल = हि० पउँनाड़ या पौनार। इसी प्रकार अहुठ = सं० अर्द्धचतुर्थ* = प्रा० अज्झुट्ठ, अहुट्ठ = हि० अहुठ ( साढ़े तीन; 'हूँठा' शब्द इसी से बना है )।

शब्दार्थों से ही टीका का अनुमान भी किया जा सकता है, फिर भी मनोरजन के लिये कुछ पद्यों की टीका नीचे दी जाती है—

---

* एक शब्द 'अध्युष्ट' भी मिलता है। पर वह केवल प्राकृत 'अज्झुट्ठ' की व्युत्पत्ति के लिये गढ़ा हुआ जान पड़ता है।

( १ ) अहुठ हाथ तन सरवर, हिया कँवल तेहि माहँ ।

सुधाकरी अर्थ—राजा कहता है कि ( मेरा ) हाथ तो अहुठ अर्थात् शक्ति के लग जाने से सामर्थ्यहीन होकर वेकाम हो गया और ( मेरी ) तनु सरोवर है जिसके हृदय मध्य अर्थात् वीच में कमल अर्थात पद्मावती वसी हुई है।

ठीक अर्थ—साढ़े तीन हाथ का सरीर-रूपी सरोवर है जिसके मध्य मे हृदय-रूपी कमल है।

( २ ) हिया थार कुच कचन लारू। कनक-कचोरि उठे जनु चारू।

सुधाकरी अर्थ—हृदय-थार मे कुच कचन का लड्डू है। ( अथवा ) जानों वल करके कनिक ( आटे ) की कचौरी उठती है अर्थात् फूल रही है ( चक्राकार उठते हुए स्तन कराही में फूलती हुई वदामी रंग की कचौरी से जान पड़ते है )।

ठीक अर्थ—मानो सोने के सुंदर कटोरे उठे हुए ( औधे ) है।

( ३ ) धानुक आप, वेझ जग कीन्हा ।

'वेझ' का अर्थ ज्ञात न होने के कारण आपने 'वोझ' पाठ कर दिया और इस प्रकार टीका कर दी—

सुधाकरी अर्थ—आप धानुक अर्थात् अहेरी होकर जग (के प्राणी) को वोझ कर लिया अर्थात् जगत् के प्राणियों को भ्रू-धनु और अटाक्ष-वाण से मारकर उन प्राणियो का वोझा अर्थात् ढेर कर दिया।

ठीक अर्थ–आप धनुर्धर है और सारे जगत् को वेध्य या लक्ष्य किया है।

( ४ ) नैहर चाह न पाउव जहाँ।

सुधाकरी अर्थ—जहाँ हम लोग नैहर (जाने) की इच्छा (तक) न करने पावेंगी। ( 'पाउव' के स्थान पर 'पाउवि' पाठ रखा गया है, शायद स्त्रीलिग के विचार से। पर अवधी मे उत्तम पुरुष वहुवचन में स्त्री० पुं० दोनो मे एक ही रूप रहता है। )

ठीक अर्थ—जहाँ नैहर ( मायके ) की खवर तक हम न पाएँगी।

( ५ ) चलीं पउनि सब गोहने फूल डार लेइ हाथ

सुधाकरी अर्थ—सव हवा ऐसी या पवित्र हाथ में फूलो की डालियाँ ले-लेकर चलीं।

ठीक अर्थ—सब पौनी ( इनाम आदि पानेवाली ) प्रजा—नाइन, बारिन आदि—फूलों की डालियाँ लेकर साथ चलीं।

इसी प्रकार की भूलों से टीका भरी हुई है। टीका का नाम रखा गया है 'सुधाकर-चंद्रिका'। पर यह चंद्रिका है कि घोर अंधकार? अच्छा हुआ कि एशियाटिक सोसाइटी ने थोड़ा सा निकालकर ही छोड़ दिया।

सारांश यह कि इस प्राचीन मनोहर ग्रंथ का कोई अच्छा संस्करण अब तक न था और हिंदी-प्रेमियों की रुचि अपने साहित्य के सम्यक् अध्ययन की ओर दिन दिन बढ़ रही थी। आठ नौ वर्ष हुए, काशी-नागरी प्रचारिणी सभा ने अपनी 'मनोरंजन-पुस्तक-माला' के लिये मुझसे 'पदमावत' का एक संक्षिप्त संस्करण शब्दार्थ और टिप्पणी सहित तैयार करने के लिये कहा था। मैंने आधे के लगभग ग्रंथ तैयार भी किया था। पर पीछे यह निश्चय हुआ कि जायसी के दोनों ग्रंथ पूरे-पूरे निकाले जायँ। अतः 'पदमावत' की वह अधूरी तैयार की हुई कापी बहुत दिनों तक पड़ी रही।

इधर जब विश्व-विद्यालयों मे हिंदी का प्रवेश हुआ और हिंदू-विश्व-विद्यालय मे हिंदी-साहित्य भी परीक्षा के वैकल्पिक विषयों मे रखा गया, तब तो जायसी का एक शुद्ध उत्तम संस्करण निकालना अनिवार्य हो गया; क्योंकि बी० ए० और एम० ए० दोनों की परीक्षाओं में पदमावत रखी गई। पढ़ाई आरंभ हो चुकी थी और पुस्तक के बिना हर्ज हो रहा था; इससे यह निश्चय किया गया कि समग्र ग्रंथ एकबारगी निकालने मे देर होगी; अतः उसके छः छः फार्म के खंड करके निकाले जायँ जिससे छात्रों का काम भी चलता रहे। कार्तिक संवत् १९८० से इन खंडों का निकलना प्रारंभ हो गया। चार खंडों में 'पदमावत' और 'अखरावट' दोनों पुस्तकें समाप्त हुईं।

'पद्मावत' की चार छपी प्रतियों के अतिरिक्त मेरे पास कैथी लिपि मे लिखी एक हस्तलिखित प्रति भी थी जिससे पाठ के निश्चय करने मे कुछ सहायता मिली। पाठ के संबंध में यह कह देना आवश्यक है कि वह अवधी व्याकरण और उच्चारण तथा भाषा-विकास के अनुसार रखा गया है। एशियाटिक सोसाइटी की प्रति में 'ऐ' और 'औ' इन अक्षरो का व्यवहार नहीं हुआ है; इनके स्थान पर 'अइ' और 'अउ' प्रयुक्त

हुए हैं। इस विधान मे प्राकृत की पुरानी पद्धति का अनुसरण चाहे हो, पर उच्चारण की उस आगे वढ़ी हुई अवस्था का पता नहीं लगता जिसे हमारी भाषा, जायसी और तुलसी के समय में, प्राप्त कर चुकी थी। उस समय चलती भापा में 'अइ' और 'अउ' के 'अ' और 'इ' तथा 'अ' और 'उ' के पृथक् पृथक् स्फुट उच्चारण नहीं रह गए थे, दोनों स्वर मिलकर 'ऐ' और 'औ' के समान उच्चरित होने लगे थे। प्राकृत के "दैत्यादिष्वइ" और "पौरादिष्वउ" नियम सब दिन के लिये स्थायी नहीं हो सकते थे। प्राकृत और अपभ्रंश अवस्था पार करने पर उलटी गंगा बही। प्राकृत के 'अइ' और 'अउ' के स्थान पर 'ऐ' और 'ओ' उच्चारण में आए—जैसे प्राकृत और अपभ्रंश रूप 'चलइ', 'पइट्ठ', 'कइसे', 'चउक्कोण' इत्यादि हमारी भापा में आकर 'चलै', 'पैठ', 'कैसे', 'चौकोना' इस प्रकार बोले जाने लगे। यदि कहिए कि इनका उच्चारण आजकल तो ऐसा होता है पर जायसी बहुत पुराने है, संभवतः उस समय इनका उच्चारण प्राकृत के अनुसार ही होता रहा हो, तो इनका उत्तर यह है कि अभी तुलसीदासजी के थोड़े ही दिनो पीछे की लिखी 'मानस' की कुछ पुरानी प्रतियाँ मौजूद हैं जिनमें बराबर 'कैसे', 'जैसे', 'तैसे', 'कै', 'करै', 'चौथे', 'करौ', 'आवौं', इत्यादि अवध की चलती भाषा के रूप पाए जाते है। जायसी और तुलसी ने चलती भापा में रचना की है, प्राकृत के समान व्याकरण के अनुसार गढ़ी हुई भापा मे नहीं। यह दूसरी बात है कि प्राचीन रूपों का व्यवहार परंपरा के विचार से उन्होंने बहुत जगह किया है, पर भाषा उनकी प्रचलित भाषा ही है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने 'करइ', 'चलइ', आदि रूपों को ही कवि प्रयुक्त सिद्ध करने के लिये 'करई, धावई' आदि चरण के अंत में आनेवाले रूपों का प्रमाण दिया है। पर 'चलै', 'गनै' आदि रूप भी चरणों के अंत में बराबर आए हैं, जैसे—

(क) इहै बहुत जौ बोहित पावौं।—जायसी।

(ख) रघुबीर-बल-गर्वित बिभीषनु घाल नहिं ताकहँ गनै।—तुलसी।

चरणांत में ही नहीं वर्णवृत्तों के बीच में भी ये चलते रूप बराबर दिखाए जा सकते है जैसे—

एक एक को न सँभार। करैं तात भ्रात पुकार।—तुलसी

जब एक ही कवि की रचना में नए और पुराने दोनों रूपों का प्रयोग मिलता है, तब यह निश्चित है कि नए रूप का प्रचार कवि के समय मे हो गया था और पुराने रूप का प्रयोग या तो उसने छंद की आवश्यकता-वश किया है अथवा परंपरा-पालन के लिये।

हाँ, 'ऐ' और 'औ' के संबंध में ध्यान रखने की बात यह है कि इनके 'पूरबी' और 'पच्छिमी' दो प्रकार के उच्चारण होते है। पूरबी उच्चारण संस्कृत के समान 'अइ' और 'अउ' से मिलता जुलता और पच्छिमी उच्चारण 'अय' और 'अव' से मिलता जुलता होता है। अवधी भाषा में शब्द के आदि के 'ऐ' और 'औ' का अधिकतर पूरबी तथा अन्त में पड़नेवाले 'ऐ' 'औ' का उच्चारण पच्छिमी ढंग पर होता है।

'हि' विभक्ति का प्रयोग प्राचीन पद्धति के अनुसार जायसी में सब कारको के लिये मिलेगा। पर कर्त्ता कारक में केवल सकर्मक भूतकालिक क्रिया के सर्वनाम कर्त्ता मे तथा आकारांत संज्ञा कर्त्ता मे मिलता है। इन दोनों स्थलों मे मैने प्रायः वैकल्पिक रूप 'इ' (जो 'हि' का ही विकार है) रखा है, जैसे—केइ, जेइ, तेइ, राजै, सूऐ, गौरै, गोरे (= किसने जिसने, उसने, राजा ने, सूए ने, गौरा ने, गोरा ने)। इसी 'हि' विभक्ति का ही दूसरा रूप 'ह' है जो सर्वनामों के अंतिम वर्ण के साथ संयुक्त होकर प्रायः सब कारकों मे आया है। अतः जहाँ कहीं 'हम्ह', 'तुम्ह', 'तिन्ह', या 'उन्ह' हो वहाँ यह समझना चाहिये कि यह सर्वनाम कर्त्ता के अतिरिक्त किसी और कारक मे है—जैसे, हम्म = हमको, हमसे, हमारा, हममे, हमपर। संबंधवाचक सर्वनाम के लिये 'जो' रखा गया है तथा यदि या जब के अर्थ मे अव्यय रूप 'जौ'।

प्रत्येक पृष्ठ में असाधारण या कठिन शब्दों, वाक्यों और कहीं कहीं चरणों के अर्थ फुटनोट मे बराबर दिए गए हैं जिससे पाठको को बहुत सुबीता होगा। इसके अतिरिक्त "मलिक मुहम्मद जायसी" पर एक विस्तृत निबंध भी ग्रंथारम्भ के पहले लगा दिया गया है जिसमें मैने कवि की विशेषताओं के अन्वेषण और गुणदोषो के विवेचन का प्रयत्न अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार किया है।

अपने वक्तव्य मे 'पदमावत' के संस्करणों का मैने जो उल्लेख किया है, वह केवल कार्य की कठिनता का अनुमान कराने के लिये। कभी कभी किसी चौपाई का पाठ और अर्थ निश्चित करने में कई

दिनों का समय लग गया है। झंझट का एक बड़ा कारण यह भी था कि जायसी के ग्रंथ बहुतों ने फारसी लिपि में उतारे। फिर उन्हें सामने रखकर बहुत सी प्रतियाँ हिन्दी-अक्षरों में तैयार हुईं। इससे एक ही शब्द को किसी ने एक रूप में पढ़ा, किसी ने दूसरे रूप में। अतः मुझे बहुत स्थलों पर इस प्रक्रिया से काम लेना पड़ा है कि अमुक शब्द फारसी-अक्षरों में लिखे जाने पर कितने प्रकार से पढ़ा जा सकता है। काव्य भाषा के प्राचीन स्वरूप पर भी पूरा ध्यान रखना पड़ा है। जायसी की रचना में भिन्न भिन्न तत्त्व-सिद्धान्तों के आभास को समझने के लिये दूर तक दृष्टि दौड़ाने की आवश्यकता थी। इतनी बड़ी बड़ी कठिनाइयों को बिना धोखा खाए पार करना मेरे ऐसे अल्पज्ञ और आलसी के लिये असम्भव ही समझिए। अतः न जाने कितनी भूलें मुझसे इस कार्य में हुई होंगी, जिनके संबंध में सिवाय इसके कि मैं क्षमा माँगूँ और उदार पाठक क्षमा करें, और हो ही क्या सकता है?

कृष्ण-जन्माष्टमी<br>संवत् १९८१

रामचन्द्र शुक्ल

# वक्तव्य

## ( द्वितीय संस्करण )

प्रथम संस्करण में इधर-उधर जो कुछ अशुद्धियाँ या भूलें रह गई थीं वे इस संस्करण मे, जहाँ तक हो सका है, दूर कर दी गई है। इसके अतिरिक्त जायसी के 'मत और सिद्धांत' तथा 'रहस्य-वाद' के अंतर्गत भी कुछ बाते बढ़ाई गई है जिनसे, आशा है, सूफी भक्तिमार्ग और भारतीय भक्तिमार्ग का स्वरूप-भेद समझने मे कुछ अधिक सहायता पहुँचेगी। इधर मेरे प्रिय शिष्य पं० चंद्रवली पांडेय एम० ए०, जो हिंदी के सूफी कवियों के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर रहे है, जायस गये और मलिक मुहम्मद की कुछ बातों का पता लगा लाए। उनकी खोज के अनुसार 'जायसी का जीवन-वृत्त' भी नए रूप में दिया गया है जिसके लिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करना मै आवश्यक समझता हूँ।

इस ग्रंथावली के प्रथम संस्करण में जायसी के दो ग्रन्थ—'पद्मावत' और 'अखरावट'--संगृहीत थे। उनका एक और ग्रंथ 'आखिरी कलाम' फारसी लिपि मे बहुत पुराना छपा हुआ हाल में मिला। यह ग्रंथ भी इस संस्करण में सम्मिलित कर लिया गया है। कोई और दूसरी प्रति न मिलने के कारण इसका ठीक ठीक पाठ निश्चित करने मे बड़ी कठिनता पड़ी है। एक तो इसकी भाषा 'पदमावत' और 'अखरावट' की अपेक्षा अधिक ठेठ और बोलचाल की अवधी, दूसरे फारसी अक्षरो मे लिखी हुई। बड़े परिश्रम से किसी प्रकार मैंने इसका पाठ ठीक किया है, फिर भी इधर-उधर कुछ भूले रह जाने की आशंका से मै मुक्त नही हूँ।

जायसी के और दो ग्रंथों की अपेक्षा इसकी रचना बहुत निम्न कोटि की है। इसमे इसलाम की मजहबी किताबो के अनुसार कयामत के दिनो का लंबा-चौड़ा वर्णन है। किस प्रकार जल-

प्रलय होगा, सूर्य्य बहुत निकट आकर पृथ्वी को तपाएँगे, सारे जीव-जंतु और फरिश्ते भी अपना जीवन समाप्त करेंगे, ईश्वर न्याय करने बैठेगा और अपने अपराधों के कारण सारे प्राणी थर थर काँपेंगे—इन्हीं सब बातों का ब्योरा इस छोटी सी पुस्तक में है। जायसी ने दिखाया है कि ईसा, मूसा आदि और सब पैगम्बरों को तो आप आप की पड़ी रहेगी, वे अपने अपने आसनों पर रक्षित स्थानों मे चुपचाप बैठे रहेंगे; पर परम दयालु हजरत मुहम्मद साहब अपने अनुयायियों के उद्धार के लिये उस शरीर को जलानेवाली धूप में इधर-उधर व्याकुल घूमते दिखाई देंगे, एक क्षण के लिये भी कहीं छाया में न बैठेंगे। सबसे अधिक ध्यान देने की बात इमाम हसन-हुसैन के प्रति जायसी की सहानुभूति है। उन्होंने लिखा है कि जब तक हसन-हुसैन को अन्यायपूर्वक मारनेवाले और कष्ट देनेवाले घोर यंत्रणापूर्ण नरक मे न डाल दिए जायँगे तब तक अल्लाह का कोप शांत न होगा। अंत में मुहम्मद साहब और उनके अनुयायी किस प्रकार स्वर्ग की अप्सराओं से विवाह करके नाना प्रकार के सुख भोगेंगे, यही दिखाकर पुस्तक समाप्त की गयी है।

चैत्र पूर्णिमा<br>संवत् १९९२

रामचन्द्र शुक्ल

# विषय-सूची

## भूमिका


| | पृष्ठ |
|---|---|
| मलिक मुहम्मद जायसी ... ... ... | १–२ |
| प्रेम-गाथा की परंपरा ... ... ... | ३–५ |
| जायसी का जीवन-वृत्त ... ... ... | ५–१२ |
| पद्मावत की कथा ... ... ... | १३–२१ |
| ऐतिहासिक आधार ... ... ... | २२–२७ |
| पद्मावत की प्रेम-पद्धति ... ... ... | २७–३६ |
| वियोग-पक्ष ... ... .. ... | ३६–४९ |
| संभोग-शृंगार ... ... ... ... | ४९–५४ |
| ईश्वरोन्मुख प्रेम ... ... ... ... | ५४–६४ |
| प्रेम-तत्त्व ... ... ... ... | ६४–६७ |
| प्रबंध-कल्पना ... ... ... ... | ६७–७१ |
| संबंध-निर्वाह ... ... ... ... | ७२–७८ |
| कवि द्वारा वस्तु-वर्णन ... ... ... | ७८–९३ |
| पात्र द्वारा भाव-व्यंजना ... .. ... | ९३–१०३ |
| अलंकार ... ... ... ... | १०३–१२० |
| स्वभाव-चित्रण ... ... ... ... | १२०–१३३ |
| मत और सिद्धांत ... ... ... ... | १३३–१५७ |
| जायसी का रहस्यवाद ... ... ... | १५८–१६८ |
| सूक्तियाँ ... ... ... ... | १६८–१७२ |
| फुटकल प्रसंग ... .. ... ... | १७२–१७४ |
| जायसी की जानकारी ... ... ... | १७४–१८६ |
| जायसी की भाषा ... ... ... ... | १८६–२०६ |
| संक्षिप्त समीक्षा ... ... ... ... | २०६–२१० |

# पद्मावत


| | पृष्ठ |
|---|---|
| (१) स्तुति-खंड ... ... ... .. | १–९ |
| (२) सिंहलद्वीप-वर्णन-खंड .. ... ... | १०–१८ |
| (३) जन्म-खंड ... .. .. | १९–२२ |
| (४) मानसरोदक-खंड ... ... ... | २३–२५ |
| (५) सुआ-खंड ... ... ... ... | २६–२८ |
| (६) रत्नसेन-जन्म-खंड .. .. ... | २९ |
| (७) वनिजारा-खंड ... ... ... | ३०–३३ |
| (८) नागमती-सुवा-सवाद-खंड ... ... ... | ३४–३७ |
| (९) राजा-सुआ-संवाद-खंड ... ... ... | ३८–४० |
| (१०) नखशिख-खंड ... ... ... | ४१–४८ |
| (११) प्रेम-खंड ... ... ... ... | ४९–५२ |
| (१२) जोगी खंड ... ... ... ... | ५३–५८ |
| (१३) राजा-गजपति-संवाद-खंड ... ... ... | ५९–६१ |
| (१४) वोहित-खंड ... .. ... ... | ६२–६३ |
| (१५) सात समुद्र-खंड ... ... ... | ६४–६७ |
| (१६) सिंहलद्वीप-खंड ... ... ... | ६८–७० |
| (१७) मंडपगमन-खंड ... ... ... | ७१–७२ |
| (१८) पद्मावती-वियोग-खड ... ... ... | ७३–७५ |
| (१९) पद्मावती-सुआ-भेट-खंड ... ... ... | ७६–७९ |
| (२०) वसंत-खड ... . . ... ... | ८०–८५ |
| (२१) राजा-रत्नसेन-सती-खंड ... ... ... | ८६–८९ |
| (२२) पार्वती-महेश-खंड ... ... ... | ९०–९३ |
| (२३) राजा-गढ़-छेका-खंड ... ... ... | ९४–१०२ |
| (२४) गंधर्वसेन-मत्री-खड ... ... ... | १०३–११० |
| (२५) रत्नसेन-सूली-खंड ... ... ... | १११–१२० |
| (२६) रत्नसेन-पद्मावती-विवाह-खंड ... ... | १२१–१२७ |
| (२७) पद्मावती-रत्नसेन-भेट-खंड ... ... | १२८–१४५ |
| (२८) रत्नसेन-साथी-खंड ... ... ... | १४६ |
| (२९) षट्-ऋतु-वर्णन-खंड ... ... ... | १४७–१५० |

पृष्ठ

(३०) नागमती-वियोग-खंड ... ... ... १५१–१५८
(३१) नागमती-संदेश-खंड ... ... ... १५९–१६४
(३२) रत्नसेन-विदाई-खंड ... ... ... १६५–१७१
(३३) देशयात्रा-खंड ... ... ... १७२–१७५
(३४) लक्ष्मी-समुद्र-खंड ... ... ... १७६–१८६
(३५) चित्तौर-आगमन-खंड ... ... ... १८७–१९१
(३६) नागमती-पद्मावती-विवाद-खंड . . ... १९२–१९७
(३७) रत्नसेन-संतति-खंड ... ... ... १९८
(३८) राघवचेतन-देस-निकाला-खंड ... ... १९९–२०३
(३९) राघवचेतन-दिल्ली-गमन-खंड ... ... २०४–२०६
(४०) स्त्री-भेद-वर्णन-खंड ... ... ... २०७–२०८
(४१) पद्मावती-रूप-चर्चा-खंड ... ... .. २०९–२१७
(४२) बादशाह-चढ़ाई-खंड ... ... ... २१८–२२९
(४३) राजा-बादशाह-युद्ध-खंड ... ... ... २३०–२३७
(४४) राजा-बादशाह-मेल-खंड .. ... ... २३८–२४२
(४५) बादशाह-भोज-खंड ... ... ... २४३–२४८
(४६) चित्तौरगढ़-वर्णन-खंड ... ... ... २४९–२५९
(४७) रत्नसेन-बंधन-खंड ... ... ... २६०–२६३
(४८) पद्मावती-नागमती-विलाप-खंड ... ... २६४–२६६
(४९) देवपाल-दूती-खंड ... ... ... २६७–२७४
(५०) बादशाह-दूती-खंड ... ... .. २७५–२७८
(५१) पद्मावती-गोरा-बादल-संवाद-खंड ... ... २७९–२८१
(५२) गोरा-बादल-युद्ध-यात्रा-खंड ... ... २८२–२८५
(५३) गोरा-बादल-युद्ध-खंड ... ... २८६–२९३
(५४) बंधन-मोक्ष; पद्मावती-मिलन-खंड ... ... २९४–२९६
(५५) रत्नसेन-देवपाल-युद्ध-खंड ... ... .. २९७
(५६) राजा-रत्नसेन-वैकुंठवास-खंड ... ... २९८
(५७) पद्मावती-नागमती-सती-खंड ... ... २९९–३००
(५८) उपसंहार ... ... ... ... ३०१–३०२

## अखरावट

अखरावट ... ... ... ... ३०३–३३८

## आखिरी कलाम

आखिरी कलाम ... ... ... ... ३३९–३६१

———

# मलिक मुहम्मद जायसी

सौ वर्ष पहले कबीरदास हिंदू और मुसलमान दोनों के कट्टरपन को फटकार चुके थे। पंडितों और मुल्लाओं की तो नहीं कह सकते, पर साधारण जनता 'राम और रहीम' की एकता मान चुकी थी। साधुओं और फकीरों को दोनों दीन के लोग आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। साधु या फकीर भी सर्वप्रिय वे ही हो सकते थे जो भेद-भाव से परे दिखाई पड़ते थे। बहुत दिनों तक एक साथ रहते रहते हिंदू और मुसलमान एक दूसरे के सामने अपना अपना हृदय खोलने लगे थे, जिससे मनुष्यता के सामान्य भावों के प्रवाह में मग्न होने और मग्न करने का समय आ गया था। जनता की प्रवृत्ति भेद से अभेद की ओर हो चली थी। मुसलमान हिंदुओं की राम-कहानी सुनने को तैयार हो गये थे और हिंदू मुसलमानों का दास्तान हमजा। नल और दमयंती की कथा मुसलमान जानने लगे थे और लैला-मजनूँ की हिंदू। ईश्वर तक पहुँचानेवाला मार्ग ढूँढ़ने की सलाह भी दोनों कभी कभी साथ बैठकर करने लगे थे। इधर भक्ति-मार्ग के आचार्य और महात्मा भगवत्प्रेम को सर्वोपरि ठहरा चुके थे और उधर सूफी महात्मा मुसलमानों को 'इश्क हकीकी' का सबक पढ़ाते आ रहे थे।

चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य और रामानंद के प्रभाव से प्रेम-प्रधान वैष्णव धर्म का जो प्रवाह वंग देश से लेकर गुजरात तक बहा, उसका सबसे अधिक विरोध शाक्त मत और वाम मार्ग के साथ दिखाई पड़ा। शाक्त-मत-विहित पशुहिंसा, मंत्र-तंत्र तथा यक्षिणी आदि की पूजा वेद-विरुद्ध अनाचार के रूप में समझी जाने लगी। हिंदुओं और मुसलमानों दोनों के बीच 'साधुता' का सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हो गया था। बहुत

से मुसलमान फकीर भी अहिंसा का सिद्धांत स्वीकार करके मांस-भक्षण को बुरा कहने लगे थे।

ऐसे समय में कुछ भावुक मुसलमान 'प्रेम की पीर' की कहानियाँ लेकर साहित्य-क्षेत्र में उतरे। ये कहानियाँ हिंदुओं के ही घर की थीं। इनकी मधुरता और कोमलता का अनुभव करके इन कवियों ने यह दिखला दिया कि एक ही गुप्त तार मनुष्य मात्र के हृदयों से होता हुआ गया है जिसे छूते ही मनुष्य सारे बाहरी रूपरंग के भेदों की ओर से ध्यान हटा एकत्व का अनुभव करने लगता है।

अमीर खुसरो ने मुसलमानी राजत्वकाल के आरंभ में ही हिंदू जनता के प्रेम और विनोद में योग देकर भावों के परस्पर आदान-प्रदान का सूत्रपात किया था, पर अलाउद्दीन के कट्टरपन और अत्याचार के कारण दोनों जातियाँ एक दूसरे से खिंची सी रहीं, उनका हृदय मिल न सका। कबीर की अटपटी बानी से भी दोनों के दिल साफ न हुए। मनुष्य मनुष्य के बीच जो रागात्मक संबंध है वह उसके द्वारा व्यक्त न हुआ। अपने नित्य के व्यवहार में जिस हृदय-साम्य का अनुभव मनुष्य कभी कभी किया करता है उसकी अभिव्यंजना उससे न हुई। जिस प्रकार दूसरी जाति या मतवाले के हृदय है उसी प्रकार हमारे भी हैं, जिस प्रकार दूसरे के हृदय में प्रेम की तरंगे उठती हैं उसी प्रकार हमारे हृदय में भी, प्रिय का वियोग जैसे दूसरे को व्याकुल करता है वैसे ही हमें भी, माता का जो हृदय दूसरे के यहाँ है वही हमारे यहाँ भी, जिन बातों से दूसरे को सुख-दुःख होता है उन्हीं बातों से हमें भी, इस तथ्य का प्रत्यक्षीकरण कुतबन, जायसी आदि प्रेम-कहानी के कवियों द्वारा हुआ। अपनी कहानियों द्वारा इन्होंने प्रेम का शुद्ध मार्ग दिखाते हुए उन सामान्य जीवन-दशाओं को सामने रखा जिनका मनुष्य मात्र के हृदय पर एक सा प्रभाव दिखाई पड़ता है। हिंदू-हृदय और मुसलमान-हृदय आमने सामने करके अजनबीपन मिटानेवालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिंदुओं की कहानियाँ हिंदुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। कबीर ने केवल भिन्न प्रतीत होती हुई परोक्ष सत्ता की एकता का आभास दिया था। प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखने की आवश्यकता बनी थी। वह जायसी द्वारा पूरी हुई।

# प्रेमगाथा की परंपरा

इस नवीन शैली की प्रेमगाथा का आविर्भाव इस बात के प्रमाणों में से है कि इतिहास में किसी राजा के कार्य्य सदा लोक-प्रवृत्ति के प्रतिबिंब नहीं हुआ करते। इसी बात को ध्यान में रखकर कुछ नवीन पद्धति के इतिहासकार प्रकरणों का विभाग राजाओं के राजत्वकाल के अनुसार न कर लोक की प्रगति के अनुसार करना चाहते हैं। एक ओर तो कट्टर और अन्यायी सिकंदर लोदी मथुरा के मंदिरों को गिराकर मसजिदें खड़ी कर रहा था और हिंदुओं पर अनेक प्रकार के अत्याचार कर रहा था, दूसरी ओर पूरब में बंगाल के शासक हुसैनशाह के अनुरोध से, जिसने 'सत्य पीर' की कथा चलाई थी, कुतबन मियाँ एक ऐसी कहानी लेकर जनता के सामने आए जिसके द्वारा उन्होंने मुसलमान होते हुए भी अपने मनुष्य होने का परिचय दिया। इसी मनुष्यत्व को ऊपर करने से हिंदूपन, मुसलमानपन, ईसाईपन आदि के उस स्वरूप का प्रतिरोध होता है जो विरोध की ओर ले जाता है। हिंदुओं और मुसलमानों को एक साथ रहते अब इतने दिन हो गए थे कि दोनों का ध्यान मनुष्यता के सामान्य स्वरूप की ओर स्वभावतः जाय।

कुतबन चिश्ती वंश के शेख बुरहान के शिष्य थे। उन्होंने 'मृगावती' नाम का एक काव्य सन् ९०९ हिजरी में लिखा। इसमें चंद्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचननगर के राजा रूपमुरार की कन्या मृगावती के प्रेम की कथा है।

जायसी ने प्रेमियों के दृष्टांत देते हुए अपने से पूर्व की लिखी कुछ प्रेम-कहानियों का उल्लेख किया है—

विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा॥
मधूपाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राजकुँवर कंचनपुर गएऊ। मिरगावति कहँ जोगी भएऊ॥
साध कुँवर खडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह बियोगू॥
प्रेमावति कहँ सुरसरि साधा। ऊषा लगि अनिरुध बर बाँधा॥

विक्रमादित्य और ऊषा-अनिरुद्ध की प्रसिद्ध कथाओं को छोड़ देने से चार प्रेम-कहानियाँ जायसी के पूर्व लिखी हुई पाई जाती है। इनमें से 'मृगावती' की एक खंडित प्रति का पता तो नागरीप्रचारिणी सभा को

लग चुका है । 'मधुमालती' की भी फारसी अक्षरों में लिखी हुई एक प्रति मैंने किसी सज्जन के पास देखी थी, पर किसके पास, यह स्मरण नहीं। चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालतीरी कथा' नागरीप्रचारिणी सभा को मिली है जिसका निर्माणकाल ज्ञात नहीं और जो अत्यंत भ्रष्ट गद्य में है। 'मुग्धावती' और 'प्रेमावती' का पता अभी तक नहीं लगा है। जायसी के पीछे भी 'प्रेमगाथा' की यह परंपरा कुछ दिनों तक चलती रही। गाजीपुर-निवासी शेख हुसैन के पुत्र उसमान ( मान ) ने संवत् १६७० के लगभग चित्रावली लिखी जिसमें नैपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान और रूपनगर के राजा चित्रसेन की कन्या चित्रावली की प्रेमकहानी है। भाषा इसकी अवधी होने पर भी कुछ भोजपुरी लिए है। यह नागरीप्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हो चुकी है। दूसरी पुस्तक नूर मुहम्मद की 'इंद्रावत' है जो संवत् १७९६ में लिखी गई थी। यह भी उक्त सभा प्रकाशित कर चुकी है।

इन प्रेम-गाथा-काव्यो के संबंध मे पहली बात ध्यान देने की यह है कि इनकी रचना बिल्कुल भारतीय चरित-काव्यो की सर्गबद्ध शैली पर न होकर फारसी की मसनवियों के ढंग पर हुई है, जिनमें कथा सर्गों या अध्यायों मे विस्तार के हिसाब से विभक्त नहीं होती, बराबर चली चलती है, केवल स्थान स्थान पर घटनाओं या प्रसंगो का उल्लेख शीर्षक के रूप मे रहता है। मसनवी के लिये साहित्यिक नियम तो केवल इतना ही समझा जाता है कि सारा काव्य एक ही मसनवी छंद मे हो पर परंपरा के अनुसार उसमें कथारंभ के पहले ईश्वर-स्तुति, पैगम्बर की वंदना, और उस समय के राजा ( शाहे वक्त ) की प्रशंसा होनी चाहिए। ये बाते पदमावत, इंद्रावत, मृगावती इत्यादि सबमें पाई जाती है।

दूसरी बात ध्यान देने की यह है कि ये सब प्रेम-कहानियाँ पूरबी हिंदी अर्थात् अवधी भाषा में एक नियत क्रम के साथ केवल चौपाई-दोहे मे लिखी गई है। जायसी ने सात सात चौपाइयों ( अर्द्धालियों ) के बाद एक एक दोहे का क्रम रखा है। जायसी के पीछे गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने 'रामचरितमानस' के लिये यही दोहे-चौपाई का क्रम ग्रहण किया। चौपाई और बरवै मानो अवधी भाषा के अपने छंद है। इनमें अवधी भाषा जिस सौष्ठव के साथ ढली है उस सौष्ठव के साथ ब्रजभाषा नहीं। उदाहरण के लिये लाल कवि के 'छत्र प्रकाश', पद्माकर के 'रामरसायन' और ब्रजवासीदास के 'ब्रजविलास' को लीजिए। 'बरवै'

तो ब्रजभाषा में कहा ही नहीं जा सकता । किसी पुराने कवि ने ब्रज-भाषा में बरवै लिखने का प्रयास भी नही किया ।

तीसरी बात ध्यान देने की यह है कि इस शैली की प्रेम-कहानियाँ मुसलमानों के ही द्वारा लिखी गईं । इन भावुक और उदार मुसलमानों ने इनके द्वारा मानों हिंदू-जीवन के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की । यदि मुसलमान हिंदी और हिंदू-साहित्य से दूर न भागते, इनके अध्ययन का क्रम जारी रखते, तो उनमें हिंदुओं के प्रति सद्भाव की वह कमी न रह जाती जो कभी कभी दिखाई पड़ती है । हिंदुओं ने फारसी और उर्दू के अभ्यास द्वारा मुसलमानों की जीवन-कथाओ के प्रति अपने हृदय का सामंजस्य पूर्ण रूप से स्थापित किया, पर खेद है कि मुसल-मानो ने इसका सिलसिला बंद कर दिया । किसी जाति की जीवन-कथाओं को बार बार सामने लाना उस जाति के प्रति प्रेम और सहानु-भूति प्राप्त करने का स्वाभाविक साधन है । 'पदमावत' की हस्तलिखित प्रतियाँ अधिकतर मुसलमानो के ही घर में पाई गई हैं । इतना मै अपने अनुभव से कहता हूँ कि जिन मुसलमानों के यहाँ यह पोथी देखी गई, उन सबको मैंने विरोध से दूर और अत्यंत उदार पाया ।

## जायसी का जीवन-वृत्त

जायसी की एक छोटी सी पुस्तक 'आखिरी कलाम' के नाम से फारसी अक्षरो मे छपी है । यह सन् ९३६ हिजरी मे ( सन् १५२८ ई० के लगभग ) बाबर के समय मे लिखी गई थी । इसमे बाबर बादशाह की प्रशंसा है । इस पुस्तक मे मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने जन्म के संबंध मे लिखा है—

भा अवतार मोर नव सदी । तीस बरस ऊपर कवि बदी ।

इन पंक्तियो का ठीक तात्पर्य नहीं खुलता । 'नव सदी' ही पाठ मानें तो जन्म-काल ९०० हिजरी ( सन् १४९२ के लगभग ) ठहरता है । दूसरी पंक्ति का अर्थ यही निकलेगा कि जन्म से ३० वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे । जायसी का सबसे प्रसिद्ध ग्रंथ है पदमावत, जिसका निर्माण-काल कवि ने इस प्रकार दिया है—

सन नव सै सत्ताइस अहा । कथा-अरभ-बैन कवि कहा ।

इसका अर्थ होता है कि पदमावत की कथा के प्रारंभिक वचन ( अरंभ-बैन) कवि ने सन् ९२७ हिजरी (सन् १५२० ई० के लगभग) मे कहे थे ।

पर ग्रंथारंभ में कवि ने मसनवी की रूढ़ि के अनुसार 'शाहे वक्त' शेरशाह की प्रशंसा की है जिसके शासन-काल का आरंभ ९४७ हिजरी अर्थात् सन् १५४० ई० से हुआ था। इस दशा में यही संभव जान पड़ता है कि कवि ने कुछ थोड़े से पद्य तो सन् १५२० ई० में ही बनाए थे, पर ग्रंथ को १९ या २० वर्ष पीछे शेरशाह के समय में पूरा किया। इसी से कवि ने भूतकालिक क्रिया 'अहा' ( = था ) और 'कहा' का प्रयोग किया है*।

जान पड़ता है कि 'पदमावत' की कथा को लेकर थोड़े से पद्य जायसी ने रचे थे। उसके पीछे वे जायस छोड़कर बहुत दिनों तक इधर उधर रहे। अंत में जब वे फिर जायस में आकर रहने लगे तब उन्होंने इस ग्रंथ को उठाया और पूरा किया। इस बात का संकेत इन पंक्तियों में पाया जाता है—

जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।

'तहाँ आइ' से पं० सुधाकर और डाक्टर ग्रियर्सन ने यह अनुमान किया था कि मलिक मुहम्मद किसी और जगह से आकर जायस में बसे थे। पर यह ठीक नहीं। जायसवाले ऐसा नहीं कहते। उनके कथनानुसार मलिक मुहम्मद जायस ही के रहनेवाले थे। उनके घर का स्थान अब तक वहाँ के कंचाने मुहल्ले में बताते हैं। 'पदमावत' में कवि ने अपने चार दोस्तों के नाम लिए हैं—यूसुफ मलिक, सालार कादिम, सलोने मियाँ और बड़े शेख ये चारों जायस ही के थे। सलोने मियाँ के संबंध में अब तक जायस में यह जनश्रुति चली आती है कि वे बड़े बलवान थे और एक बार हाथी से लड़ गये थे। इन चारों में से दो एक के खानदान अब तक हैं। जायसी का वंश नहीं चला, पर उनके भाई के खानदान में एक साहब मौजूद हैं जिनके पास वंश-वृक्ष भी है। यह वंश-वृक्ष कुछ गड़बड़ सा है।

---

* पहले संस्करण में, दिए हुए सन् को शेरशाह के समय में लाने के लिये, 'नव सै सैंतालिस' पाठ माना गया था। फारसी लिपि में 'सत्ताइस' और 'सैंतालिस' में भ्रम हो सकता है। पर 'पदमावत' का एक पुराना बँगला अनुवाद है उसमें भी 'नव से सत्ताइस' ही पाठ माना गया है—

शेख महम्मद जति जखन रचित ग्रंथ संख्या सप्तविंश नवशत।

यह अनुवाद अराकान राज्य के वजीर मगन ठाकुर ने सन् १६५० ई० के आस-पास आलो उआलो नामक एक कवि से कराया था।

जायसी कुरूप और काने थे। कुछ लोगों के अनुसार वे जन्म से ही ऐसे थे पर अधिकतर लोगों का कहना है कि शीतला या अर्द्धांग रोग से उनका शरीर विकृत हो गया था। अपने काने होने का उल्लेख, कवि ने आपही इस प्रकार किया है—'एक नयन कवि मुहमद गुनी'। उनकी दहिनी आँख फूटी थी या बाईं, इसका उत्तर शायद इस दोहे से मिले—

मुहमद बाईं दिसि तजा, एक स्रवन, एक आँखि।

इससे अनुमान होता है कि बाएँ कान से भी उन्हें कम सुनाई पड़ता था। जायस में प्रसिद्ध है कि वे एक बार शेरशाह के दरबार में गए। शेरशाह उनके भद्दे चेहरे को देख हँस पड़ा। उन्होंने अत्यंत शांत भाव से पूछा—"मोहि कॉ हँससि, कि कोहरहि ?" अर्थात् तू मुझपर हँसा या उस कुम्हार (गढ़नेवाले ईश्वर) पर ? इसपर शेरशाह ने लज्जित होकर क्षमा माँगी। कुछ लोग कहते है कि वे शेरशाह के दरबार में नहीं गये थे; शेरशाह ही उनका नाम सुनकर उनके पास आया था।

मलिक मुहम्मद एक गृहस्थ किसान के रूप में ही जायस में रहते थे। वे आरंभ से बड़े ईश्वर-भक्त और साधु प्रकृति के थे। उनका नियम था कि जब वे अपने खेतों मे होते तब अपना खाना वहीं मँगा लिया करते थे। खाना वे अकेले कभी न खाते; जो आसपास दिखाई पड़ता उसके साथ बैठकर खाते थे। एक दिन उन्हें इधर उधर कोई न दिखाई पड़ा। बहुत देर तक आसरा देखते देखते अंत में एक कोढ़ी दिखाई पड़ा। जायसी ने बड़े आग्रह से उसे अपने साथ खाने को बिठाया और एक ही बरतन में उसके साथ भोजन करने लगे। उसके शरीर से कोढ़ चू रहा था। कुछ थोड़ा सा मवाद भोजन में भी चू पड़ा। जायसी ने उस अंश को खाने के लिये उठाया। पर उस कोढ़ी ने हाथ थाम लिया और कहा 'इसे मै खाऊँगा, आप साफ हिस्सा खाइए'। पर जायसी झट से उसे खा गए। इसके पीछे वह कोढ़ी अदृश्य हो गया। इस घटना के उपरांत जायसी की मनोवृत्ति ईश्वर की ओर और भी अधिक हो गई। उक्त घटना की ओर संकेत लोग अखरावट के इस दोहे मे बताते है—

बुंदहि समुद समान, यह अचरज कासौं कहौं।
जो हेरा सो हेरान मुहमद आपुहि आपु महँ।

कहते है कि जायसी के पुत्र थे, पर वे मकान के नीचे दबकर, या ऐसी किसी और दुर्घटना से, मर गए। तब से जायसी संसार से और भी अधिक विरक्त हो गए और कुछ दिनों मे घर बार छोड़कर, इधर उधर

फकीर होकर घूमने लगे। वे अपने समय के एक सिद्ध फकीर माने जाते थे और चारों ओर उनका बड़ा मान था। अमेठी के राजा रामसिंह उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। जीवन के अंतिम दिनों में जायसी अमेठी से कुछ दूर एक घने जंगल में रहा करते थे। कहते है कि उनकी मृत्यु विचित्र ढंग से हुई। जब उनका अंतिम समय निकट आया तब उन्होंने अमेठी के राजा से कह दिया कि मै किसी शिकारी की गोली खाकर मरूँगा। इसपर अमेठी के राजा ने आस पास के जंगलों में शिकार की मनाही कर दी। जिस जंगल में जायसी रहते थे उसमें एक दिन एक शिकारी को एक बड़ा भारी बाघ दिखाई पड़ा। उसने डरकर उसपर गोली छोड़ दी। पास जाकर देखा तो बाघ के स्थान पर जायसी मरे पड़े थे। कहते है कि जायसी कभी कभी योगबल से इस प्रकार के रूप धारण कर लिया करते थे।

काजी नसरुद्दीन हुसैन जायसी ने, जिन्हें अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सनद मिली थी, अपनी याददाश्त मे मलिक मुहम्मद जायसी का मृत्यु-काल ४ रजब ९४९ हिजरी (सन् १५४२ ई०) दिया है। यह काल कहाँ तक ठीक है, नहीं कहा जा सकता। इसे ठीक मानने पर जायसी दीर्घायु नहीं ठहरते। उनका परलोकवास ४९ वर्ष से भी कम की अवस्था में सिद्ध होता है। पर जायसी ने 'पद्मावत' के उपसंहार में वृद्धावस्था का जो वर्णन किया है वह स्वतः अनुभूत सा जान पड़ता है।

जायसी की कब्र अमेठी के राजा के वर्त्तमान कोट से पौन मील के लगभग है। पर यह वर्त्तमान कोट जायसी के मरने के बहुत पीछे बना है। अमेठी के राजाओं का पुराना कोट जायसी की कब्र से डेढ़ कोस की दूरी पर था। अतः यह प्रवाद कि अमेठी के राजा को जायसी की दुआ से पुत्र हुआ और उन्होंने अपने कोट के पास उनकी कब्र बनवाई, निराधार है।

मलिक मुहम्मद निजामुद्दीन औलिया की शिष्य-परंपरा में थे। इस परपरा की दो शाखाएँ हुईं—एक मानिकपुर-कालपी आदि की, दूसरी जायसी की। पहली शाखा के पीरो की परंपरा जायसी ने बहुत दूर तक दी है। पर जायस वाली शाखा की पूरी परंपरा उन्होंने नहीं दी है; अपने पीर या दीक्षागुरु सैयद अशरफ जहाँगीर तथा उनके पुत्र-पौत्रों का ही उल्लेख किया है। सूफी लोग निजामुद्दीन औलिया की मानिकपुर-कालपीवाली शिष्य-परंपरा इस प्रकार बतलाते है—

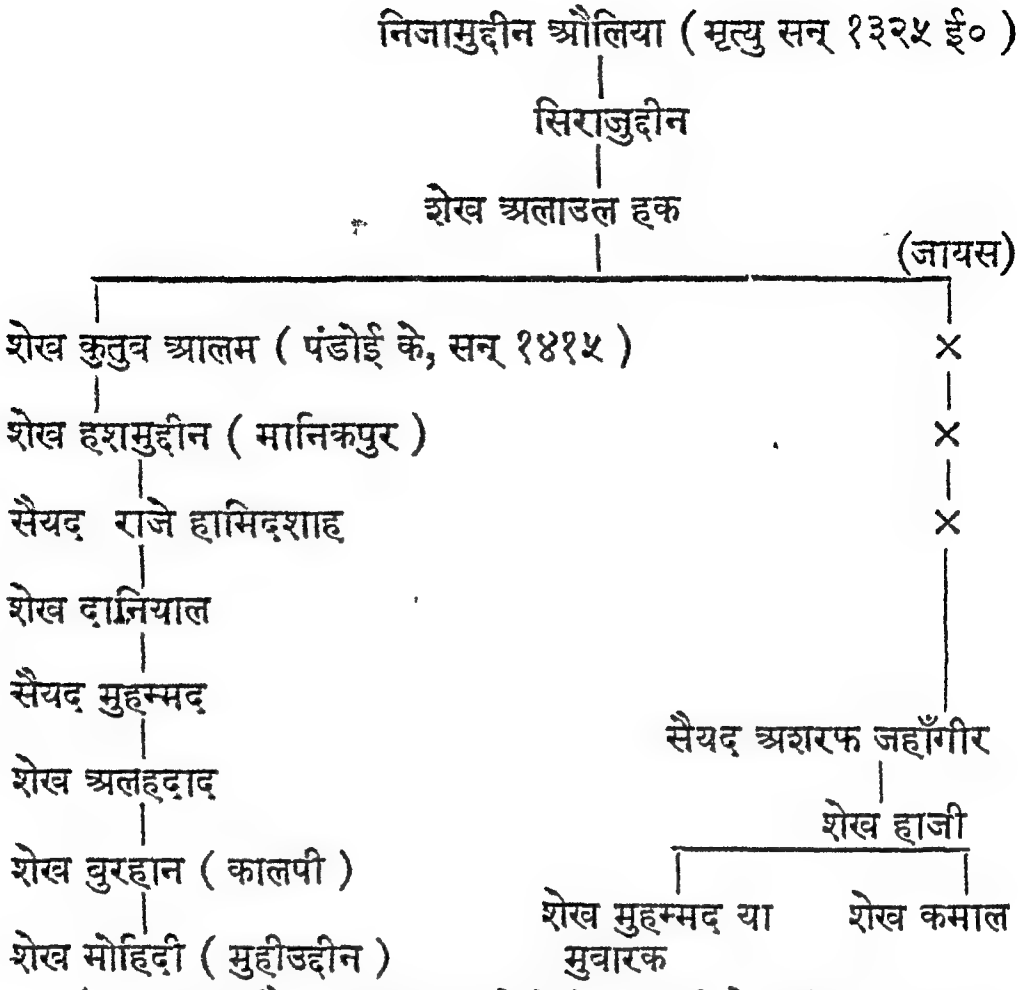


'पदमावत' और 'अखरावट' दोनों मे जायसी ने मानिकपुर-कालपी वाली गुरुपरंपरा का उल्लेख विस्तार से किया है, इससे डाक्टर ग्रियर्सन ने शेख मोहिदी को ही उनका दीक्षा-गुरु माना है । गुरुवंदना से इस बात का ठीक-ठीक निश्चय नही होता कि वे मानिकपुर के मुहीउद्दीन के मुरीद थे अथवा जायस के सैयद अशरफ के । पदमावत में दोनों पीरों का उल्लेख इस प्रकार है—

सैयद असरफ पीर पियारा । जेइ मोहि पथ दीन्ह उजियारा ।

---

गुरु मोहिदी खेवक मै सेवा । चलै उताइल जेहि कर खेवा ।

अखरावट में इन दोनो पीरों की चर्चा इस प्रकार है—

कही सरीअत चिस्ती पीरू । उघरी असरफ औ जँहगीरू ।

---

पा-पाएउँ गुरु मोहिदी मीठा । मिला पंथ सो दरसन दीठा ।

'आखिरी कलाम' में केवल सैयद अशरफ जहाँगीर का ही उल्लेख है । 'पीर' शब्द का प्रयोग भी जायसी ने सैयद अशरफ के नाम के

पहले किया है और अपने को उनके घर का बंदा कहा है। इससे हमारा अनुमान है कि उनके दीक्षा-गुरु तो थे सैयद अशरफ, पर पीछे से उन्होंने मुहीउद्दीन की भी सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की। जायसवाले तो सैयद अशरफ के पोते मुबारकशाह बोदले को उनका पीर बताते है, पर यह ठीक नहीं जँचता।

सूफी मुसलमान फकीरो के सिवा कई संप्रदायो (जैसे, गोरखपंथी, रसायनी, वेदांती) के हिंदू साधुओ से भी उनका बहुत सत्संग रहा, जिनसे उन्होने बहुत सी बातों की जानकारी प्राप्त की। हठयोग, वेदान्त, रसायन आदि की बहुत सी बातो का सन्निवेश उनकी रचना मे मिलता है। हठयोग में मानी हुई इला, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियो की ही चर्चा उन्होने नहीं की है बल्कि सुषुम्ना नाड़ी में नाभिचक्र (कुंडलिनी), हृत्कमल और दशम द्वार (ब्रह्मरंध्र) का भी बार बार उल्लेख किया है। योगी ब्रह्म की अनुभूति के लिए कुंडलिनी को जगाकर ब्रह्मद्वार तक पहुँचने का यत्न करता है। उसकी इस साधना मे अनेक अंतराय (विघ्न) होते है। जायसी ने योग के इस निरूपण मे अपने इसलाम की कथा का भी विचित्र मिश्रण किया है। अंतराय के स्थान पर उन्होने शैतान को रखा है और उसे 'नारद' नाम दिया है। यही नारद दशम द्वार का पहरेदार है और काम, क्रोध आदि इसके सिपाही है। यही साधकों को बहकाया करता है (दे० अखरावट)। कवि ने नारद को झगड़ा लगानेवाला सुनकर ही शायद शैतान बनाया है। इसी प्रकार 'पदमावत' में रसायनियो की बहुत सी बाते आई हैं। 'जोड़ा करना' आदि उनके कुछ पारिभाषिक शब्द भी पाए जाते है। गोरखपंथियों की तो जायसी ने बहुत सी बातें रखी है। सिंहलद्वीप मे पद्मिनी स्त्रियों का होना और योगियो का सिद्ध होने के लिये वहाँ जाना उन्हीं की कथाओं के अनुसार है। इन सब बातो से पता चलता है कि जायसी साधारण मुसलमान फकीरो के समान नहीं थे। वे सच्चे जिज्ञासु थे और हरएक मत के साधु महात्माओं से मिलते-जुलते रहते थे और उनकी बाते सुना करते थे। सूफी तो वे थे ही।

इस उदार सारग्राहिणी प्रवृत्ति के साथ ही साथ उन्हें अपने इसलाम धर्म और पैगंबर पर भी पूरी आस्था थी। यद्यपि कबीरदास के समान उन्होंने भी उदारतापूर्वक ईश्वर तक पहुँचने के अनेक मार्गों का होना तत्त्वतः स्वीकार किया है—

बिधिना के मारग हैं तेते। सरग नखत, तन रोवाँ जेते॥

पर इन असंख्य मार्गों के होते हुए भी मुहम्मद साहब के मार्ग पर अपनी श्रद्धा प्रकट की है।

तिन्ह महँ पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई॥
से बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कैलास बसेरा॥

जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध और पहुँचे हुए फकीर माने जाते थे, पर कबीरदास के समान अपना एक 'निराला पंथ' निकालने का हौसला उन्होंने कभी न किया। जिस मिल्लत या समाज मे उनका जन्म हुआ उसके प्रति अपने विशेष कर्त्तव्यों के पालन के साथ-साथ वे सामान्य मनुष्य-धर्म के सच्चे अनुयायी थे। सच्चे भक्त का प्रधान गुण दैन्य उनमें पूरा पूरा था। कबीरदास के समान उन्होंने अपने को सबसे अधिक पहुँचा हुआ कहीं नहीं कहा है। कबीर ने तो यहाँ तक कह डाला कि इस चादर को सुर, नर, मुनि सबने ओढ़कर मैली किया, पर मैंने "ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया"। इस प्रकार की गर्वोक्तियों से जायसी बहुत दूर थे। उनके भगवत्प्रेम-पूर्ण मानस में अहंकार के लिये कहीं जगह न थी। उनका औदार्य्य वह प्रच्छन्न औद्धत्य न था जो किसी वर्ग को चिढ़ाने के काम में आ सके। उनकी वह उदारता थी जिससे कट्टरपन को भी चोट नहीं पहुँच सकती थी। प्रत्येक प्रकार का महत्त्व स्वीकार करने की क्षमता उनमें थी। वीरता, धीरता, ऐश्वर्य्य, रूप, गुण, शील सबके उत्कर्ष पर मुग्ध होनेवाला हृदय उन्हें प्राप्त था, तभी 'पदमावत' ऐसा चरित-काव्य लिखने की उत्कंठा उन्हें हुई। अपने को सर्वज्ञ मानकर पंडितो और विद्वानों की निंदा और उपहास करने की प्रवृत्ति उनमें न थी। वे जो कुछ थोड़ा बहुत जानते थे उसे पंडितो का प्रसाद मानते थे—

हौं पडितन्ह केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा॥

यद्यपि कबीरदास की और उनकी प्रवृत्ति में बहुत भेद था—कबीर विधि-विरोधी थे और वे विधि पर आस्था रखनेवाले; कबीर लोक-व्यवस्था का तिरस्कार करनेवाले थे और वे सम्मान करनेवाले—पर कबीर को वे बड़ा साधक मानते थे, जैसा कि इन चौपाइयों से प्रकट होता है—

ना—नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहे सौ मैं हारा॥
प्रेम तंतु निति ताना तनई। जप तप साधि सैकरा भरई॥

जायसी को सिद्ध योगी मानकर बहुत से लोग उनके शिष्य हुए। कहते है कि पदमावत के कई अंशो को वे गाते फिरते थे और चेले लोग भी साथ साथ गाते चलते थे। परंपरा से प्रसिद्ध है कि एक चेला अमेठी (अवध) में जाकर उनका नागमती का बारहमासा गा-गाकर घर-घर भीख माँगा करता था। एक दिन अमेठी के राजा ने उस बारहमासे को सुना। उन्हें वह बहुत अच्छा लगा, विशेषतः उसका यह अंश—

कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गएउ सुखाइ।
सूखि बेलि पुनि पलुहै, जौ पिव सींचै आइ॥

राजा इसपर मुग्ध हो गए। उन्होंने फकीर से पूछा "शाहजी! यह दोहा किसका बनाया है?" उस फकीर से मलिक मुहम्मद का नाम सुनकर राजा ने बड़े सम्मान और विनय के साथ उन्हें अपने यहाँ बुलवाया था।

'पदमावत' को पढ़ने से यह प्रकट हो जायगा कि जायसी का हृदय कैसा कोमल और "प्रेम की पीर" से भरा हुआ था। क्या लोक-पक्ष में और क्या भगवत्पक्ष मे, दोनों ओर उसकी गूढ़ता और गंभीरता विलक्षण दिखाई देती है। जायसी की 'पदमावत' बहुत प्रसिद्ध हुई। मुसलमानो के भक्त घरानो मे इसका बहुत आदर है। यद्यपि उनमें इसको समझनेवाले अब बहुत कम है पर वे इसे गूढ़ पोथी मानकर यत्न से रखते है। जायसी की एक और छोटी सी पुस्तक 'अखरावट' है जो मिरजापुर में एक वृद्ध मुसलमान के घर मे मिली थी। इसमें वर्णमाला के एक एक अक्षर को लेकर सिद्धांत-संबंधी कुछ बाते कही गई है। तीसरी पुस्तक 'आखिरी कलाम' के नाम से फारसी अक्षरों मे छपी है। यह भी दोहे चौपाइयो मे है और बहुत छोटी है। इसमें मरणोपरांत जीव की दशा और कयामत के अंतिम न्याय आदि का वर्णन है। बस ये ही तीन पुस्तकें जायसी की मिली है। इनमे से जायसी की कीर्त्ति का आधार 'पदमावत' ही है। यह प्रबंध-काव्य हिंदी में अपने ढंग का निराला है। यह इतना लोकप्रिय हुआ कि इसका अनुवाद बंगभाषा में सन् १६५० ई० के आसपास अराकान में हुआ। जायस वाले इन तीन पुस्तको के अतिरिक्त जायसी की दो और पुस्तकें बतलाते है—'पोस्तीनामा' तथा 'नैनावत' नाम की प्रेम-कहानी। 'पोस्तीनामा' के संबंध में उनका कहना है कि वह मुबारकशाह बोदले को लक्ष्य करके लिखी गई थी जो चंडू पिया करते थे।

# पदमावत की कथा

कवि सिंहलद्वीप, उसके राजा गंधर्वसेन, राजसभा, नगर, बगीचे इत्यादि का वर्णन करके पद्मावती के जन्म का उल्लेख करता है। राजभवन में हीरामन नाम का एक अद्भुत सूआ था जिसे पद्मावती बहुत चाहती थी और सदा उसी के पास रहकर अनेक प्रकार की बातें कहा करती थी। पद्मावती क्रमशः सयानी हुई और उसके रूप की ज्योति भूमंडल में सबके ऊपर हुई। जब उसका कहीं विवाह न हुआ, तब वह रात-दिन हीरामन से इसी बात की चर्चा किया करती थी। सूए ने एक दिन कहा कि यदि कहो तो देश-देशांतर में फिरकर मैं तुम्हारे योग्य बर ढूँढ़ूँ। राजा को जब इस बातचीत का पता लगा तब उसने क्रुद्ध होकर सूए को मार डालने की आज्ञा दी। पद्मावती ने विनती कर किसी प्रकार सूए के प्राण बचाए। सूए ने पद्मावती से बिदा माँगी, पर पद्मावती ने प्रेम के मारे सूए को रोक लिया। सूआ उस समय तो रुक गया, पर उसके मन में बराबर खटका बना रहा।

एक दिन पद्मावती सखियों को लिए हुए मानसरोवर में स्नान और जलक्रीड़ा करने गई। सूए ने सोचा कि अब यहाँ से चटपट चल देना चाहिए। वह वन की ओर उड़ा, जहाँ पक्षियों ने उसका बड़ा सत्कार किया। दस दिन पीछे एक बहेलिया हरी पत्तियों की टट्टी लिए उस वन में चला आ रहा था। और पक्षी तो उस चलते पेड़ को देखकर उड़ गए पर हीरामन चारे के लोभ से वहीं रहा। अंत में बहेलिए ने उसे पकड़ लिया और बाजार में उसे बेचने के लिये ले गया। चित्तौर के एक व्यापारी के साथ एक दीन ब्राह्मण भी कहीं से रुपए लेकर लाभ की आशा से सिंहल की हाट में आया। उसने सूए को पंडित देख मोल ले लिया और लेकर चित्तौर आया। चित्तौर में उस समय राजा चित्रसेन मर चुका था और उसका बेटा रत्नसेन गद्दीपर बैठा था। प्रशंसा सुनकर रत्नसेन ने लाख रुपए देकर हीरामन सूए को मोल ले लिया।

एक दिन रत्नसेन कहीं शिकार को गया था। उसकी रानी नागमती सूए के पास आई और बोली "मेरे समान सुंदरी और भी कोई संसार में है?" इसपर सूआ हँसा और उसने सिंहल की पद्मिनी स्त्रियों का वर्णन करके कहा कि उनमें और तुममें दिन और अंधेरी रात का अंतर है। रानी ने सोचा कि यदि यह तोता रहेगा तो किसी दिन राजा से भी ऐसा

ही कहेगा और वह मुझसे प्रेम करना छोड़कर पद्मावती के लिये जोगी होकर निकल पड़ेगा। उसने अपनी धाय से उसे ले जाकर मार डालने को कहा। धाय ने परिणाम सोचकर उसे मारा नहीं, छिपा रखा। जब राजा ने लौटकर सूए को न देखा तब उसने बड़ा कोप किया। अंत में हीरामन उसके सामने लाया गया और उसने सब वृत्तांत कह सुनाया। राजा को पद्मावती का रूप-वर्णन सुनने की बड़ी उत्कंठा हुई और हीरामन ने उसके रूप का बड़ा लम्बा-चौड़ा वर्णन किया। उस वर्णन को सुन राजा बेसुध हो गया। उसके हृदय में ऐसा प्रबल अभिलाष जगा कि वह रास्ता बताने के लिये हीरामन को साथ ले जोगी होकर घर से निकल पड़ा।

उसके साथ सोलह हजार कुँवर भी जोगी होकर चले। मध्य प्रदेश के नाना दुर्गम स्थानों के बीच होते हुए सब लोग कलिंग देश में पहुँचे। वहाँ के राजा गजपति से जहाज लेकर रत्नसेन ने और सब जोगियों के सहित सिंहलद्वीप की ओर प्रस्थान किया। क्षार समुद्र, क्षीर समुद्र, दधि समुद्र, उदधि समुद्र, सुरा समुद्र और किलकिला समुद्र को पार करके वे सातवें मानसरोवर समुद्र मे पहुँचे जो सिंहलद्वीप के चारों ओर है। सिंहलद्वीप में उतरकर जोगी रत्नसेन तो अपने सब जोगियों के साथ महादेव के मंदिर में बैठकर तप और पद्मावती का ध्यान करने लगा और हीरामन पद्मावती से भेंट करने गया। जाते समय वह रत्नसेन से कहता गया कि वसंत-पंचमी के दिन पद्मावती इसी महादेव के मंडप में वसंत पूजा करने आएगी; उस समय तुम्हें उसका दर्शन होगा और तुम्हारी आशा पूर्ण होगी।

बहुत दिनों पर हीरामन को देख पद्मावती बहुत रोई। हीरामन ने अपने निकल भागने और बेचे जाने का वृत्तांत कह सुनाया। इसके उपरांत उसने रत्नसेन के रूप, कुल, ऐश्वर्य, तेज आदि की बड़ी प्रशंसा करके कहा कि यह सब प्रकार से तुम्हारे योग्य वर है और तुम्हारे प्रेम में जोगी होकर यहाँ तक आ पहुँचा है। पद्मावती ने उसकी प्रेम-व्यथा को सुनकर जयमाल देने की प्रतिज्ञा की और कहा कि वसंत-पंचमी के दिन पूजा के बहाने मैं उसे देखने जाऊँगी। सूआ यह सब समाचार लेकर राजा के पास मंडप में लौट आया।

वसंत-पंचमी के दिन पद्मावती सखियों के सहित मंडप में गई और उधर भी पहुँची जिधर रत्नसेन और उसके साथी जोगी थे। पर ज्योंही रत्नसेन की आँखें उस पर पड़ीं वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। पद्मावती ने

रत्नसेन को सब प्रकार से वैसा ही पाया जैसा सूए ने कहा था। वह मूर्छित जोगी के पास पहुँची और उसे होश में लाने के लिये उस पर चंदन छिड़का। जब वह जागा तब चंदन से उसके हृदय पर यह बात लिखकर वह चली गई कि "जोगी, तूने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नहीं सीखा; जब फल-प्राप्ति का समय आया तब तू सो गया।"

राजा को जब होश आया तब वह बहुत पछताने लगा और जल मरने को तैयार हुआ। सब देवताओं को भय हुआ कि यदि कहीं यह जला तो इस घोर विरहाग्नि से सारे लोक भस्म हो जायँगे। उन्होंने जाकर महादेव पार्वती के यहाँ पुकार की। महादेव कोढ़ी के वेश में बैल पर चढ़े राजा के पास आए और जलने का कारण पूछने लगे। इधर पार्वती की, जो महादेव के साथ आई थीं, यह इच्छा हुई कि राजा के प्रेम की परीक्षा लें। वे अत्यंत सुंदरी अप्सरा का रूप धरकर आईं और बोलीं "मुझे इंद्र ने भेजा है। पद्मावती को जाने दे; तुझे अप्सरा प्राप्त हुई।" रत्नसेन ने कहा "मुझे पद्मावती को छोड़ और किसी से कुछ प्रयोजन नहीं।" पार्वती ने महादेव से कहा कि रत्नसेन का प्रेम सच्चा है। रत्नसेन ने देखा कि इस कोढ़ी की छाया नहीं पड़ती है, इसके शरीर पर मक्खियाँ नहीं बैठती है और इसकी पलकें नहीं गिरती है अतः यह निश्चय कोई सिद्ध पुरुष है। फिर महादेव को पहचानकर वह उनके पैरों पर गिर पड़ा। महादेव ने उसे सिद्धि-गुटिका दी और सिंहलगढ़ में घुसने का मार्ग बताया। सिद्धि-गुटिका पाकर रत्नसेन सब जोगियों को लिए हुए सिंहलगढ़ पर चढ़ने लगा।

राजा गंधर्वसेन के यहाँ जब यह खबर पहुँची तब उसने दूत भेजे। दूतों से जोगी रत्नसेन ने पद्मिनी के पाने का अभिप्राय कहा। दूत क्रुद्ध होकर लौट गए। इस बीच हीरामन रत्नसेन का प्रेमसंदेश लेकर पद्मावती के पास गया और पद्मावती का प्रेम-भरा सँदेसा आकर उसने रत्नसेन से कहा। इस सँदेसे से रत्नसेन के शरीर में और भी बल आ गया। गढ़ के भीतर जो अगाध कुंड था वह रात को उसमें धँसा और भीतरी द्वार को, जिसमें वज्र के किवाड़ लगे थे, उसने जा खोला। पर इसी बीच सबेरा हो गया और वह अपने साथी जोगियों के सहित घेर लिया गया। राजा गंधर्वसेन के यहाँ यह विचार हुआ कि जोगियों को पकड़कर सूली दे दी जाय। दल-बल के सहित सब सरदारों ने जोगियों पर चढ़ाई की। रत्नसेन के साथी युद्ध के लिये उत्सुक हुए पर

रत्नसेन ने उन्हें यह उपदेश देकर शांत किया कि प्रेम-मार्ग में क्रोध करना उचित नहीं। अंत में सब जोगियो-सहित रत्नसेन पकड़ा गया। इधर यह सब समाचार सुन पद्मावती की बुरी दशा हो रही थी। हीरामन सूए ने जाकर उसे धीरज बँधाया कि रत्नसेन पूर्ण सिद्ध हो गया है; वह मर नहीं सकता।

जब रत्नसेन को बाँधकर सूली देने के लिये लाए तब जिसने जिसने उसे देखा सबने कहा कि यह कोई राजपुत्र जान पड़ता है। इधर सूली की तैयारी हो रही थी उधर रत्नसेन पद्मावती का नाम रट रहा था। महादेव ने जब जोगी पर ऐसा संकट देखा तब वे और पार्वती भाँट भाँटिन का रूप धरकर वहाँ पहुँचे। इसी बीच हीरामन सूआ भी रत्नसेन के पास पद्मावती का यह सँदेसा लेकर आया कि "मै भी हथेली पर प्राण लिए बैठी हूँ; मेरा जीना मरना तुम्हारे साथ है।" भाँट (जो वास्तव में महादेव थे) ने राजा गंधर्वसेन को बहुत समझाया कि यह जोगी नहीं राजा है और तुम्हारी कन्या के योग्य वर है पर राजा इसपर और भी क्रुद्ध हुआ। इस बीच जोगियो का दल चारों ओर से लड़ाई के लिये चढ़ा। महादेव के साथ हनुमान् आदि सब देवता जोगियों की सहायता के लिए आ खड़े हुए। गंधर्वसेन की सेना के हाथियो का समूह जब आगे बढ़ा तब हनुमान्‌जी ने अपनी लंबी पूँछ में सबको लपेटकर आकाश में फेंक दिया। राजा गंधर्वसेन को फिर महादेव का घंटा और विष्णु का शंख जोगियों की ओर सुनाई पड़ा और साक्षात् शिव युद्ध-स्थल मे दिखाई पड़े। यह देखते ही गंधर्वसेन महादेव के चरणों पर जा गिरा और बोला "कन्या आपकी है, जिसे चाहिए उसे दीजिए"। इसके उपरांत हीरामन सूए ने आकर राजा रत्नसेन के चित्तौर से आने का सब वृत्तांत कह सुनाया और गंधर्वसेन ने बड़ी धूमधाम से रत्नसेन के साथ पद्मावती का विवाह कर दिया। रत्नसेन के साथी जो सोलह हजार कुँवर थे उन सबका विवाह भी पद्मिनी स्त्रियों के साथ हो गया और सब लोग बड़े आनंद के साथ कुछ दिनों तक सिंहल मे रहे।

इधर चित्तौर मे वियोगिनी नागमती को राजा की बाट जोहते एक वर्ष हो गया। उसके विलाप से पशु-पक्षी विकल हो गए। अंत में आधी रात को एक पक्षी ने नागमती के दुःख का कारण पूछा। नागमती ने उससे रत्नसेन के पास पहुँचाने के लिये अपना सँदेसा कहा। वह पक्षी नागमती का सँदेसा लेकर सिंहलद्वीप गया और समुद्र के किनारे एक पेड़ पर

बैठा। संयोग से रत्नसेन शिकार खेलते-खेलते उसी पेड़ के नीचे जा खड़ा हुआ। पक्षी ने पेड़ पर से नागमती की दुखःकथा और चित्तौर की हीन दशा का वर्णन किया। रत्नसेन का जी सिंहल से उचटा और उसने स्वदेश की ओर प्रस्थान किया। चलते समय उसे सिंहल के राजा के यहाँ से विदाई मे बहुत सामान और धन मिला। इतनी अधिक संपत्ति देख राजा के मन में गर्व और लोभ हुआ। वह सोचने लगा कि इतना अधिक धन लेकर यदि मै स्वदेश पहुँचा तो फिर मेरे समान संसार मे और कौन है। इस प्रकार लोभ ने राजा को आ घेरा।

समुद्रतट पर जब रत्नसेन आया तब समुद्र याचक का रूप धरकर राजा से दान माँगने आया, पर राजा ने लोभवश उसका तिरस्कार कर दिया। राजा आधे समुद्र में भी नहीं पहुँचा था कि बड़े जोर का तूफान आया जिससे जहाज दक्खिन लंका की ओर वह गए। वहाँ विभीषण का एक राक्षस मॉझी मछली मार रहा था। वह अच्छा आहार देख राजा से आकर बोला कि चलो हम तुम्हें रास्ते पर लगा दे। राजा उसकी बातों में आ गया। वह राक्षस सब जहाजो को एक भयंकर समुद्र मे ले गया जहाँ से निकलना कठिन था। जहाज चक्कर खाने लगे और हाथी, घोड़े, मनुष्य आदि डूबने लगे। वह राक्षस आनंद से नाचने लगा। इसी बीच समुद्र का एक राजपक्षी वहाँ आ पहुँचा जिसके डैनो का ऐसा घोर शब्द हुआ मानो पहाड़ के शिखर टूट रहे है। वह पक्षी उस दुष्ट राक्षस को चंगुल में दबाकर उड़ गया। इस प्रकार उस राक्षस से निस्तार हुआ, पर सब जहाज खंड खंड हो गए। जहाज के एक तख्ते पर एक ओर राजा बहा और दूसरे तख्ते पर दूसरी ओर रानी।

पद्मावती बहते-बहते वहाँ जा लगी जहाँ समुद्र की कन्या लक्ष्मी अपनी सहेलियो के साथ खेल रही थी। लक्ष्मी मूर्छित पद्मावती को अपने घर ले गई। पद्मावती को जब चेत हुआ तब वह रत्नसेन के लिये विलाप करने लगी। लक्ष्मी ने उसे धीरज बँधाया और अपने पिता समुद्र से राजा की खोज कराने का वचन दिया। इधर राजा बहते बहते एक ऐसे निर्जन स्थान मे पहुँचा जहाँ मूँगे के टीलो के सिवा और कुछ न था। राजा पद्मिनी के लिये बहुत विलाप करने लगा और कटार लेकर अपने गले में मारा ही चाहता था कि ब्राह्मण का रूप धरकर समुद्र उसके सामने आ खड़ा हुआ और उसे मरने से रोका। अंत में समुद्र ने

राजा से कहा कि तुम मेरी लाठी पकड़कर आँख मूँद लो; मैं तुम्हें जहाँ पद्मावती है उसी तट पर पहुँचा दूँगा।

जब राजा उस तट पर पहुँच गया, तब लक्ष्मी उसकी परीक्षा लेने के लिये पद्मावती का रूप धारण कर रास्ते में जा बैठीं। रत्नसेन उन्हें पद्मावती समझ उनकी ओर लपका। पास जाने पर वे कहने लगीं "मैं पद्मावती हूँ।" पर रत्नसेन ने जब देखा कि यह तो पद्मावती नहीं है तब चट मुँह फेर लिया। अंत मे लक्ष्मी रत्नसेन को पद्मावती के पास ले गईं। रत्नसेन और पद्मावती कई दिनो तक समुद्र और लक्ष्मी के मेहमान रहे। पद्मावती की प्रार्थना पर लक्ष्मी ने उन सब साथियों को भी ला खड़ा किया जो इधर उधर बह गए थे। जो मर गए थे वे भी अमृत से जिला दिए गए। इस प्रकार बड़े आनंद से दोनो वहाँ से विदा हुए। बिदा होते समय समुद्र ने बहुत से अमूल्य रत्न दिए। सबसे बढ़कर पाँच पदार्थ दिए—अमृत, हंस, राजपक्षी, शार्दूल और पारस पत्थर। इन सब अनमोल पदार्थों को लिए अंत मे रत्नसेन और पद्मावती चित्तौर पहुँच गए। नागमती और पद्मावती दोनो रानियों के साथ रत्नसेन सुखपूर्वक रहने लगे। नागमती से नागसेन और पद्मावती से कमलसेन, ये दो पुत्र राजा को हुए।

चित्तौर की राजसभा मे राघव चेतन नाम का एक पंडित था जिसे यक्षिणी सिद्ध थी। एक दिन राजा ने पंडितों से पूछा "दूज कब है?" राघव के मुँह से निकला "आज।" और सब पंडितों ने एक स्वर से कहा कि "आज नहीं हो सकती, कल होगी।" राघव ने कहा कि "यदि आज दूज न हो तो मैं पंडित नहीं।" पंडितो ने कहा कि "राघव वाममार्गी है, यक्षिणी की पूजा करता है, जो चाहे सो कर दिखावे, पर आज दूज नहीं हो सकती।" राघव ने यक्षिणी के प्रभाव से उसी दिन संध्या के समय द्वितीया का चंद्रमा दिखा दिया*। पर जब दूसरे दिन चंद्रमा देखा गया तब वह द्वितीया का ही चंद्रमा था। इसपर पंडितों ने राजा रत्नसेन से कहा "देखिए, यदि कल द्वितीया रही होती तो आज चंद्रमा की कला कुछ अधिक होती। झूठ और सच की परख कर लीजिए।" राघव का भेद खुल गया और वह वेद-विरुद्ध

* लोना चमारी के संबंध मे भी प्रसिद्ध है कि उसकी बात इसी प्रकार सत्य करने के लिये देवी ने प्रतिपदा के दिन आकाश मे जाकर अपने हाथ का कंगन दिखाया था जिससे देखनेवालो को द्वितीया के चंद्रमा का भ्रम हुआ था।

आचार करनेवाला प्रमाणित हुआ। राजा रत्नसेन ने उसे देश-निकाले का दंड दिया।

पद्मावती ने जब यह सुना तब उसने ऐसे गुणी पंडित का असंतुष्ट होकर जाना राज्य के लिये अच्छा नहीं समझा। उसने भारी दान देकर राघव को प्रसन्न करना चाहा। सूर्यग्रहण का दान देने के लिये उसने उसे बुलवाया। जब राघव महल के नीचे आया तब पद्मावती ने अपने हाथ का एक अमूल्य कंगन—जिसका जोड़ा और कहीं दुष्प्राप्य था—झरोखे पर से फेंका। झरोखे पर पद्मावती की झलक देख राघव बेसुध होकर गिर पड़ा। जब उसे चेत हुआ तब उसने सोचा कि अब यह कंगन लेकर बादशाह के पास दिल्ली चलूँ और पद्मिनी के रूप का उसके सामने वर्णन करूँ। वह लंपट है, तुरंत चित्तौर पर चढ़ाई करेगा और इसके जोड़ का दूसरा कंगन भी मुझे इनाम देगा। यदि ऐसा हुआ तो राजा से मैं बदला भी ले लूँगा और सुख से जीवन भी बिताऊँगा।

यह सब सोचकर राघव दिल्ली पहुँचा और वहाँ बादशाह अलाउद्दीन को कंगन दिखाकर उसने पद्मिनी के रूप का वर्णन किया। अलाउद्दीन ने बड़े आदर से उसे अपने यहाँ रखा और सरजा नामक एक दूत के हाथ एक पत्र रत्नसेन को भेजा कि पद्मिनी को तुरंत भेज दो, बदले में और जितना राज्य चाहो ले लो। पत्र पाते ही राजा रत्नसेन क्रोध से लाल हो गया और बहुत बिगड़कर दूत को वापस कर दिया। अलाउद्दीन ने चित्तौरगढ़ पर चढ़ाई कर दी। आठ वर्ष तक मुसलमान चित्तौर को घेरे रहे और घोर युद्ध होता रहा, पर गढ़ न टूट सका। इसी बीच दिल्ली से एक पत्र अलाउद्दीन को मिला जिसमें हरेक लोगों के फिर से चढ़ आने का समाचार लिखा था। बादशाह ने जब देखा कि गढ़ नहीं टूटता है तब उसने कपट की एक चाल सोची। उसने रत्नसेन के पास संधि का एक प्रस्ताव भेजा और यह कहलाया कि मुझे पद्मिनी नहीं चाहिए; समुद्र से जो पाँच अमूल्य वस्तुएँ तुम्हें मिली है उन्हें देकर मेल कर लो।

राजा ने स्वीकार कर लिया और बादशाह को चित्तौरगढ़ के भीतर ले जाकर बड़ी धूमधाम से उसकी दावत की। गोरा और बादल नामक दो विश्वासपात्र सरदारों ने राजा को बहुत समझाया कि मुसलमानों का विश्वास करना ठीक नहीं, पर राजा ने ध्यान न दिया। वे दोनों वीर नीतिज्ञ सरदार रूठकर अपने घर चले गए। कई दिनों तक बादशाह की मेहमानदारी होती रही। एक दिन वह टहलते टहलते पद्मिनी के महलों

की ओर भी जा निकला, जहाँ एक से एक रूपवती स्त्रियाँ स्वागत के लिये खड़ी थी। बादशाह ने राघव से, जो बराबर उसके साथ साथ था, पूछा कि "इनमें पद्मिनी कौन है?" राघव ने कहा "पद्मिनी इनमे कहाँ? ये तो उसकी दासियाँ हैं।" बादशाह पद्मिनी के महल के सामने ही एक स्थान पर बैठकर राजा के साथ शतरंज खेलने लगा। जहाँ वह बैठा था वहाँ उसने एक दर्पण भी इसलिये रख दिया था कि पद्मिनी यदि झरोखे पर आवेगी तो उसका प्रतिबिंब दर्पण में देखूँगा। पद्मिनी कुतूहलवश झरोखे के पास आई और बादशाह ने उसका प्रतिबिंब दर्पण मे देखा। देखते ही वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

अंत में बादशाह ने राजा से बिदा माँगी। राजा उसे पहुँचाने के लिये साथ साथ चला। एक एक फाटक पर बादशाह राजा को कुछ न कुछ देता चला। अंतिम फाटक पार होते ही राघव के इशारे से बादशाह ने रत्नसेन को पकड़ लिया और बाँधकर दिल्ली ले गया। वहाँ राजा को तंग कोठरी मे बंद करके वह अनेक प्रकार के भयंकर कष्ट देने लगा। इधर चित्तौर में हाहाकार मच गया। दोनो रानियाँ रो-रोकर प्राण देने लगी। इस अवसर पर राजा रत्नसेन के शत्रु कुंभलनेर के राजा देवपाल को दुष्टता सूझी। उसने कुमुदिनी नाम की एक दूती को पद्मावती के पास भेजा। पहले तो पद्मिनी उसे अपने मायके की स्त्री सुनकर बड़े प्रेम से मिली और उससे अपना दुःख कहने लगी, पर जब धीरे धीरे उसका भेद खुला तब उसने उचित दंड देकर उसे निकलवा दिया। इसके पीछे अलाउद्दीन ने भी जोगिन के वेश में एक दूती इस आशा से भेजी कि वह रत्नसेन से भेट कराने के बहाने पद्मिनी को जोगिन बनाकर अपने साथ दिल्ली लावेगी। पर उसकी दाल भी न गली।

अंत मे पद्मिनी गोरा और बादल के घर गई और उन दोनो क्षत्रिय वीरो के सामने अपना दुःख रोकर उसने उनसे राजा को छुड़ाने की प्रार्थना की। दोनों ने राजा को छुड़ाने की दृढ़ प्रतिज्ञा की और रानी को बहुत धीरज बँधाया। दोनो ने सोचा कि जिस प्रकार मुसलमानों ने धोखा दिया है उसी प्रकार उनके साथ भी चाल चलनी चाहिए। उन्होने सोलह सो ढकी पालकियों के भीतर तो सशस्त्र राजपूत सरदारों को बिठाया और जो सबसे उत्तम और बहुमूल्य पालकी थी उसके भीतर औजार के साथ एक लोहार को बिठाया। इस प्रकार वे यह प्रसिद्ध करके चले कि सोलह सौ दासियों के सहित पद्मिनी दिल्ली जा रही है।

गोरा के पुत्र वादल की अवस्था वहुत थोड़ी थी। जिस दिन दिल्ली जाना था उसी दिन उसका गौना आया था। उसकी नवागता वधू ने उसे युद्ध में जाने से वहुत रोका पर उस वीर कुमार ने एक न सुनी। अंत में सोलह सौ सवारियों के सहित वे दिल्ली के किले मे पहुँचे। वहाँ कर्मचारियो को घूस देकर उन्होने अपने अनुकूल किया जिससे किसी ने पालकियों की तलाशी न ली। वादशाह के यहाँ खवर गई कि पद्मिनी आई है और कहती है कि मै राजा से मिल लूँ और उन्हें चित्तौर के खजाने की कुंजी सुपुर्द कर दूँ तव महल में जाऊँ। वादशाह ने आज्ञा दे दी। वह सजी हुई पालकी वहाँ पहुँचाई गई जहाँ राजा रत्नसेन कैद था। पालकी में से निकलकर लोहार ने चट राजा की वेड़ी काट दी और वह शस्त्र लेकर एक घोड़े पर सवार हो गया जो पहले से तैयार था। देखते देखते और हथियारवंद सरदार भी पालकियो मे से निकल पड़े। इस प्रकार गोरा और वादल राजा को छुड़ाकर चित्तौर चले।

वादशाह ने जव सुना तव अपनी सेना सहित पीछा किया।

गोरा वादल ने जव शाही फौज पीछे देखी तव एक हजार सैनिकों को लेकर गोरा तो शाही फौज को रोकने के लिये डट गया और बादल राजा रत्नसेन को लेकर चित्तौर की ओर वढ़ा। वृद्ध वीर गोरा वड़ी वीरता से लड़कर और हजारो को मारकर अंत मे सरजा के हाथ से मारा गया। इस वीच में राजा रत्नसेन चित्तौर पहुँच गया। चित्तौर पहुँचते ही उसी दिन रात को पद्मिनी के मुँह से रत्नसेन ने जब देवपाल की दुष्टता का हाल सुना तव उसने उसे वाँध लाने की प्रतिज्ञा की। सवेरा होते ही रत्नसेन ने कुंभलनेर पर चढ़ाई कर दी। रत्नसेन और देवपाल के वीच द्वंद्व-युद्ध हुआ। देवपाल की साँग रत्नसेन की नाभि मे घुसकर उस पार निकल गई। देवपाल साँग मारकर लौटा ही चाहता था कि रत्नसेन ने उसे जा पकड़ा और उसका सिर काटकर उसके हाथ पैर वाँधे। इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर और चित्तौर गढ़ की रक्षा का भार वादल को सौप रत्नसेन ने शरीर छोड़ा।

राजा के शव को लेकर पद्मावती और नागमती दोनो रानियाँ सती हो गई। इतने में शाही सेना चित्तौरगढ़ आ पहुँची। बादशाह ने पद्मिनी के सती होने का समाचार सुना। वादल ने प्राण रहते गढ़ की रक्षा की पर अंत मे वह फाटक की लड़ाई मे मारा गया और चित्तौरगढ़ पर मुसलमानो का अधिकार हो गया।

# ऐतिहासिक आधार

पद्मावत की संपूर्ण आख्यायिका को हम दो भागों में विभक्त कर सकते है। रत्नसेन की सिंहलद्वीप-यात्रा से लेकर पद्मिनी को लेकर चित्तौर लौटने तक हम कथा का पूर्वार्द्ध मान सकते हैं और राघव के निकाले जाने से लेकर पद्मिनी के सती होने तक उत्तरार्द्ध। ध्यान देने की बात यह है कि पूर्वार्द्ध तो बिलकुल कल्पित कहानी है और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर है। ऐतिहासिक अंश के स्पष्टीकरण के लिये टॉड राजस्थान मे दिया हुआ चित्तौरगढ़ पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का वृत्तान्त हम नीचे देते है—

"विक्रम संवत् १३३१ में लखनसी चित्तौर के सिंहासन पर बैठा। वह छोटा था इससे इसका चाचा भीमसी ( भीमसिंह ) ही राज्य करता था। भीमसी का विवाह सिंहल के चौहान राजा हम्मीर शंक की कन्या पद्मिनी से हुआ था जो रूप-गुण में जगत् में अद्वितीय थी। उसके रूप की ख्याति सुनकर दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चित्तौरगढ़ पर चढ़ाई की। घोर युद्ध के उपरांत अलाउद्दीन ने संधि का प्रस्ताव भेजा कि मुझे एक बार पद्मिनी का दर्शन ही हो जाय तो मै दिल्ली लौट जाऊँ। इस पर यह ठहरी कि अलाउद्दीन दर्पण मे पद्मिनी की छाया मात्र देख सकता है। इस प्रकार युद्ध बंद हुआ और अलाउद्दीन बहुत थोड़े से सिपाहियों के साथ चित्तौरगढ़ के भीतर लाया गया। वहाँ से जब वह दर्पण मे छाया देखकर लौटने लगा तब राजा उसपर पूरा विश्वास करके गढ़ के बाहर तक उसको पहुँचाने आया। बाहर अलाउद्दीन के बहुत से सैनिक पहले से घात में लगे हुए थे। ज्यों ही राजा बाहर आया वह पकड़ लिया गया और मुसलमानो के शिविर मे, जो चित्तौर से थोड़ी दूर पर था, कैद कर लिया गया। राजा को कैद करके यह घोषणा की गई कि जब तक पद्मिनी न भेज दी जायगी, राजा नहीं छूट सकता।

"चित्तौर मे हाहाकार मच गया। पद्मिनी ने जब यह सुना तब उसने अपने मायके के गोरा और बादल नाम के दो सरदारो से मंत्रणा की। गोरा पद्मिनी का चाचा लगता था और बादल गोरा का भतीजा था। उन दोनों ने राजा के उद्धार की एक युक्ति सोची। अलाउद्दीन के पास कहलाया गया कि पद्मिनी जायगी, पर रानी की मर्य्यादा के साथ। अलाउद्दीन अपनी सब सेना वहाँ से हटा दे और परदे का पूरा इंतजाम

कर दे। पद्मिनी के साथ बहुत सी दासियाँ रहेंगी और दासियों के सिवा बहुत सी सखियाँ भी होंगी जो केवल उसे पहुँचाने और विदा करने जायँगी। अंत में सात सौ पालकियाँ अलाउद्दीन के खेमे की ओर चलीं। हर एक पालकी में एक एक सशस्त्र वीर राजपूत बैठा था। एक एक पालकी उठानेवाले जो छः छः कहार थे वे भी कहार बने हुए सशस्त्र सैनिक थे। जब वे शाही खेमे के पास पहुँचे तब चारो ओर कनाते घेर दी गईं। पालकियाँ उतारी गईं। पद्मिनी को अपने पति से अंतिम भेंट करने के लिए आधे घंटे का समय दिया गया। राजपूत चटपट राजा को पालकी मे बिठाकर चित्तौरगढ़ की ओर चल पड़े। शेष पालकियाँ मानो पद्मिनी के साथ दिल्ली जाने के लिए रह गईं। अलाउद्दीन की भीतरी इच्छा भीमसी को चित्तौरगढ़ जाने देने की न थी। देर देखकर वह घबराया। इतने मे पालकियो से वीर राजपूत निकल पड़े। अलाउद्दीन पहले से सतर्क था। उसने पीछा करने का हुक्म दिया। पालकियो से निकले हुए राजपूत बड़ी वीरता से पीछा करनेवालो को कुछ देर तक रोके रहे पर अंत मे एक एक करके वे सब मारे गए।

"इधर भीमसी के लिये बहुत तेज घोड़ा तैयार खड़ा था। वह उसपर सवार होकर गोरा बादल आदि कुछ चुने साथियों के साथ चित्तौरगढ़ के भीतर पहुँच गया। पीछा करनेवाली मुसलमान सेना फाटक तक साथ लगी आई। फाटक पर घोर युद्ध हुआ। गोरा बादल के नेतृत्व मे राजपूत वीर खूब लड़े। अलाउद्दीन अपना सा मुँह लेकर दिल्ली लौट गया; पर इस युद्ध मे चित्तौर के चुने चुने वीर काम आए। गोरा भी इसी युद्ध में मारा गया। बादल, जो चारणो के अनुसार केवल बारह वर्ष का था, बड़ी वीरता के साथ लड़कर जीता बच आया। उसके मुँह से अपने पति की वीरता का वृत्तांत सुनकर गोरा की स्त्री सती हो गई।

"अलाउद्दीन ने संवत् १३४६ (सन् १२९० ई०; पर फरिश्ता के अनुसार सन् १३०३ ई० जो कि ठीक माना जाता है) मे फिर चित्तौरगढ़ पर चढ़ाई की। इसी दूसरी चढ़ाई में राणा अपने ग्यारह पुत्रों सहित मारे गए। जब राणा के ग्यारह पुत्र मारे जा चुके और स्वयं राणा के युद्धक्षेत्र मे जाने की बारी आई तब पद्मिनी ने जौहर किया। कई सहस्र राजपूत ललनाओं के साथ पद्मिनी ने चित्तौरगढ़ के उस गुप्त भूहरे मे प्रवेश किया जहाँ उन सती स्त्रियो को अपने गोद मे लेने के लिये आग दहक रही थी। इधर यह कांड समाप्त हुआ उधर वीर भीमसी ने रणक्षेत्र में शरीर-त्याग किया।"

टॉड ने जो वृत्त दिया है वह राजपूताने में रक्षित चारणों के इतिहासों के आधार पर है। दो चार ब्योरों को छोड़कर ठीक यही वृत्तांत 'आईने अकबरी' में दिया हुआ है। 'आईने अकबरी' में भीमसी के स्थान पर रतनसी ( रत्नसिंह या रत्नसेन ) नाम है। रतनसी के मारे जाने का ब्योरा भी दूसरे ढंग पर है। 'आईने अकबरी' मे लिखा है कि अलाउद्दीन दूसरी चढ़ाई मे भी हार कर लौटा। वह लौटकर चित्तौर से सात कोस पहुँचा था कि रुक गया और मैत्री का नया प्रस्ताव भेजकर रतनसी को मिलने के लिये बुलाया। अलाउद्दीन की बार बार की चढ़ाइयो से रतनसी ऊब गया था इससे उसने मिलना स्वीकार किया। एक विश्वासघाती को साथ लेकर वह अलाउद्दीन से मिलने गया और धोखे से मार डाला गया। उसका संबंधी अरसी चटपट चित्तौर के सिंहासन पर बिठाया गया। अलाउद्दीन चित्तौर की ओर फिर लौटा और उस पर अधिकार किया। अरसी मारा गया और पद्मिनी सब स्त्रियों के सहित सती हो गई।

इन दोनों ऐतिहासिक वृत्तों के साथ जायसी द्वारा वर्णित कथा का मिलान करने से कई बातो का पता चलता है। पहली बात तो यह है कि जायसी ने जो 'रत्नसेन' नाम दिया है वह उनका कल्पित नहीं है, क्योंकि प्रायः उनके सम-सामयिक या थोड़े ही पीछे के ग्रंथ 'आईने अकबरी' में भी यही नाम आया है। यह नाम अवश्य इतिहासज्ञों में प्रसिद्ध था। जायसी को इतिहास की जानकारी थी। यह "जायसी की जानकारी" के प्रकरण मे हम दिखावेंगे। दूसरी बात यह है कि जायसी ने रत्नसेन का मुसलमानो के हाथ से मारा जाना न लिखकर जो देवपाल के साथ द्वंद्वयुद्ध मे कुंभलनेरगढ़ के नीचे मारा जाना लिखा है उसका आधार शायद विश्वासघाती के साथ बादशाह से मिलने जानेवाला वह प्रवाद हो जिसका उल्लेख आईने-अकबरी-कार ने किया है।

अपनी कथा को काव्योपयोगी स्वरूप देने के लिये ऐतिहासिक घटनाओं के ब्योरो में कुछ फेरफार करने का अधिकार कवि को बराबर रहता है। जायसी ने भी इस अधिकार का उपयोग कई स्थलो पर किया है। सबसे पहले तो हमें राघव चेतन की कल्पना मिलती है। इसके उपरांत अलाउद्दीन के चित्तौरगढ़ घेरने पर संधि की जो शर्त ( समुद्र से पाई हुई पाँच वस्तुओ को देने की ) अलाउद्दीन की ओर से पेश की गई वह भी कल्पित है। इतिहास मे दर्पण के बीच पद्मिनी की छाया देखने की शर्त प्रसिद्ध है। पर दर्पण मे प्रतिबिंब देखने की बात का जायसी ने

आकस्मिक घटना के रूप में वर्णन किया है। इतना परिवर्तन कर देने से नायक रत्नसेन के गौरव की पूर्ण रूप से रक्षा हुई है। पद्मिनी की छाया भी दूसरे को दिखाने पर सम्मत होना रत्नसेन ऐसे पुरुषार्थी के लिये कवि ने अच्छा नहीं समझा। तीसरा परिवर्तन कवि ने यह किया है कि अलाउद्दीन के शिविर में बंदी होने के स्थान पर रत्नसेन का दिल्ली में बंदी होना लिखा है। रत्नसेन को दिल्ली में ले जाने से कवि को दूती और जोगिन के वृत्तांत, रानियों के विरह और विलाप तथा गोरा बादल के प्रयत्नविस्तार का पूरा अवकाश मिला है। इस अवकाश के भीतर जायसी ने पद्मिनी के सतीत्व की मनोहर व्यंजना के अनंतर बालक बादल का वह क्षात्र तेज तथा कर्त्तव्य की कठोरता का वह दिव्य और मर्मस्पर्शी दृश्य दिखाया है जो पाठक के हृदय को द्रवीभूत कर देता है। देवपाल और अलाउद्दीन का दूती भेजना तथा बादल और उसकी स्त्री का संवाद ये दोनो प्रसंग इसी निमित्त कल्पित किए गए है। देवपाल कल्पित पात्र है। पीछा करते हुए अलाउद्दीन के चित्तौर पहुँचने के पहले ही रत्नसेन का देवपाल के हाथ से मारा जाना और अलाउद्दीन के हाथ से न पराजित होना दिखाकर कवि ने अपने चरित-नायक की आन रखी है।

पद्मिनी क्या सचमुच सिहल की थी? पद्मिनी सिहलद्वीप की हो नहीं सकती। यदि 'सिहल' नाम ठीक माने तो वह राजपूताने या गुजरात का कोई स्थान होगा। न तो सिंहलद्वीप मे चौहान आदि राजपूतो की बस्ती का कोई पता है न इधर हजार वर्ष से कूप-मंडूक बने हुए हिंदुओ के सिहलद्वीप मे जाकर विवाहसंबंध करने का। दुनिया जानती है कि सिहलद्वीप के लोग ( तामिल और सिंहली दोनों ) कैसे काले-कलूटे होते है। वहाँ पर पद्मिनी स्त्रियो का पाया जाना गोरखपंथी साधुओ की कल्पना है।

नाथपंथ की परंपरा वास्तव मे महायान शाखा के योगमार्गी बौद्धो की थी जिसे गोरखनाथ ने शैव रूप दिया। बौद्धधर्म जब भारतवर्ष से उठ गया तब उसके शास्त्रो के अध्ययन-अध्यापन का प्रचार यहाँ न रह गया। सिहलद्वीप में ही बौद्ध शास्त्रो के अच्छे अच्छे पंडित रह गए। इसी से भारतवर्ष के अवशिष्ट योगमार्गी बौद्धो मे सिहलद्वीप एक सिद्धपीठ समझा जाता रहा। इसी धारणा के अनुसार गोरखनाथ के अनुयायी भी सिंहलद्वीप को एक सिद्धपीठ मानते है। उनका कहना है कि योगियो को पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने के लिये सिहलद्वीप जाना पड़ता है जहाँ साक्षात् शिव परीक्षा के पीछे सिद्धि प्रदान करते है। पर वहाँ

जानेवाले योगियों के शम, दम की पूरी परीक्षा होती है। वहाँ सुवर्ण और रत्नों की अतुल राशि सामने आती है तथा पद्मिनी स्त्रियाँ अनेक प्रकार से लुभाती हैं। बहुत से योगी उन पद्मिनियों के हाव-भाव में फँस योगभ्रष्ट हो जाते हैं। कहते हैं, गोरखनाथ ( वि० संवत् १४०७ ) के गुरु मत्स्येंद्रनाथ ( मछंदरनाथ ) जब सिंहल में सिद्धि की पूर्णता के लिये गए तब पद्मिनियों के जाल में इसी प्रकार फँस गए। पद्मिनियों ने उन्हें एक कूएँ में डाल रखा था। अपने गुरु की खोज में गोरखनाथ भी सिंहल गए और उसी कूएँ के पास से होकर निकले। उन्होंने अपने गुरु की आवाज पहचानी और कूएँ के किनारे खड़े होकर बोले "जाग मछंदर गोरख आया !" इसी प्रकार की और भी कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

अब 'पदमावत' की पूर्वार्द्ध कथा के संबंध में एक और प्रश्न यह होता है कि वह जायसी द्वारा कल्पित है अथवा जायसी के पहले से कहानी के रूप में जनसाधारण के बीच प्रचलित चली आती है। उत्तर भारत में, विशेषतः अवध में, 'पद्मिनी रानी और हीरामन सूग्' की कहानी अब तक प्रायः उसी रूप में कही जाती है जिस रूप में जायसी ने उसका वर्णन किया है। जायसी इतिहास-विज्ञ थे इससे उन्होंने रत्नसेन, अलाउद्दीन आदि नाम दिए हैं, पर कहानी कहनेवाले नाम नहीं लेते हैं; केवल यही कहते हैं कि 'एक राजा था', 'दिल्ली का बादशाह था', इत्यादि। यह कहानी बीच बीच में गा-गाकर कही जाती है। जैसे, राजा की पहली रानी जब दर्पण में अपना मुँह देखती है तब सूए से पूछती है—

देस देस तुम फिरौ, हो सुअटा ! मोरे रूप और कहु कोई ?

सूआ उत्तर देता है—

काह बखानौ सिंहल कै रानी। तोरे रूप भरैं सब पानी ॥

इसी प्रकार 'बाला लखन देव' आदि की और रसात्मक कहानियाँ अवध में प्रचलित हैं जो बीच बीच में गा-गाकर कही जाती हैं।

इस संबंध में हमारा अनुमान यह है कि जायसी ने प्रचलित कहानी को ही लेकर, सूक्ष्म व्योरों की मनोहर कल्पना करके, उसे काव्य का सुंदर स्वरूप दिया है। इस मनोहर कहानी को कई लोगों ने काव्य के रूप में बाँधा : हुसैन गजनवी ने "किस्सए पदमावत" नाम का एक फारसी काव्य लिखा। सन् १६५२ ई० में रायगोविंद मुंशी ने पद्मावती की कहानी फारसी गद्य में "तुकफतुल कुलूब" के नाम से लिखी। उसके पीछे मीर जियाउद्दीन 'इब्रत' और गुलाम अली 'इशरत' ने मिलकर

सन् १७९६ ई० में उर्दू शेरों में इस कहानी को लिखा। यह कहा जा चुका है कि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी 'पदमावत' सन् १५२० ई० में लिखी थी।

## 'पदमावत' की प्रेम-पद्धति

'पदमावत' की जो आख्यायिका ऊपर दी जा चुकी है उससे स्पष्ट है कि वह एक प्रेम-कहानी है। अब संक्षेप में यह देखना चाहिए कि कवियों मे दांपत्य-प्रेम का आविर्भाव वर्णन करने की जो प्रणालियाँ प्रचलित हैं उनमे से 'पदमावत' में वर्णित प्रेम किसके अंतर्गत आता है।

( १ ) सबसे पहले उस प्रेम को लीजिए जो आदिकाव्य रामायण में दिखाया गया है। इसका विकास विवाह-संबंध हो जाने के पीछे और पूर्ण उत्कर्ष जीवन की विकट स्थितियों में दिखाई पड़ता है। राम के वन जाने की तैयारी के साथ ही सीता के प्रेम का स्फुरण होता है; सीता-हरण होने पर राम के प्रेम की कांति सहसा फूटती हुई दिखाई पड़ती है। वन के जीवन में इस पारस्परिक प्रेम की आनंद-विधायिनी शक्ति लक्षित होती है और लंका की चढ़ाई मे इसका तेज, साहस और पौरुष। यह प्रेम अत्यंत स्वाभाविक, शुद्ध और निर्मल है। यह विलासिता या कामुकता के रूप मे हमारे सामने नहीं आता बल्कि मनुष्य-जीवन के बीच एक मानसिक शक्ति के रूप मे दिखाई पड़ता है। उभय पक्ष मे सम होने पर भी नायक-पक्ष में यह कर्त्तव्य-बुद्धि द्वारा कुछ संयत सा दिखाई पड़ता है।

( २ ) दूसरे प्रकार का प्रेम विवाह के पूर्व का होता है, विवाह जिसका फल-स्वरूप होता है। इसमे नायक-नायिका संसार-क्षेत्र में घूमते फिरते हुए कहीं—जैसे उपवन, नदी-तट, वीथी इत्यादि मे—एक दूसरे को देख मोहित होते हैं और दोनों में प्रीति हो जाती है। अधिकतर नायक की ओर से नायिका की प्राप्ति का प्रयत्न होता है। इसी प्रयत्न-काल में संयोग और विप्रलंभ दोनो के अवसरों का सन्निवेश रहता है और विवाह हो जाने पर प्रायः कथा की समाप्ति हो जाती है। इसमे कहीं बाहर घूमते-फिरते साक्षात्कार होता है इससे मनुष्य के आदिम प्राकृतिक जीवन की स्वाभाविकता बनी रहती है। अभिज्ञान-शाकुंतल, विक्रमोर्वशी आदि की कथा इसी प्रकार की है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने सीता और राम के प्रेम का आरंभ विवाह से पूर्व दिखाने के लिये ही उनका जनक की वाटिका में परस्पर साक्षात्कार कराया है। पर साक्षात्कार और

विवाह के बीच के थोड़े से अवकाश में परशुरामवाले झमेले को छोड़ प्रयत्न का कोई विस्तार दिखाई नहीं पड़ता। अतः रामकथा को इस दूसरे प्रकार की प्रेम-कथा का स्वरूप न प्राप्त हो सका।

( ३ ) तीसरे प्रकार के प्रेम का उदय प्रायः राजाओं के अंतःपुर, उद्यान आदि के भीतर भोग-विलास या रंग-रहस्य के रूप में दिखाया जाता है, जिसमें सपत्नियों के द्वेष, विदूषक आदि के हास-परिहास और राजाओं की क्लैण्यता आदि का दृश्य होता है। उत्तर काल के संस्कृत नाटकों में इसी प्रकार के पौरुषहीन, निःसार और विलासमय प्रेम का प्रायः वर्णन हुआ है, जैसे रत्नावली, प्रियदर्शिका, कर्पूरमंजरी इत्यादि में। इसमें नायक को कहीं बाहर वन, पर्वत आदि के बीच नहीं जाना पड़ा है; वह घर के भीतर ही लुकता-छिपता, चौकड़ी भरता दिखाया गया है।

( ४ ) चौथे प्रकार का वह प्रेम है जो गुणश्रवण, चित्रदर्शन, स्वप्न-दर्शन आदि से बैठे बिठाए उत्पन्न होता है और नायक या नायिका को संयोग के लिये प्रयत्नवान् करता है। ऊषा और अनिरुद्ध का प्रेम इसी प्रकार का समझिए जिसमें प्रयत्न स्त्री-जाति की ओर से होने के कारण कुछ अधिक विस्तार या उत्कर्ष नहीं प्राप्त कर सका है। पर स्त्रियों का प्रयत्न भी यह विस्तार या उत्कर्ष प्राप्त कर सकता है इसकी सूचना भारतेंदु ने "पगन में छाले परे, नाँघिबे को नाले परे, तऊ लाल, लाले परे रावरे दरस को" द्वारा दिया है।

इन चार प्रकार के प्रेमों का वर्णन नए और पुराने भारतीय साहित्य में है। ध्यान देने की बात यह है कि विरह की व्याकुलता और असह्य वेदना स्त्रियों के मत्थे अधिक मढ़ी गई है। प्रेम के वेग की मात्रा स्त्रियों में अधिक दिखाई गई है। नायक के दिन दिन क्षीण होने, विरह ताप में भस्म होने, सूखकर ठटरी होने के वर्णन में कवियों का जी उतना नहीं लगा है। बात यह है कि स्त्रियों की शृंगार-चेष्टा वर्णन करने में पुरुषों को जो आनंद आता है, वह पुरुषों की दशा वर्णन करने में नहीं। इसी से स्त्रियों का विरह-वर्णन हिंदी-काव्य का एक प्रधान अंग ही बन गया। ऋतु-वर्णन तो केवल इसी की बदौलत रह गया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि जायसी ने 'पद्मावत' में जिस प्रेम का वर्णन किया है वह चौथे ढंग का है। पर इसमें वे कुछ विशेषता भी लाए हैं। जायसी के शृंगार में मानसिक पक्ष प्रधान है, शारीरिक गौण है। चुंबन-आलिंगन आदि का वर्णन कवि ने बहुत कम किया है, केवल

मन के उल्लास और वेदना का कथन अधिक किया है। प्रयत्न नायक की ओर से है और उसकी कठिनता द्वारा कवि ने नायक के प्रेम को नापा है। नायक का यह आदर्श लैला मजनूँ, शीरी फरहाद आदि उन अरबी फारसी कहानियों के आदर्श से मिलता जुलता है जिनमे हड्डी की ठटरी भर लिए हुए टाँकियों से पहाड़ खोद डालनेवाले आशिक पाए जाते है। फारस के प्रेम मे नायक के प्रेम का वेग अधिक तीव्र दिखाई पड़ता है और भारत के प्रेम मे नायिका के प्रेम का। जायसी ने आगे चलकर नायक और नायिका दोनो के प्रेम की तीव्रता समान करके दोनो आदर्शों का एक में मेल कर दिया है। राजा रत्नसेन सुए के मुँह से पद्मावती का रूप-वर्णन सुन योगी होकर घर से निकल जाता है और मार्ग के अनेक दुःखों को झेलता हुआ सात समुद्र पार करके सिंहलद्वीप पहुँचता है। उधर पद्मावती भी राजा के प्रेम को सुन विरहाग्नि मे जलती हुई साक्षात्कार के लिए विह्वल होती है और जब रत्नसेन को सूली की आज्ञा होती है तब उसके लिये मरने को तैयार होती है।

एक प्रकार का और मेल भी कवि ने किया है। फारसी की मसनवियों का प्रेम ऐकांतिक, लोक-वाह्य और आदर्शात्मक ( Idealistic ) होता है। वह संसार की वास्तविक परिस्थिति के बीच नहीं दिखाया जाता, संसार की और सब बातो से अलग एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में दिखाया जाता है। उसमे जो घटनाएँ आती है वे केवल प्रेममार्ग की होती है, संसार के और और व्यवहारो से उत्पन्न नहीं। साहस, दृढ़ता और वीरता भी यदि कहीं दिखाई पड़ती है तो प्रेमोन्माद के रूप मे, लोक-कर्त्तव्य के रूप में नही। भारतीय प्रेम-पद्धति आदि में तो लोक-संबद्ध और व्यवहारात्मक थी ही, पीछे भी अधिकतर वैसी ही रही। आदिकवि के काव्य मे प्रेम लोक-व्यवहार से कही अलग नहीं दिखाया गया है; जीवन के और और विभागो के सौंदर्य के बीच उसके सौंदर्य की प्रभा फूटती दिखाई पड़ती है। राम के समुद्र मे पुल बाँधने और रावण ऐसे प्रचंड शत्रु को मार गिराने को हम केवल एक प्रेमी के प्रयत्न के रूप मे नहीं देखते, वीर धर्मानुसार पृथ्वी का भार उतारने के प्रयत्न के रूप मे देखते है। पीछे कृष्ण-चरित, कादंबरी, नैषधीय-चरित, माधवानल काम-कंदला आदि एकांतिक प्रेम-कहानियों का भी भारतीय साहित्य मे प्रचुर प्रचार हुआ। ये कहानियाँ अरब-फारस की प्रेम-पद्धति के अधिक मेल मे थीं। नल-दमयंती की प्रेम-कहानी का अनुवाद बहुत

पहले फारसी क्या अरबी तक में हुआ। इन कहानियों का उल्लेख 'पद्मावत' में स्थान स्थान पर हुआ है।

जायसी ने यद्यपि इश्क के दास्तानवाली मसनवियों के प्रेम के स्वरूप को प्रधान रखा है पर बीच बीच में भारत के लोक-व्यवहार-संलग्न स्वरूप का भी मेल किया है। इश्क की मसनवियों के समान 'पद्मावत' लोक-पक्ष-शून्य नहीं है। राजा जोगी होकर घर से निकलता है, इतना कहकर कवि यह भी कहता है कि चलते समय उसकी माता और रानी दोनों उसे रो-रोकर रोकती है। जैसे कवि ने राजा से संयोग होने पर पद्मावती के रसरंग का वर्णन किया वैसे ही सिंहलद्वीप से विदा होते समय परिजनों और सखियों से अलग होने का स्वाभाविक दुःख भी। कवि ने जगह जगह पद्मावती को जैसे चंद्र, कमल इत्यादि के रूप में देखा है वैसे ही उसे प्रथम समागम से डरते, सपत्नी से झगड़ते और प्रिय के हित के अनुकूल लोक-व्यवहार करते भी देखा है। राघव चेतन के निकाले जाने पर राजा और राज्य के अनिष्ट की आशंका से पद्मावती उस ब्राह्मण को अपना खास कंगन दान देकर संतुष्ट करना चाहती है। प्रेम का लोक-पक्ष कैसा सुंदर है! लोक-व्यवहार के बीच भी अपनी आभा का प्रसार करने-वाली प्रेम-ज्योति का महत्त्व कुछ कम नहीं।

जायसी एकांतिक प्रेम की गूढ़ता और गंभीरता के बीच बीच में जीवन के और और अंगों के साथ भी उस प्रेम के संपर्क का स्वरूप कुछ दिखाते गए हैं इससे उनकी प्रेम-गाथा पारिवारिक और सामाजिक जीवन से विच्छिन्न होने से बच गई है। उसमें भावात्मक और व्यवहारात्मक दोनों शैलियों का मेल है। पर है वह प्रेम-गाथा ही, पूर्ण जीवन-गाथा नहीं। ग्रंथ का पूर्वार्द्ध—आधे से अधिक भाग—तो प्रेम-मार्ग के विवरण से ही भरा है। उत्तरार्द्ध में जीवन के और और अंगों का सन्निवेश मिलता है, पर वे पूर्णतया परिस्फुट नहीं है। दांपत्य-प्रेम के अतिरिक्त मनुष्य की और वृत्तियाँ जिनका कुछ विस्तार के साथ समावेश है वे यात्रा, युद्ध, सपत्नी-कलह, मातृस्नेह, स्वामिभक्ति, वीरता, कृतघ्नता, छल और सतीत्व हैं। पर इनके होते हुए भी 'पद्मावत' को हम शृंगाररस-प्रधान काव्य ही कह सकते हैं। 'रामचरित' के समान मनुष्य-जीवन की भिन्न भिन्न बहुत सी परिस्थितियों और संबंधों का इसमें समन्वय नहीं है।

तोते के मुँह से पद्मावती का रूप-वर्णन करने से राजा रत्नसेन को जो पूर्वराग हुआ, अब उसपर थोड़ा विचार कीजिए। देखने में तो वह उसी

प्रकार का जान पड़ता है जिस प्रकार का हंस के मुख से दमयंती का रूप-वर्णन सुनकर नल को या नल का रूप-वर्णन सुनकर दमयंती को हुआ था। पर ध्यान देकर विचार करने से दोनो में एक ऐसा अंतर दिखाई पड़ेगा जिसके कारण एक की तीव्रता जितनी अयुक्त दिखाई देगी उतनी दूर नहीं। पूर्वराग में ही विप्रलंभ शृंगार की बहुत सी दशाओ की योजना श्रीहर्ष ने भी की है और जायसी ने भी। पूर्वराग पूर्ण रति नहीं है, अतः उसमे केवल 'अभिलाष' स्वाभाविक जान पड़ता है; शरीर का सूखकर काँटा होना, मूर्च्छा, उन्माद आदि नहीं। तोते के मुँह से पहले ही पहल पद्मावती का वर्णन सुनते ही रत्नसेन का मूर्च्छित हो जाना और पूर्ण वियोगी बन जाना अस्वाभाविक सा लगता है। पर हंस के मुँह से रूप-गुण आदि की प्रशंसा सुनने पर जो विरह की दारुण दशा दिखाई गई है वह इसलिये अधिक नही खटकती कि नल और दमयंती दोनों बहुत दिनों से एक दूसरे के रूप-गुण की प्रशंसा सुनते आ रहे थे जिससे उनका पूर्व-राग 'मंजिष्ठा राग' की अवस्था को पहुँच गया था।

जब तक पूर्वराग आगे चलकर पूर्ण रति या प्रेम के रूप मे परिणत नहीं होता तब तक उसे हम चित्त की कोई उदात्त या गंभीर वृत्ति नहीं कह सकते। हमारी समझ में तो दूसरे के द्वारा—चाहे वह चिड़िया हो या आदमी—किसी पुरुष या स्त्री के रूप-गुण आदि को सुनकर चट उसकी प्राप्ति की इच्छा उत्पन्न करनेवाला भाव लोभ मात्र कहला सकता है, परि-पुष्ट प्रेम नहीं। लोभ और प्रेम के लक्ष्य में सामान्य और विशेष का ही अंतर समझा जाता है। कहीं कोई अच्छी चीज सुनकर दौड़ पड़ना यह लोभ है। विशेष वस्तु—चाहे दूसरो के निकट वह अच्छी हो या बुरी—देख उसमें इस प्रकार रम जाना कि उससे कितनी ही बढ़कर अच्छी वस्तुओं के सामने आने पर भी उनकी ओर ध्यान न जाय, प्रेम है। व्यव-हार में भी प्रायः देखा जाता है कि वस्तु-विशेष के ही प्रति जो लोभ होता है वह लोभ नहीं कहलाता। जैसे, यदि कोई मनुष्य पकवान या मिठाई का नाम सुनते ही चंचल हो जाय तो लोग कहेंगे कि वह बड़ा लालची है, पर यदि कोई केवल गुलाबजामुन का नाम आने पर चाह प्रकट करे तो लोग यही कहेंगे कि इन्हें गुलाबजामुन बहुत अच्छी लगती है। तत्काल सुने हुए रूप-वर्णन से उत्पन्न 'पूर्वराग' और 'प्रेम' में भी इसी प्रकार का अंतर समझिए। पूर्वराग रूप-गुण-प्रधान होने के कारण सामान्योन्मुख होता है, पर प्रेम व्यक्ति-प्रधान होने के कारण विशेषोन्मुख होता है। एक ने आकर

कहा, अमुक बहुत सुंदर है; फिर कोई दूसरा आकर कहता है कि अमुक नहीं अमुक बहुत सुंदर है। इस अवस्था में बुद्धि का व्यभिचार बना रहेगा। प्रेम में पूर्ण व्यभिचार-शांति प्राप्त हो जाती है।

कोई वस्तु बहुत बढ़िया है, जैसे यह सुनकर हमें उसका लोभ हो जाता है वैसे ही कोई व्यक्ति बहुत सुंदर है इतना सुनते ही उसकी जो चाह उत्पन्न हो जाती है वह साधारण लोभ से भिन्न नहीं कही जा सकती। प्रेम भी लोभ ही है, पर विशेषोन्मुख। वह मन और मन के बीच का लोभ है, हृदय और हृदय के बीच का संबंध है। उसके एक पक्ष में भी हृदय है और दूसरे पक्ष में भी। अतः सच्चा सजीव प्रेम प्रेमपात्र के हृदय को स्पर्श करने का प्रयत्न पहले करता है, शरीर पर अधिकार करने का प्रयत्न पीछे करता है, या नहीं भी करता है। सुंदरी स्त्री कोई बहुमूल्य पत्थर नहीं कि अच्छा सुना और लेने के लिए दौड़ पड़े। इस प्रकार का दौड़ना रूप-लोभ ही कहा जायगा, प्रेम नहीं।

बिना परिचय के प्रेम नहीं हो सकता। यह परिचय पूर्णतया तो साक्षात्कार से होता है; पर बहुत दिनों तक किसी के रूप, गुण, कर्म आदि का ब्योरा सुनते सुनते भी उसका ध्यान मन में जगह कर लेता है। किसी के रूप-गुण की प्रशंसा सुनते ही एकबारगी प्रेम उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक नहीं जान पड़ता। प्रेम दूसरे की आँखों नहीं देखता, अपनी आँखों देखता है। अतः राजा रत्नसेन तोते के मुँह से पद्मावती का अलौकिक रूप-वर्णन सुन जिस भाव की प्रेरणा से निकल पड़ता है वह पहले रूप-लोभ ही कहा जा सकता है। इस दृष्टि से देखने पर कवि जो उसके प्रयत्न को तप का स्वरूप देता हुआ आत्मत्याग और विरह-विह्वलता का विस्तृत वर्णन करता है वह एक नकल-सा मालूम होता है। प्रेम-लक्षण उसी समय दिखाई पड़ता है जब वह शिवमंदिर में पद्मावती की झलक देख बेसुध हो जाता है। इस प्रेम की पूर्णता उस समय स्फुट होती है जब पार्वती अप्सरा का रूप धारण करके उसके सामने आती है और वह उनके रूप की ओर ध्यान न देकर कहता है कि—

भलेहि रंग अछरी तोर राता। मोहि दुसरे सौं भाव न बाता॥

उक्त कथन से रूप-लोभ की व्यंजना नहीं होती, प्रेम की व्यंजना होती है। प्रेम दूसरा रूप चाहता ही नहीं, चाहे वह प्रेमपात्र के रूप से कितना ही बढ़कर हो। लैला कुछ बहुत खूबसूरत न थी, पर मजनूँ उसी पर मरता था। यही विशिष्ट और एकनिष्ठता प्रेम है। पर इस विशिष्टता के लिये

एक निर्दिष्ट भावना चाहिए जो एक तोते के वर्णन मात्र से नहीं प्राप्त हो सकती। भावना को निर्दिष्ट करने के लिये ही मनस्तत्त्व से अभिज्ञ कवि पूर्वराग के बीच चित्रदर्शन की योजना करते हैं। पर यह रूप-भावना पूर्ण रूप से निर्दिष्ट साक्षात्कार द्वारा ही होती है। शिवमंदिर में पद्मावती की एक झलक जब राजा ने देखी तभी उसकी भावना निर्दिष्ट हुई। मंदिर में उस साक्षात्कार के पूर्व राजा की भावना निर्दिष्ट नहीं कही जा सकती। मान लीजिए कि सिंहल के तट पर उतरते ही वही अप्सरा आकर कहती कि 'मैं ही पद्मावती हूँ, और तोता भी सकारता तो रत्नसेन उसे स्वीकार ही कर लेता। ऐसी अवस्था में उसके प्रेम का लक्ष्य निर्दिष्ट कैसे कहा जा सकता ? अतः रूप-वर्णन सुनते ही रत्नसेन के प्रेम का जो प्रबल और अदम्य स्वरूप दिखाया गया है वह प्राकृतिक व्यवहार की दृष्टि से उपयुक्त नहीं दिखाई पड़ता।

राजा रत्नसेन तोते के मुँह से पद्मावती का रूप-वर्णन सुन उसके लिये जोगी होकर निकल पड़ा और अलाउद्दीन ने राघव चेतन के मुँह से वैसा ही वर्णन सुन उसके लिये चित्तौर पर चढ़ाई कर दी। क्यों एक प्रेमी के रूप में दिखाई पड़ता है और दूसरा रूप लोभी-लंपट के रूप में ? अलाउद्दीन के विपक्ष में दो बातें ठहरती हैं— (१) पद्मावती का दूसरे की विवाहिता स्त्री होना और (२) अलाउद्दीन का उग्र प्रयत्न करना। ये ही दोनों प्रकार के अनौचित्य अलाउद्दीन की चाह को प्रेम का स्वरूप प्राप्त नहीं होने देते। यदि इस अनौचित्य का विचार छोड़ दें तो रूप-वर्णन सुनते ही तत्काल दोनों के हृदय में जो चाह उत्पन्न हुई वह एक दूसरे से भिन्न नहीं जान पड़ती।

रत्नसेन के पूर्वभाग के वर्णन में जो यह अस्वाभाविकता आई है इसका कारण है लौकिक प्रेम और ईश्वर-प्रेम दोनों को एक स्थान व्यंजित करने का प्रयत्न। शिष्य जिस प्रकार गुरु से परोक्ष ईश्वर के स्वरूप का कुछ आभास पाकर प्रेममग्न होता है उसी प्रकार रत्नसेन तोते के मुँह से पद्मिनी का रूप-वर्णन सुन बेसुध हो जाता है। ऐसी ही अलौकिकता पद्मिनी के पक्ष में भी कवि ने दिखाई है।

राजा रत्नसेन के सिंहल पहुँचते ही कवि ने पद्मावती की बेचैनी का वर्णन किया है। पद्मावती को अभी तक रत्नसेन के आने की कुछ भी खबर नहीं है। अतः यह व्याकुलता केवल काम की कही जा सकती है, वियोग की नहीं। बाह्य या आभ्यंतर संयोग के पीछे ही वियोग-दशा

संभव है। यद्यपि आचार्यों ने वियोग-दशा को काम-दशा ही कहा है पर दोनों में अंतर है। समागम के सामान्य अभाव का दुःख काम-वेदना है और विशेष व्यक्ति के समागम के अभाव का दुःख वियोग है। जायसी के वर्णन में दोनों का मिश्रण है। रत्नसेन का नाम तक सुनने के पहले वियोग की व्याकुलता कैसे हुई, इसका समाधान कवि के पास यदि कुछ है तो रत्नसेन के योग का अलक्ष्य प्रभाव—

पदमावति तेहि जोग-सजोगा। परा प्रेम-बस गहे वियोगा॥

साधनात्मक रहस्यवाद योग जिस प्रकार अज्ञात ईश्वर के प्रति होता है उसी प्रकार सूफ़ियों का प्रेम-योग भी अज्ञात के प्रति होता है। पर इस प्रकार के परोक्षवाद या योग के चमत्कार पर ध्यान जाने पर भी वर्णन के अनौचित्य की ओर बिना गए नहीं रह सकता। जब कोई व्यक्ति निर्दिष्ट ही नहीं तब कहाँ का प्रेम और कहाँ का वियोग? उस काम-दशा में पद्मावती को धाय समझा ही रही है कि हीरामन सूआ आकर राजा रत्नसेन के रूप-गुण का वर्णन करता है और पद्मावती उसकी प्रेम-व्यथा और तप को सुनकर दयार्द्र और पूर्वराग-युक्त होती है। पूर्वराग का आरंभ पद्मावती में यहीं से समझना चाहिए। अतः इसके पहले योग की दुहाई देकर भी वियोग का नाम लेना ठीक नहीं जँचता।

विवाह हो जाने के पीछे पद्मावती का प्रेम दो अवसरों पर अपना बल दिखाता है। एक तो उस समय जब राजा रत्नसेन के दिल्ली में बंदी होने का समाचार मिलता है और फिर उस समय जब राजा युद्ध में मारा जाता है। ये दोनों अवसर विपत्ति के हैं। साधारण दृष्टि से एक में आशा के लिये स्थान है, दूसरे में नहीं। पर सच्चे पहुँचे हुए प्रेमी के समान प्रथम स्थिति में तो पद्मावती संसार की ओर दृष्टि रखती हुई विह्वल और क्षुब्ध दिखाई पड़ती है; और दूसरी स्थिति में दूसरे लोक की ओर दृष्टि फेरे हुए पूर्ण आनंदमयी और प्रशांत। राजा के बंदी होने का समाचार पाने पर रानी के विरह-विह्वल हृदय में उद्योग और साहस का उदय होता है। वह गोरा और बादल के पास आप दौड़ी जाती है और रो-रोकर उनसे अपने पति के उद्धार की प्रार्थना करती है। राजा रत्नसेन के मरने पर रोना-धोना नहीं सुनाई देता। नागमती और पद्मावती दोनों शृंगार करके प्रिय से उस लोक में मिलने के लिये तैयार होती हैं। यह दृश्य हिंदू-स्त्री के जीवन-दीपक की अत्यंत उज्ज्वल और दिव्य प्रभा है जो निर्वाण के पूर्व दिखाई पड़ती है।

राजा के बंदी होने पर जिस प्रकार कवि ने पद्मावती के प्रेमप्रसूत साहस का दृश्य दिखाया है उसी प्रकार सतीत्व की दृढ़ता का भी। पर यह कहना पड़ता है कि कवि ने जो कसौटी तैयार की है वह इतने बड़े प्रेम के उपयुक्त नहीं हुई है। कुंभलनेर का राजा देवपाल रूप, गुण, ऐश्वर्य्य, पराक्रम, प्रतिष्ठा किसी में भी रत्नसेन की बराबरी का न था। अतः उसका दूती भेजकर पद्मावती को बहकाने का प्रयत्न गड़ा हुआ खंभा ढकेलने का बाल-प्रयत्न सा लगता है। इस घटना के सन्निवेश से पद्मावती के सतीत्व की उज्ज्वल कांति में और अधिक ओप चढ़ती नहीं दिखाई देती। यदि वह दूती दिल्ली के बादशाह की होती और वह दिल्लीश्वर की सारी शक्ति और विभूति का लोभ दिखाती तो अलबत यह घटना किसी हद तक इतने बड़े प्रेम की परीक्षा का पद प्राप्त कर सकती थी, क्योंकि देवलदेवी और कमलादेवी के विपरीत आचरण का दृष्टांत इतिहासविज्ञ जानते ही है।

पद्मावती के नव-प्रस्फुटित प्रेम के साथ साथ नागमती का गार्हस्थ्य-परिपुष्ट प्रेम भी अत्यंत मनोहर है। पद्मावती प्रेमिका के रूप में अधिक लक्षित होती है, पर नागमती पति-प्राणा हिंदू-पत्नी के मधुर रूप मे ही हमारे सामने आती है। उसे पहले-पहल हम रूप-गर्विता और प्रेम-गर्विता के रूप में देखते है। ये दोनों प्रकार के गर्व दांपत्य सुख के द्योतक है। राजा के निकल जाने के पीछे फिर हम उसे प्रोषित-पतिका के उस निर्मल स्वरूप मे देखते हैं जिसका भारतीय काव्य और संगीत मे प्रधान अधिकार रहा है, और है। यह देखकर अत्यंत दुःख होता है कि प्रेम का यह पुनीत भारतीय स्वरूप विदेशीय प्रभाव से—विशेषतः उर्दू शायरी के चलते गीतो से—हटता सा जा रहा है। यार, महबूब, सितम, तेग, खंजर, जख्म, आबले, खून और मवाद आदि का प्रचार बढ़ रहा है। जायसी के भावुक हृदय ने स्वकीया के पुनीत प्रेम के सौंदर्य्य को पहचाना। नागमती का वियोग हिंदी-साहित्य मे विप्रलंभ शृंगार का अत्यंत उत्कृष्ट निरूपण है।

पुरुषों के बहु-विवाह की प्रथा से उत्पन्न प्रेम-मार्ग की व्यावहारिक जटिलता को जिस दार्शनिक ढंग से कवि ने सुलझाया है वह ध्यान देने योग्य है। नागमती और पद्मावती को झगड़ते सुनकर दक्षिण नायक राजा रत्नसेन दोनो को समझाता है—

एक बार जेइ पिय मन बूझा। सो दुसरे सौं काहे क जूझा॥
ऐस ज्ञान मन जान न कोई। कबहूँ राति, कबहुँ दिन होई॥
धूप छाँह दूनौ एक रंगा। दूनौ मिले रहहिं एक संगा॥
जूझब छाँडहु, बूझहु दोऊ। सेव करहु, सेवा-फल होऊ॥

कवि के अनुसार जिस प्रकार करोड़ों मनुष्यों का उपास्य एक ईश्वर होता है उसी प्रकार कई स्त्रियों का उपास्य एक पुरुष हो सकता है। पुरुष की यह विशेषता उसकी सबलता और उच्च स्थिति की भावना के कारण है जो बहुत प्राचीन काल से बद्धमूल है। इस भावना के अनुसार पुरुष स्त्री के प्रेम का ही अधिकारी नहीं है, पूज्य भाव का भी अधिकारी है। ऊपर की चौपाइयों में पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम-संबंध की बात बचाकर सेव्य-सेवक भाव पर जोर दिया गया है। इसी प्रकार की युक्तियों से पुरानी रीतियों का समर्थन प्रायः किया जाता है। हिंदुओं और मुसलमानों दोनों में कई स्त्रियों से विवाह करने की रीति बराबर से है। अतः एक प्रेम-गाथा के भीतर भी जायसी ने उसका सन्निवेश करके बड़े-कौशल से उसके द्वारा मत-संबंधी विवाद-शांति का उपदेश निकाला है।

## वियोग पक्ष

जायसी का विरह-वर्णन कहीं कहीं अत्यंत अत्युक्तिपूर्ण होने पर भी मजाक की हद तक नहीं पहुँचने पाया है, उसमें गांभीर्य्य बना हुआ है। इनकी अत्युक्तियाँ बात की करामात नहीं जान पड़तीं, हृदय की अत्यंत तीव्र वेदना के शब्द-संकेत प्रतीत होती हैं। उनके अंतर्गत जिन पदार्थों का उल्लेख होता है वे हृदयस्थ ताप की अनुभूति का आभास देनेवाले होते हैं; बाहर बाहर से ताप की मात्रा नापनेवाले मानदंड मात्र नहीं। जाड़े के दिनों में भी पड़ोसियों तक पहुँच उन्हें बेचैन करनेवाले, शरीर पर रखे हुए कमल के पत्तों को भूनकर पापड़ बना डालनेवाले, बोतल का गुलाबजल सुखा डालनेवाले ताप से कम ताप जायसी का नहीं है पर उन्होंने उसके वेदनात्मक और दृश्य अंश पर जितनी दृष्टि रखी है उतनी उसकी बाहरी नाप-जोख पर नहीं जो प्रायः ऊहात्मक हुआ करती है। नाप-जोखवाली ऊहात्मक पद्धति का जायसी ने कुछ ही स्थानों पर प्रयोग किया है। जैसे, राजा की प्रेम-पत्रिका के इस वर्णन में—

आखर जरहिं, न काहू छुआ। तब दुख देखि चला लेइ सूआ।

अथवा नागमती के विरह-ताप की इस व्यंजना में—

जेहि पंखी के नियर होइ, कहै बिरह कै बात।
सोई पखी जाइ जरि, तरिवर होहिं निपात॥

इस ऊहात्मक पद्धति का दो-चार जगह व्यवहार चाहे जायसी ने किया हो पर अधिकतर विरह-ताप के वेदनात्मक स्वरूप की अत्यंत विशद व्यंजना ही जायसी की विशेषता है। इन्होंने अत्युक्ति की है और खूब की है पर वह अधिकांश संवेदना के स्वरूप में है, परिमाण-निर्देश के रूप मे नहीं है। संवेदना का यह स्वरूप उत्प्रेक्षा अलंकार द्वारा व्यक्त किया गया है। अत्युक्ति या अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा में सिद्ध और साध्य का भेद होता है। उत्प्रेक्षा में अध्यवसान साध्य (संभावना या संवेदना के रूप में) होता है और अत्युक्ति या अतिशयोक्ति मे सिद्ध। "धूप ऐसी है कि रखते रखते पानी खौल जाता है" यह वाक्य मात्रा का आधिक्य मात्र सूचित करता है। मात्रा के आधिक्य का निरूपण ऊहा द्वारा कुछ चक्कर के साथ भी हो सकता है, जैसा कि बिहारी ने प्रायः किया है। पर यह पद्धति काव्य के लिये सर्वत्र उपयुक्त नहीं। लाक्षणिक प्रयोगों को लेकर कुछ कवियों ने ऊहा का जो विस्तार किया है वह अस्वाभाविक, नीरस और भद्दा हो गया है। वह "कुल का दीपक है" इस बात को लेकर यदि कोई कहे कि "उसके घर तेल के खर्च की बिल्कुल बचत होती है" तो इस उक्ति मे कवित्व की कुछ भी सरसता न पाई जायगी। बिहारी का "पत्रा ही तिथि पाइए" वाला दोहा इसी प्रकार का है। अस्तु, "धूप ऐसी है कि रखते रखते पानी खौल जाता है" यह कथन ऊहा द्वारा मात्रा-निरूपण के रूप मे हुआ। यही बात यदि इस प्रकार कही जाय कि "धूप क्या है, मानो चारों ओर आग बरस रही है" तो यह संवेदना के रूप मे कहा जाना होगा। पहले कथन मे ताप की मात्रा का आधिक्य व्यंग्य है, दूसरे मे उस ताप से उत्पन्न हृदय की वेदना। एक मे वस्तु व्यंग्य है, दूसरे में संवेदना। पहला वाक्य बाह्य वृत्त का व्यंजक है और दूसरा आभ्यंतर अनुभूति का। मतलब यह कि जायसी ने यह कम कहा है कि विरह-ताप इतनी मात्रा का है, यह अधिक कहा है कि ताप हृदय मे ऐसा जान पड़ता है; जैसे—

(क) जानहुँ अगिनि के उठहिं पहारा। औ सब लागहि अँग अँगारा॥

(ख) जरत बजागिनि करु, पिउ, छाहाँ। आइ बुझाउ अँगारन्ह माहाँ॥
लागिउँ जरै, जरै जस भारू। फिरि फिरि भूँजेसि, तजिउँ न बारू॥

"फिरि फिरि भूँजेसि तजिउँ न बारू" । भाड़ की तपती वालू के बीच पड़ा हुआ अनाज का दाना जैसे बार बार भूने जाने पर उछल उछल पड़ता है पर उस वालू से बाहर नहीं जाता, उसी प्रकार इस प्रेमजन्य संताप के अतिरेक से मेरा जी हट हटकर भी उस संताप के सहने की बुरी लत के कारण उसी की ओर प्रवृत्त रहता है। मतलब यह कि वियुक्त प्रिय का ध्यान आते ही चित ताप से विह्वल हो जाता है फिर भी वह बार बार उसी का ध्यान करता रहता है। प्रेम-दशा चाहे घोर यंत्रणामय हो जाय पर हृदय उस दशा से अलग होना नहीं चाहता । यहाँ इसी विलक्षण स्थिति का चित्रण है । यहाँ हम कवि को वेदना के स्वरूप-विश्लेषण मे प्रवृत्त पाते है, ताप की मात्रा नापने में नहीं। मात्रा की नाप तो बाहर बाहर से भी हो सकती है, पर प्रेमवेदना के आभ्यंतर स्वरूप की पहचान प्रेमवेदनापूर्ण हृदय में ही हो सकती है । जायसी का ऐसा ही हृदय था। विरह-ताप का वर्णन कवि ने अधिकतर सादृश्य-संबंध-मूलक गौणी लक्षणा द्वारा किया है।

आधिक्य या न्यूनता सूचित करने के लिये ऊहात्मक या वस्तु-व्यंजनात्मक शैली का विधान कवियों मे तीन प्रकार का देखा जाता है—

(१) ऊहा की आधार-भूत वस्तु असत्य अर्थात् कवि-प्रौढ़ोक्ति-सिद्ध है।

(२) ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप सत्य या स्वतः संभवी है और किसी प्रकार की कल्पना नहीं की गई है।

(४) ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप तो सत्य है पर उसके हेतु की कल्पना की गई।

इनमें से प्रथम प्रकार के उदाहरण वे है जिन्हें विहारी ने विरह-ताप के वर्णन मे दिए है—जैसे, पड़ोसियो को जाड़े की रात मे भी बेचैन करने वाला, या बोतल मे भरे गुलाबजल को सुखा डालनेवाला ताप; दूसरे प्रकार का उदाहरण एक स्थल पर जायसी ने बहुत अच्छा दिया है, पर वह विरह-ताप के वर्णन में नहीं है, काल की दीर्घता के वर्णन में है। आठ वर्ष तक अलाउद्दीन चित्तौरगढ़ घेरे रहा। इस बात को एक बार तो कवि ने साधारण इतिवृत्त के रूप में कहा, पर उससे वह गोचर प्रत्यक्षीकरण न हो सका जिसका प्रयत्न काव्य करता है। आठ वर्ष के दीर्घत्व के अनुमान के लिये फिर उसने यह दृश्य आधार सामने रखा—

आइ साह अमराव जो लाए। फरे, झरे पै गढ नहि पाए ॥

सच पूछिए तो वस्तु-व्यंजनात्मक या ऊहात्मक पद्धति का इसी रूप में अवलंबन सबसे अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। इसमें अनुमान का आधार सत्य या स्वतः संभवी है। जायसी अनुमान या ऊहा के आधार के लिये ऐसी वस्तु सामने लाए हैं जिसका स्वरूप प्राकृतिक है और जिससे सामान्यतः सब लोग परिचित होते हैं। इसी प्रकार एक गीत में एक वियोगिनी नायिका कहती है कि "मेरा प्रिय दरवाजे पर जो नीम का पेड़ लगा गया था वह बढ़कर अब फूल रहा है, पर प्रिय न लौटा"। आधार के सत्य और प्राकृतिक स्वरूप के कारण इस उक्ति से कितना भोलापन बरस रहा है!

विरह-ताप की मात्रा का आधिक्य सूचित करने के लिये जहाँ कहीं जायसी ने ऊहात्मक या वस्तु-व्यंजनात्मक शैली का अवलंबन किया है वहाँ अधिकतर तीसरे प्रकार का विधान ही देखने में आता है जिसमें ऊहा की आधारभूत वस्तु का स्वरूप तो सत्य और स्वतः संभवी होता है पर उसके हेतु की कुछ और ही कल्पना की जाती है। इस प्रकार का विधान भी प्रथम प्रकार के विधान से अधिक उपयुक्त होता है। इसमें हेतूत्प्रेक्षा का सहारा लिया जाता है जिससे 'अप्रस्तुत' वस्तुओं का गृहीत दृश्य वास्तविक होता है, केवल उसका हेतु कल्पित होता है। हेतु परोक्ष हुआ करता है इससे उसकी अतथ्यता सामने आकर प्रतीति में बाधा डालती नहीं जान पड़ती। इस युक्ति से कवि विरह-ताप के प्रभाव की व्यापकता को बढ़ाता बढ़ाता सृष्टि भर में दिखा देता है। एक उदाहरण काफी होगा—

अस परजरा विरह कर गठा। मेघ साम भए धूम जो उठा॥
दाढ़ा राहु, केतु गा दाधा। सूरुज जरा, चाँद जरि आधा॥
ओ सब नखत तराई जरही। टूटहिं लूक, धरति मँह परहीं॥
जरै सो धरती ठावहि ठाऊँ। दहकि पलास जरै तेहि दाऊँ॥

इन चौपाइयों में मेघों का श्याम होना, राहु-केतु का काला (झुलसा सा) होना, सूर्य्य का तपना, चंद्रमा की कला का खंडित होना, पलास के फूलों का लाल (दहकते अंगारे सा) होना आदि सत्य है। वे विरह-ताप के कारण ऐसे हैं केवल यह बात कल्पित है।

ताप के अतिरिक्त विरह के और और अंगों का भी विन्यास जायसी ने इसी हृदय-हारिणी और व्यापकत्व-विधायिनी पद्धति पर बाह्य प्रकृति को मूल आभ्यंतर जगत् का प्रतिबिंब सा दिखाते हुए किया है। काम हेतूत्प्रेक्षा से लिया गया है। प्रेम-योगी रत्नसेन के विरह-व्यथित हृदय

का भाव हम सूर्य, चंद्र, वन के पेड़, पक्षी, पत्थर, चट्टान सबमें देखते चलते है—

रोवँ रोवँ वै बान जो फूटे। सूतहि सूत रुहिर मुख छूटे॥
नैनहिं चली रकत कै धारा। कथा भीजि भएउ रतनारा॥
सूरुज बूड़ि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता॥
भा बसंत, राती बनसपती। औ राते सब जोगी जती।
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते तहँ पंखि पखेरू॥
राती सती, अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया॥
ईंगुर भा पहार जो भीजा। पै तुम्हार नहि रोवँ पसीजा॥

इसी प्रकार नागमती के आँसुओं से सारी सृष्टि भीगी हुई जान पड़ती है—

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत-आँसु घुँघची बन बोई॥
जहँ जहँ ठाढि होइ बनबासी। तहँ तहँ होइ घुँघचि कै रासी॥
बूँद बूँद महँ जानहु जीऊ। गुंजा गूँजि करै, "पिउ पीऊ॥"
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू-बूड़ि उठे होइ राते॥
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ॥

विरह-वर्णन में भक्तवर सूरदासजी ने भी गोपियों के हृदय के रंग में बाह्य प्रकृति को रँगा है। एक स्थान पर तो गोपियों ने उन उन पदार्थों को कोसा है जो उस रंग से कोरे दिखाई पड़े है—

मधुबन! तुम कत रहत हरे?
विरह वियोग श्यामसुंदर के ठाढ़े क्यो न जरे?
कौन काज ठाढ़े रहे बन मैं, काहे न उकठि परे?

नागमती का विरह-वर्णन हिंदी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है। नागमती उपवनों के पेड़ो के नीचे रात रात भर रोती फिरती है। इस दशा मे पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव जो कुछ सामने आता है उसे वह अपना दुखड़ा सुनाती है। वह पुण्य-दशा धन्य है जिसमे ये सब अपने सगे लगने लगते है और यह जान पड़ने लगता है कि इन्हें दुख सुनाने से भी जी हलका होगा। सब जीवों का शिरोमणि मनुष्य और मनुष्यों का अधीश्वर राजा! उसकी पटरानी, जो कभी बड़े-बड़े राजाओं और सरदारों की बातो की ओर भी ध्यान न देती थी, वह पक्षियों से अपने हृदय की वेदना कह रही है, उनके सामने अपना हृदय खोल रही है। हृदय की इस उदार और व्यापक दशा का कवियो ने केवल प्रेम-दशा के भीतर ही

वर्णन किया है, यह बात ध्यान देने योग्य है। मारने के लिये शत्रु का पीछा करता हुआ क्रोधातुर मनुष्य पेड़ों और पक्षियों से यह पूछता हुआ कहीं नहीं कहा गया है कि "भाई! किधर गया?"। वाल्मीकि, कालिदास आदि से लेकर जायसी, सूर, तुलसी आदि भाषा-कवियों तक सबने इस दशा का सन्निवेश विप्रलंभ (या कहीं कहीं करुण) में ही किया है। वाल्मीकि के राम सीता-हरण होने पर वन वन पूछते फिरते हैं—

"हे कदंब! तुम्हारे फूलों से अधिक प्रीति रखनेवाली मेरी प्रिया को यदि जानते हो तो बताओ। हे बिल्व-वृक्ष! यदि तुमने उस पीत-वस्त्र-धारिणी को देखा हो तो बताओ। हे मृग! उस मृगनयनी को तुम जानते हो?" इसी प्रकार तुलसी के राम भी वन के पशु-पक्षियों से पूछते हैं—

हे खग, मृग, हे मधुकरश्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी?

कालिदास का यक्ष भी चेतनाचेतन-भेद इसी प्रेमदशा के ही भीतर भूला है। इससे यह सिद्ध है कि कवि-परंपरा के बीच यह एक मान्य परिपाटी है कि इस प्रकार की दशा का वर्णन प्रेम-दशा के भीतर ही हो।

इस संबंध में मामूली तौर पर तो इतना ही कहना काफी समझा जाता है कि 'उन्माद' की व्यंजना के लिये इस प्रकार का आचरण दिखाया जाता है। 'उन्माद' ही सही, पर एक खास दर्जे का है। इसका आविर्भाव प्रेम-ताप से पिघलकर फैले हुए हृदय में ही होता है। संबंध का मूल प्रेम है, अतः प्रेम-दशा के भीतर ही मनुष्य का हृदय उस संबंध का आभास पाता है जो पशु, पक्षी, द्रुम, लता आदि के साथ अनादि काल से चला आ रहा है।

नागमती उपवनों में रोती फिरती है। उसके विलाप से घोंसलों में बैठे हुए पक्षियों को नींद हराम हो गई है—

फिरि फिरि रोव, कोइ नहिं डोला। आधी राति बिहंगम बोला॥
तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी॥

और कवियों ने पशु-पक्षियों को संबोधन भर करने का उल्लेख करके बात और आगे नहीं बढ़ाई है जिससे ऊपर से देखनेवालों का ध्यान 'उन्माद' की दशा ही तक रह जाता है। पर जायसी ने जिस प्रकार मनुष्य के हृदय में पशु-पक्षियों से सहानुभूति प्राप्त करने की संभावना की है, उसी प्रकार पक्षियों के हृदय में सहानुभूति के संचार की भी। उन्होंने सामान्य हृदय-तत्त्व को सृष्टि-व्यापिनी भावना द्वारा मनुष्य और पशु-पक्षी सबको एक जीवन-सूत्र में बद्ध देखा है। राम के प्रश्न का खग,

मृग और मधुकर कुछ जवाब नहीं देते हैं। राजा पुरूरवा कोकिल, हंस इत्यादि को पुकारता ही फिरता है, पर कोई सहानुभूति प्रकट करता नहीं दिखाई पड़ता ( विक्रमोर्वशी अंक ४ )। पर नागमती की दशा पर एक पक्षी को दया आती है। वह उसके दुःख का कारण पूछता है। नागमती उस पक्षी से कहती है—

चारिउ चक्र उजार भए, कोई न सँदेसा टेक।
कहौ विरह-दुख आपन, बैठि सुनहु देँड एक॥

इसपर वह पक्षी सँदेसा ले जाने को तैयार हो जाता है।

पद्मावती से कहने के लिये नागमती ने जो सँदेसा कहा है वह अत्यंत मर्मस्पर्शी है। उसमें मान, गर्व आदि से रहित, सुख-भोग की लालसा से अलग, अत्यंत नम्र, शीतल और विशुद्ध प्रेम की झलक पाई जाती है—

पदमावति सौ कहेहु, विहंगम। कंत लोभाइ रही करि सगम॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा। मो कहँ हिए दुद दुख पूरा॥
हमहुँ बियाही सँग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ, जानु पर-जीऊ॥
मोहि भोग सौ काज न, बारी। सौह दिस्टि कै चाहनहारी॥

मनुष्य के आश्रित, मनुष्य के पाले हुए, पेड़-पौधे किस प्रकार मनुष्य के सुख से सुखी और दुःख से दुखी दिखाई देते हैं, यह दृश्य बड़े कौशल और बड़ी सहृदयता से जायसी ने दिखाया है। नागमती की विरह-दशा में उसके बाग-बगीचों से उदासी बरस रही थी। पेड़ पौधे सब मुरझाए पड़े थे। उनकी सुध कौन लेता है? पर राजा रत्नसेन के चित्तौर लौटते ही—

पलुटी नागमती कै बारी। सोने फूल फूलि फुलवारी॥
जावत पखि रहे सब देहे। सबै पखि बोले गहगहे॥

जब पेड़ पौधे सूख रहे थे तब पक्षी भी आश्रय न पाकर ताप से झुलस रहे थे। इस प्रकार नागमती की वियोग-दशा का विस्तार केवल मनुष्य जाति तक ही नहीं, पशु-पक्षियों और पेड़-पौधों तक दिखाई पड़ता था। कालिदास ने पाले हुए मृग और पौधों के प्रति शकुंतला का स्नेह दिखाकर इसी व्यापक और विशद भाव को व्यंजना की है।

विप्रलंभ शृंगार ही 'पद्मावत' में प्रधान है। विरह-दशा के वर्णन में जहाँ कवि ने भारतीय पद्धति का अनुसरण किया है, वहाँ कोई अरुचिकारक वीभत्स दृश्य नहीं आया है। कृशता, ताप, वेदना आदि के वर्णन में भी उन्होंने शृंगार के उपयुक्त वस्तु सामने रखी है; केवल

उसके स्वरूप में कुछ अंतर दिखा दिया है। जो पद्मिनी स्वभावतः पद्मिनी के समान विकसित रहा करती थी वह सूखकर मुरझाई हुई लगती है—

केवल सूख, पखुरी बेहरानी। गलि गलि कै मिलि छार हेरानी॥

इस रूप में प्रदर्शित व्यक्ति के प्रति सहानुभूति और दया का पूरा अवसर रहता है। पाठक उसकी दशा व्यंजित करनेवाली वस्तु की ओर कुछ देर दृष्टि गड़ाकर देख सकते हैं। मुरझाया फूल भी फूल ही है। अतीत सौंदर्य्य के स्मरण से भाव और उद्दीप्त होता है। पर उसके स्थान पर यदि चीरकर हृदय का खून, नसें और हड्डियाँ आदि दिखाई जायँ तो दया होते हुए भी इन वस्तुओं की ओर दृष्टि जमाते न बनेगा।

विरह-दशा के भीतर "निरवलंबता" की अनुभूति रह रहकर विरही को होती है। देखिए कैसा परिचित और साधारण प्राकृतिक व्यापार सामने रखकर कवि ने इस 'निरवलंबता' का गोचर प्रत्यक्षीकरण किया है—

आवा पवन बिछोह कर पात परा बेकरार।
तरिवर तजा जो चूरि कै लागै केहि के डार॥

'लागै केहि के डार' महावरा भी बहुत अच्छा आया है।

'पदमावत' में यद्यपि हिंदू-जीवन के परिचायक भावों की ही प्रधानता है, पर बीच बीच में फारसी-साहित्य द्वारा पोषित भावों के भी छींटे कहीं कहीं मिलते हैं। विदेशीय प्रभाव के कारण वियोग-दशा के वर्णन में कहीं कहीं बीभत्स चित्र सामने आ जाते हैं; जैसे "कबावे सीख" वाला यह भाव—

विरह-सरागन्हि भूँजै माँसू। गिरि गिरि परै रकत कै आँसू।
कँटि कटि माँसु सराग पिरोवा। रकत कै आँसु माँसु सब रोवा॥
खिन एक बार माँसु अस भूँजा। खिनहिं चबाइ सिव अस गूँजा।

वियोग में इस प्रकार के बीभत्स दृश्य का समावेश जायसी ने जो किया है वह तो किया ही है, संयोग के प्रसंग में भी वे एक स्थान पर ऐसा ही बीभत्स चित्र सामने लाए हैं। बादल जब अपनी नवागता वधू की ओर से दृष्टि फेर लेता है, तब वह सोचती है कि क्या मेरे कटाक्ष तो उसके हृदय को बेधकर पीठ की ओर नहीं जा निकले हैं। यदि ऐसा है तो नूँबी लगाकर मैं उसे खींच लूँ, और जब वह पीड़ा से चौंककर मुझे पकड़े तो गहरे रस से उसे धो डालूँ—

मकु पिउ दिस्टि समानेउ सालू। हुलसा पीठि कढ़ावौं सालू॥
कुच नूँबी अब पीठि गडोवौं। गहै जो हूकि, गाढ रस धोवौं॥

कटाक्ष या नेत्रों को 'अनियारे' 'नुकीले' तक कह देना तो ठीक है, पर ऊहात्मक या वस्तु-व्यंजनात्मक पद्धति पर इस कल्पना को और आगे बढ़ाकर शरीर पर सचमुच घाव आदि दिखाने लगना काव्य की सीमा के बाहर जाना है, जैसा कि एक कविजी ने किया है—

काजर दे नहिं, एरी सुहागिनि ! आँगुरी तेरी कटैगी कटाछन ।

यदि कटाक्ष से उँगली कटने का डर है, तब तो तरकारी चीरने या फल काटने के लिये छुरी, हँसिया आदि की कोई जरूरत न होनी चाहिए। कटाक्ष मन में चुभते हैं, न कि शरीर पर प्रत्यक्ष घाव करते हैं।

विरह-जन्य कृशता के वर्णन में भी जायसी ने कवि-प्रथानुसार पूरी अत्युक्ति की है, पर उस अत्युक्ति में भी गंभीरता बनी हुई है, वह खेल वाड़ या मजाक नहीं होने पाई है। बिहारी की नायिका इतनी क्षीण हो हो गई है कि जब साँस खींचती है तब उसके झोंके से चार कदम पीछे हट जाती है और जब साँस निकालती है तब उसके साथ चार कदम आगे बढ़ जाती है। घड़ी के पेंडुलम की सी दशा उसकी रहती है। इसी प्रकार उर्दू के एक शायर साहब ने आशिक को जूँ या खटमल का बच्चा बना डाला—

इतहाए लागरी से जब नजर आया न मैं।
हँस के वो कहने लगे, बिस्तर को झाड़ा चाहिए।।

पर जायसी का यह वर्णन सुन हृदय द्रवीभूत होता है, हँसी नहीं आती—

दहि कोइला भइ कंत-सनेहा। तोला माँसु रही नहि देहा।
रकत न रहा, बिरह तन जरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा।।

---

हाड भए सब किंगरी, नसै भई सब ताँति।
रोवँ रोवँ ते धुनि उठै, कहौं बिथा केहि भाँति।।

इसी नागमती के विरह-वर्णन के अंतर्गत वह प्रसिद्ध बारहमासा है जिसमें वेदना का अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप, हिंदू दांपत्य-जीवन का अत्यंत मर्मस्पर्शी माधुर्य्य, अपने चारो ओर की प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों के साथ विशुद्ध भारतीय हृदय की साहचर्य्यभावना तथा विषय के अनुरूप भाषा का अत्यंत स्निग्ध, सरल, मृदुल और अकृत्रिम प्रवाह देखने योग्य है। पर इन कुछ विशेषताओं की ओर ध्यान जाने पर भी इसके सौंदर्य का बहुत कुछ हेतु अनिर्वचनीय रह जाता है। इस बारह-

मासे मे वर्ष के वारह महीनों का वर्णन विप्रलंभ शृंगार के उद्दीपन की दृष्टि से है जिसमे आनंदप्रद वस्तुओं का दुःखप्रद होना दिखाया जाता है, जैसा कि मंडन कवि ने कहा है—

जेइ जेइ सुखद, दुखद अब तेइ तेइ कवि मंडन बिछुरत जदुपत्ती।

प्रेम में सुख और दुःख दोनो की अनुभूति की मात्रा जिस प्रकार वढ़ जाती है उसी प्रकार अनुभूति के विषयो का विस्तार भी। संयोग की अवस्था में जो प्रेम सृष्टि की सव वस्तुओं से आनंद का संग्रह करता है वही वियोग की दशा में सव वस्तुओं से दुःख का संग्रह करने लगता है। इसी दुःखद रूप में प्रत्येक मास की उन सामान्य प्राकृतिक वस्तुओ और व्यापारों का वर्णन जायसी ने किया है जिनके साहचर्य्य का अनुभव मनुष्य मात्र—राजा से लेकर रंक तक—करते है। अतः इस वारहमासे में मुख्यतः दो वाते देखने की है—

( १ ) प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारो का दिग्दर्शन।

( २ ) दुःख के नाना रूपो और कारणों की उद्भावना।

प्रथम के संवंध में यह जान लेना चाहिए कि प्राचीन संस्कृत कवियों का सा संश्लिष्ट विराट चित्रण उद्दीपन की दृष्टि से किए हुए ऋतु-वर्णन में नहीं हुआ करता ; केवल वस्तुओं और व्यापारों की अलग अलग झलक भर दिखाकर प्रेमी के हृदय की अवस्था की व्यंजना हुआ करती है। परिचित प्राकृतिक दृश्यो को साहचर्य्य द्वारा और कवियों की वाणी द्वारा जो मर्मस्पर्शी प्रभाव प्राप्त है उसका अनुभव उनकी ओर संकेत करने मात्र से भी सहृदयों को हो जाता है। इस प्रकार वहुत ही सुंदर संकेत—वहुत ही मनोहर झलक—इस वारहमासे में हम पाते है। कुछ उदाहरण लीजिए—

चढ़ा असाढ, गगन घन गाजा। साजा बिरह, दुंद दल बाजा॥
धूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग-पाँति देखाए॥
खडग बिजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद-बान बरसहि चहुँ ओरा॥

---

बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ गाउर भा फिरै भँभीरी॥
जग जल बूड जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी॥
जेठ जरै जग चलै लुवारा। उठहिं बवडर परहि अँगारा॥
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ, मरौं दुख बाँधी॥

अपनी भावुकता का वड़ा भारी परिचय जायसी ने इस वात में दिया

है कि रानी नागमती विरह-दशा में अपना रानीपन बिल्कुल भूल जाती है और अपने को केवल साधारण स्त्री के रूप में देखती है। इसी सामान्य स्वाभाविक वृत्ति के बल पर उसके विरह-वाक्य छोटे बड़े सबके हृदय को समान रूप से स्पर्श करते हैं। यदि कनक-पर्यंक, मखमली सेज, रत्न-जटित अलंकार, संगमर्मर के महल, खसखाने इत्यादि की बातें होती तो वे जनता के एक बड़े भाग के अनुभव से कुछ दूर की होती। पर जायसी ने स्त्री-जाति की या कम से कम हिंदू गृहिणी-मात्र की सामान्य स्थिति के भीतर विप्रलंभ शृंगार के अत्यंत समुज्ज्वल रूप का विकास दिखाया है। देखिए, चौमासे में स्वामी के न रहने से घर की जो दशा होती है वह किस प्रकार गृहिणी के विरह का उद्दीपन करती है—

पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा॥

इसी प्रकार शरीर का रूपक देकर बरसात आने पर साधारण गृहस्थों की चिंता और आयोजना की झलक दिखाई गई है—

तपै लागि अब जेठ असाढी। मोहि पिउ बिनु छाजनि भइ गाढ़ी॥
तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी॥
बध नाहिं औ कंध न कोई। बात न आव, कहौं का रोई॥
साँठि नाठि, जग बात को पूछा? बिन जिउ फिरै मूँज-तनु छूछा॥
भई दुहेली टेक-बिहूनी। थाँभ नाहि, उठि सकै न थूनी॥
बरसै मेह चुवहि नैनाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा॥
कौरौ कहाँ, ठाट नव साजा। तुम बिनु कत न छाजनि छाजा॥

यह आशिक-माशूकों का निर्लज्ज प्रलाप नहीं है; यह हिन्दू-गृहिणी की विरहवाणी है। इसका सात्त्विक मर्यादापूर्ण माधुर्य्य परम मनोहर है।

यद्यपि इस बारहमासे में प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों की रूढ़ि के अनुसार अलग अलग झलक भर दिखाई गई है, उनका संश्लिष्ट चित्रण नहीं है; पर एक आध जगह कवि का अपना निरीक्षण भी बहुत सूक्ष्म और सुंदर है जिसका उल्लेख वस्तु-वर्णन के अंतर्गत किया जायगा।

अब दुःख के नाना रूपों और कारणों की उद्भावना लीजिए। जायसी के विरहोद्गार अत्यंत मर्मस्पर्शी हैं। जायसी को हम विप्रलंभ शृंगार का प्रधान कवि कह सकते हैं। जो वेदना, जो कोमलता, जो सरलता और जो गंभीरता इनके वचनों में है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। नागमती सब जीव-जंतुओं पशु-पक्षियों से सहानुभूति की भावना करती हुई कहती है—

पिउ सौ कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा ! हे काग !
सो धन बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग ।

इस सहानुभूति की संभावना रानी के हृदय मे होती कैसे है ? यह समझकर होती है कि भौंरा और कौवा दोनो उसी विरहाग्नि के धुएँ से काले हो गए है जिसमे मै जल रही हूँ । सम-दुःख-भोगियो मे परस्पर सहानुभूति का उदय अत्यंत स्वाभाविक है । 'सँदेसड़ा' शब्द मे स्वार्थे 'ड़ा' का प्रयोग भी बहुत ही उपयुक्त है । ऐसा शब्द उस दशा में मुँह से निकलता है जब हृदय प्रेम, माधुर्य, अल्पता, तुच्छता आदि मे से कोई भाव लिए हुए होता है । "हे भौंरा ! हे काग !" से एक एक को अलग अलग संबोधन करना सूचित होता है । आवेग की दशा मे यही उचित है । "हे भौंरा औ काग" कहने मे यह बात न होती ।

दुःख और आह्लाद की दशा मे एक बड़ा भारी भेद है । जब हृदय दुःख मे मग्न रहता है तब सुखद और दुःखद दोनो प्रकार की वस्तुओं से दुःख का संग्रह करता है । पर आनंद की दशा का पोषण केवल सामान्य या आनंददायक वस्तुओ से ही होता है, दुःखप्रद वस्तुओ से नही । विरह-दशा दुःख-दशा है । इसमें कष्टदायक वस्तुएँ तो और भी कष्टदायक हो ही जाती हैं, जैसे—

( क ) काँपै हिया जनावै सीऊ । तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ ॥
पहल पहल तन रूई झाँपै । हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै ॥
( ख ) चारिहु पवन झकोरै आगी । लंका दाहि पलंका लागी ॥
उठै आगि औ आवै आँधी । नैन न सूझ, मरौं दुख-बाँधी ॥

सुखदायक वस्तुएँ भी दुःख को बढ़ाती है, जैसे—

कातिक सरद-चंद उजियारी । जग सीतल हौं बिरहै जारी ॥
चौदह करा चाँद परगासा । जनहुँ जरै सब धरति अकासा ॥
तन, मन, सेज करै अगिदाहू । सब कहँ चंद भयहु मोहिं राहू ॥

कहीं संयोग-सुख या आनंदोत्सव देखकर अपने पक्ष मे उसके अभाव की भावना से विरह की आग और भी भड़कती है—

( क ) अबहूँ निठुर आउ एहि बारा । परब देवारी होइ संसारा ॥
सखि झूमुक गावै अँग मोरी । हौं झुरावँ, बिछुरी मोरि जोरी ॥
( ख ) करहिं बनसपति हिए हुलासू । मो कह भा जग दून उदासू ॥
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी । मोहि तन लाइ दीन्हि जस होरी ॥

नागमती देखती है कि बहुतों के बिछुड़े हुए प्रिय मित्र आ रहे है पर

मेरे प्रिय नहीं आ रहे है। इस वैषम्य की भावना उसे और भी व्याकुल करती है। किसी वस्तु के अभाव से दुखी मनुष्य के हृदय की यह एक अत्यंत स्वाभाविक वृत्ति है। पपीहे का प्रिय पयोधर आ गया, सीप के मुँह मे स्वाति की बूँद पड़ गई, पर नागमती का प्रिय न आया।

चित्रा मित्र मीन कर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा॥
स्वाति बूँद चातक मुख परे। समुद सीप मोती सब भरे॥
सरवर सँवरि हस चलि आए। सारस कुरलहिं खँजन देखाए॥

विरह का दुःख ऐसा नही कि चारों ओर जो वस्तुएँ दिखाई पड़ती हैं उनसे कुछ जी बहले। उनसे तो और भी अपनी दशा की ओर विरही का ध्यान जाता है, और भी उस दशा का दुःसह स्वरूप स्पष्ट होता है—चाहे वे उसकी दुःख-दशा से भिन्न दशा में दिखाई पड़े, चाहे कुछ सादृश्य लिए हुए। भिन्न भाव मे दिखाई पड़नेवाली वस्तुओं के नमूने तो ऊपर के उदाहरणो मे आ गए है। अब भिन्न-भिन्न ऋतुओं की नाना वस्तुओं और व्यापारो को विरही लोग किस प्रकार सादृश्य-भावना द्वारा अपनी दशा की व्यंजना का सुलभ साधन बनाया करते है, यह भी देखिए—

बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी॥
पुरवा लाग, भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस झूरी॥

---

सखिन्ह रचा पिउ सग हिंडोला। हरियरि भूमि, कुकुभी चोला॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देइ झकझोरा॥

---

तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥

विरहिणी की इस सादृश्य-भावना का वर्णन कवि-परंपरा-सिद्ध है। सूरदास का 'निसि-दिन बरसत नैन हमारे' यह पद प्रसिद्ध है। और कवियों ने भी ऋतु-सुलभ वस्तुओं और व्यापारों के साथ विरहिणी के तन और मन की दशा का सादृश्य-वर्णन किया है। यह सादृश्य-कथन अत्यंत स्वाभाविक होता है, क्योंकि इसमें उपमान ऊहा द्वारा सोचकर निकाला हुआ नहीं होता बल्कि सामने प्रस्तुत रहता है, और प्रस्तुत रहकर उपमेय की ओर ध्यान ले जाता है। वैशाख में विरहिणी एक ओर सूखते तालों की दरारों को देखती है, दूसरी ओर विदीर्ण होते हुए अपने हृदय को। बरसात में वह एक ओर तो टपकती हुई ओलती देखती है, दूसरी ओर अपने आँसुओं की धारा। एक ओर सूखे हुए 'आक जवास' को देखती

है, दूसरी ओर अपने शरीर को। शिशिर में एक ओर सूखकर झड़े हुए पीले पत्तों को देखती है, दूसरी ओर अपनी पीली पड़ी देह को। अतः उक्त उपमाएँ 'दूर की सूझ' नहीं हैं। उनमें सादृश्य बहुत सोचा विचारा हुआ नहीं है, उसका उदय विरह-विह्वल अंतःकरण में बिना प्रयास हुआ है। दो उपस्थित वस्तुओं में सादृश्य की ऐसी स्वाभाविक भावना संस्कृत-कवियों ने बहुत अच्छी की है। कालिदास का यह श्लोक ही लीजिए—

स पाटलाया गवि तस्थिवांसं धनुर्धरः केसरिणं ददर्श।
अधित्यकायामिव धातुमय्यां लोध्रद्रुमं सानुमतः प्रफुल्लम्॥ (२—२६)

इस बारहमासे में हृदय के वेग की व्यंजना अत्यंत स्वाभाविक रीति से होने पर भी भाव अत्यंत उत्कर्ष-दशा को पहुँचे हुए दिखाए गए हैं। देखिए, अभिलाष का यहाँ कैसा उत्कर्ष है—

राति दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौं निहोर कंत अब तोरे॥
यह तन जारौं छार कै कहौं कि पवन उडाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँ पाव॥

---

## संभोग-शृंगार

यद्यपि 'पद्मावत' में वियोग-शृंगार ही प्रधान है, पर संयोग-शृंगार का भी पूरा वर्णन हुआ है। जिस प्रकार 'बारहमासा' विप्रलंभ के उद्दीपन की दृष्टि से लिखा गया है, उसी प्रकार षट्-ऋतु-वर्णन संभोग-शृंगार के उद्दीपन की दृष्टि से। राजा रत्नसेन के साथ संयोग होने पर पद्मावती को पावस की शोभा का कैसा अनुभव हो रहा है—

पदमावति चाहत ऋतु पाई। गगन सोहावन भूमि सोहाई॥
चमक बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना॥
रँगराती पीतम सँग जागी। गरजे गगन चौकि गर लागी॥
सीतल बूँद ऊँच चौपारा। हरियर सब देखाइ संसारा॥

नागमती को जो बूँदें विरह-दशा में बाण की तरह लगती हैं, पद्मावती को संयोग-दशा में वे ही बूँदें कौंधे की चमक में सोने की सी लगती हैं। मनुष्य के आनंद या दुःख के रंग में रँगी हुई प्रकृति को ही जायसी ने देखा है, स्वतंत्र रूप में नहीं। यह षट्-ऋतु-वर्णन रूढ़ि के अनुसार ही है। इसमें आनंदोत्सव और सुख-संभोग आदि का कवि-प्रथानुसार वर्णन है।

विवाह के उपरांत पद्मावती और रत्नसेन के समागम का वर्णन कवि ने विस्तार के साथ किया है। ऐसे अवसर के उपयुक्त पहले कवि ने कुछ विनोद का विधान किया है। सखियाँ पद्मावती को छिपा देती हैं और राजा उससे मिलने के लिये आतुर होता है। पर इस विधान में जायसी को सफलता नहीं हुई है। विनोद का कुछ भाव उत्पन्न होने के पहले ही रसायनियों की परिभाषाएँ आ दबाती हैं। सखियों के मुँह से 'धातु कमाय सिखे तै जोगी' सुनते ही राजा धातुवादियों की तरह बर्राने लगता है जिसमें पाठक या श्रोता का हृदय कुछ भी लीन नहीं होता। कवियों में बहुज्ञता-प्रदर्शन की जो प्रवृत्ति कुछ दिनों से चल पड़ी, उसके कारण कवियों के प्रबंधाश्रित भाव-प्रवाह में कहीं कहीं बेतरह बाधा पड़ी है। प्रथम समागम के रस-रंग-प्रवाह के बीच 'पारे, गंधक और हरताल' का प्रसंग अनुकूल नहीं पड़ता। यदि प्रसंग अनुकूल हो तो उसका समावेश रसधारा के बाहर नहीं लगता, जैसा कि इसी समागम के प्रसंग में 'सोलह शृंगार' और 'बारह आभरण' का वर्णन। यह वर्णन नायिका अर्थात् आलंबन की रूप-भावना में सहायक होता है। फिर भी वस्तुओं की गिनती से पाठक या श्रोता का जी अवश्य ऊबता है।

इस प्रकार के कुछ बाधक प्रसंगों के होते हुए भी वर्णन अत्यंत रस-पूर्ण है। (पद्मावती जिस समय शृंगार करके राजा के पास जाती है उस समय कवि कैसा मनोहर चित्र खड़ा करता है—)

साजन लेइ पठावा, आयसु जाइ न मेट।
तन, मन, जोबन साजि कै देइ चली लेइ भेंट॥

इस दोहे में तन, मन और यौवन तीनों का अलग अलग उल्लेख बहुत ही सुंदर है। मन का साजना क्या है? समागम की उत्कंठा या अभिलाष। बिना इस मन की तैयारी के तन की सब तैयारी व्यर्थ हो जाती। देखिए, प्रिय के पास गमन करते समय कवि-परंपरा के अनुसार शेष सृष्टि से चुनकर सौंदर्य का कैसा संचार कैसी सीधी-सादी भाषा में किया गया है—

पदमिनि गवन हंस गए दूरी। कुंजर लाज मेल सिर धूरी॥
बदन देखि घटि चंद समाना। दसन देखि कै बीजु लजाना॥
खंजन छपे देखि कै नैना। कोकिल छपी सुनत मधु बैना॥
पहुँचहि छपी कँवल-पौनारी। जाँघ छपा कदली होइ बारी॥

संयोग-वर्णन में जायसी पहले तो सहसा सौंदर्य के साक्षात्कार से

हृदय के उस आनंद-संमोह का वर्णन करते हैं जो मूर्च्छा की दशा तक पहुँचा हुआ जान पड़ता है । फिर राजा अपने दुःख की कहानी और प्रेम-मार्ग में अपने ऊपर पड़े हुए संकटों का वर्णन करके प्रेम-मार्ग की उस सामान्य प्रवृत्ति का परिचय देता है जिसके अनुसार प्रेमी अपने प्रियतम के हृदय में अपने ऊपर दया या करुणा का भाव जाग्रत करने का बराबर प्रयत्न किया करते है । इसी प्रवृत्ति की उत्कर्ष-व्यंजना के लिये फारसी या उर्दू शायरी मे मुर्दे अपना हाल सुनाया करते है। सबसे बड़ा दुःख होने के कारण 'मरण दशा' के प्रति सबसे अधिक दया या करुणा का उद्रेक स्वभाव-सिद्ध है । शत्रु तक का मरण सुनकर सहानुभूति का एक-आध शब्द मुँह से निकल ही जाता है । प्रिय के मुख से सहानुभूति के वचन का मूल्य प्रेमियों के निकट बहुत अधिक होता है । 'बेचारा बहुत अच्छा था' प्रिय के मुख से इस प्रकार के शब्दो की संभावना ही पर वे अपने मर जाने की कल्पना बड़े आनंद से किया करते है। जो हमे अच्छा लगता है उसे हमारी भी कोई बात अच्छी लगे, यह अभिलाष प्रेम का एक विशेष लक्षण है । इस अभिलाष-पूर्त्ति की आशा प्रिय के हृदय को दयार्द्र करने में सबसे अधिक दिखाई पड़ती है; इसी से प्रेमी अपने दुःख और कष्ट की बात बड़े तूल के साथ प्रिय को सुनाया करते है।

नायक-नायिका के बीच कुछ वाक्-चातुर्य और परिहास भी भारतीय प्रेम-प्रवृत्ति का एक मनोहर अंग है; अतः उसका विधान यहाँ के कवियों की शृंगार-पद्धति मे चला आ रहा है । फारसी, अँगरेजी आदि के साहित्य में हम इसका विधान नहीं पाते । पर नए प्रेम से प्रभावित प्रत्येक भारतीय हृदय इस प्रवृत्ति का अनुभव करता है। देश और काल के भेद से हृदय के स्वरूप में भी भेद होता है। भारतीय प्रकृति के अनुसार संयोग-पक्ष की नाना वृत्तियों का भी कुछ विधान हो जाने स जायसी का प्रेम आनंदी जीवों द्वारा बिलकुल 'मुहर्रमी' कहे जाने से बाल बाल बच गया है।

पीछे तो उर्दूवालो में भी 'खूबाँ से छेड़छाड़' की रस्म चल पड़ी।

राजा की सारी कहानी सुनकर पद्मावती कहती है कि 'तू जोगी और मै रानी, तेरा मेरा कैसा साथ ?'

हौं रानी, तुम जोगि भिखारी। जोगिहि भोगिहि कौनि चिन्हारी ?
जोगी सबै छंद अस खेला। तू भिखारि तिन्ह माहँ अकेला ॥
एही भाँति सिष्टि सब छरी। एही भेख रावन सिय हरी ॥

संभोग-शृंगार में कवि-परंपरा 'हावों' का विधान करती आई है। अतः यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि जायसी ने 'हावों' का सन्नि-वेश एक प्रकार से नहीं के बराबर किया है। केवल इसी प्रसंग में 'विब्बोक हाव' की कुछ झलक मिलती है, जैसे—

ओहट होसि, जोगि ! तोरि चेरी। आवै बास कुरकुटा केरी ॥
जोगि तोरि तपसी कै काया। लागि चहै मोरे अँग छाया ॥

'हावों' की सम्यक् योजना न होने से जायसी के संयोग-पक्ष में वैसी सजीवता नहीं दिखाई देती।

राजा इस प्रेम-गर्भ फटकार पर भी अपने कष्ट-पूर्ण प्रयत्नों और प्रेम की गंभीरता की बात कहता ही चला जाता है। इसपर पद्मावती सच्चे प्रेम की व्याख्या करने लगती है—

कापर रँगे रग नहिं होई। उपजै औटि रंग भल सोई ॥
जौ मजीठ औटै बहु आँचा। रँग जनम न डोलै राँचा ॥
जरि परास होइ कोइल भेसू। तब फूलै राता होइ टेसू ॥

पर सच पूछिए तो यह गंभीर व्याख्या अवसर के उपयुक्त नहीं है। इस प्रकार का निरूपण प्रशांत मानस में ही ठीक है, मोद-तरंगाकुल मानस में नहीं। पर कवि अपनी चिंतन-शील प्रकृति के अनुसार अवसर अनवसर का विचार न करके ऐसी बातों को बीच बीच में बराबर घुसाया करता है।

पहले पद्मावती में प्रिय-समागम का भय दिखाकर कवि ने उसे नवोढ़ा का रूप दिया। अतः उसके मुँह से इस प्रकार का प्रौढ़ परिहास या प्रग-ल्भता नायिका-भेद के उस्तादों को खटकेगी। समाधान केवल यही हो सकता है कि सूए ने पद्मावती को बहुत पहले से प्रेम-मार्ग में दीक्षित कर रखा था। राजा रत्नसेन के सिंहल आने पर सूआ सँदेसों के द्वारा पद्मा-वती को प्रेम में पक्की करता रहा। अतः इस प्रकार के परिपुष्ट वचन अनुपयुक्त नहीं।

संभोग-शृंगार की रीति के अनुसार जायसी ने अभिसार का पूरा वर्णन किया है। पद्मावती के समागम की कुछ पंक्तियाँ अश्लील भी हो गई हैं; पर और सर्वत्र जायसी ने प्रेम का भावात्मक रूप ही प्रधान रखा है। शारीरिक भोग-विलास का वर्णन कवि ने यहाँ कुछ ब्योरे के साथ किया है, पर इस विलासिता के बीच बीच में भी प्रेम का भावात्मक स्वरूप प्रस्फुटित दिखाई पड़ता है। राजा जिससे मतवाला

हो रहा है वह प्रेम की सुरा है जिसका जिक्र सूफी शायरों ने बहुत ज्यादा किया है—

सुनु, धनि ! प्रेम-सुरा के पिए। करन-जियन-डर रहै न हिए ॥
जेहि मद तेहि कहाँ संसारा। की सो घूमि रह, की मतवारा ॥
जाकहँ होइ बार एक लाहा। रहै न ओहि बिनु, ओही चाहा ॥
अरथ दरब सो देइ बहाई। की सब जाहु, न लाइ पियाई ॥

पद्मावती पासा खेलने का प्रस्ताव करती है। नव-दंपति का पासा खेलना बहुत पुरानी रीति है। अब भी बहुत जगह विवाह के समय वर-कन्या के पासा खेलने की नकल चली आती है। पर इस प्रसंग में भी कवि ने श्लेष और अन्योक्ति आदि द्वारा उभय पक्ष का वाक्चातुर्य्य दिखाने का आयोजन बाँधा है जिससे पाठक का कुछ भी मनोरंजन नहीं होता। जैसा कि आगे चलकर दिखाया जायगा, जायसी की इस प्रवृत्ति के कारण प्रबंध के रस-पूर्ण प्रवाह में बहुत जगह बाधा पड़ी है।

बिहँसी धनि सुनिकै सब बाता। निहचय तू मोरे रँग राता ॥
जब हीरामन भएउ सँदेसी। तुम्ह हुँत मँडप गइउँ, परदेसी ॥
तोर रूप तस देखिउँ लोना। जनु जोगी तू मेलेसि टोना ॥
भुगुति देइ कहँ मै तोहिं दीठा। कँवल-नयन होइ भवँर बईठा ॥
नैन पुहुप, तू अलि भा सोभी। रहा बेधि अस, उढ़ा न लोभी ॥
कौन मोहनी दहुँ हुति तोही। जो तोहि बिथा सो उपनी मोही ॥
तोरे प्रेम प्रेम मोहि भएऊ। राता हेम अगिनि जौ तएऊ ॥

प्रेम की पूर्वापर ( युगपत् नहीं ) स्थिति में एक की व्यथा से दूसरे को व्यथा या करुणा उत्पन्न हुई कि एक के प्रेम-प्रवाह से दूसरे में प्रेम की नींव पड़ी समझनी चाहिए। रत्नसेन और पद्मावती का प्रेम पूर्वापर है। पद्मावती के अलौकिक रूप-सौंदर्य को सुनकर पहले राजा रत्नसेन के हृदय मे प्रेम-व्यथा उत्पन्न होती है, पीछे पद्मावती के हृदय में उस व्यथा के प्रति सहानुभूति—

सुनि कै धनि "जारो अस काया"। तन भा मयन, हिये भइ मया ॥

यही 'मया' या सहानुभूति प्रेम की पवित्र जननी हो जाती है। सहसा साक्षात्कार द्वारा प्रेम के युगपत् आविर्भाव में उक्त पूर्वापर क्रम नहीं होता इसलिये उसमे प्रेमी और प्रिय का भेद नहीं होता। उसमे दोनो एक दूसरे के प्रेमी और एक दूसरे को प्रिय साथ साथ होते है। उसमें यार की संग-दिली या बेवफाई की शिकायत—निष्ठुरता के उपालंभ—की जगह पहले

तो नहीं होती, आगे चलकर हो जाय तो हो जाय। तुलसीदास द्वारा वर्णित जनकपुर के बगीचे में उत्पन्न सीता और राम का युगपत् प्रेम बराबर सम रहा। पर सूरदास द्वारा वर्णित गोपी-कृष्ण का प्रेम आगे चलकर सम से विषम हो गया। इसीलिये अयोध्या से निर्वासित सीता राम की बेवफाई की कुछ भी शिकायत नहीं करती, पर गोपियाँ सारे शिकायतों के उद्धव के कान बहरे कर देती है। रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम मे आरंभ से विषमता है और गोपी-कृष्ण के प्रेम में अंत में। दोनों की विषमता की स्थिति मे यही अंतर है। गोपी-कृष्ण का प्रेम समता से विषमता की ओर प्रवृत्त हुआ है और रत्नसेन-पद्मावती का प्रेम विषमता से समता की ओर। इस समता की प्राप्ति की व्यंजना पद्मावती कैसे भोले-भाले शब्दों में अपनी सखियों से करती है—

आजु मरम मै जानिउँ सोई। जस पियार पिउ और न कोई॥
हिये छाहँ उपना औ सीऊ। पिउ न रिसाउ लेउ बरु जीऊ॥

---

करि सिंगार तापहँ का जाऊँ? ओही देखहुँ ठावहिं ठाऊँ॥
जौ जिउ महँ तौ उहै पियारा। तन मन सौ नहिं होइ निनारा॥
नैन माँह है उहै समाना। देखौ तहाँ नाहिं कोउ आना॥

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जायसी ने विषम प्रेम से क्यों आरंभ किया, आरंभ ही से सम प्रेम क्यों नही लिया। इसका उत्तर यह है कि जायसी को इस प्रेम को लेकर भगवत्पक्ष में भी घटाना था। ईश्वर के प्रति प्रेम का उदय पहले भक्त के हृदय मे होता है। ज्यों ज्यों यह प्रेम बढ़ता जाता है, त्यों त्यों भगवान् की कृपादृष्टि भी होती जाती है; यहाँ तक कि पूर्ण प्रेम-दशा को प्राप्त भक्त भगवान् को भी प्रिय हो जाता है। प्रेमी होकर प्रिय होने की यह पद्धति भक्तों की है। भक्ति की साधना का क्रम यही है कि पहले भगवान् हमें प्रिय लगें, पीछे अपने प्रेम के प्रभाव से हम भी भगवान् को प्रिय लगने लगेंगे।

## ईश्वरोन्मुख प्रेम

पहले कहा जा चुका है कि जायसी का झुकाव सूफी मत की ओर था जिसमे जीवात्मा और परमात्मा में पारमार्थिक भेद न माना जाने पर भी साधकों के व्यवहार मे ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में की जाती है। इन्होंने ग्रंथ के अंत मे सारी कहानी को अन्योक्ति कह दिया है और बीच

बीच में भी उनका प्रेम-वर्णन लौकिक पक्ष से अलौकिक पक्ष की ओर संकेत करता जान पड़ता है। इसी विशेषता के कारण कहीं कहीं इनके प्रेम की गंभीरता और व्यापकता अनंतता की ओर अग्रसर दिखाई पड़ती है। 'रति भाव' का वर्णन हिंदी के बहुत से कवियों ने किया है—कुछ लोगों का तो कहना है कि इसके अतिरिक्त और हमने किया ही क्या है—पर एक प्रबंध के भीतर शुद्ध भाव के स्वरूप का ऐसा उत्कर्ष जो पार्थिव प्रतिबंधों से परे होकर आध्यात्मिक क्षेत्र मे जाता दिखाई पड़े, जायसी का मुख्य लक्ष्य है। क्या संयोग, क्या वियोग, दोनों में कवि प्रेम के उस आध्यात्मिक स्वरूप का आभास देने लगता है जगत् के समस्त व्यापार जिसकी छाया से प्रतीत होते है। वियोग-पक्ष मे जब कवि लीन होता है तब सूर्य्य, चंद्र और नक्षत्र सब उसी परम विरह में जलते और चक्कर लगाते दिखाई देते है, प्राणियों का लौकिक वियोग जिसका आभास मात्र है—

विरह के आगि सूर जरि काँपा। राँतिउ दिवस जरै ओहि तापा॥

यद्यपि इस प्रकार के विरह-वर्णन की ओर सगुण-धारा के भक्तो की प्रवृत्ति नहीं रही है पर तुलसी की 'विनय-पत्रिका' में एक जगह ऐसे विश्वव्यापी विरह की भावना पाई जाती है—

बिछुरे रबि ससि, मन! नैनन ते पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि-दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बडेरो॥
जद्यपि अति पुनीत सुर-सरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो॥

इसी शुद्ध भाव-क्षेत्र में अग्नि, पवन इत्यादि सब उस प्रिय (ईश्वर) के पास तक पहुँचने मे व्यस्त दिखाई पड़ते है—सारी सृष्टि उसी 'परम भाव' में लीन होने को बढ़ती जान पड़ती है, पर साधना पूरी हुए-बिना कोई यों ही इच्छा मात्र करके नहीं पहुँच सकता है—

धाइ जो बाजा कै मन साधा। मारा चक्र, भएउ दुइ आधा॥
पवन जाइ तहँ पहुँचै चहा। मारा तैस, लोटि भुइँ रहा॥
अगिनि उठी, जरि उठी निआना। धुआँ उठा, उठि बीच बिलाना॥
पानि उठा, उठि जाइ न छूआ। बहुरा रोइ, आइ भुइँ चूआ॥

लौकिक सौंदर्य्य का वर्णन करते करते कवि की दृष्टि किस प्रकार उस चरम सौंदर्य्य की ओर जा पड़ती है, यह 'रूप-सौंदर्य्य-वर्णन' के अंतर्गत देखिए। उस चरम सौंदर्य्य की कुछ झलक मानो सृष्टि के वृत्त,

वल्ली, पशु, पक्षी, पृथ्वी, आकाश सबको मिली हुई है, सबके हृदय में मानो उसकी दृष्टिकोर गड़ी हुई है, सब उसके विरह में लीन है—

उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा। बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहि न गने। वै सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहिं सब साखी॥
रोवँ रोवँ मानुस तन ठाढ़े। सूतहि सूत बेध अस गाढ़े॥
बरुनि-बान अस ओ पहँ बेधे रन, बन-ढाँख।
सौजहि तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख॥

सृष्टि के नाना पदार्थ रूप, रस, गंध आदि का जो विकास करते दिखाई पड़ते है—सौंदर्य्य और माधुर्य्य धारण करते दिखाई पड़ते हैं—वह मानो उस अनंत सौंदर्य्य के समागम के अभिलाष से उसके पास तक पहुँचने की आशा से—

पुहुप सुगंध करहिं एहि आसा। मकु हिरकाई लेइ हम्ह पासा॥

शक्ति, शील आदि की अभिव्यक्ति का भी यही अर्थ समझिए।

रत्नसेन का पद्मावती तक पहुँचानेवाला प्रेम-पंथ जीवात्मा को परमात्मा में ले जाकर मिलानेवाले प्रेम-पंथ का स्थूल आभास है। प्रेम-पथिक रत्नसेन मे सच्चे साधक भक्त का स्वरूप दिखाया गया है। पद्मिनी ही ईश्वर से मिलानेवाला ज्ञान या बुद्धि है अथवा चैतन्य स्वरूप परमात्मा है, जिसकी प्राप्ति का मार्ग बतानेवाला सूआ सद्गुरु है। उस मार्ग मे अग्रसर होने से रोकनेवाली नागमती संसार का जंजाल है। तन-रूपी चित्तौरगढ़ का राजा मन है। राघव चेतन शैतान है जो प्रेम का ठीक मार्ग न बताकर इधर-उधर भटकाता है। माया में पड़े हुए सुलतान अला-उद्दीन को मायारूप ही समझना चाहिए। इसी प्रकार जायसी ने 'पद्मावत' के अंत मे अपने सारे प्रबंध को व्यंग्यगर्भित कह दिया है—

तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरु सुआ जेहि पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा॥
नागमती यह दुनिया धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत, सोइ सैतानू। माया अलादीन सुलतानू॥

अब यदि कवि के स्पष्टीकरण के अनुसार व्यंग्य अर्थ को ही प्रधान या प्रस्तुत माने तो जहाँ जहाँ दूसरे अर्थ भी निकलते है, वहाँ वहाँ अन्योक्ति माननी पड़ेगी। पर ऐसे स्थल अधिकतर कथा के अंग है और पढ़ते समय कथा के अप्रस्तुत होने की धारणा किसी पाठक को हो नहीं सकती। अतः

इन स्थलों के वाच्यार्थ को अप्रस्तुत नहीं कह सकते। इस प्रकार वाच्यार्थ के प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ के अप्रस्तुत होने से ऐसी जगह सर्वत्र 'समासोक्ति' ही माननी चाहिए। 'पद्मावत' के सारे वाक्यों के दोहरे अर्थ नहीं है, सर्वत्र अन्य पक्ष के व्यवहार का आरोप नहीं है। केवल बीच बीच में कहीं कहीं दूसरे अर्थ की व्यंजना होती है। ये बीच बीच में आए हुए स्थल, जैसा कि कहा जा चुका है, अधिकतर तो कथा-प्रसंग के अंग है—जैसे; सिंहलगढ़ की दुर्गमता और सिंहलद्वीप के मार्ग का वर्णन; रत्नसेन का लोभ के कारण तूफान में पड़ना और लंका के राक्षस द्वारा बहकाया जाना। अतः इन स्थलों में वाच्यार्थ से अन्य अर्थ जो साधना-पक्ष में व्यंग्य रखा गया है वह प्रबंध काव्य की दृष्टि से अप्रस्तुत ही कहा जा सकता है और 'समासोक्ति' ही माननी पड़ती है।

एक छोटा सा उदाहरण लीजिए। राजा रत्नसेन जब दिल्ली में कैद हो गए तब रानी पद्मावती इस प्रकार विलाप करती है—

सो दिल्ली अस निबहुर देसू। केहि पूछहुँ, को कहै सँदेसू?
जो कोइ जाइ तहाँ कर होई। जो आवै किछु जान न सोई॥
अगम पथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गयउ सो बहुरि न आवा॥

प्रबंध के भीतर ये सारे वाक्य प्रस्तुत प्रसंग का वर्णन करते है पर इनमें परलोक-यात्रा का अर्थ भी व्यंग्य है। यहाँ वाच्यार्थ को प्रस्तुत और व्यंग्यार्थ को अप्रस्तुत मानकर तथा "कोई किछु जान न" और "बहुरि न आवा" को दिल्ली-गमन और परलोक-गमन दोनों के सामान्य कार्य ठहराते हुए, दिल्लीगमन मे परलोकगमन के व्यवहार का आरोप करके हम समासोक्ति ही कह सकते है।

जहाँ कथा-प्रसंग से भिन्न वस्तुओं के द्वारा प्रस्तुत प्रसंग की व्यंजना होती हो वहाँ 'अन्योक्ति' होगी; जैसे—

(क) सूर उदयगिरि चढ़त भुलाना। गहनै गहा, कँवल कुँभिलाना॥

यहाँ इस 'अप्रस्तुत' के कथन द्वारा राजा रत्नसेन के सिंहलगढ़ पर चढ़ने और पकड़े जाने की व्यंजना की गई है। दूसरा उदाहरण लीजिए—

(ख) कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ॥
अबहुँ बेलि फिर पलुहै, जो पिय सींचै आइ॥

यहाँ जल-कमल का प्रसंग प्रस्तुत नहीं है, प्रस्तुत है विरहिणी की दशा। अतः यहाँ अप्रस्तुत से प्रस्तुत की व्यंजना होने के कारण 'अन्योक्ति' है।

सारांश यह है कि जहाँ जहाँ प्रबंध-प्रस्तुत-वर्णन मे अध्यात्मपक्ष का

कुछ अर्थ भी व्यंग्य हो वहाँ वहाँ समासोक्ति ही माननी चाहिए। जहाँ प्रथम पक्ष में अर्थात् अभिधेयार्थ में किसी भाव की व्यंजना नहीं है (जैसे मार्ग की कठिनता और सिंहलगढ़ की दुर्गमता के वर्णन में) वहाँ तो वस्तुव्यंजना स्पष्ट ही है, क्योंकि वहाँ एक वस्तु-रूप अर्थ से दूसरे वस्तु-रूप अर्थ की ही व्यंजना है। पर जहाँ किसी भाव की भी व्यंजना है वहाँ यह जिज्ञासा हो सकती है कि एक पक्ष की वस्तु दूसरे पक्ष की दूसरी वस्तु को व्यंजित करती है अथवा एक पक्ष का भाव दूसरे पक्ष के दूसरे भाव को व्यंजित करता है। विचार के लिये यह पद्य लीजिए—

पिउ हिरदय महुँ भेंट न होई। को रे मिलाव, कहाँ केहि गेई॥

ये पद्मावती के वचन है जिनमे रतिभाव-व्यंजक 'विषाद' और 'औत्सुक्य' की व्यंजना है। ये वचन जब भगवत्पक्ष में घटते है तब भी इन भावों की व्यंजना बनी रहती है। इस अवस्था में क्या हम कह सकते है कि प्रथम पक्ष मे व्यंजित भाव दूसरे पक्ष में उसी भाव की व्यंजना करता है? नहीं, क्योंकि व्यंजना अन्य अर्थ की हुआ करती है, उसी अर्थ की नहीं। उक्त पद्य मे भाव दोनों पक्षों में वे ही है। आलंबन भिन्न होने से भाव अपर (अर्थात् अन्य और समान; समानता अपरता में ही होती है) नहीं हो सकता। प्रेम चाहे मनुष्य के प्रति हो चाहे ईश्वर के प्रति, दोनों पक्षों में प्रेम ही रहेगा। अतः यहाँ वस्तु से वस्तु ही व्यंग्य है और भाव-व्यंजना का विधान दोनों पक्षों में अलग अलग माना जायगा।

पहले तो पद्मावती और रत्नसेन के पक्ष मे वाच्यार्थ की प्रतीति के साथ ही असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य द्वारा उन दो भावो (विषाद और औत्सुक्य) की प्रतीति होती है। इसके उपरांत हम फिर प्रथम पक्ष के वाच्यार्थ से चलकर लक्ष्यक्रम व्यंग्य द्वारा दूसरे पक्ष की इस वस्तु पर पहुँचते है—"ईश्वर तो अंतःकरण में ही है, पर साक्षात्कार नहीं होता। किस गुरु से कहें जो उपदेश देकर मिलावे।" इसमें अन्य आश्रय और अन्य आलंबन का ग्रहण है अतः यह वस्तु-व्यंजना हुई। इस प्रकार दूसरे पक्ष की व्यंग्य वस्तु पर पहुँचकर हम चट उसके व्यंग्य भाव (ईश्वर-प्रेम) पर पहुँच जाते है। मतलब यह कि एक पक्ष से दूसरे पक्ष पर हम वस्तु-व्यंजना द्वारा ही आते हैं। यह वस्तुव्यंजना अधिकतर अर्थशक्त्युद्भव ही है, शब्द-शक्त्युद्भव नहीं—अर्थात् अर्थ के सादृश्य से ही लक्ष्यक्रम-व्यंग्य जायसी मे मिलता है, श्लेष के सहारे पर नहीं। कहीं एक आध जगह

ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनमें शब्द के दोहरे अर्थ से कुछ काम लिया गया है, जैसे—

जो एहि खीर-समुद महँ परे। जीव गँवाइ हंस होइ तरे॥

यहाँ 'हंस' शब्द का पक्षी भी अर्थ है और उपाधि-मुक्त शुद्ध आत्मा भी।

जैसा कि कह आए हैं, भगवत्पक्ष मे घटनेवाले व्यंग्यार्थ-गर्भ वाक्य बीच बीच में बहुत से है। हीरामन तोते के मुँह से पद्मिनी का रूप-वर्णन सुन राजा उसके ध्यान में बेसुध हो गया। पर राजा केवल संसार के देखने मे बेसुध था। अपने ध्यान की गंभीरता मे, समाधि की अवस्था में, उसे उस परम ज्योति के सामीप्य की आनंदमयी अनुभूति हो रही थी जिसके भंग होने का दु.ख वह सचेत होने पर प्रकट करता है—

आवत जग बालक जस रोवा। उठा रोइ "हा ज्ञान सो खोवा"।
हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएउँ कहाँ?
वह उपकार मरन कर कीन्हा। सकति हँकारि जीउ हरि लीन्हा॥

यहाँ राजा का पद्मिनी के ध्यान में बेसुध होना कहकर साधक भक्त की समाधि द्वारा ईश्वर-सान्निध्य-प्राप्ति की व्यंजना की गई है। वह सान्निध्य कैसा आनंदमय है! उस अमर धाम से जीव जब इस संसार मे आता है तब उसकी सुध करके एकबारगी रो पड़ता है। जायसी ने तो जन्म समय में बच्चे के रोने पर हेतूत्प्रेक्षा करके भाव को यहीं छोड़ दिया है, पर अँगरेज कवि वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) इस भाव को और आगे ले गए हैं। वे कहते है कि अपने उस अमर धाम की सुध ससार मे आते ही यद्यपि भूल जाती है, पर उसका संस्कार कुछ काल तक रहता है। अपने बचपन के दिनो का स्मरण कीजिए। ये ही हरे-भरे-मैदान, अमराइयाँ और नाले आदि जो अब साधारण दृश्य जान पड़ते है, कैसी आनंदमयी दिव्य प्रभा से मंडित दिखाई पड़ते थे। फूल अब भी सुंदर लगते हैं, चंद्रमा अब भी शरदाकाश में सुहावना लगता है, पर इन सबकी वह दिव्य आभा अब पृथ्वी पर कहाँ, जो बचपन में हृदय को आनंदोल्लास से भर देती थी। बचपन मे हमारे चारों ओर स्वर्ग का आभास कुछ बना रहता है। पर ज्यों ज्यो हम बड़े होते जाते हैं त्यों त्यों इस भव-कारागार की छाया में बद्ध होते जाते है—वह आनंद-संस्कार मिटता जाता है, हम उसे भूलते जाते है। अतः इस संसार में जन्म लेना क्या है, एक प्रकार का भूलना है, एक प्रकार की निद्रा है—

Our birth is but a sleep and a forgetting ;
The Soul that rises with us, our life's star,
Hath had elsewhere its setting
And cometh from afar ;
Not in entire forgetfulness
And not in utter nakedness
But trailing clouds of glory do we come
From God, who is our home ;
Heaven lies about us in our infancy !
Shades of the prison-house begin to close
Upon the growing boy.

—Ode on Intimations of Immortality from Recollections of Early Childhood.

शास्त्राभिमानी लोग तर्क-बुद्धि से जिन तत्त्वों का साक्षात्कार करते हैं मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति भी पूर्ण शुद्धता प्राप्त करके उन तथ्यों में रमती है । पहुँचे हुए कवियों की वाणी में जो सत्य की मार्मिक अनुभूति ( ज्ञान मात्र नहीं ) मिलती है वह भी अमूल्य है ।

देखिए, जोगी होते हुए राजा के मुँह से कवि ने उसी अमरधाम की ओर स्वाभाविक दृश्य द्वारा संकेत कराया है ।

हौं रे पथिक पखेरू, जेहि बन मोर निबाहु ।
खेलि चला तेहि बन कहँ तुम अपने घर जाहु ॥

राजा रत्नसेन जब सिंहल के पास सातवें समुद्र में पहुँचता है तब दुःख की सारी छाया हट जाती है, आनंद की अमंद आभा फूटती दिखाई पड़ती है और हृदय की कली खिल जाती है । यह है साधक का अपनी साधना के फल के निकट पहुँचना, जब कि सारे भ्रम और संताप दूर होते दिखाई पड़ने लगते है और ब्रह्म की आनंदमयी ज्योति के साक्षात्कार से आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप की ओर अग्रसर हो जाती जान पड़ने लगती है—

देखि मानसर रूप सोहावा । हिय हुलास पुरइनि होइ छावा ॥
गा अँधियार, रैन-मसि छूटी । भा भिनसार किरिन-रवि फूटी ॥
'अस्ति अस्ति' सब साथी बोले । अध जो अहे, नैन बिधि खोले ॥

आनंद की कैसी लोक-व्यापिनी व्यंजना है। एक एक शब्द से ऐसा उल्लास उमड़ा पड़ता है जिसमें वृत्ति मग्न हो जाती है।

मंदिर में पद्मावती के आने पर राजा रत्नसेन जो बेसुध होकर सो गया है, उससे इस बात की व्यंजना की गई है कि ईश्वर बराबर सामने रहता है, पर जो इस संसार की माया मे लिप्त होकर सोए रहते है उन्हें साक्षात्कार नहीं होता; जो योगी जागते है उन्ही को होता है—

तबहुँ न जागा, गा तू सोई। जागे भेट, न सोए होई॥

और जागनेवाले जोगी कौन हैं, गो० तुलसीदासजी कहते हैं—

एहि जग-जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच-वियोगी॥

हीरामन के मुँह से सिंहलद्वीप और पद्मिनी का वर्णन सुन बेसुध होकर राजा जब फिर जागता है तब अपने चित्तौर के राजपाट और घर-बार से उसकी दृष्टि फिरकर उस सिंहलद्वीप की ओर लग जाती है। यह दशा उस सच्चे भावुक जिज्ञासु की है जो गुरु से ब्रह्म-ज्योति का आभास पाकर उसी की ओर प्रवृत्त हो जाता है और इस संसार के सब व्यवहार उसे अज्ञानांधकार के समान लगने लगते हैं—

हिय कै जोति दीप वह सूझा। यह जो दीप अँधियारा बूझा॥
उलटि दीठि माया सौं रूठी। पलटि न फिरी जानि कै झूठी॥

प्रेम-पथिक रत्नसेन के इस मार्ग मे साधक के मार्ग की झलक देखिए—

ओहि मिलान जौ पहुँचै कोई। तब हम कहब पुरुष भल सोई॥
है आगे परबत कै बाटा। बिषम हार अगम सुठि घाटा॥
बिच बिच नदी, खोह औ नारा। ठाँवहिं ठाँव बैठ बटपारा॥

वह 'मिलान' जहाँ पहुँचना है, ईश्वर है। अनेक प्रकार के विघ्न पहाड़ और नदी-खोह है। काम, क्रोध, मोह आदि बटमार या डाकू है। साधक के विघ्नों का स्वरूप दिखाने के लिये ही कवि ने राजा रत्नसेन के लौटते समय तूफान की घटना का आयोजन किया है। लोभ के कारण राजा विपत्ति मे फँसता है और लंका का राक्षस उसे मिलकर भटकाता है। यह लंका का राक्षस शैतान है जो साधकों को भटकाया करता है।

इसी प्रकार सिंहलगढ़ का निम्नलिखित वर्णन भी हठयोग के विभागों के अनुसार शरीर का वर्णन है—

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया। पुरुष देखु ओही कै छाया॥
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हे। जेइ पावा तेहि आपुहि चीन्हे॥
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा॥

दसवँ दुआर गुपुत एक ताका। अगम चढ़ाव, बाट सुठि बाँका॥
भेदै जाइ कोइ वह घाटी। जो लह भेद चढै होइ चाँटी॥
गढ़ तर कुंड सुरँग तेहि माहाँ। तहँ वह पथ, कहौं तोहि पाहाँ॥
दसवँ दुआर ताल कै लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा॥

हठयोगी अपनी साधना के लिये शरीर के भीतर तीन नाड़ियाँ मानते हैं। मेरु दंड या रीढ़ की बाईं ओर इला और दहनी ओर पिंगला नाड़ी है। इन दोनो के बीच मे सुषुम्ना नाम की नाड़ी है। स्वरोदय के अनुसार बाएँ नथने से जो साँस आती जाती है, वह इला नाड़ी से होकर और दहने नथने से जो आती जाती है वह पिंगला से होकर। यदि श्वास कुछ क्षण दहने और कुछ क्षण बाएँ नथने से निकले तो समझना चाहिए कि वह सुषुम्ना नाड़ी से आ रहा है। मध्यस्था सुषुम्ना नाड़ी ब्रह्मस्वरूप है और उसी में जगत् अवस्थित है। बिना इन नाड़ियों के ज्ञान के योगाभ्यास में सिद्धि नहीं होती। जो योगाभ्यास करना चाहते है वे पहले इला, फिर पिंगला और उसके अनंतर सुषुम्ना को साधते है। सुषुम्ना के सब से नीचे के भाग में, नाभि के नीचे, योगी कुंडलिनी मानते है। इसी को जगाने का प्रयत्न वे करते है। जाग्रत होने पर कुंडलिनी चंचल होकर सुषुम्ना नाड़ी के भीतर भीतर सिर की ओर चढ़ने लगती है और हृत्कमल तथा बारह चक्रों को पार करती हुई ब्रह्मरंध्र या मूर्द्ध-ज्योति तक चली जाती है। जैसे जैसे वह ऊपर को चढ़ती जाती है, योगी के सांसारिक बंधन ढीले पड़ते जाते हैं। यहाँ तक कि ब्रह्मरंध्र मे पहुँचने पर मन और शरीर से उसका संबंध छूट जाता है और साधक पूर्ण समाधि या तुरीयावस्था को प्राप्त होकर ब्रह्म के स्वरूप मे मग्न हो जाता है।

ऊपर जो पंक्तियाँ उद्धृत है उनमे 'नौ पौरी' नाक, कान, मुँह आदि नवद्वार है। दशम द्वार ब्रह्मरंध्र है जिसके पास तक पहुँचने मे बहुत से विघ्न या अंतराय पड़ते है। पाँच कोतवाल काम, क्रोध आदि विकार है। गढ़ के नीचे का कुंड नाभि-कुंड है जहाँ कुंडलिनी है। इस नाभि-कुंड से गई हुई सुरंग सुषुम्ना नाड़ी है जो ब्रह्मरंध्र तक चली गई है। वह ब्रह्मरंध्र बहुत ऊँचे है, वहाँ तक पहुँचना अत्यंत कठिन है। संसार से अपनी दृष्टि हटाकर जो उसकी ओर निरंतर ध्यान लगाए रहता है वही साधक वहाँ तक पहुँच पाता है। जैसे रत्नसेन को शिव ने सिंहलगढ़ के भीतर पहुँचने का मार्ग बताया है, वैसे ही साधक को किसी सिद्ध पुरुष से उपदेश ग्रहण किए बिना ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। आरंभ में कवि ने

जो सिंहलगढ़ का वर्णन किया है उसमें कहा है कि "चारि बसेरे सौं चढ़ै, सत सौ उतरै पार" । ये चार बसेरे सूफी साधकों की चार अवस्थाएँ है—शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारफत । यही मारफत पूर्ण-समाधि की अवस्था है जिसमें ब्रह्म के स्वरूप की अनुभूति होती है ।

रत्नसेन का सिंहलद्वीप में जाना भी हठयोगियों के प्रवाद के अनुकरण पर है । गोरख-पंथी जोगी सिंहलद्वीप को सिद्ध-पीठ मानते है जहाँ शिव से पूर्ण सिद्धि प्राप्त करने के लिये साधक को जाना पड़ता है ।

लड़की का मायके से पति के पास जाना और जीव का ईश्वर के पास जाना दोनों में एक प्रकार के साम्य की कल्पना निर्गुणोपासक भावुक भक्तो में बहुत दिनो से चली आती है । कबीरदास के तो बहुत से भजनों में यह कल्पना भरी हुई है, जैसे—

खेलि लेइ नैहर दिन चारी ।
पहिली पठौनी तीनि जन आए, नाऊ, ब्राह्मण, बारी ।
दुसरी पठौनी पिय आपुहि आए, डोली, बाँस, कहारी ॥
घरि बहियाँ डोलिया बैठावै, कोउ न लगत गोहारी ।
अब कर जाना, बहुरि नहीं अवना, इहैं भेट अँकवारी ॥

---

सुनि कै गवन मोरा जिया घबराई ।
आजु मदिरवा मे अगिया लागि है, कोउ न बुझावन जाई ॥

इस प्रकार की अन्योक्तियाँ हिंदू गृहस्थों, विशेषतः स्त्रियों के मर्म को अधिक स्पर्श करनेवाली होती है, इससे इनके द्वारा माँगनेवाले साधु लोगों के हृदय पर प्रभाव डालकर भिक्षा का अच्छा योग कर लेते है । जायसी ने भी प्रथम समागम के अवसर पर पद्मावती के मुँह से इस प्रकार के व्यंग्य गर्भित वाक्य कहलाए है—

अनचिन्ह पिउ काहौं मन माहाँ । का मै कहब, गहब जो बाहाँ ॥
बारि बैस गहै प्रीति न जानी । तरुनि भई मैमत भुलानी ॥
जोबन-गरब न किछु मै चेता । नेह न जानौ साम कि सेता ॥
अब सो कत जौ पूछिहि बाता । कस मुख होइहि, पीत कि राता ॥

इसी प्रकार की उक्तियाँ पद्मिनी की विदाई के समय भी है, जैसे—

रोवहि मातु पिता औ भाई । कोइ न टेक जौ कंत चलाई ॥
भरीं सखी सब; भेटत फेरा । अंत कंत सौं भएउ गुरेरा ॥

कोउ काहू कर नाहि निआना। मया मोह बाँधा अरुझाना॥
जब पहुँचाइ फिरा सब कोऊ। चला साथ गुन अवगुन दोऊ॥

इसी मायके और ससुराल की प्रचलित अन्योक्ति को ध्यान में रखकर जायसी ने ग्रंथ के आरंभ में ही पद्मावती और सखियों के खेल-कूद का ऐसा माधुर्य्यपूर्ण वर्णन किया है। सिंहल की हाट आदि के वर्णन में भी बीच बीच में जायसी ने पारमार्थिक झलक दिखाई है, जैसे—

जिन्ह एहि हाट न लीन्ह बेसाहा। ता कहँ आन हाट कित लाहा?
कोई करै बेसाहनी, काहू केर बिकाइ।
कोई चलै लाभ सौं, कोई मूर गँवाइ॥

---

## प्रेम-तत्त्व

प्रेम के स्वरूप का दिग्दर्शन जायसी ने स्थान स्थान पर किया है। कहीं तो यह स्वरूप लौकिक ही दिखाई पड़ता है और कहीं लोक-बंधन से परे। पिछले रूप में प्रेम इस लोक के भीतर अपने पूर्ण लक्ष्य तक पहुँचता हुआ नहीं जान पड़ता। उसका उपयुक्त आलंबन वही दिखाई पड़ता है जो अपने प्रेम से संपूर्ण जगत् की रक्षा करता है।

प्रिय से संबंध रखनेवाली वस्तुएँ भी कितनी प्रिय होती हैं! प्रिय की ओर ले जानेवाला मार्ग नागमती को कितना प्रिय होगा, उसी के मुँह से सुनिए—

वह पथ पलकन्ह जाइ बोहारौं। सीस चरन के चलौं सिधारौं॥

पथ पर पलकें बिछाने या उसे पलकों से बुहारने की बात उस अवसर पर कही जाती है जब प्रिय उस मार्ग से आने को होता है; पर जहाँ उस मार्ग पर चलने के लिये तैयार नागमती ही है जैसा कि प्रसंग के पढ़ने से विदित होगा (दे० पद्मावती-नागमती-विलाप खंड) तो क्या वह अपने चलने के आराम के लिये सफाई करने को कह रही है? नहीं; उस मार्ग के प्रति जो स्नेह उमड़ रहा है, उसकी झोक में कह रही है। जो मार्ग प्रिय की ओर ले जायगा उस पर भला पैर कैसे रखेगी, वह उसपर सिर को पैर बनाकर चलेगी। प्रिय के संबंध से कितनी वस्तुओं से सुहृद् भाव स्थापित हो जाता है। सच्चे प्रेमी को प्रिय ही नहीं, जो कुछ उस प्रिय का होता है, सब प्रिय होता है। जिसे यह जगत् प्रिय नहीं, जो इस जगत् के छोटे बड़े सबसे सद्भाव नहीं रखता, जो लोक की भलाई के

लिये सब कुछ सहने को तैयार नहीं रहता, वह कैसे कह सकता है कि ईश्वर का भक्त हूँ ? गो० तुलसीदासजी कहते हैं कि क्या मैं भी वह भक्त-जीवन प्राप्त कर सकूँगा और

"पर-हित-निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौगो ?"

यह दिखाया जा चुका है कि रत्नसेन-पद्मावती का प्रेम विषम से सम की ओर प्रवृत्त हुआ है जिसमें एक पक्ष की कष्ट-साधना दूसरे पक्ष में पहले दया और फिर तुल्य प्रेम की प्रतिष्ठा करती है। साधना का फलारंभ-स्वरूप उस दया की सूचना पाने पर, जो तुल्यानुराग का पूर्व लक्षण है, रत्नसेन को समागम का सा ही आनंद होता है, उसकी संजीवनी शक्ति से वह मूर्च्छा से जाग उठता है—

सुनि पदमावति कै असि मया। भा बसंत, उपनी नइ कया॥
सुआ क बोल पवन होइ लागा। उठा सोइ, हनुवँत अस जागा॥

तुल्यानुराग की सूचना के अद्भुत प्रभाव का अनुभव राजा पुरूरवा ने भी उस समय किया है जब उर्वशी ने अदृश्य भाव से भोजपत्र पर अपने अनुराग की दशा लिखकर गिराई है—

तुल्यानुरागपिशुनं ललितार्थबंध पत्रे निवेशितमुदाहरणं प्रियायाः।
उत्पक्ष्मणा मम सखे! मदिरेक्षणायास्तस्याः समागतमिवाननमाननेन॥

(विक्रमोर्वशी, अंक २)

राजा रत्नसेन ने 'अनुराग' शब्द का प्रयोग न करके 'मया' शब्द का प्रयोग किया है। यह उसके प्रेम के विकास के हिसाब से बहुत ठीक है। पहले पद्मावती को रत्नसेन के कष्टों की सूचना मिली है, तब उसका हृदय उसकी ओर आकर्षित हुआ है, अतः पद्मावती के हृदय में पहले दया का भाव ही स्वाभाविक है। पर उर्वशी और पुरूरवा का प्रेम आरंभ ही से सम था, केवल एक दूसरे के प्रेम का परिज्ञान नहीं था। आगे चलकर रत्नसेन जो हर्ष प्रकट करता है, वह तुल्यानुराग पर है। राजा रत्नसेन को जब सूली देने ले जा रहे थे तब हीरामन पद्मावती का यह सँदेसा लेकर आया—

काढ़ि प्रान बैठी लेइ हाथा। मरै तौ, मरौं, जिऔ एक साथा।

इतना सुनते ही रत्नसेन के हृदय से सूली आदि का सब ध्यान हवा हो जाता है, वह आनंद में मग्न हो जाता है—

सुनि सँदेस राजा तब हँसा। प्रान प्रान घट घट महँ बसा॥

प्रेम के प्रभाव से प्रेमी की वेदना मानो उसके हृदय के साथ प्रिय के पास चली जाती है। अतः जब वह प्रेम चरम सीमा को पहुँच जाता है

तब प्रेमी तो दुःख की अनुभूति से परे हो जाता है और उसकी सारी वेदना प्रिय के मत्थे जा पड़ती है। समवेदना का यही उत्कर्ष तुल्य प्रेम है—

जीउ काढ़ि लेइ तुम अपसई। वह भा कया, जीव तुम भई॥
कया जो लाग धूप औ सीऊ। कया न जान, जान पै जीऊ॥
भोग तुम्हार मिला ओहि जाई। जो ओहि बिथा सो तुम्ह कहँ आई॥

योगियों के परकाय-प्रवेश का सा रहस्य समझना चाहिए—

"अस वह जोगी अमर भा, पर-काया-परवेस॥"

प्रेम की प्राप्ति से दृष्टि आनंदमयी और निर्मल हो जाती है। जो बातें पहले नहीं सूझती थीं वे सूझने लगती हैं, चारों ओर सौंदर्य्य का विकास दिखाई पड़ने लगता है। पद्मावती की प्रशंसा सुनते ही जो प्रेम रत्नसेन के हृदय में संचरित होता है उसके प्रभाव का वर्णन वह इस प्रकार करता है—

सहसौ करा रूप मन भूला। जहँ जहँ दीठ कँवल जनु फूला॥
तीनि लोक चौदह खँड, सबै परै मोहि सूझि।
प्रेम छाँड़ि नहीं लोन किछु, जौ देखा मन बूझि॥

प्रेम का क्षीर-समुद्र अपार और अगाध है। जो इस क्षीर-समुद्र को पार करते हैं वे उसकी शुभ्रता के प्रभाव से 'जीव' संज्ञा को त्याग शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं—'जो एहि खीर-समुद महँ परे। जीव गँवाइ, हंस होइ तरे।' फिर तो वे 'बहुरि न आइ मिलहि एहि छारा'।

प्रेम की एक चिनगारी यदि हृदय में पड़ गई और उसे सुलगाते बन पड़ा तो फिर ऐसी अद्भुत अग्नि प्रज्वलित हो सकती है जिससें सारे लोक विचलित हो जायँ—

मुहमद चिनगी प्रेम कै सुनि महि गगन डेराइ।
धनि बिरही औ धनि हिया, जहँ अस अगिनि समाइ॥

भगवत्प्रेम की यह चिनगारी अच्छे गुरु से प्राप्त हो सकती है। पर गुरु एक चिनगारी भर डाल देगा, उसे सुलगाना चेले का काम है—

गुरु बिरह-चिनगी जो मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला॥

गुरु केवल उस प्रिय (ईश्वर) के रूप का बहुत थोड़ा सा आभास भर दे सकता है—उसे शब्दों द्वारा पूर्ण रूप से व्यक्त करना असंभव है। भावना के निरंतर उत्कर्ष द्वारा, शिष्य को उत्तरोत्तर अधिक साक्षात्कार प्राप्त होता जायगा और उसके प्रेम की मात्रा बढ़ती चली जायगी।

दूरारूढ़ प्रेम में प्रिय के साक्षात्कार के अतिरिक्त और कोई (सुख

आदि की ) कामना नहीं होती। ऐसा प्रेम प्रिय को छोड़ किसी अन्य वस्तु का आश्रित नहीं होता। न उसे सुराही चाहिए,न प्याला; न गुलगुली गिलमे, न गलीचा। न उसमे स्वर्ग की कामना होती है, न नरक का भय। ऐसी निष्कामता का अनुभव राजा रत्नसेन भयंकर समुद्र के बीच इस प्रकार कर रहा है—

ना हौं सरग क चाहौं राजू। ना मोहि नरक सेति किछु काजू॥
चाहौं ओहिकर दरसन पावा। जेइ मोहि आनि प्रेम-पथ-लावा॥

प्रेम की कुछ विशेषताओ का वर्णन जायसी ने हीरामन तोते के मुँह से भी कराया है। सच्चा प्रेम एक वार उत्पन्न होकर फिर जा नहीं सकता। पहले उत्पन्न होते और बढ़ते समय तो उसमें सुख ही सुख दिखाई पड़ता है; पर बढ़ चुकने पर भारी दुःख का सामना करना पड़ता है। प्रेम बढ़ जाने पर और किसी भाव के लिये स्वतंत्र स्थान नही छोड़ता। जो और भाव उत्पन्न भी होते है वे सब उसके अधीन और वशवर्त्ती होते है—

प्रीति बेलि जिनि अरुझै कोई। अरुझे, मुए न छूटे सोई॥
प्रीति-बेलि ऐसै तन डाढा। पलुहत सुख, बाढ़त दुख बाढा॥
प्रीति अकेलि बेलि चढि छावा। दूसर बेलि न सँचरै पावा॥

पद्मावती और नागमती के विवाद में जो 'असूया' का भाव प्रकट होता है वह स्त्री-स्वभाव-चित्रण की दृष्टि से है। वह प्रेम के लौकिक स्वरूप के अंतर्गत है। जिन कालिदास ने प्रेम की प्रारंभिक दशा में उर्वशी के मुँह से पुरूरवा की रानी की रूपश्री की प्रशंसा कराकर चित्रलेखा को "असूया-पराङ्मुखं मंत्रितम्" कहने का अवसर दिया उन्हीं ने आगे चलकर उर्वशी के लतारूप मे परिणत हो जाने पर उसके संबंध में सहजन्या के मुँह से कहलाया "दूरारूढ़. खलु प्रणयोऽसहनः"। पर जायसी की दृष्टि इस लौकिक प्रेम से आगे बढ़ी हुई है। वे प्रेम का वह विशुद्ध रूप दिखाया चाहते है जो भगवत्प्रेम मे परिणत हो सके। इसी से वे प्रेम की और भी दूरारूढ़ भावना करके रत्नसेन के मुँह से विवाद-शांति का तत्त्वभरा उपदेश दिलाते है।

## प्रबंध-कल्पना

किसी प्रबंध-कल्पना पर और कुछ विचार करने के पहले यह देखना चाहिए कि कवि घटनाओ को किसी आदर्श परिणाम पर ले जाकर

तोड़ना चाहता है अथवा यों ही स्वाभाविक गति पर छोड़ना चाहता है। यदि कवि का उद्देश्य सत् और असत् के परिणाम दिखाकर शिक्षा देना होगा तो वह प्रत्येक पात्र का परिणाम वैसा ही दिखाएगा जैसा न्याय-नीति की दृष्टि से उसे उचित प्रतीत होगा। ऐसे नपे-तुले परिणाम काव्य-कला की दृष्टि से कुछ कृत्रिम जान पड़ते है।

'पद्मावत' के कथानक से यह स्पष्ट है कि घटनाओं को आदर्श परिणाम पर पहुँचाने का लक्ष्य कवि का नहीं है। यदि ऐसा लक्ष्य होता तो राघव चेतन का बुरा परिणाम बिना दिखाए वह ग्रंथ समाप्त न करता। कर्मों के लौकिक शुभाशुभ परिणाम दिखाना जायसी का उद्देश्य नहीं प्रतीत होता। संसार की गति जैसी दिखाई पड़ती है वैसे ही उन्होने रखी है। संसार मे अच्छे आदर्श चरित्रवालों का परिणाम भी आदर्श अर्थात् अत्यंत आनंद-पूर्ण ही होता है और बुरे कर्म करनेवालों-पर अंत में आपत्ति का पहाड़ ही आ टूटता हो, ऐसा कोई निर्दिष्ट नियम नहीं दिखाई पड़ता। पर आदर्श-परिणाम के विधानपर लक्ष्य न रहनेपर भी जो बात बचानी चाहिए वह बच गई है। किसी सत्पात्र का न तो ऐसा भीषण परिणाम ही दिखाया गया है, जिससे चित्त को क्षोभ प्राप्त होता हो और न किसी बुरे पात्र की ऐसी सुख-समृद्धि ही दिखाई गई है जिससे अरुचि और उदासीनता उत्पन्न होती हो। अंतिम दृश्य से अत्यंत शांतिपूर्ण उदासीनता बरसती है। कवि की दृष्टि में मनुष्य-जीवन का सच्चा अंत करुण-क्रन्दन नहीं, पूर्ण शांति है। राजा के मरने पर रानियाँ विलाप नहीं करती हैं, बल्कि इस लोक से अपना मुँह फेरकर दूसरे लोक की ओर दृष्टि किए आनंद के साथ पति की चिता में बैठ जाती है। इस प्रकार कवि ने सारी कथा का शांत रस में पर्य्यवसान किया है। पुरुषों के वीर-गति-प्राप्त हो जाने और स्त्रियो के सती हो जाने पर अलाउद्दीन गढ़ के भीतर घुसा और

"छार उठाइ लीन्ह एक मूठी। दीन्ह उठाइ पिरिथिवी झूठी॥"

प्रबंध-काव्य मे मानव-जीवन का एक पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओ की संबद्ध शृंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक ठीक निर्वाह के साथ साथ हृदय को स्पर्श करनेवाले—उसे नाना भावों का रसात्मक अनुभव करानेवाले—प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता। उसके लिए घटना-चक्र के अंतर्गत ऐसी वस्तुओं और व्यापारो का प्रतिबिंबवत् चित्रण होना

चाहिए जो श्रोता के हृदय में रसात्मक तरंगें उठाने में समर्थ हों। अतः कवि को कहीं तो घटना का संकोच करना पड़ता है और कहीं विस्तार।

घटना का संकुचित उल्लेख तो केवल इतिवृत्त मात्र होता है। उसमें एक एक ब्योरे पर ध्यान नहीं दिया जाता और न पात्रों के हृदय की झलक दिखाई जाती है। प्रबंध-काव्य के भीतर ऐसे स्थल रस-पूर्ण स्थलों की केवल परिस्थिति की सूचना देते हैं। इतिवृत्त-रूप इन वर्णनों के विना उन परिस्थितियों का ठीक परिज्ञान नहीं हो सकता जिनके बीच पात्रों को देखकर श्रोता उनके हृदय की अवस्था का अपनी सहृदयता के अनुसार अनुमान करते हैं। यदि परिस्थिति के अनुकूल पात्र के भाव नहीं हैं तो विभाव, अनुभाव और संचारी द्वारा उनकी अत्यंत विशद व्यंजना भी फीकी लगती है। प्रबंध और मुक्तक में यही बड़ा भारी भेद होता है। मुक्तक में किसी भाव की रस-पद्धति के अनुसार अच्छी व्यंजना हो गई, बस। पर प्रबंध में इस बात पर भी ध्यान रहता है कि वह भाव परिस्थिति के अनुरूप है या नहीं। पात्र की परिस्थिति भी सहृदय श्रोता के हृदय में भाव का उद्‌बोधन करती है। उसके ऊपर से जब श्रोता के भाव के अनुकूल उसकी पूर्ण व्यंजना भी पात्र द्वारा हो जाती है तब रस की गहरी अनुभूति उत्पन्न होती है। "वनवासी राम स्वर्ण मृग को मार जब कुटी पर लौटे तब देखा कि सीता नहीं है" यह इतिवृत्त मात्र है; पर यह सहृदयों के हृदय को उस दुःखानुभव की ओर प्रवृत्त कर देता है जिसकी व्यंजना राम ने अपने विरह-वाक्यों में की। इसी बात को ध्यान मे रखकर विश्वनाथ ने कहा है कि प्रबंध के रस से नीरस पद्यो मे भी रसवत्ता मानी जाती है—रसवत्पद्यान्तर्गतनीरसपदानामिव पद्यरसेन प्रबंधरसेनैव तेषां रसवत्ताङ्गीकारात्।

जिनके प्रभाव से सारी कथा मे रसात्मकता आ जाती है वे मनुष्य-जीवन के मर्मस्पर्शी स्थल है जो कथा-प्रवाह के बीच बीच में आते रहते है। यह समझिए कि काव्य मे कथा-वस्तु की गति इन्हीं स्थलों तक पहुँचने के लिये होती है। 'पदमावत' में ऐसे स्थल बहुत से है—जैसे, मायके में कुमारियों की स्वच्छंद क्रीड़ा, रत्नसेन के प्रस्थान पर नागमती आदि का शोक, प्रेम-मार्ग के कष्ट, रत्नसेन को सूली की व्यवस्था, उस दंड के संवाद से विप्रलंभ दशा मे पद्मावती की करुण सहानुभूति, रत्नसेन और पद्मावती का संयोग, सिंहल से लौटते समय की सामुद्रिक घटना से दोनो की विह्वल स्थिति, नागमती की विरह-दशा और वियोग-संदेश,

उस संदेश को पाकर रत्नसेन की स्वाभाविक प्रणय-स्मृति, अलाउद्दीन के संदेसे पर रत्नसेन का गौरवपूर्ण रोष और युद्धोत्साह, गोरा-बादल की स्वामि-भक्ति और क्षात्र तेज से भरी प्रतिज्ञा, अपनी सजलनेत्रा भोलीभाली नवागता वधू की ओर पीठ फेर बादल का युद्ध के लिये प्रस्थान, देवपाल की दूती के आने पर पद्मावती द्वारा सतीत्व-गौरव की अपूर्व व्यंजना, पद्मावती और नागमती का उत्साहपूर्ण सहगमन, चित्तौर की दशा इत्यादि। इनमे से पाँच स्थल तो बहुत ही अगाध और गंभीर है—नागमती-वियोग, गोरा-बादल-प्रतिज्ञा, कुँवर बादल का घर से निकलकर युद्ध के लिये प्रस्थान, दूती के निकट पद्मावती द्वारा सतीत्व-गौरव की व्यंजना और सहगमन। ये पाँचो प्रसंग ग्रंथ के उत्तरार्द्ध मे है। पूर्वार्द्ध मे तो प्रेम ही प्रेम है; मानव जीवन की और और उदात्त वृत्तियो का जो कुछ समावेश है वह उत्तरार्द्ध में है।

जायसी के प्रबंध की परीक्षा के लिये सुबीते के विचार से हम उसके दो विभाग कर सकते है—इतिवृत्तात्मक और रसात्मक।

पहले इतिवृत्त लीजिए। प्रबंध-काव्य में इतिवृत्त की गति इस ढंग से होनी चाहिए कि मार्ग मे जीवन की ऐसी बहुत सी दशाएँ पड़ जायँ जिनमे मनुष्य के हृदय मे भिन्न भिन्न भावो का स्फुरण होता है और जिनका सामान्य अनुभव प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः कर सकता है। इन्हीं स्थलों मे रसात्मक वर्णनो की प्रतिष्ठा होती है। अतः इनमे एक प्रकार से इतिवृत्त या कथा के प्रवाह का विराम सा रहता है। ऐसे रसात्मक वर्णन यदि छोड़ भी दिए जायँ तो वृत्त खंडित नहीं होता। रसानुकूल परिस्थिति तक श्रोता को पहुँचाने के लिये बीच बीच में घटनाओ के सामान्य कथन या उल्लेख मात्र को ही शुद्ध इतिवृत्त समझना चाहिए, जैसी 'रामचरित मानस' की ये चौपाइयाँ है—

आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्वत नियराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सीवा॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल-रूप-निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तै जाई। कहेसि जानि जिय सैन बुझाई॥

हितोपदेश, कथासरित्सागर, सिंहासन-बत्तीसी, बैताल-पचीसी आदि की कहानियाँ इतिवृत्त-रूप में ही है, इसी से उन्हें कोई काव्य नहीं कहता। ऐसी कहानियो से भी श्रोता या पाठक का मनोरंजन होता है, पर वह काव्य के मनोरंजन से भिन्न होता है। रसात्मक वाक्यों

में मनुष्य के हृदय की वृत्तियाँ लीन होती है और इतिवृत्त से उसकी जिज्ञासा-वृत्ति तुष्ट होती है। 'तब क्या हुआ ?' इस वाक्य द्वारा श्रोता अपनी जिज्ञासा प्रायः प्रकट करते है। इससे प्रत्यक्ष है कि जो कहा गया है उसमें कुछ देर के लिये भी श्रोता का हृदय रमा नहीं है, आगे की बात जानने की उत्कंठा ही मुख्य है। कोरी कहानियों मे मनोरंजन इसी कुतूहल-पूर्ण जिज्ञासा के रूप मे होता है। उनके द्वारा हृदय की वृत्तियों ( रति, शोक आदि ) का व्यायाम नहीं होता, जिज्ञासा-वृत्ति का व्यायाम होता है। उनका प्रधान गुण घटना-वैचित्र्य द्वारा कुतूहल को बनाए रखना ही होता है। कही जानेवाली कहानियाँ अधिकतर ऐसी ही होती है। पर कुछ कहानियाँ ऐसी भी जन-साधारण के बीच प्रचलित होती है जिनके बीच बीच मे भावोद्रेक करनेवाली दशाएँ भी पड़ती चलती है। इन्हें हम रसात्मक कहानियाँ कह सकते है। इनमे भावुकता का अंश बहुत कुछ होता है और ये अपढ़ जनता के बीच प्रबंध-काव्य का ही काम देती है। इनमे जहाँ जहाँ मार्मिक स्थल आते हैं वहाँ वहाँ कथोपकथन आदिके रूप मे कुछ पद्य या गाना रहता है।

ऐसी रसात्मक कहानियो का घटनाचक्र ही ऐसा होता है जिसके भीतर सुख-दुःख-पूर्ण जीवन-दशाओ का बहुत कुछ समावेश रहता है। पहले कहा जा चुका है कि "पद्मिनी और हीरामन तोते की कहानी" इसी प्रकार की है। इसके घटना-चक्र के भीतर प्रेम, वियोग, माता की ममता, यात्रा का कष्ट, विपत्ति, आनंदोत्सव, युद्ध, जय, पराजय आदि के साथ साथ विश्वासघात, वैर, छल, स्वामिभक्ति, पातिव्रत, वीरता आदि का भी विधान है। पर 'पद्मावत' शृंगाररस-प्रधान काव्य है। इसीसे इसके घटना-चक्र के भीतर जीवन-दशाओ और मानव-संबंधों की वह अनेकरूपता नहीं है जो रामचरित मानस में है। इसमे रामायण की अपेक्षा बहुत कम मानव-दशाओ और संबंधों का रस-पूर्ण प्रदर्शन और बहुत कम प्रकार के चरित्रो का समावेश है। इसका मुख्य कारण यह है कि जायसी का लक्ष्य प्रेम-पथ का निरूपण है। जो कुछ हो, यह अवश्य मानना पड़ता है कि रसात्मकता के सचार के लिये प्रबंध-काव्य का जैसा घटना-चक्र चाहिए पद्मावत का वैसा ही है। चाहे इसमे अधिक जीवन-दशाओ को अंतर्भूत करनेवाला विस्तार और व्यापकत्व न हो, पर इसका स्वरूप बहुत ठीक है।

---

# संबंध-निर्वाह

प्रबंध-काव्य में बड़ी भारी बात है संबंध-निर्वाह। माघ ने कहा है—

बहुपि स्वेच्छया कामं प्रकीर्णमभिधीयते।
अनुज्झितार्थसम्बन्धः प्रबन्धो दुरुदाहरः॥

जायसी का संबंध-निर्वाह अच्छा है। एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग की शृंखला बराबर लगी हुई है। कथा-प्रवाह खंडित नहीं है जैसा केशव की 'रामचंद्रिका' का है जो अभिनय के लिये चुने हुए फुटकर पद्यों का संग्रह सी जान पड़ती है। जायसी में विराम अवश्य हैं—जो कहीं कहीं अनावश्यक हैं—पर विवरण का लोप नहीं है जिससे प्रवाह खंडित होता है।

हमारे आचार्यों ने कथावस्तु दो प्रकार की कही है—आधिकारिक और प्रासंगिक। अतः संबंध-निर्वाह पर विचार करते समय सबसे पहले तो यह देखना चाहिए कि प्रासंगिक कथाओं का जोड़ आधिकारिक वस्तु के साथ अच्छी तरह मिला हुआ है या नहीं अर्थात् उनका आधिकारिक वस्तु के साथ ऐसा संबंध है या नहीं जिससे उसकी गति में कुछ सहायता पहुँचती हो। जो वृत्तांत इस प्रकार संबद्ध न होंगे वे ऊपर से व्यर्थ ठूँसे हुए मालूम होंगे चाहे उनमें कितनी ही अधिक रसात्मकता हो। 'हितोपदेश' में एक कथा के भीतर कोई जो दूसरी कथा कहने लगता है या 'अलिफलैला' में एक कहानी के भीतर का कोई पात्र जो दूसरी कहानी छेड़ बैठता है वह मुख्य कथा-प्रवाह से संबद्ध नहीं कही जा सकती। पद्मावत में कई प्रासंगिक वृत्त हैं—जैसे, हीरामन तोता खरीदनेवाले ब्राह्मण का वृत्तांत, राघव चेतन का हाल, बादल का प्रसंग—जिनका आधिकारिक वस्तु के प्रवाह पर पूरा प्रभाव है। उनके कारण आधिकारिक वस्तु-स्रोत का मार्ग बहुत कुछ निर्धारित हुआ है। प्रासंगिक वस्तु ऐसी ही होनी चाहिए जो आधिकारक वस्तु की गति आगे बढ़ाती या किसी ओर मोड़ती हो, जैसे देवपाल के वृत्त ने अलाउद्दीन के फिर चित्तौर पहुँचने के पहले ही रत्नसेन के जीवन का अंत कर दिया।

यह तो हुई प्रासंगिक कथा की बात जिसमें प्रधान नायक के अतिरिक्त किसी अन्य का वृत्त रहता है। अब आधिकारिक वस्तु की योजना पर आइए। सबसे पहले तो यह प्रश्न उठता है

कि प्रबंध-काव्य में क्या जीवनचरित के समान उन सब बातों का विवरण होना चाहिए जो नायक के जीवन मे हुई हों। संस्कृत के प्रबंध-काव्यों को देखने से पता चलता है कि कुछ मे तो इस प्रकार का विवरण होता है और कुछ मे नहीं, कुछ की दृष्टि तो व्यक्ति पर होती है और कुछ की किसी प्रधान घटना पर। जिनकी दृष्टि व्यक्ति पर होती है उनमे नायक के जीवन की सारी मुख्य घटनाओ का वर्णन—गौरववृद्धि या गौरव-रक्षा के ध्यान से अवश्य कहीं कहीं कुछ उलट-फेर के साथ—होता है। जिनकी दृष्टि किसी मुख्य घटना पर होती है उनका सारा वस्तु-विन्यास उस घटना के उपक्रम के रूप में होता है। प्रथम प्रकार के प्रबंधों को हम व्यक्ति-प्रधान कह सकते है जिसके अंतर्गत रघुवंश, बुद्धचरित, विक्रमांकदेवचरित आदि हैं। दूसरे प्रकार के घटना-प्रधान प्रबंधो के अंतर्गत कुमारसंभव, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध आदि है। 'पदमावत' को इसी दूसरे प्रकार के प्रबन्ध के अंतर्गत समझना चाहिए।

कहने की आवश्यकता नहीं कि दृश्य-काव्य का स्वरूप भी घटना-प्रधान ही होता है। अतः इस प्रकार के प्रबंध के वस्तु-विन्यास की समीक्षा बहुत कुछ दृश्य काव्य के वस्तु-विन्यास के समान ही होनी चाहिए। जैसे दृश्य-काव्य का वैसे ही प्रत्येक घटना-प्रधान प्रबंध-काव्य का एक 'कार्य्य' होता है जिसके लिये घटनाओ का सारा आयोजन होता है, जैसे, रामचरित में रावण का वध। अतः घटनाप्रधान प्रबंध-काव्य मे उन्हीं वृत्तान्तो का सन्निवेश अपेक्षित होता है जो उस साध्य 'कार्य्य' के साधन-मार्ग मे पड़ते है अर्थात् जिनका उस कार्य्य से संबंध होता है। प्राचीन यवन आचार्य्य अरस्तू ने इसका विचार अपने 'काव्य-सिद्धांत' के आठवें प्रकरण मे किया है और यह अब भी पाश्चात्य समालोचको मे "कार्य्यान्वय" ( Unity of Action ) के नाम से प्रसिद्ध है।

'पदमावत' मे 'कार्य्य' है पद्मावती का सती होना। उसकी दृष्टि से राघव चेतन का उतना ही वृत्त आया है जितने का घटनाओं के 'कार्य्य' की ओर अग्रसर करने में योग है। इसी सिद्धान्त पर न तो चित्तौर की चढ़ाई के उपरांत राघव की कोई चर्चा आती है और न विवाह के उपरांत तोते की। यहाँ पर दो प्रसंगो पर विचार कीजिए—सिंहल से लौटते समय समुद्र के तूफान के प्रसंग पर और देवपाल के

दूती भेजने के प्रसंग पर। तूफ़ानवाली घटना यद्यपि प्रधान नायक के जीवन की ही घटना है पर यों देखने में 'कार्य्य' के साथ उसका स्पष्ट संबंध नहीं जान पड़ता। वह केवल भाग्य की अस्थिरता, संयोग की आकस्मिकता और विरह की विह्वलता दिखाने तथा लोभ के विरुद्ध शिक्षा देने के निमित्त लाई जान पड़ती है। पर उक्त उद्देश्य प्रधान होने पर भी वह घटना 'कार्य्य' से बिल्कुल असंबद्ध नहीं है। कवि ने बड़े कौशल से सूक्ष्म संबंध-सूत्र रखा है। उसी घटना के अंतर्गत रत्नसेन को समुद्र से पाँच रत्न प्राप्त हुए थे। जब अलाउद्दीन से चित्तौर गढ़ न टूट सका तब उसने संधि के लिये वे ही पाँच रत्न रत्नसेन से माँगे। अतः वे ही पाँच रत्न उस संधि के हेतु हुए जिसके द्वारा बादशाह का गढ़ में प्रवेश और रत्नसेन का बंधन हुआ। प्रबंध-निपुणता यही है कि जिस घटना का सन्निवेश हो वह ऐसी हो कि 'कार्य्य' से दूर या निकट का संबंध भी रखती हो और नए नए विशद भावों की व्यंजना का अवसर भी देती हो। देवपाल की दूती का आना भी इसी प्रकार की घटना है जो सतीत्व-गौरव की अपूर्व व्यंजना के लिये अवकाश भी निकालती है और रत्नसेन की उस मृत्यु का हेतु भी होती है जो 'कार्य्य' का ( पद्मावती के सती होने का ) कारण है।

'कार्य्यान्वय' के अंतर्गत ही यवनाचार्य्य ने कहा है कि कथावस्तु के आदि, मध्य और अंत तीनों स्फुट हों। आदि से आरंभ होकर कथा-प्रवाह मध्य में जाकर कुछ ठहरा सा जान पड़ता है, फिर चट 'कार्य्य' की ओर मुड़ पड़ता है। 'पदमावत' की कथा में हम इन तीनों अवस्थाओं को अलग अलग बता सकते हैं। पद्मावती के जन्म से लेकर रत्नसेन के सिंहलगढ़ घेरने तक कथा-प्रवाह का आदि समझिए; विवाह से लेकर सिंहलद्वीप से प्रस्थान तक मध्य और राघव चेतन के देश-निर्वासन से लेकर पद्मिनी के सती होने तक अंत। आदि अंश की सब घटनाएँ मध्य अर्थात् विवाह की ओर उन्मुख हैं। विवाह के उपरांत जो उत्सव, समागम और सुख-भोग आदि का वर्णन है उसे मध्य का विराम समझिए। उसके उपरांत राघव चेतन के निर्वासन से घटनाओं का प्रवाह 'कार्य्य' की ओर मुड़ता है।

प्राचीनों के अनुसार 'कार्य्य' महत्त्वपूर्ण होना चाहिए; नैतिक, सामाजिक या मार्मिक प्रभाव की दृष्टि से 'कार्य्य' बड़ा होना चाहिए, जैसा 'रामचरित' में रावण का वध है और 'पदमावत' में पद्मिनी का

सती होना। आधुनिक पाश्चात्य काव्य-मर्मज्ञ यह आवश्यक नहीं मानते। काउपर, वर्न्स और वर्ड्स्वर्थ के प्रभाव से अँगरेजी काव्यक्षेत्र में जो विचार-विप्लव घटित हुआ उसके अनुसार जिस प्रकार साधारण दीन-जीवन के दृश्य काव्य के उपयुक्त विषय हो सकते हैं उसी प्रकार साधारण 'कार्य्य' भी। इस संबंध में आज से पचहत्तर वर्ष पहले प्रसिद्ध साहित्य-मर्मज्ञ मैथिउ आर्नल्ड ने कहा है—

'मैं यह नहीं कहता कि कवित्व-शक्ति का विकास साधारण से साधारण 'कार्य्य' के वर्णन में नहीं हो सकता या नहीं होता है। पर यह खेद की बात है कि कवि विषय से भी और शक्ति तथा रोचकता प्राप्त करते हुए अपनी प्रभविष्णुताको दूनी न करके विषय को ही अपनी कवित्व-शक्ति से जबरदस्ती शक्ति और रोचकता प्रदान कराए"*।

इस प्रकार आर्नल्ड ने प्राचीन आदर्श का समर्थन किया है। जो हो; जायसी का भी यही आदर्श है। उन्होंने भी अपने काव्य के लिये 'महत्कार्य' चुना है जिसका आयोजन करनेवाली घटनाएँ भी बड़े डील-डौल की हैं—जैसे, बड़े बड़े कुँवरों और सरदारों की तैयारी, राजाओं और बादशाहों की लड़ाई इत्यादि। इसी प्रकार दृश्यवर्णन भी ऐसे ऐसे आते हैं, जैसे, गढ़, वाटिका, राजसभा, राजसी भोज और उत्सव आदि के वर्णन।

संबंध-निर्वाह के अंतर्गत ही गति के विराम का भी विचार कर लेना चाहिए। यह कहना पड़ता है कि 'पद्मावत' में कथा की गति के बीच बीच में अनावश्यक विराम बहुत से हैं। मार्मिक परिस्थिति के विवरण और चित्रण के लिये घटनावली का जो विराम पहले कह आए हैं वह तो काव्य के लिये अत्यंत आवश्यक विराम है क्योंकि उसी से सारे प्रबंध में रसात्मकता आती है, पर उसके अतिरिक्त केवल पांडित्य-प्रदर्शनके लिये, केवल जानकारी प्रकट करनेके लिये, केवल अपनी अभिरुचि के अनुसार असंबद्ध प्रसंग छेड़ने के लिये या

* Nor do I deny that the poetic faculty can and does manifest itself in treating the most trifling action, the most hopeless subject. But it is a pity that power should be compelled to impart interest and force, instead of receiving them from it, and thereby doubling its impressiveness.

—Preface to Poems.

इसी प्रकार की और बातों के लिये जो विराम होता है वह अनावश्यक होता है। जायसी के कथा-प्रवाह में इस प्रकार के अनावश्यक विराम बहुत से हैं। बहुत स्थलों पर तो ऐसा विराम कुछ दिनों से चली हुई उस भद्दी वर्णन-परंपरा का अनुसरण है जिसमे वस्तुओं के बहुत से नाम और भेद गिनाए जाते हैं—जैसे, सिंहलद्वीप-वर्णन खंड मे फलों, फूलों और घोड़ो के नाम, रत्नसेन के विवाह और बादशाह की दावत में पकवानों और व्यंजनों की बड़ी लंबी सूची। कुछ स्थलों पर तो केवल विषयो की जानकारी के लिये ही अनावश्यक विवरण जोड़े गए हैं—जैसे, पद्मावती के प्रथम समागम के अवसर पर सोलह शृंगारों और बारह आभरणो के नाम, सिंहलद्वीप से रत्नसेन और पद्मावती की यात्रा के समय फलित ज्योतिष के यात्रा-विचार की पूरी उद्धरणी, राघव का बादशाह के सामने पद्मिनी, चित्रणी आदि स्त्री-भेद-कथन।

कई स्थलों पर तो 'गूढ़ बानी' का दम भरनेवाले मूर्खपंथियों के अनुकरण पर कुछ पारिभाषिक शब्दों से टँकी हुई थिगलियाँ व्यर्थ जोड़ी जान पड़ती हैं, जैसे, विवाह के समय भोजन के अवसर पर बाजा न बजने पर यह कथोपकथन—

तुम पंडित जानहु सब भेदू। पहिले नाद भएउ तब बेदू॥
आदि पिता जो बिधि अवतारा। नाद सग जिउ ज्ञान सँचारा॥
नाद, वेद, मद, पैड़ जो चारी। काया महँ ते लेहु बिचारी॥
नाद हिये, मद उपनै काया। जहँ मद तहाँ पैड़ नहीं छाया॥

अथवा प्रथम समागम के समय सखियो द्वारा पद्मावती के छिपाए जाने पर राजा रत्नसेन का यह रसायनी प्रलाप—

का पूछहु तुम धातु, निछोही। जो गुरु कीन्ह अँतरपट ओही॥
सिधि-गुटिका अब मो सँग कहा। भएउँ रँग, सत हिये न रहा॥
सो न रूप जासौं दुख खोलौं। गएउ भरोस तहाँ का बोलौं?॥
जहँ लोना बिरवा कै जाती। कहि कै सँदेस आन को पाती?॥
कै जो पार हरतार करीजै। गंधक देखि अबहिं जिउ दीजै॥
तुम जोरा कै सूर मयकू। पुनि बिछोहि सो लीन कलंकू॥

इन उक्तियो में 'सोन', 'रूप', 'लोना', 'जोरा कै' आदि में श्लेष और मुद्रा का कुछ चमत्कार अवश्य है पर यह सारा कथन रस में सहायता पहुँचाता नहीं जान पड़ता। कुछ समाधान यह कहकर किया जा सकता है कि राजा रत्नसेन जोगी होकर अनेक प्रकार के साधुओ का

सत्संग कर चुका था इससे विप्रलब्ध दशा में उसका यह पारिभाषिक प्रलाप बहुत अनुचित नहीं। पर कवि ने इस दृष्टि से उसकी योजना नहीं की है। पारिभाषिक शब्दों से भरे कुछ प्रसंग घुसेड़ने का जायसी को शौक ही रहता है, जैसे पद्मावती के मुँह से "तौ लगि रंग न राँचे जौ लगि होई न चून" सुनते ही राजा रत्नसेन पानो की जातियाँ गिनाने लगता है—

हौं तुम नेह पियर भा पानू। पेड़ा हुँत सोनरास बखानू॥
सुनि तुम्हार ससार बड़ौना। जोग लीन्ह, तन कीन्ह गड़ौना॥
फेरि फेरि तन कीन्ह भुँजौना। औटि रकत रँग हिरदय औना॥

एक-देश-प्रसिद्ध ऐसे शब्दों के प्रयोग से जो 'अप्रतीतत्व' दोष आता है वह इस अनावश्यक विराम के बीच और भी खटकता है। कहीं कहीं तो जायसी कोई शब्द पकड़ लेते हैं और उसपर यों ही बिना प्रसंग के उक्तियाँ बाँध चलते हैं—जैसे, बादशाह की दावत के प्रकरण में पानी का जिक्र आया कि 'पानी' को ही लेकर वे यह ज्ञान-चर्चा छेड़ चले—

पानी मूल परख जौ कोई। पानी बिना सवाद न होई॥
अमृतपान यह अमृत आना। पानी सौ घट रहै पराना॥
पानी दूध औ पानी घीऊ। पानि घटे घट रहै न जीऊ॥
पानी माँझ समानी जोती। पानिहि उपजै मानिक मोती॥
सो पानी मन गरब न करई। सीस नाइ खाले पग धरई॥

जायसी के प्रबंध-विस्तार पर और कुछ विचार करने के पहले हमने उसके दो विभाग किए थे—इतिवृत्तात्मक और रसात्मक। इतिवृत्त की दृष्टि से तो विचार हो चुका। अब रसात्मक विधान की भी थोड़ी बहुत समीक्षा आवश्यक है। इतिवृत्त के विषय में यह कहा जा चुका है कि 'पद्मावत' के घटनाचक्र के भीतर ऐसे स्थलों का पूरा सन्निवेश है जो मनुष्य की रागात्मिका प्रकृति का उद्‌बोधन कर सकते है, उसके हृदय को भावमग्न कर सकते हैं। अब देखना यह है कि कवि ने घटनाक्रम के बीच उन स्थलो को पहचानकर उनका कुछ विस्तृत वर्णन किया है या नहीं। किसी कथा के सब स्थल ऐसे नहीं होते जिनमें मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति लीन होती हो। एक उदाहरण लीजिए। किसी वणिक को व्यापार में घाटा आया जिसके कारण उसके परिवार की दशा बहुत बुरी हो गई। कवि यदि इस घटना को लेगा तो वह घाटा किस प्रकार आया, पूरे ब्योरे के साथ इसका सूक्ष्म वर्णन न करके दीन दशा का ही विस्तृत

जेइ पाई वह छाँह अनूपा। फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा॥

कवि की यही पारमार्थिक प्रवृत्ति उसे हेतूत्प्रेक्षा की ओर ले जाती है। ऐसा जान पड़ता है मानो उसी अमराई की छाया से ही संसार में रात होती है और आकाश हरा ( प्राचीन दृष्टि हरे और नीले में इतना भेद नहीं करती थी ) दिखाई देता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, जिन दृश्यों का माधुर्य्य भारतीय हृदय पर चिरकाल से अंकित चला आ रहा है उन्हें चुनने की सहृदयता जायसी का एक विशेष गुण है। भारत के शृंगार-प्रिय हृदयों मे "पनिघट का दृश्य" एक विशेष स्थान रखता है। बूढ़े केशवदास ने पनिघट ही पर बैठे बैठे अपने सफेद बालों को कोसा था। सिंहल के पनिघट का वर्णन जायसी इस प्रकार करते हैं—

पानि भरै आवहिं पनिहारी। रूप सुरूप पदमिनि नारी॥
पदुम-गंध तिन्ह अंग बसाहीं। भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं॥
लंक सिंघिनी, सारँग-नैनी। हंस-गामिनी, कोकिल-बैनी॥
आवहिं झुंड सो पाँतिहि पाँती। गवन सोहाइ सो भाँतिहि भाँती॥
कनक-कलस, मुख-चंद दिपाहीं। रहस केलि सन आवहिं जाहीं॥
जा सहुँ वै हेरहिं चख नारी। बाँक नैन जनु हनहिं कटारी॥
केस मेघावर सिर ता पाई। चमकहिं दसन बीजु कै नाईं॥

पद्मावती का अलौकिक रूप ही सारी आख्यायिका का आधार है। अतः कवि इन पनिहारियों के रूप की झलक दिखाकर पद्मावती के रूप के प्रति पहले ही से इस प्रकार उत्कंठा उत्पन्न करता है—

माथे कनक-गागरी आहि रूप अनूप।
जेहिके अस पनिहारी सो रानी केहि रूप?

बाजार के वर्णन में 'हिंदू हाट' की अच्छी झलक मिल जाती है—

कनक-हाट सब कुहँकुहँ लीपी। बैठ महाजन सिंघलदीपी॥
सोन रूप भल भएउ पसारा। धवल सिरी पाते घर बारा॥

जिस प्रकार नगर हाट के वर्णन से सुख-समृद्धि टपकती है उसी प्रकार गढ़ और राजद्वार के अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन से प्रताप और आतंक—

निति गढ़ बाँचि चले ससि सूरू। नाहिं त होइ बाजि रथ चूरू॥
पारी नवौ बज्र कै साजी। सहस सहस तहँ बैठे पाजी॥
फिरहिं पाँच कोटवार सुभौरी। काँपै पाँव चपत वह पौरी॥

**जलक्रीड़ा-वर्णन**—सिंहलद्वीप-वर्णन के उपरांत सखियो-सहित पद्मावती की जलक्रीड़ा का वर्णन है ( दे० मानसरोदक खंड )। यद्यपि जायसी ने इस प्रकरण की योजना कौमार अवस्था के स्वाभाविक उल्लास और मायके की स्वच्छंदता की व्यंजना के लिये की है, पर सरोवर के जल में घुसी हुई कुमारियों का मनोहर दृश्य भी दिखाया है और जल मे उनके केशों के लहराने आदि का चित्रण भी किया है—

धरी नीर सब कचुकि सारी। सरवर मँह पैठीं सब नारी॥
पाइ नीर जानहु सब बेली। हुलसहिं करहि काम कै केली॥
करिल केस बिसहर बिस-भरे। लहरैं लेहि कवँल मुख धरे॥
नवल बसंत सँवारी करी। भई प्रगट जानहु रस-भरी॥
सरवर नहिं समाइ ससोग। चाँद नहाइ पैठ, लेइ तारा॥

उल्लास के अनुरूप क्रिया जायसी ने इस खेल में दिखाई है—

सँवरिहि सँवरि, गोरिहि गोरे। आपनि आपनि लीन्हि सो जोरी॥

**सिंहलद्वीप-यात्रा-वर्णन**—वस्तु-वर्णन की जो पद्धति जायसी की कही गई है उसे ध्यान मे रखते हुए मार्ग-वर्णन जैसा चाहिए वैसे की आशा नहीं की जा सकती। चित्तौर से कलिंग तक जाने मे मार्गमे न जाने कितने वन, पर्वत, नदी, निर्झर, ग्राम, नगर तथा भिन्न भिन्न आकृति के, प्रकृति के मनुष्य इत्यादि पड़ेंगे पर जायसी ने उसका चित्रण करने की आवश्यकता नहीं समझी। केवल इतना ही कहकर वे छुट्टी पा गए—

है आगे परवत कै बाटा। बिषम पहार अगम सुठि घाटा॥
बिच बिच नदी खोह औ नारा। ठाँवहिं ठाँव बैठ बटपारा॥

प्राकृतिक दृश्यों के साथ जायसी के हृदय का वैसा मेल नहीं जान पड़ता। मनुष्यों के शारीरिक सुख दुःख से, उनके आराम और तकलीफ से, उनका जहाँ तक संबंध होता है वहीं तक उनकी ओर उनका ध्यान जाता है। बगीचों और अमराइयों का वर्णन वे जो करते है सो केवल उनकी सघन शीतल छाया के विचार से। वन का जो वे वर्णन करते है वह कुश-कंटको के विचार से, कष्ट और भय के विचार से—

करहु दीठि थिर होइ बटाऊ। आगे देखि धरहु भुई पाऊ॥
जो रे उबट होइ परे भुलाने। गए मारि, पथ चले न जाने॥
पायँन पहिरि लेहु सब पौरी। काँट धँसै न गड़ै अँकरौरी॥
परे आइ बन परबत माहाँ। दडाकरन बीझ बन गाहाँ॥

वर्णन करेगा। पर यदि व्यापार-शिक्षा की किसी पुस्तक में यह घटना ली जायगी तो उसमें घाटे के कारण आदि का पूरा सूक्ष्म ब्योरा होगा। 'पद्मावत' की कथा पर विचार करके हम कह सकते है कि उसमें जिन जिन स्थलो का वर्णन अधिक ब्योरे के साथ है—ऐसे ब्योरे के साथ है जो इतिवृत्त मात्र के लिये आवश्यक नहीं, जैसे, किसी का वचन, संवाद या वस्तु-व्यापार-चित्रण—वे सब रागात्मिका वृत्ति से संबंध रखनेवाले है; केवल उन प्रसंगो को छोड़ जिनका उल्लेख 'अनावश्यक विराम' के अंतर्गत हो चुका है। काव्यो में विस्तृत विवरण दो रूपो में मिलते हैं—

( १ ) कवि द्वारा वस्तु-वर्णन के रूप में।

( २ ) पात्र द्वारा भाव-व्यंजना के रूप में।

## कवि द्वारा वस्तु-वर्णन

वस्तु-वर्णन कौशल से कवि लोग इतिवृत्तात्मक अंशों को भी सरस बना सकते है। इस बात मे हम संस्कृत के कवियो को अत्यंत निपुण पाते है। भाषा के कवियो में वह निपुणता नही पाई जाती। मार्ग चलने का ही एक छोटा सा उदाहरण लीजिए। राम किष्किधा की ओर जा रहे है। तुलसीदासजी इसका कथन इतिवृत्त के रूप में इस प्रकार करते है—

आगे चले बहुरि रघुराया। ऋष्यमूक पर्वत नियराया॥

किसी पर्वत की ओर जाते समय दूर से उसका दृश्य कैसा जान पड़ता है, फिर ज्यो ज्यों उसके पास पहुँचते है त्यों त्यों उस दृश्य में किस प्रकार अंतर पड़ता जाता है, पहाड़ी मार्ग के आसपास का दृश्य कैसा हुआ करता है, यह सब ब्योरा उक्त कथन मे या उसके आगे कुछ भी नहीं है। वही 'रघुवंश' के द्वितीय सर्ग में दिलीप, उनकी पत्नी और नंदिनी गाय के 'मार्ग चलने का दृश्य' देखिए। आसपास की प्राकृतिक परिस्थिति का कैसा सूक्ष्म विवरण कराता हुआ कवि चला है। चलने से मार्ग के स्वरूप को ही देखिए कवि ने कैसा प्रत्यक्ष किया है—

तस्याः खुरन्यासपवित्र-पांसुमपांसुलानां धुरि कीर्त्तनीया।
मार्गं मनुष्येश्वर-धर्मपत्नी श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्॥

'गाय के पीछे पीछे पगडंडी पर सुदक्षिणा चली' इतना ही तो इतिवृत्त है, पर 'जिसकी धूल पर नंदिनी के खुर के चिह्न पड़ते चलते हैं' यह विशेषण वाक्य देकर कवि ने उस मार्ग का चित्र भी खड़ा कर दिया है।

वस्तुओं की ऐसी संश्लिष्ट योजना द्वारा बिंबग्रहण कराने का—वस्तुओं के अलग अलग नाम लेकर अर्थग्रहण मात्र कराने का नहीं—प्रयत्न हिंदी-कवियों में बहुत ही कम दिखाई पड़ता है। अतः जायसी में भी हम इसका आभास बहुत कम पाते हैं। इन्होंने जहाँ जहाँ वस्तु-वर्णन किया है वहाँ वहाँ भाषा-कवियों की पृथक् पृथक् वस्तु-परिगणन वाली शैली ही पर अधिकतर किया है। अतः ये वर्णन परंपरा-मुक्त ही कहे जा सकते हैं। केवल वस्तु-परिगणन में नवीनता कहाँ तक आ सकती है? ऋतु का वर्णन होगा तो उस ऋतु में फलने-फूलने वाले पेड़-पौधों और दिखाई पड़नेवाले पक्षियों के नाम होंगे; वन का वर्णन होगा तो कुछ इने-गिने जंगली पेड़ों के नाम आ जायँगे; नगर या हाट का वर्णन होगा तो बाग-बगीचों, मकानों और दूकानों का उल्लेख होगा। नवीनता की संभावना तो कवि के निज निरीक्षण द्वारा प्रत्यक्ष की हुई वस्तुओं और व्यापारों की संश्लिष्ट योजना में ही हो सकती है। सामग्री नई नहीं होती, उसकी योजना नए रूप में होती है।

ऊपर लिखी बात का ध्यान रखते हुए भी यह मानना पड़ता है कि वस्तु-वर्णन के लिये जायसी ने घटना-चक्र के बीच उपयुक्त स्थलों को चुना है और उनका विस्तृत वर्णन अधिकतर भाषा-कवियों की पद्धति पर होते हुए भी बहुत ही भावपूर्ण है। अब संक्षेप में कुछ मुख्य स्थलों का उल्लेख किया जाता है जिन्हें वर्णन-विस्तार के लिये जायसी ने चुना है।

**सिंहलद्वीप वर्णन**—इसमें बगीचों, सरोवरों, कुओं, बावलियों, पक्षियों, नगर, हाट, गढ़, राजद्वार और हाथी-घोड़ों का वर्णन है। अमराई की शीतलता और सघनता का अंदाज इस वर्णन से कीजिए—

> घन अमराउ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुँत लागि अकासा॥
> तरिवर सबै मलयगिरि लाई। भइ जग छाँह, रैनि होइ आई॥
> मलय-समीर सोहावनि छाँहा। जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ॥
> ओही छाँह रैनि होइ आवै। हरियर सबै अकास देखावै॥
> पथिक जो पहुँचै सहिकै घामू। दुख बिसरै, सुख होइ बिसरामू॥

इतना कहते कवि का ध्यान ईश्वर के सामीप्य की भावना की ओर चला जाता है और वह उस अमर धाम की ओर, जहाँ पहुँचने पर भव-ताप से निवृत्ति हो जाती है, इस प्रकार संकेत करता है—

सघन ढाक-बन चहुँदिसि फूला। बहु दुख पाव उहाँ कर भूला॥
भाँखर जहाँ सो छाँड़हु पथा। हिलगि मकोय न फारहु कथा॥

फारसी की शायरी में जंगल और बयाबान का वर्णन केवल कष्ट या विपत्ति के प्रसंग में आता है। वहाँ जिस प्रकार चमन आनंदोत्सव का सूचक है उसी प्रकार कोह या बयाबान विपत्ति का। संस्कृत-साहित्य का जायसी को परिचय न था। वे वन, पर्वत आदि के अनुरंजनकारी स्वरूप के चित्रण की पद्धति पाते तो कहाँ पाते? उनकी प्रतिभा इस प्रकार की न थी कि किसी नई पद्धति की उद्भावना करके उसपर चल खड़ी होती।

समुद्र-वर्णन—हिंदी के कवियों में केवल जायसी ने समुद्र का वर्णन किया है, पर पुराणों के 'सात समुद्र' के अनुकरण के कारण समुद्र का प्रकृत वर्णन वैसा होने नहीं पाया। क्षीर, दधि और सुरा के कारण समुद्र के प्राकृतिक स्वरूप का अच्छा प्रत्यक्षीकरण न हो सका। आरंभ में समुद्र का जो सामान्य वर्णन है उसके कुछ पद्य अवश्य समुद्र की महत्ता और भीषणता का चित्र खड़ा करते हैं, जैसे—

समुद अपार सरग जनु लागा। सरग न घाल गनै बैरागा॥
उठै लहरि जनु ठाढ़ पहारा। चढ़ै सरग औ परै पतारा॥

विशेष समुद्रों में से केवल 'किलकिला समुद्र' का वर्णन अत्यंत स्वाभाविक तथा वैसे महत्त्व-जन्य आश्चर्य्य और भय का संचार करने-वाला है जैसा समुद्र के वर्णन द्वारा होना चाहिए—

भा किलकिल अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा॥
उठहि लहरि परवत कै नाईं। फिरि आवहिं जोजन सौ ताईं॥
धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा। सकल समुद जानहु भा ठाढ़ा॥
नीर होइ तर ऊपर सोई। माथे रंभ समुद जस होई॥

यदि इसी प्रकार के वर्णन का विस्तार और अधिक होता तो क्या अच्छा होता! "समुद अपार सरग जनु लागा" इस वाक्य में विस्तार का बहुत ही सुंदर प्रत्यक्षीकरण हुआ है। जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक समुद्र ही फैला हुआ और क्षितिज से लगा हुआ दिखाई पड़ता है। दृश्य रूप में विस्तार का यह कथन अत्यंत काव्योचित है। अँगरेजी के कवि गोल्डस्मिथ ने भी अपने "श्रांत पथिक" (Traveller) नामक काव्य में विस्तार का प्रत्यक्षीकरण—

A weary waste expanding to the skies.

(आकाश तक फैला हुआ मैदान) कह कर किया है। "परवत कै

नाई" इस साम्य द्वारा भी लहरों की ऊँचाई की जो भावना उत्पन्न की गई वह काव्यपद्धति के बहुत ही अनुकूल है। इसके स्थान पर यदि कहा गया होता कि लहरें बीस पचीस हाथ ऊँची उठती हैं तो माप शायद ठीक होती पर जो प्रभाव कवि उत्पन्न किया चाहता था वह उत्पन्न न होता। इसी से काव्य के वर्णनों में संख्या या परिमाण का उल्लेख नहीं होता और जहाँ होता भी है वहाँ उसका लाक्षणिक अर्थ ही लिया जाता है, जैसे "फिरि आवहिं जोजन सौ ताई" में। काव्य के वाक्य श्रोता की ठीक मान निर्धारित करनेवाली या सिद्धांत निरूपित करनेवाली निश्चयात्मिका बुद्धि को संबोधन करके नहीं कहे जाते।

समुद्र के जीव-जंतुओं का जो काल्पनिक और अत्युक्त वर्णन जायसी ने किया है उससे सूचित होता है कि उन्होंने किस्से-कहानियों में सुनी सुनाई बातें ही लिखी हैं, अपने अनुभव की नहीं। उन्होंने शायद समुद्र देखा भी न रहा हो।

सात समुद्रों के जो नाम जायसी ने लिखे हैं उनमें से प्रथम पाँच तो पुराणानुकूल हैं, पर अंतिम दो—किलकिला और मानसर—भिन्न हैं। पुराणों के अनुसार सात समुद्रों के नाम हैं—क्षार (खारे पानी का), जल (मीठे पानी का), क्षीर, दधि, घृत, सुरा और मधु। इनमें से जायसी ने घृत और मधु को छोड़ दिया है। सिंहलद्वीप के पास 'मानसर' की कल्पना वैसी ही है जैसी कैलास में इंद्र और अप्सराओं की।

**विवाह-वर्णन**—इसमें आनंदोत्सव और भोज का वर्णन है। सजावट आदि का चित्रण अच्छा है। इसमें राजा के ऐश्वर्य और प्रजा के उल्लास का आभास मिलता है—

रचि रचि मानिक माँड़व छावा। औ भुइँ रात बिछाव बिछावा॥
चदन खाँभ रचे बहु भाँती। मानिक दिया बरहि दिन राती॥
साजा राजा, बाजन बाजे। मदन सहाय दुवौ दर गाजे॥
औ राता सोने रथ साजा। भए बरात गोहने सब राजा॥
घर घर बंदन रचे दुवारा। जावत नगर गीत झनकारा॥
हाट बाट सब सिंघल, जहँ देखहु तहँ रात।
धनि रानी पदमावती, जेहिकै ऐसि बरात॥

बरात निकलने के समय अटारियों पर दूल्हा देखने की उत्कंठा से भरी स्त्रियों का जमावड़ा भारतवर्ष का एक बहुत पुराना दृश्य है। ऐसे

दृश्यों को रखना जायसी नहीं भूलते, यह पहले कहा जा चुका है। पद्मावती अपनी सखियों को लेकर वर देखने की उत्कंठा से कोठे पर चढ़ती है—

पदमावति धौराहर चढ़ी। दहुँ कस रवि जेहि कहँ ससि गढ़ी॥
देखि बरात सखिन्ह सों कहा। इन्ह महँ सो जोगी कहँ अहा?॥

सखियाँ उँगली से दिखाती हैं कि वह देखो—

जस रवि, देखु, उठै परभाता। उठा छत्र तस बीच बराता॥
ओहि माँझ भा दूलह सोई। और बरात संग सब कोई॥

इस कथन में कवि ने निपुणता यह दिखाई है कि सखी उस बरात के बीच पहले सबसे अधिक लक्षित होनेवाली वस्तु छत्र की ओर संकेत करती है; फिर कहती है कि उसके नीचे वह जोगी दूल्हा बना बैठा है।

भोज के वर्णन में व्यंजनों और पकवानों की नामावली है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने राम-सीता के विवाह का जितना विस्तृत वर्णन किया है उतना विस्तृत जायसी का नहीं है। गोस्वामीजी का रामचरितमानस लोक-पक्ष-प्रधान काव्य है और जायसी की 'पदमावत' में व्यक्तिगत प्रेम-साधना का पक्ष प्रधान है। अतः 'पदमावत' में लोक-व्यवहार का जो इतना चित्रण मिलता है उसी को बहुत समझना चाहिए। जैसा पहले कह आए हैं, इश्क की मसनवियों के समान यह लोकपक्ष-शून्य नहीं है।

**युद्ध-यात्रा-वर्णन**—सेना की चढ़ाई का वर्णन बड़ी धूमधाम का है। ग्रंथारंभ में शेरशाह की सेना के प्रसंग की चौपाइयाँ ही देखिए कितनी प्रभाव-पूर्ण हैं—

हय गय सेन चलै जग पूरी। परबत टूटि मिलहिं होइ धूरी॥
रेनु रैनि होइ रविहिं गरासा। मानुख पंखि लेहिं फिरि बासा॥
भुइँ उडि अंतरिक्ख मृदमडा। खंड खंड धरती बरम्हडा॥
डोलै गगन, इद्र डरि काँपा। बासुकि जाइ पतारहि चाँपा॥
मेरु धसमसै, समुद सुखाई। बनखँड टूटि खेह मिलि जाई॥
अगिलन्ह कहँ पानी लेइ बाँटा। पछिलन्ह कहँ नहिं काँदौ आँटा॥

इसी ढंग का चित्तौर पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का बड़ा विस्तृत वर्णन है—

बादसाह हठि कीन्ह पयाना। इंद्र-भँडार डोल भय माना॥
नब्बे लाख सवार जो चढ़ा। जो देखा सो सोने मढ़ा॥

बीस सहस घुम्मरहिं निसाना। गलगजहिं फेरहि असमाना॥
बैरख ढाल गगन गा छाई। चला कटक धरती न समाई॥
सहस पाँति गज मत्त चलावा। घुसत अकास, धँसत भुइँ आवा॥
बिरिछ उपारि पेड़ि स्यो लेही। मस्तक झारि तोरि मुख देहीं॥
कोउ काहू न सँभारै, होत आव डर चाप।
धरति आपु कहँ काँपै, सरग आपु कहँ काँप॥
आवै डोलत सरग पतारू। काँपै धरति, न अँगवै भारू॥
टूटहि परबत मेरु पहारा। होइ होइ चूर उड़हिं होइ छारा॥
सत खँड धरती भइ षट खंडा। ऊपर अस्ट भए बरम्हडा॥
गगन छपान खेह तस छाई। सूरुज छपा, रैनि होइ आई॥
दिनहिं राति अस परी अचाका। भा रवि अस्त, चद रथ हाँका॥
मँदिरन्ह जगत दीप परगसे। पथी चलत बसेरहि बसे॥
दिन के पखि चरत उड़ि भागे। निसि के निसरि चरै सब लागे॥

कैसे घोर सृष्टि-विप्लव का दृश्य जायसी ने सामने रखा है! मानव व्यापारो की व्यापकता और शक्तिमत्ता का प्रभाव वर्णन करने मे जायसी को पूरी सफलता हुई है। मनुष्य की शक्ति तो देखिए! उसकी एक गति मे सारी सृष्टि मे खलबली पड़ गई है। पृथ्वी और आकाश दोनो हिल रहे है। एक के सात के छ ही खड रहते दिखाई देते है और दूसरे के सात के आठ हुए जाते है। दिन की रात हो रही है। जिन जायसी ने विशुद्ध प्रेम-मार्ग मे मनुष्य की मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का साक्षात्कार किया—सच्चे प्रेमी की वियोगाग्नि की लपट को लोक-लोकांतर मे पहुँचाया—उन्होने यहाँ उसकी भौतिक शक्ति का प्रसार दिखाया है।

इस वर्णन मे विवग्रहण कराने के हेतु चित्रण का प्रयत्न भी पाया जाता है। इसमे कई व्यापारों की संश्लिष्ट योजना कई स्थलो पर दिखाई देती है। जैसे, हाथी पेड़ो को पेड़ी सहित उखाड़ लेते है और फिर मस्तक झाड़ते हुए उन्हें तोड़कर मुँह मे डाल लेते है। इस रूप मे वर्णन न होकर यदि एक स्थान पर यह कहा जाता कि हाथी पेड़ उखाड़ लेते है, फिर कहीं कहा जाता कि वे मस्तक झाड़ते है और आगे चलकर यह कहा जाता है कि वे डालियाँ मुँह मे डाल लेते है तो यह संकेतरूप मे (अर्थग्रहण मात्र कराने के लिये, चित्त मे प्रतिविव उपस्थित करने के लिये नही) कथन मात्र होता, चित्रण न होता। इसी प्रकार पहाड़ टूटते है, टूटकर चूर चूर होते है और फिर धूल होकर ऊपर छा जाते

हैं। इस पंक्ति में भी व्यापारों की शृंखला एक में गुथी हुई है। ये वर्णन संस्कृत-चित्रण-प्रणाली पर है। जिन व्यापारों या वस्तुओं में जायसी के हृदय की वृत्ति पूर्णतया लीन हुई है उनका ऐसा चित्रण मानो आप से आप हो गया है।

इसके आगे राजा रत्नसेन के घोड़ों, हाथियों और उनकी सजावट आदि का अच्छे विस्तार के साथ वर्णन है। सब बातों की दृष्टि से यह युद्धयात्रा-वर्णन सर्वांगपूर्ण कहा जा सकता है।

**युद्ध-वर्णन**—घमासान युद्ध वर्णन करने का भी जायसी ने अच्छा आयोजन किया है। शस्त्रों की चमक और झनकार, हाथियों की रेलपेल, सिर और धड़ का गिरना आदि सब कुछ है —

हस्ती सहुँ हस्ती हठि गाजहि। जनु परवत परवत सौं बाजहिं॥
कोउ गयद न टारे टरहीं। टूटहिं दाँत, सूँड़ गिरि परहीं॥
बाजहि खडग, उठै दर आगी। भुइँ जरि चहै सरग कहँ लागी॥
चमकहिं बीजु होइ उजियारा। जेहि सिर परे होइ दुइ फारा॥
बरसहिं सेल बान, होइ काँदो। जस बरसे सावन औ भादों॥
लपटहिं कोपि परहिं तरवारी। औ गोला ओला जस भारी॥
जूझे बीर लखौ कहँ ताईं। लेइ अछरी कैलास सिधाईं॥

अंतिम पंक्ति में वीरों के प्रति जो सम्मान का भाव प्रकट किया है वह हिंदुओं और मुसलमानों दोनों की महत्त्व-भावना के अनुकूल है। रणक्षेत्र में वीरगति को प्राप्त शूरवीरों का स्वागत जैसे हिंदुओं के स्वर्ग में अप्सराएँ करती हैं वैसे ही मुसलमानों के बहिश्त में भी। लोक-सम्मत आदर्श के प्रति यही पूज्य बुद्धि जायसी को कबीर आदि व्यक्ति-पक्ष ही तक दृष्टि ले जाने वाले साधकों से अलग करती है।

भारतीय कवि-परंपरा युद्ध की भीषणता के बीच गीध, गीदड़ आदि के रूप में कुछ बीभत्स दृश्य भी लाया करती है। जायसी ने भी इस परंपरा का अनुसरण किया है—

आनँद ब्याह करहि मँसखावा। अब भख जनम जनम कहँ पावा॥
चौंसठ जोगिनि खप्पर पूरा। बिग जंबुक घर बाजहि तूरा॥
गिद्ध चील सब मंडप छावहिं। काग कलोल करहि औ गावहिं॥

**बादशाह-भोज-वर्णन**—जैसा पहले कह आए हैं, इसमें अनेक युक्तियों से बनाए हुए व्यंजनों, पकवानों, तरकारियों और मिठा-

इयों इत्यादि की बड़ी लंबी सूची है—इतनी लंबी कि पढ़नेवाले का जी ऊब जाता है। यह भद्दी परंपरा जायसी के पहले से चली आ रही थी। सूरदासजी ने भी इसका अनुसरण किया है।

**चित्तौरगढ़-वर्णन**—यह भी उसी ढंग का है जिस ढंग का सिंहलगढ़ का वर्णन है। इसमें भी सात पौरे हैं, पर नवद्वार-वाली कल्पना नहीं आई है क्योंकि कवि को यहाँ किसी अप्रस्तुत अर्थ का समावेश नहीं करना था। चित्तौर बहुत दिनों तक हिंदुओं के बल, प्रताप और वैभव का केंद्र रहा। सारी हिंदू जाति उसे सम्मान और गौरव की दृष्टि से देखती रही। चित्तौर के नाम के साथ हिंदूपन का भाव लगा हुआ था। यह नाम हिंदुओं के मर्म को स्पर्श करनेवाला है। भारतेंदु के इस वाक्य में हिंदू-हृदय की कैसी वेदना भरी है—

हाय चित्तौर! निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहि मँझारी॥

उसी प्रिय भूमि के संबंध से जायसी क्षत्रिय राजाओं के मुँह से कहलाते हैं—

चितउर हिंदुन कर अस्थाना। सत्रु तुरुक हठि कीन्ह पयाना॥
है चितउर हिंदुन कै माता। गाढ परे तजि जाइ न नाता॥

चित्तौर के इसी गौरव और ऐश्वर्य्य के अनुरूप गढ़ का यह वर्णन है—

सातौ पँवरी कनक-केवारा। सातहु पर बाजहिं घरियारा॥
खँड खँड साज पलँग औ पीढ़ी। मानहुँ इंद्रलोक कै सीढ़ी॥
चंदन बिरिछ सुहाई छाहाँ। अमृत कुंड भरे तेहि माँहा॥
फरे खजहजा दारिउँ दाखा। जो ओहि पथ जाइ सो चाखा॥
कनक छत्र सिंघासन साजा। पैठत पँवरि मिला लेइ राजा॥
चढा साह, गढ़ चितउर देखा। सब संसार पायँ तर लेखा॥
देखा साह गगन गढ, इंद्रलोक कर साज।
कहिय राज फुर ताकर, करै सरग अस राज॥

**षट् ऋतु, बारह मास-वर्णन**—उद्दीपन की दृष्टि से तो इन पर विचार 'विप्रलंभ शृंगार' और 'संयोग शृंगार' के अंतर्गत हो चुका है। वहाँ इनके नाना दृश्यों का जो आनंददायक या दुःखदायक स्वरूप दिखाया गया है वह किसी अन्य (आलंबन रत्नसेन) के प्रति प्रतिष्ठित रतिभाव के कारण है। उद्दीपन से वर्णन दृश्यों के स्वतंत्र प्रभाव की दृष्टि

से नहीं होता। पर यहाँ उन दृश्यों का विचार हमें इस दृष्टि से करना है कि उनका मनुष्य मात्र की रागात्मिका वृत्ति के आलंबन के रूप में चित्रण कहाँ तक और कैसा हुआ है। ऐसे दृश्यों में स्वतः एक प्रकार का आकर्षण होता है, यह बात तो सहृदय मात्र स्वीकार करेंगे। इसी आकर्षण के कारण प्राचीन कवियों ने प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का सूक्ष्म निरीक्षण करके तथा उनके संश्लिष्ट व्योरों को संश्लिष्ट रूप में ही रखकर दृश्यों का मनोहर चित्रण किया है। पर जैसा पहले कह आए हैं जायसी के ये वर्णन उद्दीपन की दृष्टि से हैं जिसमें वस्तुओं और व्यापारों की झलक मात्र—जो नामोल्लेख मात्र से भी मिल सकती है—काफी समझी जाती है। पर बहुत ही प्यारे शब्दों में दिखाई हुई यह झलक है बहुत मनोहर। कुछ उदाहरण 'विप्रलंभ शृंगार' के अंतर्गत दिए जा चुके हैं, कुछ और लीजिए—

अद्रा लाग, लागि भुइँ लेई। मोहि बिनु पिउ को आदर देई?॥
सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी॥
भा परगास काँस बन फूले। कत न फिरे, बिदेसहि भूले॥
कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी॥
टप टप बूँद परहिं, अउ ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला॥
तरिवर झरहिं, झरहिं बन-ढाखा। भइ ओनंत फूलि फरि साखा॥
बौरे आम फरै अब लागे। अबहुँ आउ घर, कंत सभागे॥

यह झलक बारहमासे में हमें मिलती है। षट्ऋतु के वर्णन में सुख-संभोग का ही उल्लेख अधिक है, प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों का बहुत कम। दोनों का वर्णन यद्यपि उद्दीपन की दृष्टि से है, दोनों में यद्यपि प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारों की अलग अलग झलक भर दिखाई गई है, पर एक आध जगह कवि का अपना निरीक्षण भी अत्यंत सूक्ष्म और सुंदर है, जैसे—

चमक बीजु, बरसै जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना॥

इसमें बिजली का चमकना और उसकी चमक में बूँदों का सुवर्ण के समान झलकना इन दो व्यापारों की एक साथ योजना दृश्य पर कुछ देर ठहरी हुई दृष्टि सूचित करती है। यही बात वैसाख के इस रूपक वर्णन में भी है—

सरवर-हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई॥
बिहरत हिया करहु, पिउ! टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका॥

तालो का पानी जब सूखने लगता है तब पानी-सूखे हुए स्थान बहुत सी दरारे पड़ जाती है जिससे खाने कटे दिखाई पड़ते है। वर्षा के आरंभ की झड़ी (दबॅगरा) जब पड़ती है तब वे दरारे फिर मिल जाती है। विदीर्ण होते हुए हृदय को सूखता हुआ सरोवर और प्रिय के दृष्टिपात को 'दबॅगरा' बनाकर कवि ने प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का बहुत ही अच्छा परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त दो प्रस्तुत (वैसाख का वर्णन है इससे सूखते हुए सरोवर का वर्णन प्रस्तुत है, नागमती वियोगिनी है इससे विदीर्ण होते हृदय का वर्णन भी प्रस्तुत ही है) वस्तुओ के बीच सादृश्य की भावना भी अत्यंत माधुर्य्य-पूर्ण और स्वाभाविक है। मै तो समझता हूँ इसके जोड़ की सुंदर और स्वाभाविक उक्ति हिंदी काव्यों मे बहुत ढूंढ़ने पर कहीं मिले तो मिले।

बारहमासे के संबंध मे यह जिज्ञासा हो सकती है कि कवि ने वर्णन का आरंभ आषाढ़ से क्यो किया है, चैत से क्यो नही किया। बात यह है कि राजा रत्नसेन ने गंगा-दसहरे को चित्तौर से प्रस्थान किया था जैसा कि इस चौपाई से प्रकट है—

दसवॅ दावॅ कै गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ महरा॥

यह वचन नागमती ने उस समय कहा है जब राजा रत्नसेन सिंहल से लौटकर चित्तौर के पास पहुंचा है। इसका अभिप्राय यह है कि जो केवट दसहरे के दिन मेरी दशम दशा (मरण) करके गया था, जान पड़ता है कि वह नाव लेकर आ रहा है। दसहरे के पॉच दिन पीछे ही आषाढ़ लगता है इससे कवि ने नागमती की वियोग-दशा का आरंभ आषाढ़ से किया है।

**रूप-सौंदर्य्य-वर्णन**—जैसा कि पहले कह आए है रूप-सौंदर्य्य ही सारी आख्यायिका का आधार है अतः पद्मावती के रूप का बहुत ही विस्तृत वर्णन तोते के मुँह से जायसी ने कराया है। यह वर्णन यद्यपि परंपरा-भुक्त ही है, अधिकार परंपरा से चले आते हुए उपमानो के आधार पर ही है, पर कवि की भोली भाली और प्यारी भाषा के बल से यह श्रोता के हृदय को सौंदर्य्य की अपरिमित भावना से भर देता है। सृष्टि के जिन जिन पदार्थों मे सौंदर्य्य की झलक है पद्मावती की रूप-राशि की योजना के लिये कवि ने मानो सबको एकत्र कर दिया है। जिस प्रकार कमल, चंद्र, हंस आदि अनेक पदार्थों से सौंदर्य्य लेकर तिलोत्तमा का रूप-संघटित हुआ था उसी प्रकार कवि ने मानो पद्मावती

का रूप-विधान किया है। पद्मावती का सौंदर्य्य अपरिमेय है, अलौकिक है और दिव्य है। उसके वर्णन मात्र से, उसकी भावना मात्र से, राजा रत्नसेन बेसुध हो जाता है। उसकी दृष्टि संसार के सारे पदार्थों से फिर जाती है, उसका हृदय उसी रूप-सागर में मग्न हो जाता है। वह जोगी होकर निकल पड़ता है।

पद्मावती के रूप का वर्णन दो स्थानों पर है। एक स्थान पर हीरामन सूआ चित्तौर में राजा रत्नसेन के सामने वर्णन करता है; दूसरे स्थान पर राघव चेतन दिल्ली में बादशाह अलाउद्दीन के सामने। दोनों स्थानों पर वर्णन नखशिख की प्रणाली पर और सादृश्य-मूलक है अतः उसका विचार अलंकारों के अंतर्गत करना अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। यहाँ पर केवल उन दो चार स्थलों का उल्लेख किया जाता है जहाँ सौंदर्य्य के सृष्टि-व्यापी प्रभाव की लोकोत्तर कल्पना पाई जाती है, जैसे—

सरवर-तीर पदमिनी आई। खोपा छोरि केस मुकलाई॥
ओनई घटा, परी जग छाहाँ।
बेनी छोरि झार जौ बाग। सरग पतार होइ अँधियार॥

केशों की दीर्घता, सघनता और श्यामता के वर्णन के लिये सादृश्य पर जोर न देकर कवि ने उनके प्रभाव की उद्भावना की है। इस छाया और अंधकार में माधुर्य्य और शीतलता है, भीषणता नहीं।

पद्मावती के पुतली फेरने से उत्पन्न इस रस-समुद्र-प्रवाह को तो देखिए—

जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अडार जाहि पल माहाँ॥
जबहि फिराहिं गगन गहि जोग। अस वै भँवर चक्र के जोरा॥
पवन झकोरहि देहि हिलोग। सरग लाइ भुँइ लाइ बहोरा॥

उसके मंद मृदु हास के प्रभाव से देखिए कैसी शुभ्र उज्ज्वल शोभा कितने रूप धारण करके सरोवर के बीच विकीर्ण हो रही है—

बिगसा कुमुद देखि ससि-रेखा। भइ तहँ ओप जहाँ जो देखा॥
पावा रूप, रूप जस चाहा। ससि-मुख सहुँ दरपन होइ रहा॥
नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर॥
हँसत जो देखा हस भा, दसन ज्योति नग हीर॥

पद्मावती के हँसते ही चंद्र-किरण सी आभा फूटी इससे सरोवर के कुमुद खिल उठे। यही तक नहीं। उसके चंद्रमुख के सामने वह सारा सरोवर दर्पण सा हो उठा अर्थात् उसमें जो जो सुंदर वस्तुएँ दिखाई

पड़ती थी वे सब मानो उसी के अंगो की छाया थी। सरोवर में चारों ओर जो कमल दिखाई पड़ रहे थे वे उसके नेत्रो के प्रतिविंब थे; जल जो इतना स्वच्छ दिखाई पड़ रहा था वह उसके स्वच्छ निर्मल शरीर के प्रतिविंब के कारण। उसके हास की शुभ्र कांति की छाया वे हंस थे जो इधर उधर दिखाई पड़ते थे और उस सरोवर मे (जिसे जायसी ने एक झील या छोटा समुद्र माना है) जो हीरे थे वे उसके दशनों की उज्ज्वल दीप्ति से उत्पन्न हो गए थे। पद्मावती का रूप-वर्णन करते करते किस अनंत सौंदर्य्य-सत्ता की ओर कवि की दृष्टि जा पड़ी है! जिसकी भावना संसार के सारे रूपो को भेदती हुई उस मूल सौंदर्य्य-सत्ता का कुछ आभास पा चुकी है वह सृष्टि के सारे सुंदर पदार्थों मे उसी का प्रतिविंब देखता है।

इसी प्रकार उस "पारस-रूप" का आभास—जिसके छायास्पर्श से यह जगत् रूपवान् है—जायसी ने उस स्थल पर भी दिया है जहाँ अलाउद्दीन ने दर्पण मे पद्मावती के स्मित आनन का प्रतिविंब देखा है—

बिहँसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साह दरपन महँ देखी॥
होतहि दरस, परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना॥

उसकी एक जरा सी झलक मिलते ही सारा जगत् सौंदर्य्यमय हो गया, जैसे पारस मणि के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। उस "पारस-रूप दरस" के प्रभाव से शाह बेसुध हो जाता है और उस दर्पण को एक सरोवर के रूप मे देखता है।

"नखसिख खंड" मे भी दाँतो का वर्णन करते करते कवि की भावना इस अनंत ज्योति की ओर बढ़ती जान पड़ती है—

जेहि दिन दसन-जोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई॥
रवि ससि नखत दिपहि ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी॥

इसी रहस्यमय परोक्षाभास के कारण जायसी की अत्युक्तियाँ उतनी नही खटकती जितनी शृंगाररस के उद्भट पद्यो की वे उक्तियाँ जो ऊहा अथवा नाप-जोख द्वारा निर्धारित की जाती हैं। "शरीर की निर्मलता" और "जल की स्वच्छता" के बीच जो बिंब-प्रतिविंब संबंध जायसी ने देखा है वह हृदय को कितना प्यारा जान पड़ता है। इसके सामने बिहारी की वह स्वच्छता जिसमे भूषण "दोहरे, तिहरे, चौहरे" जान पड़ते है, कितनी अस्वाभाविक और कृत्रिम लगती है। शरीर के ऊपर दर्पण के

गुण का यह आरोप भद्दा लगता है। यह बात नहीं है कि उपमान के चाहे जिस गुण का आरोप हम उपमेय में करें वह मनोहर ही होगा।

कवियों की प्रथा के अनुसार पद्मावती की सुकुमारता का भी अत्युक्ति-पूर्ण वर्णन जायसी ने किया है। उसकी शय्या पर फूल की पँखड़िया चुन चुनकर बिछाई जाती है। यदि कहीं समूचा फूल रह जाय तो रात भर नींद न आए—

पखुरी काढ़हि फूलन्ह सेती। सोई डासहि सौंर सपेती॥
फूल समूचै रहै जो पावा। व्याकुल होइ, नींद नहि आवा॥

बिहारी इससे भी बढ़ गए हैं। उन्होंने अपनी नायिका के सारे शरीर को फोड़ा बना डाला है। वह तो "झिझकति हिये गुलाब के झवाँ झवाँवत पाय"। जायसी ने भी इस प्रकार की भद्दी अत्युक्तियाँ की हैं, जैसे—

नस पानन्ह कै काढ़हि हेरी। अधर न गडै फाँस ओहि केरी॥
मकरि क तार ताहि कर चीरू। सो पहिरे छिरि जाइ सरीरू॥

सुकुमारता की ऐसी अत्युक्तियाँ अस्वाभाविकता के कारण केवल ऊहा द्वारा मात्रा या परिमाण के आधिक्य की व्यंजना के कारण, कोई रमणीय चित्र सामने नहीं लाती। प्राचीन कवियों के "शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्य्य" का जो प्रभाव हृदय पर पड़ता है वह इस खरोंट और छालेवाले सौकुमार्य्य का नहीं। कहीं कहीं गुण की अवस्थिति मात्र का दृश्य जितना मनोरम होता है उतना उस गुण के कारण उत्पन्न दशांतर का चित्र नहीं। जैसे, नायिका के ओठ की ललाई का वर्णन करते करते यदि कोई 'तद्गुण' अलंकार की झोंक में यह कह डाले कि जब वह नायिका पीने के लिये पानी ओठों से लगाती है तब वह खून हो जाता है तो यह दृश्य कभी रुचिकर नहीं लग सकता। ईंगुर, बिंबा आदि सामने रखकर उस लाली की मनोहर भावना उत्पन्न कर देना ही काफी समझना चाहिए। उस लाली के कारण क्या क्या बातें पैदा हो सकती हैं, इसका हिसाब किताब बैठाना जरूरी नहीं।

इसी प्रकार की विरसता-पूर्ण अत्युक्ति ग्रीवा की कोमलता और स्वच्छता के इस वर्णन में भी है—

पुनि तेहि ठाँव परी तिनि रेखा। घूँट जो पीक लीक सब देखा॥

इस वर्णन से तो चिड़ियों के अंडे से तुरंत फूटकर निकले हुए बच्चे का चित्र सामने आता है। वस्तु या गुण का परिमाण अत्यंत अधिक बढ़ाने से ही सर्वत्र सरसता नहीं आती। इस प्रकार की वस्तु-व्यंग्य उक्तियों

की भरमार उस काल से आरंभ हुई जब से 'ध्वनि' का आग्रह बहुत बढ़ा, और सब प्रकार की व्यंजनाएं उत्तम काव्य समझी जाने लगीं। पर वस्तु-व्यंजनाएँ ऊहा द्वारा ही की और समझी जाती हैं, सहृदयता से उनका नित्य संबंध नहीं होता।

वस्तु-वर्णन का संक्षेप में दिग्दर्शन कराके हम यह कह देना आवश्यक समझते हैं कि जिन जिन वस्तुओं का विस्तृत वर्णन हुआ है उन सबको हम 'आलंबन' मानते हैं। जो वस्तुएँ किसी पात्र के आलंबन के रूप में नहीं आतीं उन्हें कवि और श्रोता दोनों के आलंबन समझना चाहिए। कवि ही आश्रय बनकर श्रोता या पाठक के प्रति उनका प्रत्यक्षीकरण करता है। उनके प्रत्यक्षीकरण में कवि की भी वृत्ति रमती है और श्रोता या पाठक की भी। वन, सरोवर, नगर, प्रदेश, उत्सव, सजावट, युद्ध, यात्रा, ऋतु इत्यादि सब वस्तुएँ और व्यापार मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति के सामान्य आलंबन हैं। अतः इनके वर्णनों को भी हम रसात्मक वर्णन मानते हैं। आलंबन मात्र के वर्णन में भी रसात्मकता माननी पड़ेगी। 'नख-शिख' की पुस्तकों में शृंगार रस के आलंबन का ही वर्णन होता है और वे काव्य की पुस्तकें मानी जाती हैं। जिन वस्तुओं का कवि विस्तृत चित्रण करता है उनमें से कुछ शोभा, सौंदर्य्य या चिरसाहचर्य्य के कारण मनुष्य के रतिभाव का आलंबन होती हैं; कुछ भव्यता, विशालता, दीर्घता आदि के कारण उसके आश्चर्य का; कुछ घिनौने रूप के कारण जुगुप्सा का, इत्यादि। यदि बलभद्र-कृत 'नखशिख' और गुलाम नबी-कृत 'अंगदर्पण' रसात्मक काव्य हैं तो कालिदास-कृत हिमालय-वर्णन और भू-प्रदेश-वर्णन भी।

## पात्र द्वारा भाव-व्यंजना

पात्र द्वारा जिन स्थायी भावों की प्रधानतः व्यंजना जायसी ने कराई है वे रति, शोक और युद्धोत्साह हैं। दो-एक स्थानों पर क्रोध की भी व्यंजना है। भय का केवल आलंबन मात्र हम समुद्र-वर्णन के भीतर पाते हैं, किसी पात्र द्वारा भय का प्रदर्शन नहीं। बीभत्स का भी आलंबन ही प्रथानुसार युद्ध-वर्णन में है। हास का तो अभाव ही समझना चाहिए। गौण भावों की व्यंजना कुछ तो अन्य भाव के संचारियों के रूप में है, कुछ स्वतंत्र रूप में। जायसी की भाव-व्यंजना के संबंध में यह समझ रखना चाहिए कि उन्होंने जबरदस्ती

विभाव, अनुभाव और संचारी ठूसकर पूर्ण रस की रस्म अदा करने की कोशिश नहीं की है। भाव का उत्कर्ष जितने से सध गया है उतने ही से उन्होंने प्रयोजन रखा है। अनुभावों की योजना कम है। 'पद्मावत' में यद्यपि शृंगार ही प्रधान है पर उसके संभोग-पक्ष में स्तंभ, स्वेद, रोमांच नहीं मिलते। वियोग में अश्रुओं का बाहुल्य है। हावों का भी विधान नहीं है। विप्रलंभ में वैवर्ण्य आदि थोड़े से सात्विकों का कहीं कहीं आभास मिलता है। इस कमी से रतिभाव के स्वरूप के उत्कर्ष में तो कोई कमी नहीं हुई है पर संभोग-पक्ष उतना अनुरंजनकारी नहीं हुआ है।

भाव-व्यंजना का विचार करते समय दो बातें देखनी चाहिए—

(१) कितने भावों और गूढ़ मानसिक विकारों तक कवि की दृष्टि पहुँची है।

(२) कोई भाव कितने उत्कर्ष तक पहुँचा है।

पहली बात में हम जायसी को बढ़ा-चढ़ा नहीं पाते। इनमें गोस्वामी तुलसीदासजी की सी वह सूक्ष्म अंतर्दृष्टि नहीं है जो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों के बीच संघटित होनेवाली अनेक मानसिक अवस्थाओं का विश्लेषण करती है। कैकेयी और मंथरा के संवाद में मानव-प्रकृति का जैसा सूक्ष्म अध्ययन पाया जाता है वैसा पद्मिनी और दूती के संवाद में नहीं। क्षोभ से उत्पन्न उदासीनता और आत्मनिंदा, आश्चर्य से मिश्र चकपकाहट ऐसे गूढ़ भावों तक जायसी की पहुँच नहीं पाई जाती। सारांश यह कि मनुष्य-हृदय की अधिक अवस्थाओं का सन्निवेश जायसी में नहीं मिलता। जो भाव संचारियों में गिना दिए गए हैं उनका भी बहुत ही कम संचरण किसी स्थायी भाव के भीतर दिखाई पड़ता है। इन गिनाए हुए भावों के अतिरिक्त और न जाने कितने छोटे छोटे भाव और मानसिक दशाएँ हैं जो व्यवहार में देखी जाती हैं और अनुसंधान करने पर भावुक कवियों की रचनाओं में बराबर पाई जायँगी। आश्चर्य ऐसे लोगों पर होता है जो 'देव' कवि के 'छल' नामक एक और संचारी ढूँढ निकालने पर वाह वाह का पुल बाँधते हैं और देव को एक आचार्य समझते हैं। गोस्वामीजी की आलोचना में मैं कई ऐसे भाव दिखा चुका हूँ जिनके नाम संचारियों की गिनती में नहीं हैं। संचारियों में गिनाए गए भाव तो उपलक्षण मात्र हैं। खैर, यहाँ केवल इतना ही कहना है कि जायसी में भावों के भीतर संचारियों का

सन्निवेश बहुत कम मिलता है। 'पदमावत' मे रतिभाव की प्रधानता है पर उसके अंतर्गत भी हम 'असूया', 'गर्व' आदि दो एक संचारियो को छोड़ 'व्रीड़ा' 'अवहित्था' आदि अनेक भावो का कही पता नही पाते। इनके अवसर आए है पर कवि ने इनका विधान नही किया है—जैसे पद्मिनी के मंडप-गमन का अवसर, प्रथम समागम का अवसर।

अब दूसरी बात भाव के उत्कर्ष पर आइए। इसमे जायसी बहुत बढ़े चढ़े है, पर जैसा दिखाया जा चुका है यह उत्कर्ष विप्रलंभ-पक्ष मे ही अधिक दिखाई पड़ता है।

शृंगार का बहुत कुछ विवेचन विप्रलंभ-शृंगार और संभोग-शृंगार के अंतर्गत हो चुका है। यहाँ पर केवल रतिभाव के अंतर्गत कुछ मानसिक दशाओं की व्यंजना के उदाहरण ही काफी समझता हूँ। रत्नसेन से विवाह हो जाने पर पद्मावती अपनी कामदशा का वर्णन कैसे सीधे सादे पर भावगर्भित वचनो द्वारा करती है—

कौन मोहनी दहुँ हुति तोही। जो तोहि बिथा सो उपनी मोही॥
बिनु जल मीन तलफ जस जीऊ। चातक भइउँ कहत "पिउ पीऊ"॥
जरिउँ बिरह जस दीपक-बाती। पथ जोहत भइँ सीत सेवाती॥
भइउँ बिरह दहि कोइल कारी। डारि डारि जिनि कूकि पुकारी॥
कौन सो दिन जब पिउ मिलै, यह मन राता जासु।
वह दुख देखै मोर सब, हौं दुख देखौं तासु॥

दोहे मे 'अभिलाष' का कैसा सच्चा प्रकृत स्वरूप है। प्रेम प्रेम चाहता है। इसी अभिलाष के अंतर्गत अपना दुःख प्रिय के सामने रखने, और प्रिय भी मेरे विरह मे दुःखी है इस बात का निश्चय प्राप्त करने की उत्कठा प्रेमी को होती है। रतिभाव के संचारी के रूप मे "आशा" या "विश्वास" की बड़ी सुंदर व्यंजना जायसी ने पद्मावती के मुँह से कराई है। देवपाल की दूती के यह कहने पर कि "कस तुँइ, बारि, रहसि कुँभिलानी?" पद्मावती कहती है—

तौ लौ रहौ झुरानी जौ लहि आव सो कंत॥
एहि फूल, एहि सेंदुर होइ सो उठै बसंत॥

इसी फूल (शरीर) से जिसे तुम इतना कुँभलाया हुआ कहती हो और इसी सिंदूर की फीकी रेखा से जो रूखे सिर मे दिखाई पड़ती है फिर वसंत का विकास और उत्सव हो सकता है, यदि पति आ जाय। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि होली के उत्सव के लिये जायसी ने

अबीर के स्थान पर बराबर सिंदूर का व्यवहार किया है। संभव है, उस समय सिंदूर से ही अबीर बनाया जाता रहा हो।

शृंगार के संचारी 'वितर्क' का एक उदाहरण, जो नया नहीं कहा जा सकता, लीजिए। बादल की नवागता वधू युद्ध के लिये जाने को तैयार पति की ओर देख रही है और खड़ी खड़ी सोचती है—

रहौ लजाइ तो पिउ चलै, कहा तो कह मोहि ढीठ।

'वात्सल्य' के उद्गार दो स्थानो पर है। एक तो वहाँ जहाँ राजा रत्नसेन जोगी होकर घर से निकलने को तैयार होता है; फिर वहाँ जहाँ बादल रत्नसेन को छुड़ाने की प्रतिज्ञा करने के उपरांत युद्ध-यात्रा के लिये चलने को उद्यत होता है। दोनो स्थानो पर व्यंजना माता के मुख से है पर विस्तीर्ण और गंभीर नहीं है, साधारण है। परिस्थिति के अनुसार रत्नसेन की माता का वात्सल्य 'सुख के अनिश्चय' के द्वारा व्यक्त होता है और बादल की माता का 'शंका संचारी' द्वारा। रत्नसेन की माता कहती है—

सब दिन रहेहु करत तुम भोगू। सो कैसे साधब तप जोगू॥
कैसे धूप सहब बिनु छाहाँ? कैसे नींद परिहि भुइँ माहाँ॥
कैसे ओढब काथरि कथा? कैसे पाँव चलब तुम पंथा॥
कैसे सहब खनहि खन भूखा? कैसे खाब कुरकुटा रूखा॥

जितना दुःख औरों के दुःख को देख सुनकर होता है उतना दुःख प्रिय व्यक्ति के सुख के अनिश्चय मात्र से होता है। यह अनिश्चय प्रिय व्यक्ति के आँख से ओझल होते ही उत्पन्न होने लगता है। तुलसी और सूर ने कौशल्या और यशोदा के मुख से ऐसे अनिश्चय की बड़ी सुंदर व्यंजना कराई है। ऐसे स्थलो पर इस अनिश्चय का कारण रतिभाव ही होता है; अतः जिस प्रकार 'शंका' रतिभाव का संचारी होती है उसी प्रकार यह 'अनिश्चय' भी। परिस्थिति-भेद से कहीं संचारी केवल 'अनिश्चय' तक रहता है और कहीं 'शंका' तक पहुँचता है। छोटी अवस्था का बादल जिस समय रण-क्षेत्र में जाने को तैयार होता है, उस समय माता की यह 'शंका' बहुत ही स्वाभाविक है—

बादल राय मोर तुइ बारा। का जानसि कस होइ जुझारा॥
बादसाह पुहुमीपति राजा। सनमुख होइ न हमीरहि छाजा॥
बरिसहिं सेल बान घन घोरा। धीरज धीर न बाँधिहिं तोरा॥
जहाँ दलपती दलमलहिं, तहाँ तोर का काज?
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुख राज॥

शंका तक पहुँचता हुआ यह 'अनिश्चय' प्रेम-प्रसूत है, गूढ़ रति-भाव का द्योतक है—

Where love is great, the littlest doubts are fears.
Where little fears grow great, great love is there.
—Shakespeare.

मायके के स्वाभाविक प्रेम की कैसी गंभीर व्यंजना इन पंक्तियों में है—

गहबर नैन आए भरि आँसू। छाँड़ब यह सिंघल कैलासू॥
छाँड़िउँ नैहर, चलिउँ बिछोई। एहि रे दिवस कहँ हौं तब रोई॥
छाँड़िउँ आपनि सखी सहेली। दूरि गवन तजि चलिउँ अकेली॥
नैहर आइ काह सुख देखा। जनु होइगा सपने कर लेखा॥
मिलहु सखी हम तहँवाँ जाहीं। जहाँ जाइ पुनि आउब नाहीं॥
हम तुम मिलि एकै सँग खेला। अब बिछोह आनि गिउ मेला॥

दूती और पद्मावती के संवाद में पद्मावती द्वारा पातिव्रत की बड़ी ही विशद व्यंजना हुई है। पातिव्रत कोई एक भाव नहीं है। वह धर्म और पूज्यबुद्धि-मिश्रित दांपत्य प्रेम है। उसके अंतर्गत कभी रतिभाव की व्यंजना होती है, कभी प्रिय के महत्त्व को प्रकाशित करनेवाले पूज्य भाव की, कभी प्रिय के महत्त्व के गर्व की और कभी धर्मानुराग की। पहले पद्मावती उस दूती को अपने अनन्य प्रेम की सूचना इस प्रकार देती है—

अहा न राजा रतन अँजोरा। केहि क सिंघासन केहि क पटोरा॥
चहुँ दिसि यह घर भा अँधियारा। सब सिंगार लेइ साथ सिधारा॥
काया बेलि जानु तब जामी। सींचनहार आव घर स्वामी॥

इसपर जब दूती दूसरे पुरुष की बात कहती है तब वह क्रोध से तमतमा उठती है और धर्म के तेज से भरे ये वचन कहती है—

रँग ताकर हौं जारौं काँचा। आपन तजि जो पराएहि राँचा॥
दूसर करै जाइ दुइ बाटा। राजा दुइ न होहिं एक पाटा॥

साथ ही अपने पति का महत्त्व दिखाती हुई उसपर इस प्रकार गर्व प्रकट करती है—

कुल कर पुरुष-सिंघ जेहि केरा। तेहि थल कैस सियार बसेरा?॥
हिया फार कूकुर तेहि केरा। सिंघहि तजि सियार-मुख हेरा॥

* * * * * *

सोन नदी अस मोर पिउ गरुवा। पाहन होइ परै जौ हरुवा॥
जेहि ऊपर अस गरुआ पीऊ। सो कस डोलाए डोलै जीऊ?॥

पिछली चौपाई में 'गरुआ' और 'डोलै' शब्दों के प्रयोग द्वारा कवि ने जो एक अगोचर मानसिक विषय का गोचर भौतिक व्यापार के रूप में प्रत्यक्षीकरण किया है वह काव्य-पद्धति का अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण है, पर उससे भी बढ़कर है व्यंजित गर्व की मार्मिकता। यह गर्व पातिव्रत की अचलधुरी है। जिसमें यह गर्व नहीं, वह पतिव्रता नहीं। एक बार एक लुच्चे ने रास्ते में एक स्त्री को छेड़ा। वह स्त्री छोटी जाति की थी पर उसके ये शब्द मुझे अब तक याद हैं कि 'क्या तू मेरे पति से बहुत सुंदर है?'

'सम्मान' और 'कृतज्ञता' ऐसे भावों की व्यंजना भी जायसी ने बड़ी ही मार्मिक भाषा में कराई है। बादल जब राजा रत्नसेन को दिल्ली से छुड़ाकर लाता है तब पद्मिनी बादल की आरती-पूजा करके कहती है—

यह गज-गवन गरब सौं मोरा। तुम राखा बादल औ गोरा॥
सेंदुर तिलक जो आँकुस अहा। तुम राखा माथे तौ रहा॥
काछ काछि तुम जिउ पर खेला। तुम जिउ आनि मँजूसा मेला॥
राखा छात, चँवर औधारा। राखा छुद्रघंट झनकारा॥

राजा रत्नसेन के बंदी होने पर नागमती जो विलाप करती है उसके बीच पद्मिनी के प्रति उसकी झुँझलाहट कितनी स्वाभाविक है, देखिए—

पदमिनि ठगिनी भइ कित साथा। जेहि ते रतन परा पर हाथा॥

शोक के दो प्रसंग 'पदमावत' में आए है—पहला रत्नसेन के जोगी होने पर, दूसरा रत्नसेन के मारे जाने पर। इनमें से पात्र द्वारा व्यंजना पहले ही प्रसंग में है, दूसरे मे केवल करुण दृश्य का चित्रण है। रत्नसेन के जोगी होकर घर से निकलने पर रानियाँ जो विलाप करती है उसमें पहले सुख के आधार के हटने का उल्लेख है फिर उससे उत्पन्न विषाद की व्यंजना है—

रोवहिँ रानी तजहिँ पराना। नाँचहिँ बार करहिँ खरिहाना॥
चूरहिं गिउ-अभरन उर हारा। अब कापर हम करब सिँगारा॥
जाकहँ कहहिँ रहसि कै पीऊ। सोइ चला, काकर यह जीऊ॥
मरै चहहिँ पै मरै न पावहिँ। उठै आगि सब लोग बुझावहिं॥

रसज्ञो की दृष्टि में यहाँ करुण रस की पूरी व्यंजना है, क्योंकि विभाव के अतिरिक्त रोना और बाल नोचना अनुभाव और विषाद संचारी भी है।

जैसा पहले कहा जा चुका है, राजा रत्नसेन के मरने पर कवि ने जिस करुण परिस्थिति का दृश्य दिखाया है वह अत्यंत प्रशांत और

गंभीर है। रानियों के मुख से क्षुब्ध आवेग की व्यंजना नहीं कराई गई है, केवल पद्मिनी के उस समय के रूप की झलक दिखाकर परिस्थिति की गंभीरता का आभास दिया गया है—

पदमावति पुनि पहिरि पटोरी। चली साथ पिय के होइ जोरी॥
सूरुज छिपा रैनि होइ गई। पूनिउँ ससि अमावस भई॥
छूटे केस, मोति लर छूटीं। जानहुँ रैनि नखत सब टूटीं॥
सेंदुर परा जो सीस उघारी। आगि लागि चह जग अँधियारी॥

सूर्य्य-रूपी रत्नसेन अस्त हुआ। पद्मावती के पूर्णचंद्र-मुख में एक कला भी नही रह गई। पहले एक स्थान पर कवि कह चुका है कि "चाँदहिं कहाँ जोति औ करा? सूरुज के जोति चाँद निरमरा"। जब सूर्य्य ही नही रहा, तब चंद्रमा मे कला कहाँ से रह सकती है? काले केश छूट पड़े है, मोती बिखर कर गिर रहे हैं—अमावस्या की अंधेरी छा गई है जिसमें नक्षत्र इधर उधर टूटकर गिरते दिखाई पड़ते है। वह घने काले केशों के बीच सिंदूर की रेखा दिखाई पड़ी—अब घोर अंधकार के बीच आग भी लगा चाहती है—सती की ज्योति से सारा जगत् जगमगाया चाहता है।

देखिए पद्मिनी के तात्कालिक रूप में ही कवि ने प्रस्तुत करुण परिस्थिति की गंभीरता की पूर्ण छाया दिखा दी है। पद्मिनी सारे जगत् के शोक का स्वच्छ आदर्श हो गई है जिसमे सारे जगत् के गंभीर शोक का प्रशांत स्वरूप दिखाई पड़ता है। कुछ काल के लिये पद्मिनी के सहित सारा जगत् शोक-संसार मे मग्न दिखाई पड़ता है। फिर पद्मिनी और नागमती दोनो इस दुःखमय जगत् से मुँह फेरती है और उस लोक की ओर दृष्टि करती है जहाँ दुःख का लेश नहीं—

दोउ सौति चढ़ि खाट बईठीं। औ सिवलोक परा तिन्ह दीठीं॥

इस जगत् से दृष्टि फिरते ही सारे दुःखद्वंद्व छूट गए हैं। अब न झगड़ा और कलह है, न क्लेश और संताप। दोनों सपत्नी एक साथ मिलकर दूसरे लोक में पति से जा मिलने की आशा से परिपूर्ण और शांत दिखाई पड़ती हैं और सती होने जा रही हैं। आगे आगे बाजा बजता चलता है। यह प्रेममार्ग के विजय का बाजा है—

एक जो बाजा भएउ बियाहू। अब दुसरे होइ ओर निबाहू॥

रत्नसेन की चिता तैयार है। दोनों रानियाँ चिता की सात प्रदक्षिणा

करती है। एक बार जो भाँवरी ( विवाह के समय ) हुई थी उससे इस संसार यात्रा में रत्नसेन का साथ हुआ था, अब इस भाँवरी से परलोक के मार्ग मे साथ हो रहा है—

एक जो भाँवरि भई बियाही। अब दुसरे होइ गोहन जाहीं॥
जियत, कंत! तुम हम्ह घर लाई। मुए कंठ नहिं छाँड़हिं साँई॥
अही जो, गाँठि कत! तुम जोरी। आदि अंत लहि जाइ न छोरी॥
एहि जग काह जो अछहि न आथी। हम तुम नाह! दुवौ जगसाथी॥

सतियों के मुख पर आनंद की शुभ्र ज्योति दिखाई पड़ती है। इस लोक से मुँह मोड़ अब वे दूसरे लोक के मार्ग के द्वार पर खड़ी है। इस लोक की अग्नि मे अब उन्हें क्लेश और ताप पहुँचाने की शक्ति नहीं रही है। उनके लिये वह सबसे शीतल करनेवाली वस्तु हो गई है क्योंकि वह पति-लोक का द्वार खोला चाहती है। हिंदू सती का यह कैसा गंभीर, शांत और मर्मभेदी उत्सव है!

आजु सूर दिन अथवा, आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिय, आजु आगि हम्ह जूड़॥

फिर क्या था?

लेइ सर ऊपर खाट बिछाई। पौढ़ीं दुवौ कंत गर लाई।
लागि कठ आगि हिय होरी। छार भई जरि, अंग न मोरी॥

क्रोध का प्रसंग केवल वहाँ आया है जहाँ राजा रत्नसेन को अलाउद्दीन की चिट्ठी मिलती है। पर वहाँ भी रौद्ररस का विस्तृत संचार नहीं है। क्रोध का वह आवेश नहीं है जिसमें नीति और विचार का पता नहीं रह जाता। चिट्ठी पढ़ी जाने पर—

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा। जानहु देव तड़पि घन राजा॥
का मोहि सिंघ देखावसि आई। कहौ तौ सारदूल धरि खाई॥
तुरुक जाइ कहु मरै न धाई। होइहि इसकंदर कै नाई॥

पर इस उग्र वचन के उपरांत ही राजा अलाउद्दीन के संदेश के औचित्य-अनौचित्य की मीमांसा करने लगता है—

भलेहि जौ साह भूमि-पति भारी। माँग न कोउ पुरुष कै नारी॥

रस की रस्म के विचार से तो उपर्युक्त वर्णन पूरा ठहर जाता है क्योंकि इसमे अनुभाव के रूप में डाट-डपट और उग्र वचन तथा संचारी के रूप में अमर्ष मौजूद है। यहीं तक नहीं साहित्य के

आचार्यों ने आत्मावदान-कथन अर्थात् अपने मुंह से अपनी बड़ाई को भी रौद्ररस का अनुभाव कहा है। आगे वह भी मौजूद है—

हौं रनथँभउर-नाथ हमीरू। कलपि माथ जेइ दीन्ह सरीरू॥
हौं सो रतनसेन सकबंधी। राहु बेधि जीता सैरंधी॥
हनुमत सरिस भार जेइ काँधा। राघव सरिस समुद जेइ बाँधा॥
बिक्रम सरिस कीन्ह जेइ साका। सिंघलदीप लीन्ह जौ ताका॥
जौ अस लिखा, भएउँ नहिं ओछा। जियत सिंघ कै गह को मोछा?॥

पर यह सामग्री होते हुए भी यह कहना पड़ता है कि रौद्ररस का परिपाक जायसी में नहीं है। न तो अनुभावों और संचारियों की मात्रा ही यथेष्ट है, न स्वरूप में ही पूर्ण स्फुट है। जायसी का कोमल भावपूर्ण हृदय उग्र वृत्तियों के वर्णन के उपयुक्त नहीं था।

**वीररस** का वर्णन अच्छा है। अलाउद्दीन के चित्तौरगढ़ घेरने पर तो केवल सेना की सजावट और तैयारी, चढ़ाई की हलचल तथा युद्ध की घमासान के वर्णन में ही कवि रह गया है, युद्धोत्साह की व्यंजना किसी व्यक्ति द्वारा नहीं कराई गई है। उत्साह की व्यंजना गोरा-बादल के प्रसंग में हमें मिलती है। पद्मिनी के विलाप पर दोनों वीरों ने कैसी क्षात्र तेज से भरी प्रतिज्ञा की है—

जौ लगि जियहि न भागहिं दोऊ। स्वामि जियत कित जोगिनि होऊ॥
उए अगस्त हस्ति जब गाजा। नीर घटे घर आइहि राजा॥
बरषा गए अगस्त के दीठी। परै पलानि तुरंगन पीठी॥
बेधौं राहु छोड़ावहुँ सूरू। रहै न दुख कर मूल अँकूरू॥

इसको कहते हैं उत्साह—आशा से भरी हुई साहस की उमंग। अगस्त्य के उदय होने पर, नदियों और तालों का जल जब घटने लगेगा तब बंदीगृह से छूटकर राजा अपने घर आ जायँगे। शरत्काल आते ही चढ़ाई हो जायगी।

बादल की माता जब हाथियों की रेलपेल और युद्ध की भीषणता दिखाकर उसे रोकना चाहती है, तब वह कहता है—

मातु न जानेसि बालक आदी। हौं बादला सिंघ रन-बादी॥
सुनि गज-गह अधिक जिउ तपा। सिंघ जाति कहुँ रहहिं न छपा॥
तब दलगंजन गाजि सिंवेला। सौंह साह सौं जुरौं अकेला॥
को मोहिं सौंह होइ मैमंता। फारौं सूँड, उखारौं दंता।
जुरौं स्वामि सँकरे जस ढारा। औ भिवँ जस दुरजोधन मारा॥

अंगद कोपि पाँव जस राखा। टेकौं कटक छतीसौ लाखा॥
हनुमत सरिस जब बल जोरौं। दहौं समुद्र, स्वामि-बँदि छोरौं॥

इसी प्रकार के उत्साह-पूर्ण वाक्य वृद्ध वीर गोरा के है जब वह केवल हजार कुँवर लेकर बादशाह की उमड़ती हुई सेना को रोकने खड़ा होता है। ऐसे वाक्यों में अपने बल का पूर्ण निश्चय और समुपस्थित कर्म की अल्पता का भाव प्रधान हुआ करता है। इस वीरदर्प को उत्साह का मुख्य अवयव समझना चाहिए। देखिए इस उक्ति में कैसा असर्षामिश्रित वीरदर्प है—

रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात।
जो लगि रहिर न धोवौं, तब लगि होइ न रात॥

**हास्य और बीभत्स** ये दो रस ऐसे हैं जिनमें आलंबन के स्वरूप से ही कवि-परंपरा काम चलाती है, आश्रय द्वारा व्यंजना की अपेक्षा नहीं रहती। वस्तु-वर्णन के अंतर्गत युद्ध-वर्णन में डाकिनियो आदि का वीभत्स दृश्य दिया जा चुका है। जैसा कहा जा चुका है, भय के भी आलंबन का ही चित्रण कवि ने किया है। हास्यरस का तो 'पदमावत' में अभाव ही है।

अब एक विशेष बात पर पाठकों का ध्यान आकर्षित करके इस भाव-व्यंजना के प्रकरण को समाप्त करता हूँ। एक स्थायी भाव दूसरे स्थायी भाव का संचारी होकर आ सकता है, यह बात तो ग्रंथों में प्रसिद्ध ही है। पर रीति-ग्रंथों में जो संचारी कहे गए है उनमे से भी कुछ ऐसे है जो कभी कभी स्थायी बनकर आते है और दूसरे भावों को अपना संचारी बनाते है। जायसी एक छोटा सा उदाहरण देते है। जब पद्मावती ने सुना कि सपत्नी नागमती के बगीचे मे बड़ी चहलपहल है और राजा भी वहीं बैठा है तब—

सुनि पदमावति रिस न सँभारी। सखिन्ह साथ आई फुलवारी॥

यह रिस या असर्ष स्वतंत्र भाव नही है, क्योंकि पद्मावती का कोई अनिष्ट नागमती ने नहीं किया था। यह "असूया" का संचारी होकर आया है; क्योंकि यह "असूया" से उत्पन्न भी है और रस की दृष्टि से उससे विरुद्ध भी नही पड़ता। एक संचारी का दूसरे संचारी का स्थायी बनकर आना लक्षण-ग्रंथो के अभ्यासियों को कुछ विलक्षण अवश्य लगेगा। किसी दूसरे स्थल पर हम कुछ संचारियों को विभाव, अनुभाव और संचारी तीनों से युक्त दिखाएँगे।

उक्त उदाहरण में यह नहीं कहा जा सकता कि जिस प्रकार 'असूया' रतिभाव का संचारी होकर आया है उसी प्रकार 'अमर्ष' भी। इस अमर्ष का सीधा लगाव 'असूया' से है न कि रति से। यदि असूया न होती तो यह अमर्ष न होता। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि किसी स्थायी भाव का संचारी भी विभाव, अनुभाव और संचारी से युक्त हो तो क्या वह भी स्थायी कहा जायगा। स्थायी तो वह अवश्य होगा पर ऐसा स्थायी नहीं जो रसावस्था तक पहुँचनेवाला हो। इन सब बातों का विवेचन मैं कभी अन्यत्र करूँगा, यहाँ इतना ही दिग्दर्शन बहुत है।

---

## अलंकार

अधिकतर अलंकारों का विधान सादृश्य के आधार पर होता है। जायसी ने सादृश्य-मूलक अलंकारों का ही प्रयोग अधिक किया है। सादृश्य की योजना दो दृष्टियों से की जाती है—स्वरूप-बोध के लिये और भाव तीव्र करने के लिये। कवि लोग सदृश वस्तुएँ भाव तीव्र करने के लिये ही अधिकतर लाया करते हैं। पर बाह्य कारणों से अगोचर तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिये जहाँ सादृश्य का आश्रय लिया जाता है वहाँ कवि का लक्ष्य स्वरूप-बोध भी रहता है। भगवद्भक्तों की ज्ञानगाथा में सादृश्य की योजना दोनों दृष्टियों से रहती है। 'माया' को ठगिनी और काम, क्रोध आदि को बटपार, संसार को मायका और ईश्वर को पति रूप में दिखाकर बहुत दिनों से रमते साधु उपदेश देते आ रहे हैं। पर इन सदृश वस्तुओं की योजना से केवल स्वरूप-बोध ही नहीं होता, भावोत्तेजना भी प्राप्त होती है। बल्कि यों कहना चाहिए कि उत्तेजित भाव ही उन सदृश वस्तुओं की कल्पना करता है। विरक्तों के हृदय में माया और काम क्रोध आदि का भाव ही उस भय की ओर ध्यान ले जाता है जो ठगों और बटपारों से होता है। तात्पर्य यह कि स्वरूप-बोध के लिये भी काव्य में जो सदृश वस्तु लाई जाती है उसमें यदि भाव उत्तेजित करने की शक्ति भी हो तो काव्य के स्वरूप की प्रतिष्ठा हो जाती है। नाना राग-बंधनों से युक्त इस संसार के छूटने का दृश्य कैसा मर्मस्पर्शी है! भावुक हृदय में उसका क्षणिक साम्य मायके से स्वामी के घर जाने में

दिखाई पड़ता है। बस इतनी ही झलक मिल सकती है। सदृश-वस्तु के इस कथन द्वारा अगोचर आध्यात्मिक तथ्यों का कुछ स्पष्टीकरण भी हो जाता है और उनकी रुखाई भी दूर हो जाती है।

यह कहा जा चुका है कि जायसी का कथानक व्यंग्यगर्भित है। यहाँ पर इतना और जान लेना चाहिए कि भगवत्पक्ष को प्रस्तुत मानने पर अप्रस्तुत की योजना दोनो दृष्टियों से की हुई मिलेगी—अगोचर बातों को गोचर स्वरूप देने की दृष्टि से भी और भावोत्तेजन की दृष्टि से भी। साधक के मार्ग की कठिनाइयों की भावना उत्पन्न करने के लिये कवि विषम पहाड़, अगम घाट तथा खोह और नालों की ओर ध्यान ले जाता है; काम,क्रोध आदि की भीषणता दिखाने को वह ऐसे प्रबल चोरों को सामने करता है जिनका घर का कोना कोना देखा हो और जो दिन-रात चोरी की ताक में रहते हों।

सादृश्य की योजना में पहले यह देखना चाहिए कि जिस वस्तु, व्यापार या गुण के सदृश वस्तु, व्यापार या गुण सामने लाया जाता है वह ऐसा तो नहीं है जो किसी भाव—स्थायी या क्षणिक—का आलंबन या आलंबन का अंग हो। यदि प्रस्तुत वस्तु, व्यापार आदि ऐसे है तो यह विचार करना चाहिए कि उनके सदृश अप्रस्तुत वस्तु या व्यापार भी उसी भाव के आलंबन हो सकते हैं या नहीं। यदि कवि द्वारा लाए हुए अप्रस्तुत वस्तु व्यापार ऐसे हैं तो कविकर्म सिद्ध समझना चाहिए। उदाहरण के लिये रमणी के नेत्र, वीर का युद्धार्थ गमन और हृदय की कोमलता लीजिए। इन तीनों के वर्णन क्रमशः रतिभाव, उत्साह और श्रद्धा द्वारा प्रेरित समझे जायेंगे और कवि का मुख्य उद्देश्य यह ठहरेगा कि वह श्रोता को भी इन भावों की रसात्मक अनुभूति कराए। अतः जब कवि कहता है कि नेत्र कमल के समान है, वीर सिंह के समान झपटता है और हृदय नवनीत के समान है तो ये सदृश वस्तुएँ सौंदर्य्य, वीरत्व और कोमल सुखदता की व्यंजना भी साथ ही साथ करेंगी। इनके स्थान पर यदि हम रसात्मकता का विचार न करके केवल नेत्र के आकार, झपटने की तेजी और प्रकृति की नरमी की मात्रा पर ही दृष्टि रखकर कहें कि 'नेत्र बड़ी कौड़ी या बादाम के समान है' 'वीर बिल्ली की तरह झपटता है' और 'हृदय सेमर के घूए के समान है' तो काव्योपयुक्त कभी न होगा। कवियों की प्राचीन परंपरा मे जो उपमान बँधे चले आ रहे है उनमे अधिकांश सौंदर्य्य आदि की

अनुभूति के उत्तेजक होने के कारण रस मे सहायक होते है। पर कुछ ऐसे भी है जो आकार आदि ही निर्दिष्ट करते है; सौंदर्य्य की अनुभूति अधिक करने में सहायक नहीं होते—जैसे जंघों की उपमा के लिये हाथी की सूँड़, नायिका की कटि की उपमा के लिये भिड़ या सिंहनी की कमर इत्यादि। इनसे आकार के चढ़ाव-उतार और कटि की सूक्ष्मता भर का ज्ञान होता है, सौदर्य्य की भावना नहीं उत्पन्न होती; क्योंकि न तो हाथी की सूँड़ में ही दांपत्य रति के अनुकूल अनुरंजनकारी सौदर्य्य है और न भिड़ की कमर में ही। अतः रसात्मक प्रसंगों में इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि अप्रस्तुत (उपमान) भी उसी प्रकार के भाव के उत्तेजक हो प्रस्तुत जिस प्रकार के भाव का उत्तेजक हो।

उपर्युक्त कथन का यह अभिप्राय कदापि नहीं कि ऐसे प्रसंगों में पुरानी बँधी हुई उपमाएँ ही लाई जायँ, नई न लाई जायँ। 'अप्रसिद्धि' मात्र उपमा का कोई दोष नहीं, पर नई उपमाओं की सारी जिम्मेदारी कवि पर होती है। अतः रसात्मक प्रसंगो मे ऊपर लिखी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। जहाँ कोई रस स्फुट न भी हो वहाँ भी यह देख लेना चाहिए कि किसी पात्र के लिये जो उपमान लाया जाय वह उस भाव के अनुरूप हो जो कवि ने उस पात्र के संबंध मे अपने हृदय मे प्रतिष्ठित किया है और पाठक के हृदय मे भी प्रतिष्ठित करना चाहता है। राम की सेवा करते हुए लक्ष्मण के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न होता है अतः उनकी सेवा का यह वर्णन जो गोस्वामीजी ने किया है कुछ खटकता है—

सेवत लखन सिया रघुबीरहि। जिमि अविवेकी पुरुष सरीरहि।

इस दृष्टांत में लक्ष्मण का सादृश्य जो अविवेकी पुरुष से किया गया है उससे सेवा का आधिक्य तो प्रकट होता है पर लक्ष्मण के प्रति प्रतिष्ठित भाव मे व्याघात पड़ता है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि लक्ष्मण का सादृश्य अविवेकी पुरुष के साथ कवि ने नहीं दिखाया है बल्कि लक्ष्मण के सेवा-कर्म का सादृश्य अविवेकी के सेवा-कर्म से दिखाया गया है। ठीक है, पर लक्ष्मण का कर्म श्लाघ्य है और अविवेकी का निंद्य, इसलिये ऐसे अप्रस्तुत कर्म को मेल मे रखने से प्रस्तुत कर्म-संबंधिनी भावना मे बाधा अवश्य पड़ती है। रसात्मक प्रसंगो मे केवल किसी बात के आधिक्य या न्यूनता की हद से ही काम नहीं चलता। जो भावुक और रसज्ञ न होकर केवल अपनी दूर की पहुँच

दिखाया चाहते है वे कभी कभी आधिक्य या न्यूनता की हद दिखाने मे ही फँसकर भाव के प्रकृति स्वरूप को भूल जाते है। कोई आँखों के कोनो को कान तक पहुँचाता है, कोई नायिका की कटि को ब्रह्म के समान अगोचर और सूक्ष्म बताता है, कोई यार की कमर "कहाँ है, किधर है" यही पता लगाने मे रह जाता है। नायिका शृंगार का आलंबन होती है। उसके स्वरूप के संघटन में इस बात का ध्यान चाहिए कि उसकी रमणीयता बनी रहे। प्राचीन कवि जहाँ मृणाल की ओर संकेत करके सूक्ष्मता और सौंदर्य्य एक साथ दिखाते थे, वहाँ लोग या तो भिड़ की कमर सामने लाने लगे या कमर ही गायब करने लगे। चमत्कारवादी इसमें अद्भुत-रस का आनंद मानने लगे। पर सोचने की बात है कि नायिका अद्भुत-रस का आलंबन है या शृंगार-रस का। शृंगार-रस के आलंबन में 'अद्भुत' केवल सौंदर्य का विशेषण हो सकता है। 'अद्भुत सौदर्य्य' हम दिखा सकते हैं पर सौदर्य्य को गायब नहीं कर सकते

कहने की आवश्यकता नहीं कि ऊपर जो बात कही गई है वह ऐसी वस्तुओं के संबंध में कही गई है जिनका वर्णन कवि किसी भाव में मग्न होकर उसी भाव में मग्न करने के लिये, करता है—जैसे, नायिका का वर्णन, प्राकृतिक शोभा का वर्णन, वीर कर्म का वर्णन इत्यादि इत्यादि। जहाँ वस्तुएँ ऐसी होती हैं कि उनके संबंध में अलग कोई वेगयुक्त भाव (जैसे रति, भय, हर्ष, घृणा, श्रद्धा इत्यादि) नहीं होता, केवल उनके रूप, गुण, क्रिया आदि का ही गोचर स्पष्टीकरण करना या अधिकता न्यूनता की ही भावना तीव्र करना अपेक्षित होता है—उनके द्वारा किसी भाव की अनुभूति की वृद्धि करना नहीं—वहाँ आकृति, गुण आदि का निरूपण और आधिक्य या न्यूनता का बोध कराने वाली सदृश वस्तुओं से ही प्रयोजन रहता है। हाथियों के डीलडौल, तलवार की धार, किसी कर्म की कठिनता, खाई की चौड़ाई इत्यादि के वर्णन से केवल इस प्रकार का सादृश्य अपेक्षित रहता है जैसे पहाड़ के समान हाथी, बाल की नरह धार, पहाड़ सा काम, नदी सी खाई इत्यादि।

जायसी ने सादृश्य-मूलक अलंकारों का ही आश्रय अधिक लिया है। अतः उपर्युक्त विवेचन के अनुसार जब हम उनके अप्रस्तुतान्वय या सादृश्यविधान पर विचार करते है तब देखते है कि रसात्मक प्रसंगों में अधिकांश भाव के अनुरूप ही अनुरंजनकारी अप्रस्तुत वस्तुओं की योजना हुई है। पर साथ ही यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि

जायसी के वर्णन अधिकतर परंपरानुगत ही है इससे उनमे कवि-समय-सिद्ध उपमान ही अधिक मिलते हैं और इन परंपरागत उपमानों मे कुछ अवश्य ऐसे है जो प्रसंग के अनुकूल भाव को पुष्ट करने मे सहायक नहीं होते, जैसे हाथी की सूँड़, सिंहनी और भिड़ की कमर। सुंदरी नायिका की भावना करते समय सिंहनी, भिड़ और हाथी सामने आ जाने से उस भावना की पुष्टि मे सहायता के स्थान पर बाधा ही पहुँचती है। ऐसे उपमानों को भी जायसी ने छोड़ा नहीं है। बल्कि यो कहिए कि सादृश्य का आरोप करने मे फारसी के जोर पर वे एक-आध जगह और आगे भी बढ़ गए है। भारतीय काव्य-पद्धति मे उपमान चाहे उदासीन हों, पर भाव के विरोधी कभी नहीं होते। 'भाव' से मेरा अर्थ वही है जो साहित्य मे लिया जाता है। 'भाव' का अभिप्राय साहित्य मे तात्पर्य-बोध मात्र नहीं है बल्कि वह वेगयुक्त और जटिल अवस्था-विशेष है जिसमें शरीरवृत्ति और मनोवृत्ति दोनो का योग रहता है। क्रोध को ही लीजिए। उसके स्वरूप के अन्तर्गत अपनी हानि या अपमान की बात का तात्पर्य्य-बोध, उग्र वचन और कर्म की प्रवृत्ति का वेग तथा त्योरी चढ़ना, आँखे लाल होना, हाथ उठाना ये सब बातें रहती है। मनोविज्ञान की दृष्टि से इन सब के समष्टिविधान का नाम क्रोध का भाव है। रौद्ररस के प्रसंग मे कवि लोग जो उपमान लाते है वे भी संतापदायक या उग्र होते है, जैसे अग्नि। क्रोध से रक्त-वर्ण नेत्रों की उपमा जब कोई कवि देगा तब अंगार आदि की देगा, रक्त-कमल या बंधूक-पुष्प की नहीं। इसी प्रकार शृंगार-रस में रक्त, मांस, फफोले, हड्डी आदि का बीभत्स दृश्य सामने आना अरुचिकर प्रतीत होता है। पर जहाँ केवल 'तात्पर्य्य' के उत्कर्ष का ध्यान प्रधान रहेगा—खयाल की बारीकी या बलंदपरवाजी पर ही नजर रहेगी—वहाँ भाव के स्वरूप का उतना विचार न रह जायगा। फारसी की शायरी में विप्रलंभ शृंगार के अन्तर्गत ऐसे बीभत्स दृश्य प्रायः लाए जाते है। इस बात का उल्लेख हो चुका है कि जायसी मे कही कही इस प्रकार के वर्णन मिलते है; जैसे, "बिरह-सरागन्हि भूँजै माँसू। ढरि ढरि परहि रकत कै आँसू"। इसी प्रकार नखशिख के प्रसंग मे हथेली के वर्णन मे जो यह हेतूत्प्रेक्षा की गई है वह भी कोई रमणीय रुचिकर दृश्य सामने नही लाती—

हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा। रुहिर भरी अँगुरी तेहि साथा॥

यदि कवि सच्चा है, शेष सृष्टि के साथ उसके हृदय का पूर्ण सामंजस्य

है, उसमें सृष्टि-व्यापिनी सहृदयता है तो उसके सादृश्य-विधान में एक बात और लक्षित होगी। वह जिस सदृश वस्तु या व्यापार की ओर ध्यान ले जायगा कहीं कहीं उससे मनुष्य को और प्राकृतिक पदार्थों के साथ अपने संबंध की बड़ी सच्ची अनुभूति होगी। विरह-ताप से झुलसी और सूखी हुई नागमती को जब प्रिय के आगमन का आभास मिलता है तब उसकी दशा कैसी होती है—

जब भुइँ दहि असाढ़ पलुहाई। परहिं बूँद औ सोंध बसाई॥
ओहि भाँति पलुही सुख बारी। उठी करिल नइ कोंप सँवारी॥

इसमें मनुष्य देखता है कि जिस प्रकार संताप और आह्लाद के चिह्न मेरे शरीर में दिखाई पड़ते हैं वैसे ही पेड़-पौधों के भी। इस प्रकार उनके साथ अपने संबंध की अनुभूति का उदय उसके हृदय में होता है। ऐसी अनुभूति द्वारा मानव-हृदय का प्रसार करने में जो कवि समर्थ हो वह धन्य है। "शरीर पनपना" आदि लाक्षणिक प्रयोग जो बोलचाल में आ गए हैं वे ऐसे ही कवियों की कृपा से प्राप्त हुए हैं।

सादृश्य-मूलक अलंकारों में उपमा, रूपक और उत्प्रेक्षा का व्यवहार अधिक मिलता है। इनमें से हेतूत्प्रेक्षा जायसी को बहुत प्रिय थी। इसके सहारे उन्होंने अपनी कल्पना का विस्तार बहुत दूर तक बढ़ाया है—कहीं कहीं तो सारी सृष्टि को अपने भाव के भीतर ले लिया है (दे० विरह-वर्णन)। रूप-वर्णन में कवियों को अलंकार भरने का खूब मौका मिलता है। जायसी का शिख-नख वर्णन भी अधिकतर परंपरानुगत ही है इससे अलंकारों की भरमार उसमें और जगहों से अधिक देखी जाती है। सादृश्य-मूलक अलंकारों में उसमें वस्तूत्प्रेक्षा अधिक है। काले केशों के बीच माँग की शोभा देखिए—

कंचन-रेख कसौटी कसी। जेनु घन महँ दामिनी परगसी॥
सुरुज-किरन जनु गगन बिसेखी। जमुना माँह सुरसती देखी॥

इसी प्रकार आँख की बरुनियाँ भी कुछ और ही जान पड़ती हैं—

बरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जान दुइ अनी॥
जुरी राम रावन कै सैना। बीच समुद्र भए दुइ नैना॥

इस सादृश्य में उपमानों की परिमाणगत अधिकता यदि कुछ खटके तो इस बात का स्मरण कर लेना चाहिए कि जायसी का प्रेम केवल लौकिक नहीं है अतः उसका आलंबन भी अनंत सौंदर्य्य की ओर संकेत करनेवाला है।

इस संबंध में वस्तूत्प्रेक्षा का एक और उदाहरण देकर आगे चलता हूँ। पद्मिनी की कटि इतनी सूक्ष्म जान पड़ती है—

मानहुँ नाल खंड दुइ भए। दुहुँ बिच लंक तार रहि गए॥

ये तो वस्तूत्प्रेक्षा या स्वरूपोत्प्रेक्षा के उदाहरण हुए। क्रियोत्प्रेक्षा के भी बहुत बढ़े चढ़े उदाहरण इस रूप-वर्णन के भीतर मिलते है, जैसे—

अस वै नयन चक्र दुइ भँवर समुद उलथाहिं।
जनु जिउ घालिहिं डोल महँ लेइ आवहिं, लेइ जाहिं॥

हेतूत्प्रेक्षा के कुछ उदाहरण विरह-वर्णन आदि के अन्तर्गत आ चुके हैं। यह अलंकार उत्कर्ष की व्यंजना के लिये बड़ा शक्तिशाली होता है। लोक में कार्य्य और कारण एक साथ बहुत ही कम देखे जाते है। प्रायः कारण परोक्ष ही रहता है। अतः कोई रूप या क्रिया यदि अपने प्रकृत रूप मे हमारे सामने रख दी गई तो वह उस प्रभाव का प्रमाण-स्वरूप लगने लगती है जिसे कवि खूब बढ़ाकर दिखाया चाहता है और हम इस बातकी छानबीन में नहीं पड़ने जाते कि हेतु ठीक है या नहीं। इस अलंकार के दो-एक उदाहरण देकर हम यह सूचित कर देना चाहते है कि जायसी की हेतूत्प्रेक्षाएँ अधिकतर असिद्ध-विषया ही मिलती है। ललाट का वर्णन करता हुआ कवि कहता है—

सहस किरिन जो सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई।

सूर्य्य छिपतः अवश्य है, पर उसके छिपाने का जो हेतु कहा गया है वह कवि-कल्पित है और उस हेतु का आधार "लज्जित होना" सिद्ध नहीं है। इसी प्रकार की हेतूत्प्रेक्षा दाँतों पर है—

दारिउँ सरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरकि।

रूप-वर्णन के अंतर्गत फलोत्प्रेक्षा भी कई जगह दिखाई देती है, जैसे, नासिका के वर्णन में यह पद्य—

पुहुप सुगंध करहिं एहि आसा। मकु हिरकाइ लेइ हम्ह पासा॥

अथवा माँग के संबंध में ये उक्तियाँ—

करत तपा लेहिं होइ चूरू। मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरू॥
कनक-दुवादस बानि होइ चह सोहाग ओहि माँग।

'व्यतिरेक' के दो उदाहरण नीचे दिए जाते है—

का सरवरि तेहि देउँ मयकू। चाँद कलंकी, वह निकलंकू॥
औ चाँदहिं पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा॥
सुवा सो नाक कठोर पँवारी। वह कोमल तिल-पुहुप सँवारी॥

दूसरे उदाहरण में 'तिल-पुहुप' पद आक्षेप द्वारा दूसरे उपमान के रूप मे नहीं लाया गया है बल्कि तृतीयांत (=तिल-पुष्प से) है। इससे व्यतिरेक ही अलंकार कहा जायगा।

'रूपकातिशयोक्ति' (भेदेऽभेदः) भी जायसी की अत्यन्त मनोहर है। इसके द्वारा कवि ऐसी मनोहर और रमणीय प्राकृतिक वस्तुएँ सामने रखता है कि हृदय सौदर्य्य की भावना मे मग्न हो जाता है। हेतूत्प्रेक्षा के समान यह अलकार भी कवि को बहुत प्रिय है। स्थान-स्थान पर इसका प्रयोग मिलता है। रतनारे नेत्रों के बीच घूमती हुई पुतलियों की शोभा की ओर कवि इस प्रकार इशारा करता है—

राते कँवल करहि अलि भवाँ। घूमहिं माति चहहिं अपसवाँ॥

इसी कमल और भ्रमरवाले रूपक को अतिशयोक्ति में जायसी और जगह भी बड़ी सुन्दरता से लाए है। प्रेम-जोगी रत्नसेन के सिहलगढ़ में पकड़े जाने पर पद्मावती विरह मे अचेत पड़ी है; आँखें नही खोलती है। इतने में कोई सखी आकर कहती है—

कँवल-कली तू, पदमिनि! गह निसि भएउ बिहानु।
अबहुँ न सपुट खोलसि, जब रे उवा जग भानु॥

यह सुनते ही पद्मावती आँखें खोलती है जिसकी सूचना रूपकातिशयोक्ति के बल से कवि इन शब्दों में देता है—

भानु नावँ सुनि कँवल बिगासा। फिरि कै भँवर लीन्ह मधु बासा॥

यहाँ भी कवि ने केवल कमल-दल पर बैठे भौंरे का उल्लेख करके आँख खुलने (डेले के बीच काली पुतली दिखाई देने) की सूचना दी है। इसी अलंकार के कुछ और नमूने देखिए—

(क) साम भुअंगिनि रोमावली। नाभिहि निकसि कँवल कहँ चली॥
आइ दुवौ नारँग बिच भई। देखि मयूर ठमकि रहि गई॥

(ख) पन्नग पकज मुख गहे, खंजन तहाँ बईठ।
छत्र, सिंघासन, राज, धन, ता कहँ होइ जो दीठ॥

कहीं कहीं तो जायसी ने अलंकारो की बड़ी जटिल और गूढ़ योजना की है। देवपाल की दूती पद्मिनी को बहका रही है कि जब तक यौवन है तब तक भोग-विलास कर ले—

जोबन-जल दिन दिन जस घटा। भँवर छपान, हंस परगटा॥

जैसे जैसे यौवन-रूपी जल दिन दिन घटता जाता है वैसे ही वैसे (शरीर-रूपी नदी या सरोवर में) पानी की बाढ़ के भँवर छिपते जाते है

और हंस ( मानसरोवर से आकर ) दिखाई पड़ने लगते है। यह तो हुआ सांग रूपक। पर एक बात है। जल का आरोप जिसपर किया गया है उस यौवन का उल्लेख तो साथ ही है पर दूसरी पंक्ति में हमें रूप-कातिशयोक्ति माननी पड़ती है। दोनों पंक्तियों का एक साथ विचार करने पर नदी या सरोवर के ही अंग भँवर ( पानी के भँवर ) और हंस ठहरते है जो शरत् के दृश्य को पूरा करते है। अतः दूसरी पंक्ति में अतिशयोक्ति सिद्ध हो जाने पर ही 'सांग रूपक' होता है। पर अतिशयोक्ति की सिद्धि के लिये श्लेप द्वारा 'भँवर' शब्द का दूसरा अर्थ 'काला भौंरा' लेना पड़ता है तब जाकर उपमेय अर्थात् काले केश की उपलब्धि होती है। इस प्रकार रूपक को प्रधान या अंगी मानने से श्लेप और अतिशयोक्ति उसके अंग हो जाते है और अलंकारो का यह मेल "अंगांगि-भाव संकर" ठहरता है।

प्रसंग-वश 'सांग रूपक' के गुण-दोप का भी थोड़ा विचार कर लेना चाहिए। यह तो मानना ही पड़ेगा कि एक वस्तु में दूसरी वस्तु का आरोप सादृश्य और साधर्म्य के आधार पर ही होता है। अधिकतर देखा जाता है कि 'निरंग रूपक' में तो सादृश्य और साधर्म्य का ध्यान रहता है पर सांग और परंपरित मे इनका पूरा निर्वाह नही होता और जल्दी हो भी नहीं सकता। दो में से एक का भी पूरा निर्वाह हो जाय तो बड़ी बात है, दोनो का एक साथ निर्वाह तो बहुत कम देखा जाता है। सादृश्य से हमारा अभिप्राय विंब-प्रतिविंब रूप और साधर्म्य से वस्तु-प्रतिवस्तु धर्म है। 'साहित्य-दर्पण'कार का यह उदाहरण लेकर विचार कीजिए—

"रावण-रूप अवर्षण से क्लांत देवता-रूप सस्य को इस प्रकार वाणी-रूप-अमृत-जल से सींच वह कृष्णरूप-मेघ अंतर्हित हो गया।"

इस उदाहरण मे रावण और अवर्षण मे रूप-सादृश्य नही है; केवल साधर्म्य है। इसी प्रकार देवता और सस्य में तथा वाणी और जल मे कोई रूप-सादृश्य नही है, साधर्म्य मात्र है—विष्णु का स्वरूप भी नील जलद का-सा है और धर्म भी उसी के समान लोकानंद-प्रदान है। पर सांग रूपक में कहीं कहीं तो केवल अप्रस्तुत ( उपमान ) दृश्य को किसी प्रकार बढ़ाकर पूरा करने का ही ध्यान कवियो को रहता है। वे यह नहीं देखने जाते कि एक एक अंग या ब्योरे मे किसी प्रकार का सादृश्य या साधर्म्य है अथवा नहीं। विनय-पत्रिका के "सेइय सहित सनेह देह भरि

कामधेनु कलि कासी" वाले पद में रूपक के अंगोंकी योजना अधिकतर इसी प्रकार की है।

अब इस विवेचन के अनुसार जायसी के उपर्युक्त रूपक की समीक्षा कीजिए—यौवन-रूप जल, काले केश-रूपी भँवर (जलावर्त्त) और श्वेत-केश-रूपी हंस। यौवन और जल में उमड़ने या उमंग के धर्म को लेकर साधर्म्य मात्र है। काले केश का पहले तो अतिशयोक्ति में काले भौंरे के साथ वर्णसादृश्य है फिर श्लेप द्वारा रूपक में पहुँचकर जलावर्त्त के साथ कुछ आकृति-सादृश्य (केश कुंचित या घूमे हुए होने से)। श्वेत केश और हंस में वर्ण-सादृश्य है। इसके उपरांत जब दूसरी पंक्ति के इस व्यंग्यार्थ पर आते हैं कि युवावस्था में मनुष्य विषयों के चक्कर में पड़ा रहता है और वृद्धावस्था में उसमें सदसद्विवेक करनेवाली आत्मा (हंस) का उदय होता है तब हमें सादृश्य और साधर्म्य दोनों मिल जाते हैं क्योंकि जलावर्त्त का धर्म है चक्कर में डालना और हंस का स्वभाव है नीर-क्षीर-विवेक।

उसी दूती के मुख से वृद्धावस्था का यह वर्णन गूढ़ 'अप्रस्तुत प्रशंसा' द्वारा कवि ने कराया है—

छल कै जाइहि बान पै धनुष छाँड़ि कै हाथ।

बान या तीर सीधे शरीर का उपमान है और धनुष के झुके हुए शरीर का। ये दोनो क्रमशः युवावस्था और बुढ़ापे के कार्य्य है। अतः कार्य्य द्वारा कारण के निर्देश से यहाँ 'अप्रस्तुत प्रशंसा' हुई, जो रूपकातिशयोक्ति द्वारा सिद्ध हुई है। इस प्रकार दोनों का 'अंगांगिभाव संकर' है। इसके अतिरिक्त 'बान' शब्द का दूसरा अर्थ वर्ण या कांति लेने से श्लेष की 'संसृष्टि' भी हुई।

कहीं कहीं तो संकर या 'संसृष्टि' के बिना ही रूपकातिशयोक्ति बहुत दुर्बोध हो गई है, जैसे—

जौ लगि कालिंदि, होहि बिलासी। पुनि सुरसरि होइ समुद परासी॥

यह भी उसी दूती का वचन है। अभिप्राय यह है कि जब तक तू काले केशोंवाली (अर्थात् युवती) है तब तक विलास कर ले, फिर जब श्वेत केशोंवाली हो जायगी तब तो काल के मुँह में पड़ने के लिये जल्दी जल्दी बढ़ने लगेगी। जमुना की काली धारा सीधे समुद्र में नहीं गिरती है। जब वह श्वेत-धारावाली गंगा के साथ मिलकर श्वेत गंगा ही हो जाती है तब समुद्र की ओर जाती है जहाँ जाकर उसका

अलग अस्तित्व नहीं रह जाता। यह अतिशयोक्ति दुर्बोध हो गई है। दुर्बोधता का कारण है अप्रसिद्धि। रूपकातिशयोक्ति मे प्रसिद्ध उपमान ही लाए जाते है। अप्रसिद्ध और नए कल्पित उपमानो के रखने से तो पद्य पहेली हो जायगा। उक्त पद्य मे जायसी ने स्वतंत्रता यह दिखाई कि परंपरा से व्यवहृत प्रसिद्ध उपमान न लेकर स्वकल्पित अप्रसिद्ध उपमान लिए है, जिससे एक प्रकार की दुरूहता आ गई है। काले केशो के लिये कालिंदी नदी की और श्वेत केशों के लिये गंगा की उपमा प्रसिद्ध नहीं है। यह रूपकातिशयोक्ति अलंकार ही लीक पीटनेवालों के लिये है। जो नए उपमानो की उद्भावना करे वह इस अलंकार की ओर जाय क्यो ?

इसी प्रकार की गूढ़ और अर्थगर्भित योजना 'तद्गुण' अलंकार की भी लीजिए। देवपाल की दूती बहुत से पकवान लाकर पद्मावती के सामने रखती है। वह उन्हें हाथो से भी न छूकर कहती है—

रतन छुवा जिन्ह हाथन्ह सेंती। और न छुवौं सो हाथ सँकेती॥
दमक रग भए हाथ मँजीठी। मुकुता लेउँ पै घुँघुची दीठी॥

अर्थात् जिन हाथों से मैने उस दिव्य रत्न (राजा रत्नसेन) का स्पर्श किया अब उनसे और वस्तु क्या छूऊँ ? उस दिव्य रत्न या माणिक्य के प्रभाव से मेरे हाथ इतने लाल है कि मोती भी अपने हाथ में लेकर देखती हूँ तो वह गुंजा (हाथ की ललाई से गुंजा का सा लाल रंग और देखने से पुतली की छाया पड़ने के कारण गुजा का सा काला दाग) हो जाता है, अर्थात् उसका कुछ भी मूल्य नहीं दिखाई पड़ता।

अब इसके अलंकारों पर विचार कीजिए। सबसे पहले तो 'रतन' पद मे हमे श्लेप मिलता है। फिर दूसरे चरण मे काकु वक्रोक्ति। तीसरे चौथे चरण मे जटिलता है। "उस रत्न के स्पर्श से मेरे हाथ लाल हुए" इसका विचार यदि हम गुण की दृष्टि से करते है तो 'तद्गुण' अलंकार ठहरता है। फिर जब हम यह विचार करते है कि पद्मिनी के हाथ तो स्वभावतः लाल है (उनमे लाली का आरोप नही है) तब हमें रत्नस्पर्श-रूप हेतु का आरोप करके 'हेतूत्प्रेक्षा' कहनी पड़ती है। अतः यहाँ इन दोनो अलंकार का 'संदेह संकर' हुआ। चौथे चरण मे 'तद्गुण' अलंकार स्पष्ट है। पर यह अलंकारनिर्णय भी हमे व्यंग्य अर्थ तक नही पहुँचाता। अतः हम लक्षणा से 'मुक्ता' का अर्थ लेते है 'बहुमूल्य वस्तु' और 'घुँघची' का अर्थ लेते हैं 'तुच्छ वस्तु'। इस प्रकार हम इस व्यंग्य अर्थ

पर पहुँचते है कि रत्नसेन के सामने मुझे संसार की उत्तम से उत्तम वस्तु तुच्छातितुच्छ दिखाई पड़ती है।

इन उदाहरणों से पाठक समझ सकते है कि जायसी ने अलंकारों से अर्थ पर अर्थ भरने का कैसा कड़ा काम किया है। इसी 'मुक्ता' को लेकर और कवियों ने भी तद्गुण अलंकार बाँधा है, पर वे रूपाधिक्य की व्यंजना के आगे नही बढ़ सके है, जैसे कि इस प्रसिद्ध दोहे में—

अधर जोति विद्रुम लसत, पिय मुकता कर दीन्ह।
देखत ही गुंजा भयो, पुनि हँस मुकता कीन्ह॥

सिंदूर से लाल माँग के इस वर्णन में भी जायसी ने तद्गुण और हेतूत्प्रेक्षा का मेल किया है—

भोर साँझ रवि होइ जो राता। ओहि देखि राता भा गाता॥

'निदर्शना' और 'यमक' का यह उदाहरण है—

धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ देहिं सब साखी॥

इसी प्रकार दाँतों के इस वर्णन मे भी 'तृतीय निदर्शना' है—"हारी-जोति सो तेहि परिछाहीं"।

देखिए 'गोरा' नाम का कैसा अर्थगर्भित प्रयोग इस सुंदर दोहे में जायसी ने किया है—

रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुहिर न धोवों, तौ लगि होइ न रात॥

'गोरा' नाम भी है और शुभ्रश्वेत अर्थ का द्योतक भी है। जो वस्तु श्वेत और निर्मल है उस पर मसि या स्याही का धब्बा पड़ना कितना बुरा है! यह धब्बा मिटेगा कैसे? जब (अपने या शत्रु के) रुधिर से धोया जायगा। इस दोहे में यदि 'गात' के स्थान पर 'वदन' या 'मुख' शब्द आया होता तो इसका मोल अधिक बढ़ जाता क्योंकि उस अवस्था में "सुर्खरू" होने का मुहाविरा भी सटीक बैठ जाता।

एक स्थान पर तो जायसी ने ऐसी ढकी हुई या गूढ़ रमणीय रूप-योजना (अप्रस्तुत) रखी है जिसका आभास मिलने पर कवि के कौशल पर चित्त चमत्कृत हो जाता है। जब पद्मिनी हँसती है तब उसके लाल ओठों और सफेद दाँतों की द्युति का प्रसार किस प्रकार होता है देखिए—

हीरा लेइ सो विद्रुम धारा। बिहसत जगत होइ उजियारा।

हीरे की ज्योति लिए हुए जब वह विद्रुम-वर्ण की (अरुण) द्युति-धारा फैलती है तब सारा जगत् प्रकाशित हो जाता है। इस उक्ति में

उषा की मधुर श्वेत-अरुण ज्योति के उदय का दृश्य किस प्रकार छिपा है ! जब पद्मिनी हँसती है तब संसार उसी प्रकार खिल उठता है, जगमगा उठता है जिस प्रकार उषा का मधुर प्रकाश फैलने पर। उक्ति के भीतर अप्रस्तुत रूप मे इस प्रकार का दबा हुआ रूप-विधान ( Suppressed imagery ) आधुनिक काव्याभिव्यंजन की दृष्टि से भी परम रमणीय माना जाता है।

'संदेहालंकार' का उदाहरण जायसी मे नहीं मिलता। एक स्थान पर ( नखशिख मे ) रोमावली के वर्णन मे वह खंडित रूप मे मिलता है—

मनहुँ चढ़ी भौरन्ह कै पाँती। चंदन खाँभ बास कै माती॥
की कालिंदी बिरह सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई॥

संदेह मे दो कोटियाँ होनी चाहिएँ और दोनो कोटियो मे समान रूप से ज्ञान होना चाहिए। यहाँ एक ही कोटि है, चौपाई के पिछले दो चरणों में। चौपाई के प्रथम दो चरणों मे तो उत्प्रेक्षा है। अतः संदेह अलंकार सिद्ध नहीं है, खंडित है।

कुछ और अलंकारों के उदाहरण लीजिए—

( १ ) कहाँ छपा ऐ चाँद हमारा। जेहि बिनु रैनि जगत अँधियारा॥
( विनोक्ति )

( २ ) बसा लंक बरनै जग झीनी। तेहि ते अधिक लंक वह खीनी॥
परिहस पियर भए तेहि बसा। लिये डक लोगन्ह कहँ डसा॥
( प्रत्यनीक )

सिंह न जीता लंक सरि, हारि लीन्ह बनबासु।
तेहि रिस मानुस-रकत पिय, खाइ मारि कै माँसु॥
( प्रत्यनीक )

( ३ ) निति गढ़ बाँचि चलै ससि सूरू। नाहिं त होइ बाजि रथ चूरू॥
( सबंधातिशयोक्ति )

( ४ ) मिलिहहिं बिछुरे साजन अकम भेंटि गहंत।
तपनि मृगसिरा जे सहहिं ते अद्रा पलुहंत॥ ( अर्थांतरन्यास )

( ५ ) का भा जोग-कथनि के कथे। निकसै घिउ न बिना दधि मथे॥ ( दृष्टांत )

( ६ ) घट महँ निकट, बिकट होइ मेरू। मिलहि न मिले परा तस फेरू॥
( विशेषोक्ति )

( ७ ) ना जिउ जिए, न दसवँ अवस्था। कठिन मरन तें प्रेम बेवस्था॥
( विरोध )

( ८ ) भूलि चकोर दीठि मुख लावा । ( भ्रम )
( ९ ) नैन-नीर सौं पोता किया । तस मद चुवा वग जस दिया ॥ (परिणाम)
( १० ) जीभ नाहिं पै सब किछु बोला । तन नाही सब ठाहर डोला ॥
(विभावना)
( ११ ) पदमिनि ठगिनी भइ कित साथा । जेहि ते रतन परा पर हाथा ॥
(परिकरांकुर)
रतन चला भा घर अँधियारा ॥ (परिकरांकुर)

नीचे पहली पंक्ति में तो 'विषादन' अलंकार की पुरानी उक्ति है जिसका व्यवहार सूरदास ने भी किया है, पर आगे उसमें जायसी ने 'द्वितीय पर्य्यायोक्ति' का मेल बड़ी सफाई से किया है ।

गइ बीन मकु रैनि बिहाई । ससि-बाहन तहँ रहै ओनाई ॥ (विषादन)
पुनि धनि सिंघ उरहे लागै । ऐसिहि बिथा रैनि सब जागै ॥
(द्वितीय पर्य्यायोक्ति)

इतने उदाहरणों से यह स्पष्ट हो गया होगा कि जायसी ने बहुत से अलंकारों का विधान किया है और यह विधान अधिकतर भाव या विषय के अनुरूप तथा अर्थ-विस्तार में सहायता की दृष्टि से किया है। पर यह कहा जा चुका है कि उन्होंने परंपरा-पालन का ध्यान भी बहुत रखा है। इससे कहीं कहीं भद्दी परंपरा के भी उदाहरण मिलते है। इस प्रकार का एक सांग रूपक और एक परिणाम नीचे दिया जाता है। एक मे तो वीररस की सामग्री में शृंगार की सामग्री का आरोप है और दूसरे में शृंगार की सामग्री में वीररस की सामग्री का। पहले स्त्री के रूपक मे तोप का यह वर्णन लीजिए—

कहौ सिंगार जैसि वै नारी । दारू पियहिं जैसि मतवारी ॥
सेंदुर आगि सीस उपराहीं । पहिया तरिवन चमकत जाहीं ॥
कुच गोला दुइ हिरदय लाई । अंचल धुजा रहै छिटकाई ॥
रसना लूक रहहिं मुख खोले । लंका जरै सो उनके बोले ॥
अलक जँजीर बहुत गिउ बाँधे । खींचहिं हस्ती, टूटहि काँधे ॥
बीर सिंगार दोउ एक ठाऊँ । सत्रु-साल गढ़-भंजन नाऊँ ॥

इसी प्रकार का उदाहरण नीचे 'परिणाम' अलंकार का भी है जो बादल की नवागता बधू के मुँह से कहलाया गया है—

जौ तुम चहहु जूझि, प्रिय ! बाजा । कीन्ह सिंगार-जूझ मै साजा ॥
जोबन आइ सौंह होइ रोपा । पिउला बिरह काम-दल कोपा ॥

भौंहे धनुष, नयन सर साधे। बरुनि बीच काजर बिष बाँधे॥
अलक-फाँस गिउ मेलि असूझा। अधर अधर सौं चाहहिं जूझा॥
कुंभस्थल कुच दोउ मैमता। पेलौ सौंह, सँभारहु कंता।

इन दोनों उदाहरणोंमे प्रस्तुत रस के विरुद्ध सामग्री का आरोप है। यद्यपि साहित्य के आचार्यो ने साम्य से कहे हुए विरोधी रस या भाव को ( विभाव आदि को भी ) दोषाधायक नहीं माना है, पर इस प्रकार के आरोपों से रस की प्रतीति में व्याघात अवश्य पड़ता है, वाग्वैदग्ध्य द्वारा मनोरंजन चाहे कुछ हो जाय। काव्य मे बिंब-स्थापना ( Imagery ) प्रधान वस्तु है। वाल्मीकि, कालिदास आदि प्राचीन कवियों में यह पूर्णता को प्राप्त है। अँगरेजी कवि शेली इसके लिये प्रसिद्ध है। भाषा के दो पक्ष होते है—एक सांकेतिक ( Symbolic ) और दूसरा बिंबाधायक ( Presentative )। एक में तो नियत संकेत द्वारा अर्थ-बोध मात्र हो जाता है, दूसरे में वस्तु का बिंब या चित्र अंतःकरण में उपस्थित होता है। वर्णनों मे सच्चे कवि द्वितीय पक्ष का अवलंबन करते हैं। वे वर्णन इस ढंग पर करते है कि बिंब-ग्रहण हो, अतः रसात्मक वर्णनों में यह आवश्यक है कि ऐसी वस्तुओ का बिंब-ग्रहण कराया जाय, ऐसी वस्तुएँ सामने लाई जायँ, जो प्रस्तुत रस के अनुकूल हों, उसकी प्रतीति मे बाधक न हो। सादृश्य और साधर्म्य के आधार पर आरोप द्वारा भी जो वस्तुएँ लाई जायँ, वे भी ऐसी ही होनी चाहिएँ। वीररस की अनुभूति के समय कुच, तरिवन, सिंदूर आदि सामने लाना या शृंगाररस की अनुभूति के अवसर पर मस्त हाथी, भाले, बरछे, सामने रखना रसानुभूति मे सहायक कदापि नहीं।

बात की काट-छाँट वाले अलंकार—जैसे, परिसंख्या—यद्यपि जायसी में कम हैं पर कई प्रसंगो मे जहाँ किसी पात्र का वाक्चातुर्य्य दिखाना कवि को इष्ट है वहाँ श्लेष और मुद्रा अलंकार का आश्रय बहुत लिया गया है—यहाँ तक कि जी ऊबने लगता। रत्नसेन-पद्मावती के प्रथम समागम के अवसर पर जब सखियाँ पद्मावती को छिपा देती हैं तब राजा के रसायनी-प्रलाप में धातुओं आदि के बहुत से नाम निकलते है, जैसे—

सो न रूप जासौं दुख खोलौं। गएउ भरोस तहाँ का बोलौं॥
जहँ लोना बिरवा कै जाती। कहि कै सँदेस आन को पाती?॥
जो एहि घरी मिलावै मोहीं। सीस देउँ बलिहारी ओही॥

राजा कहता है 'वह रूप ( पद्मावती ) सामने नहीं है जिसके आगे मैं अपना दुख खोलूँ।...जहाँ वह सलोनी लता ( पद्मावती ) है वहाँ सदेसा कहकर उसका पत्र कौन लावे ?' इत्यादि। इससे श्लेप और मुद्रा दोनो अलंकार है। इसी प्रकार की एक उक्ति वियोगदशा में नागमती की है—

धौरी पडुक कह पिउ नाऊँ। जौ चित रोख न दूसर ठाऊँ॥
जाहि बया होइ पिउ कठ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा॥

अर्थात्—सफेद और पीली ( पांडुवर्ण ) पड़कर भी मैं उस प्रिय का नाम लेती हूँ ( क्योंकि ) यदि मैं चित्त में रोप करूँ तो मेरे लिये और दूसरा ठिकाना नहीं है। जा और ( सँदेसा कहकर ) आ*, जिससें प्रिय कंठ से लगे। जो मिलाप करावे वही गौरवान्वित है। ( चौपाई के रेखांकित शब्द चिड़ियों के नाम भी है। )

इसी प्रकार रत्नसेन के सिंहलद्वीप से चलने की तैयारी करने पर पद्मावती कहती है—

मोहि असि कहाँ सो मालती बेली। कदम सेवती चप चमेली॥

( कदम सेवती=( १ ) चरणो की सेवा करती है, ( २ ) कदंब और सेवती फूल )

यहाँ तक तो अर्थालंकारों के नमूने हुए। शब्दालंकारों में जायसी ने वृत्त्यनुप्रास, यमक और श्लेष का प्रयोग किया है, पर संयम के साथ। अनुप्रास आदि पर ही लक्ष्य रखकर खेलवाड़ इन्होने कही नहीं किया है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते है—

( १ ) रसनहि रस नहिं एकौ भावा। ( यमक )
( २ ) गइ सो पूजि, मन पूजि न आसा। ( यमक )
( ३ ) भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। ( अनुप्रास )
( ४ ) पपिहा पीउ पुकारत पावा। ( अनुप्रास )
( ५ ) रंग रकत रह हिरदय राता। ( अनुप्रास )
( ६ ) भइ बगमेल सेन घन घोरा। औ गज पेल अकेल सो गोरा॥
( अनुप्रास )

श्लेप के बहुत से उदाहरण पहले आ चुके हैं।

अलंकार है क्या ? वर्णन करने की अनेक प्रकार की चमत्कारपूर्ण

---

* बया=( फारसी ) आ।

शैलियाँ, जिन्हें काव्यों से चुनकर प्राचीन आचार्यों ने नाम रखे और लक्षण बनाए। ये शैलियाँ न जाने कितनी हो सकती है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि जितने अलंकारों के नाम ग्रंथों में मिलते है उतने ही अलंकार हो सकते है। बीच बीच में नए आचार्य्य नए अलंकार बढ़ाते आए हैं; जैसे, 'विकल्प' अलंकार को अलंकार-सर्वस्वकार राजानक रुय्यक ने ही निकाला था। इसलिए यह न समझना चाहिए कि किसी कवि की रचना में उतनी ही चमत्कारपूर्ण शैलियों का समावेश होगा जितनी नाम रखकर गिना दी गई है। बहुत से स्थलों पर कवि ऐसी शैली का अवलंबन कर जायगा जिसके प्रभाव या चमत्कार की ओर लोगों का ध्यान न गया होगा और जिसका कोई नाम न रखा गया होगा; यदि रखा भी गया होगा तो किसी दूसरे देश के रीति ग्रंथ में। उदाहरण के लिए यह पद्य लीजिए—

कँवलहि बिरह बिथा जस बाढ़ी। केसर-बरन पीर हिय गाढ़ी॥

'केसर-बरन पीर हिय गाढ़ी' इस पंक्ति का अर्थ अन्वय-भेद से तीन ढंग से हो सकता है—(१) कमल केसर-वर्ण (पीला) हो रहा है, हृदय मे गाढ़ी पीर है। (२) गाढ़ी पीर से हृदय केसर-वर्ण हो रहा है। (३) हृदय मे केसर-वर्ण गाढ़ी पीर है। इनमे से पहला अर्थ तो ठीक नहीं होगा, क्योंकि कवि की उक्ति का आधार कमल के केवल हृदय का पीला होना है, सारे कमल का पीला होना नहीं। दूसरा अर्थ अलबत सीधा और ठीक जँचता है, पर अन्वय इस प्रकार खींचतान कर करना पड़ता है—'गाढ़ी पीर हिय केसर बरन'। तीसरा अर्थ यदि लेते हैं तो 'पीर' का एक असाधारण विशेषण 'केसर-बरन' रखना पड़ता है। इस दशा मे 'केसर-वर्ण' का लक्षणा से अर्थ करना होगा 'केसर-वर्ण करनेवाली', 'पीला करनेवाली' और पीड़ा का अतिशय लक्षणा का प्रयोजन होगा। पर योरपीय साहित्य मे इस प्रकार की शैली अलंकार-रूप से स्वीकृत है और हाईपेलेज ( Hypallage ) कहलाती है। इसमे कोई गुण प्रकृत गुणी से हटाकर दूसरी वस्तु मे आरोपित कर दिया जाता है, जैसे यहाँ पीलेपन का गुण 'हृदय' से हटाकर 'पीड़ा' पर आरोपित किया गया है।

एक उदाहरण और लीजिए—'जस भुइँ दहि असाढ़ पलुहाई'। इस वाक्य में 'पलुहाई' की संगति के लिए 'भुइँ' शब्द का अर्थ उस पर के घास-पौधे अर्थात् आधार के स्थान पर आधेय लक्षणा से लेना

पड़ता है। बोलचाल में भी इस प्रकार के रूढ़ प्रयोग आते है, जैसे 'इन दोनो घरों में झगड़ा है'। योरपीय अलंकार-शास्त्र मे आधेय के स्थान पर आधार के कथन की प्रणाली को मेटानमी ( Metonomy ) अलंकार कहेंगे। इसी प्रकार अंगी के स्थान पर अंग, व्यक्ति के स्थान पर जाति आदि का लाक्षणिक प्रयोग Synecdoche अलंकार कहा जाता है। सारांश यह कि चमत्कार-प्रणालियाँ बहुत सी हो सकती है।

---

## स्वभाव-चित्रण

आरंभ ही मे हम यह कह देना अच्छा समझते है कि जायसी का ध्यान स्वभाव-चित्रण की ओर वैसा न था। 'पदमावत' में हम न तो किसी व्यक्ति के ही स्वभाव का ऐसा प्रदर्शन पाते है जिसमें कोई व्यक्तिगत विलक्षणता पूर्ण रूप से लक्षित होती हो, और न किसी वर्ग या समुदाय की ही विशेषताओं का विस्तृत प्रत्यक्षीकरण हमें मिलता है। मनुष्य-प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का प्रमाण हमें जायसी के प्रबंध के भीतर नही मिलता। राम, लक्ष्मण, भरत और परशुराम आदि के चरित्रों में जैसी व्यक्तिगत विशेषताएँ तथा कैकेयी, कौशल्या और मंथरा आदि के व्यवहारों में जैसी वर्गगत विशेषताएँ गोस्वामी तुलसीदासजी हमारे सामने रखते है, वैसी विभिन्न विशेषताएँ जायसी अपने पात्रों के द्वारा नही सामने लाते। इतना होने पर भी कोई यह नही कह सकता कि 'पदमावत' में मानवी प्रकृति के चित्रण का एकदम अभाव है।

प्रबंध-काव्य में स्वभाव की व्यंजना पात्रों के वचन और कर्म द्वारा ही होती है, उनके स्वगत भावो और विचारों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। 'पदमावत' मे प्रबंध के आदि से लेकर अंत तक चलनेवाले पात्र तीन मिलते है—पद्मावती, रत्नसेन और नागमती। इनमें से किसी के चरित्र में कोई ऐसी व्यक्तिगत विशेषता कवि ने नही रखी है जिसे पकड़कर हम इस बात का विचार करे कि उस विशेषता का निर्वाह अनेक अवसरों पर हुआ है या नहीं। इन्हें हम प्रेमी और पति-पत्नी के रूप में ही देखते हैं, अपनी किसी व्यक्तिगत विशेषता का परिचय देते नहीं पाते। अतः इनके संबंध मे चरित्र-निर्वाह का एक प्रकार से प्रश्न ही नहीं रह जाता। राजा रत्नसेन मे हम जो कष्ट-सहिष्णुता,

धीरता या साहस इत्यादि देखते है वे कोई व्यक्तिगत विशिष्ट लक्षण नहीं जान पड़ते, बल्कि सब सच्चे प्रेमियो का आदर्श पूरा करते पाए जाते है। वियोग या विपत्ति की दशा मे हम उसी रत्नसेन को आत्म-घात करने को तैयार देखते है। पद्मावती भी चित्तौर आने से पहले तक तो आदर्श-प्रेमिका के रूप मे दिखाई पड़ती है और चित्तौर आने पर उसके सतीत्व का विकास आरंभ होता है। नागमती को भी हम सामान्य स्त्री-स्वभाव से युक्त पति-परायण हिंदू स्त्री के रूप में देखते है। आदि से अंत तक चलनेवाले इन तीनों पात्रों का व्यवहार या तो किसी आदर्श की पूर्त्ति करता है या किसी वर्ग की सामान्य प्रवृत्ति का परिचय कराता है।

चरित्र का विधान चार रूपों मे हो सकता है—( १ ) आदर्श रूप में, ( २ ) जाति-स्वभाव के रूप मे, ( ३ ) व्यक्ति-स्वभाव के रूप मे, और ( ४ ) सामान्य स्वभाव के रूप में। अतः जिन पात्रों के चरित्र का हम विवेचन करेंगे उनके संबंध में पहले यह देखेगे कि उनके चरित्रो का चित्रण किन किन रूपों में हुआ है। जो चार रूप पीछे कहे गए है, उनमे सामान्य स्वरूप का चित्रण तो चरित्र-चित्रण के अंतर्गत नहीं, वह सामान्य प्रकृति-वर्णन के अंतर्गत है, जिसे पुराने ढंग के आलंकारिक 'स्वभावोक्ति' कहेगे। आदर्श चित्रण के संबंध मे एक बात ध्यान देने की यह है कि जायसी का आदर्श चित्रण एक देश-व्यापी है। तुलसी-दासजी के समान किसी सर्वांगपूर्ण आदर्श की प्रतिष्ठा का प्रयत्न उन्होंने नही किया है। रत्नसेन प्रेम का आदर्श है, गोरा बादल वीरता के आदर्श हैं; पर एक साथ ही शक्ति, वीरता, दया, क्षमा, शील, सौदर्य्य और विनय इत्यादि सबका कोई एक आदर्श जायसी के पात्रों मे नहीं है। गोस्वामीजी का लक्ष्य था मनुष्यत्व के सर्वतोमुख उत्कर्ष द्वारा भगवान् के लोक-पालक स्वरूप का आभास देना। जायसी का लक्ष्य था प्रेम का वह उत्कर्ष दिखाना जिसके द्वारा साधक अपने विशेष अभीष्ट की सिद्धि प्राप्त कर सकता है। रत्नसेन प्रेम-मार्ग के भीतर तो अपना सुख-भोग क्या प्राण तक त्याग करने को तैयार है; पर वह ऐसा नहीं है कि प्रेम-मार्ग के बाहर भी उसे द्रव्य आदि का लोभ कभी स्पर्श न कर सके। प्रेम-मार्ग के भीतर तो उसे लड़ाई-भिड़ाई अच्छी नहीं लगती, अपने साथियो के कहने पर भी वह गंधर्वसेन की सेना से लड़ना नहीं चाहता; पर अलाउद्दीन का पत्र पढ़कर वह युद्ध के उत्साह से पूर्ण हो

जाता है। इसी प्रकार पद्मावती को देखिए। जहाँ तक रत्नसेन से संबंध है वहाँ तक वह त्याग की मूर्त्ति है; पर इसका मतलब यह नहीं है कि सपत्नी के प्रति स्वप्न में भी वह ईर्ष्या का भाव नहीं रखती।

यह तो स्पष्ट ही है कि कथा का नायक रत्नसेन और नायिका पद्मावती है। अतः पहले इन्हीं दोनों के चरित्रों को लेते हैं—

**रत्नसेन**—नायक होने से प्राचीन पद्धति के अनुसार रत्नसेन के चरित्र में आदर्श की प्रधानता है। यद्यपि उसके व्यक्तिगत स्वभाव (जैसे, बुद्धि की अतत्परता, अदूरदर्शिता) तथा जातिगत स्वभाव (जैसे, राजपूतों की प्रतिकार-वासना) की भी कुछ झलक मिलती है, पर प्रधानता आदर्श-प्रतिष्ठापक व्यवहारों की ही है। आदर्श प्रेम का है, और गहरे सच्चे प्रेम का। अतः उस प्रबल प्रेम के आवेग में जो कुछ करणीय अकरणीय रत्नसेन ने किया है उसका विचार साधारण धर्म-नीति की दृष्टि से न करना चाहिए। प्रसिद्ध पाश्चात्य भाव-वेत्ता मनोविज्ञानी शैंड (Shand) ने बहुत ठीक कहा है—'प्रत्येक भाव (रति, शोक, जुगुप्सा आदि) के कुछ अपने निज के गुण होते हैं जिनमें से लोकनीति के अनुसार कुछ सद्गुण कहे जाते हैं और कुछ दुर्गुण—जो उस भाव की लक्ष्य-पूर्त्ति के लिये आवश्यक होते हैं*।' इन गुणों का विचार भावोत्कर्ष की दृष्टि से करना चाहिए, लोकनीति की दृष्टि से नहीं। रत्नसेन अपनी विवाहिता पत्नी नागमती की प्रीति का कुछ विचार न करके घर से निकल पड़ता है और सिंहलगढ़ के भीतर चोरों की तरह सेंध देकर घुसना चाहता है। पहली बात चाहे हिंदुओं में प्रचलित रीति के कारण बुरी न लगे पर दूसरी बात लोकदृष्टि में निंद्य अवश्य जान पड़ेगी। बात बात में अपने सदाचार का दंभ दिखानेवाले तो इसे "बहुत बुरी बात" कहेंगे। पर प्रेम-मार्ग की नीति जाननेवाले चोरी से गढ़ में घुसनेवाले रत्नसेन को कभी चोर न कहेंगे। वे इस बात का विचार

---

* Every sentiment tends to acquire the virtues and vices that are required by its system . These virtues and vices are accounted such from two different points of view; first from the point of view of society , secondly, from the point of view of the sentiment itself according to a standard which it itself furnishes.

—Foundations of Character.

करेंगे कि वह प्रेम के लक्ष्य से कहीं च्युत तो नहीं हुआ। उनकी व्यवस्था के अनुसार रत्नसेन का आचरण उस समय निंदनीय होता जब वह अप्सरा के वेश में हुई पार्वती और लक्ष्मी के रूप-जाल और बातों में फँसकर मार्ग-भ्रष्ट हो जाता। पर उस परीक्षा मे वह पूरा उतरा।

उपर्युक्त विवेचन का तात्पर्य यह है कि प्रेम के साधन-काल मे रत्नसेन में जो साहस, कष्ट-सहिष्णुता, नम्रता, कोमलता, त्याग आदि गुण तथा अधीरता, दुराग्रह और चौर्य्य आदि दुर्गुण दिखाई पड़ते है वे प्रेम-जन्य है, वे स्वतंत्र गुण या दोष नहीं माने जा सकते। यदि ये बातें प्रेम-पथ के अतिरिक्त जीवन के दूसरे व्यवहारोमें भी दिखाई गई होतीं तो इन्हें हम रत्नसेन के व्यक्तिगत स्वभाव के अंतर्गत ले सकते।

इसी प्रकार सिंहलद्वीप से लौटते समय रत्नसेन का जो अर्थ-लोभ कवि ने दिखाया है वह भी रत्नसेन के व्यक्तिगत स्वभाव के अंतर्गत नहीं आता। किसी विशेष अवसर पर असाधारण सामग्री के प्रति लोभ प्रकट करते देख हम किसी को लोभी नहीं कह सकते। हाँ, उस असाधारण सामग्री के तिरस्कार से उसे निर्लोभ अवश्य कह सकते है। दोनों अवस्थाओं मे अंतर यह है कि एक मे लोभ करना साधारण बात है और दूसरी में त्याग करना असाधारण बात है। किसी एक अवसर पर प्रदर्शित मनोवृत्ति स्वभाव के अंतर्गत तभी समझी जा सकती है जब वह या तो साधारण से अधिक मात्रा मे हो अथवा वह ऐसे शब्दो मे व्यक्त की जाय जिनसे उसका स्वभावगत होना पाया जाय। जैसे "चाहे लोग कितना ही बुरा कहें, मै इतना धन छोड़ नहीं सकता" अथवा "चार पैसे के लिये तो मै कोस भर दौड़ा जाऊँ, इसमे से चार पैसे तुम्हें कैसे दे दूँ?" पर रत्नसेन के लोभ मे इन दोनो मे से एक बात भी नहीं पाई जाती। वह लोभवाला प्रसंग केवल इस उपदेश के निमित्त जोड़ा गया है कि बहुत अधिक संपत्ति देखकर बड़े बड़े त्यागियो को भी लोभ हो जाता है।

रत्नसेन की व्यक्तिगत विशेषता की झलक हमे उस स्थल पर मिलती है जहाँ गोरा बादल के चेताने पर भी वह अलाउद्दीन के छल को नहीं समझता और उसके साथ गढ़ के बाहर तक चला जाता है। दूसरे पर छल का संदेह न करने से राजा के हृदय की उदारता और सरलता तथा नीति की दृष्टि से अपनी रक्षा का पूरा ध्यान न रखने में अदूरदर्शिता प्रकट होती है।

जातिगत स्वभाव का आभास इस घटना से मिलता है। दिल्ली से छुटकर जिस दिन राजा चित्तौर आता है उसी दिन रात को पद्मिनी से देवपाल की दुष्टता का हाल सुनकर क्रोध से भर जाता है और सवेरा होते ही बिना पहले से किसी प्रकार की तैयारी किए, देवपाल को बाँधने की प्रतिज्ञा करके कुंभलनेर पर जा टूटता है। पेट में भाग घुसने पर भी वह मरने के पहले देवपाल को मारकर बाँधता है। प्रतिकार की यह प्रबल वासना राजपूतों का जातिगत लक्षण है। वीर लड़ाकी जातियों में प्रतिकार-वासना बड़ी प्रबल हुआ करती है। अरबों का भी यही हाल था।

**पद्मावती**—नायिका होने से पद्मावती के चरित्र में भी आदर्श ही की प्रधानता है। चित्तौर आने के पूर्व वह सच्ची प्रेमिका के रूप में दिखाई पड़ती है। जब रत्नसेन को सूली की आज्ञा होती है तब वह भी प्राण देने को तैयार होती है। इसके उपरांत सिंहल से चित्तौर के मार्ग में ही उसमें चतुर गृहिणी के गुण का स्फुरण होने लगता है। समुद्र में जहाज नष्ट हो गए और राजा-रानी बहकर दो घाट लगे। राजा का खजाना और हाथी-घोड़े सब डूब गए। समुद्र के यहाँ से जब राजा रानी बिदा होकर चलने लगे तब राजा को समुद्र ने हंस, शार्दूल आदि पाँच अलभ्य वस्तुएँ दीं और रानी को लक्ष्मी ने पान के बीड़े के साथ कुछ रत्न दिए। जगन्नाथ पुरी में आने पर राजा ने जब देखा कि उसके पास उन पाँच वस्तुओं के सिवा कुछ द्रव्य नहीं है तब वह मार्ग-व्यय की चिंता में पड़ गया। ‡ उसी समय पद्मावती ने वे रत्न बेचने के लिये निकाले जो लक्ष्मी ने विदा होते समय छिपाकर दिए थे। इस बात से पद्मावती में उस संचय-बुद्धि का आभास मिलता है जो उत्तम गृहिणी में स्वाभाविक होती है।

अपनी व्यक्तिगत दूरदर्शिता और बुद्धिमत्ता का परिचय पद्मावती ने निकाले हुए राघव-चेतन को दान द्वारा संतुष्ट करने के प्रयत्न में दिया

‡ यद्यपि समुद्र से विदा होते समय "और दीन्ह बहु रतन पखाना" कवि ने कहा है पर जगन्नाथ में आने पर राजा के पास कुछ भी नहीं रह गया था यह स्पष्ट लिखा है—"राजै पद्मावत सौ कहा। साँठि नाठि, किछु गाँठि न रहा।" अब या तो यह माने कि समुद्र का दिया हुआ रत्न द्रव्य सब रास्ते में खर्च या नष्ट हो गया अथवा यह मानें कि समुद्र से उन पाँच वस्तुओं के अतिरिक्त द्रव्य मिलने का प्रसंग प्रक्षिप्त है।

है। राघव को निकालने का परिणाम उसे अच्छा नहीं दिखाई पड़ा। 'ज्ञान-दिस्टि धनि अगम विचारा! भल न कीन्ह अस गुनी निकारा।' बुद्धिमानी का दूसरा परिचय पद्मिनी ने राजा के बंदी होने पर गोरा बादल के पास जाने में दिया है। यद्यपि वे राजा से रूठे थे पर पद्मिनी ने उन्हीं को सच्चे हितैषी और सच्चे वीर पहचाना।

जातिगत स्वभाव उस स्त्री-सुलभ प्रेमवर्ग और सपत्नी के प्रति उस ईर्ष्या में मिलता है जो नागमती के साथ विवाद का कारण है। नागमती के बगीचे में बड़ी चहल-पहल है और राजा भी वहीं हैं, यह सुनते ही पद्मावती को इतना बुरा लगता है कि वह तुरंत वहाँ जा पहुँचती है और विवाद छेड़ती है। उस विवाद में वह राजा के प्रेम का गर्व भी प्रकट करती है। यह ईर्ष्या और यह प्रेमगर्व स्त्री-जाति के सामान्य स्वभाव के अंतर्गत माना जाता है इसी से इनके वर्णन में रसिकों को एक विशेष प्रकार का आनंद आया करता है। ये भाव व्यक्तिगत दुष्ट प्रकृति के अंतर्गत नहीं कहे जा सकते। पुरुषों ने अपनी जबरदस्ती से स्त्रियों के कुछ दुःखात्मक भावोंको भी अपने विलास और मनोरंजन की सामग्री बना रखा है। जिस दिलचस्पी के साथ वे मेढ़ों की लड़ाई देखते हैं उसी दिलचस्पी के साथ अपनी कई स्त्रियों के परस्पर कलह को। नवोढ़ा का 'भय और कष्ट' भी नायिका-भेद के रसिकों के आनंद के प्रसंग है। इसी परिपाटी के अनुसार स्त्रियों की प्रेम-संबंधिनी ईर्ष्या का भी शृंगार-रस में एक विशेष स्थान है। यदि स्त्रियाँ भी इसी प्रकार पुरुषों की प्रेम-संबंधिनी ईर्ष्या को अपने खेलवाड़ की चीज बनावें तो कैसा?

सबसे उज्ज्वल रूप जिसमें हम पद्मिनी को देखते हैं वह सती का है। यह हिंदू-नारी का चरम उत्कर्ष को पहुँचा हुआ रूप है। जायसी ने उसके सतीत्व की परीक्षा का भी आयोजन किया है। पर जैसा पहले कहा जा चुका है जायसी ने ऐसे लोकोत्तर दिव्य-प्रेम की परीक्षा के लिये जो कसौटी तैयार की है, वह कदापि उसके महत्त्व के उपयुक्त नहीं है।

राजपूतों में 'जौहर' की प्रथा थी। पर पद्मावती और नागमती का सती होना 'जौहर' के रूप में नहीं कहा जा सकता। जौहर तो उस समय होता था जब शत्रुओं से घिरे गढ़ के भीतर के सैनिक गढ़-रक्षा की आशा न देख शस्त्र लेकर बाहर निकल पड़ते थे और उनके पराजय या मारे जाने का समाचार गढ़ के भीतर पहुँचने पर स्त्रियाँ शत्रु के हाथ में पड़ने के पहले अग्नि में कूद पड़ती थीं। पर जायसी ने मुसलमान-सेना के

आने के पहले ही रत्नसेन की मृत्यु दिखाकर पद्मिनी और नागमती का विधिपूर्वक पति की चिता मे बैठकर 'सती होना' दिखाया है। इसके उपरांत और सब क्षत्राणियों का 'जौहर' कहा गया है।

जातिगत स्वभाव के भीतर क्षत्रिय-नारी के उपयुक्त पद्मिनी के उस साहसपूर्ण उद्योग को भी लेना चाहिए जो उसने अपने पति के छुटकारे के लिये किया। उसने कैसे ओज-भरे शब्दों में गोरा बादल को बढ़ावा दिया है।

**नागमती**—सती नागमती को पहले हम 'रूपगर्विता' के रूप में देखते है। यह रूप-गर्व स्त्रियों के जातिगत सामान्य स्वभाव के अंतर्गत समझिए। ऐसा ही सपत्नी के प्रति उसकी ईर्ष्या को भी समझना चाहिए। इस जातिगत ईर्ष्या की मात्रा सामान्य से अधिक बढ़ी हुई हम नहीं पाते है जिससे विशेष ईर्ष्यालु प्रकृति का अनुमान कर सकें। नागमती पद्मिनी के विरुद्ध कोई भीषण षड्यंत्र आदि नहीं रचती है। कहीं कहीं तो उसकी ईर्ष्या भी पति की हितकामना के साथ मिश्रित दिखाई पड़ती है। राजा रत्नसेन के बंदी होने पर नागमती इस प्रकार विलाप करती है—

पद्मिनि ठगनी भइ कित साथा। जेहि तें रतन परा पर हाथा॥

इस जातिगत स्वभाव से आगे बढ़कर हम नागमती के आदर्श पक्ष पर आते है। पति पर उसका कैसा गूढ़ और गंभीर प्रेम उसकी वियोग-दशा द्वारा व्यक्त होता है! पारिवारिक जीवन की दृष्टि से यह पक्ष अत्यंत गंभीर और मधुर है। पति-परायणा नागमती जीवन-काल में अपनी प्रेम-ज्योति से गृह को आलोकित करके अंत में सती की दिगंत-व्यापिनी प्रभा से दमक कर इस लोक से अदृश्य हो जाती है।

**रत्नसेन और बादल की माता**—ये दोनो सामान्य माता के रूप में हमारे सामने आती है, क्षत्रिय माता के रूप मे नहीं। इसके वात्सल्य की व्यंजना मे हम उस स्नेह की झलक पाते है जो पुत्र के प्रति माता में सामान्यतः होता है। दोनों मे किसी प्रकार की व्यक्तिगत विशेषता नहीं दिखाई पड़ती। वर्ग विशेष की किसी प्रवृत्ति का भी पता उनमें नहीं है। रण में जाते हुए पुत्र को रोकने का प्रयत्न करके बादल की माता सामान्य माता का रूप दिखाती है, क्षत्राणी या क्षत्रिय माता का नहीं।

**राघव चेतन**—इस पात्र का स्वरूप समाज की उस भावना का पता देता है जो लोकप्रिय वैष्णव-धर्म के कई रूपों मे प्रचार के कारण शाक्तों, तांत्रिको या वाममार्गियों के विरुद्ध हो रही थी। इस सामाजिक दृष्टि से यदि हम देखते हैं तो राघव चेतन वर्ग विशेष का उसी प्रकार प्रतिनिधि ठहरता है जिस प्रकार शेक्सपियर के "वीनिस नगर का व्यापारी" का शाइलाक। वह भूत, प्रेत, यक्षिणी की पूजा करता था। उसकी वृत्ति उग्र और हिंसापूर्ण थी। कोमल और उदात्त भावो से उसका हृदय शून्य था। विवेक का उसमें लेश न था। वह इस बात का मूर्त्तिमान् प्रमाण था कि उत्तम संस्कार और बात है, पांडित्य और बात। हृदय के उत्तम संस्कार के बिना श्रेष्ट आचरण का विधान नहीं हो सकता। उसकी संप्रदाय-गत प्रवृत्ति के अतिरिक्त उसकी व्यक्तिगत अहंकार वृत्ति का भी कुछ पता इस बात से मिलता है कि वह अपने को औरो से भिन्न और श्रेष्ठ प्रकट करना चाहता था। जो बात सब लोग कहते उसके प्रतिकूल कहकर वह अपनी धाक जमाने की फिक्र में रहता था। सब पंडितो ने अमावस्या बताई तब उसने द्वितीया कहकर सिद्ध यक्षिणी के बल से अपनी बात रखनी चाही।

जिस राजा रत्नसेन के यहाँ वह जीवन भर रहा, उसके प्रति कृतज्ञता का कुछ भी भाव उसके हृदय मे हम नहीं पाते। देश से निकाले जाने की आज्ञा होते ही उसे बदला लेने की धुन हुई। पद्मिनी ने अत्यंत अमूल्य दान देकर उसे संतुष्ट करना चाहा पर उस कृपा का उस पर उलटा प्रभाव पड़ा। पहले तो अपने स्वामी की पत्नी को बुरे भाव से देख उसने घोर अविवेक का परिचय दिया। फिर उसके हृदय में हिंसा-वृत्ति और प्रतिकार-वासना के साथ ही साथ लोभ का उदय हुआ। वह सोचने लगा कि दिल्ली का बादशाह अलाउद्दीन अत्यंत प्रबल और लंपट है, उसके यहाँ चलकर पद्मिनी के रूप का वर्णन करूँ तो वह चित्तौर पर अवश्य चढ़ाई कर देगा जिससे मेरा बदला भी चुक जायगा और धन भी बहुत प्राप्त होगा। निर्लज्ज भी वह परले सिरे का दिखाई पड़ता है। जिस स्वामी के साथ उसने इतनी कृतघ्नता की, चित्तौरगढ़ के भीतर बादशाह के साथ जाकर, उसको मुँह दिखाते उसे कुछ भी लज्जा न आई। अपनी नीचता की हद को वह उस समय पहुँचता है जब राजा रत्नसेन के गढ़ के बाहर निकलने पर वह उन्हें बंदी करने का इशारा करता है।

सारांश यह कि अहंकार, अविवेक, कृतघ्नता, लोभ, निर्लज्जता और हिंसा द्वारा ही उसका हृदय संघटित ठहरता है। यदि पद्मावत के कथानक की रचना सदसत् के लौकिक परिणाम की दृष्टि से की गई होती तो राघव का परिणाम अत्यंत भयंकर दिखाया गया होता। पर कवि ने उसके परिणाम की कुछ भी चर्चा नहीं की है।

**गोरा बादल**—क्षत्रिय-वीरता के ये दो अत्यंत निर्मल आदर्श जायसी ने सामने रखे हैं। अबलाओं की रक्षा से जो माधुर्य्य योरप के मध्य युग के नाइटों की वीरता में दिखाई पड़ता था उसकी झलक के साथ ही साथ स्वामिभक्ति का अपूर्व गौरव इनकी वीरता में देख मन मुग्ध हो जाता है। जायसी की अंतर्दृष्टि धन्य है जिसने भारत के इस लोकरंजनकारी क्षात्र तेज को पहचाना।

पहले हम इन दोनो वीरो के खरेपन, दूरदर्शिता, आत्मसम्मान और स्वामिभक्ति इन व्यक्तिगत गुणों की ओर ध्यान देते हैं। गढ़ के भीतर बादशाह को घूमते देख इनसे न रहा गया। इन्हें बादशाह के रंग-ढंग से छल का संदेह हुआ और इन्होंने राजा को तुरंत सावधान किया। जब राजा ने इनकी बात न मानी तब ये आत्म-सम्मान के विचार से रूठकर घर बैठ रहे। मंत्रणा के कर्त्तव्य से मुक्त होकर ये शस्त्र-ग्रहण के कर्त्तव्य का अवसर देखने लगे। वह अवसर भी आया। रानी पद्मिनी पैदल इनके घर आई और रो रोकर उसने राजा को छुड़ाने की प्रार्थना की। कठोरता के अवसर पर कठोर से कठोर होनेवाला और कोमलता के अवसर पर कोमल से कोमल होनेवाला हृदय ही प्रकृत क्षत्रिय हृदय है। अत्याचार से द्रवीभूत होनेवाले हृदय की उग्रता ही लोक-रक्षा के उपयोग में आ सकती है। रानी की दशा देखते ही—

गोरा बादल दुवौ पसीजे। रोवत रुहिर सीस लहि भीजे॥

दोनो की तेज भरी प्रतिज्ञा सुनकर पद्मिनी ने जो साधुवाद दिया उसके भीतर क्षात्र धर्म की ओर यह स्पष्ट संकेत है—

तुम टारन भारन्ह जग जाने। तुम सुपुरुष औ करन बखाने॥

संसार का भार टालना, विपत्ति से उद्धार करना, अन्याय और अत्याचार का दमन करना ही क्षात्र धर्म है।

इस क्षात्र धर्म का अत्यंत उज्ज्वल स्वरूप इन दोनों वीरों के आचरण में झलकता है। कवि ने बादल की छोटी अवस्था दिखाकर और उसकी नवागता वधू को लाकर कर्त्तव्य की एक बड़ी कड़ी कसौटी सामने

रखने के साथ ही साथ संपूर्ण प्रसंग को अत्यंत मर्मस्पर्शी बना दिया है। बादल युद्ध-यात्रा के लिये तैयार होता है। उसकी माता स्नेह-वश युद्ध की भीषणता दिखाकर रोकना चाहती है। इस पर वह अपने बल के विश्वास की दृढ़ता दिखाता है। इसके पीछे उसकी तुरंत की आई हुई वधू सामने आकर खड़ी होती है, पर वह हृदय को कठोर करके मुँह फेर लेता है—

तब धनि कीन्हि बिहँसि चख दीठी। बादल तबहि दीन्हि फिरि पीठी॥
मुख फिराइ मन अपने रीसा। चलत न तिरिया कर मुख दीसा॥

यह कर्त्तव्य की कठोरता है। फिर स्त्री फेटा पकड़ती है, पर बादल छुड़ाकर अपना कर्त्तव्य समझाता है—

जौ तुइँ गवन आइ गजगामी। गवन मोर जहवाँ मोर स्वामी॥

कर्त्तव्य की यह कठोरता कितनी सुन्दर और कितनी मर्मस्पर्शिनी है!

इस आदर्श क्षत्रिय-वीरता के अतिरिक्त दोनो में युक्ति-पटुता का व्यक्तिगत गुण भी हम पूरा पूरा पाते है। सोलह सौ पालकियो के भीतर राजपूत योद्धाओं को बिठाकर दिल्ली ले जाने की युक्ति इन्हीं दोनों वीरों की सोची हुई थी जो पूरी उतरी।

वृद्ध वीर गोरा ने अपने पुत्र बादल को ६०० सरदारो के साथ, छूटे हुए राजा को पहुँचाने, चित्तौर की ओर भेजा और आप केवल एक हजार सरदारों को लेकर बादशाही फौज को तब तक रोके रहा जब तक राजा चित्तोर नहीं पहुँच गया। अंत में उसी युद्ध में वह वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके पेट में साँग धँसी और आँते जमीन पर गिर पड़ीं पर आँतो को बाँधकर वह फिर घोड़े पर सवार हो लड़ने लगा। उसी समय चारण ने साधुवाद दिया—

भाँट कहा, धनि गोरा! तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधि कै तुरय देत है पाव॥

बादल भी रत्नसेन की मृत्यु के पीछे चित्तौरगढ़ की रक्षा में फाटक पर मारा गया।

**बादल की स्त्री**—बादल की स्त्री का चित्रण बराबर तो सामान्य स्त्री के रूप मे है पर अंत में वह अपना वीर पत्नी और क्षत्राणी का रूप प्रकट करती है। जब उसने देखा कि पति किसी प्रकार युद्ध से विमुख न होंगे, तब वह कहती है—

जौ तुम कंत ! जूझ जिउ काँधा । तुम, पिउ ! साहस, मैं सत बाँधा ॥
रन सग्राम जूझि जिति आवहु । लाज होइ जौ पीठि देखावहु ॥

इसके उपरांत अपनी दृढ़ता और क्षात्र गौरव की व्यंजना देखिए, कैसे अर्थ-गर्भित वाक्य द्वारा वह करती है—

तुम, पिउ ! साहस बाँधा, मै दिय माँग सेंदूर ।
दोउ सँभारे होइ सँग, बाजै मादर तूर ॥

तुम युद्ध का साहस बाँधते हो और मैं सती का बाना लेती हूँ । इन दोनों बातों का जब दोनों ओर से निर्वाह होगा तभी फिर हमारा-तुम्हारा साथ हो सकता है । यदि तुम युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए और मै सती न हुई तो साथ न होगा; यदि तुम पीठ दिखाकर भाग आए तब भी मै तुमसे न मिल सकूँगी । यदि दोनों ने अपने-अपने पक्ष का निर्वाह किया तो जय और पराजय दोनो अवस्थाओं में मिलाप हो सकता है—तुम जीतकर आए तो इसी लोक में और मारे गए तो उस लोक में ।

**देवपाल की दूती**—इसका चित्रण दूतियों का सामान्य लक्षण लेकर ही हुआ है । दूतियो में जैसा आडंबर, धूर्त्तता, प्रगल्भता, वाक्चातुर्य्य दिखाने की परिपाटी है वैसा ही कवि ने दिखाया है । पहले तो अपने ऊपर कुछ स्नेह और विश्वास उत्पन्न करने के लिये वह पद्मिनी के मायके की बनती है, फिर उसके रूप-यौवन आदि का वर्णन करके उसके हृदय में विषय-वासना उद्दीप्त करना चाहती है । पर-पुरुष की चर्चा छेड़ने पर जब पद्मिनी चौंककर कहती है कि तू मेरे ऊपर मसि या कालिमा लगाना चाहती है तब वह 'मसि' शब्द पर इस प्रकार तर्क करती है—

पद्मिनि ! पुनि मसि बोलु न बैना । सो मसि देखु दुहूँ तोरे नैना ॥
मसि सिंगार, काँजर सब बोला । मसि क बुंद तिल सोह कपोला ॥
लोना सोइ जहाँ मसि-रेखा । मसि पुतरिन्ह जिन्ह सौ जग देखा ॥
मसि केसहि, मसि भौंह उजही । मसि बिनु दसन सोभ नहिं देही ॥
सो कस सेत जहाँ मसि नाहीं । सो कस पिंड न जहँ परछाही ? ॥

देखिए "लोना सोइ जहाँ मसि-रेखा" कहकर दूती किस प्रकार मसि भीनते हुए जवान की ओर इशारा करके काम-वासना उत्पन्न करना चाहती है । फिर अंत में श्वेत और कृष्ण—सफेद और स्याह—को

जगत् में सापेक्ष दिखाकर पद्मिनी का संकोच दूर करना चाहती है। अंतिम युक्ति तो दार्शनिकों की सी है।

**अलाउद्दीन**—अपने बल, प्रताप और श्रेष्ठता के अभिमान मे अलाउद्दीन इस बात को सहन नहीं कर सकता कि और किसी के पास कोई ऐसी वस्तु रहे जैसी उसके पास न हो। जब राघव चेतन पद्मिनी की प्रशंसा करता है तब पहले तो उसे यह समझकर बहुत बुरा लगता है कि मेरे हरम में एक से एक बढ़कर सुंदरी स्त्रियाँ है, उन सबसे बढ़कर सुंदरी का होना यह एक राजा के यहाँ बतला रहा है। पर जब राघव चेतन स्त्रियों के चार भेद समझाकर पद्मिनी के रूप का विस्तृत वर्णन करता है तब उसे रूप-लोभ आ घेरता है और वह चित्तौर दूत भेजता है। रत्नसेन के क्रोधपूर्ण उत्तर पर वह चढ़ाई कर देता है। इस चढ़ाई के कारण लोभ और अभिमान ही कहे जायँगे, क्रोध नहीं, क्योंकि क्रोध तो लोभ और अभिमान की तुष्टि के मार्ग में बाधा पड़ने के कारण उत्पन्न हुआ। अलाउद्दीन वीर था। अतः वीरों का सम्मान उसके हृदय में था। बादशाह का संधिसंबंधी प्रस्ताव जब राजा रत्नसेन ने स्वीकृत कर लिया तब इस बात की सूचना बादशाह को देते समय सरजा ने चापलूसी के ढंग पर राजपूतों को 'काग' कह दिया। इस पर अलाउद्दीन ने उसको यह कहकर फटकारा कि "वे काग नहीं हैं; काग हो तुम जो धूर्त्तता करते हो और इधर का सँदेसा उधर कहते फिरते हो। काग धनुष पर बाण चढ़ा हुआ देखते ही भाग खड़े होते है, पर वे राजपूत यदि हमारी ओर धनुप पर बाण चढ़ा देखें तो तुरंत सामना करने के लिये लौट पड़ें"।

'पदमावत' के पात्रों में राघव और अलाउद्दीन ही ऐसे है जिनके प्रति अरुचि या विरक्ति का भाव पाठको के मन में उत्पन्न हो सकता है। इनमें से राघव के प्रति तो जायसी ने अपनी अरुचि का आभास दिया है पर कथा के बीच में अलाउद्दीन के प्रति उनके किसी भाव की झलक नहीं मिलती। हाँ, ग्रंथ के अंत मे 'माया अलादीन सुलतानू' कहकर उसके असत् रूप का आभास दिया गया है। अलाउद्दीन का आचरण अच्छा कभी नहीं कहा जा सकता। किसी की ब्याही स्त्री माँगना धर्म्म और शिष्टता के विरुद्ध है। उसके आचरण के प्रति कवि की यह उदासीनता कैसी है? पक्षपात तो हम कह नहीं सकते, क्योंकि जायसी ने

कहीं इसका परिचय नहीं दिया है। उसके बल और प्रताप को कवि ने जो रत्नसेन के बल-प्रताप से अधिक दिखाया है वह उचित ही है क्योंकि अलाउद्दीन एक बड़े भूखंड का बादशाह था। पर राजपूतों की वीरता बादशाह के बल और प्रताप के ऊपर दिखाई पड़ती है। आठ वर्ष तक चित्तौर गढ़ को घेरे रहने पर भी अलाउद्दीन उसे न तोड़ सका। इसके अतिरिक्त कवि ने अलाउद्दीन की दूसरी चढ़ाई में रत्नसेन का मारा जाना ( जैसा कि इतिहास में प्रसिद्ध है ) न दिखाकर उसके पहले ही एक राजपूत के हाथ से मारा जाना दिखाया है। यदि कवि बादशाह द्वारा राजा का गर्व चूर्ण होना दिखाया चाहता तो ऐसा कभी न करता। उसने रत्नसेन के मान की रक्षा की है। अतः कवि की उदासीनता या मौन का कारण पक्षपात नहीं है बल्कि मुसलमान बादशाहों की बराबर से चली आती हुई चाल है जो कुचाल होने पर भी व्यक्तिगत नही कही जा सकती।

इस प्रकरण के आरंभ में ही स्वभाव-चित्रण हमने चार प्रकार के कहे थे। इनमें से जायसी के सामान्य मानवी प्रकृति के चित्रण के संबंध में अभी तक कुछ विशेष नहीं कहा गया। कारण यह है कि इसका सन्निवेश 'पदमावत' में बहुत कम मिलता है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने जिस प्रकार स्थान-स्थान पर मनुष्य मात्र में सामान्यतः पाई जानेवाली अंतर्वृत्ति की झलक दिखाई है, उस प्रकार जायसी ने नही। एक उदाहरण लीजिए। गौरी के मंदिर में जाकर इच्छा रहते भी जानकी का राम की ओर न ताककर आँख मूँदकर ध्यान करने लगना उस कृत्रिम उदासीनता की व्यंजना करता है जो ऐसे अवसरो पर स्वाभाविक होती है। सखियो ने उस अवसर पर जो परिहास की स्वच्छंदता दिखाई है वह भी सामान्य-स्वभावगत है। पर जायसी की पद्मावती महादेव के मंडप में सीधे जोगी रत्नसेन के पास जा पहुँचती है और उसकी सखियो में ऐसे अवसर पर स्वाभाविक परिहास का उदय भी नहीं दिखाई पड़ता है।

रूप और शील के साक्षात्कार से मनुष्य मात्र की अंतर्वृत्ति जिस रूप की हो जाती है उसकी बहुत सुंदर झाँकी गोस्वामीजी ने उस समय दिखाई है जिस समय वनवासी राम को जनपदवासी कुछ दूर तक पहुँचा आते है और उनकी वाणी सुनने के लिये कुछ प्रश्न करते हैं। कैकेयी और मंथरा के संवाद में भी मनोवृत्तियो का बहुत ही सूक्ष्म

निरीक्षण है। जायसी भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियों की परख में ऐसी दक्षता नहीं दिखाते।

कहने का मतलब यह नहीं कि जायसी ने इस बात की ओर कुछ ध्यान नहीं दिया है। गोरा-बादल के प्रतिज्ञा करने पर कृतज्ञता-वश पद्मिनी के हृदय में उन दोनों वीरों के प्रति जो महत्त्व की भावना जाग्रत होती है वह बहुत ही स्वाभाविक है। पर ऐसे स्थल बहुत कम है। सामान्यतः यही कहा जा सकता है कि भिन्न भिन्न परिस्थितियों की अंतर्वृत्ति का सूक्ष्म निरीक्षण जायसी में बहुत कम है।

---

## मत और सिद्धांत

यह आरंभ में ही कहा जा चुका है कि मुसलमान फकीरों की एक प्रसिद्ध गद्दी की शिष्य-परंपरा में होते हुए भी, तत्त्वदृष्टि-संपन्न होने के कारण, जायसी के भाव अत्यंत उदार थे। पर विधि-विरोध, विद्वानो की निंदा, अनधिकार चर्चा, समाज-विद्वेष आदि इनकी उदारता के भीतर नहीं थे। व्यक्तिगत साधन की उच्च भूमि पर पहुँचकर भी लोकरक्षा और लोकरंजन के प्रतिष्ठित आदर्शों को ये प्रेम और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। न्यायनिष्ठ राजशक्ति, सच्ची वीरता, सुख-विधायक प्रभुत्व, अनुरंजनकारी ऐश्वर्य, ज्ञानवर्द्धक पांडित्य में ये भगवान् की लोकरक्षिणी कला का दर्शन करते थे और उनकी स्तुति करना वाणी का सदुपयोग मानते थे। साधारण धर्म्म और विशेष धर्म्म दोनो के तत्त्व को ये समझते थे। लोक मर्य्यादा के अनुसार जो सम्मान की दृष्टि से देखे जाते है उनके उपहास और निंदा द्वारा निम्न श्रेणी की जनता की ईर्ष्या और अहंकार-वृत्ति को तुष्ट करके यदि ये चाहते तो ये भी एक नया 'पथ' खड़ा कर सकते थे। पर इनके हृदय में यह वासना न थी। पीरों, पैगंबरो, मुल्लों और पंडितो की निंदा करने के स्थान पर इन्होने ग्रंथारंभ में उनकी स्तुति की है और अपने को "पंडितों का पछलगा" कहा है।

विधि पर इनकी पूरी आस्था थी। 'वेद-पुराण' और 'कुरान' आदि को ये लोक-कल्याण-मार्ग प्रतिपादित करनेवाले वचन मानते थे। जो वेद-प्रतिपादित मार्ग पर न चलकर मनमाने मार्ग पर चलते है उन्हें जायसी अच्छा नहीं समझते—

राघव पूज जाखिनी, दुइज देवाएसि साँझ।
वेदपंथ जे नहिं चलहिं, ते भूलहिं बन माँझ॥
झूठ बोल थिर रहै न राँचा। पंडित सोइ वेदमत साँचा॥
वेद-बचन मुख साँच जो कहा। सो जुग जुग अहथिर होइ रहा॥

आरंभ में ही कहा जा चुका है कि वल्लभाचार्य्य, रामानंद, चैतन्य महाप्रभु आदि के प्रभाव से जिस शांतिपूर्ण और अहिंसामय वैष्णव धर्म के प्रवाह ने सारे देश को भक्तिरस में मग्न किया उसका सबसे अधिक विरोध उग्र हिंसा-पूर्ण शाक्तमत और वाममार्ग से दिखाई पड़ा। मंत्र-तंत्र के प्रयोग करने वाले, भूत-प्रेत और यक्षिणी आदि सिद्ध करनेवाले तांत्रिकों और शाक्तों के प्रति उस समय समाज के भाव कैसे हो रहे थे, इसका पता राघव चेतन के चरित्र-चित्रण से मिलता है। शाक्त-मत-विहित मंत्र-तंत्र और प्रयोग आदि वेद-विरुद्ध अनाचार के रूप में समझे जाने लगे थे। गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी कई जगह समाज की इस प्रवृत्ति का आभास दिया है, जैसे—

जे परिहरि हरि-हर-चरन भजहिं भूतगन घोर।
तिनकी गति मोहिं देहु विधि जो जननी मत मोर॥

प्रेम-प्रधान वैष्णव मत के इस पुनरुत्थान से अहिंसा का भाव यों तो सारी जनता में आदर लाभ कर चुका था पर साधुओं और फकीरों के हृदय में विशेष रूप से बद्ध-मूल हो गया था। क्या हिंदू क्या मुसलमान, क्या सगुणोपासक क्या निर्गुणोपासक, सब प्रकार के साधु और फकीर इसका महत्त्व स्वीकार कर चुके थे। कबीरदास का यह दोहा प्रसिद्ध ही है—

बकरी पाती खाति है ताकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल?॥

इसी प्रकार और बहुत जगह कबीरदासजी ने पशु-हिंसा के विरुद्ध वाणी सुनाई है, जैसे—

दिन को रोजा रहत हैं, राति हनत हैं गाय।
यह तो खून, वह बंदगी, कहु क्यो खुसी खुदाय॥
खुस खाना है खीचरी, माँझ परा टुक लोन।
माँस पराया खाय कै गला कटावै कौन?॥

इस साधु-प्रवृत्ति के अनुसार जायसी ने भी पशु-हिंसा के विरुद्ध अपने विचार, युद्धस्थल के वर्णन में, इस प्रकार प्रकट किए हैं—

जिन्ह बस माँसू भखा परावा। तस तिन्ह कर लेइ औरन खावा॥

जायसी मुसलमान थे इससे उनकी उपासना निराकारोपासना ही कही जायगी। पर सूफी मत की ओर पूरी तरह झुकी होने के कारण उनकी उपासना में साकारोपासना की सी ही सहृदयता थी। उपासना के व्यवहार के लिये सूफी परमात्मा को अनंत सौंदर्य्य, अनंत शक्ति और अनंत गुणों का समुद्र मानकर चलते है। सूफियों के अद्वैतवाद ने एक बार मुसलमानी देशों में बड़ी हलचल मचाई थी। ईरान, तूरान आदि में आर्य्य-संस्कार बहुत दिनों तक दबा न रह सका। शामी कट्टरपन के प्रवाह के बीच भी उसने अपना सिर उठाया। मंसूर हल्लाज खलीफा के हुक्म से सूली पर चढ़ाया गया पर "अनलहक" (मै ब्रह्म हूँ) की आवाज बंद न हुई। फारस के पहुँचे हुए शायरों की प्रवृत्ति इसी अद्वैत पक्ष की ओर रही।

पैगम्बरी एकेश्वरवाद (Monotheism) और इस अद्वैतवाद (Monism) में बड़ा सिद्धांत-भेद था। एकेश्वरवाद और बात है, अद्वैतवाद और बात। एकेश्वरवाद स्थूल देववाद है और अद्वैतवाद सूक्ष्म आत्मवाद या ब्रह्मवाद। बहुत से देवी-देवताओं को मानना और सबके दादा एक बड़े देवता (ईश्वर) को मानना एक ही बात है। एकेश्वरवाद भी देववाद ही है। भावना मे कोई अंतर नहीं है। पर अद्वैतवाद गूढ़ दार्शनिक चिंतन का फल है, सूक्ष्म अंतर्दृष्टि द्वारा प्राप्त तत्त्व है, जिसको अनुभूति-मार्ग में लेकर सूफी आदि अद्वैती भक्त-संप्रदाय चले। एकेश्वरवाद का मतलब यह है कि एक सर्वशक्तिमान् सबसे बड़ा देवता है जो सृष्टि की रचना, पालन और नाश करता है। अद्वैतवाद का मतलब है कि दृश्य जगत् की तह मे उसका आधार-स्वरूप एक ही अखंड नित्य तत्त्व है और वही सत्य है। उससे स्वतंत्र और कोई अलग सत्ता नही है और न आत्मा परमात्मा मे कोई भेद है। दृश्य जगत् के नाना रूपो को उसी अव्यक्त ब्रह्म के व्यक्त आभास मानकर सूफी लोग भावमग्न हुआ करते है।

अतः स्थूल एकेश्वरवाद और ब्रह्मवाद में भेद यह हुआ कि एकेश्वरवाद के भीतर वाह्यार्थवाद छिपा है क्योंकि वह जीवात्मा, परमात्मा और जड़ जगत् तीनों को अलग अलग तत्त्व मानता है पर ब्रह्मवाद मे शुद्ध परमात्मा के अतिरिक्त और कोई सत्ता नहीं मानी जाती, आत्मा और परमात्मा में भी कोई भेद नहीं माना जाता। अतः स्थूल

दृष्टिवाले पैगंबरी एकेश्वरवादियों के निकट यह कहना कि "आत्मा और परमात्मा एक ही है" अथवा "मैं ही ब्रह्म हूँ" कुफ्र की बात है। इसी से सूफियों को कट्टर मुसलमान एक तरह के काफिर समझते थे। सूफी मजहबी दस्तूर (कर्मकांड और संस्कार) आदि के संबंध में भी कुछ आजाद दिखाई देते थे और मोक्ष के लिये किसी पैगंबर आदि मध्यस्थ की जरूरत नहीं बताते थे। इस प्रकार के भावों का प्रचार वे कथाओं द्वारा भी किया करते थे। जैसे, कयामत के दिन जब मुहम्मद साहब खुदा के सामने सबको पेश करने लगेंगे तब कुछ लोग भीड़ से अलग दिखाई देंगे। मुहम्मद साहब कहेंगे "ऐ खुदावंद! ये लोग कौन हैं, मैं नहीं जानता"। खुदा उस वक्त कहेगा "ऐ मुहम्मद! जिनको तुमने पेश किया वे तुम्हें जानते हैं, मुझे नहीं जानते। ये लोग मुझे जानते है, तुम्हें नहीं जानते"। फारस के शिक्षित समाज का झुकाव इस सूफी मत की ओर बहुत कुछ रहा। जायसी ने सूफियों के उदार प्रेम-मार्ग के प्रति अपना अनुराग प्रकट किया है—

प्रेम-पहार कठिन विधि गढ़ा। सो पै चढ़े जो सि सौ चढ़ा।
पथ सूरि कर उठा अँकूरू। चोर चढ़ै, की चढ़ मंसूरू॥

यहाँ पर संक्षेप में सूफी मत का कुछ परिचय दे देना आवश्यक जान पड़ता है। आरंभ मे सूफी एक प्रकार के फकीर या दरवेश थे जो खुदा की राह पर अपना जीवन ले चलते थे, दीनता और नम्रता के साथ बड़ी फटी हालत में दिन बिताते थे, ऊन के कंबल लपेटे रहते थे, भूख-प्यास सहते थे और ईश्वर के प्रेम मे लीन रहते थे। कुछ दिनों तक तो इसलाम की साधारण धर्म-शिक्षा के पालन मे विशेष त्याग और आग्रह के अतिरिक्त इनमें कोई नई बात या विलक्षणता नहीं दिखाई पड़ती थी। पर ज्यों ज्यों ये साधना के मानसिक पक्ष की ओर अधिक प्रवृत्त होते गए, त्यो त्यों इसलाम के बाह्य विधानो से उदासीन होते गए। फिर तो धीरे धीरे अंतःकरण की पवित्रता और हृदय के प्रेम को ही ये मुख्य कहने लगे और बाहरी बातों को आडंबर। मुहम्मद साहब के लगभग ढाई सौ वर्ष पीछे इनकी चिंतन-पद्धति का विकास हुआ और ये इस्लाम के एकेश्वरवाद (तौहीद) से अद्वैतवाद पर जा पहुंचे। जिस प्रकार हमारे यहाँ अद्वैतवादी, विशिष्टाद्वैतवादी, विशुद्धाद्वैतवादी और द्वैतवादी आदि सब श्रुतियों को ही आधार मानकर उन्हीं के वचनों को प्रमाण में लाते थे उसी प्रकार ये कुरान के वचनों को अपने ढंग

पर व्याख्या करते थे। कहते हैं कि अद्वैतवाद का बीज इन्हें कुरान के कुछ वचनों में ही मिला, जैसे—"अल्लाह के मुख के सिवा सब वस्तुएँ नाशवान् ( हालिक ) है; चाहे तू जिधर फिरे अल्लाह का मुँह उधर ही पावेगा।" चाहे जो हो, कुरान का अल्लाह-रूप 'पुरुष-विशेष' सूफियो के यहाँ जाकर अद्वैत पारमार्थिक सत्ता हुआ।

इसमे संदेह नहीं कि सूफियो को अद्वैतवाद पर लानेवाले प्रभाव अधिकतर बाहर के थे। खलीफा लोगों के जमाने में कई देशों के विद्वान् बगदाद और बसरे में आते-जाते थे। आयुर्वेद, दर्शन, ज्योतिष, विज्ञान आदि के अनेक भाषाओं के ग्रंथो का अरबी मे भाषांतर भी हुआ। यूनानी भाषा के किसी ग्रंथ का अनुवाद 'अरस्तू के सिद्धांत' के नाम से अरबी भाषा में हुआ जिसमे अद्वैतवाद का दार्शनिक रीति पर प्रतिपादन था। इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के वेदांत-केसरी का गर्जन भी दूर दूर तक गूँज गया था। मुहम्मद बिन कासिम के साथ आए हुए कुछ अरब सिंध मे रह गए थे। इतिहासो में लिखा है कि वे और उनकी संतति ब्राह्मणो के साथ बहुत मेल-जोल से रही। इन अरबों में कुछ सूफी भी थे जिन्होने हिंदुओ के अद्वैतवाद का ज्ञान प्राप्त किया और साधना की बाते भी सीखी। सिंध के अबूअली प्राणायाम की विधि ( पास-ए-अनफास ) जानते थे। उन्होंने बायजीद को "फना" ( गुजर जाना अर्थात् अहंभाव का सर्वथा त्याग और विषय-वासना की निवृत्ति ) का सिद्धांत बताया। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह 'फना' बौद्धों के निर्माण की प्रतिध्वनि थी। बलख और तुर्किस्तान आदि देशो में बौद्ध सिद्धांतो की गूँज तब तक कुछ बनी हुई थी। बहुत से शक और तुरुष्क उस समय तक बौद्ध बने थे और पीछे भी कुछ दिनो तक रहे। चंगेज खाँ बौद्ध ही था। अलाउद्दीन के समय मे कुछ ऐसे मंगोल भारतवर्ष मे भी आकर बसे थे जो "नए बने हुए मुसलमान" कहे गए है।

अब सूफियो की सिद्धांत-संबंधिनी कुछ खास खास बातो का थोड़े मे उल्लेख करता हूँ जिससे जायसी के दोनों ग्रंथों का तात्पर्य्य समझने में सहायता मिलेगी। सूफी लोग मनुष्य के चार विभाग मानते है—( १ ) नफ्स ( विषय-भोग वृत्ति या इंद्रिय ), ( २ ) रूह ( आत्मा या चित् ), ( ३ ) कल्ब ( हृदय ) और ( ४ ) अक्ल ( बुद्धि )।

नफ्स के साथ युद्ध साधक का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए। कल्ब

( हृदय ) और रूह ( आत्मा ) द्वारा ही साधक अपनी साधना करते है। कुछ लोग हृदय का एक सबसे भीतरी तल 'सिर्र' भी मानते है। कल्ब और रूह का भेद सूफियों में बहुत स्पष्ट नहीं है। हमारे यहाँ मन ( अंतःकरण ) और आत्मा में प्राकृतिक अप्राकृतिक का जैसा भेद है वैसा कोई भेद नहीं है। 'कल्ब' भी एक भूतातीत पदार्थ कहा गया है, प्रकृति का विकार या भौतिक पदार्थ नहीं। उसके द्वारा ही सब प्रकार का वस्तु-ज्ञान होता है अर्थात् उसी पर वस्तु का प्रतिबिंब पड़ता है, ठीक वैसे ही जैसे दर्पण पर पड़ता है। शाहजहाँ के पुत्र दाराशिकोह ने अपनी छोटी सी पुस्तक "रिसालए हक-नुमा" मे चार जगत् कहे है—(१) आलमे नासूत—भौतिक जगत्, ( २ ) आलमे मलकूत या आलमे अरवाह—चित् जगत् या आत्म-जगत्, ( ३ ) आलमे जबरूत—आनंदमय जगत् जिसमें सुख-दुःख आदि द्वंद्व नहीं और ( ४ ) आलमे लाहूत—सत्य जगत् या ब्रह्म। 'कल्ब', रूह ( आत्मा ) और रूपात्मक जगत् के बीच का एक साधन-रूप पदार्थ है। इसका कुछ स्पष्टीकरण दाराशिकोह के इस विवरण से होता है—

"दृश्य जगत् मे जो नाना रूप दिखाई पड़ते हैं वे तो अनित्य हैं पर उन रूपों की जो भावनाएँ होती है वे अनित्य नही है। वे भाव-चित्र नित्य है। उसी भाव-चित्र जगत् ( आलमे मिसाल ) से हम आत्म-जगत् को जान सकते है जिसे 'आलमे गैब' और 'आलमे ख्वाब' भी कहते है। आँख मूँदने पर जो रूप दिखाई पड़ता है वही उस रूप की आत्मा या सारसत्ता है। अतः यह स्पष्ट है कि मनुष्य की आत्मा उन्हीं रूपों की है जो रूप बाहर दिखाई पड़ते है, भेद इतना ही है कि अपनी सारसत्ता मे स्थित रूप पिंड या शरीर से मुक्त होते है। सारांश यह कि आत्मा और बाह्य रूपों का बिंब-प्रतिबिंब संबंध है। स्वप्न की अवस्था में आत्मा का यही सूक्ष्म रूप दिखाई पड़ता है जिसमें आँख, कान, नाक आदि सब की वृत्तियाँ रहती है पर स्थूल रूप नहीं रहते।"

इस विवरण से यह आभास मिलता है कि सूफियों के अनुसार 'ज्ञान' या 'प्रत्यय' तो है आत्मा और जिस पर विविध ज्ञान या भाव-चित्र अंकित होते है वह है 'कल्ब' या हृदय। ऊपर जो चार जगत् कहे गए उन पर ध्यान देने से प्रथम को छोड़ शेष तीन जगत् हमारे यहाँ के 'सच्चिदानंद' के विश्लेषण प्रतीत होगे। सूफियों के अनुसार 'सत्' ही चरम पारमार्थिक सत्ता है। वह सत्य या ब्रह्म चित् या आत्म जगत

से भी परे हैं। हमारे यहाँ बहुत से वेदांती भी ब्रह्म को आत्म-स्वरूप या परमात्मा कहते हुए भी उसे चिद्रूप कहना ठीक नहीं समझते। उनका कहना है कि आत्मा के सान्निध्य से जड़ बुद्धि में उत्पन्न धर्म ही चित् अर्थात् ज्ञान कहलाता है। अतः बुद्धि के इस धर्म का आरोप आत्मा या ब्रह्म पर उचित नहीं। ब्रह्म को निर्गुण और अज्ञेय ही कहना चाहिए।

पारमार्थिक वस्तु या सत्य के बोध के लिये 'कल्ब' स्वच्छ और निर्मल होना आवश्यक है। उसकी शुद्धि जिक्र (स्मरण) और मुराकबत (ध्यान) से होती है। स्मरण और ध्यान से ही 'मंजु-मन-मुकुर' का मल छूट सकता है। जिक्र या स्मरण की प्रथमावस्था है अहंभाव का त्याग अर्थात् अपने को भूल जाना और परमावस्था है ज्ञाता और ज्ञान दोनों की भावना का नाश अर्थात् यह भावना न रहना कि हम ज्ञाता हैं और यह किसी वस्तु का ज्ञान है बल्कि अर्थ या विषय के आकार का ही रह जाना। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह योग की निर्विकल्प या असंप्रज्ञात समाधि है।

सूफी मत की भक्ति का स्वरूप प्रायः वही है जो हमारे यहाँ की भक्ति का। नफ्स के साथ जिहाद (धर्मयुद्ध) विरति-पक्ष है और जिक्र और मुराकबत (स्मरण और ध्यान) नवधा भक्ति-पक्ष। रति और विरति इन दोनों पक्षों को लिए बिना अनन्य भक्ति की साधना हो नहीं सकती। हम व्यावहारिक सत्ता के बीच अपने होने का अनुभव करते हैं। जगत् केवल नामरूप और असत् सही, पर ये नामरूपात्मक दृश्य जब तक ध्यान की परमावस्था द्वारा एकदम मिटा न दिए जायँ, तब तक हमें इनका कुछ इंतजाम करके चलना चाहिए। जब कि हम अपने रति-भाव को पूर्णतया दूसरे (अदृश्य) पक्ष में लगाना चाहते हैं तब पहले उसे दृश्य पक्ष से धीरे धीरे सुलझा कर अलग करना पड़ेगा। साधना के व्यवहार-क्षेत्र में हमें ईश्वर और जगत् ये दो पक्ष मानकर चलना ही पड़ेगा। तीसरे हम ऊपर से होंगे। इसी से भक्ति के साथ एक ओर तो वैराग्य लगा दिखाई पड़ता है, दूसरी ओर योग*।

'कल्ब क्या है', इस पर कुछ विचार हो चुका। जब कि कल्ब पर पड़े हुए प्रतिबिंब का ही आत्मा को बोध होता है तब वह शुद्ध वेदांत

* यहाँ 'योग' शब्द का व्यवहार उसी अर्थ में है जो 'याज्ञवल्क्य-स्मृति' में है—संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।

की दृष्टि से आत्मा के साथ लगा हुआ अंतःकरण ही है और जड़ प्रकृति का ही विकार है। प्रकृति का विकार होने से वह भी 'जगत्' के अंतर्भूत है। इस पद्धति पर चलने से हम वेदांत के 'प्रतिबिंबवाद' पर पहुँचते है। जायसी ने इसी भारतीय पद्धति का अनुसरण करके जगत् को दर्पण कहा है जिसमे ब्रह्म का प्रतिबिंब पड़ता है।

'कल्ब' या हृदय को भी सूफियों ने जो रूह (आत्मा) के समान अभौतिक माना है वह अपने प्रेम-मार्ग या भक्ति-मार्ग की भावना के अनुसार उसे परमात्मा के नित्य स्वरूप के अंतर्भूत करने के लिये। जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजी की आलोचना में हम कह चुके है, परोक्ष 'चित्' और परोक्ष 'शक्ति' मात्र की भावना से मनुष्य की वृत्ति पूर्णतया तुष्ट न हुई, इससे वह 'परोक्ष हृदय' की खोज में बराबर रहा। भक्ति-मार्ग में जाकर परमात्मा का 'हृदय' मनुष्य को मिला और मनुष्य की संपूर्ण सत्ता का एक परोक्ष आधार प्रतिष्ठित हो गया। मनुष्य का हृदय मानो उस परोक्ष हृदय के बिना अकेले ऊबता सा था। किस प्रकार उस 'परोक्ष हृदय' का आभास ईसाई मत ने पहले पहल संसार की भिन्न भिन्न जातियों को दिया, इसका वर्णन अँगरेज कवि ब्राउनिंग ने बड़े मार्मिक ढंग से किया है। कारसिश नामक एक विद्वान् अरब हकीम की भेंट लाजरस नामक एक यहूदी से होती है जो अपनी जाति के एक ईसाई हकीम द्वारा अपने मरकर जिलाए जाने की बात कहता है और ईसाई मत के प्रेम-तत्त्व का संदेश भी सुनाता है। अरब हकीम उस यहूदी से मिलने का वृत्तांत अपने एक मित्र को लिखते हुए उक्त प्रेम-मार्ग की चर्चा इस प्रकार करता है—

> The very God! Think Abib; dost thou think?
> So the All-Great were the All-Loving too—
> So, through the thunder comes a human voice,
> Saying, "O heart I made, a heart beats here!
> Face, my hands fashioned, see it in myself.
> Thou hast no power, nor mayst conceive of mine.
> But love I gave thee, with myself to love,
> And thou must love me who have died for thee."*

*An epistle containing the strange medical experience of Karsish, the Arab physician.

[ भावार्थ—हबीब ! सोचो तो । वही सर्वशक्तिमान् ईश्वर प्रेममय भी है । मेघ-गर्जन के बीच से मनुष्य का सा यह स्वर सुनाई पड़ता है—'हे मेरे बनाए हुए हृदय ! इधर भी हृदय है । हे मेरे बनाए हुए मुखड़े ! मुझमें भी मुखड़ा देख । तुझमें शक्ति नहीं है और न तू मेरी शक्ति का अनुमान कर सकता है । पर प्रेम मैंने तुझको दिया है कि तू मुझसे प्रेम कर जो तेरे लिये मर चुका है' । ]

तत्त्व-ज्ञान-संपन्न प्राचीन यूनानी ( यवन ) जाति के बीच जब 'पाल' नामक यहूदी स्थूल सीधे-सादे प्रेममय ईसाई मत का प्रचार करने गया तब किस प्रकार ज्ञान-गर्व से भरे यूनानियों ने उस 'असभ्य यहूदी' की बातों की पहले उपेक्षा की, पर पीछे उसके शांति-प्रदायक संदेश पर मुग्ध हुए, यह बात वर्णन करने के लिये ब्राउनिंग ने इसी प्रकार के एक और पत्र की रचना की है ।

ब्राउनिंग के समान ही और यूरोपियनों की भी यही धारणा थी कि प्रेम-तत्त्व या भक्ति-मार्ग का आविर्भाव पहले-पहल ईसाई मत में हुआ और ईसाई उपदेशकों द्वारा भिन्न-भिन्न देशों में फैला । भारतवर्ष के 'भागवत संप्रदाय' की प्राचीनता पूर्णतया सिद्ध हो जाने पर भी बहुतेरे अब तक उस प्रिय धारणा को छोड़ना नहीं चाहते । सच पूछिए तो 'भगवान् के हृदय' की पूर्ण भावना भारतीय भक्ति-मार्ग में ही हुई । ईसाई मत को पीछे से भगवान् के हृदय का वहाँ तक आभास मिला जहाँ तक उपास्य-उपासक का संबंध है । व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र के बाहर उस हृदय की खोज नहीं की गई । केवल इतने ही से संतोष किया गया कि ईश्वर शरणागत भक्तों के पापों को क्षमा करता है और सब प्राणियों से प्रेम रखता है । इतने से ईश्वर और मनुष्य के बीच के व्यवहार में तो वह हृदय दिखाई पड़ा, पर मनुष्य मनुष्य के बीच के व्यवहार में अभिव्यक्त होने वाले तथा लोक-रक्षा और लोकरंजन करने वाले हृदय की ओर ध्यान न गया । लोक में जिस हृदय से दीन-दुखियों की रक्षा की जाती है, गुरुजनों का आदर-सम्मान किया जाता है, भारी भारी अपराध क्षमा किए जाते हैं, अत्यंत प्रबल और असाध्य अत्याचारियों का ध्वंस करने में अद्भुत पराक्रम दिखाया जाता है, नाना कर्त्तव्यों और स्नेह-संबंधों का अत्यंत भव्य निर्वाह किया जाता है, सारांश यह कि जिससे लोक का सुखद परिचालन होता है, वह

भी उसी एक 'परम हृदय' की अभिव्यक्ति है इसकी भावना भारतीय भक्ति-पद्धति में ही हुई।

जिस समय 'निर्गुनिए' भक्तों की लोक-धर्म से उदासीन या विमुख करनेवाली वाणी सर्व-साधारण के कानों में गूँज रही थी उस समय गोस्वामी तुलसीदासजी ने किस प्रकार भक्ति के उपर्युक्त प्राचीन व्यापक स्वरूप की जन-साधारण के बीच प्रतिष्ठा की, यह गोस्वामीजी की आलोचना में हम दिखा चुके हैं।

सूफ़ी लोग साधक की क्रमशः चार अवस्थाएँ कहते हैं—(१) 'शरीअत'—अर्थात् धर्म-ग्रंथों के विधि-निषेध का सम्यक पालन। यह है हमारे यहाँ का कर्मकांड। (२) 'तरीकत'—अर्थात् बाहरी क्रिया-कलाप से परे होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान् का ध्यान। इसे उपासना-कांड कह सकते हैं। (३) 'हकीकत'—भक्ति और उपासना के प्रभाव से सत्य का सम्यक बोध जिससे साधक तत्त्व-दृष्टि संपन्न और त्रिकालज्ञ हो जाता है। इसे ज्ञानकांड समझिए। (४) 'मारफत'—अर्थात् सिद्धावस्था जिसमें कठिन उपवास और मौन आदि की साधना द्वारा अंत में साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है और वह भगवान की सुंदर प्रेममयी प्रकृति (जमाल) का अनुसरण करता हुआ प्रेममय हो जाता है।

जायसी ने इन अवस्थाओं का उल्लेख 'अखरावट' में इस प्रकार किया है—

कही 'सरीअत' चिस्ती पीरू। उघरित असरफ औ जहँगीरू॥
राह 'हकीकत' परै न चूकी। पैठि 'मारफत' मार बुडूकी॥

यह कह आए हैं कि जायसी को विधि पर पूरी आस्था थी। वे उसको साधना की पहली सीढ़ी कहते हैं जिस पर पैर रखे बिना कोई आगे बढ़ नहीं सकता—

साँची राह 'सरीअत' जेहि बिसवास न होइ।
पाँव रखै तेहि सीढ़ी, निभरम पहुँचै सोइ॥

साधक के लिये कहा गया है कि वह प्रकट में तो सब लोक-व्यवहार करता रहे, सैकड़ों लोगों के बीच अपना काम करता रहे, पर भीतर हृदय में भगवान् की भावना करता रहे, जैसा कि जायसी ने कहा है—

परगट लोक-चार कहु, बाता। गुपुत भाउ मन जासौं राता॥

इसे "खिलवत दर-अंजुमन" कहते हैं।

नफ्स के साथ जिहाद करते हुए—इंद्रिय-दमन करते हुए—उस परमात्मा तक पहुँचने का जो मार्ग बताया गया है वह 'तरीका' कहलाता है। इस मार्ग का अनुसरण करनेवाले को क्षुत्पिपासासहन, एकांतवास और मौन का आश्रय लेना चाहिए। इस मार्ग में कई पड़ाव हैं जो 'मुकामात' कहलाते हैं। इनमें से पहला 'मुकाम' है 'तौबा'। जायसी ने जो चार टिकान या वसेरे कहे हैं (चारि वसेरे सौं चढ़ै, सत सौं उतरै पार) वे या तो ऊपर कही हुई चार अवस्थाएँ हैं अथवा ये ही मुकामात हैं। ये 'मुकामात' या अवस्थाएँ उन आभ्यंतर अवस्थाओं के अधीन हैं जो परमात्मा के अनुग्रह से कल्व या हृदय के बीच उपस्थित होती हैं और 'अहवाल' कहलाती हैं।* इसी 'अहवाल' की अवस्था का प्राप्त होना 'हाल आना' कहलाता है जिसमें भक्त अपने को बिल्कुल भूल जाता है और ब्रह्मानंद में झूलने लगता है। जायसी ने इन पद्यों में इसी अवस्था की ओर संकेत किया है—

कया जो परम तत मन लावा। घूम माति, सुनि और न भावा॥
जस मद पिए घूम कोइ नाद सुने पै घूम।
तेहि ते बरजे नीक है, चढ़े रहसि कै दूम॥

इस 'हाल' या प्रलयावस्था के दो पक्ष हैं—त्यागपक्ष और प्राप्तिपक्ष। त्यागपक्ष के अंतर्गत हैं—(१) फना (अपनी अलग सत्ता की प्रतीति के परे हो जाना), (२) फकद (अहंभाव का नाश) और सुक्र (प्रेममद)। प्राप्ति-पक्ष के अंतर्गत है—(१) बका (परमात्मा में स्थिति), (२) वज्द (परमात्मा की प्राप्ति) और (३) शह्व (पूर्ण शांति)।

बसरा और बगदाद बहुत दिनों तक सूफियों के प्रधान स्थान रहे। बसरे में 'राबिया' और बगदाद में 'मंसूर हल्लाज' प्रसिद्ध सूफी हुए हैं। मंसूर हल्लाज की पुस्तक "किताबे तवासीफ" सूफियों का सिद्धांत ग्रंथ माना जाता है। अतः उसके अनुसार ईश्वर और सृष्टि के संबंध में सूफियों का सिद्धांत नीचे दिया जाता है।

परमात्मा की सत्ता का सार है प्रेम। सृष्टि के पूर्व परमात्मा का प्रेम निर्विशेष भाव से अपने ऊपर था इससे वह अपने को—अकेले अपने आपको ही—व्यक्त करता रहा। फिर अपने उस एकांत अद्वैत प्रेम को, उस अपरत्वरहित प्रेम को, बाह्य विषय के रूप में देखने की इच्छा से

* यह 'हाल' समाधि की अवस्था है जिसकी प्राप्ति सूफी एक मात्र 'ईश्वर-प्रणिधान" द्वारा ही मानते हैं।

उसने शून्य से अपना एक प्रतिरूप या प्रतिविंब उत्पन्न किया जिसमें उसी के से गुण और नाम-रूप थे । यही प्रतिरूप 'आदम' कहलाया जिसमे और जिसके द्वारा परमात्मा ने अपने को व्यक्त किया—

आपुहि आपुहि चाह देखाग । आदम रूप भेस धरि आवा ॥

हल्लाज ने ईश्वरत्व और मनुष्यत्व में कुछ भेद रखा है । वह 'ब्रह्मैव भवति' तक नहीं पहुँचता है । साधना द्वारा ईश्वर की प्राप्ति हो जाने पर भी, ईश्वर की सत्ता में लीन हो जाने पर भी, कुछ विशिष्टता बनी रहती है । ईश्वरत्व ( लाहूत ) मनुष्यत्व ( नासूत ) में वैसे ही ओतप्रोत हो जाता है—बिल्कुल एक नहीं हो जाता—जैसे शराब में पानी । इसी से ईश्वरदशा-प्राप्त मनुष्य कहने लगता है "अनलहक"—मैं ही ईश्वर हूँ । ईश्वरत्व का इस प्रकार मनुष्यत्व में ओतप्रोत हो जाना—हल हो जाना—"हुलूल" कहलाता है । इस हुलूल में अवतारवाद की झलक है, इससे मुल्लाओ ने इसका घोर विरोध किया । जो कुछ हो, हल्लाज ने यह प्रतिपादित किया कि अद्वैत परम सत्ता में भी भेद-विधान है, उसमें भी विशिष्टता है, जैसे कि रामानुजाचार्य्यजी ने किया था ।

इब्न अरबी ने 'लाहूत' और 'नासूत' की यह व्याख्या की है कि दोनों एक ही परम सत्ता के दो पक्ष है । लाहूत नासूत हो सकता है और नासूत लाहूत । इस प्रकार उसने ईश्वर और जीव दोनों के परे ब्रह्म को रखा और वेदांतियों के उस भेद पर आ पहुँचा जो वे ब्रह्म और ईश्वर अर्थात् निर्गुण ब्रह्म और सगुण ब्रह्म में करते है । वेदांत में भी एक ही ब्रह्म शुद्ध सत्त्व में प्रतिबिंबित होने पर ईश्वर और अशुद्ध सत्त्व में प्रतिविंवित होने पर जीव कहलाता है । परब्रह्म के नीचे एक और ज्योतिःस्वरूप की भावना पश्चिम की पुरानी जातियो में भी थी—जैसे, प्राचीन मिस्रियो में 'लोगस' ( Logos )की, यहूदियो मे 'कबाला' की और पारसियों में 'वहमन' की । ईसाइयों में भी "पवित्रात्मा" के रूप मे वह बना हुआ है ।

सूफियों के एक प्रधान वर्ग का मत है कि नित्य पारमार्थिक सत्ता एक ही है । यह अनेकत्व जो दिखाई पड़ता है वह उसी एक का ही भिन्न भिन्न रूपो में आभास है । यह नामरूपात्मक दृश्य जगत् उसी एक सत् की बाह्य अभिव्यक्ति है । परमात्मा का बोध इन्हीं नामों और गुणों के द्वारा हो सकता है । इसी बात को ध्यान में रखकर जायसी ने कहा है—

दीन्ह रतन विधि चारि, नैन, बैन, सरवन, मुख।
पुनि जब मेटिहि मारि, मुहमद तब पछिताब मैं॥

(अखरावट)

इस परम सत्ता के दो स्वरूप है—नित्यत्व और अनंतत्व; दो गुण हैं—जनकत्व और जन्यत्व। शुद्ध सत्ता में तो न नाम है, न गुण। जब वह निर्विशेषत्व या निर्गुणत्व से क्रमशः अभिव्यक्ति के क्षेत्र में आती है तब उस पर नाम और गुण लगे प्रतीत होते हैं। इन्हीं नामरूपों और गुणों की समष्टि का नाम जगत् है। सत्ता और गुण दोनों मूल में जाकर एक ही है। दृश्य जगत् भ्रम नहीं है, उस परम सत्ता की आत्माभिव्यक्ति या अपर रूप में उसका अस्तित्व है। वेदांत की भाषा में वह ब्रह्म का ही 'कनिष्ठ स्वरूप' है। हल्लाज के मत की अपेक्षा यह मत वेदांत के अद्वैतवाद के अधिक निकट है।

सूफियों के मत का जो थोड़ा सा दिग्दर्शन ऊपर कराया गया उससे इस बात पर ध्यान गया होगा कि उनके अद्वैतवाद में दो बातें स्फुट नहीं है—(१) परम सत्ता चित्स्वरूप ही है, (२) जगत् अध्यास मात्र है। पर जैसा कि पाठकों को पढ़ने से ज्ञात होगा, जायसी सूफियो के अद्वैतवाद तक ही नहीं रहे है, वेदांत के अद्वैतवाद तक भी पहुँचे है। भारतीय मत-मतांतरों की उनमें अधिक झलक है।

ज्ञानकांड के निर्गुण ब्रह्म को यदि उपासना-क्षेत्र मे ले जायँगे तो उसे सगुण करना ही पड़ेगा। जिन्होने मूर्ति के निषेध को ठीक खुदा के पास तक पहुँचा देनेवाला रास्ता समझा था, वे भी उसकी देश-काल-संबंध-शून्य भावना नहीं कर सके थे। खुदा का कयामत के दिन एक जगह बैठना, चारों ओर सब जीवो का इकट्ठा होना, बगल मे हजरत मुहम्मद या ईसा का होना, जड़ द्रव्य लेकर अपनी ही सूरत शकल का पुतला बनाना और उसमे रूह फूँकना, छः दिन काम करके सातवे दिन आराम करना, ये सब बाते अव्यक्त और निर्गुण की नहीं हैं। ज्ञानेंद्रिय-गोचर आकार के बिना चाहे किसी प्रकार काम चल भी जाय पर मन को गोचर गुणों के बिना तो किसी दशा में काम नहीं चल सकता। अतः मूर्त्तामूर्त्त सबको उस ब्रह्म का व्यक्ताव्यक्त रूप माननेवाले सूफी यदि उस ब्रह्म की भावना अनंत सौदर्य्य और अनंत गुणो से संपन्न प्रियतम के रूप में करें तो उनके सिद्धांत में कोई विरोध नहीं आ सकता। उपनिषदों में भी उपासना के लिये ब्रह्म की सगुण भावना की

गई है। सूफी लोग ब्रह्मानंद का वर्णन लौकिक प्रेमानंद के रूपमें करते हैं और इस प्रसंग में शराब, मद आदि को भी लाते हैं।

प्रतीकोपासना ( अग्नि, जल, वायु आदि के रूप में ) और प्रतिमा-पूजन के प्रति जो घोर द्वेषभाव पैगंबरी मतों में फैला हुआ था वह सूफियों की उदार और व्यापक दृष्टि में अत्यंत अनुचित और घोर अज्ञानमूलक दिखाई पड़ा। उस कट्टरपन का शांत विरोध प्रकट करने के लिये वे कभी कभी अपने उपास्य प्रियतम की भावना 'बुत' ( प्रतिमा ) के रूप में करते थे। जितना ही इस 'बुत' का विरोध किया गया उतना ही वह फारसी की शायरी में दखल जमाता गया। सूफी बराबर "खुदा के नूर को हुस्ने-बुताँ के परदे में" देखते रहे। सूफियो के प्राधान्य के कारण धीरे धीरे 'बुत' और 'मै' ( शराब ) दोनो शायरी के अंग हो गये। शायर लोग "खुदा खुदा करना" और "बुतों के आगे सिजदः करना" दोनों बराबर ही समझने लगे *।

पद्मावत में अद्वैतवाद की झलक स्थान स्थान पर दिखाई पड़ती है। अद्वैतवाद के अंतर्गत दो प्रकार के द्वैत का त्याग लिया जाता है—आत्मा और परमात्मा के द्वैत का तथा ब्रह्म और जड़ जगत् के द्वैत का। इनमें से सूफियो का जोर पहली बात पर ही समझना चाहिए। यजुर्वेद के बृहदारण्यक उपनिषद् का "अहं ब्रह्मास्मि" वाक्य जिस प्रकार ब्रह्म की एकता और अपरिच्छिन्नता का प्रतिपादन करता है उसी प्रकार सूफियों का "अनलहक" वाक्य भी। इस अद्वैतवाद के मार्ग में बाधक होता है अहंकार। यह अहंकार यदि छूट जाय तो इस ज्ञान का उदय हो जाय कि 'सब मैं ही हूँ', मुझसे अलग कुछ नहीं है—

'हौं हौं' कहत सबै मति खोई। जौ तू नाहिं आहि सब कोई॥
आपुहि गुरु सो आपुहि चेला। आपुहि सब औ आपु अकेला॥

'अखरावट' मे जायसी ने 'सोऽहं' इस तत्त्व की अनुभूति से ही पूर्ण शांति की प्राप्ति बताई है—

'सोऽह सोऽह' बसि जो करई। सो बूझै, सो धीरज धरई॥

वेदांत का अनुसरण करते हुए जायसी ब्रह्म और जगत् की समस्या पर भी जाते है और जगत् को ब्रह्म से अलग नहीं करते। जगत् की जो

---

* करूँ मै सिजदः बुतो के आगे, तू ऐ बरहमन ! 'खुदा, खुदा' कर।

अलग सत्ता प्रतीत होती है, वह पारमार्थिक नहीं है, अवभास या छाया मात्र है—

जब चीन्हा तब और न कोई। तन मन, जिउ, जीवन सब सोई॥
'हौं हौं' कहत धोख इतराहीं। जब भा सिद्ध कहाँ परछाहीं?॥

चित् अचित् की इस अनन्यता के प्रतिपादन के लिये वेदांत 'विवर्त्तवाद' का आश्रय लेता है जिसके अनुसार यह जगत् ब्रह्म का विवर्त्त (कल्पित कार्य्य) है। मूल सत्य द्रव्य ब्रह्म ही है जिस पर अनेक असत्य अर्थात् सदा बदलते रहनेवाले दृश्यों का अध्यारोप होता है। जो नामरूपात्मक दृश्य हम देखते हैं वह न तो ब्रह्म का वास्तव स्वरूप ही है, न ब्रह्म का कार्य्य या परिणाम ही है। वह है केवल अध्यास या भ्रांति-ज्ञान। उसकी कोई अलग सत्ता नहीं है। नित्य तत्त्व एक ब्रह्म ही है। इस सामान्य सिद्धांत के स्पष्टीकरण के लिये वेदांत मे प्रतिबिंबवाद दृष्टि-सृष्टिवाद, अवच्छेदवाद, अजातवाद (प्रौढ़िवाद) आदि कई वाद चलते हैं।

'प्रतिबिंबवाद' का तात्पर्य्य यह है कि नामरूपात्मक दृश्य (जगत्) ब्रह्म के प्रतिबिंब है। बिंब ब्रह्म है; यह जगत् उसका प्रतिबिंब है। इस प्रतिबिंबवाद की ओर जायसी ने 'पद्मावत' में बड़े ही अनूठे ढंग से संकेत किया है। दर्पण में पद्मिनी के रूप की झलक देख अलाउद्दीन कहता है—

देखि एक कौतुक हौं रहा। रहा अँतरपट पै नहिं अहा॥
सरवर देख एक मैं सोई। रहा पानि औ पान न होई॥
सरग आइ धरती महँ छावा। रहा धरति, पै धरत न आवा॥

परदा था भी और नहीं भी था—अर्थात् इस विचार से तो व्यवधान था कि उस स्वरूप का हम स्पर्श नहीं कर सकते थे और इस विचार से नहीं भी था कि उस व्यवधान मे उस स्वरूप की छाया दिखाई पड़ती थी। प्रकृति की दो शक्तियाँ मानी जाती हैं—आवरण और विक्षेप। आवरण द्वारा वह मूल निर्गुण सत्ता के वास्तव स्वरूप को ढाँकती है और विक्षेप द्वारा उसके स्थान पर बदलनेवाले नाना रूपों को निकालती है। जब कि ये नाना रूप ब्रह्म ही के प्रतिबिंब है तब हम यह नहीं कह सकते कि वह आवरण या परदा ऐसा है जिसमे ब्रह्म का आभास बिल्कुल नहीं मिल सकता। सरोवर मे पानी था, पर उस पानी तक पहुँच नहीं होती थी—उस शीतल करनेवाले तत्त्व की झलक मिलती है, पर उसकी प्राप्ति

यों नहीं हो सकती। पूर्ण साधना द्वारा यदि उसकी प्राप्ति हो जाय तो भवताप से चिर-निवृत्ति हो जाय और आत्मा की प्यास सब दिन के लिये बुझ जाय। "सरग आइ धरती महँ छावा"—स्वर्गीय अमृत तत्त्व इसी पृथ्वी में व्याप्त है पर पकड़ में नही आता है। इसी भाव को जायसी ने 'अखरावट' में अधिक स्पष्ट रूप में प्रकट किया है—

आपुहि आपु जौ देखै चहा। आपनि प्रभुत आपु से कहा॥
सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन, आपुहि देखा॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू। आपुहि सौजा, आपु अहेरू॥
आपुहि पुहुप फूलि बन फूलै। आपुहि भँवर बास-रस भूलै॥
आपुहि घट घट महँ मुख चाहै। आपुहि आपन रूप सराहै॥
दरपन बालक हाथ, मुख देखै, दूसर गनै।
तस भा दुइ एक साथ, मुहमद एकै जानिए॥

"आपुहि दरपन, आपुहि देखा" इस वाक्य से दृश्य और द्रष्टा, ज्ञेय और ज्ञाता का एक दूसरे से अलग न होना सूचित होता है। इसी अर्थ को लेकर वेदांत में यह कहा जाता है कि ब्रह्म जगत् का केवल निमित्त कारण ही नहीं, उपादान कारण भी है। "आपुहि आपु जो देखै चहा" का मतलब यह है कि अपनी ही शक्ति की लीला का विस्तार जब देखना चाहा। शक्ति या माया ब्रह्म ही की है, ब्रह्म से पृथक् उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं। "आपुहि घट घट महँ मुख चाहै"—प्रत्येक शरीर में जो कुछ सौदर्य्य दिखाई पड़ता है वह उसी का है। किस प्रकार एक ही अखंड सत्ता के अलग अलग बहुत से प्रतिबिंब दिखाई पड़ते हैं यह बताने के लिये जायसी यह पुराना उदाहरण देते हैं—

गगरी सहस पचास, जो कोउ पानी भरि धरै।
सूरुज दिपै अकास, मुहमद सब महँ देखिए॥

जिस ज्योति से मनुष्य उस परमहंस ब्रह्म की छाया देखता है वह स्थिर है क्योंकि वह ब्रह्म ही है। वह ब्रह्म-ज्योति अपनी माया से आच्छादित होने पर भी न उससे मिली हुई कही जा सकती है, न अलग—मिली हुई इसलिये नहीं कि नामरूपात्मक दृश्यों का उसके स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता; अलग इसलिये नहीं कि उसके साथ ही उसकी अभिव्यक्ति छायारूप में रहती है—

देखेउँ परमहस परछाहीं। नयन-ज्योति सौं बिछुरति नाहीं॥
जगमग जल महँ दीसै जैसे। नाहिं मिला नहिं बेहरा तैसे॥

नाम रूप असत्य हैं अर्थात् बदलते रहते हैं पर उनकी तह में जो आत्मसत्ता है वह नित्य और अपरिणामी है, इसका स्पष्ट शब्दों में उल्लेख इस सोरठे में है—

बिगरि गए सब नाँव, हाथ, पाँव, मुँह, सीस धर।
तोर नाँव केहि ठाँव, मुहमद सोइ बिचारिए॥ (अखरावट)

नित्य तत्त्व और नामरूप का भेद समझाने के लिये वेदांती समुद्र और तरंग का या सुवर्ण और अलंकार का दृष्टांत लाया करते हैं। अखरावट में वह भी मौजूद है—

सुन्न-समुद चख माहिं जल जैसी लहरैं उठहिं।
उठि उठि मिटि मिटि जाहिं, मुहमद खोज न पाइए॥

वह अव्यक्त तत्त्व यद्यपि घट घट में व्याप्त है, नामरूपात्मक जगत् की तह में है, पर नामरूपों का उस पर कोई प्रभाव नहीं, वह निर्लिप्त और अविकारी है—न चैनं क्लेदयन्त्यापो, न शोषयति मारुतः—

चख महँ नियर, निहारत दूरी। सब घट माहँ रहा भरि पूरी।
पवन न उड़ै, न भीजै पानी। अगिनि जरै जस निरमल बानी॥

ब्रह्म अपनी माया का विस्तार करके उसमे अपना प्रतिबिंब देखता है। इस बात को समझाने के लिये जायसी आँख की पुतली के बिंदु की ओर संकेत करते हैं। वह बिंदु जब अपनी शक्ति का प्रसार करता है तभी जगत् को देखता है। इस बात की ओर पूर्ण ध्यान देकर विचार करने से मनुष्य को दृग्दृश्य-विवेक प्राप्त हो सकता है और वह यह समझ सकता है कि दृश्य की प्रतीति होना अव्यक्त में अव्यक्त का समाना ही है। नित्य अव्यक्त तत्त्व ब्रह्म माया-पट का विस्तार करके—अर्थात् दिक्काल आदि का आरोप करके—अपना प्रतिबिंब डालता है। अव्यक्तमूल प्रतिबिंब प्रतीति के रूप मे फिर उसी अव्यक्त नित्य चित्तत्त्व मे पलटकर समाता है—

पुतरी महँ जो बिंदि एक कारी। देखै जगत सो पट बिस्तारी॥
हेरत दिस्टि उघरि तस आई। निरखि सुन्नमहँ सुन्न समाई॥

प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक फिक्ट (Fichte) ने भी जगत् की प्रतीति की प्रायः यही पद्धति बताई है।

ब्रह्म को 'ईश्वर' संज्ञा किस प्रकार प्राप्त होती है इसका विवरण वेदांत के ग्रंथों में मिलता है। पहले प्रकृति रजोगुण की प्रवृत्ति से दो रूपों में विभक्त होती है—सत्त्वप्रधान और तमःप्रधान। सत्त्वप्रधान के

भी दो रूप हो जाते हैं—शुद्ध सत्त्व ( जिसमें सत्त्व गुण पूर्ण हो ) और अशुद्ध-सत्त्व ( जिसमें सत्त्व अंशतः हो ) । प्रकृति के इन्हीं भेदों में प्रतिविंवित होने के अनुसार ब्रह्म कभी 'ईश्वर', कभी 'हिरण्यगर्भ' और कभी 'जीव' कहलाता है। जब माया या शक्ति के तीन गुणों में से शुद्ध सत्त्व का उत्कर्ष होता है तब उसे 'माया' कहते है और इस माया में प्रतिविंवित होनेवाले ब्रह्म को सगुण यानी व्यक्त ईश्वर कहते हैं। अशुद्ध सत्त्व की प्रधानता को 'अविद्या' और उसमे प्रतिविंवित होनेवाले चित् या ब्रह्म को प्राज्ञ या जीव कहते हैं। इस सिद्धांत का भी आभास जायसी ने इस प्रकार दिया है—

भए आपु औ कहा गोसाईं। सिर नावहु सगरिउ दुनियाईं॥

आपही तो सब कुछ हुआ, पर माया के भेद के अनुसार एक ओर तो ईश्वर ( सर्वशक्तिमान् विधायक और शासक ) रूप में व्यक्त हुआ और दूसरी ओर जीव रूप मे, जो उस ईश्वर को सिर नवाता है।

ब्रह्म और जीव, आत्मा और परमात्मा की एकता इस प्रकार भी समझाई जाती है कि 'जो पिंड में है वही ब्रह्मांड में है' । इस तथ्य को लेकर साधना के क्षेत्र में एक विलक्षण रहस्यवाद की उत्पत्ति हुई जिसकी प्रेरणा से योग में पिंड या घट के भीतर ही ब्रह्म का एक विशेष स्थान निर्दिष्ट हुआ और उसके पास तक पहुँचनेवाले विकट मार्ग ( नाभि से चलकर ) की कल्पना की गई। जायसी ने इस रहस्यमयी भावना को स्वीकार किया है—

सातौ दीप नवौ खंड आठौ दिसा जो आहिं।
जो बरम्हंड सो पिंड है हेरत अंत न जाहिं॥

और एक पूरा रूपक बाँधकर पिंड को ही ब्रह्मांड बनाया है—

टा टुक झाँकहु सातौ खंडा। खडै खंड लखहु बरम्हंडा॥
पहिल खड जो सनीचर नाऊँ। लखि न अँटकु पौरी महँ ठाऊँ॥
दसर खड बृहस्पति तहँवाँ। काम-दुवार भोग-घर जहँवाँ॥
तीसर खंड जो मंगल मानहु। नाभिकँवल महँ ओहि अस्थानहु॥
चौथ खड जो आदित अहई। बाईं दिसि अस्तन महँ रहई॥
पाँचवँ खंड सुक्र उपगहीं। कठ माहँ औ जीभ तराहीं॥
छठएँ खड बुद्धि कर बासा। दुइ भौहन्ह के बीच निवासा॥
सातवँ सोम कपार महँ कहा जो दसवँ दुवार।
जो वह पवँरि उघारै सो बड़ सिद्ध अपार॥

इसमें जायसी ने मनुष्य-शरीर के पैर, गुह्येंद्रिय, नाभि, स्तन, कंठ, दोनों भौंवों के बीच के स्थान और कपाल को क्रमशः शनि, बृहस्पति, मंगल, आदित्य, शुक्र, बुध और सोम-स्वरूप कहा है। एक और ध्यान देने की बात यह है कि कवि ने जिस क्रम से एक दूसरे के ऊपर ग्रहों की स्थिति लिखी है वह सूर्य्यसिद्धांत आदि ज्योतिष के ग्रंथों के अनुकूल है।

तत्त्व दृष्टि से 'पिंड और ब्रह्मांड की एकता' के निश्चय पर पहुँच जाने पर फिर उसी के अनुकूल साधना का मार्ग सामने आता है जो योग-शास्त्र का विषय है। पतंजलि ने विभूतिपाद में नाभि-चक्र, कंठकूप, कूर्मनाड़ी और मूर्द्धज्योति का ही उल्लेख किया है, पर हठयोग में कायव्यूह का विशेष विस्तार से वर्णन है जिसकी चर्चा पहले कर आए हैं। मूर्द्धज्योति या ब्रह्मरंध्र को ही जायसी ने "दसवाँ द्वार" कहा है जहाँ वृत्ति को ले जाकर लीन करने से ब्रह्म के स्वरूप का साक्षात्कार हो सकता है। जायसी ने वेदांत के सिद्धांतों के साथ हठयोग की बातों का भी समावेश क्यों किया इसका कारण उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा। तत्त्वज्ञान के पश्चात् उसके अनुकूल साधना होनी चाहिए। जब कि यह सिद्ध हो गया कि जो ब्रह्म विश्व की आत्मा के रूप में ब्रह्मांड में व्याप रहा है वही मनुष्य के पिंड या शरीर में भी है तब शरीर के भीतर ही उसके साक्षात्कार की साधना का निरूपण होना ही चाहिए।

अब यह देखिए कि तत्त्व-दृष्टि से जायसी सृष्टि-विकास का किस रूप में वर्णन करते हैं। वे कहते हैं कि सृष्टि के पहले ब्रह्म अपने को अपने में समेटे हुए था—"रहा आपु महँ आपु समाना" ( अखरावट )। सर्गोन्मुख होने के पहले वह "वज्रबीज" अव्यक्त था—

वजर-बीज बीरौ अस, ओहि न रंग न भेस।

अंकुरित होने पर उसमें से दो पत्ते निकले—एक चित्तत्त्व, दूसरा पार्थिव तत्त्व—

होतै बिरवा भए दुइ पाता। पिता अगग औ धरती माता॥

इन्हीं दो से फिर अनेक प्रकार की चराचर सृष्टि हुई—

बिरिछ एक लागी दुइ डारा। एकहिं ते नाना परकारा॥
मातु के रकत पिता के बिंदू। उपने दुवौ तुरुक औ हिंदू॥

रकत हुते तन भए चौरंगा। बिंदु हुतें जिउ पाँचौ संगा॥
जस ए चारिउ धरति बिलाहीं। तस वै पाँचहुँ सरगहिं जाहीं॥

एक ही वृक्ष की दो डालियाँ हुईं—एक चेतन तत्त्व अर्थात् जीवात्मा और दूसरा अचेतन अर्थात् जड़ द्रव्य। चित् पुरुष-पक्ष या पितृ-पक्ष है और अचित् प्रकृति-पक्ष या मातृ-पक्ष है। चित् को आकाश-रूप (चिदाकाश) सूक्ष्म समझना चाहिए और अचित् को पृथ्वी-स्वरूप स्थूल।

जब कि व्यक्त चित् (जीव) और व्यक्त अचित् (विकृति) दोनो एक ब्रह्म से उत्पन्न हैं तब ब्रह्म में भी ये दोनो पक्ष अव्यक्त या सूक्ष्म रूप में होंगे। इस प्रकार जायसी के उक्त कथन में रामानुज के विशिष्टाद्वैत की झलक साफ है जिसके अनुसार ब्रह्म चिदचिद्विशिष्ट है अर्थात् चित् और अचित् दोनों उसके अंग है। जायसी ने आगे चलकर तो ब्रह्म को द्विकलात्मक साफ कहा है—

खा-खेलार जस है दुइ करा। उहै रूप आदम अवतरा॥

ब्रह्म के सूक्ष्म चित् से जीवात्माओं की उत्पत्ति और सूक्ष्म अचित् से उनके शरीर और जड़ जगत् की उत्पत्ति हुई। विशिष्टाद्वैत के अनुसार ब्रह्म केवल निमित्त कारण है; उपादान है जड़ (स्थूल अचित्) और जीव (स्थूल चित्)। पर दूरारूढ़ वेदांत के अद्वैतवाद मे ब्रह्म सब भेदो (स्वगत, सजातीय और विजातीय) से रहित तथा जगत् का निमित्त और उपादान दोनों माना जाता है। सूफियो को भी आत्मा और परमात्मा में किसी प्रकार का पारमार्थिक भेद (जन्य-जनक का भी) मान्य नहीं है। अतः अद्वैतियो के अनुकूल यदि हम "बिरिछ एक लागी दुई डारा" का अर्थ करना चाहें तो जीव और जड़ को क्रमशः ब्रह्म के श्रेष्ठ और कनिष्ठ स्वरूप (जिन्हें गीता मे परा और अपरा प्रकृति कहा है) मानकर कर सकते हैं*। श्रेष्ठ स्वरूप निर्विकार रहता है और कनिष्ठ स्वरूप (माया) में अनेक प्रकार के भेद और विकार दिखाई पड़ते है। पर अद्वतवाद के अनुकूल सृष्टि के वर्णन मे अधिक जटिलता है और शब्दों के प्रयोग मे सावधानी की भी बहुत आवश्यकता है। इसका निर्वाह जायसी के लिये

---

* द्वेवावब्रह्मणो रूपे, मूर्त्तञ्चैवामूर्त्तञ्च, मर्त्यंचामृतं च।

—बृहदारण्यक (मूर्त्तामूर्त्त प्रकरण)

कठिन था। इसी से आगे चलकर इन्होंने चित्तत्त्व के समुद्र से जो असंख्य प्रकार के शरीरों के भीतर जीव-विंदुओं की वर्षा कराई है वह शुद्ध वेदांत के अपरिच्छिन्न चित् के अनुकूल नहीं है, विशिष्टाद्वैत भावना से ही मेल खाती है—

रहा जो एक जल गुपुत समुंदा। बरसा सहस अठारह बुंदा॥
सोई अंस घटहि घट मेला। औ सोइ बरन बरन होइ खेला॥

इस चौपाई मे "गुपुत समुंदा" सूक्ष्म चित् है जिससे अनेक प्रकार के जीवात्माओं की उत्पत्ति हुई।

यही तक नही, उत्पत्ति का और आगे चलकर जो वर्गीकरण किया गया है वह भी विचारणीय है; जैसे—

रकत हुते तन भए चौरंगा। बिंदु हुते जिउ पाँचौ संगा॥
जस ए चारिउ धरति बिलाही। तस वै पाँचो सरगहि जाहीं॥

'रक्त' से अभिप्राय यहाँ माता के रज अर्थात् प्रकृति के उपादान से है। प्रकृति के क्रमागत विकार से नाना प्रकार के शरीर संघटित हुए, यहाँ तक तो ठीक ही ठीक है। पर चित्तत्त्व के अंतर्गत जीवात्मा के अतिरिक्त पाँचों ज्ञानेंद्रियाँ (या पंचप्राण अर्थ लीजिए) भी हैं यह मत भारतीय दृष्टि से शास्त्र-सम्मत नहीं है। सांख्य और वेदांत दोनों में ज्ञानेंद्रियाँ और अंतःकरण तथा प्राण भी प्रकृति के उत्तरोत्तर विकार माने जाते है। पर अंतःकरण या मन से आत्मा भिन्न है, यह सूक्ष्म भावना पश्चिमी देशों में स्फुट नही थी। पर "तस वै पाँचो सरगहि जाहीं" का भारतीय अध्यात्म की दृष्टि से यह अर्थ ले सकते हैं कि जीवात्मा के साथ 'लिंग शरीर' लगा जाता है।

पद्मावत के आरंभ में सृष्टि का जो वर्णन है वह तो बिलकुल स्थूल तथा नैयायिकों, पौराणिकों तथा जनसाधारण के "आरंभवाद" के अनुसार है। यही तक नहीं उसमें हिंदुओं और मुसलमानों दोनो की भावनाओं का मेल है। उसमें एक ओर तो पुराणों के 'सप्तद्वीप' और 'नवखंड' हैं, दूसरी ओर 'नूर' की उत्पत्ति और 'हिशद हजार आलम'। उक्त वर्णन में एक बात पर और ध्यान जाता है। कवि ने सर्वत्र भूतकालिक रूप 'कीन्हेसि' का प्रयोग किया है जिसमें शामी पैगंबरी मतों (यहूदी, ईसाई और इसलाम) की इस परिमित भावना का आभास मिलता है कि वर्तमान सृष्टि प्रथम और अंतिम है। इन मतों के अनुसार ईश्वर ने न तो इसके पहले सृष्टि की थी और न वह आगे कभी करेगा। इसमें

न तो कल्पांतर की कल्पना है न जीवों के पुनर्जन्म की। कयामत या प्रलय आने तक सब जीवात्मा इकट्ठे होते जायँगे और अंत में सब का फैसला एक साथ हो जायगा। जो पुण्यात्मा होंगे वे अनंत काल तक स्वर्ग भोगने चले जायँगे और जो पापी होंगे वे अनंत काल तक नरक भोगा करेंगे। 'पदमावत' में तो एक ही वार सृष्टि होने का थोड़ा सा आभास मात्र है। पर 'अखरावट' में यह बात कुछ अधिक खोलकर कही गई है—

ऐस जो ठाकुर किय एक दाऊँ। पहिले रचा मुहम्मद नाऊँ॥

हिंदू पौराणिक भावना के अनुसार भी सृष्टि का जहाँ वर्णन होगा वहाँ यही अभिप्राय प्रकट होगा कि ईश्वर 'सृष्टि करता है' अर्थात् बराबर करता रहता है।

आदम की उत्पत्ति का और गेहूँ खाने के अपराध में आदम हौवा के स्वर्ग से निकाले जाने का उल्लेख भी है—

जबहीं किएउ जगत सब साजा। आदि चहेउ आदम उपराजा॥

* * * *

खाएनि गोहूँ कुमति भुलाने। परे आइ जग मँह, पछिताने॥ (अखरावट)

छोह न कीन्ह निछोही ओहू। का हम्ह दोष लाग एक गोहूँ॥ (पदमावत)

'स्तुति-खंड' मे यह इसलामी विश्वास भी मौजूद है कि ईश्वर ने पहले नूर (पैगंबर) या ज्योति उत्पन्न की और मुहम्मद ही की खातिर से स्वर्ग और पृथ्वी की रचना की—

कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू। कीन्हेसि तेहि पिरीति कविलासू॥

'कविलास' शब्द का प्रयोग जायसी ने बराबर स्वर्ग के अर्थ में किया है।

यह तो प्रसिद्ध ही है कि यहूदियों के पुराने पैगंबर मूसा की उस 'सृष्टि-कथा' को ईसाइयों ने भी माना और मुसलमानो ने भी लिया जिसके अनुसार ईश्वर ने छः दिन में आकाश, पृथ्वी, जल तथा वनस्पतियों और जीवों को अलग अलग उत्पन्न किया और अंत में मनुष्य का पुतला बनाकर उसमें अपनी रूह फूँकी। इसलाम में आकर सृष्टि की इस पौराणिक कथा में दो-एक बातों का अंतर पड़ा। मूसा के खुदा को सृष्टि बनाने में छः दिन लगे थे, पर अल्लाह ने सिर्फ 'कुन' कहकर एक क्षण में सारी सृष्टि खड़ी कर दी। ज्योति की प्रथम उत्पत्ति का उल्लेख मूसा के वर्णन मे भी है पर इसलाम मे उस ज्योति का अर्थ 'मुहम्मद का नूर' किया जाता है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि सृष्टि का उक्त पैगंबरी वर्णन किसी तात्त्विक क्रम पर नहीं है। जायसी ने भी आरंभ में ज्योति का नाम लेकर फिर आगे किसी क्रम का अनुसरण नहीं किया है। वे सिर्फ वस्तुएँ गिनाते गए हैं। पर 'पदमावत' में एक स्थान पर भूतों की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार कहा गया है—

पवन होइ भा पानी, पानी होइ भइ आगि।
आगि होइ भइ माटी, गोरखधंधै लागि॥

यह क्रम तैत्तिरीयोपनिषद् में जो क्रम कहा गया है उससे नहीं मिलता। तैत्तिरीयोपनिषद् में यह क्रम है—आत्मा (परमात्मा) से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी। यह क्रम इस आधार पर है कि पहले एक गुण का पदार्थ हुआ, फिर उससे दो गुणवाला और फिर उस दो गुणवाले से तीन गुणवाला, इसी प्रकार बराबर होता गया। पर जायसी का क्रम किस आधार पर है, नहीं कहा जा सकता। हाँ, पाँच भूतों के स्थान पर जायसी ने जो चार ही कहे हैं वह प्राचीन यूनानियो के विचार के अनुसार है जिसका प्रचार अरब आदि देशों में हुआ। प्राचीन पाश्चात्यो की भूत-कल्पना इतनी सूक्ष्म न थी कि वे भूतों के अंतर्गत आकाश को भी लेते। आकाश के संबंध मे अरब और फारस आदि मुसलमानी देशों के जन-साधारण की भावना भी बहुत स्थूल थी। वे उसे नक्षत्रो से जड़ा हुआ एक शामियाना समझते थे, इसी से जायसी ने कहा है—

गगन अंतरिख राखा बाज खंभ बिनु टेक।

'अखरावट' में उपनिषद् की कुछ बातें कहीं कहीं ज्यों की त्यों मिलती है। आत्मा के संबंध मे जायसी कहते हैं—

पवन चाहि मन बहुत उताइल। तेहि ते परम आसु सुठि पाइल॥
मन एक खंड न पहुँचै पावै। आसु भुवन चौदह फिरि आवै॥

* * * * * * *

पवनहि महँ जो आपु समाना। सब भा बरन जो आपु अमाना॥
जैत डोलाए बेना डोलै। पवन सबद होइ किछुइ न बोलै॥

यही बात ईशोपनिषद् मे कही गई है—

अनेजदेक मनसो जवीयो नैनद्देवाऽऽप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥ ४॥

अर्थात्—आत्मा अचल मन से अधिक वेग वाला है, इंद्रियाँ उसको नहीं पा सकतीं। वह मन, इंद्रिय आदि दौड़नेवालों से ठहरा हुआ भी, परे निकल जाता है और उसी की सत्ता से वायु में कर्म्मशक्ति है।

सारांश यह है कि अद्वैतपक्ष मान्य होने पर भी जायसी ने अन्य पक्षों की भावना द्वारा उद्घाटित स्वरूपों का भी पूरे औत्सुक्य के साथ अवलोकन किया है। सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के विचारों का समावेश उनमें है। जगह जगह उन्होंने संसार को असत्य और माया कहा है जिससे मूल पारमार्थिक सत्ता का केवल आत्म-स्वरूप होना ध्वनित होता है। साथ ही, जगत् को दर्पण कहना, नामरूपात्मक दृश्यों को प्रतिबिंब या छाया कहना यह सूचित करता है कि अचित् को ब्रह्म तो नहीं कह सकते, पर है वह उसी रूप की जिस रूप में यह जगत् दिखाई पड़ता है। दूसरी ओर ईश्वर की भावना कर्त्ता या केवल निमित्त कारण के रूप में भी सृष्टि-वर्णन में उन्होंने की है। यहीं तक नहीं, कहीं कहीं उन्होंने हिंदू और मुसलिम भावना का मेल भी एक नए और अनूठे ढंग से किया है।

इस प्रकार के कई परस्पर भिन्न सिद्धांतों की झलक से यह लक्षित होता है कि उन्होंने जो कुछ कहा है वह उनके तर्क या 'ब्रह्म-जिज्ञासा' का फल नहीं है; उनकी सारग्राहिणी और उदार भावुकता का फल है, उनके अनन्य प्रेम का फल है। इसी प्रेमाभिलाष की प्रेरणा से प्रेमी भक्त उस अखंड रूप-ज्योति की किसी न किसी कला के दर्शन के लिये सृष्टि का कोना कोना झाँकता है, प्रत्येक मत और सिद्धांत की ओर आँख उठाता है और सर्वत्र—जिधर देखता है उधर—उसका कुछ न कुछ आभास पाता है। यही उदार प्रवृत्ति सब सच्चे भक्तों की रही है। जायसी की उपासना 'माधुर्य्य-भाव' से, प्रेमी और प्रिय के भाव से, है। उनका प्रियतम संसार के परदे के भीतर छिपा हुआ है। जहाँ जिस रूप में उसका आभास कोई दिखाता है वहाँ उसी रूप में उसे देख वे गद्गद होते हैं। वे उसे पूर्णतया ज्ञेय या प्रमेय नहीं मानते। उन्हें यही दिखाई पड़ता है कि प्रत्येक मत अपनी पहुँच के अनुसार, अपने मार्ग के अनुसार, उसका कुछ अंशतः वर्णन करता है। किसी मत या सिद्धांत-विशेष का यह आग्रह कि ईश्वर ऐसा ही है, भ्रम है। जायसी कहते हैं—

सुनि हस्ती कर नावँ अँधरन्ह टोवा धाइकै।
जेइ टोवा जेहि ठावँ मुहमद सो तैसै कहा॥

"एकांगदस्सिनो" (एकांगदर्शियों) का यह दृष्टांत पहले पहल बुद्ध ने दिया था। इसको जायसी ने बड़ी मार्मिकता से अपनी उदार मनोवृत्ति की व्यंजना के लिये लिया है। इससे यह व्यंजित होता है कि प्रत्येक मत में सत्य का कुछ न कुछ अंश रहता है। इँगलैंड के प्रसिद्ध तत्त्वदर्शी हर्बर्ट स्पेंसर ने भी यही कहा है कि "कोई मत कैसा ही हो उसमें कुछ न कुछ सत्य का अंश रहता है। भूतप्रेतवाद से लेकर बड़े बड़े दार्शनिक वादो तक सबमें एक बात सामान्यतः पाई जाती है कि सब के सब संसार का मूल कोई अज्ञेय और अप्रमेय रहस्य समझते हैं जिसका वर्णन प्रत्येक मत करना चाहता है, पर पूरी तरह कर नहीं सकता।"

यह बात प्रसिद्ध है कि पहुँचे हुए साधक अपने अनुभव को गुप्त रखते है। उसे प्रकट करना वे ठीक नहीं समझते। जायसी भी कहते है—

मति ठाकुर कै सुनि कै, कहै जो हिय मझियार।
बहुरि न मत तासौं करै, ठाकुर दूजी बार॥

इस मौन का रहस्य यही है कि अध्यात्म का विषय स्वसंवेद्य और अनिर्वचनीय है। शब्दों मे उसका ठीक ठीक प्रकाश हो नहीं सकता। शब्दों में प्रकट करने के प्रयत्न से दो बातें होती है—एक तो शब्द भावना को परिमित करके अनुभूति में कुछ बाधक हो जाते है; दूसरे श्रोता के तर्क-वितर्क से भी वृत्ति चंचल हो जाती है। जो अचित्य है वह शब्दों में ठीक ठीक कैसे आ सकता है?

अचिंत्याः खलु ये भावा न तास्तर्केण साधयेत्।

इसी से ब्रह्म के संबंध में तीन बार प्रश्न करने पर एक ऋषि ने तीनों बार मौन ही द्वारा उत्तर दिया था।

यहाँ तक तो तत्त्व-सिद्धांत की बात हुई। सामाजिक विचार जायसी के प्रायः वैसे ही थे जैसे उस समय जन-साधारण के थे। अरब फारस आदि देशों में स्त्रियों का पद बहुत नीचा समझा जाता था। वे विलास की सामग्री मात्र समझी जाती थी। प्राचीन भारत की बात तो नहीं कह सकते, पर इधर बहुत दिनों से इस देश में भी यही भाव चला आ रहा है। बादल युद्ध में जाते समय अपनी स्त्री का हाथ छुड़ाकर उससे कहता है—

तिरिया, भूमि खड्ग कै चेरी। जीत जो खडग होइ तेहि केरी॥

# जायसी का रहस्यवाद

सूफ़ियों के अद्वैतवाद का जो विचार पूर्व प्रकरण में हुआ उससे यह स्पष्ट हो गया कि किस प्रकार आर्य्य जाति ( भारतीय और यूनानी ) के तत्त्व-चिंतकों द्वारा प्रतिपादित इस सिद्धांत को सामी पैगंबरी मतों में रहस्यभावना के भीतर स्थान मिला । उक्त मतों ( यहूदी, ईसाई, इस्लाम ) के बीच तत्त्वचिंतन की पद्धति या ज्ञानकांड का स्थान न होने के कारण—मनुष्य की स्वाभाविक बुद्धि या अक्ल का दखल न होने के कारण—अद्वैतवाद का ग्रहण रहस्यवाद के रूप में ही हो सकता था। इस रूप में पड़कर वह धार्मिक विश्वास में बाधक नहीं समझा गया। भारतवर्ष में तो यह ज्ञानक्षेत्र से निकला और अधिकतर ज्ञानक्षेत्र में ही रहा; पर अरब, फारस आदि में जाकर यह भावक्षेत्र के बीच मनोहर रहस्यभावना के रूप में फैला।

योरप में भी प्राचीन यूनानी दार्शनिकों द्वारा प्रतिष्ठित अद्वैतवाद ईसाई मजहब के भीतर रहस्य-भावना के ही रूप में लिया गया। रहस्योन्मुख सूफियो और पुराने कैथलिक ईसाई भक्तों की साधना समान रूप से माधुर्य्य भाव की ओर प्रवृत्त रही । जिस प्रकार सूफी ईश्वर की भावना प्रियतम के रूप में करते थे उसी प्रकार स्पेन, इटली आदि योरपीय प्रदेशों के भक्त भी। जिस प्रकार सूफी 'हाल' के दशा में उस माशूक से भीतर ही भीतर मिला करते थे उसी प्रकार पुराने ईसाई भक्त-साधक भी दुलहनें बनकर उस दूल्हे से मिलने के लिये अपने अंतर्देश में कई खंडो के रंग-महल तैयार किया करते थे। ईश्वर की पति-रूप में उपासना करनेवाली सैफो, सेंट टेरेसा ( St. Theresa ) आदि कई भक्तिने भी योरप में हुई हैं।

अद्वैतवाद के दो पक्ष हैं—आत्मा और परमात्मा की एकता तथा ब्रह्म और जगत् की एकता । दोनों मिलकर सर्ववाद की प्रतिष्ठा करते हैं—सर्वं खल्विदं ब्रह्म। यद्यपि साधना के क्षेत्र में सूफियों और पुराने ईसाइ भक्तों दोनो की दृष्टि प्रथम पक्ष पर ही दिखाई देती है पर भाव-क्षेत्र में जाकर सूफी प्रकृति की नाना विभूतियों से भी उसकी छवि का अनुभव करते आए हैं।

ईसा की १९वीं शताब्दी में रहस्यात्मक कविता का जो पुनरुत्थान योरप के कई प्रदेशों में हुआ उसमें सर्ववाद ( Pantheism ) का—

ब्रह्म और जगत् की एकता का—भी बहुत कुछ आभास रहा। वहाँ इसकी ओर प्रवृत्ति स्वातंत्र्य और लोक-सत्तात्मक भावों के प्रचार के साथ ही साथ दिखाई पड़ने लगी। स्वातंत्र्य के बड़े भारी उपासक अँगरेज कवि शेली में इस प्रकार के सर्ववाद की झलक पाई जाती है। आयर्लैंड में स्वतंत्रता की भीषण पुकार के बीच ईट्स ( Yeats ) की रहस्य-मयी कवि-वाणी भी सुनाई देती रही है। ठीक समय पर पहुँचकर हमारे यहाँ के कवींद्र रवींद्र भी वहाँ के सुर में सुर मिला आए थे। पश्चिम के समालोचकों की समझ में वहाँ के इस काव्यगत सर्ववाद का संबंध लोक-सत्तात्मक भावों के साथ है। इन भावों के प्रचार के साथ ही स्थूल गोचर पदार्थों के स्थान पर सूक्ष्म अगोचर भावना ( Abstractions ) की प्रवृत्ति हुई और वही काव्य-क्षेत्र में जाकर भड़कीली और अस्फुट भावनाओं तथा चित्रों के विधान के रूप में प्रकट हुई*।

अद्वैतवाद मूल मे एक दार्शनिक सिद्धांत है; कवि-कल्पना या भावना नहीं। वह मनुष्य के बुद्धि-प्रयास या तत्त्व-चिंतन का फल है। वह ज्ञान-क्षेत्र की वस्तु है। जब उसका आधार लेकर कल्पना या भावना उठ खड़ी होती है अर्थात् जब उसका संचार भावक्षेत्र में होता है तब उच्च कोटि के भावात्मक रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। रहस्यवाद दो प्रकार का होता है—भावात्मक और साधनात्मक। हमारे यहाँ का योगमार्ग साधनात्मक रहस्यवाद है। यह अनेक अप्राकृत और जटिल अभ्यासों द्वारा मन को अव्यक्त तथ्यों का साक्षात्कार कराने तथा साधक को अनेक अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त कराने की आशा देता है। तंत्र और रसायन

---

*The passion for intellectual abstractions, when transferred to the literature of imagination, becomes a passion for what is grandiose and vague in sentiment and in imagery.

* * * * The great laureate of European democracy, Victor Hugo, exhibits at once the democratic love of abstract ideas, the democratic delight in what is grandiose ( as well as what is grand ) in sentiment, and the democratic tendency towards a poetical pantheism.

—Dowden's "New Studies in Literature" ( Introduction ).

भी साधनात्मक रहस्यवाद हैं, पर निम्न कोटि के। भावात्मक रहस्यवाद की भी कई श्रेणियाँ है जैसे, भूत-प्रेत की सत्ता मानकर चलनेवाली भावना, परम पिता के रूप में एक ईश्वर की सत्ता मानकर चलनेवाली भावना स्थूल रहस्यवाद के अंतर्गत होगी। अद्वैतवाद या ब्रह्मवाद को लेकर चलनेवाली भावना से सूक्ष्म और उच्चकोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है। तात्पर्य्य यह कि रहस्य-भावना किसी विश्वास के आधार पर चलती है, विश्वास करने के लिये कोई नया तथ्य या सिद्धांत नहीं उपस्थित कर सकती। किसी नवीन ज्ञान का उदय उसके द्वारा नहीं हो सकता। जिस कोटि का ज्ञान या विश्वास होगा उसी कोटि की उससे उद्भूत रहस्य-भावना होगी।

अद्वैतवाद का प्रतिपादन सबसे पहले उपनिषदों में मिलता है। उपनिषद् भारतीय ज्ञान-कांड के मूल हैं। प्राचीन ऋषि तत्त्व-चिंतन द्वारा ही अद्वैतवाद के सिद्धांत पर पहुँचे थे। उनमें इस ज्ञान का उदय बुद्धि की स्वाभाविक क्रिया द्वारा हुआ था; प्रेमोन्माद या बेहोशी की दशा में सहसा एक दिव्य आभास या इलहाम के रूप में नहीं। विविध धर्मों का इतिहास लिखनेवाले कुछ पाश्चात्य लेखकों ने उपनिषदों के ज्ञान को जो रहस्यवाद की कोटि मे रखा है, वह उनका भ्रम या दृष्टि-संकोच है। बात यह है कि उस प्राचीन काल मे दार्शनिक विवेचन को व्यक्त करने की व्यवस्थित शैली नहीं निकली थी। जगत् और उसके मूल कारण का चिंतन करते करते जिस तथ्य तक तक वे पहुँचते थे उसकी व्यंजना अनेक प्रकार से वे करते थे। जैसे आजकल किसी गंभीर विचारात्मक लेख के भीतर कोई मार्मिक स्थल आ जाने पर लेखक की मनोवृत्ति भावोन्मुख हो जाती है और वह काव्य की भावात्मक शैली का अवलंबन करता है, उसी प्रकार उन प्राचीन ऋषियों को भी विचार करते करते गंभीर मार्मिक तथ्य पर पहुँचने पर कभी सभी भावोन्मेष हो जाता था और वे अपनी उक्ति का प्रकाश रहस्यात्मक और अनूठे ढंग से कर देते थे।

गीता के दसवे अध्याय में सर्ववाद का भावात्मक प्रणाली पर निरूपण है। वहाँ भगवान् ने अपनी विभूतियों का जो वर्णन किया है वह अत्यंत रहस्यपूर्ण है। सर्ववाद को लेकर जब भक्त की मनोवृत्ति रहस्योन्मुख होगी तब वह अपने को जगत् के नाना रूपों के सहारे उस परोक्ष सत्ता की ओर ले जाता हुआ जान पड़ेगा। वह खिले हुए फूलों में, शिशु

के स्मित आनन में, सुंदर मेघमाला में, निखरे हुए चंद्रविव मे उसके सौंदर्य्य का; गंभीर मेघगर्जन में, बिजली की कड़क में, वज्रपात में, भूकंप आदि प्राकृतिक विप्लवो में उसकी रौद्र मूर्ति का; संसार के असामान्य वीरो, परोपकारियों और त्यागियो मे उसकी शक्ति, शील आदि का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार अवतारवाद का मूल भी रहस्य-भावना ही ठहरती है।

पर अवतारवाद के सिद्धांत रूप में गृहीत हो जाने पर, राम-कृष्ण के व्यक्त ईश्वर विष्णु के अवतार स्थिर हो जाने पर रहस्यदशा की एक प्रकार से समाप्ति हो गई। फिर राम और कृष्ण का ईश्वर के रूप में ग्रहण व्यक्तिगत रहस्य-भावना के रूप में नही रह गया। वह समस्त जन-समाज के धार्मिक विश्वास का एक अंग हो गया। इसी व्यक्त जगत् के वीच प्रकाशित रामकृष्ण की नर-लीला भक्तों के भावोद्रेक का विषय हुई। अतः रामकृष्णोपासको की भक्ति रहस्यवाद की कोटि में नहीं आ सकती।

यद्यपि समष्टि रूप मे वैष्णवो की सगुणोपासना रहस्यवाद के अन्तर्गत नहीं कही जा सकती, पर श्रीमद्भागवत के उपरांत कृष्णभक्ति को जो रूप प्राप्त हुआ उसमें रहस्यभावना की गुंजाइश हुई। भक्तों की दृष्टि से जव धीरे धीरे श्रीकृष्ण का लोकसंग्रही रूप हटने लगा और वे प्रेममूर्ति मात्र रह गये तव उनकी भावना ऐकांतिक हो चली। भक्त लोग भगवान् को अधिकतर अपने संवंध से देखने लगे, जगत् के संबंध से नही। गोपियो का प्रेम जिस प्रकार एकांत और रूप-माधुर्य्य मात्र पर आश्रित था उसी प्रकार भक्तो का भी हो चला। यहाँ तक कि कुछ स्त्री-भक्तो मे भगवान् के प्रति उसी रूप का प्रेमभाव स्थान पाने लगा जिस रूप का गोपियों का कहा गया था। उन्होने भगवान् की भावना प्रियतम के रूप मे की। बड़े बड़े मंदिरों में देवदासियो की जो प्रथा थी उससे इस 'माधुर्य्य भाव' को और भी सहारा मिला। माता-पिता कुमारी लड़कियो को मंदिर में दान कर आते थे, जहाँ उनका विवाह देवता के साथ हो जाता था। अतः उनके लिये उस देवता की भक्ति पति-रूप मे ही विधेय थी। इन देवदासियो में से कुछ उच्च कोटि की भक्तिनें भी निकल आती थीं। दक्षिण मे अंदाल इसी प्रकार की भक्तिन थी जिसका जन्म विक्रम संवत् ७७३ के आसपास हुआ था। यह बहुत छोटी अवस्था मे किसी साधु को एक पेड़ के नीचे मिली थी। वह साधु

भगवान् का स्वप्न पाकर, इसे विवाह के वस्त्र पहनाकर श्रीरंगजी के मंदिर में छोड़ आया था।

अदाल के पद्र द्रविड़ भाषा में 'त्तिरुप्पावइ' नामक पुस्तक में अब तक मिलते है। अंदाल एक स्थान पर कहती है–"अब मै पूर्ण यौवन को प्राप्त हूँ और स्वामी कृष्ण के अतिरिक्त और किसी को अपना पति नहीं बना सकती।" पति या प्रियतम के रूप में भगवान् की भावना को वैष्णव भक्ति मार्ग में 'माधुर्य्य भाव' कहते है। इस भाव की उपासना मे रहस्य का समावेश अनिवार्य्य और स्वाभाविक है। भारतीय भक्ति का सामान्य स्वरूप रहस्यात्मक न होने के कारण इस 'माधुर्य्य भाव' का अधिक प्रचार नही हुआ। आगे चलकर मुसलमानी जमाने में सूफियो की देखादेखी इस भाव की ओर कृष्णभक्ति-शाखा के कुछ भक्त प्रवृत्त हुए। इनमें मुख्य मीराबाई हुईं जो 'लोकलाज खोकर' अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के प्रेम में मतवाली रहा करती थीं। उन्होने एक बार कहा था कि "कृष्ण को छोड़ और पुरुष है कौन? सारे जीव स्त्री-रूप हैं"।

सूफियों का असर कुछ और कृष्ण-भक्तों पर भी पूरा पूरा पाया जाता है। चैतन्य महाप्रभु में सूफियों की प्रवृत्तियाँ साफ झलकती है। जैसे सूफी कव्वाल गाते गाते 'हाल' की दशा में हो जाते है वैसे ही महाप्रभुजी की मंडली भी नाचते नाचते मूर्च्छित हो जाती थी। यह मूर्च्छा रहस्यवादी सूफियो की रूढ़ि है। इसी प्रकार मद, प्याला, उन्माद तथा प्रियतम ईश्वर के विरह की दूरारूढ़ व्यंजना भी सूफियों की बँधी हुई परंपरा है। इस परंपरा का अनुसरण भी कुछ पिछले कृष्ण-भक्तो ने किया। नागरीदासजी इश्क का प्याला पी कर बराबर झूमा करते थे। कृष्ण की मधुर मूर्त्ति ने कुछ आजाद सूफी फकीरों को भी आकर्षित किया। नजीर अकबराबादी ने खड़ी बोली के अपने बहुत से पद्यों में श्रीकृष्ण का स्मरण प्रेमालंबन के रूप में किया है।

निर्गुण शाखा के कबीर, दादू आदि संतों की परंपरा में ज्ञान का जो थोड़ा-बहुत अवयव है वह भारतीय वेदांत का है; पर प्रेम तत्त्व बिल्कुल सूफियों का है। इनमें से दादू, दरिया साहब आदि तो खालिस सूफी ही जान पड़ते है। कबीर में 'माधुर्य्य भाव' जगह जगह पाया जाता है। वे कहते है—

हरि मोर पिय, मैं राम की बहुरिया।

'राम की बहुरिया' कभी तो प्रिय से मिलने की उत्कंठा और मार्ग की कठिनता प्रकट करती है, जैसे,—

मिलना कठिन है, कैसे मिलौगी पिय जाय ?
समुझि सोचि पग धरौं जतन से, बार बार डगि जाय।
ऊँचा गैल, राह रपटीली, पाँव नहीं ठहराय।

और कभी विरह-दुःख निवेदन करती है।

पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में साधनात्मक रहस्यवाद ही हठयोग, तंत्र और रसायन के रूप में प्रचलित था। जिस समय सूफी यहाँ आए उस समय उन्हें रहस्य की प्रवृत्ति हठयोगियों, रसायनियों और तांत्रिकों में ही दिखाई पड़ी। हठयोग की तो अधिकांश बातों का समावेश उन्होंने अपनी साधना-पद्धति में कर लिया। पीछे कबीर ने भारतीय ब्रह्मवाद और सूफियों की प्रेम-भावना मिलाकर जो 'निर्गुण संत मत' खड़ा किया उसमें भी "इला, पिंगला, सुषमन नारी" तथा भीतरी चक्रों की पूरी चर्चा रही। हठयोगियो वा नाथ-पंथियो की दो मुख्य बातें सूफियों और निर्गुण-मतवाले संतों को अपने अनुकूल दिखाई पड़ी—(१) रहस्य की प्रवृत्ति, (२) ईश्वर को केवल मन के भीतर समझना और ढूँढ़ना।

कहने की आवश्यकता नही कि ये दोनो बाते भारतीय भक्ति-मार्ग से पूरा मेल खानेवाली नहीं थी। अवतारवाद के सिद्धांत रूप से प्रतिष्ठित हो जाने के कारण भारतीय परंपरा का भक्त अपने उपास्य को बाहर लोक के बीच प्रतिष्ठित करके देखता है, अपने हृदय के एकांत कोने में ही नही। पर फारस में भावात्मक अद्वैती रहस्यवाद खूब फैला। वहाँ की शायरी पर इसका रंग बहुत गहरा चढ़ा। खलीफा लोगो के कठोर धर्म-शासन के बीच भी सूफियो की प्रेममयी वाणी ने जनता को भावमग्न कर दिया।

इस्लाम के प्रारंभिक काल मे ही भारत का सिंध प्रदेश ऐसे सूफियों का अड्डा रहा जो यहाँ के वेदांतियों और साधको के सत्संग से अपने मार्ग की पुष्टि करते रहे। अतः मुसलमानो का साम्राज्य स्थापित हो जाने पर हिंदुओ और मुसलमानों के समागम से दोनो के लिये जो एक "सामान्य भक्ति-मार्ग" आविर्भूत हुआ वह अद्वैती रहस्यवाद को लेकर, जिसमे वेदांत और सूफी मत दोनो का मेल था। पहले पहल

नामदेव ने फिर रामानंद के शिष्य कबीर ने जनता के बीच इस "सामान्य भक्ति-मार्ग" की अटपटी वाणी सुनाई। नानक, दादू आदि कई साधक इस नए मार्ग के अनुयायी हुए और "निर्गुण संत मत" चल पड़ा। पर इधर यह निर्गुण भक्ति-मार्ग निकला उधर भारत के प्राचीन "सगुण मार्ग" ने भी, जो पहले से चला आ रहा था, जोर पकड़ा और रामकृष्ण की भक्ति का स्रोत बड़े वेग से हिंदू-जनता के बीच बहा। दोनो की प्रवृत्ति मे बड़ा अंतर यह दिखाई पड़ा कि एक तो लोकपक्ष से उदासीन होकर केवल व्यक्तिगत साधना का उपदेश देता रहा पर दूसरा अपने प्राचीन स्वरूप के अनुसार लोकपक्ष को लिए रहा। "निर्गुन बानी" वाले संतों के लोक-विरोधी स्वरूप को गोस्वामी तुलसीदासजी ने अच्छी तरह पहचाना था।

जैसा कि अभी कहा जा चुका है, रहस्यवाद का स्फुरण सूफियों में पूरा पूरा हुआ। कबीरदास मे जो रहस्यवाद पाया जाता है वह अधिकतर सूफियो के प्रभाव के कारण। पर कबीरदास पर इस्लाम के कट्टर एकेश्वरवाद और वेदांत के मायावाद का रूखा संस्कार भी पूरा पूरा था। उनमें वाक्चातुर्य्य था, प्रतिभा थी, पर प्रकृति के प्रसार में भगवान् की कला का दर्शन करनेवाली भावुकता न थी। इससे रहस्यमयी परोक्ष सत्ता की ओर संकेत करने के लिये जिन दृश्यों को वे सामने करते है वे अधिकतर वेदांत और हठयोग की बातों के खड़े किये हुए रूपक मात्र होते है। अतः कबीर में जो कुछ रहस्यवाद है वह सर्वत्र एक भावुक या कवि का रहस्यवाद नहीं है। हिंदी के कवियो में यदि कही रमणीय और सुंदर अद्वैती रहस्यवाद है तो जायसी मे, जिनकी भावुकता बहुत ही ऊँची कोटि की है। वे सूफियो की भक्ति-भावना के अनुसार कहीं तो परमात्मा को प्रियतम के रूप मे देखकर जगत् के नाना रूपों मे उस प्रियतम के रूप-माधुर्य्य की छाया देखते है और कही सारे प्राकृतिक रूपों और व्यापारो का 'पुरुष' के समागम के हेतु प्रकृति के शृंगार, उत्कंठा या विरह-विकलता के रूप में अनुभव करते हैं। दूसरे प्रकार की भावना पदमावत में अधिक मिलती है।

आरंभ में कह आए है कि 'पदमावत' के ढंग के रहस्यवाद-पूर्ण प्रबंधों की परंपरा जायसी से पहले की है। मृगावती, मधुमालती आदि की रचना जायसी के पहले हो चुकी थी और उनके पीछे भी ऐसी रचनाओं की परंपरा चली। सबमे रहस्यवाद मौजूद है। अतः हिंदी

के पुराने साहित्य में "रहस्यवादी कवि-संप्रदाय" यदि कोई कहा जा सकता है तो इन कहानी कहनेवाले मुसलमान कवियों का ही।

जायसी कवि थे और भारतवर्ष के कवि थे। भारतीय पद्धति के कवियो की दृष्टि फारसवालो की अपेक्षा प्राकृतिक वस्तुओं और व्यापारो पर कहीं अधिक विस्तृत तथा उनके मर्मस्पर्शी स्वरूपों को कहीं अधिक परखनेवाली होती है। इससे उस रहस्यमयी सत्ता का आभास देने के लिये जायसी बहुत ही रमणीय और मर्मस्पर्शी दृश्य-संकेत उपस्थित करने में समर्थ हुए है। कबीर के चित्रो ( Imagery ) की न वह अनेक-रूपता है, न वह मधुरता। देखिए, उस परोक्ष ज्योति और सौदर्य-सत्ता की ओर कैसी लौकिक दीप्ति और सौदर्य्य के द्वारा जायसी संकेत करते है—

बहुतै जोति जोति ओहि भई।
रवि, ससि, नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ, मानिक, मोती॥
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहिं हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी॥

नयन जो देखा कँवल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हस भा, दसन-जोति नग हीर॥

प्रकृति के बीच दिखाई देनेवाली सारी दीप्ति उसी से है, इस बात का आभास पद्मावती के प्रति रत्नसेन के ये वाक्य दे रहे है—

अनु धनि! तू निसिअर निसि माहाँ। हौ दिनिअर जेहि कै तू छाहाँ॥
चाँदहि कहाँ जोति औ करा। सुरुज के जोति चाँद निरमरा॥

अँगरेज कवि शेली की पिछली रचनाओ मे इस प्रकार के रहस्यवाद की झलक बड़ी सुंदर दृश्यावली के बीच दिखाई देती है। स्त्रीत्व का आध्यात्मिक आदर्श उपस्थित करनेवाले (Epipsychidion) मे प्रिया की मधुर वाणी प्रकृति के क्षेत्र मे कहाँ कहाँ सुनाई पड़ती है—

In solitudes,
Her voice came to me through the whispering
woods,
And from the fountains, and the odours deep
Of flowers which, like lips murmuring in their
sleep
Of the sweet kisses which had lulled them there
Breathed but of her to the enamoured air ;

And from the breezes, whether low or loud,
And from the rain of every passing cloud,
And from the singing of the summer-birds,
And from all sounds, all silence.

भावार्थ—निर्जन स्थानों के बीच मर्मर करते हुए काननों में, झरनों मे, उन पुष्पों की पराग-गंध मे जो उस दिव्य चुंबन के सुखस्पर्श से सोए हुए कुछ वर्राते से मुग्ध पवन को उसका परिचय दे रहे है; इसी प्रकार मंद या तीव्र समीर मे, प्रत्येक दौड़ते हुए मेघखंड की झड़ी में, वसंत के विहंगमो के कल-कूजन में, तथा प्रत्येक ध्वनि मे, और निःस्तब्धता में भी, मै उसी की वाणी सुनता हूँ।

कबीरदास में यह बात नहीं है। उन्हें बाहर जगत् में भगवान् की रूपकला नहीं दिखाई देती। वे सिद्धों और योगियों के अनुकरण पर ईश्वर को केवल अंतस् मे बताते हैं—

मो को कहाँ ढूँढ़े बदे मै तो तेरे पास मे।
ना मैं देवल, ना मैं मसजिद; ना काबे कैलास मे॥

जायसी भी उसे भीतर बताते है—

पिउ हिरदय महँ भेट न होई। को रे मिलाव, कहौ केहि रोई!

पर, जैसा कि पहले दिखा चुके है, वे उसके रूप की छटा प्रकृति के नाना रूपों में भी देखते है।

मानस के भीतर उस प्रियतम के सामीप्य से उत्पन्न कैसे अपरिमित आनंद की, कैसे विश्व-व्यापी आनंद की, व्यंजना जायसी की इन पंक्तियों में है—

देखि मानसर रूप सोहावा। हिय-हुलास पुरइनि होइ छावा॥
गा अँधियार रैन-मसि छूटी। भा भिनसार, किरिन-रवि फूटी॥
कँवल बिगस तस बिहँसी देही। भँवर दसन होइ कै रस लेहीं॥

देखि अर्थात् उस अखंड ज्योति का आभास पाकर वह मानस (मानसरोवर और हृदय) जगमगा उठा। देखिए न, खिले कमल के रूप मे उल्लास मानसर मे चारो ओर फैला है। उस ज्योति के साक्षात्कार से अज्ञान छूट गया—प्रभात हुआ, पृथ्वी पर से अंधकार हट गया। आनंद से चेहरा (देही = वदन = मुँह) खिल उठा, बत्तीसी निकल

आई*—कमल खिल उठे और उन पर भौरे दिखाई दे रहे हैं। अंतर्जगत् और वाह्य जगत् का कैसा अपूर्व सामंजस्य है, कैसी बिंब-प्रतिबिंब स्थिति है!

उस प्रियतम पुरुष के प्रेम से प्रकृति कैसी विद्ध दिखाई देती है—

उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा? बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहि न गने। वै सब बान ओहि के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ देहिं सब साखी॥
रोवँ रोवँ मानुस तन ठाढ़े। सूतहि सूत बेध अस गाढ़े॥
बरुनि-चाप अस ओपहँ बेधे रन बन-ढाँख।
सौजहि तन सब रोवाँ, पखिहि तन सब पाँख॥

पृथ्वी और स्वर्ग, जीव और ईश्वर, दोनों एक थे; बीच में न जाने किसने इतना भेद डाल दिया है—

धरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन्ह बिछोऊ॥

जो इस पृथ्वी और स्वर्ग के वियोग-तत्त्व को समझेगा और उस वियोग में पूर्ण रूप से सम्मिलित होगा उसी का वियोग सारी सृष्टि में इस प्रकार फैला दिखाई देगा—

सूरुज बूड़ि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता॥
भा बसंत, राती बनसपती। औ राते सब जोगी जती॥
भूमि जो भीजि भएउ सब गेरू। औ राते सब पंखि पखेरू॥
राती सती, अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया॥

सायं प्रभात न जाने कितने लोग मेघखंडों को रक्तवर्ण होते देखते हैं पर किस अनुराग से वे लाल हैं इसे जायसी ऐसे रहस्यदर्शी भावुक ही समझते हैं।

प्रकृति के सारे महाभूत उस 'अमरधाम' तक पहुँचने का बराबर प्रयत्न करते रहते हैं पर साधना पूरी हुए बिना पहुँचना असंभव है—

धाइ जो बाजा कै मन साधा। मारा चक्र, भएउ दुइ आधा॥
चाँद सुरुज औ नखत तराई। तेहि डर अँतरिख फिरहिं सबाई॥
पवन जाइ तहँ पहुँचै चहा। मारा तैस लोटि भुइँ रहा॥

---

* एक स्थान पर जायसी ने कहा है—'मसि बिनु दसन सोह नहिं देही।' लखनऊ में मर्द लोग भी मिस्सी से दाँत काले करते हैं। पान के रंग से भी दाँतों पर स्याही चढ़ जाती है।

अगिनि उठी, जरि बुझी निआना। धुआँ उठा, उठि बीच बिलाना॥
पानि उठा, उठि जाइ न छूआ *। बहुरा रोइ, आइ भुइँ चूआ॥

इस अद्वैती रहस्यवाद के अतिरिक्त जायसी कहीं कहीं उस रहस्यवाद में भी आ फँसे हैं जो पाश्चात्यों की दृष्टि में 'झूठा रहस्यवाद' है। उन्होंने स्थान स्थान पर हठयोग, रसायन आदि का भी आश्रय लिया है।

## सूक्तियाँ

सूक्तियों से मेरा अभिप्राय वैचित्र्यपूर्ण उक्तियों से है जिनमें वाक्-चातुर्य्य ही प्रधान होता है। कोई बात यदि नए अनूठे ढंग से कही जाय तो उससे लोगों का बहुत कुछ मनोरंजन हो जाता है इससे कवि लोग वाग्वैदग्ध्य से प्रायः काम लिया करते हैं। नीति-संबंधी पद्यों में चमत्कार की योजना अकसर देखने में आती है। जैसे, बिहारी के 'कनक कनक ते सौ गुनो' वाले दोहे में अथवा रहीम के इस प्रकार के दोहों में—

(क) बड़े पेट के भरन में है रहीम दुख बाढ़ि।
यातें हाथी हहरि कै दिए दाँत द्वै काढ़ि॥

(ख) ज्यों रहीम गति दीप की कुल कुपूत गति सोइ।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होइ॥

ऐसे कथनों में आकर्षित करनेवाली वस्तु होती है वर्णन के ढंग का चमत्कार। इस प्रकार का चमत्कार चित्त को आकर्षित करता है पर उसी रूप में जिस रूप में कोई तमाशा आकर्षित करता है। इस प्रकार के आकर्षण में ही काव्यत्व नहीं है। मन को इस प्रकार से ऊपर ही ऊपर आकर्षित करना, केवल कुतूहल उत्पन्न करना, काव्य का लक्ष्य नहीं है। उसका लक्ष्य है मन को भिन्न भिन्न भावों में (केवल आश्चर्य में ही नहीं, जैसा चमत्कारवादी कहा करते हैं) लीन करना। कुछ वैलक्षण्य द्वारा आकर्षण साधन हो सकता है, साध्य नहीं। जो लोग कथन की चतुराई या अनूठेपन को ही काव्य समझा करते हैं उन्हें अग्नि-पुराण के इस वचन पर ध्यान देना चाहिए—

वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।

भाव-व्यंजना, वस्तु-वर्णन और तथ्यप्रकाश सबके अंतर्गत चमत्कार-

* 'उठि जाइ न छूआ' के स्थान पर यदि 'उठि होइ गा घूआ' पाठ होता तो और भी अच्छा होता।

पूर्ण कथन हो सकता है। ऊपर जो दोहे दिए गए हैं वे तथ्यप्रकाश के उदाहरण है। भाव-व्यंजना के अंतर्गत जायसी की चमत्कार-योजना के कुछ उदाहरण आ चुके है, जैसे—

यह तन जारौं छार कै कहौं कि "पवन! उड़ाव"।
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँ पाव॥

वस्तु-चित्रण के बीच भी जायसी में उक्ति-वैचित्र्य स्थान स्थान पर हैं, जैसे—

चकई बिछुरि पुकारै, कहाँ मिलौं, हो नाह।
एक चाँद निसि सरग महँ दिन दूसर जल माँह॥

भाव-व्यंजना, वस्तु-वर्णन और तथ्यप्रकाश तीनो में यह बात है कि यदि चमत्कार के साथ ही किसी भाव की अनुभूति में उपयोगी सामग्री भी है तब तो उक्ति प्रकृत काव्य कही जा सकती है नही तो काव्याभास ही होगी। जायसी के दोनों दोहो को लेकर देखते है तो प्रथम मे जो चमत्कार है वह अभिलाष के उत्कर्ष की व्यंजना मे सहायक है और द्वितीय मे जो चमत्कार है वह आलंबन के सौदर्य्य की अनुभूति मे।

यहाँ पर चमत्कार-पद्धति और रस-पद्धति मे जो भेद है उसे स्पष्ट करने का थोड़ा प्रयत्न करना चाहिए। किसी वस्तु के वर्णन या किसी तथ्य के कथन मे बुद्धि को दौड़ाकर यदि ऐसी वस्तु या प्रसंग की योजना की जाय जिसकी ओर प्रस्तुत वस्तु या प्रसंग के संबंध मे श्रोता का ध्यान पहले कभी न गया हो और जो इस कारण बिलकुल नया या विलक्षण लगे तो एक प्रकार का कुतूहल उत्पन्न होगा। यही कुतूहल उत्पन्न करना चमत्कार का उद्देश्य है। रससंचार के निमित्त जो कथन किया जाता है उसमें भी कभी कभी साधारण से कुछ और ढंग पकड़ना पड़ता है (क्या ढंग पकड़ना पड़ता है इस पर और कभी विचार किया जायगा) पर उसमे यह उद्देश्य मुख्य नही होता कि जिस वस्तु या प्रसंग की योजना की जाय वह श्रोता को नया, विलक्षण या अनूठा लगे बल्कि अपने मर्मस्पर्शी स्वरूप के कारण भाव की गहरी व्यंजना करे या श्रोता के हृदय मे वासनारूप मे स्थित किसी भाव को जाग्रत करे। इस प्रकार विचार करने से कवि की उक्ति तीन प्रकार की हो सकती है—(१) जिसमें केवल चमत्कार या वैलक्षण्य हो, (२) जिसमें केवल रस या भावुकता हो, (३) जिसमें रस और चमत्कार दोनो हो।

इनमें से प्रकृत काव्य हम केवल पिछली दो उक्तियों में ही मान सकते है, प्रथम मे केवल काव्याभास मानेगे। यहाँ पर हमें प्रयोजन प्रथम और द्वितीय प्रकार की उक्ति से है। ऊपर विहारी और रहीम के जिन दोहों का उल्लेख हुआ है वे जनसमाज मे स्वीकृत साधारण तथ्यों को एक अनूठे ढंग से सामने रखते है। अब यह देखिए कि इनमे काव्य का प्रकृत स्वरूप किसमे है, किसमे नही। किसी तथ्य का कथन जब काव्य-पद्धति द्वारा किया जाता है तब उसकी सत्यता का निश्चय कराना विवक्षित नहीं रहता, बल्कि उस तथ्य के प्रति किसी स्वाभाविक भाव के अनुभव को तीव्र करना—जैसे, 'कनक, कनक ते सौगुना' वाले दोहे में कवि धन के बुरे प्रभाव के कारण उसके प्रति श्रोता की तिरस्कार बुद्धि जाग्रत करना चाहता है, इसलिये धतूरे का उल्लेख करता है। इसी प्रकार 'बड़े पेट के भरन मे' वाले दोहे में असंतोषजन्य दीनता के प्रति जो जुगुप्सा विवक्षित है वह हाथी ऐसे बड़े जानवर का दाँत निकालना देखकर उत्पन्न हो सकती है। इन दोनों उक्तियों की तह में कुछ भाव निहित है अतः हम इन्हें चमत्कार-प्रधान-काव्य कह सकते हैं। इस प्रकार का काव्य रसप्रधान काव्य की कोटि तक तो नहीं पहुँच सकता पर काव्य कहला सकता है।

जिसमें भाव का पता देनेवाला अथवा भाव जाग्रत करनेवाला कोई शब्द या वाक्य अथवा प्रस्तुत प्रसंग के प्रति किसी प्रकार का भाव उत्पन्न कराने मे समर्थ अप्रस्तुत वस्तु या व्यापार न हो; केवल दूर की सूझ या शब्द-साम्य-मूलक विलक्षणता हो वह उक्ति काव्याभास होगी। जैसे, मिस्सी लगे काले दाँतों को देखकर यह कहना कि "मनो खेलत है लरिका हबसी के", दूर की सूझ या अनूठापन चाहे सूचित करे पर सौंदर्य्य का भाव उत्पन्न करने मे समर्थ नही है। दूर की सूझ दिखाने के लिये लोगो ने "भानु मनो सनि अंक लिए' तक कह डाला है पर उनकी यह सूझ वास्तव मे दूर की नहीं है—उन पोथियों तक की है जिनमें ग्रहो का रंग लिखा रहता है। ऐसी भद्दी उक्तियाँ भी सूक्ति कहलाती है। सूक्ति कहलाएँ, पर इनका उत्तम काव्य कहा जाना तो रोकना चाहिए।

तथ्य-वर्णन मे अब रहीम का "ज्यों रहीम गति दीप की" वाला दूसरा दोहा लीजिए। इसमे कही हुई बात यह है कि कुपुत्र जब तक बच्चा रहता है तभी तक अच्छा लगता है, जब बढता है तब दुःखदायी हो जाता है। 'बारे' और 'बाढ़े' शब्दों के श्लेष के आधार पर ही कवि

ने दीपक का उल्लेख किया है। पर इस दीपक के व्यापार की योजना कुपूत के प्रति विरक्ति आदि के अनुभव मे कुछ जोर नही पहुँचाती। अतः इन दोहो मे कोरा चमत्कार ही कहा जा सकता है। इसी चमत्कार के कारण हम इस उक्ति को कोरा तथ्य-कथन न कहकर काव्याभास कहेंगे। काव्य का बाहरी रूप-रंग इसमें पूरा है, पर प्राण नहीं है। रहीम के कुछ ही दोहे ऐसे मिलेगे। उनके दोहे भावुकता से भरे हुए हैं। पर नीति के अधिकांश दोहे ( जैसे वृंद के ) काव्याभास ही के अंतर्गत आ सकते है।

यहाँ पर सूक्ति के अंतर्गत हम जायसी के उन्हीं कथनो को लेते हैं जिनमे किसी तथ्य का प्रकाश है। इन कथनो के संबंध मे हम यह कह सकते है कि इनमे अधिकतर चमत्कार के साथ भावुकता भी है। जैसे, बुढ़ापे पर ये उक्तियाँ लीजिए—

मुहमद बिरिध जो नइ चलै, काह चलै भुइँ टोइ।
जोबन-रतन हेरान है, मकु धरती पर होइ॥

* * * *

बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढी आऊ होहु तुम्ह, केइ यह दीन्हि असीस॥

यहाँ यौवनावस्था के प्रति मनुष्य का जो स्वाभाविक राग होता है उसकी व्यंजना चमत्कार की अपेक्षा प्रधान है।

मिट्टी पर यह उक्ति देखिए—

माटी मोल न किछु लहै औ माटी सब मोल।
दिस्टि जो माटी सौं करै माटी होइ अमोल॥

यों तो मिट्टी का कुछ भी मूल्य नहीं कहा जाता पर इसी मिट्टी अर्थात् मनुष्य-शरीर का बहुत कुछ मूल्य है। मिट्टी पर भी यदि दृष्टि करे अर्थात् तुच्छ से तुच्छ का भी तिरस्कार न करे तो मिट्टी ( शरीर ) अमूल्य हो जाय। इसमे विनय या दैन्य का भाव प्रकट होता है।

"जेहि पर जेहि कर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलत न कछु संदेहू" इस बात को प्रत्यक्ष करने के लिये जायसी ने बहुत दूर की दो वस्तुओं का एकत्र होना दिखाया है—

बसै मीन जल धरती, अंबा बसै अकास।
जौ पिरीति पै दुवौ महँ अंत होहिं एक पास॥

इस कथन मे जायसी केवल प्रमाण द्वारा निश्चय कराते हुए जान पड़ते

है, यद्यपि प्रमाण तर्क की कोटि का नहीं है। यदि प्रमाण तर्क की कोटि का होता तो हम इस उक्ति को साधारण तथ्य-कथन कहते, पर उसका न्यास काव्य की रीति पर है अतः इस उक्ति को हम काव्याभास कहेंगे।

कौवे सवेरा होने पर क्यों कॉव कॉव करके चिल्लाते है ? जायसी कहते है कि वे यह देखकर चिल्लाते है कि रात्रि की इतनी फैली हुई कालिमा तो छूट गई, वे ही ऐसे अभागे है जिनकी कालिमा ज्यों की त्यों वनी है—

भोर होइ जौ लागै उठहिं रोर कै काग।
मसि छूटै सब रैनि कै कागहिं केर अभाग॥

इस उक्ति में भी जो कुछ है वह वैलक्षण्य ही, यद्यपि कालिमा या चुराई की ओर अरुचि की भी झलक है।

---

## फुटकल प्रसंग

पद्मावत के वीच वीच में वहुत से ऐसे फुटकल प्रसंग भी आए है जैसे, दानमहिमा, द्रव्यमहिमा, विनय इत्यादि। ऐसे विषयों के वर्णन को काव्यपद्धति के भीतर करने के लिये कविजन या तो उनके प्रति अनुराग, श्रद्धा, विरक्ति आदि अपना कोई भाव व्यंग्य रखते हैं या कुछ चमत्कार की योजना करते है। कवि के भाव का पता विषय को प्रिय या अप्रिय, विशद या कुत्सित रूप मे प्रदर्शित करने से लग सकता है। इस रूप में प्रदर्शित करते समय अत्युक्ति प्रायः करनी पड़ती है क्योंकि रूप के उत्कर्ष या अपकर्ष से ही कवि (आश्रय) की रति या विरक्ति का आभास मिलता है। जैसे यदि कोई पात्र किसी स्त्री का बहुत सुंदर रूप मे वर्णन करता है तो उसके प्रति उसके रतिभाव का पता लगता है, वैसे ही यदि कवि दानशीलता, विनय आदि गुणों का खूब बढ़ा चढ़ाकर वर्णन करता है तो उन गुणों के प्रति उसका अनुराग प्रकट होता है। नीचे कुछ फुटकल प्रसंग दिए जाते है—

दान-महिमा—

धनि जीवन औ ताकर हीया। ऊँच जगत महँ जाकर दीया॥
दिया जो जप तप सब उपराहीं। दिया बराबर जग किछु नाहीं॥
एक दिया तें दसगुन लहा। दिया देखि सब जग मुख चहा॥

दिया करै आगे उजियारा । जहाँ न दिया तहाँ अँधियारा ॥
दिया मँदिर निसि करै अँजोरा । दिया नाहिं, घर मूसहि चोरा ॥

* * * *

नम्रता की शक्ति—

एहि सेंति बहुरि जभ नहिं करिए । खड्ग देखि पानी होइ ढरिए ॥
पानिहि काह खड्ग कै धारा । लौटि पानि होइ सोइ जो मारा ॥
पानी केर आगि का करई । जाइ बुझाइ जौ पानी परई ॥

* * * *

दुःख की घोरता—

दुख जारै, दुख भूँजै, दुख खोवै सब लाज ।
गाजहि चाहि अधिक दुख, दुखी जान जेहि बाज ॥

इस दोहे से कवि के हृदय की कोमलता, प्राणिमात्र के दुःख से सहानुभूति, प्रकट होती है ।

* * * *

अपकार के बदले उपकार—

मंदहि भल जो करै भल सोई । अतहि भला भले कर होई ॥
शत्रु जो विष देइ चाहै मारा । दीजिय लोन जानि विष हारा ॥
विष दीन्हे विसहर होइ खाई । लोन दिए होइ लोन बिलाई ॥
मारे खड्ग खड्ग कर लेई । मारे लोन नाइ सिर देई ॥

* * * *

साहस—

साहस जहाँ सिद्धि तहँ होई ।

* * *

द्रव्य-महिमा—

(क) दरब तें गरब करै जो चाहा । दरब ते धरती सरग बेसाहा ॥
दरब तें हाथ आव कविलासू । दरब ते अछरी छाँड़ न पासू ॥
दरब तें निरगुन होइ गुनवंता । दरब ते कुबुज होइ रुपवंता ॥
दरब रहै भुइँ, दिपै लिलारा । अस मन दरब देइ को पारा ?
(ख) साँठि होइ जेहि तेहि सब बोला । निसँठ जो पुरुष पात जिमि डोला ॥
साँठिहि रंक चलै झौराई । निसँठ राव सब कह बौराई ॥

सॉठिहि आव गरब तन फूला । निसॅठहि बोल बुद्धि बल भूला ॥
सॉठिहि जागि नींद निसि जाई । निसॅठहि काह होइ औंघाई ॥
सॉठिहि दिस्टि जोति होइ नैना । निसॅठ होइ, मुख आव न बैना ॥

---

## जायसी की जानकारी

साहित्य की दृष्टि से जायसी की रचना की जो थोड़ी-बहुत समीक्षा हुई उससे यह तो प्रकट ही है कि उन्हें भारतीय काव्य-पद्धति और भाषा-साहित्य का अच्छा परिचय था। भिन्न भिन्न अलंकारों की योजना, काव्य-प्रसिद्ध उक्तियों का विस्तृत समावेश (जैसा कि नखशिख-वर्णन में है), प्रबंध-काव्य के भीतर निर्दिष्ट वर्ण्य विषयों का सन्निवेश (जैसे जलक्रीड़ा, समुद्रवर्णन) प्रचलित काव्य-रीति के परिज्ञान के परिचायक है। यह परिज्ञान किस प्रकार का था, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। वे बहुश्रुत थे, बहुत प्रकार के लोगों से उनका सत्संग था, यह तो आरंभ में ही कहा जा चुका है। पर उनके पहले चारणों के वीर-काव्यों और कबीर आदि कुछ निर्गुणोपासक भक्तों की वाणियों के अतिरिक्त और नाम लेने लायक काव्यों का पता न होने से यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उन्होंने काव्यों और रीति-ग्रंथों का क्रमपूर्वक अध्ययन किया था। ग्रियर्सन साहब ने लिखा है कि जायस में आकर जायसी ने पंडितों से संस्कृत काव्य-रीति का अध्ययन किया। इस अनुमान का उन्होंने कोई आधार नहीं बताया। संस्कृत-ज्ञान का अनुमान जायसी की रचना से तो नहीं होता। उनका संस्कृत-शब्द-भांडार बहुत परिमित है। उदाहरण के लिये 'सूर्य्य' और 'चंद्र' ये दो शब्द लीजिए जिनका व्यवहार जायसी ने इतना अधिक किया है कि जी ऊब जाता है। इन दोनों शब्दों के कितने अधिक पर्य्याय संस्कृत में है, यह हिंदी जाननेवाले भी जानते है। पर जायसी ने सूर्य्य के लिये रवि, भानु और दिनीअर (दिनकर) और चंद्र के लिये ससि, ससहर और मयंक (मृगांक) शब्दों का ही व्यवहार किया है। दूसरी बात यह है कि संस्कताभ्यासी से चंद्र को स्त्रीरूप में कल्पित करते न बनेगा।

यह आरंभ में ही कह आए है कि पदमावत के ढंग के चरित-काव्य जायसी के पहले बन चुके थे। अतः जायसी ने काव्य-शैली किसी पंडित

से न सीखकर किसी कवि से सीखी। उस समय काव्य व्यवसायियों को प्राकृत और अपभ्रंश से पूर्ण परिचित होना पड़ता था। छंद और रीति आदि के परिज्ञान के लिये भाषा-कविजन प्राकृत और अपभ्रंश का सहारा लेते थे। ऐसे ही किसी कवि से जायसी ने काव्य-रीति सीखी होगी। पदमावत में 'दिनिअर', 'ससहर', 'अहुठ', 'भुवाल', 'विसहर', 'पुहुमी' आदि शब्दों का प्रयोग तथा प्राकृत-अपभ्रंश की पुरानी प्रथा के अनुसार 'हि' विभक्ति का सब कारकों में व्यवहार देख यह दृढ़ अनुमान होता है कि जायसी ने किसी से भाषा-काव्य-परंपरा की जानकारी प्राप्त की थी। 'सैरंधी' ( सैरंध्री = द्रौपदी ), 'गंगेऊ' ( गांगेय = भीष्म ), 'पारथ' ऐसे अप्रचलित शब्दों का जो कहीं कहीं उन्होंने व्यवहार किया है वह इसी जानकारी के बल से, न कि संस्कृत के अभ्यास के बल से।

यह ठीक है कि संस्कृत-कवियों के भाव कहीं कहीं ज्यों के त्यों पाए जाते हैं, जैसे, इस दोहे में—

भवँर जो पावा कँवल कहँ, मन चीता बहु केलि।
आइ परा कोइ हस्ति तहँ, चूर किएउ सो बेलि॥

यह इस श्लोक का अनुवाद जान पड़ता है—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः।
इत्थ विचिन्तयति कोशगते द्विरेफे
हा हन्त! हन्त!! नलिनीं गज उज्जहार॥

इसी प्रकार

"शैले शैले न माणिक्यं, मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र, चंदनं न वने वने॥"

चाणक्य के इस श्लोक का हिंदी रूप भी पदमावत में मौजूद है—

थल थल नग न होहिं जेहि जोती। जल जल सीप न उपनहि मोती॥
बन बन बिरिछ न चंदन होई। तन तन बिरह न उपनै सोई॥

पर इस प्रकार के भाव भी उन्हें भाषा-काव्य द्वारा ही मिले।

छंद:शास्त्र के ज्ञान का प्रमाण जायसी की रचनाओं से नहीं मिलता। चौपाई बहुत ही सीधा छंद है, पर उसमें भी कहीं १६ मात्राएँ है, कहीं १५ ही। दोहों के चरण तो प्रायः गड़बड़ है। तुलसीदासजी के दोहों में

भी कहीं कहीं मात्राएँ घटती है, पर जायसी मे तो बहुत कम दोहे ऐसे मिलेगे जो ठीक उतरते हों। विषम चरण कोई १२ मात्राओं का है, कोई १६—जैसे,

(क) जो चाहा सो किन्हेसि, करै जो चाहै कीन्ह।

(ख) काया-मरम जान पै रोगी, भोगी रहै निचित।

'नखशिख' मे आए हुए उपमान प्रायः सब काव्य-प्रसिद्ध ही हैं। बहुत सी चमत्कार-पूर्ण उक्तियाँ भी पुरानी है जिनका प्रयोग सूर आदि और सम-सामयिक कवियों ने भी किया है। उदाहरण के लिये यह मनोहर उक्ति लीजिए—

गहे बीन मकु रैनि बिहाई। ससि-बाहन तहँ रहै ओनाई॥

सूरदासजी ने भी इस उक्ति की योजना की है—

दूर करहु बीना कर धरिबो।
मोहे मृग नाहीं रथ हाँक्यो, नाहिं न होत चंद को ढरिबो॥

पर जायसी ने इस उक्ति को बढ़ाकर कुछ और भी सुसज्जित किया है।

यह तो हुई साहित्य की अभिज्ञता। अब थोड़ा यह भी देखना चाहिए कि और और विषयों का ज्ञान उनका कैसा था। पदमावत में ज्योतिष, हठयोग, कामशास्त्र और रसायन की बाते भी आई है। हमारी समझ मे ज्योतिष को छोड़कर और बातों की जानकारी उन्हें सत्संग द्वारा प्राप्त हुई थी, न कि ग्रंथों के अध्ययन द्वारा। किसी कवि की रचना मे किसी शास्त्र की साधारण बातो का कुछ उल्लेख देख चट यह कह बैठना कि वह उस शास्त्र का बड़ा भारी पंडित था, अपनी भी हँसी करना है और उस कवि की भी। "कहत सबै बैदी दिए आँक दसगुनो होत" और "यह जग काँचो.काँच सो मै समुझ्यौ निरधार" को आगे करके जो लोग कह बैठते हैं कि 'वाह! वाह! कवि गणित और वेदांत-शास्त्र का कैसा भारी पंडित था' उन्हें विचार से काम लेने और वाणी का संयम रखने का अभ्यास करना चाहिए। "अहा हा!" और "वाह वाह!" वाली इस चाल की समालोचना कहा जाना जितनी ही जल्दी बंद हो उतना ही अच्छा। सिद्धांतों पर विचार करते समय वेदांत की कई बातों की झलक हम पदमावत और अखरावट में दिखा आए है। पर उसका यह अभिप्राय नही है कि जायसी 'शारीरिक भाष्य' और 'पंचदशी' घोखे बैठे थे। 'पंचभूत' शब्द का प्रयोग

उन्होंने पाँच ज्ञानेंद्रियों के अर्थ में किया है। यह बात दर्शन-शास्त्र का अभ्यास नहीं सूचित करती।

हिंदुओं के पौराणिक वृत्तों की जानकारी जायसी को थी, पर बहुत पक्की न थी। कुबेर का स्थान अलकापुरी है, इसका पता उन्हें था क्योंकि वह बादशाह की भेजी योगिनी से कहलाते हैं—"गइउँ अलकपुर जहाँ कुबेरू"। 'नारद' को जो उन्होंने शैतान के स्थान पर रखा है, उसका कारण सूफियों की प्रवृत्ति विशेष है। सूफी शैतान को ईश्वर का विरोधी नहीं मानते बल्कि उसके आज्ञा के अनुसार अनधिकारियों को ईश्वर तक पहुँचने से रोकनेवाला मानते हैं, सरग शब्द जायसी आसमान के अर्थ में ही लाए हैं। हिंदू-कथाओं का यदि उन्हें अच्छा परिचय होता तो वे चंद्रमा को स्त्री कभी न बनाते। उनके चंद्रमा वही हैं जिन्हें अवध की स्त्रियाँ "चंदा माई! धाय आव" कहकर बुलाती हैं। सप्तद्वीपों के तो उन्होंने कहीं नाम नहीं लिए हैं, पर सात समुद्रों के नाम उन्हें समुद्र-वर्णन में गिनाने पड़े हैं। इन नामों में दो (किलकिला और मानसर) पुराणों के अनुसार नहीं हैं। पुराणों में एक ही मानसरोवर उत्तर में माना गया है पर जायसी ने उसे सिंहल के पास कहा है और सात समुद्रों में गिन लिया है। पर रामायण, महाभारत आदि के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पात्रों के स्वरूप से वे अच्छी तरह परिचित थे। इंद्र द्वारा कर्ण से अक्षय कवच ले लिए जाने तथा इसी प्रकार के और प्रसंगों का उन्होंने उल्लेख किया है।

अब उनका भौगोलिक ज्ञान लीजिए। इतिहास और भूगोल दोनों में हमारे देश के पुराने लोग कच्चे होते थे। अपने देश के ही भिन्न भिन्न प्रदेशों और स्थानों की यदि ठीक ठीक जानकारी उस समय किसी को हो तो उसे बहुत समझना चाहिए। अपने देश के बाहर की बात जानना तो कई सौ वर्षों से भारतवासी छोड़े हुए थे। सिंहलद्वीप, लंका आदि के नाम ही नाम जायसी के समय में याद रह गए थे। अतः जायसी को यदि सिंहल की ठीक ठीक स्थिति का पता न हो तो कोई आश्चर्य नहीं। जायसी सिंहलद्वीप को चित्तौर से पूरब समझते थे, जैसा कि इस चौपाई से प्रकट होता है—

पच्छिउँ कर बर, पुरुब क बारी।
जोरी लिखी न होइ निनारी॥

लंका को वे सिंहल के दक्षिण मानते थे, यह बात उस प्रसंग को

ध्यान देकर पढ़ने से विदित हो जाती है जिसमें सिंहल से लौटते समय तूफान मे वहकर रत्नसेन के जहाज नष्ट हुए थे। जायसी लिखते हैं कि जहाज आधे समुद्र मे भी नहीं आए थे कि उत्तर की हवा बड़े जोर से उठी—

आधे समुद ते आए नाहीं
उठी बाउ आँधी उतराहीं।

इस तूफान के कारण जहाज भटककर लंका की ओर चल पड़े—

बोहित चले जो चितउर ताके। भए कुपथ लंक दिसि हाँके॥

उत्तर की ओर से आँधी आने से जहाज दक्षिण की ओर ही जायँगे। इससे लंका सिंहल से दक्षिण की ओर हुई।

इस अज्ञान के होते हुए भी जनता के बीच प्राचीन काल की विलक्षण स्मृति का आभास पदमावत से मिलता है। भारत के प्राचीन इतिहास का विस्तृत परिचय रखनेवाले मात्र यह जानते होंगे कि प्राचीन हिंदुओं के अर्णवपोत पूर्वीय समुद्रों में बराबर दौड़ा करते थे। पच्छिम के समुद्रों में जाने का प्रमाण तो वैसा नहीं मिलता पर पूर्वीय समुद्रों में जाने के चिह्न अब तक वर्त्तमान हैं। सुमात्रा, जावा आदि द्वीपों में हिंदू मंदिरों के चिह्न तथा सुदूर बाली-लंबक आदि द्वीपों में हिंदुओं की बस्ती अब तक पाई जाती है। बंगाल की खाड़ी से लेकर प्रशांत महासागर के बीच होते हुए चीन तक हिंदुओं के जहाज जाते थे। ताम्रलिप्ति (आधुनिक तमलूक जो मिदनापुर जिले में है) और कलिंग में पूर्व समुद्र में जाने के लिये प्रसिद्ध बंदरगाह थे। फाहियान नामक चीनी यात्री, जो द्वितीय चंद्रगुप्त के समय भारतवर्ष में आया था, ताम्रलिप्ति ही से जहाज में बैठकर सिंहल और जावा होता हुआ अपने देश को लौटा था। उड़ीसा के दक्षिण कलिंग देश मे कोरिंगापटम (कलिंगपट्टन) नाम का एक पुराना नगर अब भी समुद्र तट पर है। बाली और लंबक टापुओं के हिंदू अपने को कलिंग ही से आए हुए बताते हैं। जायसी के समय में यद्यपि हिंदुओं का भारतवर्ष के बाहर जाना बंद हो गया था पर समुद्र के उस पुराने घाट (कलिंग) की स्मृति बनी हुई थी—

आगे पाव उड़ैसा, बाएँ दिए सो बाट। दहिनावरत देइकै, उतरु समुद के घाट।

यहीं तक नहीं; पूर्वीय समुद्र की कुछ विशेष बातें भी उस समय तक लोक-स्मृति में बनी हुई थीं। प्रशांत महासागर के दक्षिण भाग में मूँगों से बने हुए टापू बहुत से हैं। कहीं कहीं मूँगों की तह पर तह जमते जमते

टीले से बन जाते है। कपूर निकालने वाले पेड़ भी प्रशांत महासागर के टापुओं में बहुत है। इन दोनों बातो पर प्राचीन समुद्र-यात्रियो का ध्यान विशेष रूप से गया होगा। इनका स्मरण जनता के बीच बना हुआ था, इसका पता जायसी इस प्रकार देते है—

राजा जाइ तहाँ बहि लागा। जहाँ न कोई सँदेसी कागा॥
तहाँ एक परबत अह डूँगा। जहवाँ सब कपूर और मूँगा॥

जायसी ने चित्तौर से सिहल जाने का जो मार्ग वर्णन किया है वह यद्यपि बहुत संक्षिप्त है पर उससे कवि की दक्षिण अर्थात् मध्य-प्रदेश के स्थानो की जानकारी प्रकट होती है। चित्तौर से रत्नसेन पूर्व की ओर चले है। कुछ दूर चलने पर जायसी कहते हैं।

"दहिने बिदर, चँदेरी बाएँ॥

'चंदेरी' आजकल ग्वालियर राज्य के अंतर्गत है और ललितपुर से पश्चिम पड़ता है। बिदर गोलकुंडे के पास वाला सुदूर दक्षिण का बिदर नहीं है बल्कि बरार (प्राचीन विदर्भ) के अंतर्गत एक स्थान था*। जायसी का बिदर से अभिप्राय विदर्भ या बरार से है। रत्नसेन चित्तौर से कुछ दक्षिण लिए पूर्व की ओर चला और रतलाम के पास आ निकला जहाँ से चंदेरी बाई ओर या उत्तर और बरार दक्षिण पड़ेगा। यहाँ से शुक राजा से विजयगढ़ (जो सूबा मालवा के भीतर था और जिसका प्रधान नगर विजयगढ़ था) होते हुए और अँधियार-खटोला (होशंगाबाद और सागर के बीच के प्रदेश) को बाईं या उत्तर ओर छोड़ते हुए गोड़ो के देश गोंड़वाने में पहुँचने को कहता है—

सुनु मत, काज चहसि जौ साजा। बीजानगर बिजयगढ़ राजा॥
पहुँचहु जहाँ गोड़ औ कोला। तजि बाएँ अँधियार खटोला॥

बिजयगढ़ इंदौर के दक्षिण नर्मदा के दोनों ओर फैला हुआ राज्य था। तात्पर्य यह कि रत्नसेन रतलाम के पास से चलकर इंदौर के दक्षिण नर्मदा के किनारे होता हुआ हँड़िया या हरदा के पास निकला जहाँ से पूरब जानेवाले को होशंगाबाद (अँधियार खटोला) उत्तर या बाईं ओर पड़ेगा। हँड़िया बरार की उत्तरी सीमा पर था और बरार के दक्षिण

---

* आईने अकबरी में सूबा बरार का उत्तर-दक्षिण विस्तार हँड़िया (मध्य-प्रदेश की पश्चिमी सीमा पर नर्मदा के किनारे एक छोटा कसबा) से बिदर तक १८० कोस लिखा है और बरार के दक्षिण तिलंगाना बताया गया है।

तिलंगाना देश माना जाता था जो आजकल के वरार का ही दक्षिण भाग है। हँड़िया के उत्तर जवलपुर पड़ेगा जिसके पास गढ़कटंक था। अतः इस स्थान पर (हँड़िया के पास) शुक का यह कहना वहुत ही ठीक है कि—

दक्खिन दहिने रहहिं तिलगा। उत्तर वाएँ गढ-काटंगा॥

हँड़िया के पास से फिर आगे वढ़ने के लिये तोता इस प्रकार कहता है—

माँझ रतनपुर सिंहदुवारा। झारखंड देइ बाँव पहारा॥

यहाँ पर कवि ने केवल छंद के बंधन के कारण 'सिह-दुवारा' (छिदवाड़ा) के पहले रतनपुर रख दिया है। हँड़िया के पास पूरव चलनेवाले को पहले छिंदवाड़ा पड़ेगा तव रतनपुर, जो विलासपुर जिले मे है। रतनपुर से फिर शुक झारखंड (सरगुजा का जंगल) उत्तर छोड़ते हुए आगे वढ़ने को कहता है। यदि वरावर आगे वढ़ा जायगा तो चलनेवाला उड़ीसा में पहुँचेगा, अतः कुछ दूर वढ़ने पर उड़ीसा जानेवाला मार्ग छोड़कर शुक रत्नसेन को दक्षिण की ओर घूम पड़ने को कहता है। दक्षिण घूमने पर कलिग देश में समुद्र का घाट मिलेगा—

आगे पाव उड़सा वाएँ दिए सो वाट।
दहिनावरत देइ कै उतरु समुद के घाट॥

ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जायसी ने चित्तौर से कलिग तक जाने का जो मार्ग लिखा है वह यों ही ऊटपटाँग नहीं है। उत्तरोत्तर पड़नेवाले प्रदेशो का क्रम ठीक है।

जायसी को वहुत दूर दूर के स्थानो के नाम मालूम थे। वादशाह की दूती जव योगिनी वनकर चित्तौर गई है तव उसने अपने तीर्थाटन के वर्णन मे वहुत से तीर्थों के नाम बताए है जिनमे से अधिकतर तो वहुत प्रसिद्ध हैं पर कुछ ऐसे अप्रसिद्ध स्थान भी आए है जिन्हें इधर के लोग कम जानते हैं, जैसे—नागरकोट और वालनाथ का टीला—

गउमुख हरिद्वार फिरि कीन्हिउँ। नगरकोट कटि रसना दीन्हिउँ।
ढूँढ़िउँ बालनाथ कर टीला। मथुरा मथिउँ न सो पिउ भीला।

"नागरकोट" काँगड़े में है जहाँ लोग ज्वालादेवी के दर्शन को जाते है। "बालनाथ का टीला" भी पंजाव मे है। सिंध और झेलम के वीच सिधसागर दोआव मे जो नमक के पहाड़ पड़ते है उसी के

अंतर्गत यह एक बहुत ऊँची पहाड़ी है जिसमें बालनाथ नामक एक योगी की गुफा है*। साधु यहाँ बहुत जाते है।

इतिहास का ज्ञान भी जायसी को जनसाधारण से बहुत अधिक था। इसका एक प्रमाण तो 'पदमावत' का प्रबंध ही है। जैसा कि आरंभ में कहा जा चुका है, पद्मिनी और हीरामन सूए की कहानी उत्तरीय भारत में—विशेषत: अवध मे—बहुत दिनों से प्रसिद्ध चली आ रही है। कहानी बिल्कुल ज्यों की त्यों यही है। पर कहानी कहनेवाले राजा का नाम, बादशाह का नाम आदि कुछ भी नही जानते। वे यों ही कहते है कि "एक राजा था" "एक बादशाह था"। समय के फेर से जैसे कहानी इतिहास हो जाती है वैसे ही इतिहास कहानी। अत: जायसी ने जो चित्तौर, रत्नसेन, अलाउद्दीन, गोराबादल आदि नाम देकर इस कहानी का वर्णन किया है उससे यह स्पष्ट है कि वे जानते थे कि घटना किस स्थान की और किस बादशाह के समय की है, पद्मिनी किसकी रानी थी और किस राजपूत ने युद्ध मे सबसे अधिक वीरता दिखाई थी। इसके अतिरिक्त अलाउद्दीन की और चढ़ाइयो का भी उन्हें पूरा पता था, जैसे देवगिरि और रणथंभौर गढ़ पर की चढ़ाई का। देवगिरि पर चढ़ाई अलाउद्दीन ने अपने चाचा सुल्तान जलालुद्दीन के समय में ही सन् १२९४ ई० मे की थी। रणथंभौर पर चढ़ाई उसने बादशाह होने के चार वर्ष पीछे अर्थात् सन् १३०० मे की थी, पर उसे ले न सका था। दूसरे वर्ष सन् १३०१ मे रणथंभौर गढ़ टूटा है और प्रसिद्ध वीर हम्मीर मारे गए है। ये दोनों घटनाएँ चित्तौर टूटने (सन् १३०३ ई०) के पहले की हैं, अत: इनका उल्लेख ग्रंथ में इतिहास की दृष्टि से अत्यंत उचित हुआ है।

अलाउद्दीन के समय की और घटनाओ का भी जायसी को पूरा पता था। मंगोलो के देश का नाम उन्होने 'हरेव' लिखा है। अलाउद्दीन के समय में मंगोलो के कई आक्रमण हुए थे जिनमें सबसे जबरदस्त हमला सन् १३०३ ई० में हुआ था। सन् १३०३ में ही चित्तौर पर अलाउद्दीन ने चढ़ाई की। अब देखिए मंगोलो की इस चढ़ाई का उल्लेख जायसी ने किस प्रकार किया है। अलाउद्दीन चित्तौर गढ़ को घेरे हुए है, इसी बीच में दिल्ली से चिट्ठी आती है—

---

* बालनाथ नाथ संप्रदाय या गोरखपंथ के एक योगी हो गए हैं।

एहि बिधि ढील दीन्ह, तब ताईं ! दिल्ली तें अरदासैं आईं ।
पछिउँ हरेव दीन्हि जो पीठी । सो अब चढ़ा सौंह कै दीठी ॥
जिन्ह भुइँ माथ गगन तेहि लागा। थाने उठे आव सब भागा ॥
उहाँ साह चितउर गढ़ छावा । इहाँ देश अब होइ परावा ॥

ज्योतिष का परिज्ञान जायसी का अच्छा प्रतीत होता है। रत्नसेन के सिंहलद्वीप से प्रस्थान करने के पहले उन्होंने जो यात्रा-विचार लिखा है वह बहुत विस्तृत भी है और ग्रंथो के अनुकूल भी। इस प्रसंग की उनकी बहुत सी चौपाइयाँ तो सर्वसाधारण की जबान पर है, जैसे—

सोम सनीचर पुरुब न चालू । मंगर बुद्ध उतर दिसि कालू ॥

पिंड और ब्रह्मांड की एकता का प्रतिपादन करते हुए अखरावट में जायसी ने शरीर में ही जो ग्रहों की नीचे ऊपर स्थिति लिखी है वह सूर्य्यसिद्धांत आदि ज्योतिष ग्रंथों के ठीक अनुकूल है। अरबी, फारसी नामों के साथ भारतीय नामों के तारतम्य का भी ज्ञान कवि को पूरा पूरा था, जो एक कठिन बात है। "सुहैल" तारे का "सोहिल" के नाम से पदमावत में उन्होंने कई जगह उल्लेख किया है। यह "सुहैल" अरबी शब्द है। फारसी और उर्दू की शायरी में इस तारे का नाम बराबर आता है पर शोभा-वर्णन की दृष्टि से प्रायः हिलाल के साथ। यह तारा भारतीयों का 'अगस्त्य' तारा है इस बात का पता जायसी को था। अतः उन्होंने इसका वर्णन उस रूप में भी किया है जिस रूप में भारतीय कवि किया करते है। भारतीय कवि इसका वर्णन वर्षा का अंत और शरत् का आगमन सूचित करने के लिये किया करते हैं, जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा है—

उदित अगस्त पंथ जल सोषा । जिमि लोभहिं सोखै संतोषा ॥

जायसी ने ठीक इसी प्रकार का वर्णन "सुहैल" का किया है—

बिछरंता जब भेंटै सो जानै जेहि नेह ।
सुक्ख-सुहेला उग्गवै दुःख झरै जिमि मेह ॥

ऐसा ही एक स्थल पर और है। राजा रत्नसेन को दिल्ली से छुड़ाकर जब गोरा बादल लेकर चले है तब बादशाही सेना ने उनका पीछा किया है। उस समय गोरा के कहने से बादल तो रत्नसेन को लेकर चित्तौर की ओर जाता है और वृद्ध गोरा मुसलमान सेना की ओर लौटकर इस प्रकार ललकारता है—

सोहिल जैस गगन उपराहीं । मेघ-घटा मोहिं देखि बिलाही ॥

इसी प्रकार 'अगस्त' शब्द का उल्लेख भी वे गोरा-बादल की प्रतिज्ञा मे करते है—

उए अगस्त हस्ति जब गाजा। नीर घटे घर आवहिं राजा॥

यह तो हुआ शास्त्रीय ज्ञान। व्यवहार-ज्ञान भी जायसी का बहुत बढ़ा चढ़ा था। घोड़ो और भोजनो के अनेक भेद तो उन्होंने कहे ही हैं पुराने समय के वस्त्रों के नाम भी 'पद्मावती-रत्नसेन-भेट' के प्रसंग में बहुत से गिनाए है।

जायसी मुसलमान थे, इससे कुरान के वचनो का पूरा अभ्यास उन्हें होना ही चाहिए। पदमावत के आरंभ में ही चौपाई के ये दो चरण—

कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू॥

कुरान की एक आयत के अनुसार है जिसका मतलब है—'अगर न पैदा करता मैं तुझको, न पैदा करता मै स्वर्ग को।' इसके अतिरिक्त ये पंक्तियाँ भी कुरान के भाव को लिए हुए है—

( १ ) सबै नास्ति वह अहथिर ऐस साज जेहि केर।

( २ ) ना ओहि पूत, न पिता न माता।

( ३ ) 'अति अपार करता कर करना' से लेकर कई चौपाइयो तक।

( ४ ) 'दूसर ठावँ दई ओहि लिखे।'

अभिप्राय यह है कि खुदा ने अपने नाम के बाद पैगंबर का ही नाम रखा, जैसा कि मुसलमानो के कलमा मे है।

इसलाम धर्म की और अनेक बातो का समावेश पदमावत और अखरावट में हम पाते है। सिद्धांतो के प्रसंग मे हम कह आए है कि शामी पैगंबरी मतों के अनुसार कयामत या प्रलय के दिन ही सब मनुष्यों के कर्मो का विचार होगा। मुसलमानो का विश्वास है कि भले और बुरे कर्मों के लेख की बही खुदा के सामने एक तराजू मे तौली जायगी और वह तराजू जिब्रईल फरिश्ते के हाथ मे होगा। सबूत के लिये सब अंग और इंद्रियाँ अपने द्वारा किए हुए कर्मो की साख देगी। उस समय मुहम्मद साहब उन लोगों की ओर से प्रार्थना करेगे जो उन पर ईमान लाए होगे। इन बातो का उल्लेख पदमावत मे स्पष्ट शब्दो मे है—

गुन अवगुन विधि पूछब, होइहि लेख औ जोख।
वै बिनउब आगे होइ, करब जगत कर मोख॥

हाथ, पाँव, सरवन और आँखी। ए सब उहाँ भरहिं मिलि साखी॥

स्वर्ग के रास्ते मे एक पुल पड़ता है जिसे 'पुले सरात' कहते हैं। पुल के नीचे घोर अंधकारपूर्ण नरक है। पुण्यात्माओं के लिये यह पुल खूब लंबी-चौड़ी सड़क हो जाता है पर पापियों के लिये तलवार की धार की तरह पतला हो जाता है। पुल का उल्लेख पदमावत में तो बिना नाम दिए और अखरावट मे नाम देकर स्पष्ट रूप में हुआ है—

खाँड़ै चाहि पैनि अहुताई। बार चाहि ताकर पतराई॥

पुराने पैगंबर मूसा की किताब मे आदम के स्वर्ग से निकाले जाने का कारण हौवा के कहने से एक वृक्ष-विशेष का फल खाना लिखा है। मुसलमानों में यह वृक्ष गेहूँ प्रसिद्ध है। अखरावट मे तो इस कहानी का उल्लेख है ही, पदमावत मे भी पद्मावती की सखियाँ उसकी विदाई के समय कहती है—

आदि अंत जो पिता हमारा। ओहु न यह दिन दिए बिचारा॥
छोह न कीन्ह निछोही ओहू। का हम्ह दोष लाग एक गोहूँ॥

एक पढ़ा-लिखा मुसलमान फारसी से अपरिचित हो यह हो ही नहीं सकता। फारसी शायरो की कई उक्तियाँ पदमावत में ज्यो की त्यों आई है। अलाउद्दीन की चढ़ाई का वर्णन करते हुए घोड़ो की टापों से उठी धूल के आकाश मे छा जाने पर जायसी कहते है—

सत खँड धरती भइ पट खडा। ऊपर अस्ट भए बरम्हंडा॥

यह फिरदौसी के शाहनामे के इस शेर का ज्यो का त्यो अनुवाद है—

जे सुम्मे सितौरॉ दरा पह्ने दश्त। जमी शश शुदो, आस्मॉ गश्त हश्त॥

अर्थात्—उस लंबे चौड़े मैदान मे घोड़ो की टाप से जमीन सात खंड के स्थान पर छः ही खंड की रह गई और आसमान सात खंड (तबक) के स्थान पर आठ खंड का हो गया। मुसलमानों की कल्पना के अनुसार भी सात लोक नीचे है (तल, वितल, रसातल के समान) और सात लोक ऊपर।

राजा रत्नसेन का सँदेसा सूआ इस प्रकार कहता है—

दहुँ जिउ रहै कि निसरै, काह रजायसु होइ?

यह हाफिज के इस शेर का भाव है—

अज्म दीदारे तू दारद जान बर लब आमदः।
बाज गरदद या बर आयद चीस्त फरमाने शुमा॥

कवियों के भावों के अतिरिक्त फारसी की चलती कहावतों की भी छाया कहीं कहीं दिखाई पड़ती है; जैसे—

(क) नियरहिं दूर, फूल जस काँटा। दूरहिं नियर सो बस गुर चाँटा॥

फारसी—दूराँ वा-बसर नजदीक वा नजदीकाँ वेबसर दूर। (अर्थात् दृष्टिवाले को दूर भी नजदीक और विना दृष्टिवाले को नजदीक भी दूर है।)

(ख) परिमल प्रेम न आछै छपा।

फारसी—इश्क व मुश्क रा नतवाँ नहुफ्तन।

(प्रीति और कस्तूरी छिपाए नही छिपती।)

हिंदुओं की ऐसी प्राचीन रीतियों का उल्लेख भी पदमावत में मिलता है जो जायसी के समय तक न रह गई होगी। जायसी ने उनका उल्लेख साहित्य की परंपरा के अनुसार किया है। पत्रावलि या पत्रभंग-रचना प्राचीन समय मे ही शृंगार करने मे होती थी। वह किस प्रकार होती थी इसका ठीक पता आजकल नहीं है। कुछ लोग चंदन या रंग से गंडस्थल पर चित्र बनाने को पत्रभंग कहते है। प्राचीन रीति-नीति और वेशविन्यास जानने की अपनी वड़ी पुरानी उत्कंठा के कारण उनके संबंध मे जो कुछ विचार हम अपने मन मे जमा सके है, उसके अनुसार पत्रभंग सोने या चाँदी के महीन वरक या पत्रो के कटे हुए टुकड़े होते थे जिन्हें कानो के पास से लेकर कपोलो तक एक पंक्ति मे चिपकाते थे। आजकल रामलीला आदि मे उसी रीति पर चमकी या सितारे चिपकाते है। स्त्रियाँ अब तक माथे मे इस प्रकार के बुंदे चिपकाती है। पत्रभंग शब्द से भी इस बात का संकेत मिलता है। खैर जो हो, जायसी ने इस पत्रावलि-रचना का उल्लेख पद्मावती के शृंगार के प्रसंग में (विवाह के उपरांत प्रथम समागम के अवसर पर) किया है—

रचि पत्रावलि, माँग सेंदूरू। भरे मोति औ मानिक-चूरू॥

प्राचीन काल मे प्रधान राजमहिषी या पटरानी को "पट्टमहादेवी" कहते थे। उस समय की बात है जब क्षत्रिय लोग एक दूसरे को "सलाम" नहीं करते थे और "रानी" शब्द के आगे "साहबा" नहीं लगता था—जब हमारा अपना निज का शिष्टाचार था, फारसी सहजीव की नकल मात्र नही। राजा रत्नसेन को चित्तौर से गए बहुत दिन हो जाने पर जब नागमती विरह से व्याकुल होती है तब दासियाँ समझाती है—

पाट-महादेइ ! हिये न हारू । समुझि जीउ, चित चेत सँभारू ॥

यह "पाट-महादेइ" शब्द "पट्टमहादेवी" का अपभ्रंश है ।

भारतीय "वीरपूजा" का प्रसंग बड़ी मार्मिकता से बड़े सुंदर अवसर पर जायसी लाए है । जिस समय बादल के साथ राजा रत्नसेन छूटकर आता है उस समय पद्मावती बादल की आरती उतारती है—

परसि पायँ राजा के रानी । पुनि आरति बादल कहँ आनी ॥
पूजे बादल के भुजदंडा । तुरी के पाँव दाब करखंडा ॥

प्राचीन काल में वर्षाऋतु में सब प्रकार की यात्रा बंद रहती थी । शरद् ऋतु आते ही वणिको की विदेश-यात्रा और राजाओं की युद्धयात्रा होती थी । शरत् के वर्णन मे पुराने कवि राजाओं की युद्धयात्रा का भी उल्लेख करते है । इसी पुरानी रीति के अनुकूल गोरा-बादल प्रतिज्ञा करते समय पद्मिनी से कहते हैं—

उए अगस्त हस्ति जब गाजा । नीर घटै घर आइहि राजा ॥
बरषा गए, अगस्त के दीठी । परै पलानि तुरंगन्ह पीठी ॥

राजपूतों की भिन्न भिन्न जातियों के बहुत से नाम तो जायसी को मालूम थे पर इस बात का ठीक ठीक पता उन्हें न था कि किस जाति का राज्य कहाँ था । यदि इसका पता होता तो वे रत्नसेन को चौहान न लिखते । रत्नसेन को जब सूली देने के लिये ले जाते थे तब भाँट ने राजा गंधर्वसेन से उनका परिचय इस प्रकार दिया था—

जबूदीप चित्तउर देसा । चित्रसेन बड़ तहाँ नरेसा ।
रतनसेन यह ताकर बेटा । कुल चौहान जाइ नहिं मेटा ॥

यह इतिहास-प्रसिद्ध बात है कि चित्तौर मे बाप्पा रावल के समय से अब तक सिसोदियो का राज्य चला आ रहा है ।

---

## जायसी की भाषा

जायसी की भाषा ठेठ अवधी है और अवधी पूरबी हिंदी के अंतर्गत है इससे उसमें ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनो से कई बातों में विभिन्नता है । जायसी को अच्छी तरह समझने के लिये अवधी की मुख्य मुख्य विशेषताओं को जान लेना आवश्यक है । अतः संक्षेप में कुछ बातों का उल्लेख यहाँ किया जाता है ।

शुद्ध अवधी की बोलचाल मे क्रिया का रूप सदा कर्त्ता के पुरुष, लिंग और वचन के अनुसार होता है; कर्म के अनुसार सकर्मक भूत-कालिक क्रिया मे भी नही होता। कारण यह है कि पूरबी बोलियाँ भूत-काल मे कृदंत रूप नहीं लेती है, तिडंत रूप ही रखती है। मूल चाहे इन रूपो का कृदंत ही हो, जैसा कि कहीं कहीं लिंगभेद से प्रकट होता है, पर व्यवहार तिडंत ही सा होता है। नीचे के उदाहरणो से यह बात स्पष्ट हो जायगी—

(१) उत्तम पुरुष

[क] देखेउँ तोरे मँदिर घमोई। (पु० एकवचन) मै

[ख] ढूँढ़िउँ बालनाथ कर टीला। (स्त्री० एकवचन) मै

[ग] औ हम देखा, सखी सरेखा। (पुं० स्त्री० बहुवचन) हम

(२) मध्यम पुरुष

[क] चाहेसि परा नरक के कूँआँ
धातु कमाय सिखे तैं जोगी } पु० स्त्री० एकवचन } तू या तैं

[ख] रू चीन्ह कै जोग बिसेखेहु। (पु० बहुवचन) तुम

[ग] पूजि मनाइउ बहुतै भाँती। (स्त्री० बहुवचन) तुम

(३) प्रथम पुरुष

[क] रोइ हँकारेसि माझी सूआ। (पुं० स्त्री० एकवचन) वह

[ग] कहेन्हि "न रोव, बहुत त रोवा"। (पु० बहुवचन) तुम

मध्यम पुरुष के रूप ही आज्ञा में भी वहाँ आते हैं जहाँ खड़ी बोली में साधारण क्रिया का प्रयोग होता है; जैसे—

आयसु लिहे रहिउ निति हाथा। सेवा करिउ लाइ भुइँ माथा॥

प्रथम पुरुष की भूतकालिक क्रिया के स्त्रीलिंग रूपों में 'एसि' और 'एनि' की जगह 'इसि' और 'इनि' अंत मे होते है, जैसे—पुं० 'लखेनि', स्त्री० 'लखिनि'। बोलचाल मे अकसर अंत्य 'नि' निकालकर बचे हुए खंड के अंतिम स्वर को सानुनासिक कर देते है—जैसे, पुं०—'गएनि', 'लखेनि' को 'गएँ, लखें' और स्त्री० 'गइनि, लखिनि' को 'गईं, लखीं' भी बोलते है। जायसी ने बोलचाल के इस रूप का भी प्रयोग किया है—

लछिमी लखन बतीसौ लखीं।

(लखीं = लखिन्हि या लखिनि)

ऊपर जो सकर्मक क्रिया के रूपों के उदाहरण दिए गए है वे ठेठ या पूरबी अवधी के है और उनमें पुरुष-भेद बराबर बना हुआ है। पश्चिमी

हिंदी की सकर्मक भूतकालिक क्रिया में पुरुष-भेद नहीं रहता—जैसे मैंने किया, तुमने किया, उसने किया। ठेठ अवधी के ऊपर दिए रूपों के अतिरिक्त जायसी और तुलसी दोनों एक सामान्य आकारांत रूप भी रखते हैं जिसका प्रयोग वे तीनों पुरुषों, दोनों लिंगों और दोनों वचनों में समान रूप से करते हैं, जैसे—

उत्तम पु०
[ १ ] का मैं बोआ जनम ओहि भूँजी ?
[ २ ] हम तो तोहि देखावा पीऊ।

मध्यम पु०
[ ३ ] तुइ सिरजा यह समुद अपारा।
[ ४ ] अब तुम आइ अँतरपट साजा।

प्रथम पु०
[ ५ ] भूलि चकोर दिस्टि तहँ लावा।
[ ६ ] तिन्ह पावा उत्तिम कैलासू।

वर्त्तमानकालिक क्रिया के रूप ब्रजभाषा के समान ही होते हैं। केवल मध्यम पुरुष एकवचन के रूप के अंत में संस्कृत के समान 'सि' होता है जैसे करसि, जासि—

तू जुग सारि चहसि पुनि छूवा।

विधि और आज्ञा में भी यही रूप रहता है, पर कभी कभी संस्कृत के समान 'हि' से अंत होनेवाला रूप भी आता है, जैसे—

"तू सपूत माता कर अस परदेस न लेहि।
अब ताईं मुइ होइहि, मुए जाइ गति देहि" ॥

भविष्यत् के रूप ठेठ अवधी के कुछ निज के होते हैं—

उत्तम पुरुष

( १ ) कौन उतर देवौं तेहि पूछे। ( एकवचन ) मैं
( २ ) कौन उतर पाउब पैसारू। ( बहुवचन ) हम

प्रथम पुरुष

( १ ) होइहि नाप औ जोख। ( एकवचन )
( २ ) देव-बार सब जैहै बारी। ( बहुवचन )

'होइहि' पुराना रूप है। 'ह' के घिस जाने से आजकल 'होई' ( =होगा ) बोलते हैं।

इनमे उत्तम पुरुप के बहुवचन का जो रूप ( पाउब ) है वह अवधी साहित्य में सब पुरुषो मे मिलता है ( यद्यपि बोलचाल मे उत्तम पुरुष बहुवचन 'हम' के ही साथ आता है ) । जायसी और तुलसी दोनों ने सब पुरुपो में और दोनो वचनों मे इस रूप का व्यवहार किया है, जैसे—

घर कैसे पैठब मै छूछे ( उत्तम पुरुष, एकवचन )

गुन अवगुन विधि पूछब ( प्रथम पुरुष, एकवचन )

पूरबी अवधी मे साधारण क्रिया ( Infinitive ) का भी यही 'ब' वर्णांत रूप है ।

ठेठ अवधी की एक बड़ी भारी विशेपता को सदा ध्यान मे रखना चाहिए । खड़ी बोली और ब्रजभापा दोनो मे कारक-चिह्न सदा क्रिया के साधारण रूप मे लगते है, जैसे—'करने का', 'करन को' या 'करिवे को' । पर ठेठ या पूरबी अवधी मे कारक-चिह्न प्रथम पुरुष, एकवचन की वर्त्तमानकालिक क्रिया के से रूप मे लगता है, जैसे—'आवै कहँ', 'खाय माँ', 'बैठै कर'—

( क ) दीन्हेसि स्रवन सुनै कहँ बैना ।

( ख ) सती होइ कहँ सीस उघारा ।

कहीं कहीं कारक-चिह्न का लोप भी मिलता है, जैसे—

( क ) जो नित चलै सँवारै पाँखा । आजु जो रहा कालि को राखा ?

( ख ) सबै सहेली देखै धाईं ।

[ चलै = चलने के लिये; देखै = देखने के लिये ]

इसी प्रकार संयुक्त क्रिया मे भी जहाँ पहले साधारण क्रिया का रूप रहता है वहाँ भी अवधी मे यही वर्त्तमान का सा रूप ही रहता है—

( क ) तपै लागि अब जेठ-असाढी ।

( ख ) मरै चहहि, पै मरै न पावहिं ।

पूरबी अवधी मे मागधी की प्रवृत्ति के अनुसार ब्रजभापा के ओकारांत सर्वनामो के स्थान पर एकारांत सर्वनाम होते है, जैसे—'को' ( = कौन ) के स्थान पर 'के', 'जो' के स्थान पर 'जे' और 'कोऊ' के स्थान पर 'केऊ' या 'कोहू' । नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

[ क ] केइ उपकार मरन कर कीन्हा । [ = किसने ]

[ ख ] जेइ जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू । [ = जिसने ]

[ ग ] तजा राज रावन, का केहू ? [ = कोई ]

[ घ ] जियत न रहा जगत महँ केऊ । [ = कोई ]

इन सर्वनामों का रूप विभक्ति और कारक-चिन्ह लगाने के पहले एकारांत ही रहता है ( जैसे, केहि कर, जेहि पर ); व्रजभाषा या पच्छिमी अवधी के समान आकारांत ( जैसे, जाको और जाकर, तापर और तापै ) नहीं होता।

जायसी और तुलसी दोनों की रचनाओं में एक विलक्षण नियम मिलता है। वे सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्त्ता का तो सविभक्ति पूरबी रूप 'केइ' 'जेइ' 'तेइ' रखते है पर अकर्मक क्रिया के कर्त्ता का "को, जो, सो", जैसे—

[ क ] जो एहि खीर समुद महँ परे।
[ ख ] जो ओहि विषै मारि कै खाई।

अवधी के कारक-चिह्न इस प्रकार हैं—

कर्त्ता—×
कर्म—कहँ ( आधुनिक 'काँ' ), के
करण—सन्, से ( पच्छिमी अवधी 'सौं' )
संप्रदान—कहँ ( आधुनिक 'कॉ' ), के
अपादान—से ( पच्छिमी अवधी 'तइँ', 'तै' )
संबंध—कर, कै
अधिकरण—पुराना रूप 'महँ', आधुनिक 'मॉ', 'पर'

हिंदी के संबंध-कारक-चिह्न मे लिंग-भेद होता है। खड़ी बोली में पुं० संबंध-कारक-चिह्न है "का" और स्त्री० "की"। व्रजभाषा में भी यह भेद है। अवधी की बोलचाल मे तो यह भेद लक्षित नहीं होता पर साहित्य की भाषा मे भेद दिखाई पड़ता है। जायसी और तुलसी दोनों पुं० संबंध-कारक-चिह्न "कर" रखते है और स्त्री० संबंध-कारक-चिह्न "कै", जैसे—

( १ ) राम ते अधिक राम कर दासा।
जेहि पर कृपा राम कै होई॥—तुलसी

( २ ) सुनि तेहि सन राजा कर नाऊँ।
पलुही नागमती कै बारी॥—जायसी

इससे यह स्पष्ट ही है कि अवधी में स्त्री० संबंध-कारक-चिह्न "की" कभी नहीं होता, "कै" ही होता है।

बोलचाल में उच्चारण संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। इसी प्रवृत्ति के अनुसार 'कर' के स्थान पर केवल 'क' बोल देते हैं। तुलसी और जायसी दोनों में यह संक्षिप्त रूप मिलता है, जैसे—

( क ) धनपति उहै जेहि क ससारू। —जायसी

( ख ) पितु-आयसु सब धरम क टीका। —तुलसी

ठेठ अवधी का एक प्रकार का प्रयोग भाषा के इतिहास की दृष्टि से ध्यान देने योग्य है। वर्त्तमान रूप में आने के पहले हमारी भाषा के कारकों की कुछ दिनों तक बड़ी अव्यवस्थित दशा रही। कुछ तो संबंध-कारक की 'हि' विभक्ति ( मागधी 'ह', अप० 'हो' ) से काम चलता रहा जिसका प्रयोग सब कारकों में होता था और कुछ स्वतंत्र शब्दों के द्वारा। पुराने गद्य के वे नमूने अभी टीकाओं आदि में मिल सकते हैं जिसमें 'पृथ्वी पर' के स्थान में "पृथ्वी विषय" लिखा मिलेगा, जैसे— "नारदजी पृथ्वी विषय आए।" संबंध-कारक के चिह्न के रूप में इस 'कृत' शब्द का प्रयोग गोस्वामी तुलसीदासजी ने कई जगह किया है, जिससे वर्त्तमान 'कर' और 'का' निकले हैं। यह तो हुई पुरानी बात। पूरबी अवधी में अब तक अपादान कारक के ( और करण के भी ) चिह्न के रूप में "भै" या "भए" शब्द का प्रयोग होता है, जैसे— "मीत भै" (=मित्र से), "तर भै" (=नीचे से), "ऊपर भै" (=ऊपर से)। जायसी और तुलसी ने ऐसा प्रयोग किया है—

( १ ) मीत भै माँगा बेगि बिमानू। ( मित्र से तुरत बिमान माँगा )

( २ ) ऊपर भए सो पातुर नाचहिं ( =ऊपर से )

तर भए तुरुक कमानहिं खाँचहि ( =नीचे से )

( ३ ) भरत आइ आगे भए लीन्हे ( आगे से )—तुलसी

इसी तरह जायसी ने "होइ" शब्द का प्रयोग भी पंचमी-विभक्ति के स्थान पर किया है, जैसे—

बैठि तहाँ होइ लंका ताका ( =वहाँ से )

इसमें तो कुछ कहना ही नहीं है कि यह 'भए' या 'होइ', 'भू' धातु से निकले हुए "होना" क्रिया के रूप हैं। प्राकृत की "हितो" विभक्ति भी वास्तव में "भू" धातु से निकली है और "भूत्वा" शब्द का अपभ्रंश है। जायसी ने "हुँत" रूप में ही इस विभक्ति का बराबर प्रयोग किया है, जैसे—

( क ) तेहि बंदि हुँत छुटै जो पावा । ( =बदि से )
( ख ) जल हुँत निकसि मुवै नहिं काछू । ( जल से )
( ग ) जब हुँत कहिगा पंखि सँदेसी । ( =जब से )
( घ ) तब हुँत तुम बिनु रहै न जीऊ । ( =तब से )

'कारण' और 'द्वारा' के अर्थ में भी 'हुँत' का प्रयोग होता है, जैसे—

( क ) तुम हुँत मँडप गइउँ, परदेसी । ( =तुम्हारे लिये, तुम्हारे कारण )
( ख ) उन्ह हुँत देखै पाएउँ दरस गोसाईं केर ( =उनके द्वारा )

जायसी ने ठेठ पूरबी अवधी के शब्दों का जितना अधिक व्यवहार किया है उतना अधिक तुलसीदासजी ने नहीं । नीचे कुछ शब्दों के उदाहरण दिए जाते हैं—

( १ ) राँध जो मंत्री बोले सोई ।
तेहि डर राँध न बैठौं, मकु साँवरि होइ जाउँ ।
( राँध=निकट, पास )

इस शब्द का व्यवहार अब केवल यौगिक रूप में रह गया है, जैसे—राँध पड़ोसी । और ठेठ शब्द लीजिए, जो साहित्यज्ञों को ग्राम्य लगेंगे ।

( २ ) अहक मोरि पुरुषारथ देखेहु । ( अहक=लालसा )
( ३ ) नौजि होइ घर पुरुष बिहूना । (नौजि=ईश्वर न करे । अरबी—
नऊज =बिल्ला )
( ४ ) जहिया लंक दही श्री रामा । ( जहिया=जब )
( ५ ) जौ देखा तीवइ है साँसा । ( तीवइ=स्त्री )
( ६ ) जस यह समुद दीन्ह दुख मोकाँ । ( मोकाँ=मोकहँ=मुझको )
( ७ ) जाना नहिं कि होब अस महूँ । ( महूँ=मै भी )
( ८ ) हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै । ( अधिकौ=और भी अधिक )

ऊपर जो पूरबी अवधी के रूप दिखाए गए उनसे यह न समझना चाहिए कि जायसी ने सर्वत्र पूरबी अवधी ही के व्याकरण का अनुसरण किया है । कवि ने तुलसीदासजी के समान सकर्मक भूतकालिक क्रिया के लिंग-वचन अधिकतर पच्छिमी हिंदी के ढंग पर कर्म के अनुसार ही रखे हैं, जैसे—

बसिठन्ह आइ कही अस बाता ।

इसी प्रकार भूतकालिक क्रिया का पुरुष-भेद-शून्य पश्चिमी रूप भी प्रायः मिलता है, जैसे—

तुम तौ खेलि मँदिर महँ आइ।

इसके अतिरिक्त पश्चिमी साधारण क्रिया (Infinitive) के 'न' वर्णांत रूप का प्रयोग भी कहीं कहीं देखा जाता है, जैसे—

कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलि कै खेलब एक साथा॥

पूरबी हिंदी में जब तक कोई कारक-चिह्न नहीं लगता तब तक संज्ञाओं के बहुवचन का रूप वही रहता है जो एकवचन का। पर जायसी ने पछाहीं हिंदी के बहुवचन रूप कहीं कहीं रखे हैं, जैसे—

[ क ] नसैं भई सब तॉति।
[ ख ] जोबन लाग हिलोरैं लेई॥

जायसी 'तू' या 'तैं' के स्थान पर अकसर "तुइँ" का प्रयोग करते हैं। यह कनौजी और पच्छिमी अवधी का रूप है जो खीरी शाहजहाँपुर से लेकर कन्नौज तक बोला जाता है।

खड़ी बोली और ब्रजभाषा दोनों पछाहीं बोलियों की प्रवृत्ति दीर्घांत पदों की ओर है, पर अवधी की लघ्वंत प्रवृत्ति है। खड़ी बोली और ब्रजभाषा में जो विशेषण और संबंधकारक के सर्वनाम आकारांत और ओकारांत मिलते हैं वे अवधी में अकारांत पाए जाते हैं। नीचे ऐसे कुछ शब्द दिए जाते हैं—

| खड़ी बोली | ब्रजभाषा | अवधी |
|---|---|---|
| ऐसा | ऐसो | ऐस या अस |
| जैसा | जैसो | जैस या जस |
| तैसा | तैसो | तैस या तस |
| कैसा | कैसो | कैस या कस |
| छोटा | छोटो | छोट |
| बड़ा | बड़ो | बड़ |
| खोटा | खोटो | खोट |
| खरा | खरो | खर |
| भला | भलो | भल |
| × | नीको | नीक |
| थोड़ा | थोरो | थोर |
| गहिरा | गहिरो | गहिर |
| पतला | पतरो; पातरो | पातर |

| खड़ी बोली | ब्रजभाषा | अवधी |
|---|---|---|
| पिछला | पाछिलो | पाछिल |
| चकला | चकरो | चाकर |
| दूना | दूनो | दून |
| साँवला | साँवरो | साँवर |
| गोरा | गोरो | गोर |
| प्यारा | प्यारो | पियार |
| ऊँचा | ऊंचो | ऊँच |
| नीचा | नीचो | नीच |
| अपना | अपनो | आपन |
| मेरा | मेरो | मोर |
| तेरा | तेरो | तोर |
| हमारा | हमारो | हमार |
| तुम्हारा | तुम्हारो | तुम्हार |
| पीला | पीरो | पीयर |
| हरा | हरो | हरियर |

साधारण क्रिया (Infinitive) के रूप अवधी में लघ्वंत वकारांत होते ही हैं, जैसे—आउब, जाब, करब, खाब इत्यादि। पच्छिमी हिंदी के कुछ दीर्घांत शब्द भी अवधी में कहीं कहीं लघ्वंत होते हैं, जैसे—

बहल घोड़ हस्ती सिंहनी

खड़ी बोली के समान अवधी मे भी भूतकालिक कृदंत होते हैं। बहुत से अकर्मक कृदंत विकल्प से लघ्वंत भी होते है, जैसे ठाढ़, बैठ, आय, गय इत्यादि। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते है—

[ १ ] बैठ महाजन सिंघलदीपी। ( बैठ = बैठ है = बैठे हैं )

[ २ ] रहा न जोबन आव बुढ़ापा। ( आव = आया )

[ ३ ] कटक सरह अस छूट ( छूट = छूटा )

सकर्मक में करना, देना और लेना इन तीन क्रियाओं के भी विकल्प से क्रमशः 'कीन्ह', 'दीन्ह' और 'लीन्ह' रूप होते है। इसी प्रकार पद्य मे कभी कभी वर्त्तमान काल के रूप के स्थान पर संक्षेप के लिये धातु का रूप रख दिया जाता है, जैसे—

[ क ] हौ अधा जेहि सूझ न पीठी। ( सूझ = सूझती है )

[ ख ] बिनु गथ बिरिछ निपात जिमि ठाढ़ ठाढ़ पै सूख।

( सूख = सूखता है )

संभाव्य भविष्यत् का रूप साधारणतः तो वर्त्तमान ही के समान पुरुष-भेद लिए हुए होता है पर ठेठ पूरबी अवधी में प्रायः प्रथम पुरुष में भी मध्यम बहुवचन का रूप ही रहता है, जैसे—

[ क ] जोबन जाउ, जाउ सो भँवरा ।

[ जाउ = जाय, चाहे चला जाय ]

[ ख ] सब लिखनी कै लिखु संसारा ।

[लिखु = यदि लिखे ]

[ ग ] अजस होउ, जस सुजस नसाउ ।

[ होउ = चाहे हो । नसाउ = चाहे नसाय ]

तुलसी और जायसी के लिंग-निर्णय में ऊपर लिखी बातों का ध्यान रखना चाहिए । चौपाई मे चरण के अंत का पद यदि लघ्वंत हो तो भी दीर्घांत कर दिया जाता है, यह तो प्रसिद्ध ही है । अतः चरण के अंत में आए हुए किसी पद के लिंग का निर्णय करते समय यह विचार लेना चाहिए कि वह छंद की दृष्टि से लघ्वंत से दीर्घांत तो नहीं किया गया है । तुलसी और जायसी के कुछ उदाहरण लीजिए—

[ क ] मरम बचन जब सीता बोला—तुलसी ।

[ ख ] देखि चरित पदमावति हँसा—जायसी ।

ऊपर कह आए हैं कि कभी कभी वर्त्तमान मे संक्षेप के लिए धातु का रूप रख दिया जाता है । अतः "बोला" और "हँसा" वास्तव में "बोल" और "हँस" है जो छंद की दृष्टि से दीर्घांत कर दिए गए है । कहने की आवश्यकता नहीं कि इन संक्षिप्त रूपों का व्यवहार दोनों लिंगों मे समान रूप से हो सकता है । इसी प्रकार संभाव्य भविष्यत् का रूप भी कभी कभी दीर्घांत होकर चरण के अंत में आ जाता है, जैसे—

[ क ] को हौंछा पूरै, दुख खोवा !

[ खोवा = खोव या खोउ अर्थात् खोवे ]

[ ख ] दरपन साहि भीति तहँ लावा ।

देखहुँ, जबहि अरोखे आवा ॥

[ आवा = आव या आउ अर्थात् आवे ]

जायसी और तुलसी दोनों कवियो ने कहीं कहीं बहुत पुराने शब्दों और रूपों का व्यवहार किया है जिनसे परिचित हो जाना बहुत ही

आवश्यक है। दिनिअर, ससहर, अहुठ्ठ, भुवाल, पइठ्ठ, विसहर, सरह, पुहुमी (दिनकर, शशधर, अध्युष्ट, भूपाल, प्रविष्ट, विषधर, शलभ, पृथ्वी) आदि प्राकृत संज्ञाओं के अतिरिक्त और प्रकार के पुराने शब्द और रूप भी मिलते है। उनमें से मुख्य मुख्य का उल्लेख नीचे किया जाता है।

किसी समय संबंध की 'हि' विभक्ति से सब कारकों का काम लिया जाता था, पीछे वह कर्म और संप्रदान में नियत सी हो गई। इस 'हि' या 'ह' विभक्ति का सब कारकों में प्रयोग जायसी और तुलसी दोनों की रचनाओं मे देखा जाता है। जायसी के उदाहरण लीजिए—

[ १ ] जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू। [ कर्त्ता ]
[ २ ] चाँटहि करै हस्ति सरि जोगू। [ कर्म ]
[ ३ ] बज्रहि तिनकहि मारि उड़ाई। [ करण ]
[ ४ ] देस देस के बर मोहिं आवहि। [ सप्रदान ]
[ ५ ] राजा गरबहि बोलै नाहीं। [ अपादान ]
[ ६ ] सौजहि तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख
चतुर वेद हौं पडित, हीरामन मोहि नावँ } संबंध
[ ७ ] तेहि चढि हेर, कोइ नहिं साथा।
कौन पानि जेहि पवन न मिला ? } अधिकरण

कर्त्ताकारक मे 'हि' की विभक्ति गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो केवल सकर्मक भूतकालिक क्रिया के सर्वनाम कर्त्ता में ही लगाई है (जैसे, तेइ सब लोक लोकपति जीते) पर जायसी मे आकारांत संज्ञा कर्त्ता से भी यह चिन्ह प्रायः मिलता है, जैसे—

[ क ] राजै कहा 'सत्य कहु; सूआ'।
[ राजै = राजहि = राजा ने ]
[ ख ] राजै लीन्ह ऊबि कै साँसा।
[ ग ] सुऐ तहाँ दिन दस कल काटी।
[ सुऐ = सुअहि = सूए ने ]

उच्चारण मे 'हि' के 'ह' के घिस जाने से केवल स्वर रह गया जिससे 'राजहि' का 'राजइ' हुआ और 'राजइ' से 'राजै'। इसी प्रकार 'केहि' 'जेहि', 'तेहि' भी 'केइ', 'जेइ', 'तेइ' बोले जाने लगे इसी से हमने पाठ में ये पिछले रूप ही रखे है। जायसी के समय इस 'ह' का लोप हो चला था इसका प्रमाण दो-चार जगह हकार-लुप्त कारक-चिन्हों का प्रयोग है, जैसे—

जस यह समुद दीन्ह दुख मोकाँ।

यह 'कॉ' आजकल की अवधी बोलचाल में कर्म और संप्रदान का चिह्न है और 'कहँ' का बिगड़ा हुआ ( हकार-लुप्त ) रूप है। 'कहँ' पुराना रूप है। बोलचाल की अवधी में 'कॉ' और 'के' दो रूप चलते हैं। यह 'के' भी अपभ्रंश की पुरानी कर्म-विभक्ति 'केहि' का घिसा हुआ रूप है।

'हि' और 'ह' दोनों एक ही हैं। 'ह' का व्यवहार पृथ्वीराज-रासो में बराबर मिलता है। 'तुम्हारा' मे यह 'ह' अब तक लिपटा चला आ रहा है। 'ह' के साथ संयुक्त सर्वनामों का व्यवहार जायसी ने बहुत किया है, जैसे—हम्ह=हमको, तुम्ह = तुमको। इसी प्रकार और कारकों मे भी यह 'ह' सर्वनाम मे संयुक्त मिलता है। कुछ उदाहरण देखिए—

[ क ] गुरु भएउँ आप, कीन्ह तुम्ह चेला। [ = तुमको ]
[ ख ] आजु आगि हम्ह जूड़। [ = हमको, हमारे लिये ]
[ ग ] पदुम गंध तिन्ह अंग बसाहीं। [ = उनके ]
[ घ ] जिन्ह एहि हाट न लीन्ह बेसाहा। [ = जिन्होने ]
[ ङ ] मैं तुम्ह राज बहुत सुख देखा। [ = तुम्हारे ]
[ च ] एहि बन बसत गई हम्ह आऊ। [ = हमारी ]
[ छ ] परसन आइ भए तुम्ह राती। [ तुम्हारे ऊपर ]

इस पुरानी विभक्ति के अतिरिक्त जायसी और तुलसी ने कुछ पुराने शब्दो का भी व्यवहार किया है। इनमे से कई एक ऐसे है जो अब प्रसिद्ध नहीं है। उदाहरण के लिये "चाहि" और "बाज" इन दो शब्दों को लीजिए। चाहि का अर्थ है अपेक्षाकृत अधिक, बढ़कर—

[ क ] मेघहु चाहि अधिक वै कारे।
[ ख ] एक सो एक चाहि रुपमनी।
[ ग ] कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमँहु चाहि।—तुलसी

यह 'चाहि' शायद संस्कृत 'चापि' से निकला हो। बंगला में यह "चेये" इस रूप मे बोला जाता है। अब दूसरा शब्द "बाज" लीलिए जिसके अर्थ होते है बिना, बगैर, अतिरिक्त, छोड़कर—

[ क ] गगन अंतरिख राखा, बाज खंभ बिनु टेक।
[ ख ] को उठाइ बैठारै बाज पियारे जीउ।
[ ग ] दीन-दुख-दारिद दरै को कृपावारिधि बाज ?—तुलसी

यह 'बाज' संस्कृत 'वर्ज्य' का अपभ्रंश है।

'पारना' क्रिया के रूप अब बंगाल ही मे सुनाई पड़ते हैं। पर जायसी और तुलसी के जमाने तक शायद वे अवध की बोलचाल में भी रहे हो; क्योंकि इनके पहले के कबीर साहब की वाणी में भी वे पाए जाते है। जो कुछ हो, जायसी और तुलसी दोनों ने इस 'पारना' (=सकना) क्रिया का खूब व्यवहार किया है, जैसे—

[ क ] परी नाथ कोइ छुवै न पारा।—जायसी

[ ख ] तुमहिं अछत को बरनै पारा?—तुलसी

यही दशा "आछना" क्रिया की भी है। यह अस् धातु से निकली जान पड़ती है जिसके रूप पाली मे 'अच्छति', 'अच्छंति' आदि होते हैं। अब हिंदी मे तो उसका वर्त्तमान कृदंतरूप 'अछत' या 'आछत' ही बोलचाल मे है, पर बँगला मे इसके और रूप प्रचलित हैं। कबीर साहब और जायसी दोनों मे इसके कुछ रूप पाए जाते हैं—

[ क ] कह कबीर किछु अछिलो न जहिया

[ अछिलो = था; मिलाओ बँगला "छिलो" ]

[ ख ] केवल न आछै आपनि बारी।

[ आछै = है; बँगला "आछे" ]

[ ग ] का निचिंत रे मानुष आपन चीते आछु।

[ आछु = रह ]

इसी प्रकार 'आदि' शब्द का प्रयोग 'बिल्कुल' या 'निपट' के अर्थ में अब केवल बंगभाषा मे ही सुनाई पड़ता है (जैसे, नदी में **बिल्कुल पानी नहीं** है=आदौ जल नाय); पर जायसी ने 'पदमावत' मे किया है। 'बादल' अपनी माता से कहता है—

मातु न जानसि बालक आदी। हौं बादला सिंह रनबादी।

अर्थात्—माता मुझे बिल्कुल बालक न समझ।

सत्तार्थक 'होना' क्रिया के रूपो के आदि मे जो 'अ' अक्षर पहले रहता था वह अब तक अवध के कुछ हिस्सो मे—जायस और अमेठी के आसपास—वर्त्तमान काल मे बना हुआ है। वहाँ "है" के स्थान में 'अहै' बोलते है। जायसी ने भूतकालिक रूप 'अह' (=था) का भी व्यवहार किया है। संभव है उस समय बोला जाता रहा हो। उदाहरण—

[ क ] भाँट अहै ईसर कै कला।

[ ख ] परवत एक अहा तहँ ढूँगा।

[ ग ] जब लग गुरु हौं अहा न चीन्हा।

तुलसीदासजी में केवल वर्त्तमान का रूप "अहै" मिलता है। यह सत्तार्थक क्रिया 'भू' धातु से न निकलकर 'अस्' धातु से निकली जान पड़ती है। 'भू' धातु से निकले हुए पुराने प्राकृत कृदंत 'हुत' ( =था ) का प्रयोग जायसी की भाषा में हमें प्रायः मिलता है—

[ क ] हुत पहले औ अब है सोई।

[ ख ] गगन हुता नहिं महि हुती, हुते चंद नहि सूर।

ब्रज और बुंदेलखंड में यह शब्द 'हतो' इस रूप मे अब तक बोला जाता है।

एक बहुत पुराना निश्चयार्थक शब्द 'पै' है जो निश्चय या 'ही' के अर्थ में आता है। यह ठीक नहीं मालूम होता कि यह 'अपि' शब्द से आया है या और किसी शब्द से; क्योंकि 'अपि' शब्द 'भी' के अर्थ में आता है। प्रयोग इसका जायसी ने बहुत किया है। तुलसी ने कम किया है; पर किया है, जैसे—

माँगु माँगु पै कहहु पिय, कबहुँ न देहु न लेहु।

**उच्चारण**—दो से अधिक वर्णों के शब्द के आदि में ह्रस्व 'इ' और ह्रस्व 'उ' के उपरांत 'आ' का उच्चारण अवधी को पसंद और पच्छिमी हिंदी ( खड़ी और ब्रज ) को नापसंद है। इसी भिन्न प्रवृत्ति के अनुसार अवधी में बोले जाने वाले 'सियार', 'कियारी', 'बियारी', 'बियाज', 'बियाह', 'पियार', 'नियाव', आदि शब्द तथा 'दुआर', 'कुआर', 'खुआर', 'गुवाल' आदि शब्द खड़ी बोली और ब्रज में क्रमशः 'स्यार, क्यारी, ब्यारी, ब्याज, ब्याह, प्यारा, प्यारो, न्याव तथा 'द्वार, क्वार, ख्वार, ग्वाल' बोले जायँगे।'इ' और 'उ' के स्थान पर 'य' और 'व' की इसी प्रवृत्ति के अनुसार अवधी 'इहाँ' 'उहाँ' या 'हिआँ' 'हुआँ' खड़ी बोली और ब्रजभाषा मे 'यहाँ, वहाँ' और 'ह्याँ, ह्वाँ' बोले जाते है। इसी प्रकार 'अ' और 'आ' के उपरांत अवधी को 'इ' पसंद है और ब्रजभाषा को 'य' जैसे,—अवधी के 'आइ, जाइ, पाइ, कराइ' तथा 'आइहै, जाइहै, पाइहै, कराइहै' [ अथवा अइहै, जइहै, पइहै, करइहै ] के स्थान पर ब्रजभाषी क्रमशः 'आय, जाय, पाय, कराय' तथा 'आयहै, जायहै, पायहै, करायहै' [ अथवा, आयहै=ऐहै, जायहै=जैहै ] कहेंगे।

इसी रुचिवैचित्र्य के कारण "ऐ" और "औ" का संस्कृत उच्चारण ( अइ, अउ के समान ) पच्छिमी हिंदी से जाता सा रहा, केवल 'यकार' और 'वकार' के पहले रह गया (जैसे, गैया, कन्हैया)। पर यह अवधी से बना हुआ है। इससे अवधी में 'ऐ' और 'औ' का उच्चारण 'अय' और 'अव' सा न करके 'अइ' और 'अउ' सा करना चाहिए, जैसे—ऐस=अइस, जैस=जइस, भैंस=भँइस, दौरि=दउरि इत्यादि। केवल पदांत के 'ऐ' और 'औ' का उच्चारण पच्छिमी हिंदी के समान 'अय' और 'अव' सा करना चाहिए, जैसे—कहै लाग=कहय लाग, तपै लाग=तपय लाग, चलौ=चलव इत्यादि।

प्राकृत की एक पंचमी विभक्ति 'सुंतो' थी जो 'से' के अर्थ में आती थी। इसका हिंदी रूप 'सेती' [ तृतीय मे ] बहुत दिनों तक बोला जाता रहा। 'वली' आदि उर्दू के पुराने शायरों तक मे यह विभक्ति मिलती है। कबीरदास ने भी इसका व्यवहार किया है, जैसे—

तोहि पीर जो प्रेम की पाका सेती खेल।

तुलसीदासजी ने इसका कहीं व्यवहार किया है या नहीं, ठीक ठीक नहीं कह सकते, पर जायसी इसे बहुत जगह लाए है; जैसे—

[ क ] सबन्ह कहा मन समझहु राजा।
काल सेति कै जूझ न छाजा॥

[ ख ] रतन छुवा जिन्ह हाथन्ह सेंती।

हिंदी-कवि कभी कभी श्रवण-सुखदता की दृष्टि से लकार के स्थान पर रकार कर दिया करते है, जैसे 'दल' के स्थान पर 'दर'; 'बल' के स्थान पर 'बर'। जायसी ने ऐसा बहुत किया है। नीचे कुछ उदाहरण दिए जाते है—

[ क ] होत आव दर जगत असूझ। [ =दल ]
[ ख ] सत्त के बर जो नहि हिय फटा। [ =बल ]
[ ग ] कोन्हेसि पुरुष एक निरमरा। [ =निर्मल ]
[ घ ] नाम मुहम्मद पूनिउँ करा। [ =कला ]

यहाँ तक तो इस बात का विचार हुआ कि जायसी की भाषा कौन सी है और उसका व्याकरण क्या है। अब थोड़ा यह भी देखना चाहिए कि जायसी की भाषा कैसी है।

जायसी ने अपनी भाषा अधिकांश पूरबी या ठेठ अवधी रखते हुए भी जो बीच बीच मे नए पुराने, पूरबी पच्छिमी कई प्रकार के रूपों को

स्थान दिया है, इससे भाषा कुछ अव्यवस्थित सी लगती है। पर उन रूपों का विवेचन कर लेने पर यह अव्यवस्था नहीं रह जाती। केशव के अनुयायी भूषण, देव आदि फुटकलिए कवियों की भाषा से इनकी भाषा कहीं स्वच्छ और व्यवस्थित है। चरणों की पूर्ति के लिये अर्थ-संबंध और व्याकरण-संबंध-रहित शब्दों की भरती कहीं नहीं है। कहीं कुछ शब्दों के रूप व्याकरण-विरुद्ध मिल जायँ तो मिल जायँ पर वाक्य का वाक्य शिथिल और बेढंगा कहीं नहीं मिलेगा। शब्दों के व्याकरण-विरुद्ध रूप अवश्य कहीं कहीं मिल जाते हैं, जैसे—

दसन देखि कै बीजु लजाना।

'लजाना' के स्थान पर 'लजानी' चाहिए। पूरबी अवधी में भी 'लजानी' रूप होगा जिसे छंद के विचार से यदि दीर्घांत करेंगे तो 'लजानि' होगा। कहीं कहीं तो जायसी के वाक्य बहुत ही चलते हुए हैं, जैसे—देवपाल की दूती पद्मिनी के मायके की स्त्री बनकर उससे कहती है—

सुनि तुम कहँ चितउर महँ कहिउँ कि भेटौं जाइ।

बोलचाल में ठीक इसी तरह कहा जाता है—"तुमको चित्तौर में सुनकर मैंने कहा कि जरा चलकर भेंट कर लूँ।" कहावतें और मुहाविरे भी कहीं कहीं मिलते हैं पर वे यों ही भाषा के स्वाभाविक प्रवाह में आए हुए हैं, काव्य-रचना के कोई आवश्यक अंग समझकर नहीं बाँधे गए हैं। मुहाविरे को अधिक प्राधान्य देने से रूढ़ पद-समूहों में भाषा बँधी सी रहती है, उसकी शक्तियों का नवीन विकास नहीं होने पाता। कवि अपने विचारों को ढालने के लिये नए नए साँचे न तैयार करके बने बनाए साँचों में ढलनेवाले विचारों को ही बाहर करता है। खैर, इस प्रसंग में यहाँ कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। जायसी के दो-एक उदाहरण देकर आगे चलते हैं—

[ क ] जोबन-नीर घटे का घटा। सत्त के बर जौ नहिं हिय फटा॥

यहाँ कवि ने "हृदय फटना" या "जी फटना" इस मुहाविरे का बड़े कौशल से प्रयोग किया है। कवि ने हृदय को सरोवर माना है, यद्यपि 'सरोवर' पद आ नहीं सका है। पद की न्यूनता से अभिप्राय जरा देर में खुलता है। जब जल घटने लगता है तब ताल की गीली मिट्टी सूखकर फट जाती है। कवि का अभिप्राय है कि जिस प्रकार जल घटने से ताल फट जाता है उसी प्रकार यदि यौवन के ह्रास से प्रिय से

जी न फटे, प्रीति वैसी ही बनी रहे, तो कोई हर्ज नहीं । कुछ और उदाहरण लीजिए—

[ क ] हाथ लिए आपन जिउ होई ।

[ ख ] आवा पवन बिछोह कर, पात परा बेकरार ।
तरिवर तजा जो चूरि कै लागै केहि के डार ? ॥

दूसरे उदाहरण "किसी की डाल लगना" यह मुहाविरा अन्योक्ति में खूब ही बैठा है । लोकोक्तियों के भी कुछ नमूने देखिए—

[ क ] सूधी अँगुरि न निकसै घीऊ ।

[ ख ] दरब रहै भुइँ, दिपै लिलारा ।

[ ग ] तुरय रोग हरि माथे जाए ।

[ घ ] धरती परा सरग को चाटा !

जायसी की वाक्य-रचना स्वच्छ होने पर भी तुलसी के समान सुव्यवस्थित नहीं है । उसमें जो वाक्य-दोष मुख्यतः दिखाई पड़ता है वह 'न्यूनपदत्व' है । विभक्तियों का लोप, संबंधवाचक सर्वनामों का लोप, अव्ययों का लोप जायसी में बहुत मिलता है । विभक्ति या कारक-चिह्न का अध्याहार तुलसी की रचनाओं में भी कहीं कहीं करना पड़ता है, पर उन्होंने लोप या तो ऐसा किया है जैसा बोल-चाल में भी प्रायः होता है—जैसे सप्तमी के चिह्न का—अथवा लुप्त चिह्न का पता प्रसंग से बहुत जल्द लग जाता है । पर जायसी ने मनमाना लोप किया है—विभक्तियों का ही नहीं, सर्वनामों और अव्ययों का भी । कहीं कहीं तो इस लोप के कारण 'प्रसादगुण' बिल्कुल जाता रहा है और अर्थ का पता लगाना दुष्कर हो गया है, जैसे—

सरजै लीन्ह साँग पर घाऊ । परा खड्ग जनु परा निहाऊ ॥

इसमें दूसरे चरण का अर्थ शब्दों से यही निकलता है कि "खड्ग ऐसा पड़ा मानो निहाई पड़ी ।" पर कवि का तात्पर्य्य यह है कि "खड्ग निहाई पर पड़ा ।" देखिए इस 'पर' के लोप से अर्थ में कितनी गड़बड़ी पड़ गई । विभक्ति और कारक-चिह्न के बेढंगे लोप के और नमूने देखिए—

[ क ] जंघ छपा कदली होइ बारी ।

( जंघ=जंघ से )

[ ख ] करन पास लीन्हेउ कै छंदू ।

( पास=पास से )

अव्ययों का लोप भी प्रायः मिलता है—और ऐसा जिससे अर्थ समझने में भी कभी कभी कुछ देर लगती है, जैसे—

[ १ ] तब तहँ चढ़ै फिरै नौ भँवरी। [ फिरै = जब फिरै ]

[ २ ] दरपन साहि भीति तहँ लावा।
देखहुँ जबहिं झरोखे आवा॥
[ देखहुँ = इसलिये जिसमें देखूँ ]

[ ३ ] पुनि सो रहै, रहै नहिं कोई।
[ दूसरे "रहै" के पहले "जब" चाहिए ]

[ ४ ] काँच रहा तुम कंचन कीन्हा।
तब भा रतन जोति तुम दीन्हा॥
[ 'जोति' के पहले 'जब' चाहिए ]

संबंधवाचक सर्वनामों के लोप मे तो जायसी अँगरेज कवि ब्राउनिंग् Browning ( ब्राउनिंग ) से भी बढ़े हैं। एक नमूना काफी है—

कह सो दीप पतँग कै मारा।

इस चरण में 'पतँग' के पहले "जेई" ( = जिसने ) पद लुप्त है जिससे अभिप्रेत अर्थ तक पहुँचने मे व्यर्थ देर होती है। पहले देखने में यही अर्थ भासित होता है कि "पतंग का मारा हुआ दीपक कहाँ है ?" न्यूनपदत्व के अतिरिक्त "समाप्तपुनरात्तत्त्व" भी प्रायः मिलता है, जैसे—"हिये छाहँ उपना औ सीऊ।" यदि उपना शब्द आदि में कर दें तो यह दोष दूर हो जाय।

हिंदी के अधिकांश कवियों पर शब्दों का अंग-भंग करने का दोष लगाया जा सकता है। पर जायसी के चरण के अंत मे पड़नेवाले शब्द को दीर्घांत करने में जितना रूपांतर होता है उतने से अधिक किसी शब्द का रूप नहीं बिगड़ा है। कहीं एकाध जगह ऐसा उदाहरण मिल जाय जैसे कि ये हैं—

[ क ] दडा-करन बीझ-बन जाहाँ ? [ = जहाँ ]

[ ख ] करन पास लीन्हेउ कै छंदू।
बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू॥
( इंद्र के स्थान पर 'इंदू' करना ठीक नहीं हुआ है। )

जायसी के दो शब्दों का व्यवहार पाठकों को कुछ विलक्षण प्रतीत होगा। उन्होंने "निरास" शब्द का प्रयोग "जो किसी की आशा का न हो, जो किसी का आश्रित न हो" इस अर्थ मे किया है, जैसे—

ओहि न मोरि किछु आसा, हौ ओहि आस करेउँ।
तेहि निरास प्रीतम कहँ, जिउ न देउँ, का देउँ?

व्युत्पत्ति के अनुसार तो इस अर्थ में कोई बाधा नहीं। पर प्रवृत्ति से भिन्न होने के कारण "अप्रयुक्तत्व" दोष अवश्य है। दूसरा शब्द है 'विसवास' जिसे जायसी "विश्वासघात" के अर्थ में लाए हैं, जैसे—

[ क ] राजै बीरा दीन्हा, नहि जाना बिसवास।
[ ख ] आदम हौवा कह सृजा, लेइ घाला कैलास॥
पुनि तहवाँ से काढ़ा, नारद के बिसवास।

इसी प्रकार "बिसवासी" शब्द भी विश्वासघाती के अर्थ मे कई जगह लाया गया है—

अरे मलिछ बिसवासी देवा। कित मै आइ कीन्हि तोरि सेवा॥

और कवियो ने भी "बिसासी" शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है, जैसे—

[ क ] कबहूँ वा बिसासी सुजान के आँगन मों अँसुवान को लै बरसौ
—घनानंद
[ ख ] अब तौ उर माहिं बसाय कै मारत ए जू बिसासी! कहाँ धौ बसे
—घनानद
[ ग ] सेखर घेरे करे सिगरे, पुरबासी बिसासी भए दुखदात हैं।—शेखर
[ घ ] जापै हौ पठाई ता बिसासी पै गई न दीसै,
संकर की चाही चंदकला तैं लहाई री।—दूलह

जायसी की भाषा बोलचाल की और सीधी-सादी है। समस्त पदों का व्यवहार उन्होने बहुत ही कम किया है—जहाँ किया भी है वहाँ दो से अधिक पदों के समास का नही। दो पदो के समासों का भी हाल यह है कि वे तत्पुरुष ही है और अधिकतर संस्कृत की रीति पर नही है, विपरीत क्रम से है, जैसे कि फारसी में हुआ करते है। दो उदाहरण नमूने के लिये काफी होंगे—

[ क ] लीक-पखान पुरुष कर बोला। [ = पखान-लीक ]
[ ख ] भा भिनसार किरिन-रवि फूटी। [ = रवि-किरिन ]

एक स्थान में तो पदमावत में फारसी का एक वाक्यखंड ही उठाकर रख दिया गया है—

केस मेघावरि सिर ता पाई।

यह "सिर ता पाई" फारसी का "सर ता पा" है जिसका अर्थ होता है "सिर से पैर तक"। फारसी की बस इतनी ही थोड़ी सी झलक कहीं कहीं पर दिखाई पड़ती है, और सब तरह से जायसी की भाषा देशी साँचे में ढली हुई, हिंदुओं के घरेलू भावों से भरी हुई, बहुत ही मधुर और हृदय-ग्राहिणी है। "खुसबोय", "दराज" ऐसे भोड़े शब्द, "खुसाल खुसवाही सो" ऐसे बेहूदः वाक्य कहीं नहीं मिलते। बादशाही दरबार आदि के वर्णन मे 'अरकान', 'वारिगह' आदि कुछ शब्द आए है पर वे प्रसंग के विचार से नहीं खटकते।

जायसी की भाषा बहुत ही मधुर है, पर उसका माधुर्य्य निराला है। वह माधुर्य्य "भाषा" का माधुर्य्य है, संस्कृत का माधुर्य्य नहीं। वह संस्कृत की कोमल-कांत-पदावली पर अवलंबित नहीं। उसमे अवधी अपनी निज की स्वाभाविक मिठास लिए हुए है। "मंजु, अमंद" आदि की चाशनी उसमें नहीं है। जायसी की भाषा और तुलसी की भाषा मे यही बड़ा भारी अंतर है। जायसी की पहुँच अवध मे प्रचलित लोकभाषा के भीतर बहते हुए माधुर्य्यस्रोत तक ही थी, पर गोस्वामीजी की पहुँच दीर्घ-संस्कृत-कवि-परंपरा द्वारा परिपक्व चाशनी के भांडागार तक भी पूरी पूरी थी। दोनों के भिन्न प्रकार के माधुर्य्य का अनुमान नीचे उद्धृत चौपाइयों से हो सकता है—

[ १ ] जब-हुँत कहि गा पंखि सँदेसी। सुनिउँ की आवा है परदेसी॥
तब-हुँत तुम्ह बिनु रहै न जीऊ। चातक भइउँ कहत "पिउ पीऊ"॥
भइउँ चकोरि सो पंथ तिहारी। समुद सीप जस नयन पसारी॥
भइउँ विरह जरि कोइलि कारी। डार डार जिमि कूकि पुकारी॥
—जायसी।

❀ ❀ ❀ ❀

[ २ ] अमिय मूरि-मय चूरन चारू। समन सकल भवरुज परिवारू॥
सुकृत सभु तन विमल विभूती। मंजुल मंगल मोद-प्रसूती॥
जन-मन-मंजु-मुकुर-मल-हरनी। किए तिलक गुनगन बस करनी॥
श्रीगुरु-पद-नख-मनि-गन-जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती॥
—तुलसी।

यदि गोस्वामीजी ने अपने "मानस" की रचना ऐसी ही भाषा मे की होती जैसी कि इन चौपाइयों की है—

कोउ नृप होउ हमै का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ?॥
जारै जोग सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा॥

तो उनकी भाषा 'पद्मावत' ही की भाषा होती और यदि जायसी ने सारी "पद्मावत" की रचना ऐसी भाषा में की होती जैसी कि इस चौपाई की है—

उदधि आइ तेइ बंधन कीन्हा। हति दसमाथ अमर-पद दीन्हा॥

तो उसकी और "रामचरितमानस" की एक भाषा होती। पर जायसी में इस प्रकार की भाषा कहीं ढूँढ़ने से एकाध जगह मिल सकती है। तुलसीदासजी मे ठेठ अवधी की मधुरता भी प्रसंग के अनुसार जगह जगह मिलती है। सारांश यह कि तुलसीदासजी को दोनो प्रकार की भाषाओं पर अधिकार था और जायसी को एक ही प्रकार की भाषा पर। एक ही ढंग की भाषा की निपुणता उनकी अनूठी थी। अवधी की खालिस, बे-मेल मिठास के लिये 'पद्मावत' का नाम बराबर लिया जायगा।

---

## संक्षिप्त समीक्षा

अब तक जो कुछ लिखा गया उससे जायसी की इन विशेषताओं और गुणों की ओर मुख्यतः ध्यान गया होगा—

### ( १ ) विशुद्ध प्रेम-मार्ग का विस्तृत प्रत्यक्षीकरण

लौकिक प्रेमपथ के त्याग, कष्ट-सहिष्णुता तथा विघ्नबाधाओं का चित्रण करके कवि ने भगवत्प्रेम की उस साधना का स्वरूप दिखाया है जो मनुष्य की वृत्तियो को विश्व का पालन और रंजन करनेवाली उस परमवृत्ति में लीन कर सकती है।

### ( २ ) प्रेम की अत्यंत व्यापक और गूढ़ भावना

लौकिक प्रेम के उत्कर्ष द्वारा जायसी को भगवत्प्रेम की गंभीरता का निरूपण करना था इससे वियोग-वर्णन में सारी सृष्टि वियोगिनी की अनुभूति मे योग देती दिखाई गई है। जिस प्रेम का अवलंबन इतना बड़ा है—अनंत और विश्वव्यापक है—उसके अनुरूप प्रेम की व्यंजना के लिये एक मनुष्य का क्षुद्र हृदय पर्याप्त नहीं जान पड़ता इससे कहीं

कहीं वियोगिनी सारी सृष्टि के प्रतिनिधि के रूप में दिखाई पड़ती है। उसकी "प्रेम-पीर" सारे विश्व की "प्रेम-पीर" सी लगती है।

## ( ३ ) मर्मस्पर्शिनी भाव-व्यंजना

प्रेम या रति-भाव के अतिरिक्त स्वामिभक्ति, वीरदर्प, पातिव्रत तथा और छोटे छोटे भावों की व्यंजना अत्यंत स्वाभाविक और हृदयग्राही रूप मे जायसी ने कराई है, जिससे उनके हृदय की उदात्त वृत्ति और कोमलता का परिचय मिलता है।

## ( ४ ) प्रबंध-सौष्ठव

पदमावत की कथा-वस्तु का प्रवाह स्वाभाविक है। केवल कुतूहल उत्पन्न करने के लिये घटनाएं इस प्रकार कहीं नहीं मोड़ी गई हैं जिससे बनावट या अलौकिकता प्रकट हो। किसी गुण का उत्कर्ष दिखाने के लिये भी घटना मे अस्वाभाविकता जायसी ने नहीं आने दी है। दूसरी बात यह है कि वर्णन के लिये जायसी ने मनुष्य-जीवन के मर्मस्पर्शी स्थलों को पहचानकर रखा है। परिणाम वैसे ही दिखाए गए है जैसे संसार में दिखाई पड़ते हैं कर्मफल के उपदेश के लिये उनकी योजना नहीं की गई है। पदमावत मे राघवचेतन ही का चरित्र खोटा दिखाया गया है; पर उसकी कोई दुर्गति कवि ने नहीं दिखाई। राघव का उतना ही वृत्त आया है जितने का घटनाओं को "कार्य्य" की ओर अग्रसर करने में योग है।

## ( ५ ) वर्णन की प्रचुरता

जायसी के वर्णन बहुत विस्तृत हैं—विशेषतः सिंहलद्वीप, नखशिख, भोज, बारहमास, चढ़ाई और युद्ध के—जिनसे उनकी जानकारी और वस्तुपरिचय का अच्छा पता लगता है। कहीं तो इतनी वस्तुएँ गिनाई गई हैं कि जी ऊब जाता है।

## ( ६ ) प्रस्तुत-अप्रस्तुत का सुंदर समन्वय

पदमावत की अन्योक्तियों और समासोक्तियों मे प्रस्तुत अप्रस्तुत का जैसा सुंदर समन्वय देखा जाता है वैसा हिंदी के कम कवियो मे पाया जाता है। अप्रस्तुत की व्यंजना के लिये जो प्रस्तुत वस्तुएँ काम मे लाई गई है और प्रस्तुत की व्यंजना के लिये जो अप्रस्तुत वस्तुएँ सामने रखी गई है वे आवश्यकतानुसार कहीं बोधवृत्ति में सहायक होती है और कहीं

भावो के उद्दीपन मे। योगसाधकों के मार्ग की जो व्यंजना चित्तौरगढ़ के प्रस्तुत वर्णन द्वारा कराई गई है वह रोचक चाहे न हो पर ज्ञानप्रद अवश्य है। इसी प्रकार "कँवल जो बिगसा मानसर बिनु जल गएउ सुखाइ" वाले दोहे मे जो जल बिना सूखते कमल का अप्रस्तुत दृश्य सामने रखा गया है वह सौदर्य्य की भावना के साथ साथ दया और सहानुभूति के भाव को उद्दीप्त करता है।

## ( ७ ) ठेठ अवधी भाषा का माधुर्य्य

जायसी ने संस्कृत के सुंदर पदो की सहायता के बिना ठेठ अवधी का भोलाभाला माधुर्य्य दिखाया है, इसका वर्णन पूर्व प्रकरण मे आ चुका है।

जिस प्रकार जायसी के उपर्युक्त गुणों और विशेषताओं की ओर पाठक का ध्यान गए बिना नही रह सकता उसी प्रकार इन नीचे लिखी त्रुटियों की ओर भी—

## ( १ ) पुनरुक्ति

'पदमावत' मे एक ही भाव, एक ही उपमा, कहीं कहीं तो एक ही वाक्य मे न जाने कितनी जगह और कितनी बार आया है। सूर और चाँद के जोड़े से तो शायद ही कोई पृष्ठ खाली मिले। पद्मावती के नख-शिख का जो वर्णन सूए ने रत्नसेन से किया है, प्रायः वही राघवचेतन अलाउद्दीन के सामने दुहराता है। प्रायः वे ही उपमाएँ और उत्प्रेक्षाएँ फिर आई है; कुछ थोड़ी सी दूसरी हो तो हों। सूखे सरोवर के फटने का भाव तीन जगह लाया गया है। इसी प्रकार और बहुत सी पुनरुक्तियाँ हैं जिनके कारण पाठको को कभी कभी विरक्ति हो जाती है।

## ( २ ) अरोचक और अनपेक्षित प्रसगों का सन्निवेश

रत्नसेन पद्मावती के समागम के वर्णन मे राजा का रसायनी प्रलाप और शतरंज के मोहरो और चालो की बंदिश, नागमती-पद्मावती-विवाद के भीतर फूल-पौदों के नामों की अनावश्यक योजना इसी प्रकार की है। सोलह शृंगार और बारह आभरणों का वर्णन तथा ज्योतिष का लंबा-चौड़ा यात्रा-विचार केवल जानकारी प्रकट करने के लिये जोड़े हुए जान पड़ते हैं। वे किसी काव्य के प्रकृत अंग कदापि नही हो सकते। पद्मिनी, चित्रिणी आदि चार प्रकार की स्त्रियो के वर्णन भी कामशास्त्र के ग्रंथ में ही उपयुक्त हो सकते है। काव्य कामशास्त्र नहीं है।

## ( ३ ) वर्णनों में वस्तु-नामावली का आरोचक विस्तार

रत्नसेन के विवाह और बादशाह की दावत के वर्णन मे पकवान और व्यंजनो की लंबी सूची, बगीचे के वर्णन में पेड़-पौधों के नाम ही नाम, युद्धयात्रा आदि के वर्णन मे घोड़ो की जातियो की गिनती से पाठक का जी ऊबने लगता है। वर्णन का अर्थ गिनती नहीं है।

## ( ४ ) अनुचितार्थत्व

कई जगह शृंगार के प्रसंग मे नायक रत्नसेन रावण कहा गया है। ऐसा हिंदी के कुछ और सूफी कवियो ने भी, शायद 'रावण' का अर्थ रमण करनेवाला मानकर, किया है। पर इस शब्द से 'रुलानेवाले' रावण की ओर ही ध्यान जाता है। रावण बड़ा भारी प्रतापी और शूरवीर रहा हो, पर मनोहर नायक के रूप मे कवि-परंपरा मे उसकी प्रसिद्धि नहीं है। वह हीन और दुष्ट पात्र ही प्रसिद्ध है।

## ( ५ ) न्यूनपदत्व

भाषा पर विचार करते समय विभक्तियो, कारक-चिह्नों, संबंध-वाचक सर्वनामो और अव्ययो के लोप के ऐसे उदाहरण दिए जा चुके है जिनके कारण अर्थ मे बड़ी गड़बड़ी होती है।

## ( ६ ) च्युत-संस्कृति

इसका एक उदाहरण दिया जाता है—

दसन देखि कै बीजु लजाना।

हिंदी मे चरित्र-काव्य बहुत थोड़े है। ब्रजभाषा मे तो कोई ऐसा चरित-काव्य नहीं जिसने जनता के बीच प्रसिद्धि प्राप्त की हो। पुरानी हिंदी के पृथ्वीराजरासो, बीसलदेवरासो, हम्मीररासो आदि वीर-गाथाओं के पीछे चरित-काव्य की परंपरा हमे अवधी भाषा मे ही मिलती है। ब्रजभाषा मे केवल ब्रजवासीदास के ब्रजविलास का कुछ प्रचार कृष्णभक्तों मे हुआ, शेष रामरसायन आदि जो दो-एक प्रबंध-काव्य लिखे गए वे जनता को कुछ भी आकर्षित न कर सके। केशव की रामचंद्रिका का काव्य-प्रेमियों मे आदर रहा पर उसमे प्रबंध-काव्य के वे गुण नहीं है जो होने चाहिएँ। चरितकाव्य मे अवधी-भाषा को ही सफलता हुई और अवधी-भाषा के सर्व-श्रेष्ठ रत्न है "रामचरित-मानस" और "पदमावत"। इस दृष्टि से हिंदी-साहित्य मे हम जायसी के उच्च स्थान का अनुमान कर सकते है।

विना किसी निर्दिष्ट विवेचन' पद्धति के यों ही कवियों की श्रेणी

बाँधना और एक कवि को दूसरे कवि से छोटा या बड़ा कहना हम एक बहुत भोडी बात समझते हैं। जायसी के स्थान का निश्चय करने के लिये हमें चाहिए कि हम पहले अलग अलग क्षेत्र निश्चित कर लें। सुबीते के लिये यहाँ हम हिंदी-काव्य के दो ही क्षेत्र-विभाग करके चलते हैं—प्रबंध-क्षेत्र और मुक्तक-क्षेत्र। इन दोनों क्षेत्रों के भीतर भी कई उप-विभाग हो सकते हैं। यहाँ मुक्तक-क्षेत्र से कोई प्रयोजन नहीं जिसके अंतर्गत केशव, बिहारी, भूषण, देव, पदमाकर आदि कवि आते हैं। प्रबंध-क्षेत्र के भीतर हम कह चुके हैं दो काव्य सर्वश्रेष्ठ हैं—'रामचरित-मानस' और 'पद्मावत'। दोनों में 'रामचरितमानस' का पद ऊँचा है यह हम स्थान स्थान पर दिखाते भी आए हैं और सबको स्वीकृत भी होगा। अतः समग्र प्रबंध-क्षेत्र के विचार से हम कह सकते हैं कि प्रबंध-क्षेत्र में जायसी का स्थान तुलसी से दूसरा है। यदि हम प्रबंध-क्षेत्र के भीतर और तीन विभाग करते हैं—वीर-गाथा, प्रेमगाथा और जीवन-गाथा—और इस व्यवस्था के अनुसार रासो आदि को वीर-गाथा के अंतर्गत; मृगावती, पद्मावती आदि को प्रेमगाथा के अंतर्गत तथा राम-चरितमानस को जीवन-गाथा के अंतर्गत रखते हैं तो प्रेमगाथा की परंपरा के भीतर ( जिसमें कुतबन, उसमान, नूरमुहम्मद आदि हैं ) जायसी का नंबर सबसे ऊँचा ठहरता है। मृगावती, इंद्रावती, चित्रावली आदि को बहुत कम लोग जानते हैं, पर 'पद्मावत' हिंदी-साहित्य का एक जगमगाता रत्न है।

यदि कोई इसके विचार का आग्रह करे कि प्रबंध और मुक्तक इन दो क्षेत्रों में कौन क्षेत्र अधिक महत्त्व का है, किस क्षेत्र में कवि की सहृदयता और भावुकता की पूरी परख हो सकती है, तो हम बार बार वही बात कहेंगे जो गोस्वामीजी की आलोचना में कह आए हैं अर्थात् प्रबंध के भीतर आई हुई मानव जीवन की भिन्न भिन्न दशाओं के साथ जो अपने हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा सके वही पूरा और सच्चा कवि है। प्रबंध-क्षेत्र में तुलसीदासजी का जो सर्वोच्च आसन है, उसका कारण यह है कि वीरता, प्रेम आदि जीवन का कोई एक ही पक्ष न लेकर उन्होंने संपूर्ण जीवन को लिया है और उसके भीतर आनेवाली अनेक दशाओं के प्रति अपनी गहरी अनुभूति का परिचय दिया है। जायसी का क्षेत्र तुलसी की अपेक्षा परिमित है, पर प्रेम-वेदना उनकी अत्यंत गूढ़ है।

**रामचंद्र शुक्ल**

# पदमावत

## ( १ ) स्तुति-खंड

सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥
कीन्हेसि प्रथम जोति परकासू। कीन्हेसि तेहि पिरीत कैलासू॥
कीन्हेसि अगिनि, पवन, जल खेहा। कीन्हेसि बहुतै रंग उरेहा॥
कीन्हेसि धरती, सरग, पतारू। कीन्हेसि बरन बरन औतारू॥
कीन्हेसि दिन, दिनअर, ससि, राती। कीन्हेसि नखत, तराइन-पाँती॥
कीन्हेसि धूप, सीउ औ छाँहा। कीन्हेसि मेघ, बीजु तेहि माँहा॥
कीन्हेसि सप्त मही बरम्हंडा। कीन्हेसि भुवन चौदहो खंडा॥
कीन्ह सबै अस जाकर दूसर छाज न काहि।
पहिलै ताकर नाँव लै कथा करौं औगाहि॥ १॥

कीन्हेसि सात समुंद अपारा। कीन्हेसि मेरु, खिखिंद पहारा॥
कीन्हेसि नदी, नार औ झरना। कीन्हेसि मगर मच्छ बहु बरना॥
कीन्हेसि सीप, मोति जेहि भरे। कीन्हेसि बहुतै नग निरमरे॥
कीन्हेसि बनखँड औ जरि मूरी। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी॥
कीन्हेसि साउज आरन रहई। कीन्हेसि पंखि उड़हि जहँ चहई॥
कीन्हेसि बरन सेत औ स्यामा। कीन्हेसि भूख नीद बिसरामा॥
कीन्हेसि पान फूल बहु भोगू। कीन्हेसि बहु ओषद, बहु रोगू॥

---

( १ ) उरेहा = चित्रकारी। सीउ = शीत। कीन्हेसि...कैलासू = उसी ज्योति अर्थात् पैगंबर मुहम्मद की प्रीति के कारण स्वर्ग की सृष्टि की। ( कुरान की आयत ) कैलास = स्वर्ग, बिहिश्त। इस शब्द का प्रयोग जायसी ने बराबर इसी अर्थ में किया है। ( २ ) खिखिंद = किष्किंधा। निरमरे = निर्मल। साउज = वे जानवर जिनका शिकार किया जाता है। आरन = अरण्य।

निमिख न लाग करत ओहि, सबै कीन्ह पल एक।
गगन अंतरिख राखा बाज खंभ बिनु टेक॥ २॥

कीन्हेसि अगर कसतुरी बेना। कीन्हेसि भीमसेन औ चीना॥
कीन्हेसि नाग, जो मुख बिष बसा। कीन्हेसि मंत्र, हरै जेहि डसा॥
कीन्हेसि अमृत, जियै जो पाए। कीन्हेसि बिक्ख, मीचु जेहि खाए॥
कीन्हेसि ऊख मीठ-रस-भरी। कीन्हेसि करू-बेल बहु फरी॥
कीन्हेसि मधु लावै लै माखी। कीन्हेसि भौंर, पंखि औ पाँखी॥
कीन्हेसि लोवा इंदुर चाँटी। कीन्हेसि बहुत रहहि खनि माटी॥
कीन्हेसि राकस भूत परेता। कीन्हेसि ओकस देव दएता॥
कीन्हेसि सहस अठारह बरन बरन उपराजि।
भुगुति दिहेसि पुनि सबन कहँ सकल साजना साजि॥ ३॥

कीन्हेसि मानुष, दिहेसि बड़ाई। कीन्हेसि अन्न, भुगुति तेहि पाई॥
कीन्हेसि राजा भूँजहि राजू। कीन्हेसि हस्ति घोर तेहि साजू॥
कीन्हेसि दरब गरब जेहि होई। कीन्हेसि लोभ, अघाइ न कोई॥
कीन्हेसि जियन, सदा सब चहा। कीन्हेसि मीचु, न कोई रहा॥
कीन्हेसि सुख औ कोटि अनंदू। कीन्हेसि दुख चिंता औ धंदू॥
कीन्हेसि कोइ भिखारि, कोइ धनी। कीन्हेसि सँपति बिपति पुनि घनी॥
कीन्हेसि कोई निभरोसी, कीन्हेसि कोइ बरियार।
छारहिं तें सब कीन्हेसि, पुनि कीन्हेसि सब छार॥ ४॥

धनपति उहै जेहिक संसारू। सबै देइ निति, घट न भँडारू॥
जावत जगत हस्ति औ चाँटा। सब कहँ भुगुति राति दिन बाँटा॥
ताकर दीठि जो सब उपराहीं। मित्र सत्रु कोइ बिसरै नाहीं॥
पंखि पतंग न बिसरै कोई। परगट गुपुत जहाँ लगि होई॥
भोग भुगुति बहु भाँति उपाई। सबै खवाइ, आप नहिं खाई॥
ताकर उहै जो खाना पियना। सब कहँ देइ भुगुति औ जियना॥
सबै आस-हर ताकर आसा। वह न काहु के आस निरासा॥

---

(२) बाज = बिना (स० वर्ज्य)। जैसे, दीन-दुख-दारिद दलै को कृपा-बारिधि बाज?—तुलसी। (३) बेना = खस। भीमसेन, चीना = कपूर के भेद। लोवा = लोमडी। इंदुर = चूहा। चाँटी = चींटी। ओकस = दानव। सहस अठारह = अठारह हजार प्रकार के जीव (इसलामी किताबो के अनुसार) (४) भूँजहिं = भोगते हैं। बरियार = बलवान्। (५) उपाई = उत्पन्न की। आस-हर = निराश।

जुग जुग देत घटा नहि, उभै हाथ अस कीन्ह।
और जो दीन्ह जगत महँ सो सब ताकर दीन्ह॥ ५॥

आदि एक वरनौं सोइ राजा। आदि न अंत राज जेहि छाजा॥
सदा सरवदा राज करेई। औ जेहि चहै राज तेहि देई॥
छत्रहि अछत, निछत्रहि छावा। दूसर नाहिं जो सरवरि पावा॥
परवत ढाह देख सब लोगू। चाँटहि करै हस्ति-सरि-जोगू॥
वज्रहिं तिनकहिं मारि उड़ाई। तिनहि वज्र करि देइ बड़ाई॥
ताकर कीन्ह न जानै कोई। करै सोइ जो चित्त न होई॥
काहू भोग भुगुति सुख सारा। काहू बहुत भूख दुख मारा॥
सबै नास्ति वह अहथिर, ऐसा साज जेहि केर।
एक साजै औ भाँजै, चहै सँवारै फेर॥ ६॥

अलख अरूप अवरन सो कर्ता। वह सब सो, अब ओहि सो बर्ता॥
परगट गुपुत सो सरवविआपी। धरमी चीन्ह, न चीन्है पापी॥
ना ओहि पूत न पिता न माता। ना ओहि कुटुँब न कोई सँग नाता॥
जना न काहु, न कोइ ओहि जना। जहँ लगि सब ताकर सिरजना॥
वै सब कीन्ह जहाँ लगि कोई। वह नहि कीन्ह काहु कर होई॥
हुत पहिले अरु अब है सोई। पुनि सो रहै रहै नहिं कोई॥
और जो होइ सो बाउर अंधा। दिन दुइ चारि मरै करि धंधा॥
जो चाहा सो कीन्हेसि, करै जो चाहै कीन्ह।
बरजनहार न कोई, सबै चाहि जिउ दीन्ह॥ ७॥

एहि विधि चीन्हहु करहु गियानू। जस पुरान महँ लिखा बखानू॥
जीउ नाहि, पै जियै गुसाईं। कर नाही, पै करै सबाईं॥
जीभ नाहि, पै सब किछु बोला। तन नाहीं, सब ठाहर डोला॥
स्रवन नाहि, पै सब किछु सुना। हिया नाहिं, पै सब किछु गुना॥
नयन नाहिं, पै सब किछु देखा। कौन भाँति अस जाइ बिसेखा॥
है नाहीं कोइ ताकर रूपा। ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा॥
ना ओहि ठाउँ, न ओहि बिन ठाऊँ। रूप रेख बिनु निरमल नाऊँ॥
ना वह मिला न बेहरा, ऐस रहा भरिपूरि।
दीठिवंत कहँ नीयरे, अंध मूरुखहिं दूरि॥ ८॥

---

(६) भाँजै=भजन करता है, नष्ट करता है। (७) सिरजना=रचना। (८) बेहरा=अलग (बिहरना=फटना)।

और जो दीन्हेसि रतन अमोला। ताकर मरम न जानै भोला॥
दीन्हेसि रसना औ रस भोगू। दीन्हेसि दसन जो बिहसै जोगू॥
दीन्हेसि जग देखन कहँ नैना। दीन्हेसि स्रवन सुनै कहँ बैना॥
दीन्हेसि कंठ बोल जेहि माहाँ। दीन्हेसि कर-पल्लो, बर बाहाँ॥
दीन्हेसि चरन अनूप चलाहीं। सो जानइ जेहि दीन्हेसि नाहीं॥
जोवन मरम जान पै बूढ़ा। मिला न तरुनापा जग ढूँढ़ा॥
दुख कर मरम न जानै राजा। दुखी जान जा पर दुख बाजा॥
काया-मरम जान पै रोगी, भोगी रहै निचिंत।
सब कर मरम गोसाईं (जान) जो घट घट रहै नित॥ ९॥
अति अपार करता कर करना। बरनि न कोई पावै बरना॥
सात सरग जौ कागद करई। धरती समुद दुहूँ मसि भरई॥
जावत जग साखा बनढाखा। जावत केस रोंव पँखि-पाखा॥
जावत खेह रेह दुनियाई। मेघबूंद औ गगन तराई॥
सब लिखनी कै लिखु संसारा। लिखि न जाइ गति-समुद अपारा॥
ऐस कीन्ह सब गुन परगटा। अवहुँ समुद महँ बूँद न घटा॥
ऐस जानि मन गरब न होई। गरब करे सन बाउर सोई॥
बड़ गुनवंत गोसाईं, चहै सँवारै बेग।
औ अस गुनी सँवारै, जो गुन करै अनेग॥१०॥
कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाम मुहम्मद पूनो-करा॥
प्रथम जोति विधि ताकर साजी। औ तेहि प्रीति सिहिटि उपराजी॥
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा। भा निरमल जग, मारग चीन्हा॥
जौ न होत अस पुरुष उजारा। सूझि न परत पंथ अँधियारा॥
दुसरे ढाँव दैव वै लिखे। भए धरमी जे पाढ़त सिखे॥
जेहि नहिं लीन्ह जनम भरि नाऊँ। ता कहँ कीन्ह नरक मह ठाऊँ॥
जगत वसीठ दई ओहि कीन्हा। दुइ जग तरा नावँ जेहि लीन्हा॥
गुन अवगुन विधि पूछब, होइहि लेख औ जोख।
वह विनउब आगे होइ, करब जगत कर मोख॥११॥

---

(९) बाजा=पडा है। (१०) खेह=धूल, मिट्टी। रेह=राख, क्षार। दुनियाई=दुनिया मे। बाउर=बावला। अनेग=अनेक। (११) पूनो-करा=पूर्णिमा की कला। प्रथम.....उपराजी=कुरान मे लिखा है कि यह संसार मुहम्मद के लिये रचा गया, मुहम्मद न होते तो यह दुनिया न होती। जगत-वसीठ॥ संसार मे ईश्वर का सदेसा लानेवाला, पैगंबर। लेख जोख=कर्मों

चारि मीत जो मुहमद ठाऊँ । जिन्हहि दीन्ह जग निरमल नाऊँ ॥
अवावकर सिद्दीक सयाने । पहिले सिदिक दीन वइ आने ॥
पुनि सो उमर खिताव सुहाए । भा जग अदल दीन जो आए ॥
पुनि उसमान पँडित वड़ गुनी । लिखा पुरान जो आयत सुनी ॥
चौथे अली सिह वरियारू । सौहँ न कोऊ रहा जुझारू ॥
चारिउ एक मतै, एक बाना । एक पंथ औ एक सँधाना ॥
वचन एक जो सुना वइ साँचा । भा परवान दुहूँ जग बाँचा ॥

जो पुरान विधि पठवा सोई पढ़त गरंथ ।
और जो भूले आवत सो सुनि लागे पंथ ॥१२॥

सेरसाहि देहली - सुलतानू । चारिउ खंड तपै जस भानू ॥
ओही छाज छात औ पाटा । सब राजै भुइँ धरा लिलाटा ॥
जाति सूर औ खाँड़े सूरा । और बुधिवंत सबै गुन पूरा ॥
सूर नवाए नवखँड वई । सातउ दीप दुनी सब नई ॥
तहँ लगि राज खड़ग करि लीन्हा । इसकंदर जुलकरन जो कीन्हा ॥
हाथ सुलेमाँ केरि अँगूठी । जग कहँ दान दीन्ह भरि मूठी ॥
औ अति गरू भूमिपति भारी । टेकि भूमि सब सिहिटि सँभारी ॥

दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज ।
बादसाह तुम जगत के जग तुम्हार मुहताज ॥१३॥

वरनौं सूर भूमिपति राजा । भूमि न भार सहै जेहि साजा ॥
हय गय सेन चलै जग पूरी । परवत टूटि उड़हि होइ धूरी ॥
रेनु रैनि होइ रविहिं गरासा । मानुख पंखि लेहि फिरि वासा ॥
भुइँ उड़ि अंतरिक्ख मृतमंडा । खंड खंड धरती बरम्हंडा ॥
डोलै गगन, इंद्र डरि काँपा । वासुकि जाइ पतारहि चाँपा ॥

---

का हिसाब । दुसरे ठाँव...वै लिखे = ईश्वर ने मुहम्मद को दूसरे स्थान पर लिखा अर्थात् अपने से दूसरा दरजा दिया । पाढ़त = पढ़ंत, मंत्र, आयत । ( १२ ) सिदिक = सच्चा । दीन = धर्म, मत । बाना = रीति, ढंग । संधान = खोज, उद्देश्य, लक्ष्य । ( १३ ) छात = छत्र । पाट = सिहासन । सूर = शेरशाह सूर जाति का पठान था । जुलकरन = जुलकरनैन, सिकंदर की एक अरबी उपाधि जिसका अर्थ लोग भिन्न भिन्न प्रकार से करते है । कोई दो सींगवाला अर्थ करते है और कहते है कि सिकदर यूनानी ( यवन )

मेरु धसमसै, समुद सुखाई। वन खँड टूटि खेह मिलि जाई॥
अगिलहि कहँ पानी लेइ बाँटा। पछिलहिं कहँ नहिं काँदौं आटा॥

जो गढ़ नएउ न काहुहि चलत होइ सो चूर।
जब वह चढ़ै भूमिपति सेर साहि जग सूर॥१४॥

अदल कहौ पुहुमी जस होई। चाँटा चलत न दुखवै कोई॥
नौसेरवाँ जो आदिल कहा। साहि अदल-सरि सोउ न अहा॥
अदल जो कीन्ह उमर कै नाई। भई अहा सगरी दुनियाई॥
परी नाथ कोइ छुवै न पारा। मारग मानुष सोन उछारा॥
गऊ सिंह रेगहि एक बाटा। दूनौ पानि पियहिं एक घाटा॥
नीर खीर छानै दरबारा। दूध पानि सब करै निनारा॥
धरम नियाव चलै; सत भाखा। दूबर बली एक सम राखा॥

सब पृथवी सीसहिं नई जोरि जोरि कै हाथ।
गंग-जमुन जौ लगि जल तौ लगि अम्मर नाथ॥१५॥

पुनि रूपवंत बखानौं काहा। जावत जगत सबै मुख चाहा॥
ससि चौदसि जो दई सँवारा। ताहू चाहि रूप उँजियारा॥
पाप जाइ जो दरसन दीसा। जग जुहार कै देत असीसा॥
जैस भानु जग ऊपर तपा। सबै रूप ओहि आगे छपा॥
अस भा सूर पुरुष निरमरा। सूर चाहि दस आगर करा॥
सौंह दीठि कै हेरि न जाई। जेहि देखा सो रहा सिर नाई॥
रूप सवाई दिन दिन चढ़ा। बिधि सुरूप जग ऊपर गढ़ा॥

रूपवंत मनि माथे, चंद्र घाटि वह बाढ़ि।
मेदिनि दरस लोभानी असतुति बिनवै ठाढ़ि॥१६॥

---

प्रथा के अनुसार दो-सींगवाली टोपी पहनता था, कोई पूर्व और पश्चिम दोनो कोनो को जीतनेवाला, कोई बीस वर्ष राज्य करनेवाला और कोई दो उच्च ग्रहो से युक्त अर्थात् भाग्यवान् अर्थ करते हैं। (१४) काँदौ=कर्दम, कीचड़। (१५) अहा=था। भई अहा=वाह वाह हुई। नाथ=नाक मे पहनने की नथ। पारा=सकता है। निनारा=अलग अलग (निर्णय)। (१६) मुख चाहा=मुँह देखता है। आगर=अग्र, बढ़कर। चाहि=अपेक्षाकृत (बढ़कर)। करा=कला। ससि चौदसि=पूर्णिमा (मुसलमान प्रथम चद्रदर्शन अर्थात् द्वितीया से तिथि गिनते हैं, इससे पूर्णिमा को उनकी चौदहवी तिथि पड़ती है।)

पुनि दातार दई जग कीन्हा। अस जग दान न काहू दीन्हा॥
वलि विक्रम दानी बड़ कहे। हातिम करन तियागी अहे॥
सेरसाहि सरि पूज न कोऊ। समुद सुमेर भँडारी दोऊ॥
दान डाँक बाजै दरवारा। कीरति गई समुंदर पारा॥
कंचन परसि सूर जग भयऊ। दारिद भागि दिसंतर गयऊ॥
जो कोइ जाइ एक वेर माँगा। जनम न भा पुनि भूखा नागा॥
दस असमेध जगत जेइ कीन्हा। दान-पुन्य-सरि सौंह न दीन्हा॥
ऐस दानि जग उपजा सेरसाहि सुलतान।
ना अस भयउ न होइहि, ना कोइ देइ अस दान॥ १७॥

सैयद असरफ पीर पियारा। जेहि मोंहि पंथ दीन्ह उँजियारा॥
लेसा हिये प्रेम कर दीया। उठी जोति भा निरमल हीया॥
मारग हुत अँधियार जो सूझा। भा अँजोर, सब जाना बूझा॥
खार समुद्र पाप मोर मेला। वोहित-धरम लीन्ह कै चेला॥
उन्ह मोर कर बूड़त कै गहा। पायों तीर घाट जो अहा॥
जाकहँ ऐस होइ कंधारा। तुरत वेगि सो पावै पारा॥
दस्तगीर गाढ़े कै साथी। वह अवगाह, दीन्ह तेहि हाथी॥
जहाँगीर वै चिस्ती निहकलंक जस चाँद।
वै मखदूम जगत के, हौ ओहि घर कै बाँद॥ १८॥

ओहि घर रतन एक निरमरा। हाजी सेख सबै गुन भरा॥
तेहि घर दुइ दीपक उजियारे। पंथ देइ कहँ दैव सँवारे॥
सेख मुहम्मद पून्यो-करा। सेख कमाल जगत निरमरा॥
दुऔ अचल धुव डोलहि नाहीं। मेरु खिखिद तिन्हहुँ उपराहीं॥
दीन्ह रूप औ जोति गोसाईं। कीन्ह खंभ दुइ जग के ताईं॥
दुहूँ खंभ टेके सब मही। दुहुँ के भार सिहिटि थिर रही।
जेहि दरसे औ परसे पाया। पाप हरा, निरमल भइ काया॥
मुहमद तेइ निचिंत पथ जेहि सँग मुरसिद पीर।
जेहिके नाव औ खेवक वेगि लागि सो तीर॥ १९॥

---

(१७) डाँक = डका। सौंह न दीन्हा = सामना न किया। (१८) लेसा = जलाया। कधार = कर्णधार, केवट। हाथी दीन्ह = हाथ दिया, बाँह का सहारा दिया। अँजोर = उजाला। खिखिंद = किष्किंध पर्वत। (१९) खेवक = खेनेवाला, मल्लाह।

मुहमद चारिउ मीत मिलि भए जो एकै चित्त।
एहि जग साथ जो निबहा, ओहि जग बिछुरन कित्त ? ॥ २२ ॥

जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कबि कीन्ह बखानू॥
औ बिनती पँडितन सन भजा। टूट सँवारहु, नेरबहु सजा॥
हौं पंडितन केर पछलगा। किछु कहि चला तबल देइ डगा॥
हिय भँडार नग अहै जो पूँजी। खोली जीभ तारु कै कूँजी॥
रतन-पदारथ बोल जो बोला। सुरस प्रेम मधु भरा अमोला॥
जेहि के बोल बिरह कै घाया। कहँ तेहि भूख कहाँ तेहि माया ?॥
फेरे भेख रहै भा तपा। धूरि-लपेटा मानिक छपा॥

मुहमद कबि जौ बिरह भा ना तन रकत न माँसु।
जेइ मुख देखा तेइ हँसा, सुनि तेहि आयउ आँसु॥ २३ ॥

सन नव सै सत्ताइस अहा। कथा अरंभ-बैन कबि कहा॥
सिंघलदीप पदमिनी रानी। रतनसेन चितउर गढ़ आनी॥
अलउदीन देहली सुलतानू। राघौ चेतन कीन्ह बखानू॥
सुना साहि गढ़ छेंका आई। हिंदू तुरुकन्ह भई लराई॥
आदि अंत जस गाथा अहै। लिखि भाखा चौपाई कहै॥
कबि बियास कँवला रस-पूरी। दूरि सो नियर, नियर सो दूरी॥
नियरे दूर, फूल जस काँटा। दूरि जो नियरे, जस गुड़ चाँटा॥

भँवर आइ बनखँड सन लेइ कँवल कै बास।
दादुर बास न पावई भलहि जो आछै पास॥ २४ ॥

---

( २३ ) बिनती भजा = बिनती की ( करता हूँ )। टूट = त्रुटि, भूल। डगा = डुग्गी बजाने की लकडी। तारु = ( क ) तालू। (ख) ताला कूँजी = कुँजी। फेरे भेष = वेष बदलते हुए। तपा = तपस्वी। ( २४ ) आछै = है। जैसे—कह कबीर कछु अछिलो न जहिया।

## ( २ ) सिंहलद्वीप-वर्णन खंड

सिंघलदीप कथा अब गावौं। औ सो पदमिनि बरनि सुनावौं॥
निरमल दरपन भाँति बिसेखा। जो जेहि रूप सो तैसइ देखा॥
धनि सो दीप जहँ दीपक-बारी। औ पदमिनि जो दई सँवारी॥
सात दीप बरनै सब लोगू। एकौ दीप न ओहि सरि जोगू॥
दियादीप नहि तस उँजियारा। सरनदीप सर होइ न पारा॥
जंबूदीप कहौं तस नाहीं। लंकदीप सरि पूज न छाहीं॥
दीप गभस्थल आरन परा। दीप महु स्थल मानुस-हरा॥
संब संसार परथमैं आए सातौं दीप।
एक दीप नहिं उत्तिम सिंघलदीप समीप॥ १॥
गंध्रवसेन सुगंध नरेसू। सो राजा, वह ताकर देसू॥
लंका सुना जो रावन राजू। तेहु चाहि बड़ ताकर साजू॥
छप्पन कोटि कटक दल साजा। सबै छत्रपति औ गढ़-राजा॥
सोरह सहस घोड़ घोड़सारा। स्यामकरन अरु बाँक तुखारा॥
सात सहस हस्ती सिंघली। जनु कबिलास एरावत बली॥
अस्वपतिक-सिरमौर कहावै। गजपतीक आँकुस-गज नावै॥
नरपतीक कहँ और नरिंदू?। भूपतीक जग दूसर इंदू॥
ऐस चक्कवै राजा चहूँ खंड भय होइ।
सबै आइ सिर नावहिं सरबरि करै न कोइ॥ २॥
जबहिं दीप नियरावा जाई। जनु कबिलास नियर भा आई॥
घन अमराउ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुत लागि अकासा॥
तरिवर सबै मलयगिरि लाई। भइ जग छाँह रैनि होइ आई॥

---

( १ ) बारी = बाला, स्त्री। सरनदीप—अरबवाले लंका को सरनदीप कहते थे। भूगोल का ठीक ज्ञान न होने के कारण कवि ने स्वर्णद्वीप और सिंहल को भिन्न भिन्न द्वीप माना है। हरा = शून्य ( २ ) तुखार = तुषार देश का घोड़ा। इदू = इंद्र। चाहि = अपेक्षा ( बढ़कर ), बनिस्बत। कबिलास = स्वर्ग। ( ३ ) भूमि हुत = पृथ्वी से ( लेकर )। लागि = तक।

मलय-समीर सोहावन छाहाँ। जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ॥
ओही छाँह रैनि होइ आवै। हरियर सबै अकास देखावै॥
पथिक जो पहुँचै सहि कै घामू। दुख बिसरै, सुख होइ बिसरामू॥
जैइ वह पाई छाहँ अनूपा। फिरि नहि आइ सहै यह धूपा॥

अस अमराउ सघन घन, बरनि न पारौं अंत।
फूलै फरै छवौ ऋतु, जानहु सदा बसंत॥ ३॥

फरे आँव अति सघन सोहाए। औ जस फरे अधिक सिर नाए॥
कटहर डार पीँड सन पाके। बड़हर, सो अनूप अति ताके॥
खिरनी पाकि खाँड़ अस मीठी। जामुन पाकि भँवर अति डीठी॥
नरियर फरे, फरी फरहरी। फुरै जानु इंद्रासन पुरी॥
पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू। मधु जस मीठ, पुहुप जस बासू॥
और खजहजा अनबन नाऊँ। देखा सब राउन-अमराऊँ॥
लाग सबै जस अमृत साखा। रहै लोभाइ सोइ जो चाखा॥

लवँग सुपारी जायफल सब फर फरे अपूर।
आसपास घन इमिली औ घन तार खजूर॥ ४॥

बसहिं पंखि बोलहि बहु भाखा। करहि हुलास देखि कै साखा॥
भोर होत बोलहि चुहचूही। बोलहि पाँडुक "एकै तूही"॥
सारौ सुआ जो रहचह करही। कुरहि परेवा औ करबरहीं॥
"पीव पीव" कर लाग पपीहा। "तुही तुही" कर गडुरी जीहा॥
'कुहू कुहू' करि कोइल राखा। औ भिंगराज बोल बहु भाखा॥
'दही दही' करि महरि पुकारा। हारिल बिनवै आपन हारा॥
कुहुकहि मोर सोहावन लागा। होइ कुराहर बोलहि कागा॥

जावत पंखी जगत के भरि बैठे अमराउँ।
आपनि आपनि भाषा लेहि दई कर नाउँ॥ ५॥

पैग पैग पर कुआँ बावरी। साजी बैठक और पाँवरी॥
और कुंड बहु ठावहिं ठाऊँ। औ सब तीरथ तिन्ह के नाऊँ॥

---

(४) पींड = जड़ के पास की पेडी। फुरै = सचमुच। खजहजा = खाने के फल। अनबन = भिन्न भिन्न। (५) चुहचुही = एक छोटी चिड़िया जिसे फुल-सुँघनी भी कहते हैं। सारौ = सारिका, मैना। महरि = महोख से मिलती-जुलती एक छोटी चिड़िया जिसे ग्वालिन और अहीरिन भी कहते है। हारा = हाल, अथवा लाचारी, दीनता। (६) पैग पैग पर = कदम कदम पर। पाँवरी = सीढ़ी।

मठ मंडप चहुँ पास सँवारे। तपा जपा सब आसन मारे॥
कोइ सु ऋषीसुर, कोइ सन्यासी। कोई रागजती बिसवासी॥
कोई ब्रह्मचार पथ लागे। कोइ सो दिगंवर बिचरहिं नाँगे॥
कोई सु महेसुर जंगम जती। कोइ एक परखे देवी सती॥
कोइ सुरसती कोई जोगी। कोइ निरास पथ बैठ बियोगी॥

सेवरा, खेवरा, बानपर, सिध. साधक, अवधूत।
आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत॥ ६॥

मानसरोदक बरनौं काहा। भरा समुद अस अति अवगाहा॥
पानि मोति अस निरमल तासू। अमृत आनि कपूर सुबासू॥
लंकदीप कै सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई॥
खँड खँड सीढ़ी भईं गरेरी। उतरहि चढ़हिं लोग चहुँ फिरी॥
फूला कँवल रहा होइ राता। सहस सहस पखुरिन कर छाता॥
उलथहिं सीप, मोति उतराहीं। चुगहि हंस औ केलि कराहीं॥
खनि पतार पानी तहँ काढ़ा। छीरसमुद निकसा हुत बाढ़ा*॥

ऊपर पाल चहूँ दिसि अमृत-फल सब रूख।
देखि रूप सरवर कै गै पियास औ भूख॥ ७॥

पानि भरै आवहि पनिहारी। रूप सुरूप पदमिनी नारी॥
पदुमगंध तिन्ह अंग बसाहीं। भँवर लागि तिन्ह सँग फिराहीं॥
लंक-सिंघिनी, सारँगनैनी। हंसगामिनी कोकिलबैनी॥
आवहि झुंड सो पाँतिहि पाँती। गवन सोहाइ सु भाँतिहि भाँती॥
कनक कलस मुखचंद दिपाहीं। रहस केलि सन आवहि जाहीं॥
जा सहुँ वै हेरै चख नारी। बाँक नैन जनु हनहिं कटारी॥
केस मेघावर सिर ता पाई। चमकहि दसन बीजु कै नाईं॥

माथे कनक गागरी आवहि रूप अनूप।†
जेहि के अस पनहारी सो रानी केहि रूप?॥ ८॥

---

ब्रह्मचार = ब्रह्मचर्य्य। सुरसती = सरस्वती (दसनामियो मे)। खेवरा = सेवड़ों का एक भेद। (७) भईं = घूमी हैं। गरेरी = चक्करदार। पाल = ऊँचा बाँध या किनारा, भीटा। (८) मेघावर = बादल की घटा। ता पाईं = पैर तक। बीजु = बिजली।

*कुछ प्रतियों मे इस चौपाई के स्थान पर यह है—कतक पखि पौरहिं अति लोने। जानहु चित्र लिखे सब सोने॥

† पाठांतर—मानहु मैन-मूरती अछरी बरन अनूप।

ताल तलाव बरनि नहिं जाहीं। सूझै वार पार किछु नाहीं॥
फूले कुमुद सेत उजियारे। मानहुँ उए गगन महं तारे॥
उतरहि मेघ चढ़हि लेइ पानी। चमकहिं मच्छ बीजु कै बानी॥
पौरहिं पंख सुसंगहिं संगा। सेत पीत राते बहु रंगा॥
चकई चकवा केलि कराहीं। निसि के बिछोह, दिनहि मिलि जाहीं॥
कुररहि सारस करहि हुलासा। जीवन मरन सो एकहि पासा॥
बोलहि सोन ढेक बगलेंदी। रही अबोल मीन जल-भेंदी॥

नग अमोल तेहि तालहि दिनहिं बरहि जस दीप।
जो मरजिया होइ तहँ सो पावै वह सीप॥ ९॥

आस-पास बहु अमृत बारी। फरीं अपूर, होइ रखवारी॥
नारँग नीबू सुरँग जँभीरा। औ बदाम बहु भेद अँजीरा॥
गलगल तुरँज सदा फर फरे। नारँग अति राते रस भरे॥
किसमिस सेव फरे नौ पाता। दारिउँ दाख देखि मन राता॥
लागि सुहाई हरफारयोरी। उनै रही केरा कै घौरी॥
फरे तूत कमरख औ न्योजी। रायकरौंदा बेर चिरौंजी॥
संगतरा व छुहारा दीठे। और खजहजा खाटे मीठे॥

पानि देहि खँड़वानी कुवहि खाँड़ बहु मेलि।
लागी घरी रहट कै सीचहि अमृतबेलि॥१०॥

पुनि फुलवारि लागि चहुँ पासा। विरिछ बेधि चंदन भइ बासा॥
बहुत फूल फूली घनबेली। केवड़ा चंपा कुंद चमेली॥
सुरँग गुलाल कदम और कूजा। सुगँध बकौरी गंधरव पूजा॥
जाही जूही बगुचन लावा। पुहुप सुदरसन लाग सुहावा॥
नागेसर सदबरग नेवारीं। औ सिंगारहार फुलवारी॥
सोनजरद फूलीं सेवती। रूपमंजरी और मालती॥
मौलसिरी बेइलि औ करना। सबै फूल फूले बहुबरना॥

(९) बानी=वर्ण, रंग, चमक। सोन, ढेक, बग, लेदी=ताल की चिड़िया। मरजिया=जान जोखों में डालकर विकट स्थानों से व्यापार की वस्तुएँ लानेवाले, जीवकिया, जैसे, गोताखोर। (१०) हरफारयोरी=लवली। न्योजी=लीची। खँड़वानी=खाँड़ का रस। (११) कूजा=कुब्जक। पहाड़ी या जंगली गुलाब जिसके फूल सफेद होते हैं। घनबेली=बेला की एक जाति। नागेसर=नागकेसर। बकौरी=बकावली। बगुचा=(गट्ठा) ढेर, राशि। सिंगार हार=हरसिंगार। शेफालिक।

तेहि सिर फूल चढ़हि वै जेहि माथे मनि-भाग।
आछहि सदा सुगंध बहु जनु बसंत औ फाग ॥११॥

सिंघलनगर देखु पुनि बसा। धनि राजा अस जे कै दसा॥
ऊँची पौरी ऊच अवासा। जनु कैलास इंद्र कर बासा॥
राव रंक सब घर घर सुखी। जो दीखै सो हँसता-मुखी॥
रचि रचि साजे चंदन चौरा। पोतें अगर मेद औ गोरा॥
सब चौपारहि चंदन खभा। ओठँघि सभापति बैठे सभा॥
मनहुँ सभा देवतन्ह कर जुरी। परी दीठि इंद्रासन पुरी॥
सबै गुनी औ पंडित ज्ञाता। संसकिरित सबके मुख बाता॥
अस कै मंदिर सँवारे जनु सिवलोक अनूप।
घर घर नारि पदमिनी मोहहिं दरसन-रूप ॥१२॥

पुनि देखी सिंघल कै हाटा। नवो निद्धि लछिमी सब बाटा॥
कनक हाट सब कुहकुहें लीपी। बैठ महाजन सिंघलदीपी॥
रचहि हथौड़ा रूपन ढारी। चित्र कटाव अनेक सँवारी॥
सोन रूप भल भयउ पसारा। धवल सिरी पोतहि घर बारा॥
रतन पदारथ मानिक मोती। हीरा लाल सो अनबन जोती॥
औ कपूर बेना कस्तूरी। चंदन अगर रहा भरपूरी॥
जिन्ह एहि हाट न लीन्ह बेसाहा। ता कहँ आन हाट कित लाहा?॥
कोई करै बेसाहनी, काहू केर बिकाइ।
कोई चलै लाभ सन, कोई मूर गँवाइ ॥१३॥

पुनि सिंगारहाट भल देसा। किए सिंगार बैठी तहँ बेसा॥
मुख तमोल, तन चीर कुसुंभी। कानन कनक जड़ाऊ खुंभी॥
हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाही। नर मोहहि सुनि, पैग न जाहीं॥
भौंह धनुप, तिन्ह नैन अहेरी। मारहिं बान सान सौ फेरी॥
अलक कपोल डोल, हँसि देही। लाइ कटाछ मारि जिउ लेहीं॥
कुच कंचुक जानौ जुग सारी। अंचल देहि सुभावहि ढारी॥

---

(१२) मेद=मेदा, एक सुगधित जड़। गोरा=गोरोचन। ओठँघि=पीठ टिकाकर। (१३) कुहकुहँ=कुंकुम, केसर। धवल=सफेदी। सिरी=श्री, रोली, लाल बुकनी (श्री का चिन्ह तिलक मे रोली से बनाते है इसी से रोली को श्री कहते है)। दूकानदार प्रायः सिंदूर रोली आदि के चिह्न दूकानो पर बनाते हैं। बेना=खस वा गधबेन। बेसाहनी=खरीद। (१४) बेसा=वेश्या। खुंभी=कान मे पहनने का एक गहना, लौग या कील। सारी=सारि, पासा।

केत खिलार हारि तेहि पासा। हाथ झारि उठि चलहि निरासा॥
चेटक लाइ हरहिं मन जब लहि होइ गथ फेंट।
सॉठ नाठि उठि भए वटाऊ, ना पहिचान न भेंट॥१४॥
लेइ के फूल बैठि फुलहारी। पान अपूरव धरे सँवारी॥
सोंधा सबै बैठ लै गाँधी। फूल कपूर खिरौरी बाँधी॥
कतहूँ पंडित पढ़हि पुरानू। धरमपंथ कर करहि बखानू॥
कतहूँ कथा कहै किछु कोई। कतहूँ नाच-कूद भल होई॥
कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा। कतहुँ पखंडी काठ नचावा॥
कतहूँ नाद सबद होइ भला। कतहूँ नाटक चेटक-कला॥
कतहुँ काहु ठगविद्या लाई। कतहुँ लेहि मानुष बौराई॥
चरपट चोर गँठिछोरा मिले रहहिं ओहि नाच।
जो ओहि हाट सजग भा गथ ताकर पै बाँच॥१५॥
पुनि आए सिंघल गढ़ पासा। का बरनौं जनु लाग अकासा॥
तरहिं करिन्ह बासुकि कै पीठी। ऊपर इंद्र लोक पर दीठी॥
परा खोह चहुँ दिसि अस बाँका। काँपै जाँघ, जाइ नहिं झाँका॥
अगम असूझ देखि डर खाई। परै सो सपत-पतारहिं जाई॥
नव पौरी बाँकी, नवखंडा। नवौ जो चढ़ै जाइ बरम्हंडा॥
कंचन कोट जरे नग सीसा। नखतहि भरी बीजु जनु दीसा॥
लंका चाहि ऊँच गढ़ ताका। निरखि न जाइ, दीठि तन थाका॥
हिय न समाइ दीठि नहि, जानहुँ ठाढ़ सुमेर।
कहँ लगि कहौं ऊँचाई, कहँ लगि बरनौं फेर॥१६॥
निति गढ़ बाँचि चलै ससि सूरू। नाहि त होइ बाजि रथ चूरू॥
पौरी नवौ बज्र कै साजी। सहस सहस तहँ बैठे पाजी॥
फिरहिं पाँच कोतवार सुभौरी। काँपै पावै चपत वह पौरी॥
पौरिहि पौरि सिंह गढ़ि काढ़े। डरपहि लोग देखि तहँ ठाढ़े॥
बहुविधान वै नाहर गढ़े। जनु गाजहि, चाहहि सिर चढ़े॥
टारहिं पूँछ, पसारहिं जीहा। कुंजर डरहि कि गुंजरि लीहा॥

---

गथ = पूँजी। (१४) सॉठ = पूँजी। नाठि = नष्ट हुई। (१५) सोधा = सुगंध द्रव्य। गाँधी = गंधी। खिरौरी = केवड़ा देकर बाँधी हुई खैर या कत्थे की टिकिया। चिरहँटा = बहेलिया। पखंडी = कठपुतलीवाला। (१६) करिन्ह = दिग्गजों। (१७) पाजी = पैदल सिपाही। कोतवार = कोटपाल, कोतवाल। गुजरि लीहा = गरज कर लिया।

कनक-सिला गढ़ि सीढ़ी लाई। जगमगाहिं गढ़ ऊपर ताईं॥
नवौ खंड नव पौरी, औ तहँ बज्र-केवार।
चारि बसेरे सौ चढ़ै, सत सौं उतरै पार॥१७॥

नव पौरी पर दसवँ दुवारा। तेहि पर बाज राज-घरियारा॥
घरी सो बैठि गनै घरियारी। पहर पहर सो आपनि बारी॥
जबहीं घरी पूजि तेइँ मारा। घरी घरी घरियार पुकारा॥
परा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा। का निचिंत माटी कर भाँड़ा?॥
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ काँचे। आएहु रहै न थिर होइ बाँचे॥
घरी जो भरी घटी तुम्ह आऊ। का निचिंत होइ सोउ बटाऊ?॥
पहरहिं पहर गजर निति होई। हिया बजर, मन जाग न सोई॥
मुहमद जीवन-जल भरन, रहँट-घरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी, ढरी, जनम गा बीति॥१८॥

गढ़ पर नीर खीर दुइ नदी। पनिहारी जैसे दुरपदी॥
और कुंड एक मोतीचूरू। पानी अमृत, कीच कपूरू॥
ओहि क पानि राजा पै पीया। बिरिध होइ नहिं जौ लहि जीया॥
कंचन-बिरिछ एक तेहि पासा। जस कलपतरु इंद्र-कबिलासा॥
मूल पतार, सरग ओहि साखा। अमरबेलि को पाव, को चाखा?॥
चाँद पात औ फूल तराईं। होइ उजियार नगर जहँ ताईं॥
वह फल पावै तप करि कोई। बिरिध खाइ तौ जोवन होई॥
राजा भए भिखारी सुनि वह अमृत भोग।
जेइ पावा सो अमर भा, ना किछु व्याधि न रोग॥१९॥

गढ़ पर बसहिं झारि गढ़पती। असुपति, गजपति, भू-नर-पती॥
सब धौराहर सोने साजा। अपने अपने घर सब राजा॥
रूपवंत धनवंत सभागे। परस पखान पौरि तिन्ह लागे॥
भोग-बिलास सदा सब माना। दुख चिंता कोइ जनम न जाना॥
मँदिर मँदिर सब के चौपारी। बैठि कुँवर सब खेलहिं सारी॥

---

बसेग = टिकान। (१८) रहँट-घरी = रहट में लगा छोटा घड़ा। घरियार = घंटा। घरी भरी = घड़ी पूरी हुई (पुराने समय मे समय जानने के लिये पानी भरी नाँद में एक घडिया या कटोरा महीन छेद करके तैरा दिया जाता था। जब पानी भर जाने से घड़िया डूब जाती थी तब एक घड़ी का बीतना माना जाता था। (२०) परस पखान = स्पर्शमणि, पारस पत्थर। सारी = पासा।

पासा ढरहिं खेल भल होई। खड़गदान सरि पूज न कोई॥
भाँट बरनि कहि कीरति भली। पावहि हस्ति घोड़ सिंघली॥
मंदिर मंदिर फुलवारी, चोवा चंदन बास।
निसि दिन रहै बसंत तहँ छवौ ऋतु बारह मास॥ २०॥

पुनि चलि देखा राज-दुआरा। मानुष फिरहिं पाइ नहिं बारा॥
हस्ति सिंघली बाँधे बारा। जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा॥
कौनौ सेत, पीत, रतनारे। कौनौ हरे, धूम औ कारे॥
बरनहिं बरन गगन जस मेघा। औ तिन्ह गगन पीठि जनु ठेघा॥
सिंघल के बरनौ सिंघली। एक एक चाहि एक एक बली॥
गिरि पहार वै पैगहि पेलहिं। बिरिछ उचारि डारि मुख मेलहि॥
माते तेइ सब गरजहिं बाँधे। निसि-दिन रहहिं महाउत काँधे॥
धरती भार न अगवै, पावँ धरत उठ हालि।
कुरुम टुटै, भुइँ फाटै तिन्ह हस्तिन्ह के चालि॥ २१॥

पुनि बाँधे रजवार तुरंगा। का बरनौं जस उन्हकै रंगा॥
लील, समंद चाल जग जाने। हाँसुल, भौंर, गियाह बखाने॥
हरे, कुरंग, महुअ बहु भाँती। गरर, कोकाह, बुलाह सु पाँती॥
तीख तुखार चाँड़ औ बाँके। सँचरहि पौरि ताज बिनु हाँके॥
मन ते अगमन डोलहिं बागा। लेत उसास गगन सिर लागा॥
पौन-समान समुद पर धावहि। बूड़ न पाँव, पार होइ आवहि॥
थिर न रहहिं, रिस लोह चबाहीं। भाँजहिं पूँछ, सीस उपराहीं॥
अस तुखार सब देखे जनु मन के रथवाह।
नैन-पलक पहुँचावहिं जहँ पहुचा कोइ चाह॥ २२॥

---

भार = बिल्कुल या समूह। सरि पूज = बराबरी को पहुँचता है। खड़गदान = तलवार चलाना। (२१) बारा = द्वार। ठेघा = सहारा दिया। अँगवै = शरीर पर सहती है। (२२) रजवार = राजद्वार। समंद = बादामी रंग का घोड़ा। हाँसुल = कुम्मैत हिनाई, मेहँदी के रंग का और पैर कुछ काले। भौंर = मुश्की। कियाह = ताड़ के पके फल के रंग का। हरे = सब्ज़। कुरंग = लाल के रंग का या नीला कुम्मैत। महुअ = महुए के रंग का। गरर = लाल और सफेद मिले रोएँ का, गर्रा। कोकाह = सफेद रंग का। बुलाह = बोलाह, गर्दन और पूँछ के बाल पीले। ताजा = ताजियाना, चाबुक। अगमन = आगे। तुखार = तुषार देश के घोड़े, यहाँ घोड़े।

राजसभा पुनि देख बईठी। इंद्रसभा जनु परि गै डाठी॥
धनि राजा असि सभा सँवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी॥
मुकुट बाँधि सब बैठे राजा। दर निसान नित जिन्हके बाजा॥
रूपवंत, मनि दिपै लिलाटा। माथे छात, बैठ सब पाटा॥
मानहुँ कँवल सरोवर फूले। सभा क रूप देखि मन भूले॥
पान कपूर मेद कस्तूरी। सुगंध बास भरि रही अपूरी॥
साँझ ऊच इंद्रासन साजा। गंधबसेन बैठ तहँ राजा॥
छत्र गगन लगि ताकर, सूर तवै जस आप।
सभा कँवल अस बिगसै, माथे बड़ परताप॥ २३॥
साजा राजमंदिर कैलासू। सोने कर सब धरति अकासू॥
सात खंड धौराहर साजा। उहै सँवारि सकै अस राजा॥
हीरा ईंट, कपूर गिलावा। औ नग लाइ सरग लै लावा॥
जावत सबै उरेह उरेहे। भाँति भाँति नग लाग उबेहे॥
भाव कटाव सब अनवत भाँती। चित्र कोरि कै पाँतिहिं पाँती॥
लाग खंभ-मनि-मानिक जरे। निसि दिन रहहिं दीप जनु बरे॥
देखि धौरहर कर उँजियारा। छपि गए चाँद सुरुज औ तारा॥
सुना सात बैकुंठ जस तस साजे खँड सात।
बेहर बेहर भाव तस खंड खंड उपरात॥ २४॥
बरनौं राजमँदिर रनिवासू। जनु अछरीन्ह भरा कबिलासू॥
सोरह सहस पदमिनी रानी। एक एक तें रूप बखानी॥
अति सुरूप औ अति सुकुवाँरी। पान फूल के रहहिं अधारी॥
तिन्ह ऊपर चंपावति रानी। महा सुरूप पाट-परधानी॥
पाट बैठि रह किए सिंगारू। सब रानी ओहि करहिं जोहारू॥
निति नौरंग सुरंगम सोई। प्रथम बैस नहिं सरवरि कोई॥
सकल दीप महँ जेती रानी। तिन्ह महँ दीपक बारह-बानी॥
कुँवरि बतीसो-लच्छनी अस सब माँह अनूप।
जावत सिंघलदीप के सबै बखानै रूप॥ २५॥

---

(२३) दर = दरवाजा। मेद = मेदा, एक प्रकार की सुगंधित जड़। तवै = तपता है (२४) उरेह = चित्र। उबेहे = चुने हुए, बीछे हुए। कोरि कै = खोद कर। बेहर बेहर = अलग अलग। (२५) बारह-बानी = द्वादशवर्णी, सूर्य्य की तरह चमकनेवाली।

## ( ३ ) जन्म-खंड

चंपावति जो रूप सँवारी। पदमावति चाहै औतारी॥
भै चाहै असि कथा सलोनी। मेटि न जाइ लिखी जस होनी॥
सिंघलदीप भए तव नाऊँ। जो अस दिया वरा तेहि ठाऊँ॥
प्रथम सो जोति गगन निरमई। पुनि सो पिता माथे मनि भई॥
पुनि वह जोति मातु-घट आई। तेहि ओदर आदर बहु पाई॥
जस अवधान पूर होइ मासू। दिन दिन हिये होइ परगासू॥
जस अंचल महँ छिपै न दीया। तस उँजियार दिखावै हीया॥
सोने मँदिर सँवारहि औ चंदन सब लीप।
दिया जो मनि सिवलोक महँ उपना सिंघलदीप॥ १॥

भए दस मास पूरि भइ घरी। पदमावति कन्या औतरी॥
जानौ सूर किरिन-हुति काढ़ी। सूरुज-कला घाटि, वह बाढ़ी॥
भा निसि महँ दिन कर परकासू। सब उजियार भएउ कविलासू॥
इते रूप मूरति परगटी। पूनौ ससी छीन होइ घटी॥
घटतहि घटत अमावस भई। दिन दुइ लाज गाड़ि भुइँ गई॥
पुनि जो उठी दुइज होइ नई। निहकलंक ससि विधि निरमई॥
पदुमगंध वेधा जग वासा। भौंर पतंग भए चहुँ पासा॥
इते रूप भै कन्या जेहिं सरि पूज न कोइ।
धनि सो देस रूपवंता जहाँ जन्म अस होइ॥ २॥

भै छठि राति छठीं सुख मानी। रहस कूद सौं रैनि बिहानी॥
भा बिहान पंडित सब आए। काढ़ि पुरान जनम अरथाए॥
उत्तिम घरी जनम भा तासू। चाँह उआ भुइँ, दिपा अकासू॥
कन्यारासि उदय जग कीया। पदमावती नाम अस दीया॥
सूर प्रसंसै भएउ फिरीरा। किरिन जामि, उपना नग हीरा॥
तेहि ते अधिक पदारथ करा। रतन जोग उपना निरमरा॥

---

( १ ) उपना = उत्पन्न हुआ। ( २ ) बिहान = सवेरा। ( ३ ) फिरीरा भएउ = फिरेरे के समान चक्कर लगाता हुआ। रतन = राजा रतनसेन की ओर लक्ष्य है। निरमरा = निर्मल।

सिंहलदीप भए औतारू। जंबूदीप जाइ जमवारू॥
राम अजुध्या ऊपने लछन बतीसो संग।
रावन रूप सौं भूलिहि दीपक जैस पतंग॥ ३॥
कहेन्हि जनमपत्री जो लिखी। देइ असीस बहुरे जोतिषी॥
पाँच बरस महँ भय सो बारी। दीन्ह पुरान पढ़ै बैसारी॥
भै पदमावति पंडित गुनी। चहूँ खंड के राजन्ह सुनी॥
सिंघलदीप राजघर बारी। महा सुरूप दई औतारी॥
एक पदमिनी औ पंडित पढ़ी। दहुँ केहि जोग गोसाईं गढ़ी॥
जा कहँ लिखी लच्छि घर होनी। सो अस पाव पढ़ी औ लोनी॥
सात दीप के बर जो ओनाही। उत्तर पावहिं, फिरि फिरि जाहीं॥
राजा कहै गरब कै अहौं इंद्र सिवलोक।
सो सरवरि है मोरे, कासौ करौं बरोक॥ ४॥
बारह बरस माह भै रानी। राजैं सुना सँजोग सयानी॥
सात खंड धौराहर तासू। सो पदमिनि कहँ दीन्ह निवासू॥
औ दीन्ही सँग सखी सहेली। जो सँग करै रहसि रस-केली॥
सबै नवल पिउ संग न सोईं। कँवल पास जनु बिगसी कोईं॥
सुआ एक पदमावति ठाऊँ। महा पँडित हीरामन नाऊँ॥
दई दीन्ह पंखिहि अस जोती। नैन रतन, मुख मानिक मोती॥
कंचन-बरन सुआ अति लोना। मानहुँ मिला सोहागहिं सोना॥
रहहिं एक सँग दोउ, पढ़हिं सासतर बेद।
बरम्हा सीस डोलावहीं, सुनत लाग तस भेद॥ ५॥
भै उनंत पदमावति बारी। रचि रचि बिधि सब कला सँवारी॥
जग बेधा तेहि अंग-सुबासा। भँवर आइ लुबुधे चहुँ पासा॥
बेनी नाग मलयगिरि पैठी। ससि माथे होइ दूइज बैठी॥
भौंह धनुक साधे सर फेरै। नयन कुरंग भूलि जनु हेरै॥
नासिक कीर, कँवल मुख सोहा। पदमिनि रूप देखि जग मोहा॥
मानिक अधर, दसन जनु हीरा। हिय हुलसे कुच कनक-गँभीरा॥
केहरि लंक, गवन गज हारे। सुरनर देखि माथ भुइँ धारे॥

---

जमवारू = यमद्वार। (४) बैसारि दीन्ह = बैठा दिया। बरोक = (बर + रोक) बरच्छा। (५) कोईं = कुमुदिनी। (६) उनंत = ओनंत, भार से झुकी (यौवन के), 'बारी' शब्द के कुमारी और बगीचा दो अर्थ लेने से इसकी संगति बैठती है।

जग कोइ दीठि न आवै आछहि नैन अकास।
जोगि जती संन्यासी तप साधहि तेहि आस ॥ ६ ॥

एक दिवस पदमावति रानी। हीरामनि तइँ कहा सयानी ॥
सुनु हीरामनि कहौं बुझाई। दिन दिन मदन सतावै आई ॥
पिता हमार न चालै बाता। त्रासहि बोलि सकै नहिं माता ॥
देस देस के वर मोहि आवहिं। पिता हमार न आँख लगावहिं ॥
जोवन मोर भयउ जस गंगा। देह देह हम्ह लाग अनंगा ॥
हीरामन तब कहा बुझाई। विधि कर लिखा मेटि नहिं जाई ॥
अज्ञा देउ देखौं फिरि देसा। तोहि जोग वर मिलै नरेसा ॥
जौ लगि मैं फिरि आवौं मन चित धरहु निवारि।
सुनत रहा कोइ दुरजन, राजहि कहा बिचारि ॥ ७ ॥

राजा सुना दीठि भै आना। बुधि जो देहि सँग सुआ सयाना ॥
भएउ रजायसु मारहु सूआ। सूर सुनाव चाँद जहँ ऊआ ॥
सत्रु सुआ के नाऊ बारी। सुनि धाए जस धाव मँजारी ॥
तब लगि रानी सुआ छपावा। जब लगि व्याध न आवै पावा ॥
पिता क आयसु माथे मोरे। कहहु जाय बिनवौं कर जोरे ॥
पंखि न कोई होइ सुजानू। जानै भुगुति, कि जान उड़ानू ॥
सुआ जो पढ़ै पढ़ाए बैना। तेहि कत बुधि जेहि हिये न नैना ॥
मानिक मोती देखि वह हिये न ज्ञान करेइ।
दारिउँ दाख जानि कै अबहिं ठोर भरि लेइ ॥ ८ ॥

वै तौ फिरे उतर अस पावा। बिनवा सुआ हिये डर खावा ॥
रानी तुम जुग जुग सुख पाऊ। होइ अज्ञा बनवास तौ जाऊँ ॥
मोतिहिं मलिन जो होइ गइ कला। पुनि सो पानि कहाँ निरमला ? ॥
ठाकुर अंत चहै जेहि मारा। तेहि सेवक कर कहाँ उवारा ? ॥
जेहि घर काल-मजारी नाचा। पंखिहि पाउँ जीउ नहिं बाँचा ॥
मैं तुम्ह राज बहुत सुख देखा। जौ पूछहि देइ जाइ न लेखा ॥
जो इच्छा मन कीन्ह सो जेवा। यह पछितावा चल्यो बिनु सेवा ॥
मारै सोइ निसोगा, डरै न अपने दोस।
केरा केलि करै का जौ भा बैरि परोस ॥ ९ ॥

---

( ८ ) मजारी = मार्जारी, बिल्ली। ( ९ ) पानि = आब, आभा, चमक। जेवा = खाया। बैरि = बेर का पेड़।

रानी उतर दीन्ह कै माया। जौ जिउ जाइ रहै किमि काया ?॥
हीरामन ! तू प्रान परेवा। धोख न लाग करत तोहि सेवा॥
तोहिं सेवा बिछुरन नहि आखौं। पींजर हिये घालि कै राखौं॥
हौं मानुस, तू पंखि पियारा। धरम क प्रीति तहाँ केइ मारा ?॥
का सो प्रीति तन माहँ बिलाई ?। सोइ प्रीति जिउ साथ जो जाई॥
प्रीति मार लै हियै न सोचू। ओहि पंथ भल होइ कि पोचू॥
प्रीति-पहार-भार जो काँधा। सो कस छुटै, लाइ जिउ बाँधा॥

सुअटा रहै खुरुक जिउ, अबहिं काल सो आव।
सत्रु अहै जो करिया कबहुँ सो बोरै नाव॥ १०॥

---

(१०) आखौं = (सं० आकांक्षा) चाहती हूँ, अथवा (सं० आख्यान, पंजाबी—आखन) कहती हूँ। करिया = कर्णधार, मल्लाह।

## ( ४ ) मानसरोदक-खंड

एक दिवस पून्यो तिथि आई। मानसरोदक चली नहाई॥
पदमावति सब सखी बुलाई। जनु फुलवारि सबै चलि आई॥
कोइ चंपा कोइ कुंद सहेली। कोइ सु केत, करना, रस बेली॥
कोइ सु गुलाल सुदरसन राती। कोइ सो बकावरि-बकुचन भाँती॥
कोइ सो मौलसिरि, पुहपावती। कोइ जाही, जूही सेवती॥
कोई सोनजरद, कोइ केसर। कोइ सिंगार-हार नागेसर॥
कोइ कूजा सदबर्ग चमेली। कोई कदम सुरस रस-बेली॥
चलीं सबै मालति सग फूलीं कवँल कुमोद।
बेधि रहे गन गँधरव बास-परमदामोद॥ १॥
खेलत मानसरोवर गईं। जाइ पाल पर ठाढ़ी भईं॥
देखि सरोवर हँसैं कुलेली। पदमावति सौं कहहिं सहेली॥
ए रानी! मन देखु विचारी। एहि नैहर रहना दिन चारी॥
जौ लगि अहै पिता कर राजू। खेलि लेहु जो खेलहु आजू॥
पुनि सासुर हम गवनब काली। कित हम, कित यह सरवर-पाली॥
कित आवन पुनि अपने हाथा। कित मिलि कै खेलब एक साथा॥
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेही। दारुन ससुर न निसरै देहीं॥
पिउ पियार सिर ऊपर, पुनि सो करै दहुँ काह।
दहुँ सुख राखै की दुख, दहुँ कस जनम निबाह॥ २॥
मिलहि रहसि सब चढ़हि हिंडोरी। भूलि लेहि सुख बारी भोरी॥
भूलि लेहु नैहर जब ताईं। फिरि नहि भूलन देइहि साईं॥
पुनि सासुर लेइ राखिहि तहाँ। नैहर चाह न पाउब जहाँ॥
कित यह धूप, कहाँ यह छाहाँ। रहब सखी बिनु मंदिर माहाँ॥
गुन पूछिहि औ लाइहि दोखू। कौन उतर पाउब तहँ मोखू॥
सासु ननद के भौंह सिकोरे। रहब सँकोचि दुवौ कर जोरे॥

---

( १ ) केत=केतकी। करना=एक फूल। कूजा=सफेद जंगली गुलाब।
( २ ) पाल=बाँध, भीटा, किनारा। ( ३ ) चाह=खबर।

कित यह रहसि जो आउव करना। ससुरेइ अंत जनम दुख भरना॥
कित नैहर पुनि आउव, कित ससुरे यह खेल।
आपु आपु कहँ होइहि परब पंखि जस डेल॥ ३॥

सरवर तीर पदमिनी आई। खोंपा छोरि केस मुकलाई॥
ससि-मुख, अंग मलयगिरि वासा। नागिन झाँपि लीन्ह चहुँ पासा॥
ओनई घटा परी जग छाहाँ। ससि कै सरन लीन्ह जनु राहाँ॥
छपि गै दिनहिं भानु कै दसा। लेइ निसि नखत चाँद परगसा॥
भूलि चकोर दीठि मुख लावा। मेघघटा महँ चंद देखावा॥
दसन दामिनी, कोकिल भाखी। भौंहै धनुख गगन लेइ राखी॥
नैन-खँजन दुइ केलि करहीं। कुच-नारँग मधुकर रस लेहीं॥
सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहि लेइ।
पावँ छुवै मकु पावौं एहि मिस लहरहि देइ॥ ४॥

धरी तीर सब कंचुकि सारी। सरवर महँ पैठीं सब वारी॥
पाइ नीर जानौं सब वेली। हुलसहिं करहिं काम कै केली॥
करिल केस बिसहर विस-भरे। लहरैं लेहि कवँल मुख धरे॥
नवल वसंत सँवारी करी। होइ प्रगट जानहु रस-भरी॥
उठी कोप जस दारिवँ दाखा। भई उनंत पेम कै साखा॥
सरिवर नहिं समाइ संसारा। चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा॥
धनि सो नीर ससि तरई ऊईं। अब कित दीठ कमल औ कूईं॥
चकई बिछुरि पुकारै, कहाँ मिलौं, हो नाहँ।
एक चाँद निसि सरग महँ, दिन दूसर जल माहँ॥ ५॥

लागीं केलि करैं मझ नीरा। हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा॥
पदमावति कौतुक कहँ राखी। तुम ससि होहु तराइन्ह साखी॥
वाद मेलि कै खेल पसारा। हार देइ जो खेलत हारा॥
सँवरिहि साँवरि, गोरिहि गोरी। आपनि आपनि लीन्ह सो जोरी॥
बूझि खेल खेलहु एक साथा। हार न होइ पराए हाथा॥
आजुहि खेल, बहुरि कित होई। खेल गए कित खेलै कोई?॥

---

डेल=बहेलिए का डला। (४) खोंपा=चोटी का गुच्छा, जूरा। मुकलाई=खोलकर। मकु=कदाचित्। (५) करिल=काले। बिसहर=विषधर, साँप। करी=कली। कोंप=कोंपल। उनंत=झुकती हुई। (६) साखी=निर्णय-कर्त्ता, पंच। बाद मेलि कै=बाजी लगाकर।

धनि सो खेल खेल सह पेमा। रउताई औ कूसल खेमा ?॥
मुहमद बाजी पेम कै ज्यो भावै त्यों खेल।
तिल फूलहि के सँग ज्यों होइ फुलायल तेल॥ ६॥
सखी एक तेइ खेल न जाना। भै अचेत मनि-हार गवाँना॥
कवँल डार गहि भै बेकरारा। कासौ पुकारौं आपन हारा॥
कित खेलै आइउँ एहि साथा। हार गँवाइ चलिउँ लेइ हाथा॥
घर पैठत पूँछब यह हारू। कौन उतर पाउब पैसारू॥
नैन सीप आँसू तस भरे। जानौ मोति गिरहिं सब ढरे॥
सखिन कहा बौरी कोकिला। कौन पानि जेहि पौन न मिला ?॥
हार गँवाइ सो ऐसै रोवा। हेरि हेराइ लेइ जौ खोवा॥
लागी सब मिलि हेरै बूड़ि बूड़ि एक साथ।
कोइ उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ॥ ७॥
कहा मानसर चाह सो पाई। पारस-रूप इहाँ लगि आई॥
भा निरमल तिन्ह पायँन्ह परसे। पावा रूप रूप के दरसे॥
मलय-समीर बास तन आई। भा सीतल, गै तपनि बुझाई॥
न जनौं कौन पौन लेइ आवा। पुन्य-दसा भै पाप गँवावा॥
ततखन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद बिहँसाना॥
बिगसा कुमुद देखि ससि-रेखा। भै तहँ ओप जहाँ जोइ देखा॥
पावा रूप रूप जस चहा। ससि-मुख जनु दरपन होइ रहा॥
नयन जो देखा कवँल भा, निरमल नीर सरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन-जोति नग हीर॥ ८॥

---

रउताई = रावत या स्वामी होने का भाव, ठकुराई। फुलायल = फुलेल। (८)
चाह = खबर, आहट।

## ( ५ ) सुआ-खंड

पदमावति तहँ खेल दुलारी। सुआ मँदिर महँ देखि मजारी॥
कहेसि चलौ जौ लहि तन पाँखा। जिउ लै उड़ा ताकि बन-ढाँखा॥
जाइ परा वनखँड जिउ लीन्हें। मिले पंखि, बहु आदर कीन्हें॥
आनि धरेन्हि आगे फरि साखा। भुगुति भेंट जौ लहि विधि राखा॥
पाइ भुगुति सुख तेहि मन भएऊ। दुख जो अहा बिसरि सब गएऊ॥
ए गुसाइँ तूँ ऐस विधाता। जावत जीव सबन्ह भुकदाता॥
पाहन महँ नहिं पतँग बिसारा। जहँ तोहि सुनिर दीन्ह तुइँ चारा॥

तौ लहि सोग बिछोह कर भोजन परा न पेट।
पुनि बिसरन भा सुमिरना जब संपति भै भेंट॥ १॥

पदमावति पहँ आइ भँडारी। कहेसि मँदिर महँ परी मजारी॥
सुआ जो उतर देत रह पूछा। उड़िगा, पिंजर न बोलै छूँछा॥
रानी सुना सबहिं सुख गएऊ। जनु निसि परी, अस्त दिन भएऊ॥
गहने गही चाँद कै करा। आँसु गगन जस नखतन्ह भरा॥
टूट पाल सरवर बहि लागे। कवँल बूड़, मधुकर उड़ि भागे॥
एहि बिधि आँसु नखत होइ चूए। गगन छाँड़ि सरवर महँ ऊए॥
चिहुर चुइँ मोतिन कै माला। अब सँकेत बाँधा चहुँ पाला॥

उड़ि यह सुअटा कहँ बसा खोजु सखी सो बासु।
दहुँ है धरती की सरग, पौन न पावै तासु॥ २॥

चहूँ पास समुझावहिं सखी। कहाँ सो अब पाउब, गा पँखी॥
जौ लहि पींजर अहा परेवा। रहा बंदि महँ, कीन्हेसि सेवा॥
तेहि बंदि हुति छुटै जो पावा। पुनि फिरि बंदि होइ कित आवा?॥
वै उड़ान-फर तहियै खाए। जब भा पंखि, पाँख तन आए॥
पींजर जेहिक सौंपि तेहि गएउ। जो जाकर सो ताकर भएउ॥
दस दुवार जेहि पींजर माँहा। कैसे बाँच मँजारी पाहाँ?॥

---

(१) बनढाँख = ढाक का जंगल, जगल। अहा = था। (२) पाल = बाँध, भीटा, किनारा। चिहुर = चिकुर, केश। सँकेत = सँकरा, तग। (३) हुति = से।

यह धरती अस केतन लीला। पेट गाढ़ अस, बहुरि न ढीला* ॥
जहाँ न राति न दिवस है, जहाँ न पौन न पानि ॥
तेहि वन सुअटा चलि बसा कौन मिलावै आनि ? ॥ ३ ॥
सुऐ तहाँ दिन दस कल काटी। आय बियाध ढुका लेइ टाटी ॥
पैग पैग भुइ चापत आवा। पंखिन्ह देखि हिए डर खावा ॥
देखिय किछु अचरज अनभला। तरिवर एक आवत है चला ॥
एहि वन रहत गई हम्ह आऊ। तरिवर चलत न देखा काऊ ॥
आज तो तरिवर चल, भल नाहीं। आवहु यह बन छाँड़ि पराहीं ॥
वै तौ उड़े और वन ताका। पंडित सुआ भूलि मन थाका ॥
साखा देखि राज जनु पावा। बैठ निचित चला वह आवा ॥
पाँच बान कर खोंचा, लासा भरे सो पाँच।
पाँख भरे तन अरुझा, कित मारे बिनु बाँच ॥ ४ ॥
बँधिगा सुआ करत सुख केली। चूरि पाँख मेलेसि धरि डेली ॥
तहवाँ बहुत पंखि खरभरहीं। आपु आपु महँ रोदन करहीं ॥
बिखदाना कित होत अँगूरा। जेहि भा मरन डहन धरि चूरा ॥
जौं न होत चारा कै आसा। कित चिरिहार ढुकत लेइ लासा ? ॥
यह बिष चारै सब बुधि ठगी। औ भा काल हाथ लेइ लगी ॥
एहि झूठी माया मन भूला। ज्यों पंखी तैसै तन फूला ॥
यह मन कठिन मरै नहिं मारा। काल न देख, देख पै चारा ॥
हम तौ बुद्धि गँवावा बिष-चारा अस खाइ।
तैं सुअटा पंडित होइ कैसे बाँका आइ ? ॥ ५ ॥
सुऐ कहा हमहूँ अस भूले। टूट हिंडोल-गरब जेहि झूले ॥
केरा के बन लीन्ह बसेरा। परा साथ तहँ बैरी केरा ॥
सुख कुरवारि फरहरी खाना। ओहु बिष भा जब ब्याध तुलाना ॥

---

* पाठांतर—असुपति, गजपति भूधर कीला।

(४) ढुका = छिपकर बैठा। आऊ = आयु। काऊ = कभी। खोंचा = चिड़िया फँसाने का बाँस। (५) डेली = डली, झाबा। डहन = डैना, पर। चिरिहार = बहेलिया। ढुकत = छिपता। लगी = लग्गी, बाँस की छड़। फूला = हर्ष और गर्व से इतराया। अँगूरा = अंकुर। (६) कुरवारि = खोद-खोदकर, चोंच मार-मारकर; जैसे—धरनी नख चरनन कुरवारति—सूर। तुलाना = आ पहुँचा।

काहेक भोग विरिछ अस फरा। आइ लाइ पंखिन्ह कहँ धरा ? ॥
सुखी निचित जोरि धन करना। यह न चित आगे है मरना ॥
भूले हमहुँ गरब तेहि माहाँ। सो बिसरा पावा जेहि पाहाँ ॥
होइ निचिंत बैठे तेहि आड़ा। तब जाना खोंचा हिए गाड़ा ॥

चरत न खुरुक कीन्ह जिउ, तब रे चरा सुख सोइ।
अब जो फाँद परा गिउ, तब रोए का होइ ? ॥ ६ ॥

सुनि कै उतर आँसु पुनि पोंछे। कौन पंखि बाँधा बुधि-ओछे ॥
पंखिन्ह जौ बुधि होइ उजारी। पढ़ा सुआ कित धरै मजारी ? ॥
कित तीतिर बन जीभ उघेला। सो कित हँकरि फाँद गिउ मेला ॥
तादिन व्याध भए जिउलेवा। उठे पाँख, भा नाव परेवा ॥
भै बियाधि तिसना सँग खाधू। सूझै भुगुति, न सूझ बियाधू ॥
हमहि लोभवै मेला चारा। हमहिं गर्ववै चाहै मारा ॥
हम निचित वह आव छपाना। कौन बियाधहि दोष अपाना ॥

सो औगुन कित कीजिए जिउ दीजै जेहि काज।
अब कहना है किछु नहीं, मरट भली, पखिराज ॥ ७ ॥

---

जेहि पाहाँ = जिस ( ईश्वर ) से। गिउ = ग्रीवा, गला। ( ७ ) खाधु = खाद्य। लोभवै = लोभही ने। मरट = मौन।

## ( ६ ) रत्नसेन-जन्म-खंड

चित्रसेन चितउर गढ़ राजा। कै गढ़ कोट चित्र सम साजा॥
तेहि कुल रतनसेन उजियारा। धनि जननी जनमा अस बारा॥
पंडित गुनि सामुद्रिक देखा। देखि रूप औ लखन बिसेखा॥
रतनसेन यह कुल-निरमरा। रतन-जोति मन माथे परा॥
पदुम पदारथ लिखी सो जोरी। चाँद सुरुज जस होइ अँजोरी॥
जस मालति कहँ भौंर बियोगी। तस ओहि लागि होइ यह जोगी॥
सिंघलदीप जाइ यह पावै। सिद्ध होइ चितउर लेइ आवै॥

भोग भोज जस माना, विक्रम साका कीन्ह।
परखि सो रतन पारखी सबै लखन लिखि दीन्ह॥ १॥

---

(१) पदुम=पद्मावती की ओर लक्ष्य है। भोज=राजा भोज। लखन=लक्ष्मण।

## ( ७ ) बनिजारा-खंड

चितउरगढ़ कर एक बनिजारा। सिंघलदीप चला बैपारा॥
बाम्हन हुत एक निपट भिखारी। सो पुनि चला चलत बैपारी॥
ऋन काहू सन लीन्हेसि काढ़ी। मकु तहँ गए होइ किछु बाढ़ी॥
मारग कठिन बहुत दुख भएऊ। नाँघि समुद्र दीप ओहि गएऊ॥
देखि हाट किछु सूझ न ओरा। सबै बहुत, किछु दीख न थोरा॥
पै सुठि ऊँच बनिज तहँ केरा। धनी पाव, निधनी मुख हेरा॥
लाख करोरिन्ह बस्तु बिकाई। सहसन केरि न कोउ ओनाई॥

सबही लीन्ह बेसाहना औ घर कीन्ह बहोर।
बाम्हन तहवाँ लेइ का? गाँठि साँठि सुठि थोर॥ १॥

झूरै ठाढ़ हौ, काहे क आवा?। बनिज न मिला, रहा पछितावा॥
लाभ जानि आएउँ एहि हाटा। मूर गँवाइ चलेउँ तेहि बाटा॥
का मै मरन-सिखावन सिखी। आएउँ मरै, मीचु हति लिखी॥
अपने चलत सो कीन्ह कुबानी। लाभ न देख, मूर भै हानी॥
का मै बोआ जनम ओहि भूँजी?। खोइ चलेउँ घरहू कै पूँजी॥
जेहि व्योहरिया कर व्यौहारू। का लेइ देब जौ छेकिहि बारू॥
घर कैसे पैठब मैं छूछे। कौन उतर देबौं तेहि पूछे॥

साथि चले, सँग बीछुरा, भए बिच समुद पहार।
आस-निरासा हौं फिरौं, तू बिधि देहि अधार॥ २॥

तबहीं व्याध सुआ लेइ आवा। कंचन-बरन अनूप सुहावा॥
बेंचै लाग हाट लै ओही। मोल रतन मानिक जहँ होहीं॥

---

( १ ) बनिजारा = वाणिज्य करनेवाला, बनिया। मकु = शायद, चाहे, जैसे, गगन मगन मकु मेघहिं मिलई—तुलसी। बहोर = लौटना। साँठि = पूँजी, धन। सुठि = खूब। ( २ ) झूरै = निष्फल, व्यर्थ। कुबानी = कुवाणिज्य, बुरा व्यवसाय। भूँजि बोआ = भूनकर बीज बोया ( भूनकर बोने से बीज नहीं जमता )।

सुअहि को पूछ ? पतंग-मँड़ारे । चल न, दीख आछै मन मारे ॥
बाम्हन आइ सुआ सौं पूछा । दहुँ, गुनवंत, कि निरगुन छूछा ? ॥
कहु परवत्ते ! गुन तोहि पाहाँ । गुन न छपाइय हिरदय माहाँ ॥
हम तुम जाति वराम्हन दोऊ । जातिहि जाति पूछ सब कोऊ ॥
पंडित हौ तौ सुनावहु वेदू । बिनु पूछे पाइय नहि भेदू ॥

हौं बाम्हन औ पंडित, कहु आपन गुन सोइ ।
पढ़े के आगे जो पढ़ै दून लाभ तेहि होइ ॥ ३ ॥

तव गुन मोहि अहा, हो देवा ! । जब पिंजर हुत छूट परेवा ॥
अब गुन कौन जो बेंद, जजमाना । घालि मँजूसा बेचै आना ॥
पंडित होइ सो हाट न चढ़ा । चहौं बिकाय, भूलि गा पढ़ा ॥
दुइ मारग देखौं एहि हाटा । दई चलावै दहुँ केहि बाटा ॥
रोवत रकत भएउ मुख राता । तन भा पियर कहौं का बाता ? ॥
राते स्याम कंठ दुइ गीवाँ । तेहि दुइ फंद डरौं सुठि जीवा ॥
अब हौं कंठ फंद दुइ चीन्हा । दहुँ ए फंद चाह का कीन्हा ? ॥

पढ़ि गुनि देखा बहुत मै, है आगे डर सोइ ।
धुंध जगत सब जानि कै भूलि रहा बुधि खोइ ॥ ४ ॥

सुनि बाम्हन बिनवा चिरिहारू । करि पंखिन्ह कहँ मया न मारू ॥
निठुर होइ जिउ बधसि परावा । हत्या केर न तोहि डर आवा ॥
कहसि पंखि का दोस जनावा । निठुर तेइ जे परमस खावा ॥
आवहि रोइ, जात पुनि रोना । तबहुँ न तजहिं भोग सुख सोना ॥
औ जानहिं तन होइहि नासू । पोखै माँसु पराये माँसू ॥
जौ न होंहि अस परमँस-खाधू । कित पंखिन्ह कहँ धरै बियाधू ? ॥
जो ब्याधा नित पंखिन्ह धरई । सो बेचत मन लोभ न करई ॥

बाम्हन सुआ बेसाहा सुनि मति बेद गरंथ ।
मिला आइ कै साथिन्ह, भा चितउर के पंथ ॥ ५ ॥

तब लगि चित्रसेन सर साजा । रतनसेन चितउर भा राजा ॥
आइ बात तेहि आगे चली । राजा बनिज आए सिंघली ॥

---

( ३ ) पतंग मँड़ारे = चिड़ियों के मडरे मे वा झावे में । चल = चंचल, हिलता-डोलता । ( ४ ) मँजूसा = मंजूषा, डला । कंठ = कठा, काली लाल लकीर जो तोतो के गले पर होती है । धुंध = अंधकार । ( ५ ) परमँस = दूसरे का मांस । खाधू = खानेवाला । ( ६ ) सर साजा = चिता पर चढ़ा; मर गया ।

है गजमोति भरी सब सीपी। और वस्तु बहु सिंघलदीपी॥
बाम्हन एक सुआ लेइ आवा। कंचन-बरन अनूप सोहावा॥
राते स्याम कंठ दुइ काँठा। राते डहन लिखा सब पाठा॥
औ दुइ नयन सुहावन राता। राते ठोर अमी-रस बाता॥
मस्तक टीका, काँध जनेऊ। कवि बियास, पंडित सहदेऊ॥
बोल अरथ सौं बोलै, सुनत सीस सब डोल।
राज-मँदिर महँ चाहिय अस वह सुआ अमोल॥ ६॥

भै रजाइ जन दस दौराए। बाम्हन सुआ वेगि लेइ आए॥
बिप्र असीसि बिनति औधारा। सुआ जीउ नहि करौं निनारा॥
मैं यह पेट महा बिसवासी। जेइ सब नाव तपा सन्यासी॥
डासन सेज जहाँ किछु नाही। भुइँ परि रहै लाइ गिउ बाहीं॥
आँधर रहे, जो देख न नैना। गूँग रहै, मुख आव न बैना॥
बहिर रहै, जो स्रवन न सुना। पै यह पेट न रह निरगुना॥
कै कै फेरा निति यह दोखी। बारहि बार फिरै, न सँतोखी॥
सो मोहि लेइ मँगावै लावै भूख पियास।
जौ न होत अस बैरी केहु न केहु कै आस॥ ७॥

सुआ असीस दीन्ह बड़ साजू। बड़ परताप अखंडित राजू॥
भागवंत बिधि बड़ औतारा। जहाँ भाग तहँ रूप जोहारा॥
कोइ केहु पास आस कै गौना। जो निरास डिढ़ आसन मौना॥
कोइ बिनु पूछे बोल जो बोला। होइ बोल माटी के मोला॥
पढ़ि गुनि जानि वेद-मति भेऊ। पूछे बात कहै सहदेऊ॥
गुनी न कोई आपु सराहा। जो बिकाइ, गुन कहा सो चाहा॥
जौ लगि गुन परगट नहिं होई। तौ लहि मरम न जानै कोई॥
चतुरवेद हौं पंडित, हीरामन मोहिं नावँ।
पदमावति सौं मेरवौ, सेव करौ तेहि ठावँ॥ ८॥

रतनसेन हीरामन चीन्हा। एक लाख बाम्हन कहँ दीन्हा॥
बिप्र असीसि जो कीन्ह पयाना। सुआ सो राजमंदिर महँ आना॥
बरनौं काह सुआ कै भाखा। धनि सो नावँ हीरामन राखा॥

---

(७) बिसवासी = विश्वासघाती। नाव = नवाता है, नम्र करता है। न रह निरगुना = अपने गुण या क्रिया के बिना नही रहता। बारहिं बार = द्वार द्वार। (८) डिढ़ = दृढ़। मेरवौं = मिलाऊँ।

जो बोलै राजा मुख जोवा। जानौ मोतिन हार परोवा॥
जौ बोलै तौ मानिक मूँगा। नाहि त मौन बाँधि रह गूँगा॥
मनहुँ मारि मुख अमृत मेला। गुरु होइ आप, कीन्ह जग चेला॥
सुरुज चाँद कै कथा जो कहेऊ। पेम क कहनि लाइ चित गहेऊ॥
जो जो सुनै धुनै सिर, राजहिं प्रीति अगाहु।
अस गुनवंता नाहि भल, बाउर करिहै काहु॥ ९॥

---

(९) बाउर=बावला, पागल।

## ( ८ ) नागमती-सुवा-संवाद-खंड

दिन दस पाँच तहाँ जो भए। राजा कतहुँ अहेरै गए॥
नागमती रूपवंती रानी। सब रनिवास पाट-परधानी॥
कै सिंगार कर दरपन लीन्हा। दरसन देखि गरब जिउ कीन्हा॥
बोलहु सुआ पियारे-नाहाँ। मोरे रूप कोइ जग माहाँ?॥
हँसत सुआ पहँ आइ सो नारी। दीन्ह कसौटी ओपनिवारी॥
सुआ बानि कसि कहु कस सोना। सिंघलदीप तोर कस लोना?॥
कौन रूप तोरी रूपमनी। दहुँ हौ लोनि, कि वै पदमिनी?॥

जो न कहसि सत सुअटा तोहि राजा कै आन।
है कोई एहि जगत महँ मोरे रूप समान॥ १॥

सुमिरि रूप पदमावति केरा। हँसा सुआ, रानी मुख हेरा॥
जेहि सरवर महँ हंस न आवा। बगुला तेहि सर हंस कहावा॥
दई कीन्ह अस जगत अनूपा। एक एक तें आगरि रूपा॥
कै मन गरब न छाजा काहू। चाँद घटा औ लागेउ राहू॥
लोनि बिलोनि तहाँ को कहै। लोनी सोई कंत जेहि चहै॥
का पूछहु सिंघल कै नारी। दिनहिं न पूजै निसि अँधियारी॥
पुहुप सुबास सो तिन्ह कै काया। जहाँ माथ का बरनौं पाया?॥

गढ़ी सो सोने सोंधे, भरी सो रूपै भाग।
सुनत सखि भइ रानी, हिये लोन अस लाग॥ २॥

जौ यह सुआ मँदिर महँ अहई। कबहुँ बात राजा सौं कहई॥
सुनि राजा पुनि होइ बियोगी। छाँड़ै राज, चलै होइ जोगी॥
बिख राखिय नहिं, होइ अँकूरू। सबद न देइ भोर तमचूरू॥

---

( १ ) ओपनिवारी = चमकानेवाली। बानि = वर्ण। कसि = कसौटी पर कसकर। लोनि = लोनी, लावण्यमयी, सुंदरी। आन = शपथ, कसम। ( २ ) सोंधे = सुगंध से। ( ३ ) तमचूर = ताम्रचूड़, मुर्गा। "सबद न देइ.....तमचूरू" अर्थात मुर्गा कहीं पद्मावती-रूपी प्रभात की आवाज न दे कि हे राजा उठ! दिन की ओर देख। कवि ऊपर कह चुका है कि "दिनहिं न पूजै निसि अँधियारी"।

धाय दामिनी वेगि हँकारी। ओहि सौंपा हीये रिस भारी॥
देखु, सुआ यह है मँदचाला। भएउ न ताकर जाकर पाला॥
मुख कह आन, पेट वस आना। तेहि औगुन-दस हाट बिकाना॥
पंखि न राखिय होइ कुभाखी। लेइ तहँ मारु जहाँ नहि साखी॥

जेहि दिन कहँ मै डरति हौं, रैनि छपावौं सूर।
लै चह दीन्ह कवंल कहँ, मोकहँ होइ मयूर॥ ३॥

धाय सुआ लेइ मारै गई। समुझि गियान हिये मति भई॥
सुआ सो राजा कर विसरामी। मारि न जाइ चहै जेहि स्वामी॥
यह पंडित खंडित वैरागू। दोप ताहि जेहि सूझ न आगू॥
जो तिरिया के काज न जाना। परै धोख, पाछे पछिताना॥
नागमती नागिनि-बुधि ताऊ। सुआ मयूर होइ नहि काऊ॥
जो न कंत के आयसु माहीं। कौन भरोस नारि कै वाही?॥
मकु यह खोज होइ निसि आए। तुरय-रोग हरि-माथे जाए॥

दुइ सो छपाए ना छपै एक हत्या, एक पाप।
अंतहि करहिं विनास लेइ, सेइ साखी देइँ आप॥ ४॥

राखा सुआ, धाय मति साजा। भएउ खोज निसि आएउ राजा॥
रानी उतर मान सौ दीन्हा। पंडित सुआ मजारी लीन्हा॥
मैं पूछा सिंघल पदमिनी। उतर दीन्ह तुम्ह, को नागिनी?॥
वह जस दिन,तुम निसि अँधियारी। कहाँ वसंत; करील क वारी॥
का तोर पुरुष रैनि कर राऊ। उलू न जान दिवस कर भाऊ॥
का वह पंखि कूट मुँह कूटे। अस वड़ वोल जीभ मुख छोटे॥
जहर चुवै जो जो कह वाता। अस हतियार लिए मुख राता॥

---

धाय = दाई, धात्री। दामिनी = दासी का नाम। मयूर = मोर। मोर नाग का शत्रु है, नागमती के वाक्य से शुक के शत्रु होने की ध्वनि निकलती है। 'कमल' में पद्मावती की ध्वनि है। (४) विसरामी = मनोरंजन की वस्तु। खंडित वैरागू = वैराग्य मे चूक गया इससे तोते का जन्म पाया। काऊ = कभी। मकु = शायद, कदाचित्। तुरय = तुरग, घोड़ा। ताऊ = तासु, उसकी। हरि = बंदर। तुरय··· जाए = कहते हैं कि घुडसाल में बंदर रखने से घोड़े नीरोग रहते है, उनका रोग बदर पर जाता है। सेइ = वे ही। हत्या और पाप ही। (५) कूट = कालकूट, विष। कूटे = कूट कूटकर भरे हुए।

माथे नहि बैसारिय जौं सुठि सुआ सलोन ॥
कान टुटै जेहि पहिरे का लेइ करब सो सोन ? ॥ ५ ॥

राजै सुनि वियोग तस माना । जैसे हिय विक्रम पछिताना * ॥
बह हीरामन पंडित सूआ । जो बोलै मुख अमृत चूआ ॥
पंडित तुम्ह खंडित निरदोखा । पंडित हुतें परै नहिं धोखा ॥
पंडित केरि जीभ मुख सूधी । पंडित बात न कहै विरूधी ॥
पंडित सुमति देइ पथ लावा । जो कुपंथि तेहि पँडित न भावा ॥
पंडित राता वदन सरेखा । जो हत्यार रुहिर सो देखा ॥
की परान घट आनहु मती । की चलि होहु सुआ सँग सती ॥
जिनि जानहु कै औगुन मँदिर सोइ सुखराज ।
आयसु मेटे कंत कर काकर भा न अकाज ? ॥ ६ ॥

चाँद जैस धनि उजियारि अही । भा पिउ-रोस, गहन अस गही ॥
परम सोहाग निबाहि न पारी । भा दोहाग सेवा जब हारी ॥
एतनिक दोस बिरचि पिउ रूठा । जो पिउ आपन कहै सो झूठा ॥
ऐसे गरब न भूलै कोई । जेहि डर बहुत पियारी सोई ॥
रानी आइ धाय के पासा । सुआ मुआ सेवँर कै आसा ॥
परा प्रीति-कंचन महँ सीसा । बिहरि न मिलै, स्याम पै दीसा ॥
कहाँ सोनार पास जेहि जाऊँ । देइ सोहाग करै एक ठाऊँ ॥

---

बैसारिय = बैठाइए । ( ६ ) तुम्ह खंडित = तुमने खंडित या नष्ट किया । सरेख = सज्ञान, चतुर । मती = विचार करके ।

* कहानी है कि राजा विक्रम के यहाँ भी एक हीरामन तोता था । उसने एक दिन राजा को एक फल यह कहकर दिया कि जो इसे खायगा वह कभी बूढ़ा न होगा । राजा ने वह फल बगीचे मे बोने को दिया । जब फल लगा तब माली ने राजा को लाकर दिया । राजा ने रानी को दिया । रानी ने परीक्षा के लिए कुत्ते को थोड़ा दिया । कुत्ता मर गया । बात यह थी कि बगीचे मे उस फल मे साँप ने अपना विष डाल दिया था । राजा ने क्रुद्ध होकर तोते को मरवा डाला । कुछ दिन पीछे फिर एक फल लगा जिसे मालिन ने रूठकर मरने के लिए खाया । वह बुड्ढी से जवान हो गई । राजा को यह सुनकर बड़ा पछतावा हुआ ।

---

( ७ ) दोहाग = दुर्भाग्य । बिरचि = अनुरक्त होकर । देइ सोहाग = ( क ) सौभाग्य, ( ख ) सोहागा दे ।

मैं पिउ-प्रीति भरोसे गरब कीन्ह जिउ माँह।
तेहि रिस हौं परहेली, रूसेउ नागर नाहँ॥ ७॥

उतर धाय तब दीन्ह रिसाई। रिस आपुहि, बुधि औरहि खाई॥
मै जो कहा रिस जिनि करु बाला। को न गएउ एहि रिस कर घाला?॥
तू रिसभरी न देखेसि आगू। रिस महँ काकर भएउ सोहागू?॥
जेहि रिस तेहि रस जोगै न जाई। बिनु रस हरदि होइ पियराई॥
बिरसि बिरोध रिसहि पै होई। रिस मारै, तेहि मार न कोई॥
जेहि रिस कै मरिए, रस जीजै। सो रस तजि रिस कबहुँ न कीजै॥
कंत-सोहाग कि पाइय साधा। पावै सोइ जो ओहि चित बाँधा॥

रहै जो पिय के आयसु औ बरतै होइ हीन।
सोइ चाँद अस निरमल, जनम न होइ मलीन॥ ८॥

जुआ-हारि समुझी मन रानी। सुआ दीन्ह राजा कहँ आनी॥
मानु पीय! हौं गरब न कीन्हा। कंत तुम्हार मरम मै लीन्हा॥
सेवा करै जो बरहौं मासा। एतनिक औगुन करहु बिनासा॥
जौं तुम्ह देइ नाइ कै गीवा। छाँड़हुँ नहिं बिनु मारे जीवा॥
मिलतहु महँ जनु अहौ निनारे। तुम्ह सौं अहै अदेस, पियारे!॥
मैं जानेउँ तुम्ह मोही माहाँ। देखौं ताकि तौ हौं सब पाहाँ॥
का रानी, का चेरी कोई। जा कहँ मया करहु भल सोई॥

तुम्ह सौं कोइ न जीता, हारे बररुचि भोज।
पहिलै आपु जो खोवै करै तुम्हार सो खोज॥ ९॥

---

परहेली=अवहेलना की, बेपरवाही की। (८) आगू=आगम, परिणाम। जोगै न जाई=रक्षा नहीं किया जाता। बिरस=अनबन। साधा=साध या लालसा मात्र से। हीन=दीन, नम्र।

## ( ६ ) राजा-सुआ-संवाद-खंड

राजै कहा सत्य कहु सूआ। विनु सत जस सेवर कर भूआ॥
होइ मुख रात सत्य के बाता। जहाँ सत्य तहँ धरम सँघाता॥
बाँधी सिहिटि अहै सत केरी। लछिमी अहै सत्य कै चेरी॥
सत्य जहाँ साहस सिधि पावा। औ सतवादी पुरुष कहावा॥
सत कहँ सती सँवारै सरा। आगि लाइ चहुँ दिसि सत जरा॥
दुइ जग तरा सत्य जेइ राखा। और पियार दइहि सत भाखा॥
सो सत छाँड़ि जो धरम विनासा। भा मतिहीन धरम करि नासा॥

तुम्ह सयान औ पंडित, असत न भाखहु काउ।
सत्य कहहु तुम मोसौं, दहुँ काकर अनियाउ॥ १॥

सत्य कहत राजा जिउ जाऊ। पै मुख असत न भाखौं काऊ॥
हौं सत लेइ निसरेउँ एहि बूते। सिंघलदीप राजघर हूँते॥
पदमावति राजा कै बारी। पदुम-गंध ससि विधि औतारी॥
ससि मुख, अंग मलयगिरि रानी। कनक सुगंध दुआदस बानी॥
अहैं जो पदमिनि सिंघल माहाँ। सुगँध रूप सब तिन्हकै छाहाँ॥
हीरामन हौ तेहिक परेवा। कंठा फूट करत तेहि सेवा॥
औ पाएउँ मानुष कै भाषा। नाहि त पंखि मूठि भर पाँखा॥

जौ लहि जिऔं रात दिन सबँरौं ओहि कर नावँ।
मुख राता, तत हरियर दुहूँ जगत लेइ जावँ॥ २॥

हीरामन जो कवँल बखाना। सुनि राजा होइ भँवर भुलाना॥
आगे आव, पंखि उजियारा। कहँ सो दीप पतँग कै मारा॥
अहा जो कनक सुवासित ठाऊँ। कस न होइ हीरामन नाऊँ॥

---

( १ ) भूआ = सेमल की रूई। मुख रात होई = सुर्खरू होता है। सरा = चिता। ( २ ) घर हूँते = घर से ( प्रा० पंचमी विभक्ति 'हिंतो' ) दुवादस बानी = बारह बानी, चोखा ( द्वादश वर्ण अर्थात् द्वादश आदित्य के समान )। कठा फूट = गले में कंठे की लकीर प्रकट हुई। सयाना हुआ। ( ३ ) पतंग कै मारा = जिसने पतंग बनाकर मारा।

को राजा, कस दीप उतंगू। जेहि रे सुनत मन भएउ पतंगू॥
सुनि समुद्र भा चख किलकिला। कवँलहि चहौं भँवर होइ मिला॥
कहु सुगंध धनि कस निरमली। भा अलि-संग, कि अबहीं कली?॥
औ कहु तहँ जहँ पदमिनि लोनी। घर घर सब के होइ जो होनी॥
सबै बखान तहाँ कर कहत सो मोसौं आव।
चहौं दीप वह देखा, सुनत उठा अस चाव॥ ३॥
का राजा हौं बरनौं तासू। सिंघलदीप आहि कैलासू॥
जो गा तहाँ भुलाना सोई। गा जुग बीति न बहुरा कोई॥
घर घर पदमिनि छतिसौ जाती। सदा बसंत दिवस औ राती॥
जेहि जेहि बरन फूल फुलवारी। तेति तेहि बरन सुगंध सो नारी॥
गंधबसेन तहाँ बड़ राजा। अछरिन्ह महँ इंद्रासन साजा॥
सो पदमावति तेहि कर बारी। जो सब दीप माँह उजियारी॥
चहूँ खंड के बर जो ओनाही। गरबहि राजा बोलै नाहीं॥
उअत सूर जस देखिय चाँद छपै तेहि धूप।
ऐसै सबै जाहि छपि पदमावति के रूप॥ ४॥
सुनि रवि-नावँ रतन भा राता। पंडित फेरि उहै कहु बाता॥
तैं सुरंग मूरति वह कही। चित महँ लागि चित्र होइ रही॥
जनु होइ सुरुज आइ मन बसी। सब घट पूरि हिये परगसी॥
अब हौं सुरुज, चाँद वह छाया। जल बिनु मीन, रकत बिनु काया॥
किरिन-करा भा प्रेम-अँकूरू। जौ ससि सरग, मिलौं होइ सूरू॥
सहसौ करा रूप मन भूला। जहँ जहँ दीठ कवँल जनु फूला॥
तीनि लोक चौदह खँड सबै परै मोहि सूझि।
पेम छाँड़ि नहि लोन किछु, जो देखा मन बूझि॥ ५॥
पेम सुनत मन भूल न राजा। कठिन पेम, सिर देइ तौ छाजा॥
पेम-फाँद जो परा न छूटा। जीउ दीन्ह पै फाँद न टूटा॥
गिरगिट छंद धरै दुख तेता। खन खन पीत, रात, खन सेता॥
जान पुछार जो भा बनबासी। रोव रोव परे फँद नगवासी॥

---

(३) उतगू=उत्तुंग, ऊँचा। किलकिला=जल के ऊपर मछली के लिये मँडराने वाला एक जलपक्षी। होनी=बात, व्यवहार। (४) अछरी=अप्सरा। ओनाहीं=झुकते हैं। (५) करा=कला। लोन=सुंदर। (६) छंद=रूप रचना। पुछार=मयूर, मोर। नगवासी=नागो का फंदा अर्थात् नागपाश।

पाँखन्ह फिरि फिरि परा सो फाँदू। उड़ि न सकै, अरुझा भा चाँदू॥
'मुयो मुयो' अहनिसि चिल्लाई। ओही रोस नागन्ह धैं खाई॥
पंडुक, सुआ, कंक वह चीन्हा। जेहिं गिउ परा चाहि जिउ दीन्हा॥
तीतिर-गिउ जो फाँद है, नित्ति पुकारै दोख।
सो कित हँकारि फाँद गिउ (मेलै) कित मारे होइ मोख॥ ६॥
राजै लीन्ह ऊबि कै साँसा। ऐस बोल जिनि बोलु निरासा॥
भलेहि पेम है कठिन दुहेला। दुइ जग तरा पेम जेइ खेला॥
दुख भीतर जो पेम-मधु राखा। जग नहिं मरन सहै जो चाखा॥
जो नहि सीस पेम-पथ लावा। सो प्रिथिमी महँ काहे क आवा?॥
अब सैं पंथ पेम सिर मेला। पाँव न ठेलु, राखु कै चेला॥
पेम-बार सो कहै जो देखा। जो न देख का जान बिसेखा?॥
तौ लगि दुख पीतम नहिं भेंटा। मिलै, तौ जाइ जनम-दुख मेटा॥
जस अनूप, तू बरनेसि, नखसिख बरनु सिंगार।
है मोहि आस मिलै कै, जौ मेरवै करतार॥ ७॥

---

धै=धरकर। चीन्हा=चिह्न, लकीर, रेखा। (७) ऊबि कै साँस लीन्ह=लंबी साँस ली। दुहेला=कठिन खेल। पाँव न ठेलु=पैर से न ठुकरा, तिरस्कार न कर। बिसेखा=मर्म।

## ( १० ) नखशिख-खंड

का सिंगार ओहि बरनौं, राजा। ओहिक सिंगार ओही पै छाजा॥
प्रथम सीस कस्तूरी केसा। बलि बासुकि, का और नरेसा॥
भौर केस, वह मालति रानी। बिसहर लुरे लेहिं अरघानी॥
बेनी छोरि झार जौं बारा। सरग पतार होइ अँधियारा॥
कोवर कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुअँग बैसारे॥
बेधे जनौं मलयगिरि बासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुँ पासा॥
घुँघरवार अलकै विषभरी। सँकरैं पेम चहैं गिउ परी॥

अस फदवार केस वै परा सीस गिउ फाँद।
अस्टौ कुरी नाग सब अरुझ केस के बाँद॥ १॥

बरनौं माँग सीस उपराही। सेंदुर अबहिं चढ़ा जेहि नाहीं॥
बिनु सेंदुर अस जानहु दीआ। उजियर पंथ रैनि महँ कीआ॥
कंचन रेख कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनि परगसी॥
सुरुज-किरिन जनु गगन बिसेखी। जमुना माँह सुरसती देखी॥
खाँड़ै धार रुहिर जनु भरा। करवत लेइ बेनी पर धरा॥
तेहि पर पूरि धरे जो मोती। जमुना माँझ गंग कै सोती॥
करवत तपा लेहिं होइ चूरू। मकु सो रुहिर लेइ देइ सेंदूरू॥

---

(१) सँकरैं = शृंखला, जंजीर। फँदवार = फंद में फँसानेवाले। बलि = निछावर हैं। लुरे = लुढ़ते या लहरते हुए। अरघानि = महँक, आघ्राण। अस्ट कुरी = अष्टकुलनाग (ये हैं—वासुकि, तक्षक, कुलक, कर्कोटक, पद्म, शंखचूड़, महापद्म, धनंजय)। (२) उपराहीं = ऊपर। रुहिर = रुधिर। करवत = करपत्र, आरा। बनी = (क) त्रिवेणी, (ख) वेणी। करवत लेइ = पहले मोक्ष के लिये कुछ लोग त्रिवेणी संगम पर अपना शरीर आरे से चिरवाते थे, इसी को करवट लेना कहते थे। वहाँ एक आरा इसके लिये रखा रहता था। काशी में भी ऐसा स्थान था जिसे काशी करवट कहते है। तपा = तपस्वी।

कनक दुवादस बानि होइ चह सोहाग वह माँग।
सेवा करहिं नखत सब उवै गगन जस गाँग॥ २॥

कहौं लिलार दुइज कै जोती। दुइजहि जोति कहाँ जग ओती॥
सहस किरिन जेा सुरुज दिपाई। देखि लिलार सोउ छपि जाई॥
का सरिवर तेहि देउँ मयंकू। चाँद कलंकी, वह निकलंकू॥
औ चाँदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा॥
तेहि लिलार पर तिलक बईठा। दुइज-पाट जानहु ध्रुव दीठा॥
कनक-पाट जनु बैठा राजा। सबै सिगार अत्र लेइ साजा॥
ओहि आगे थिर रहा न कोऊ। दहुँ का कहँ अस जुरै सँजोगू॥
खरग, धनुक, चक बान दुइ, जग-मारन तिन्ह नावँ।
सुनि कै परा मुरुछि कै (राजा) मोकहँ हए कुठावँ॥ ३॥

भौंहै स्याम धनुक जनु ताना। जा सहुँ हेर मार विष-बाना॥
हनै धुनै उन्ह भौहनि चढ़े। केइ हतियार काल अस गढ़े?॥
उहै धनुक किरसुन पहँ अहा। उहै धनुक राघौ कर गहा॥
ओहि धनुक रावन संघारा। ओहि धनुक कंसासुर मारा॥
ओहि धनुक वेधा हुत राहू। मारा ओहि सहस्रबाहू॥
उहै धनुक मै तापहँ चीन्हा। धानुक आप वेझ जग कीन्हा॥
उन्ह भौहनि सरि केउ न जीता। अछरी छपी, छपीं गोपीता॥
भौह धनुक, धनि धानुक, दूसर सरि न कराइ।
गगन धनुक जो ऊगै लाजहि सो छपि जाइ॥ ४॥

नैन बाँक, सरि पूज न कोऊ। मानसरोदक उलथहिं दोऊ॥
राते कँवल करहिं अति भवाँ। घूमहि माति चहहिं अपसवाँ॥
उठहि तुरंग लेहिं नहि बागा। चाहहिं उलथि गगन कइँ लागा॥
पवन झकोरहि देइ हिलोरा। सरग लाइ भुइँ लाइ बहोरा॥
जग डोलै डोलत नैनाहाँ। उलटि अड़ार जाहि पल माहाँ॥
जबहिं फिराहि गगन गहि बोरा। अस वै भौर चक्र के जोरा॥

---

सोहाग=(क) सौभाग्य, (ख) सोहागा। (३) ओती=उतनी। अत्र=अस्त्र। हए=हते, मारा। (४) सहुँ=सामने। हुत=था। वेझ=वेध्य, वेझा, निशाना। (५) उलथहिं=उछलते हैं। भवाँ=फेरा, चक्कर। अपसवाँ चहहिं=जाना चाहते है, उड़कर भागना चाहते हैं (अपसवण)। (६) उलटि...पल माहाँ=बड़े बड़े अड़नेवाले या स्थिर रहनेवाले पल भर मे उलट जाते हैं।

समुद-हिलोर फिरहि जनु भूले। खंजन लरहिं, मिरिग जनु भूले॥
सुभर सरोवर नयन वै, मानिक भरे तरंग।
आवत तीर फिरावहीं काल भौंर तेहि संग॥ ५॥

बरुनी का बरनौं इमि बनी। साधे बान जानु दुइ अनी॥
जुरी राम रावन कै सैना। बीच समुद्र भए दुइ नैना॥
बारहि पार बनावरि साधा। जा सहुँ हेर लाग विष-बाधा॥
उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा?। बेधि रहा सगरौ संसारा॥
गगन नखत जो जाहि न गने। वै सब बान ओही के हने॥
धरती बान बेधि सब राखी। साखी ठाढ़ देहि सब साखी॥
रोवँ रोवँ मानुस तन ठाढ़े। सूतहि सूत बेध अस गाढ़े॥
बरुनि-बान अस ओपहँ, बेधे रन बन-ढाँख।
सौजहि तन सब रोवाँ, पंखिहि तन सब पाँख॥ ६॥

नासिक खरग देउँ कह जोगू। खरग खीन, वह बदन-सँजोगू॥
नासिक देखि लजानेउ सूआ। सूक आइ बेसरि होइ ऊआ॥
सुआ जो पिअर हिरामन लाजा। और भाव का बरनौं राजा॥
सुआ, सो नाक कठोर पँवारी। वह कोवर तिल-पुहुप सँवारी॥
पुहुप सुगंध करहिं एहि आसा। मकु हिरकाइ लेइ हम्ह पासा॥
अधर दसन पर नासिक सोभा। दारिउँ बिब देखि सुक लोभा॥
खँजन दुहुँ दिसि केलि कराहीं। दहुँ वह रस कोउ पाव कि नाहीं॥
देखि अमिय-रस अधरन्ह भएउ नासिका कीर।
पौन बास पहुँचावै, अस रस छाँड़ न तीर॥ ७॥

अधर सुरंग अमी-रस-भरे। बिंब सुरंग लाजि बन फरे॥
फूल दुपहरी जानौं राता। फूल झरहि ज्यों ज्यों कह बाता॥
हीरा लेइ सो विद्रुम-धारा। बिहँसत जगत होइ उजियारा॥
भए मँजीठ पानन्ह रँग लागे। कुसुम-रंग थिर रहै न आगे॥

---

फिरावहीं = चक्कर देते हैं। (६) अनी = सेना। बनावरि = बाणावलि, तीरों की पंक्ति। साखी = वृक्ष। साखी = साक्ष्य, गवाही। रन = अरण्य (प्रा० रण्ण)। (७) जोगु देउँ = जोड़ मिलाऊँ। समता मे रखूँ। पँवारी = लोहारों का एक औजार जिससे लोहे मे छेद करते हैं। हिरकाइ लेइ = पास सटा ले। (८) हीरा लेइ...उजियारा = दाँतो की श्वेत और अधरो की अरुण ज्योति के प्रसार से जगत् मे उजाला होना, कहकर कवि ने उषा या अरुणोदय का बड़ा सुन्दर गूढ़ संकेत रखा है। मजीठ = बहुत गहरा मजीठ के रंग

अस कै अधर अमी भरि राखे। अबहि अछूत, न काहू चाखे॥
मुख तँबोल-रँग-धारहि रसा। केहि मुख जोग जो अमृत बसा?॥
राता जगत देखि रँगराती। रुहिर भरे आछहि बिहँसाती॥
अमी अधर अस राजा सब जग आस करेइ।
केहि कहँ कवँल बिगासा, को मधुकर रस लेइ?॥ ८॥

दसन चौक बैठे जनु हीरा। औ बिच बिच रँग स्याम गँभीरा॥
जस भादौ-निसि दामिनि दीसी। चमकि उठै तस बनी बतीसी॥
वह सुजोति हीरा उपराहीं। हीरा-जाति सो तेहि परछाहीं॥
जेहि दिन दसनजोति निरमई। बहुतै जोति जोति ओहि भई॥
रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥
जहँ जहँ बिहँसि सुभावहि हँसी। तहँ तहँ छिटकि जोति परगसी॥
दामिनि दमकि न सरवरि पूजी। पुनि ओहि जोति और को दूजी?॥
हँसत दसन अस चमके पाहन उठे झरक्कि।
दारिउँ सरि जो न कै सका, फाटेउ हिया दरक्कि॥ ९॥

रसना कहौ जो कह रस बाता। अमृत-बैन सुनत मन राता॥
हरै सो सुर चातक कोकिला। बिनु बसंत यह बैन न मिला॥
चातक कोकिल रहहि जो नाही। सुहि वह बैन लाज छपि जाहीं॥
भरे प्रेम-रस बोलै बोला। सुनै सो माति घूमि कै डोला॥
चतुरवेद-मत सब ओहि पाहाँ। रिग, जजु, साम अथरबन माहाँ॥
एक एक बोल अरथ चौगुना। इंद्र मोह, बरम्हा सिर धुना॥
अमर, भागवत, पिंगल गीता। अरथ बूझि पंडित नहिं जीता॥
भासवती औ व्याकरन, पिंगल पढ़ै पुरान।
बेद-भेद सौ बात कह, सुजनन्ह लागै बान॥ १०॥

पुनि बरनौं का सुरंग कपोला। एक नारँग दुइ किए अमोला॥
पुहुप-पंक रस अमृत साँधे। केइ यह सुरँग खरौरा बाँधे?॥
तेहि कपोल बाएँ तिल परा। जेइ तिल देख सो तिल तिल जरा॥

---

का लाल। धार = घड़ी; रेखा। (९) चौक = आगे के चार दाँत। पाहन = पत्थर, हीरा। झरक्कि उठे = झलक गए। अनेक प्रकार के रत्नो के रूप मे हो गए। (१०) अमर = अमरकोश। भासवती = भास्वती नामक ज्योतिष का ग्रथ। सुजनन्ह = सुजानो या चतुरो को। (११) साँधे = साने, गूँधे। खरौरा = खाँड़ के लड्डू। खँड़ौरा।

जनु घुँघची ओहि तिल करमुही। विरह-बान साधे सामुहीं॥
अगिनि-बान जानों तिल सूझा। एक कटाछ लाख दस जूझा॥
सो तिल गाल मेटि नहि गएऊ। अब वह गाल काल जग भएऊ॥
देखत नैन परी परछाहीं। तेहि तें रात साम उपराहीं॥

सो तिल देखि कपोल पर गगन रहा ध्रुव गाड़ि।
खिनहि उठै, खिन बूड़ै, डोलै नहि तिल छाँड़ि॥ ११॥

स्रवन सीप दुइ दीप सँवारे। कुंडल कनक रचे उजियारे॥
मनि-कुंडल झलकैं अति लोने। जनु कौधा लौकहि दुइ कोने॥
दुहुँ दिसि चाँद सुरुज चमकाहीं। नखतन्ह भरे निरखि नहिं जाहीं॥
तेहि पर खूँट दीप दुइ बारे। दुइ ध्रुव दुऔ खूँट बैसारे॥
पहिरे खुंभी सिंघलदीपी। जनौ भरी कचपचिआ सीपी॥
खिन खिन जबहि चीर सिर गहै। काँपति बीजु दुऔ दिसि रहै॥
डरपहि देवलोक सिघला। परै न बीजु टूटि एक कला॥

करहिं नखत सब सेवा स्रवन दीन्ह अस दोउ।
चाँद सुरुज अस गोहने और जगत का कोउ?॥ १२॥

बरनौं गीउ कंबु कै रीसी। कंचन-तार-लागि जनु सीसी॥
कुंदे फेरि जानु गिउ काढ़ी। हरी पुछार ठगी जनु ठाढ़ी॥
जनु हिय काढ़ि परेवा ठाढा। तेहि तै अधिक भाव गिउ बाढ़ा॥
चाक चढ़ाइ साँच जनु कीन्हा। बाग तुरंग जानु गहि लीन्हा॥
गए मयूर तमचूर जो हारे। उहै पुकारहिं साँझ सकारे॥
पुनि तेहि ठाँव परी तिनि रेखा। घूँट जो पीक लीक सब देखा॥
धनि ओहि गीउ दीन्ह विधि भाऊ। दहुँ कासौं लेइ करै मेराऊ॥

कंठसिरी मुकुतावली सोहै अभरन गीउ।
लागै कंठहार होइ को तप साधा जीउ?॥ १३॥

कनक-दंड दुइ भुजा कलाई। जानौ फेरि कुँदेरै भाई॥

---

घुँघची = गुंजा। करमुहाँ = काले मुँहवाला। (१२) लौकहिं = चमकती है, दिखाई पड़ती है। खूँट = कान का एक गहना। खूँट = कोने। खुंभी = कान का एक गहना। कचपचिया = कृत्तिका नक्षत्र जिसमे बहुत से तारे एक मे गुछे दिखाई पड़ते हैं। गोहने = साथ मे, सेवा मे। (१३) कंबु = शंख। रीसी = ईर्ष्या (उत्पन्न करनेवाली) अथवा 'केरीसी' = कैसी, जैसी; समान (प्रा० केरिसी)। कुदै = खराद। पुछार = मोर। साँच = साँचा। (१४) भाई = फिराई हुई खराद पर घुमाई हुई।

कदलि-गाभ कै जानौ जोरी। औ राती ओहि कँवल-हथोरी॥
जानौ रकत हथोरी बूड़ी। रवि-परभात तात, वै जूड़ी॥
हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा। रुहिर भरी अँगुरी तेहि साथा॥
औ पहिरे नग-जरी अँगूठी। जग बिनु जीउ, जीउ ओहि मूठी॥
बाहूँ कंगन, टाड़ सलोनी। डोलत बाँह भाव गति लोनी॥
जानौ गति बेड़िन देखराई। बाँह डोलाइ जीउ लेइ जाई॥

भुज-उपमा पौंनार नहि, खीन भएउ तेहि चित।
ठाँवहि ठाँव बेध भा, ऊवि साँस लेइ नित॥१४॥

हिया थार, कुच कंचन लारू। कनक कचोर उठे जनु चारू॥
कुंदन बेल साजि जनु कूँदे। अमृत रतन मोन दुइ मूँदे॥
बेधे भौंर कंट केतकी। चाहहिं बेध कीन्ह कंचुकी॥
जोवन बान लेहि नहि बागा। चाहहि हुलसि हिये हठ लागा॥
अगिनि-बान दुइ जानौ साधे। जग बेधहि जौं होहिं न बाँधे॥
उतँग जँभीर होइ रखवारी। छुइ को सकै राजा कै बारी॥
दारिउँ दाख फरे अनचाखे। अस नारँग दहुँ का कहँ राखे॥

राजा बहुत मुए तपि लाइ लाइ भुइँ माथ।
काहू छुवै न पाए, गए मरोरत हाथ॥१५॥

पेट परत जनु चंदन लावा। कुहँकुहँ-केसर-बरन सुहावा॥
खीर अहार न कर सुकुवाँरा। पान फूल के रहै अधारा॥
साम भुअंगिनि रोमावली। नाभी निकसि कँवल कहँ चली॥
आइ दुऔ नारँग बिच भई। देखि मयूर ठमकि रहि गई॥
मनहुँ चढ़ी भौंरन्ह कै पाँती। चंदन-खाँभ बास कै माती॥
की कालिंदी बिरह-सताई। चलि पयाग अरइल बिच आई॥
नाभि-कुंड बिच बारानसी। सौह को होइ, मीचु तहँ बसी॥

---

गाभ = नरम कल्ला। हथोरी = हथेली। तात = गरम। टाड़ = बाँह पर पहनने का एक गहना। बेड़िन = नाचने गानेवाली एक जाति। पौंनार = पद्मनाल (प्रा० पउम + नाल), कमल का डंठल। ठाँवहि ठाँव...नित = कमलनाल मे काँटे से होते हैं और वह सदा पानी के ऊपर उठा रहता है। (१५) कचोर = कटोरे। कूँदे = खरादे हुए। मोन = (सं० मोण) मोना, पिटारा, डिब्बा। बारी = (क) कन्या (ख) बगीचा। (१६) अरइल = प्रयाग मे वह स्थान जहाँ जमुना गगा से मिलती है।

सिर करवत, तन करसी बहुत सीझ तेहि आस।
बहुत धूम घुटि घुटि मुए, उतर न देइ निरास॥ १६॥

बैरिनि पीठि लीन्हि वह पाछे। जनु फिरि चली अपछरा काछे॥
मलयागिरि कै पीठि सँवारी। बेनी नागिनि चढ़ी जो कारी॥
लहरैं देति पीठि जनु चढ़ी। चीर-ओहार केचुली मढ़ी॥
दहुँ का वह अस बेनी कीन्ही। चंदन बास भुअगैं लीन्ही॥
किरसुन करा चढ़ा ओहि माथे। तब तौ छूट, अब छुटै न नाथे॥
कारे कवँल गहे मुख देखा। ससि पाछे जनु राहु बिसेखा॥
को देखै पावै वह नागू। सो देखै जेहि के सिर भागू॥

पन्नग पंकज मुख गहे खंजन तहाँ बईठ।
छत्र, सिंघासन, राज, धन ताकहँ होइ जो डीठ॥ १७॥

लंक पुहुमि अस आहि न काहू। केहरि कहौ न ओहि सरि ताहू॥
बसा लंक बरनै जग झीनी। तेहि ते अधिक लंक वह खीनी॥
परिहँस पियर भए तेहि बसा। लिए डंक लोगन्ह कह डसा॥
मानहुँ नाल खंड दुइ भए। दुहूँ बिच लंक-तार रहि गए॥
हिय के मुरे चलै वह तागा। पैग देत कित सहि सक लागा?॥
छुद्रघंटिका मोहहि राजा। इंद्र-अखाड़ आइ जनु बाजा॥
मानहुँ बीन गहे कामिनी। गावहि सबै राग रागिनी॥

सिंघ न जीता लंक सरि, हारि लीन्ह बनबासु।
तेहि रिस मानुस-रकत पिय, खाइ मारि कै माँसु॥ १८॥

नाभिकुंड सो मलय-समीरू। समुद-भँवर जस भँवै गँभीरू॥
बहुतै भँवर बवंडर भए। पहुँचि न सके, सरग कहँ गए॥

---

करवत=आरा (स०करपत्र)। करसी=(स०करीष) उपले या कंडे की आग जिसमे शरीर सिझाना बड़ा तप समझा जाता था, जैसे गनिका गीध बधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीझे—तुलसी। (१७) करा=कला से, अपने तेज से। कारे=साँप। पन्नग पंकज···बईठ=सर्प के सिर या कमल पर बैठे खंजन को देखने से राज्य मिलता है, ऐसा ज्योतिष मे लिखा है। (१८) पुहुमि=पृथिवी (प्रा०पुहवी) बसा=बरट, भिड, बर्रै। परिहँस=ईर्ष्या, डाह (इस अर्थ मे ही अवध मे बोला जाता है)। मानहुँ नाल···गए=कमल के नाल को तोड़ने पर दोनो खंडो के बीच कुछ महीन महीन सूत लगे रह जाते है। तागा=सूत। छुद्र-घंटिका=घुँघरूदार करधनी। (१९) भँव=घूमता है, चक्कर खाता है।

चंदन माँझ कुरंगिनि खोजू। दहुँ को पाउ, को राजा भोजू॥
को ओहि लागि हिवंचल सीझा। का कहँ लिखी, ऐस की रीझा?॥
तीवइ कँवल सुगंध सरीरू। समुद-लहरि सोहै तन चीरू॥
भूलहिं रतन पाट के झोंपा। साजि मैन अस का पर कोपा?॥
अवहिं सो अहै कँवल कै करी। न जनौं कौन भौंर कहँ धरी॥

बेधि रहा जग बासना परिमल मेद सुगंध।
तेहि अरघानि भौंर सब लुबुधे तजहि न बंध॥ १९॥

बरनौं नितंब लंक कै सोभा। औ गज-गवन देखि मन लोभा॥
जुरे जंघ सोभा अति पाए। केरा-खंभ फेरि जनु लाए॥
कवँल-चरन अनि रात बिसेखी। रहैं पाट पर, पुहुमि न देखी॥
देवता हाथ हाथ पगु लेहीं। जहं पगु धरै सीस तहँ देहीं॥
साथे भाग कोउ अस पावा। चरन-कँवल लेइ सीस चढ़ावा॥
चूरा चाँद सुरुज उजियारा। पायल बीच करहिं झनकारा॥
अनवट बिछिया नखत तराई। पहुँचि सकै को पायँन ताई॥

बरनि सिंगार न जानेउँ नखसिख जैस अभोग।
तस जग किछुइ न पाएउँ उपमा देउँ ओहि जोग॥ २०॥

---

खोजू = खोज, खुर का पड़ा हुआ चिह्न। हिवंचल = हिमाचल। तीवइ = स्त्री (पूरब—तिवई)। समुद-लहरि = लहरिया कपडा। झोपा = गुच्छा। अरघानि = आघ्राण, महँक। (२०) फेरि = उलटकर। लाए = लगाए।

## (११) प्रेम-खंड

सुनतहि राजा गा मुरछाई। जानौं लहरि सुरुज कै आई॥
प्रेम-घाव-दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै तै सोई॥
परा सो पेम-समुद्र अपारा। लहरहिं लहर होइ बिसँभारा॥
बिरह-भौंर होइ भाँवरि देई। खिन खिन जीउ हिलोरा लेई॥
खिनहिं उसास बूड़ि जिउ जाई। खिनहिं उठै निसरै बौराई॥
खिनहिं पीत, खिन होइ मुख सेता। खिनहिं चेत, खिन होइ अचेता॥
कठिन मरन तें प्रेम-बेवस्था। ना जिउ जियै, न दसवँ अवस्था॥
जनु लेनिहार न लेहिं जिउ, हरहि तरासहि ताहि।
एतनै बोल आव मुख, करै "तराहि तराहि"॥ १॥

जहँ लिग कुटुँब लोग औ नेगी। राजा राय आए सब बेगी॥
जावत गुनी गारुड़ी आए। ओझा, बैद, सयान बोलाए॥
चरचहिं चेष्टा परिखहिं नारी। नियर नाहिं ओषद तहँ बारी॥
राजहि आहि लखन कै करा। सकति-कान मोहा है परा॥
नहिं सो राम, हनिवँत बड़ि दूरी। को लेइ आव सजीवन-मूरी?॥
बिनय करहि जे जे गढ़पती। का जिउ कीन्ह, कौन मति मती?॥
कहहु सो पीर, काह पुनि खाँगा?। समुद सुमेरु आव तुम्ह माँगा॥
धावन तहाँ पठावहु, देहिं लाख दस रोक।
होइ सो बेलि जेहि बारी, आनहि सबै बरोक॥ २॥

जब भा चेत उठा बैरागा। बाउर जनौं सोइ उठि जागा॥
आवत जग बालक जस रोआ। उठा रोइ 'हा ज्ञान सो खोआ'॥
हौं तो अहा अमरपुर जहाँ। इहाँ मरनपुर आएउँ कहाँ?॥

---

(१) बिसँभारा = बेसँभाल, बेसुध। दसवँ अवस्था = दशम दशा, मरण। लेनिहार = प्राण लेनेवाले। हरहि = धीरे धीरे। तरासहि = त्रास दिखाते है। (२) गारुड़ी = साँप का विष मंत्र से उतारनेवाला। चरचहि = भाँपते है। करा = लीला, दशा। खाँगा = घटा। रोक = रोकड़, रुपया (सं० रोक = नकद) पाठांतर—"थोक"। बरोक = बरच्छा, फलदान।

केइ उपकार मरन कर कीन्हा। सकति हँकारि जीउ हरि लीन्हा॥
सोवत रहा जहाँ सुख-साखा। कस न तहाँ सोवत बिधि राखा?॥
अब जिउ उहाँ, इहाँ तन सूना। कब लगि रहै परान-बिहूना॥
जौ जिउ घटहि काल के हाथा। घट न नीक पै जीउ-निसाथा॥

अहुठ हाथ तन-सरवर, हिया कवँल तेहि माँह।
नैनहिं जानहु नीयरे, कर पहुँचत अवगाह॥ ३॥

सवन्ह कहा मन समुझहु राजा। काल सेंति कै जूझ न छाजा॥
तासौ जूझ जात जो जीता। जानत कृष्ण तजा गोपीता॥
औ न नेह काहू सौं कीजै। नाँव मिटै, काहे जिउ दीजै॥
पहिले सुख नेहहि जब जोरा। पुनि होइ कठिन निबाहत ओरा॥
अहुठ हाथ तन जैस सुमेरू। पहुँचि न जाइ परा तस फेरू॥
ज्ञान-दिस्टि सौ जाइ पहूँचा। पेम अदिस्ट गगन तें ऊँचा॥
धुव तें ऊँच पेम-धुव ऊआ। सिर देइ पाँव देइ सो छूआ॥

तुम राजा औ सुखिया, करहु राज-सुख भोग।
एहि रे पंथ सो पहुँचै सहै जो दुःख बियोग॥ ४॥

सुए कहा मन बूझहु राजा। करब पिरीत कठिन है काजा॥
तुम राजा जेइ घर पोई। कवँल न भेंटेउ, भेटेउ कोई॥
जानहि भौंर जौ तेहि पथ लूटे। जीउ दीन्ह औ दिएहु न छूटे॥
कठिन आहि सिघल कर राजू। पाइय नाहि जूझ कर साजू॥
ओहि पथ जाइ जो होइ उदासी। जोगी, जती, तपा, सन्यासी॥
भोग किए जौ पावत भोगू। तजि सो भोग कोइ करत न जोगू॥
तुम राजा चाहहु सुख पावा। भोगहि जोग करत नहि भावा॥

---

(३) बिहूना = बिहीन, बिना। घट = शरीर। निसाथा = बिना साथ के। अहुठ = साढे तीन (सं० अर्द्ध-चतुर्थ; कल्पित रूप 'अध्युष्ठ', प्रा० अड्ढुट्ठ); जैसे—कबहुँ तो अहुठ परग करी बसुधा, कबहुँ देहरी उलँघि न जानी।—सूर। 'सरवर'—पाठातर 'तरिवर'। (४) काल सेंति = काल से (प्रा० वि० सुंतो)। अहुठ = दे० ३। धुव = ध्रुव॥ सिर देइ···छूआ = सिर काटकर उसपर पैर रखकर खड़ा हो; जैसे—"सीस उतारै भुइँ धरै तापर राखै पाँव। दास कबीरा यों कहै ऐसा होय तो आव॥" (५) पोई = पकाई हुई। तुम···पोई = अब तक पकी पकाई खाई अर्थात् आराम चैन से रहे।

साधन्ह सिद्धि न पाइय जौ लगि सधै न तप्प।
सो पै जानै बापुरा करै जो सीस कलप्प॥ ५॥

का भा जोग-कथनि के कथे। निकसै घिउ न बिना दधि मथे॥
जौ लहि आप हेराइ न कोई। तौ लहि हेरत पाव न सोई॥
पेम-पहार कठिन बिधि गढ़ा। सो पै चढ़ै जो सिर सौ चढ़ा॥
पंथ सूरि कै उठा अँकूरू। चोर चढ़ै, की चढ़ मंसूरू॥
तू राजा का पहिरसि कंथा। तोरे घरहि माँझ दस पंथा॥
काम, क्रोध, तिस्ना, मद माया। पाँचौ चोर न छाँड़हिं काया॥
नवौ सेध तिन्ह कै दिठियारा। घर मूसहि निसि, की उजियारा॥

अबहू जागु अजाना, होत आव निसि भोर।
तब किछु हाथ न लागिहिं मूसि जाहिं जब चोर॥ ६॥

सुनि सो बात राजा मन जागा। पलक न मार, पेम चित लागा॥
नैनन्ह ढरहि मोति औ मूँगा। जस गुर खाइ रहा होइ गूँगा॥
हिय कै जोति दीप वह सूझा। यह जो दीप अँधियारा बूझा॥
उलटि दीठि माया सौ रूठी। पलटि न फिरी जानि कै झूठी॥
जौ पै नाहीं अहथिर दसा। जग उजार का कीजिय बसा॥
गुरू बिरह-चिनगी जो मेला। जो सुलगाइ लेइ सो चेला॥
अब करि फनिग भृंग कै करा। भौर होहुँ जेहि कारन जरा॥

फूल फूल फिरि पूछौं जौ पहुँचौं ओहि केत।
तन नेवछावरि कै मिलौं ज्यों मधुकर जिउ देत॥ ७॥

बंधु मीत बहुतै समुझावा। मान न राजा कोउ भुलावा॥
उपजी पेम-पीर जेहि आई। परबोधत होइ अधिक सो आई॥
अमृत बात कहत बिष जाना। पेम क बचन मीठ कै माना॥
जो ओहि बिषै मारि कै खाई। पूछहु तेहि सन पेम-मिठाई॥

---

साधन्ह = केवल साध या इच्छा से। कलप्प करै = काट डाले (सं० क्लृप्त)। (६) सूरि = सूली। दिठियार = देख में, देखा हुआ। मूसि जाहिं = चुरा ले जायँ (सं० मूषण)। (७) अहथिर = स्थिर। उजार = उजाड़। बसा = बसे हुए। फनिग = फनगा, फतिंगा, पतग। भृंग = कीड़ा जिसके विषय मे प्रसिद्ध है कि और फतिंगों को अपने रूप का कर लेता है। करा = कला, व्यापार। केत = कैत, ओर, तरफ, अथवा केतकी। (८) अमृत = ससार का अच्छा से अच्छा पदार्थ। बिषै = विष तथा अध्यात्म पक्ष में विषय।

पूँछहु बात भरथरिहि जाई। अमृत-राज तजा विष खाई॥
औ महेस बड़ सिद्ध कहावा। उनहूँ विषै कंठ पै लावा॥
होत आव रवि-किरिन बिकासा। हनुवँत होइ को देइ सुआसा॥

तुम सब सिद्धि मनावहु होइ गनेस सिधि लेव।
चेला को न चलावै तुलै गुरू जेहि भेव? ॥ ८ ॥

---

होत आव...सुआसा = लक्ष्मण को शक्ति लगने पर जब यह कहा गया था कि सूर्य्य निकलने के पहले यदि संजीवनी बूटी आ जायगी तो वे बचेंगे तब राम को हनुमान जी ने ही आशा बँधाई थी। तुलै गुरू जेहि भेव = जित भेद तक गुरु पहुँचता है, जिस तत्त्व का साक्षात्कार गुरु करता है।

## (१२) जोगी-खंड

तजा राज, राजा भा जोगी। औ किंगरी कर कहेउ वियोगी॥
तन विसँभर मन वाउर लटा। अरुझा पेम, परी सिर जटा॥
चंद्र-वदन औ चंदन-देहा। भसम चढ़ाइ कीन्ह तन खेहा॥
मेखल, सिंघी, चक्र धँधारी। जोगवाट, रुदराछ, अधारी॥
कंथा पहिरि दंड कर गहा। सिद्ध होइ कहे गोरख कहा॥
मुद्रा स्रवन, कंठ जपमाला। कर उपदान, काँध बघछाला॥
पाँवरि पाँव, दीन्ह सिर छाता। खप्पर लीन्ह भेस करि राता॥

चला भुगुति माँगै कहँ, साधि कया तप जोग।
सिद्ध होइ पदमावति, जेहि कर हिये वियोग॥ १॥

गनक कहहिं गनि गौन न आजू। दिन लेइ चलहु, होइ सिध काजू॥
पेम-पंथ दिन घरी न देखा। तब देखै जब होइ सरेखा॥
जेहि तन पेम कहाँ तेहि माँसू। कया न रकत, नैन नहि आँसू॥
पंडित भूल, न जानै चालू। जीउ लेत दिन पूछ न कालू॥
सती कि बौरी पूछहि पाँड़े। औ घर पैठि कि सैतै भाँड़े॥
मरै जो चलै गंग-गति लेई। तेहि दिन कहाँ घरी को देई?॥
मैं घर बार कहाँ कर पावा। घरी के आपन, अंत परावा॥

---

(१) किंगरी = छोटी सारंगी या चिकारा। लटा = शिथिल, क्षीण। मेखल = मेखला। सिंघी = सींग का बाजा जो फूँकने से बजता है। धँधारी = एक में गुछी हुई लोहे की पतली कड़ियाँ जिनमे उलझे हुए डोरे या कौड़ी को गोरखपंथी साधु अद्‌भुत रीति से निकाला करते हैं, गोरखधंधा। अधारी = झोला जो दोहरा होता है। मुद्रा = स्फटिक का कुंडल जिसे गोरखपथी कान में बहुत बड़ा छेद करके पहनते है। उदपान = कमंडलु। पाँवरि = खड़ाऊँ। राता = गेरुआ। (२) तब देखै = तब तो देखे; तब न देख सकता है। सरेखा = चतुर, होशवाला। सैते = सँभालती या सहेजती है।

हौं रे पथिक पखेरू; जेहि बन सोर निबाहु।
खेलि चला तेहि बन कहँ, तुम अपने घर जाहु॥ २॥

चहुँ दिसि आन साँटिया फेरी। भै कटकाई राजा केरी॥
जावत अहहि सकल अरकाना। सँभर लेहु, दूरि है जाना॥
सिंघलदीप जाइ अब चाहा। मोल न पाउब जहाँ बेसाहा॥
सब निबहै तहँ आपनि साँठी। साँठि बिना सो रह मुख माटी॥
राजा चला साजि कै जोगू। साजहु बेगि चलहु सब लोगू॥
गरब जो चढ़े तुरय कै पीठी। अब भुइँ चलहु सरग कै डीठी॥
मंतर लेहु होहु सँग-लागू। गुदर जाइ सब होइहि आगू॥
का निचित रे मानुस, आपन चीते आछु।
लेहि सजग होइ अगमन, मन पछितावं न पाछु॥ ३॥

बिनवै रतनसेन कै माया। माथे छात, पाट निति पाया॥
बिलसहु नौ लख लच्छि पियारी। राज छाँड़ि जिनि होहु भिखारी॥
निति चंदन लागै जेहि देहा। सो तन देख भरत अब खेहा॥
सब दिन रहेहु करत तुम भोगू। सो कैसे साधब तप जोगू?॥
कैसे धूप सहब बिनु छाहाँ। कैसे नीद परिहि भुइ माहाँ?॥
कैसे ओढ़ब काथरि कंथा। कैसे पाँव चलब तुम पंथा?॥
कैसे सहब खिनहि खिन भूखा। कैसे खाब कुरकुटा रूखा?॥
राजपाट, दर; परिगह तुम्ह ही सौ उजियार।
बैठि भोग रस मानहु, कै न चलहु अँधियार॥ ४॥

मोहि यह लोभ सुनाव न माया। काकर सुख, काकर यह काया॥
जो निआन तन होइहि छारा। माटिहि पोखि मरै को भारा?॥
का भूलौं एहि चंदन चोवा। बैरी जहाँ अँग कर रोवाँ॥

---

(३) आन = आज्ञा; घोषणा (प्रा० आणण)। साँटिया = डौड़ीवाला। कटकाई = दलबल के साथ चलने की तैयारी। अरकाना = अरकान-दौलत; सरदार। सँभर = संबल, कलेऊ। साँठि = पूँजी। तुरय = तुरग। गुदर होइहि = पेश होइए, हाजिर होइए। आपनि चीते आछु = अपने चेत या होश में रह। अगमन = आगे, पहले से। (४) माया = माता। लच्छि = लक्ष्मी। कथा = गुदड़ी। कुरकुटा = मोटा कुटा अन्न। दर = दल या राजद्वार। परिगह = परिग्रह, परिजन, परिवार के लोग। (५) निआन = निदान, अंत में। पोखि = पोषण करके।

हाथ, पाँव, सरवन औं आँखी। ए सब उहाँ भरहिं मिलि साखी॥
सूत सूत तन बोलहि दोखू। कहु कैसे होइहि गति मोखू॥
जौं भल होत राज औ भोगू। गोपिचंद नहि साधत जोगू॥
उन्ह हिय-दीठि जो देख परेवा। तजा राज कजरी-बन सेवा॥
देखि अंत अस होइहि गुरू दीन्ह उपदेस।
सिंघलदीप जाव हम, माता! देहु अदेस॥ ५॥

रोवहिं नागमती रनिवासू। केइ तुम्ह कंत दीन्ह बनवासू?॥
अब कों हमहिं करिहि भोगिनी। हमहूँ साथ होब जोगिनी॥
की हम्ह लावहु अपने साथा। की अब मारि चलहु एहि हाथा॥
तुम्ह अस बिछुरै पीउ पिरीता। जहँवाँ राम तहाँ सँग सीता॥
जौ लहि जिउ सँग छाँड़ न काया। करिहौं सेव, पखरिहौ पाया॥
भलेहि पदमिनी रूप अनूपा। हमतें कोइ न आगरि रूपा॥
भवै भलेहि, पुरुखन कै डीठी। जिनहि जान तिन्ह दीन्ही पीठी॥
देहि असीस सबै मिलि, तुम्ह माथे निति छात।
राज करहु चितउरगढ़, राखहु पिय! अहिबात॥ ६॥

तुम्ह तिरिया मति हीन तुम्हारी। मूरुख सो जो मतै घर नारी॥
राघव जो सीता सँग लाई। रावन हरी, कवन सिधि पाई?॥
यह संसार सपन कर लेखा। बिछुरि गए जानौ नहिं देखा॥
राजा भरथरि सुना जो ज्ञानी। जेहि के घर सोरह सै रानी॥
कुच लीन्हे तरवा सहराई। भा जोगी, कोउ संग न लाई॥
जोगिहि काह भोग सौ काजू। चहै न धन घरनी औ राजू॥
जूड़ कुरकुटा भीखहि चाहा। जोगी तात भात कर काहा?॥
कहा न मानै राजा, तजी सवाईं भीर।
चला छाँड़ि कै रोवत, फिरि कै देइ न धीर॥ ७॥

रोवत माय, न बहुरत बारा। रतन चला, घर भा अँधियारा॥
बार मोर जौ राजहि रता। सो लै चला, सुआ परबता॥

---

साखी भरहिं = साक्ष्य या गवाही देते हैं। देख परेवा = पक्षी की सी अपनी दशा देखी। कजरीबन = कदलीवन। (६) भँवै = इधर-उधर घूमती है। जिनहिं··· पीठी = जिनसे जान पहचान हो जाती है उन्हें छोड़ नए के लिये दौड़ा करती है। (७) मतै = सलाह ले। तात भात = गरम ताजा भात। (८) बारा = बालक, बेटा।

रोवहिं रानी, तजहि पराना। नोचहिं बार, करहिं खरिहाना॥
चूरहि गिउ-अभरन, उर-हारा। अब कापर हम करब सिंगारा?॥
जा कहँ कहहि रहसि कै पीऊ। सोइ चला, काकर यह जीऊ॥
मरै चहहिं, पै मरै न पावहिं। उठै आगि, सब लोग बुझावहिं॥
घरी एक सुठि भएउ अदोरा। पुनि पाछे बीता होइ रोरा॥

टूटे मन नौ मोती, फूटे मन दस काँच।
लीन्ह समेटि सब अभरन, होइगा दुख कर नाच॥ ८॥

निकसा राजा सिंगी पूरी। छाँड़ा नगर मेलि कै धूरी॥
राय रान सब भए बियोगी। सोरह सहस कुँवर भए जोगी॥
माया मोह हरा सेइ हाथा। देखेन्हि बूझि निआन न साथा॥
छाँड़ेन्हि लोग कुटुंब सब कोऊ। भए निनार सुख दुख तजि दोऊ॥
सँवरैं राजा सोइ अकेला। जेहि के पंथ चले होइ चेला॥
नगर नगर औ गाँवहि गाँवाँ। छाँड़ि चले सब ठाँवहि ठावाँ॥
काकर मढ़, काकर घर माया। ताकर सब जाकर जिउ काया॥

चला कटक जोगिन्ह कर कै गेरुआ सब भेसु।
कोस बीस चारिहु दिसि जानो फूला टेसु॥ ९॥

आगे सगुन सगुनियै ताका। दहिने माछ रूप के टाँका॥
भरे कलस तरुनी जल आई। 'दहिउ लेहु' ग्वालिनि गोहराई॥
मालिनि आव मौर लिए गाँथे। खंजन बैठ नाग के माथे॥
दहिने मिरिग आइ बन धाएँ। प्रतीहार बोला खर बाएँ॥
बिरिख सँवरिया दहिने बोला। बाएँ दिसा चाषु चरि डोला॥
बाएँ अकासी धौरी आई। लोवा दरस आई दिखराई॥
बाएँ कुररी, दहिने कूचा। पहुँचै भुगुति जैस मन रूचा॥

---

खरिहान करहिं = ढेर लगाती हैं। अँदोरा = हलचल, कोलाहल (सं० आंदोलन) (९) पूरी = बजाकर। मेलि कै = लगाकर। निनार = न्यारे, अलग। मढ़ = मठ। (१०) सगुनिया = शकुन जाननेवाला। माछ = मछली। रूप = रूपा, चाँदी। टाँका = बरतन। मौर = फूलों का मुकुट जो विवाह मे दूल्हे को पहनाया जाता है (सं० मुकुट, प्रा० मउड़)। गाँथे = गूथे हुए। बिरिख = वृष, बैल। सँवरिया = साँवला, काला। चाषु = चाष, नीलकंठ। अकासी धौरी = धोमकरी चील जिसका सिर सफेद और सब अंग लाल या खैरा होता है। लोवा = लोमड़ी। कुररी = टिटिहरी। कूचा = क्रौंच, कराकुल, कूज

जा कहँ सगुन होहिं अस औ गवनै जेहि आस।
अस्ट महासिधि तेहि कहँ, जस कवि कहा बियास॥ १०॥

भएउ पयान चला पुनि राजा। सिंगि-नाद जोगिन कर बाजा॥
कहेन्हि आजु किछु थोर पयाना। काल्हि पयान दूरि है जाना॥
ओहि मिलान जो पहुँचै कोई। तब हम कहब पुरुप भल सोई॥
है आगे परवत कै बाटा। विपम पहार अगम सुठि घाटा॥
विच विच नदी खोह औ नारा। ठावहिं ठाँव बैठ बटपारा॥
हनुवँत केर सुनव पुनि हाँका। दहुँ को पार होइ, को थाका॥
अस मन जानि सँभारहु आगू। अगुआ केर होहु पछलागू॥

करहिं पयान भोर उठि, पंथ कोस दस जाहिं।
पंथी पंथा जे चलहिं, ते का रहहि ओठाहि॥ ११॥

करहु दीठि थिर होइ बटाऊ। आगे देखि धरहु भुइँ पाऊ॥
जो रे उबट होइ परे भुलाने। गए मारि, पथ चलै न जाने॥
पाँयन पहिरि लेहु सब पौरी। काँट धसै, न गड़ै अँकरौरी॥
परे आइ बन परवत माहाँ। दंडाकरन बीझ-बन जाहाँ॥
सघन ढाँख-बन चहुँदिसि फूला। बहु दुख पाव उहाँ कर भूला॥
झाँखर जहाँ सो छाँड़हु पंथा। हिलगि मकोइ न फारहु कंथा॥
दहिने बिदर, चँदेरी बाएँ। दहुँ कहँ होइ बाट दुइ ठाएँ॥

एक बाट गइ सिंघल, दूसरि लंक समीप।
हैं आगे पथ दूऔ, दहुँ गौनब केहि दीप॥ १२॥

ततखन बोला सुआ सरेखा। अगुआ सोइ पंथ जेइ देखा॥
सो का उड़ै न जेहि तन पाँखू। लेइ सो परासहि बूड़त साखू॥
जस अंधा अंधै कर संगी। पंथ न पाव होइ सहलंगी॥
सुनु मत, काज चहसि जौं साजा। बीजानगर बिजयगिरि राजा॥
पहुँचौ जहाँ गोंड औ कोला। तजि बाएँ अँधियार, खटोला॥

---

(११) मिलान = टिकान, पड़ाव। ओठाहिं = उस जगह। (१२) बटाऊ = पथिक। उबट = ऊबड़-खाबड़ कठिन मार्ग। दंडाकरन = दडकारण्य। बीझबन = सघन वन। झाँखर = काँटीली झाड़ियाँ। हिलगि = सटकर। (१३) सरेख = सयाना, श्रेष्ठ, चतुर। लेइ सो···साखू = शाखा डूबते समय पत्ते को ही पकड़ता है। परास = पलास, पत्ता। सहलंगी = सँगलगा; साथी। बीजानगर = विजयानगरम्। गोंड औ कोल = जगली जातियाँ। अँधियार = अँजारी जो बीजापुर का एक महाल था। खटोला = गढ़मडला का पश्चिम भाग।

दक्खिन दहिने रहहि तिलंगा। उत्तर बाएँ गढ़-काटंगा॥
माँझ रतनपुर सिंघदुवारा। झारखंड देइ बाँव पहारा॥
आगे पाव उड़ैसा, बाएँ दिए सो बाट।
दहिनावरत देइ कै, उतरु समुद के घाट॥ १३॥

होत पयान जाइ दिन केरा। सिरिंगारन महँ भएउ बसेरा॥
कुस-साँथरि भइ सौंर सुपेती। करवट आइ बनी भुइँ सेंती॥
चलि दस कोस ओस तन भीजा। काया मिलि तेहिं भसम मलीजा॥
ठाँव ठाँव सब सोअहिं चेला। राजा जागै आपु अकेला॥
जेहि के हिये पेम-रँग जामा। का तेहि भूख नींद बिसरामा॥
बन अँधियार, रैनि अँधियारी। भादों बिरह भएउ अति भारी॥
किंगरी हाथ गहे बैरागी। पाँच तंतु धुन ओही लागी॥
नैन लाग तेहि मारग पदमावति जेहि दीप।
जैस सेवातिहि सेवै बन चातक, जल सीप॥ १४॥

---

गढ़-काटग = गढ़ कटग, जबलपुर के आसपास का प्रदेश। रतनपुर = बिलासपुर के जिले में आजकल है। सिंघ दुवारा = छिंदवाड़ा (?)। झारखंड = छत्तीसगढ़ और गोडवाने का उत्तर भाग। (१४) सौंर = चादर। सेंती = से।

## (१३) राजा-गजपति-संवाद-खंड

मासेक लाग चलत तेहि बाटा। उतरे जाइ समुद के घाटा॥
रतनसेन भा जोगी-जती। सुनि भेंटै आवा गजपती॥
जोगी आपु, कटक सब चेला। कौन दीप कहँ चाहहि खेला॥
"आए भलेहि, मया अब कीजै। पहुनाई कहँ आयसु दीजै"॥
"सुनहु गजपती उतर हमारा। हम्ह तुम्ह एकै, भाव निरारा॥
नेवतहु तेहि जेहि नहि यह भाऊ। जो निहचै तेहि लाउ नसाऊ॥
इहै बहुत जौ बोहित पावौं। तुम्ह तै सिंघलदीप सिधावौं॥
जहाँ मोहि निजु जाना कटक होउँ लेइ पार।
जौ रे जिऔं तौ बहुरौं, मरौं त ओहि के बार"॥ १॥

गजपति कहा "सीस पर माँगा। बोहित नाव न होइहि खाँगा॥
ए सब देउँ आनि नव-गढ़े। फूल सोइ जो महेसुर चढ़े॥
पै गोसाइँ सन एक बिनाती। मारग कठिन, जाब केहि भाँती॥
सात समुद्र असूझ अपारा। मारहिं मगर मच्छ घरियारा॥
उठै लहरि नहि जाइ सँभारी। भागिहि कोइ निबहै बैपारी॥
तुम सुखिया अपने घर राजा। जोखिउँ एत सहहु केहि काजा?॥
सिंघलदीप जाइ सो कोई। हाथ लिए आपन जिउ होई॥
खार, खीर, दधि, जल उदधि, सुर, किलकिला अकूत।
को चढ़ि नाँघै समुद ए, है काकर अस बूत?"॥ २॥

"गजपति यह मन सकती-सीऊ। पै जेहि पेम कहाँ तेहि जीऊ॥
जो पहिले सिर दै पगु धरई। मूए केर मीचु का करई?॥

---

(१) गजपति = कलिंग के राजाओं की पुरानी उपाधि जो अब तक विजयानगरम् (ईजानगर) के राजाओं के नाम के साथ देखी जाती है। खेला चाहहिं = मन की मौज मे जाना चाहते हैं। लाउ = लाव, लगाव, प्रेम।
(२) सीस पर माँगा = आपकी माँग या आज्ञा सिर पर है। खाँगा = कमी। किलकिला = एक समुद्र का नाम। अकूत = अपार। बूत = बूता, बल।
(३) यह मन···सीऊ = यह मन शक्ति की सीमा है।

सुख त्यागा, दुख सॉभर लीन्हा। तब पयान सिंघल-मुँह कीन्हा॥
औरा जान कवँल कै प्रीती। जेहि पहँ बिथा पेम कै बीती॥
औ जेइ समुद पेम कर देखा। तेइ एहि समुद बूँद करि लेखा॥
सात समुद सत कीन्ह सँभारू। जौ धरती, का गरुअ पहारू?॥
जौ पै जीउ बाँध सत बेरा। बरु जिउ जाइ फिरै नहिं फेरा॥

रंगनाथ हौं जा कर, हाथ ओहि के नाथ।
गहे नाथ सो खैंचै, फेरे फिरै न माथ॥ ३॥

पेम-समुद्र जो अति अवगाहा। जहाँ न बार न पार न थाहा॥
जो एहि खीर-समुद महँ परे। जीउ गँवाइ हंस होइ तरे॥
हौं पदमावति कर भिखमंगा। दीठि न आव समुद औ गंगा॥
जेहि कारन गिउ काथरि कंथा। जहाँ सो मिलै जावँ तेहि पंथा॥
अब एहि समुद परेउँ होइ मरा। मुए केर पानी का करा?॥
मर होइ वहा कतहुँ लेइ जाऊ। ओहि के पंथ कोउ धरि खाऊ॥
अस मैं जानि समुद महँ परऊँ। जौ कोइ खाइ वेगि निसतरऊँ॥

सरग सीस, धर धरती, हिया सो पेम-समुंद।
नैन कौड़िया होइ रहे, लेइ लेइ उठहि सो बुंद॥ ४॥

कठिन बियोग जाग दुख-दाहू। जरतहि मरतहि ओर निबाहू॥
डर लज्जा तहँ दुवौ गवाँनी। देखै किछु न आगि नहि पानी॥
आगि देखि वह आगे धावा। पानि देखि तेहि सौंह धँसावा॥
अस वाउर न बुझाए बूझा। जेहि पथ जाइ नीक सो सूझा॥
मगर-मच्छ-डर हिये न लेखा। आपुहि चहै पार भा देखा॥
औ न खाहि ओहि सिंघ सदूरा। काठहु चाहि अधिक सो झूरा॥
काया माया संग न आथी। जेहि जिउ सौंपा सोई साथी॥

जो किछु दरब अहा सँग दान दीन्ह संसार।
ना जानी केहि सत सेंती दैव उतारै पार॥ ५॥

---

सॉभर = सबल, राह का कलेवा। बेरा = नाव का बेड़ा। रंगनाथ हौं = रंग या प्रेम में जागी हूँ जिसका। नाथ = नकेल, रस्सी। माथ = सिर या रुख तथा नाव का अग्रभाग। (४) हस = (क) शुद्ध आत्म-स्वरूप, (ख) उज्ज्वल हस। मर = मरा, मृतक। कौड़िया = कौड़िल्ला नाम का पक्षी जो पानी मे से मछली पकड़कर फिर ऊपर उड़ने लगता है। (५) सदूरा = शार्दूल, एक प्रकार का सिंह। आथी = अस्ति, है। सेंती = से।

## (१४) बोहित-खंड

सो न डोल देखा गजपती। राजा सत्त दत्त दुहुँ सती॥
अपनेहि कया, आपनेहि कंथा। जीउ दीन्ह अगुमन तेहि पंथा॥
निहचै चला भरम जिउ खोई। साहस जहाँ सिद्धि तहँ होई॥
निहचै चला छाँड़ि कै राजू। बोहित दीन्ह, दीन्ह सब साजू॥
चढ़ा बेगि, तब बोहित पेले। धनि सो पुरुष पेम जेइ खेले॥
पेम-पंथ जौ पहुँचै पारा। बहुरि न मिलै आइ एहि छारा॥
तेहि पावा उत्तिम कैलासू। जहाँ न मीचु, सदा सुख-बासू॥

एहि जीवन कै आस का? जस सपना पल आधु।
मुहमद जियतहि जे मुए तिन्ह पुरुषन्ह कह साधु॥ १॥

जस बन रेगि चलै गज-ठाटी। बोहित चले, समुद गा पाटी॥
धावहिं बोहित मन उपराही। सहस कोस एक पल महँ जाहीं॥
समुद अपार सरग जनु लागा। सरग न घाल गनै बैरागा॥
ततखन चाल्हा एक देखावा। जनु धौलागिरि परवत आवा॥
उठी हिलोर जो चाल्ह नराजी। लहरि अकास लागि भुइँ बाजी॥
राजा सेती कुँवर सब कहही। अस अस मच्छ समुद महँ अहहीं॥
तेहि रे पंथ हम चाहहि गवना। होहु सँजूत बहुरि नहि अवना॥

गुरु हमार तुम राजा, हम चेला तुम नाथ।
जहाँ पाँव गुरु राखै, चेला राखै माथ॥ २॥

---

(१) सत्त दत्त दुहुँ सती = सत्य या दान, दोनो मे सच्चा या पक्का है। पेले = झोंक से चले। (२) ठाटी = ठट्ट, झुंड। उपराहीं = अधिक (वेग से)। घाल न गनै = पसंगे बराबर भी नहीं गिनता, कुछ नहीं समझता। घाल = बलुआ, थोड़ी सी और वस्तु जो सौदे के ऊपर बेचनेवाला देता है। चाल्हा = एक मछली, चेल्हवा। नराजी = नागज हुई। भुइँ बाजी = भूमि पर पड़ी। सँजूत = सावधान, तैयार।

केवट हँसे सो सुनत गवेजा। समुद न जानु कुवाँ कर मेजा॥
यह तौ चाल्ह न लागै कोहू। का कहिहौ जब देखिहौ रोहू?॥
सो अवहीं तुम्ह देखा नाहीं। जेहि मुख ऐसे सहस समाही॥
राजपंखि तेहि पर मेड़राहीं। सहस कोस तिन्ह कै परछाहीं॥
तेइ ओहि मच्छ ठोर भरि लेहीं। सावक-मुख चारा लेइ देहीं॥
गरजे गगन पंखि जब बोला। डोल समुद्र डैन जब डोला॥
तहाँ चाँह औ सूर असूझा। चढ़ै सोइ जो अगुमन बूझा॥

दस महँ एक जाइ कोइ करम, धरम, तप, नेम।
बोहित पार होइ जब तबहि कुसल औ खेम॥ ३॥

राजै कहा कीन्ह मैं पेमा। जहाँ पेम कहँ कूसल खेमा॥
तुम्ह खेवहु जौ खेवै पारहु। जैसे आपु तरहु मोहि तारहु॥
मोहि कुसल कर सोच न ओता। कुसल होत जौ जनम न होता॥
धरती सरग जाँत-पट दोऊ। जो तेहि बिच जिउ राख न कोऊ॥
हौं अब कुसल एक पै माँगौं। पेम-पंथ सत बाँधि न खाँगौं॥
जौ सत हिय तौ नयनहि दीया। समुद न डरै पैठि मरजीया॥
तहँ लगि हेरौं समुद ढँढोरी। जहं लगि रतन पदारथ जोरी॥

सप्त पतार खोजि कै काढ़ौं वेद गरंथ।
सात सरग चढ़ि धावौं पदमावति जेहि पंथ॥ ४॥

---

(३) गवेजा = बातचीत (?)। मेजा = मेढक, (पूरब—मेजुका)। कोहू = किसी को। (४) ओता = उतना। पट = पल्ला। खाँगौं = कसर न करूँ। मरजीया = जी पर खेलकर विकट स्थानो से व्यापार की वस्तु (जैसे, मोती, शिलाजतु, कस्तूरी) लानेवाले, जिवकिया। ढँढोरी = छानकर।



(६२०) मुहूर्त तक चन्द्र संचार करता है॥ १९०॥ चन्द्र जघन्य मध्यम नक्षत्रके ऊपर एक दिन तथा उत्तम (उत्कृष्ट) नक्षत्रके ऊपर

## (१५) सात समुद्र-खंड

सायर तरै हिये सत पूरा। जौ जिउ सत, कायर पुनि सूरा॥
तेइ सत वोहित कुरी चलाए। तेइ सत पवन पंख जनु लाए॥
सत साथी, सत कर संसारू। सत्त खेइ लेइ लावै पारू॥
सत्त ताक सब आगू पाछू। जहँ जहँ मगर मच्छ औ काछू॥
उठै लहरि जनु ठाढ़ पहारा। चढ़ै सरग औ परै पतारा॥
डोलहि वोहित लहरै खाही। खिन तर होहि, खिनहि उपराही॥
राजै सो सत हिरदै बाँधा। जेहि सत टेकि करै गिरि काँधा॥

खार समुद सो नाँघा, आए समुद जहँ खीर।
मिले समुद वै सातौ, बेहर बेहर नीर॥ १॥

खीर-समुद का बरनौ नीरू। सेत सरूप, पियत जस खीरू॥
उलथहि मानिक, मोती, हीरा। दरब देखि मन होइ न थीरा॥
मनुआ चाह दरब औ भोगू। पंथ भुलाइ विनासै जोगू॥
जोगी होइ सो मनहि सँभारै। दरब हाथ कर समुद पवारै॥
दरब लेइ सोई जो राजा। जो जोगी तेहिके केहि काजा?॥
पंथहि पंथ दरब रिपु होई। ठग, वटपार, चोर सँग सोई॥
पंथी सो जो दरब सौं रूसे। दरब समेटि बहुत अस मूसे॥

खीर-समुद सो नाँघा, आए समुद-दधि माँह॥
जो है नेह क बाउर तिन्ह कहँ धूप न छाँह॥ २॥

दधि-समुद्र देखत तस दाधा। पेम क लुबुध दगध पै साधा॥
पेम जो दाधा धनि वह जीऊ। दधि जमाइ मथि काढ़ै घीऊ॥
दधि एक बूँद जाम सब खीरू। काँजी-बूँद बिनसि होइ नीरू॥
साँस डाँड़ि, मन मथनी गाढ़ी। हिये चोट विनु फूट न साढ़ी॥

---

(१) सायर = सागर। कुरी = समूह। बेहर बेहर = अलग अलग। (२) मनुआ = मनुष्य या मन। पवारै = फेंके। रूसे = विरक्त हुए। मूसे = मूसे गए, ठगे गए। (३) दगध साधा = दाह सहने का अभ्यास कर लेता है। दाधा = जला। डाँड़ि = डाँड़ी, डोरी।

जेहि जिउ पेम चदन तेहि आगी। पेम बिहून फिरै डर भागी॥
पेम कै आगि जरै जौं कोई। दुख तेहि कर न अँबिरथा होई॥
जो जानै सत आपुहि जारै। निसत हिये सत करै न पारै॥

दधि-समुद्र पुनि पार भे, पेमहि कहा सँभार?।
भावै पानी सिर परै, भावै परै अँगार॥ ३॥

आए उदधि समुद्र अपारा। धरती सरग जरै तेहि झारा॥
आगि जो उपनी ओहि समुंदा। लंका जरी ओहि एक बुंदा॥
बिहर जो उपना ओहि तें गाढ़ा। खिन न बुझाइ जगत महँ बाढ़ा॥
जहाँ सो बिरह आगि कहँ डीठी। सौंह जरै, फिरि देइ न पीठी॥
जग महँ कठिन खड़ग कै धारा। तेहि तें अधिक बिरह कै झारा॥
अगम पंथ जो ऐस न होई। साध किए पावै सब कोई॥
तेहि समुद्र महँ राजा परा। जरा चहै पै रोवँ न जरा॥

तलफै तेल कराह जिमि इमि तलफै सब नीर।
यह जो मलयगिरि प्रेम कर बेधा समुद समीर॥ ४॥

सुरा-समुद पुनि राजा आवा। महुआ मद-छाता दिखरावा॥
जो तेहि पियै सो भाँवरि लेई। सीस फिरै, पथ पैगु न देई॥
पेम-सुरा जेहि के हिय माहाँ। कित बैठे महुआ कै छाहाँ॥
गुरु के पास दाख-रस रसा। बैरी बचुर मारि मन कसा॥
बिरह के दगध कीन्ह तन भाठी। हाड़ जराइ दीन्ह सब काठी॥
नैन-नीर सौं पोता किया। तस मद चुवा बरा जस दिया॥
बिरह सरागन्हि भूँजे माँसू। गिरि गिरि परै रकत कै आँसू॥

मुहमद मद जो पेम कर गए दीप तेहि साध।
सीस न देइ पतंग होइ तौ लगि लहै न खाध॥ ५॥

---

अँबिरथा = वृथा, निष्फल। निसत = सत्य-विहीन। भावै = चाहै। (४) झार = ज्वाला, लपट। उपनी = उत्पन्न हुई। आगि कह डीठी = आग को क्या ध्यान में लाता है। सौंह = सामने। यह जो मलयगिरि = अर्थात् राजा। (५) छाता = पानी पर फैला फूल पत्तों का गुच्छा। सीस फिरै = सिर घूमता है। मन कसा = मन वश में किया। काठी = ईंधन। पोता = मिट्टी के लेप पर गीले कपड़े का पुचारा जो भबके से अर्क उतारने मे बरतन के ऊपर दिया जाता है। सराग = सलाख, शलाका, सीख जिसमें गोदकर मास भूनते हैं। खाध = खाद्य, भोग।

---

(६३०/६७) मुहूर्त तक चन्द्र सचार करता है॥ १९०॥ चन्द्र जघन्य नक्षत्रके ऊप
मध्यम नक्षत्रके ऊपर एक दिन तथा उत्तम (उत्कृष्ट) नक्षत्रके ऊपर डेढ दिन र

पुनि किलकिला समुद महँ आए। गा धीरज, देखत डर खाए॥
भा किलकिल अस उठै हिलोरा। जनु अकास टूटै चहुँ ओरा॥
उठै लहरि परवत कै नाईं। फिरि आवै जोजन सौ ताईं॥
धरती लेइ सरग लहि बाढ़ा। सकल समुद जानहुँ भा ठाढ़ा॥
नीर होइ तर ऊपर सोई। माथे रंभ समुद जस होई॥
फिरत समुद जोजन सौ ताका। जैसे भँवै कोहाँर क चाका॥
भै परलै नियराना जबहीं। मरै जो जल परलै तेहि तबहीं॥
गै औसान सबन्ह कर देखि समुद कै बाढ़ि।
नियर होत जनु लीलै, रहा नैन अस काढ़ि॥ ६॥

हीरामन राजा सौं बोला। एही समुद आए सत डोला॥
सिंघलदीप जो नाहि निबाहू। एही ठाँव साँकर सब काहू॥
एहि किलकिला समुद्र गँभीरू। जेहि गुन होइ सो पावै तीरू॥
इहै समुद्र-पंथ मझधारा। खाँड़े कै असि धार निनारा॥
तीस सहस्र कोस कै पाटा। अस साँकर चलि सकै न चाँटा*॥
खाँड़ै चाहि पैनि बहुताई। बार चाहि ताकर पतराई॥
एही ठाँव कहँ गुरु सँग लीजिय। गुरु सँग होइ पार तौ कीजिय॥
मरन जियन एही पथहि, एही आस निरास।
परा सो गएउ पतारहि, तरा सो गा कबिलास॥ ७॥

राजै दीन्ह कटक कहँ बीरा। सुपुरुष होहु, करहु मन धीरा॥
ठाकुर जेहिक सूर भा कोई। कटक सूर पुनि आपुहि होई॥
जौ लहि सती न जिउ सत बाँधा। तौ लहि देइ कहाँर न काँधा॥
पेम-समुद महँ बाँधा बेरा। यह सब समुद बूँद जेहि केरा॥
ना हौं सरग क चाहौं राजू। ना मोहि नरक सेति किछु काजू॥
चाहौं ओहि कर दरसन पावा। जेइ मोहि आनि पेम-पथ लावा॥
काठहि काह गाढ़ का ढीला?। बूड़ न समुद, मगर नहिं लीला॥

---

*कुछ प्रतियों मे इसके स्थान पर यह चौपाई है—"एही पथ सब कहँ है जाना। होइ दुसरै बिसवास निदाना॥" मुसलमानी धर्म के अनुसार जो वैतरणी का पुल माना गया है उसकी ओर लक्ष्य है। विश्वास के कारण यह दूसरा ही (अर्थात् चौड़ा) हो जाता है।

(६) धरती लेइ = धरती से लेकर। माथे = मथने से। रंभ = घोर शब्द। औसान = होश-हवास। (७) साँकर = कठिन स्थिति। साँकर = सकरा, तंग। (८) सेति = सेती, से। गाढ़ = कठिन। ढीला = सुगम।

कान समुद धँसि लीन्हेसि, भः पाछे सब कोइ।
कोइ काहू न सँभारै, आपनि आपनि होइ॥ ८॥

कोइ बोहित जस पौन उड़ाहीं। कोई चमकि बीजु अस जाहीं॥
कोई जस भल धाव तुखारू। कोई जैस बैल गरियारू॥
कोइ जानहुँ हरुआ रथ हाँका। कोई गरुअ भार बहु थाका॥
कोई रेगहि जानहुँ चाँटी। कोई टूटि होहि तर माटी॥
कोई खाहि पौन कर झोला। कोई करहि पात अस डोला॥
कोई परहिं भौंर जल माहाँ। फिरत रहहिं, कोइ देइ न वाहाँ॥
राजा कर भा अगमन खेवा। खेवक आगे सुआ परेवा॥
कोइ दिन मिला सवेरे, कोइ आवा पछ-राति।
जाकर जस जस साजु हुत सो उतरा तेहि भाँति॥ ९॥

सतएँ समुद मानसर आए। मन जो कीन्ह साहस, सिधि पाए॥
देखि मानसर रूप सोहावा। हिय हुलास पुरइनि होइ छावा॥
का अँधियार, रैनि-मसि छूटी। भा भिनसार किरिन-रवि फूटी॥
'अस्ति अस्ति' सब साथी बोले। अंध जो अहे नैन बिधि खोले॥
कवँल बिगस तस बिहँसी देहीं। भौंर दसन होइ कै रस लेहीं॥
हँसहिं हंस औ करहि किरीरा। चुनहिं रतन मुकुताहल हीरा॥
जो अस आव साधि तप जोगू। पूजै आस, मान रस भोगू॥
भौंर जो मनसा मानसर, लीन्ह कँवलरस आइ।
घुन जो हियाव न कै सका, भूर काठ तस खाइ॥ १०॥

---

कान = कर्ण, पतवार। (९) गरियारू = मट्टर, सुस्त। हरुआ = हलका। थाका = थक गया। झोला = झोंका, झकोरा। अगमन = आगे। पछ-राति = पिछली रात। हुत = था। (१०) पुरइनि = कमल का पत्ता (सं० पुटकिनी, प्रा० पुड्इणी)। रैनिमसि = रात की स्याही। 'अस्ति अस्ति' = जिस सिंहलद्वीप के लिये इतना तप साधा वह वास्तव में है, अध्यात्मपक्ष में 'ईश्वर या परलोक है'। किरीरा = क्रीड़ा। मुकताहल = मुक्ताफल। मनसा = मन में संकल्प किया। हियाव = जीवट, साहस।

## (१६) सिंहलद्वीप-खंड

पूछा राजै कहु गुरु सूआ। न जनौं आजु कहाँ दहुँ ऊआ॥
पौन वास सीतल लेइ आवा। कया दहत चंदनु जनु लावा॥
कबहुँ न ऐस जुड़ान सरीरू। परा अगिनि महँ मलय-समीरू॥
निकसत आव किरिन-रविरेखा। तिमिर गए निरमल जग देखा॥
उठै मेघ अस जानहुँ आगे। चमकै बीजु गगन पर लागै॥
तेहि ऊपर जनु ससि परगासा। औ सो चंद कचपची गरासा॥
और नखत चहुँ दिसि उजियारे। ठावहिं ठाँव दीप अस वारे॥
और दखिन दिसि नीयरे कंचन-मेरु देखाव।
जनु वसंत ऋतु आवै तैसि बास जग आव॥ १॥
तूँ राजा जस विकरम आदी। तू हरिचंद बैन सतवादी॥
गोपिचंद तुइ जीता जोगू। औ भरथरी न पूज वियोगू॥
गोरख सिद्धि दीन्ह तोहि हाथू। तारी गुरू मछंदरनाथू॥
जीत पेम तुइँ भूमि अकासू। दीठि परा सिघल-कबिलासू॥
वह जो मेघ गढ़ लाग अकासा। बिजुरी कनय-कोट चहुँ पासा॥
तेहि पर ससि जो कचपचि भरा। राजमँदिर सोने नग जरा॥
और जो नखत देख चहुँ पासा। सब रानिन्ह कै आहिं अवासा।
गगन सरोवर, ससि-कँवल कुमुद-तराइन्ह पास।
तू रवि ऊआ, भौंर होइ पौन मिला लेइ बास॥ २॥
सो गढ़ देखु गगन तें ऊँचा। नैनन्ह देखा, कर न पहूँचा॥
बिजुरी चक्र फिरै चहुँ फेरी। औ जमकात फिरै जम केरी॥
धाइ जो बाजा कै मन साधा। मारा चक्र भएउ दुइ आधा॥

---

(१) कचपची = कृत्तिका नक्षत्र। (२) आदी = आदि, बिल्कुल (बँगला मे ऐसा प्रयोग अब भी होता है)। बैन = वचन अथवा वैन्य (वेन का पुत्र पृथु)। तारी = ताली, कुंजी। मछंदरनाथ = मत्स्येंद्रनाथ, गोरखनाथ के गुरु। कनय = कनक, सोना। (३) जमकात = एक प्रकार का खाँड़ा (यमकर्त्तरि)। बाजा = पहुँचा, डटा।

चाँद सुरुज औ नखत तराइ। तेहि डर अँतरिख फिरहिं सबाई॥
पौन जाइ तहँ पहुँचै चहा। मारा तैस लोटि भुइँ रहा॥
अगिनि उठी, जरि बुझी निआना। धुआँ उठा, उठि बीच बिलाना॥
पानि उठा उठि जाइ न छूआ। बहुरा रोइ, आइ आइ भुइँ चूआ॥
रावन चहा सौंह होइ उतरि गए दस माथ।
संकर धरा लिलाट भुइँ और को जोगीनाथ? ॥ ३ ॥

तहाँ देखु पदमावति रामा। भौंर न जाइ, न पंखी नामा॥
अब तोहि देउँ सिद्धि एक जोगू। पहिले दरस होइ, तब भोगू॥
कंचन-मेरु देखाव सो जहाँ। महादेव कर मंडप तहाँ॥
ओहि-क खंड जस परवत मेरू। मेरुहि लागि होइ अति फेरू॥
माघ मास, पाछिल पछ लागे। सिरी-पंचिमी होइहि आगे॥
उघरिहि महादेव कर बारू। पूजिहि जाइ सकल संसारू॥
पदमावति पुनि पूजै आवा। होइहि एहि मिस दीठि-मेरावा॥
तुम्ह गौनहु ओहि मंडप, हौं पदमावति पास।
पूजै आइ बसंत जब तब पूजै मन-आस॥ ४॥

राजै कहा दरस जौ पावौं। परवत काह, गगन कहँ धावौं॥
जेहि परवत पर दरसन लहना। सिर सौं चढ़ौं, पाँव का कहना॥
मोहूँ भावै ऊँचै ठाऊँ। ऊँचै लेउँ पिरीतम नाऊँ॥
पुरुषहि चाहिय ऊँच हियाऊ। दिन दिन ऊँचे राखै पाऊ॥
सदा ऊँच पै सेइय बारा। ऊँचै सौं कीजिय बेवहारा॥
ऊँचे चढ़ै, ऊँच खँड सूझा। ऊँचे पास ऊँच मति बूझा॥
ऊँचे सँग संगति निति कीजै। ऊँचे काज जीउ पुनि दीजै॥
दिन दिन ऊँच होइ सो जेहि ऊँचे पर चाउ।
ऊँचे चढ़त जो खसि परै ऊँच न छाँड़िय काउ॥ ५॥

हीरामनि देइ बचा कहानी। चला जहाँ पदमावति रानी॥
राजा चला सँवरि सो लता। परबत कहँ जो चला परबता॥
का परवत चढ़ि देखै राजा। ऊच मँडप सोने सब साजा॥

---

तैस = ऐसा। निआन = अंत में। जोगीनाथ = योगीश्वर। (४) पछ = पक्ष। उघरिहि = खुलेगा। बारू = बार, द्वार। दीठि-मेरावा = परस्पर दर्शन। (५) बूझा = बूझ, समझता है। खसि परै = गिर पड़े। (६) बचा कहानी = वचन और व्यवस्था। लता = पद्मलता, पद्मावती। परबता = सुआ (सुए का प्यार का नाम)। का देखै = क्या देखता है कि।

अमृत सदाफर फरे अपूरी। औ तहँ लागि सजीवन-मूरी॥
चौमुख मंडप चहूँ केवारा। बैठे देवता चहूँ दुवारा॥
भीतर मँडप चारि खँभ लागे। जिन्ह वै छुए पाप तिन्ह भागे॥
संख घंट घन वाजहिं सोई। औ बहु होम जाप तहँ होई॥
महादेव कर मंडप जग मानुस तहँ आव।
जस हींछा मन जेहि के सो तैसे फल पाव॥ ६॥

---

हींछा = इच्छा।

## (१७) मंडपगमन-खंड

राजा बाउर बिरह-बियोगी। चेला सहस तीस सँग जोगी॥
पदमावति के दरसन-आसा। दंडवत कीन्ह मँडप चहुँ पासा॥
पुरुब बार होइ कै सिर नावा। नावत सीस देव पहँ आवा॥
नमो नमो नारायन देवा। का मैं जोग, करौं तोरि सेवा॥
तूँ दयाल सब के उपराहीं। सेवा केरि आस तोहि नाहीं॥
ना मोहि गुन, न जीभ रस-बाता। तूँ दयाल, गुन निरगुन दाता॥
पुरवहु मोरि दरस कै आसा। हौं मारग जोवौं धरि साँसा॥

तेहि बिधि बिनै न जानौं जेहि बिधि अस्तुति तोरि।
करहु सुदिस्टि मोहि पर, हींछा पूजै मोरि॥ १॥

कै अस्तुति जब बहुत मनावा। सबद अकूत मँडप महँ आवा॥
मानुष पेम भएउ बैकुंठी। नाहि त काह,छार भरि मूठी॥
पेमहिं माँह बिरह-रस रसा। मैन के घर मधु अमृत बसा॥
निसत धाइ जौं मरै त काहा। सत जौ करै बैठि तेहि लाहा॥
एक बार जौ मन देइ सेवा। सेवहि फल प्रसन्न होइ देवा॥
सुनि कै सबद मँडप झनकारा। बैठा आइ पुरुब के बारा॥
पिंड चढ़ाइ छार जेति आँटी। माटी भएउ अंत जो माटी॥

माटी मोल न किछु लहै, औ माटी सब मोल।
दिस्टि जौं माटी सौ करै, माटी होइ अमोल॥ २॥

बैठ सिंघछाला होइ तपा। 'पदमावति पदमावति' जपा॥
दीठि समाधि ओही सौ लागी। जेहि दरसन कारन बैरागी॥

---

(१) निरगुन = बिना गुणवाले का। (२) अकूत = आप से आप, अकस्मात्। मैन = मोम। लाह = लाभ। पिंड = शरीर। जेति = जितनी। आँटी = अँटी; हाथ मे समाई। माटी सौ दिस्टि करै = सब कुछ मिट्टी समझे या शरीर मिट्टी मे मिलाए। माटी = शरीर। (३) तपा = तपस्वी।

किंगरी गहे बजावै झूरै। भोर साँझ सिंगी निति पूरै॥
कंथा जरै, आगि जनु लाई। विरह-धँधार जरत न बुझाई॥
नैन रात निसि मारग जागे। चढ़े चकोर जानि ससि लागे॥
कुंडल गहे सीस भुइँ लावा। पाँवरि होउँ जहाँ ओहि पावा॥
जटा छोरि कै वार बहारौं। जेहि पथ आव सीस तहँ वारौं॥
चारिहु चक्र फिरौं मै, डँड न रहौं थिर मार।
होइ कै भसम पौन सँग (धावौं) जहाँ परान-अधार॥ ३॥

---

(३) झूरै = व्यर्थ। धँधार = लपट। रात = लाल। पाँवरि = जूती। पावा = पैर। बहारौं = झाड़ू लगाऊँ। थिर मार = स्थिर होकर।

## (१८) पदमावती-वियोग-खंड

पदमावति तेहि जोग सँजोगा। परी पेम-बस गहे वियोगा॥
नीद न परै रैनि जौं आवा। सेज केंवाच जानु कोइ लावा॥
दहै चंद औ चंदन चीरू। दगध करै तन विरह गँभीरू॥
कलप समान रैनि तेहि बाढ़ी। तिल तिल भर जुग जुग जिमि गाढ़ी॥
गहै बीन मकु रैनि बिहाई। ससि-वाहन तहँ रहै ओनाई॥
पुनि धनि सिंघ उरेहै लागै। ऐसिहि बिथा रैनि सब जागै॥
कहँ वह भौंर कवँल रस-लेवा। आइ परै होइ घिरिनि परेवा॥

से धनि बिरह-पतंग भइ, जरा चहै तेहि दीप।
कंत न आव भिरिंग होइ, का चंदन तन लीप? ॥ १ ॥

परी बिरह बन जानहुँ घेरी। अगम असूझ जहाँ लगि हेरी॥
चतुर दिसा चितवै जनु भूली। सो बन कहँ जहँ मालति फूली?॥
कँवल भौंर ओही बन पावै। को मिलाइ तन-तपनि बुझावै?॥
अंग अंग अस कँवल सरीरा। हिय भा पियर कहै पर-पीरा॥
चहै दरस, रवि कीन्ह बिगासू। भौंर-दीठि मनो लागि अकासू॥

---

(१) तेहि जोग सँजोगा = राजा के उस योग के संयोग या प्रभाव से। केवाच = कपिकच्छु जिसके छू जाने से बदन मे खुजली होती है। गहै बीन..... ओनाई = बीन लेकर बैठती है कि कदाचित् इसी से रात बीते; पर उस बीन के सुर पर मोहित होकर चद्रमा का वाहन मृग ठहर जाता है जिससे रात और बड़ी हो जाती है। सिंघ उरेहै लागै = सिंह का चित्र बनाने लगती है जिससे चद्रमा का मृग डरकर भागे। घिरिनि परेवा = गिरहबाज कबूतर। धनि = धन्या, स्त्री। कंत न आव भिरिंग होइ = पति-रूप भृग आकर जब मुझे अपने रग मे मिला लेगा तभी जलने से बच सकती हूँ। लीप = लेप करती हो। (२) हिय भा पियर = कमल के भीतर का छत्ता पीले रग का होता है। पर-पीरा = दूसरे का दुःख या वियोग। भौंर-दीठि मनो लागि अकासू = कमल पर जैसे भौंरे होते है वैसे ही कमल सी पद्मावती की काली पुतलियाँ उस सूर्य्य का विकास देखने को आकाश की ओर लगी है।

पूँछै धाय, बारि ! कहु बाता । तुइँ जस कँवल फूल रँग राता ॥
केसर बरन हिया भा तोरा । मानहुँ मनहिं भएउ किछु भोरा ॥
पौन न पावै संचरै, भौंर न तहाँ बईठ ।
भूलि कुरंगिनि कस भई, जानु सिंघ तुइँ डीठ ॥ २ ॥

धाय ! सिंघ वरु खातेउ मारी । की तसि रहति अही जसि बारी ॥
जोवन सुनेउँ की नवल वसंतू । तेहि बन परेउ हस्ति मैमंतू ॥
अब जोवन-बारी को राखा । कुंजर-बिरह विधंसै साखा ॥
मै जानेउँ जोबन रस भोगू । जोवन कठिन सँताप वियोगू ॥
जोवन गरुअ अपेल पहारू । सहि न जाइ जोबन कर भारू ॥
जोबन अस मैमंत न कोई । नवै हस्ति जौं आँकुस होई ॥
जोबन भर भादौ जस गंगा । लहरैं देइ, समाइ न अंगा ॥
परिउँ अथाह, धाय ! हौं जोबन-उदधि गँभीर ।
तेहि चितवौं चारिहु दिसि जो गहि लावै तीर ॥ ३ ॥

पदमावति ! तुइँ समुद सयानी । तोहि सर समुद न पूजै, रानी ॥
नदी समाहि समुद महँ आई । समुद डोलि कहु कहाँ समाई ? ॥
अबहीं कँवल-करी हिय तोरा । आइहि भौंर जो तो कहँ जोरा ॥
जोवन-तुरी हाथ गहि लीजिय । जहाँ जाइ तहँ जाइ न दीजिय ॥
जोवन जोर मात गज अहै । गहहु ज्ञान-आँकुस जिमि रहै ॥
अबहिं बारि तुइँ पेम न खेला । का जानसि कस होइ दुहेला ॥
गगन दीठि करु नाइ तराही । सुरुज देखु कर आवै नाहीं ॥
जब लगि पीउ मिलै नहिं, साधु पेम कै पीर ।
जैसे सीप सेवाति कहँ तपै समुद मँझ नीर ॥ ४ ॥

दहै, धाय ! जोवन एहि जीऊ । जानहुँ परा अगिनि महँ घीऊ ॥
करवत सहौं होत दुइ आधा । सहि न जाइ जोवन कै दाधा ॥
बिरह-समुद्र भरा असँभारा । भौंर मेलि जिउ लहरिन्ह मारा ॥
बिरह-नाग होइ सिर चढ़ि डसा । होइ अगिनि चंदन महँ बसा ॥
जोवन पंखी, बिरह बियाधू । केहरि भएउ कुरंगिनि-खाधू ॥

---

भोरा = भ्रम । (३) मैमत = मदमत्त । अपेल = न टलने योग्य । (४) समुद = समुद्र सी गभीर । तुरी = घोड़ी । मात = माता हुआ, मतवाला । दुहेला = कठिन खेल । गगन दीठि...तराहीं = पहले कह आए है कि "भौंर-दीठि मनो लागि अकासू" । (५) दाधा = दाह, जलन । होइ अगिनि चंदन महँ बसा = वियोगियों को चंदन से भी ताप होना प्रसिद्ध है । केहरि भएउ...खाधू =

कनक-पानि कित जोवन कीन्हा। औटन कठिन बिरह ओहि दीन्हा॥
जोवन-जलहि बिरह-मसि छूआ। फूलहि भौर, फरहि भा सूआ॥
जोवन चाँद उआ जस, बिरह भएउ सँग राहु।
घटतहि घटत छीन भइ, कहै न पारौं काहु॥ ५॥
नैन ज्यों चक्र फिरै चहुँ ओरा। बरजै धाय, समाहि न कोरा॥
कहेसि पेम जौं उपना, बारी। बाँधु सत्त, मन डोल न भारी॥
जेहि जिउ महँ होइ सत्त-पहारू। परै पहार न बाँकै बारू॥
सती जो जरे पेम सत लागी। जौ सत हिये तौ सीतल आगी॥
जोवन चाँद जो चौदस-करा। बिरह के चिनगी सो पुनि जरा॥
पौन बाँध सो जोगी जती। काम बाँध सो कामिनि सती॥
आव बसंत फूल फुलवारी। देव-बार सब जैहै बारी॥
तुम्ह पुनि जाहु बसंत लेइ, पूजि मनावहु देव।
जीउ पाइ जग जनम है, पीउ पाइ कै सेव॥ ६॥
जब लगि अवधि आइ नियराई। दिन जुग जुग बिरहिनि कहँ जाई॥
भूख नींद निसि-दिन गै दोऊ। हियै मारि जस कलपै कोऊ॥
रोवँ रोवँ जनु लागहि चाँटे। सुत सूत बेधहि जनु काँटे॥
दगधि कराह जरै जस घीऊ। बेगि न आव मलयगिरि पीऊ॥
कौन देव कहँ जाइ कै परसौं। जेहि सुमेरु हिय लाइय कर सौं॥
गुपुति जो फूलि साँस परगटै। अब होइ सुभर दहहि हम्ह घटै॥
भा सँजोग जो रे भा जरना। भोगहि भए भोगि का करना॥
जोवन चंचल ढीठ है, करै निकाजै काज।
धनि कुलवंति जो कुल धरै कै जोवन मन लाज॥ ७॥

---

जैसे हिरनी के लिये सिंह, वैसे ही यौवन के लिये विरह हुआ। औटन = पानी का गरम करके खौलाय जाना। मसि = कालिमा। फूलहि भौर...सूआ = जैसे फूल को बिगाड़नेवाला भौंरा और फल को नष्ट करनेवाला तोता हुआ वैसे ही यौवन को नष्ट करनेवाला विरह हुआ। (६) कोरा = कोर, कोना। पहारू = पाहरू, रक्षक। (७) परसौं = स्पर्श करूँ, पूजन करूँ (?)। जेहि...कर सौं = जिससे उस सुमेरु को हाथ से हृदय में लगाऊँ। होइ सुभर = अधिक भरकर, उमड़कर। घटै = हमारे शरीर को। निकाजै = निकम्मा ही। जोवन = यौवनावस्था में।

## (१६) पद्मावती-सुआ-भेंट-खंड

तेहि बियोग हीरामन आवा। पदमावति जानहुँ जिउ पावा॥
कंठ लाइ सूआ सौं रोई। अधिक मोह जौ मिलै बिछोई॥
आगि उठे दुख हिये गँभीरू। नैनहि आइ चुवा होइ नीरू॥
रही रोइ जब पदमिनि रानी। हँसि पूछहि सब सखी सयानी॥
मिले रहस भा चाहिय दूना। कित रोइय जौ मिलै बिछूना?॥
तेहि क उतर पदमावति कहा। बिछुरन-दुख जो हिये भरि रहा॥
मिलत हिये आएउ सुख भरा। वह दुख नैन-नीर होइ ढरा॥

बिछुरंता जब भेंटै सो जानै जेहि नेह।
सुक्ख-सुहेला उग्गवै दुःख झरै जिमि मेह॥ १॥

पुनि रानी हँसि कूसल पूछा। कित गवनेहु पीजर कै छूँछा॥
रानी! तुम्ह जुग जुग सुख पाटू। छाज न पंखिहि पीजर-ठाटू॥
जब भा पंख कहाँ थिर रहना। चाहै उड़ा पंखि जौ डहना॥
पींजर महँ जो परेवा घेरा। आइ मजारि कीन्ह तहँ फेरा॥
दिन एक आइ हाथ पै मेला। तेहि डर बनोवास कहँ खेला॥
तहाँ बियाध आइ नर साधा। छूटि न पाव मीचु कर बाँधा॥
वै धरि बेचा बाम्हन हाथा। जंबूदीप गएउँ तेहि साथा॥

तहाँ चित्र चितउरगढ़ चित्रसेन कर राज।
टीका दीन्ह पुत्र कहँ, आपु लीन्ह सर साज॥ २॥

बैठ जो राज पिता के ठाऊँ। राजा रतनसेन ओहि नाऊँ॥
बरनौं काह देस मनियारा। जहँ अस नग उपना उजियारा॥

---

(१) बिछोई = बिछुड़ा हुआ। रहस = आनंद। बिछूना = बिछुड़ा हुआ। सुहेला = सुहैल या अगस्त तारा। झरै = छूट जाता है, दूर हो जाता है। मेह = मेघ, बादल। (२) छाज न = नहीं अच्छा लगता। पींजर-ठाटू = पिंजरे का ढाँचा। दिन एक ... मेला = किसी दिन अवश्य हाथ डालेगी। नर = नरसल, जिसमें लासा लगाकर बहेलिए चिड़िया फँसाते हैं। चित्र = विचित्र। सर साज लीन्ह = चिता पर चढ़ा; मर गया। (३) मनियार = रौनक, सोहावना।

धनि माता औ पिता बखाना। जेहिके वंस अंस अंस आना॥
लछन बतीसौ कुल निरमला। बरनि न जाइ रूप औ कला॥
वै हौ जीन्ह, अहा अस भागू। चाहै सोने मिला सोहागू॥
सो नग देखि हींछा भइ मोरी। है यह रतन पदारथ जोरी॥
है ससि जोग इहै पै भानू। तहाँ तुम्हार मै कीन्ह बखानू॥
कहाँ रतन रतनागर, कंचन कहाँ सुमेर।
देव जो जोरी दुहुँ लिखी मिलै सो कौनेहु फेर॥ ३॥

सुनत बिरह-चिनगी ओहि परी। रतन पाव जौं कंचन-करी॥
कठिन पेम बिरहा दुख भारी। राज छाँड़ि भा जोगि भिखारी॥
मालति लागि भौंर जस होई। होइ बाउर निसरा बुधि खोई॥
कहेसि पतंग होइ धनि लेऊँ। सिंघलदीप जाइ जिउ देऊँ॥
पुनि ओहि कोउ न छाँड़ अकेला। सोरह सहस कुँवर भए चेला॥
और गनै को संग सहाई?। महादेव मढ़ मेला जाई॥
सूरुज पुरुष दरस के ताईं। चितवै चंद चकोर कै नाईं॥
तुम्ह बारी रस जोग जेहि, कँवलहि जस अरघानि।
तस सूरुज परगास कै, भौंर मिलाएउँ आनि॥ ४॥

हीरामन जो कही यह बाता। सुनिकै रतन पदारथ राता॥
जस सूरुज देखे होइ ओपा। तस भा बिरह कामदल कोपा॥
सुनि कै जोगी केर बखानू। पदमावति मन भा अभिमानू॥
कंचन करी न काँचहि लोभा। जौं नग होइ पाव तब सोभा॥
कंचन जौ कसिए कै ताता। तब जानिय दहुँ पीत कि राता॥
नग कर मरम सो जड़िया जाना। जड़ै जो अस नग देखि बखाना॥
को अब हाथ सिंघ मुख घालै। को यह बात पिता सौं चालै॥
सरग इंद्र डरि काँपै, बासुकि डरै पतार।
कहाँ सो अस बर पिथिमी मोहि जोग संसार॥ ५॥
तू रानी ससि कंचन-करा। वह नग रतन सूर निरमरा॥

---

अस = अवतार। रतनागर = रत्नाकर, समुद्र। (४) चिनगी = चिनगारी। कंचन-करी = स्वर्णकलिका। लागि = लिये, निमित्त। मेला = पहुँचा। दरस के ताईं = दर्शन के लिये। (५) राता = अनुरक्त हुआ। ओप = दमक। ताता = गरम। पीत कि राता = पीला कि लाल, पीला सोना मध्यम और लाल चोखा माना जाता है। (६) करा = कला, किरन।

विरह-बजागि बीच का कोई। आगि जो छुवै जाइ जरि सोई॥
आगि बुझाइ परे जल गाढ़ै। वह न बुझाइ आपु ही बाढ़ै॥
विरह के आगि सूर जरि काँपा। रातिहि दिवस जरै ओहि तापा॥
खिनहि सरग, खिन जाइ पतारा। थिर न रहै एहि आगि अपारा॥
धनि सो जीउ दगध इमि सहै। अकसर जरै, न दूसर कहै॥
सुलगि सुलगि भीतर होइ सावाँ। परगट होइ न कहै दुख नावाँ॥

काह कहौ हौं ओहि सौं जेइ दुख कीन्ह निमेट।
तेहि दिन आगि करै वह (बाहर) जेहि दिन होइ सो भेंट॥६॥

सुनि कै धनि, 'जारी अस कया'। मन भा मयन, हिये भै मया॥
देखौं जाइ जरै कस भानू। कंचन जरे अधिक होइ बानू॥
अब जौं मरै वह पेम-वियोगी। हत्या मोहिं, जेहि कारन जोगी॥
सुनि कै रतन पदारथ राता। हीरामन सौं कह यह बाता॥
जौ वह जोग सँभारै छाला। पाइहि भुगुति, देहुँ जयमाला॥
आव बसंत कुसल जौं पावौं। पूजा मिस मंडप कहं आवौं॥
गुरु के बैन फूल हौं गाँथे। देखौं नैन, चढ़ावौं माथे॥

कवँल-भवर तुम्ह बरना, मै माना पुनि सोइ।
चाँद सूर कहं चाहिय, जौं रे सूर वह होइ॥ ७॥

हीरामन जो सुना रस-बाता। पावा पान भएउ मुख राता॥
चला सुआ, रानी तब कहा। भा जो परावा कैसे रहा?॥
जो निति चलै सँवारै पाँखा। आजु जो रहा, काल्हि को राखा?॥
न जनौं आजु कहाँ दहुँ ऊआ। आएहु मिलै, चलेहु मिलि, सूआ॥
मिलि कै बिछुरि मरन कै आना। कित आएहु जौं चलेहु निदाना?॥
तनु रानी हौं रहतेउँ राँधा। कैसे रहौ बचन कर बाँधा॥
ताकरि दिस्टि ऐसि तुम्ह सेवा। जैसे कुंज मन रहै परेवा॥

---

बजागि = वज्राग्नि। अकसर = अकेला। साधाँ = श्याम, साँवला। काह कहौ हौं···निमेट = सूआ रानी से पूछता है कि मै राजा के पास जाकर क्या सन्देसा (उत्तर) कहूँ जिसने इतना न मिटानेवाला दुःख उठाता है। (७) बानू = वर्ण, रंगत। छाला = मृगचर्म पर। फूल हौं गाँथे = तुम्हारे (गुरु के) कहने से उसके लिये प्रेम की माला मैने गूँथ ली। (८) पावा पान = बिदा होने का बीड़ा पाया। चलै = चलने के लिये। राँधा = पास, समीप। ताकरि = रतनसेन की। तुम्ह सेवा = तुम्हारी सेवा मे।

## (२०) बसंत-खंड

दैउ दैउ कै सो ऋतु गँवाई। सिरी-पंचमी पहुँची आई॥
भएउ हुलास नवल ऋतु माहाँ। खिन न सोहाइ धूप औ छाहाँ॥
पदमावति सब सखी हँकारी। जावत सिंघलदीप कै बारी॥
आजु बसंत नवल ऋतुराजा। पंचमि होइ, जगत सब साजा॥
नवल सिंगार वनस्पति कीन्हा। सीस परासहि सेंदुर दीन्हा॥
बिगसि फूल फूले बहु बासा। भौंर आइ लुबुधे चहुँ पासा॥
पियर-पात-दुख झरे निपाते। सुख पल्लव उपने होइ राते॥

अवधि आइ सो पूजी जो हींछा मन कीन्ह।
चलहु देवमढ़ गोहने, चहहुँ सो पूजा दीन्ह॥ १॥

फिरी आन ऋतु-बाजन बाजे। औ सिंगार बारिन्ह सब साजे॥
कवँल-कली पदमावति रानी। होइ मालति जानौ बिगसानी॥
तारा-मँडल पहिरि भल चोला। भरे सीस सब नखत अमोला॥
सखी कुमोद सहस दस संगा। सबै सुगंध चढ़ाए अंगा॥
सब राजा रायन्ह कै बारी। बरन बरन पहिरे सब सारी॥
सबै सुरूप, पदमिनी जाती। पान, फूल, सेंदुर सब राती॥
करहि किलोल सुरंग-रँगीली। औ चोवा चंदन सब गीली॥

चहुँ दिसि रही सो बासना फुलवारी अस फूलि।
वै बसंत सौं भूलीं, गा बसन्त उन्ह भूलि॥ २॥

भै आहा पदमावति चली। छत्तिस कुरि भइँ गोहन भली॥
भइँ गोरी सँग पहिरि पटोरा। बाम्हनि ठाँव सहस अँग मोरा॥

---

(१) दैउ दैउ कै = किसी किसी प्रकार से, आसरा देखते देखते। हँकारा = बुलाया। बारी = कुमारियाँ। गोहने = साथ मे, सेवा मे। (२) आन = राजा की आज्ञा, डौंडी। होइ मालति = श्वेत हास द्वारा मालती के समान होकर। तारा मंडल = एक वस्त्र का नाम, चाँदतारा। कुमोद = कुमुदिनी। (३) आहा = वाह वाह, धन्य धन्य। छत्तिस कुरि = क्षत्रियो के छत्तीसों कुलो की।

अगरवारि गज गौन करेई। वैसिनि पावँ हंसगति देई॥
चंदेलिनि ठमकहिं पगु धारा। चली चौहानि, होइ झनकारा॥
चली सोनारि सोहाग सोहाती। औ कलवारि पेम-मधु-माती॥
बानिनि चली सेंदुर दिए माँगा। कयथिनि चलीं समाइँ न आँगा॥
पटइनि पहिरि सुरँग-तन चोला। औ बरइनि मुख खात तमोला॥

चलीं पउनि सब गोहने फूल डार लेइ हाथ।
विस्वनाथ कै पूजा, पदमावति के साथ॥ ३॥

कवँल सहाय चलीं फुलवारी। फर फूलन सब करहिं धमारी॥
आपु आपु महँ करहि जोहारू। यह बसंत सब कर तिवहारू॥
चहै मनोरा झूमक होई। फर औ फूल लिएउ सब कोई॥
फागु खेलि पुनि दाहव होरी। सैतव खेह, उड़ाउव झोरी॥
आजु साज पुनि दिवस न दूजा। खेलि बसंत लेहु कै पूजा॥
भा आयसु पदमावति केरा। बहुरि न आइ करब हम फेरा॥
तस हम कहँ होइहि रखवारी। पुनि हम कहाँ, कहाँ यह बारी॥

पुनि रे चलब घर आपने पूजि बिसेसर-देव।
जेहि काहुहि होइ खेलना आजु खेलि हँसि लेव॥ ४॥

काहू गही आँव कै डारा। काहू जाँबु बिरह अति झारा॥
कोइ नारँग कोइ झाड़ चिरौजी। कोइ कटहर, बड़हर, कोइ न्योजी॥
कोइ दारिउँ कोइ दाख औ खीरी। कोइ सदाफर, तुरँज जँभीरी॥
कोइ जायफर, लौंग, सुपारी। कोइ नरियर, कोइ गुवा, छोहारी॥
कोइ बिजौर, करौंदा-जूरी। कोइ अमिली, कोइ महुअ, खजूरी॥
काहू हरफारेवरि कसौंदा। कोइ अँवरा, कोइ राय-करौंदा॥
काहू गही केरा कै घौरी। काहू हाथ परी निंबकौरी॥

---

बैसिनि = वैश्य क्षत्रियों की स्त्रियाँ। बानिनि = बनियाइन। पउनि = पानेवाली, आश्रित पौनी परजा। डार = डला। (४) धमारि = होली की क्रीड़ा। जोहार = प्रणाम आदि। मनोरा झूमक = एक प्रकार के गीत जिसे स्त्रियाँ झुंड बाँधकर गाती हैं; इसके प्रत्येक पद मे "मनोरा झूमक हो" यह वाक्य आता है। सैतब = समेट कर इकट्ठा करेगी। (५) जाँबु...झारा = जामुन जो विरह की ज्वाला से झुलसी सी दिखाई देती है। न्योजी = चिलगोजा। खीरी = खिरनी। गुवा = गुवाक, दक्खिनी सुपारी।

काहू पाई नीयरे, कोउ गए किछु दूरि।
काहू खेल भएउ विप, काहू अमृत-मूरि ॥ ५ ॥

पुनि बीनहि सब फूल सहेली। खोजहि आस-पास सब बेली ॥
कोइ केवड़ा, कोइ चंप नेवारी। कोइ केतकि मालति फुलवारी ॥
कोइ सदबरग, कुंद, कोइ करना। कोइ चमेलि, नागेसर बरना ॥
कोइ गुलाल, सुदरसन, कूजा। कोइ सोनजरद पाव भल पूजा ॥
कोइ मौलसिरि, पुहुप बकौरी। कोई रूपमंजरी गौरी ॥
कोइ सिंगारहार तेहि पाहाँ। कोइ सेवती, कदम के छाहाँ ॥
कोइ चंदन फूलहिं जनु फूली। कोइ अजान-बीरो तर भूली ॥

(कोइ) फूल पाव, कोइ पाती, जेहि के हाथ जो आँट।
(कोइ) हार चीर अरुझाना, जहाँ छुवै तहँ काँट ॥ ६ ॥

फर फूलन्ह सब डार ओढ़ाई। झुंड बाँधि कै पंचम गाई ॥
बाजहि ढोल दुंदुभी भेरी। मादर, तूर, झाँझ चहु फेरी ॥
सिंगि, संख, डफ बाजन बाजे। बंसी, महुअर सुर सँग साजे ॥
और कहिय जो बाजन भले। भाँति भाँति सब बाजत चले ॥
रथहि चढ़ी सब रूप-सोहाई। लेइ बसत मठ-मँडप सिधाई ॥
नवल बसंत, नवल सब बारी। सेदुर बुक्का होइ धमारी ॥
खिनहिं चलहिं; खिन चाँचरि होई। नाच कूद भूला सब कोई ॥

सेदुर-खेह उड़ा अस, गगन भएउ सब रात।
राती सगरिउ धरती, राते बिरिछन्ह पात ॥ ७ ॥

एहि बिधि खेलति सिंघलरानी। महादेव-मढ़ जाइ तुलानी ॥
सकल देवता देखै लागे। दिस्टि पाप सब ततछन भागे ॥
एइ कविलास इंद्र कै अछरी। की कहुँ तें आई परमेसरी ॥
कोई कहै पदमिनी आई। कोइ कहै ससि नखत तराई ॥
कोई कहै फूली फुलवारी। फूल ऐसि देखहु सब बारी ॥
एक सुरूप औ सुंदरि सारी। जानहु दिया सकल महि बारी ॥
मुरुछि परै जोई मुख जोहै। जानहु मिरिग दियारहि मोहै ॥

---

(६) कूजा = कुब्जक, सफेद जंगली गुलाब। गौरी = श्वेत मल्लिका। अजानबीरो = एक बड़ा पेड़ जिसके संबन्ध मे कहा जाता है कि उसके नीचे जाने से आदमी को सुध बुध भूल जाती है।। (७) पंचम = पंचम स्वर मे। मादर = मर्दल, एक प्रकार का मृदग। (८) जाइ तुलानी = जा पहुँची। दियारा = लुक जो गीले कछारो में दिखाई पड़ता है; अथवा मृगतृष्णा।

कोई परा भौंर होइ, बास लीन्ह जनु चाँप।
कोइ पतंग भा दीपक, कोइ अधजर तन काँप ॥ ८ ॥

पदमावति गै देव-दुवारा। भीतर मँडप कीन्ह पैसारा ॥
देवहि संसै भा जिउ केरा। भागौं केहि दिसि मंडप घेरा ॥
एक जोहार कीन्ह औ दूजा। तिसरे आइ चढ़ाएसि पूजा ॥
फर फूलन्ह सब मँडप भरावा। चंदन अगर देव नहवावा ॥
लेइ सेंदुर आगे भै खरी। परसि देव पुनि पायन्ह परी ॥
'और सहेली सबै बियाहीं। मो कहँ देव! कतहुँ बर नाहीं ॥
हौं निरगुन जेइ कीन्ह न सेवा। गुनि निरगुनि दाता, तुम देवा ॥

बर सौं जोग मोहि मेरवहु, कलस जाति हौ मानि।
जेहि दिन हींछा पूजै बेगि चढ़ावहुँ आनि' ॥ ९ ॥

हींछि हींछि बिनवा जस जानी। पुनि कर जोरि ठाढ़ि भइ रानी ॥
उतरु को देइ, देव मरि गएउ। सबत अकूत मँडप महँ भएउ ॥
काटि पवारा जैस परेवा। सोएउ ईस, और को देवा ॥
भा बिनु जिउ नहिं आवत ओझा। बिप भइ पूरि, काल भा गोझा ॥
जो देखै जनु बिसहर-डसा। देखि चरित पदमावति हँसा ॥
भल हम आइ मनावा देवा। गा जनु सोइ, को मानै सेवा? ॥
को हींछा पूरै, दुख खोवा। जेहि मानै आए सोइ सोवा ॥

जेहि धरि सखी उठावहि, सीस बिकल नहिं डोल।
धर कोइ जीव न जानौं, मुख रे बकत कुबोल ॥ १० ॥

ततखन एक सखी बिहँसानी। कौतुक आइ न देखहु रानी ॥
पुरुब द्वार मढ़ जोगी छाए। न जनौं कौन देस ते आए ॥
जनु उन्ह जोग-तंत तन खेला। सिद्ध होइ निसरे सब चेला ॥
उन्ह महँ एक गुरू जो कहावा। जनु गुड़ देइ काहू बौरावा ॥
कुँवर बतीसौ लच्छन राता। दसएँ लछन कहै एक बाता ॥
जानौं आहि गोपिचँद जोगी। की सो आहि भरथरी बियोगी ॥

---

चाँप = चंपा, चपे की महक भौंरा नहीं सह सकता। (९) एक··दूजा = दो बार प्रणाम किया। (१०) हींछि = इच्छा करके। अकूत = परोक्ष, आकाश-वाणी। ओझा = उपाध्याय, पुजारी (प्रा० उवज्झाओ)। पूरि = पूरी। गोझा = एक पकवान, पिराक। खोवा = खोव, खोवे। धर = शरीर। (११) तंत = तत्त्व। दसएँ लछन = योगियो के बत्तीस लक्षणो मे दसवाँ लक्षण 'सत्य' है।

वै पिंगला गए कजरी-आरन। ए सिंघल आए केहि कारन ? ॥
यह मूरति, यह मुद्रा, हम न देख अवधूत।
जानौं होहि न जोगी कोइ राजा कर पूत ॥ ११ ॥

सुनि सो बात रानी रथ चढ़ी। कहँ अस जोगी देखौं मढ़ी ॥
लेइ सँग सखी कीन्ह तहँ फेरा। जोगिन्ह आइ अपछरन्ह घेरा ॥
नयन कचोर पेम-मद-भरे। भइ सुदिस्टि जोगी सहुँ ढरे ॥
जोगी दिस्टि दिस्टि सौं लीन्हा। नैन रोपि नैनहिं जिउ दीन्हा ॥
जेहि मद चढ़ा परा तेहि पाले। सुधि न रही ओहि एक पियाले ॥
परा माति गोरख कर चेला। जिउ तन छाँड़ि सरग कहँ खेला ॥
किंगरी गहे जो हुत वैरागी। मरतिहु वार उहै धुनि लागी ॥
जेहि धंधा जाकर मन लागै सपनेहु सूझ सो धंध।
तेहि कारन तपसी तप साधहिं, करहि पेम मन बंध ॥ १२ ॥

पदमावति जस सुना बखानू। सहस-करा देखेसि तस भानू ॥
मेलेसि चंदन मकु खिन जागा। अधिकौ सूत, सीर तन लागा ॥
तब चंदन आखर हिय लिखे। भीख लेइ तुइँ जोग न सिखे ॥
घरी आइ तब गा तूँ सोई। कैसे भुगुति परापति होई ? ॥
अब जौ सूर अहौ ससि राता। आएउ चढ़ि सो गगन पुनि साता ॥
लिखि कै बात सखिन सौं कही। इहै ठाँव हौं बारति रही ॥
परगट होहुँ त होइ अस भंगू। जगत दिया कर होइ पतंगू ॥
जा सहुँ हौं चख हेरौं सोइ ठाँव जिउ देइ।
एहि दुख कतहुँ न निसरौं, को हत्या असि लेइ ? ॥ १३ ॥

कीन्ह पयान सबन्ह रथ हाँका। परवत छाँड़ि सिंघलगढ़ ताका ॥
बलि भए सबै देवता बली। हत्यारिन हत्या लेइ चली ॥
को अस हितू मुए गह बाहीं। जौ पै जिउ अपने घट नाहीं ॥

---

पिंगला = पिंगला नाड़ी साधने के लिये अथवा पिंगला नाम की अपनी रानी के कारण। कजरी आरन = कदलीवन। (१२) कचोर = कटोरा। जोगी सहुँ = जोगी के सामने, जोगी की ओर। नैन रोपि ··· दीन्हा = आँखो मे ही पद्मावती के नेत्रो के मद को लेकर बेसुध हो गया। (१३) मकु = कदाचित्। सूत = सोया। सीर = शीतल, ठढा (प्रा० सोअइ, सोयर)। आखर = अक्षर। ठाँव = अवसर, मौका। बारति रही = बचाती रही। भगू = रंग मे भंग, उपद्रव। (१४) ताका = उस ओर बढ़ा।

जौ लहि जिउ आपन सब कोई। बिनु जिउ कोइ न आपन होई॥
भाइ बंधु औ मीत पियारा। बिनु जिउ घरी न राखै पारा॥
बिनु जिउ पिंड छार कर कूरा। छार मिलावै सो हित पूरा॥
तेहि जिउ बिनु अब मरि भा राजा। को उठि बैठि गरब सौं गाजा॥
परी कया भुइँ लोटै, कहाँ रे जिउ बलि भीउँ।
को उठाइ बैठारै बाज पियारे जीव॥ १४॥

पदमावति सो मँदिर पईठी। हँसत सिंघासन जाइ बईठी॥
निसि सूती सुनि कथा बिहारी। भा बिहान कह सखी हँकारी॥
देव पूजि जस आइउँ काली। सपन एक निसि देखिउँ, आली॥
जनु ससि उदय पुरुब दिसि लीन्हा। ओ रबि उदय पछिउँ दिसि कीन्हा॥
पुनि चलि सूर चाँद पहँ आवा। चाँद सुरुज दुहुँ भएउ मेरावा॥
दिन औ राति भए जनु एका। राम आइ रावन-गढ़ छेकाँ॥
तस किछु कहा न जाइ निखेधा। अरजुन-बान राहु गा बेधा॥
जनहुँ लंक सब लूटी, हनुवँ बिधंसी बारि।
जागि उठिउँ अस देखत, सखि! कहु सपन बिचारि॥१५॥

सखी सो बोली सपन-बिचारू। काल्हि जो गइहु देव के बारू॥
पूजि मनाइहु बहुतै भाँती। परसन आइ भए तुम्ह राती॥
सूरुज पुरुष चाँद तुम रानी। अस बर दैउ मेरावै आनी॥
पच्छिउँ खंड कर राजा कोई। सो आवा बर तुम्ह कहँ होई॥
किछु पुनि जूझ लागि तुम्ह रामा। रावन सौं होइहि सँगरामा॥
चाँद सुरुज सौं होइ बियाहू। बारि बिधंसब बेधब राहू॥
जस ऊषा कहँ अनिरुध मिला। मेटि न जाइ लिखा पुरबिला॥
सुख सोहाग जो तुम्ह कहँ पान फूल रस भोग।
आजु काल्हि भा चाहै, अस सपने क सँजोग॥ १६॥

---

मरि भा = मर गया, मर चुका। बलि भीउँ = बलि और भीम कहलानेवाला। बाज = बिना, बगैर, छोड़कर। (१५) बिहार = बिहार या सैर की। मेरावा = मिलन। निषेधा = वह ऐसी निषिद्ध या बुरी बात है। राहु = रोहू मछली। राहु गा बेधा = मत्स्यवेध हुआ। (१६) जूझ...रामा = हे बाला! तुम्हारे लिये राम कुछ लड़ेंगे (राम = रत्नसेन, रावण = गंधर्वसेन)। बारि बिधसब = सभोग के समय शृंगार के अस्तव्यस्त होने का संकेत। बगीचा। पुरबिला = पूर्व जन्म का। सजोग = फल या व्यवस्था।

## (२१) राजा-रत्नसेन-सती-खंड

कै बसंत पदमावति गई। राजहि तब बसंत सुधि भई॥
जो जागा न बसंत न बारी। ना वह खेल, न खेलनहारी॥
ना वह ओहि कर रूप सुहाई। गै हेराइ, पुनि दिस्टि न आई॥
फूल झरे, सूखी फुलवारी। दीठि परी उकठी सब बारी॥
केइ यह बसत बसंत उजारा?। गा सो चाँद, अथवा लेइ तारा॥
अब तेहि बिनु जग भा अँधकूपा। वह सुख छाँह, जरौं दुख-धूपा॥
बिरह-दवा को जरत सिरावा?। को पीतम सौं करै मेरावा?॥

हिये देख तब चंदन खेवरा, मिलि कै लिखा बिछोव।
हाथ मीजि सिर धुनि कै रोवै जो निचिंत अस सोव॥ १॥

जस बिछोह जल मीन दुहेला। जल हुँत काढ़ि अगिनि महँ मेला॥
चंदन-आँक दाग हिय परे। बुझहिं न ते आखर परजरे॥
जनु सर-आगि होइ हिय लागे। सब तन दागि सिंघ बन दागे॥
जरहिं सिरिंग बन-खँड तेहि ज्वाला। औ ते जरहि बैठ तेहि छाला॥
कित ते आँक लिखे जौ सोवा। मकु आँकन्ह तेइ करत बिछोवा॥
जैस दुसंतहि साकुंतला। मधवानलहि काम-कंदला॥
भा बिछोह जस नलहि दमावति। मैना मूँदि छपी पदमावति॥

आइ बसंत जो छपि रहा होइ फूलन्ह के भेस।
केहि बिधि पावौं भौंर होइ, कौन गुरू-उपदेस॥ २॥

---

(१) उकठी = सूख कर ऐंठी हुई। अथवा = अस्त हुआ। 'खेवरा = खौरा हुआ, चित्रित किया या लगाया हुआ। (२) हुँत = से। परजरे = जलते रहे। सर-आगि = अग्निबाण। सब...दागे = मानो उन्हीं अग्निबाणों से झुलसकर सिंह के शरीर मे दाग बन गए है और बन मे आग लगा करती है। कितते आँक... सोवा = जब सोया था तब वे अंक क्यो लिखे गए; दूसरे पक्ष मे जब जीव अज्ञान-दशा मे गर्भ मे रहता है तब भाग्य का लेख क्यों लिखा जाता है। दमावति = दमयंती।

रोवै रतन-माल जनु चूरा। जहँ होइ ठाढ़, होइ तहँ कूरा॥
कहाँ वसंत औ कोकिल-बैना। कहाँ कुसुम अति बेधा नैना॥
कहाँ सो मूरति परी जो डीठी। काढ़ि लिहेसि जिउ हिये पईठी॥
कहाँ सो देस दरस जेहि लाहा?। जौं सुवसंत करीलहि काहा?॥
पात-बिछोह रूख जो फूला। सो महुआ रोवै अस भूला॥
टपकै महुअ आँसु तस परहीं। होइ महुआ वसंत ज्यों झरहीं॥
मोर वसंत सो पदमिनि वारी। जेहि बिन भएउ वसंत उजारी॥

पावा नवल वसंत पुनि बहु आरति बहु चोप।
ऐस न जाना अंत ही पात झरहिं, होइ कोप॥ ३॥

अरे मलिछ बिसवासी देवा। कित मै आइ कीन्ह तोरि सेवा॥
आपनि नाव चढ़ै जो देई। सो तौ पार उतारै खेई॥
सुफल लागि पग टेकेउँ तोरा। सुआ क सेवर तू भा मोरा॥
पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा। सो ऐसे बूड़ै मझ धारा॥
पाहन सेवा कहाँ पसीजा?। जनम न ओद होइ जो भीजा॥
बाउर सोइ जो पाहन पूजा। सकत को भार लेइ सिर दूजा?॥
काहे न जिय सोइ निरासा। मुए जियत मन जाकरि आसा॥

सिघ तरेदा जेइ गहा पार भए तेहि साथ।
ते पै बूड़े बाउरे भेड़-पूछि जिन्ह हाथ॥ ४॥

देव कहा सुनु, बउरे राजा। देवहि अगुमन मारा गाजा॥
जौ पहिलेहि अपने सिर परई। सो का काहुक घरहरि करई*॥
पदमावति राजा कै वारी। आइ सखिन्ह सह बदन उघारी॥
जैस चाँद गोहने सब तारा। परेउ भुलाइ देखि उजियारा॥
चमकहि दसन बीजु कै नाई। नैन-चक्र जमकात भवाँई॥
हौ तेहि दीप पतंग होइ परा। जिउ जम काढ़ि सरग लेइ धरा॥
बहुरि न जानौ दहुँ का भई। दहुँ कबिलास कि कहुँ अपसई॥

---

(३) कहाँ सो देस ... लाहा? = वसंत के दर्शन से लाभ उठानेवाला अच्छा देश चाहिए, सो कहाँ है? करील के वन मे वसंत के जाने ही से क्या? आरति = दुःख। चोप = चाह। (४) ओद = गीला, आर्द्र। तरेंदा = तैरनेवाला काठ, बेड़ा, । (५) गाजा = गाज, बज्र। घरहरि = घर-पकड़, बचाव। गोहने = साथ या सेवा में। अपसई = गायब हो गई।

* कुछ प्रतियों में यह पाठ है—"जबहि आगि अपने सिर लागी। आन बुझावै कहाँ सो आगी॥"

## (२२) पार्वती-महेश-खंड

ततखन पहुँचे आइ महेसू। वाहन बैल, कुस्टि कर भेसू॥
काथरि कया हड़ावरि बाँधे। मुंड-माल औ हत्या काँधे॥
सेसनाग जाके कँठमाला। तनु भभूति, हस्ती कर छाला॥
पहुँची रुद्र-कवँल कै गटा। ससि माथे औ सुरसरि जटा॥
चँवर घंट औ डँवरू हाथा। गौरा पारवती धनि साथा॥
औ हनुवंत बीर सँग आवा। धरे भेस बाँदर जस छावा॥
अवतहि कहेन्हि, न लावहु आगी। तेहि कै सपथ जरहु जेहि लागी॥

की तप करै न पारेहु, की रे नसाएहु जोग?।
जियत जीउ कस काढ़हु? कहहु सो मोहिं बियोग॥ १॥

कहेसि मोहिं बातन्ह बिलमावा। हत्या केरि न डर तोहि आवा॥
जरै देहु, दुख जरौं अपारा। निस्तर पाइ जाउँ एक बारा॥
जस भरथरी लागि पिंगला। मो कहँ पदमावति सिंघला॥
मैं पुनि तजा राज औ भोगू। सुनि सो नावँ लीन्ह तप जोगू॥
एहि मढ़ सेएउँ आइ निरासा। गइ सो पूजि, मन पूजि न आसा॥
मैं यह जिउ डाढ़े पर दाधा। आधा निकसि रहा, घट आधा॥
जो अधजर सो विलँब न आवा। करत विलंब बहुत दुख पावा॥

एतना बोल कहत मुख, उठी विरह कै आगि।
जौ महेस न बुझावत, जाति सकल जग लागि॥ २॥

पारवती मन उपना चाऊ। देखौं कुँवर केर सत भाऊ॥
ओहि एहि बीच, कि पेमहि पूजा। तन मन एक, कि मारग दूजा॥

---

(१) कुस्टि = कुष्ठी, कोढ़ी। हड़ावरि = अस्थि की माला। हत्या = मृत्यु, काल? रुद्र-कँवल = रुद्राक्ष। गटा = गट्टा, गोल दाना। (२) निस्तर = निस्तार, छुटकारा। (३) ओहि एहि बीच.. पूजा = उसमे (पद्मावती मे) और इसमे कुछ अंतर रह गया है कि वह अंतर प्रेम से भर गया है और दोनो अभिन्न हो गए हैं।

भइ सुरूप जानहुँ अपछरा। बिहँसि कुँवर कर आँचर धरा॥
सुनहु कुँवर मोसौ एक बाता। जस मोहि रंग न औरहि राता॥
औ बिधि रूप दीन्ह है तोकाँ। उठा सो सवद जाइ सिव-लोका॥
तब हौ तोपहँ इंद्र पठाई। गइ पदमिनि, तै अछरी पाई॥
अब तजु जरन, मरन, तप जोगू। मोसौं मानु जनम भरि भोगू॥
हौं अछरी कबिलास कै जेहि सरि पूज न कोइ।
मोहि तजि सँवरि जो ओहि मरसि, कौन लाभ तेहि होइ? ॥३॥
भलेहिं रंग अछरी तोर राता। मोहि दुसरे सौं भाव न बाता॥
मोहिं ओहि सँवरि मुए तस लाहा। नैन जो देखसि पूछसि काहा?॥
अबहि ताहि जिउ देइ न पावा। तोहि असि अछरी ठाढ़ि मनावा॥
जौं जिउ देइहौ ओहि कै आसा। न जानौं काह होइ कबिलासा॥
हौं कबिलास काह लै करऊँ?। सोइ कबिलास लागि जेहि मरऊँ॥
ओहि के बार जीउ नहिं बारौं। सिर उतारि नेवछावरि सारौं॥
ताकरि चाह कहै जो आई। दोउ जगत तेहि देहुँ बड़ाई॥
ओहि न मोरि किछु आसा, हौं ओहि आस करेउँ।
तेहि निरास पीतम कहे, जिउ न देउँ का देउँ? ॥ ४ ॥
गौरइ हँसि महेस सौं कहा। निहचै एहि बिरहानल दहा॥
निहचै यह ओहि कारन तपा। परिमल पेम न आछै छपा॥
निहचै पेम-पीर यह जागा। कसे कसौटी कंचन लागा॥
बदन पियर जल डभकहिं नैना। परगट दुवौ पेम के बैना॥
यह एहि जनम लागि ओहि सीझा। चहै न औरहि, ओही रीझा॥
महादेव देवन्ह के पिता। तुम्हरी सरन राम रन जिता॥
एहू कहँ तस मया करेहू। पुरवहु आस, कि हत्या लेहू॥
हत्या दुइ के चढ़ाए काँधे बहु अपराध।
तीसर यह लेउ माथे, जौ लेवै कै साध॥ ५ ॥

---

(३) राता = ललित, सुंदर। तोकाँ = तुझको (= तोकहँ)। (४) तस = ऐसा (इस अर्थ मे प्रायः प्रयोग मिलता है)। कबिलास = स्वर्ग। बारौं = बचाऊँ। सारौं = करूँ। चाह = खबर। निरास = जिसे किसी की आशा न हो; जो किसीके आसरे का न हो। (५) आछै = रहता है। कसे = कसने पर। लागा = प्रतीत हुआ। डभकहिं = डबडबाते हैं, आर्द्र होते है। परगट... बैना = दोनो (पीले मुख और गीले नेत्र) प्रेम के वचन या बात प्रकट करते हैं। हत्या दुइ = दोनो कंधों पर एक एक (कवि ने शिव के कंधे पर हत्या की

अब हौं मरौं निसाँसी, हिये न आवै साँस।
रोगिया की को चालै, बैदहि जहाँ उपास ? ॥ ५ ॥

आनहिं दोस देहुँ का काहू। संगी कया, मया नहिं ताहू॥
हता पियारा मीत बिछोई। साथ न लाग आपु गै सोई॥
का मैं कीन्ह जो काया पोषी। दूषन मोहिं, आप निरदोषी॥
फागु बसंत खेलि गइ गोरी। मोहि तन लाइ बिरह कै होरी॥
अब अस कहाँ छार सिर मेलौं ?। छार जो होहुँ फाग तब खेलौं॥
कित तप कीन्ह छाँड़ि कै राजू। गएउ अहार न भा सिध काजू॥
पाएउ नहिं होइ जोगी जती। अब सर चढ़ौं जरौं जस सती॥

आइ जो पीतम फिरि गा, मिला न आइ बसंत।
अब तन होरी घालि कै, जारि करौं भसमंत॥ ६॥

ककनू पंखि जैस सर साजा। तस सर साजि जरा चह राजा॥
सकल देवता आइ तुलाने। दहुँ का होइ देव असथाने॥
बिरह-अगिनि बज्रागि असूझा। जरै सूर न बुझाए बूझा॥
तेहि के जरत जो उठै बजागी। तिनउँ लोक जरै तेहि लागी॥
अबहि कि घरी सो चिनगी छूटै। जरहि पहार पहन सब फूटै॥
देवता सबै भसम होइ जाहीं। छार समेटे पाउब नाही॥
धरती सरग होइ सब ताता। है कोई एहि राख बिधाता॥

मुहमद चिनगी पेम कै, सुनि महि गगन डेराइ।
धनि बिरही औ धनि हिया, जहँ अस अगिनि समाइ॥७॥

हनुवँत बीर लंक जेइ जारी। परवत उहै अहा रखवारी॥
बैठि तहाँ होइ लंका ताका। छठएँ मास देइ उठि हाँका॥
तेहि कै आगि उहौ पुनि जरा। लंका छाड़ि पलंका परा॥
जाइ तहाँ वै कहा संदेसू। पारबती औ जहाँ महेसू॥
जोगी आहि बियोगी कोई। तुम्हरे मँडप आगि तेइ बोई॥

---

निसाँसी = बेदम। को चालै = कौन चलावे ? ( ६ ) हता = था, आया था। सर = चिता। ( ७ ) ककनू = (फा० ककनुस) एक पक्षी जिसके सबध मे प्रसिद्ध है कि आयु पूरी होने पर वह घोसले मे बैठकर गाने लगता है जिससे आग लग जाती है और वह जल जाता है। पहन = पाषाण, पत्थर। पलंका = पलँग, चारपाई अथवा लंका के भी आगे 'पलका' नामक कल्पित द्वीप।

जरा लँगूर सु राता उहाँ। निकसि जो भागि भएउँ करमुहाँ॥
तेहि वज्रागि जरै हौं लागा। वजरअंग जरतहि उठि भागा॥

रावन लंका हौं दही, वह हौं दाहै आव।
गए पहार सब औटि कै, को राखै गहि पाव ? ॥ ८ ॥

सुनि कै महादेव कै भाखा। सिद्धि पुरुष राजै मन लाखा॥
सिद्धहि अंग न बैठै माखी। सिद्ध पलक नहिं लावै आँखी॥
सिद्धहि संग होइ नहिं छाया। सिद्धहि होइ भूख नहिं माया॥
जेहि जग सिद्ध गोसाईं कीन्हा। परगट गुपुत रहै को चीन्हा?॥
बैल चढ़ा कुस्टी कर भेसू। गिरिजापति सत आहि महेसू॥
चीन्है सोइ रहै जो खोजा। जस विक्रम औ राजा भोजा॥
जो ओहि तंत सत्त सौं हेरा। गएउ हेराइ जो ओहि भा मेरा॥

बिनु गुरु पंथ न पाइय, भूलै सो जो मेट।
जोगी सिद्ध होइ तब जब गोरख सौं भेंट॥ ६॥

ततखन रतनसेन गहवरा। रोउब छाँड़ि पाँव लेइ परा॥
मातै पितै जनम कित पाला। जो अस फाँद पेम गिउ घाला?॥
धरती सरग मिले हुत दोऊ। केइ निनार कै दीन्ह बिछोऊ?॥
पदिक पदारथ कर-हुँत खोवा। टूटहि रतन, रतन तस रोवा॥
गगन मेघ जस बरसै भला। पुहुमी पूरि सलिल बहि चला॥
सायर टूट, सिखर गा पाटा। सूझ न बार पार कहुँ घाटा॥
पौन पानि होइ होइ सब गिरई। पेम के फंद कोइ जनि परई॥

तस रोवै जस जिउ जरै, गिरै रकत औ माँसु।
रोवँ रोवँ सब रोवहि सूत सूत भरि आँसु॥ ७॥

रोवत बूड़ि उठा संसारू। महादेव तब भएउ मयारू॥
कहेन्हि "न रोव, बहुत तैं रोवा। अब ईसर भा, दारिद खोवा॥
जो दुख सहै होइ दुख ओकाँ। दुख बिनु सुख न जाइ सिवलोका॥
अब तैं सिद्ध भएसि सिधि पाई। दरपन-कया छूटि गइ काई॥
कहौं बात अब हौं उपदेसी। लागु पंथ, भूले परदेसी॥
जौं लगि चोर सेंधि नहि देई। राजा केरि न मूसै पेई॥
चढ़ें न जाइ बार ओहि खूँदी। परै त सेंधि सीस-बल मूँदी॥

---

कल्पना क्यों की है, यह नहीं स्पष्ट होता।) (६) लाखा = लखा, पहचाना। मेरा = मेल, भेंट। जो मेट = जो इस सिद्धांत को नहीं मानता। (७) गहबरा = घबराया। घाला = डाला। पदिक = तावीज, जंतर। गा पाटा = (पानी से) पट गया। (८) मयारू = मया करनेवाला, दयार्द्र। ईसर = ऐश्वर्य्य। ओकाँ = उसको (ओकाँ = औकहँ)। मूसै पेई = मूसने पाता है। चढ़े न...खूँदी = कूदकर चढ़नेसे उस द्वार तक नहीं जा सकता।

कहौं सो तोहि सिंघलगढ़, है खँड सात चढ़ाव।
फिरा न कोई जियत जिउ सरग-पंथ देइ पाव ॥ ८ ॥

गढ़ तस बाँक जैसि तोरि काया। पुरुष देखु ओही कै छाया ॥
पाइय नाहिं जूझ हठि कीन्हे। जेइ पावा तेइ आपुहि चीन्हे ॥
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा। औ तहँ फिरहिं पाँच कोटवारा ॥
दसवँ दुआर गुपुत एक ताका। अगम चढ़ाव, बाट सुठि बाँका ॥
भेदै जाइ सोइ वह घाटी। जो लहि भेद, चढ़ै होइ चाँटी ॥
गढ़ तर कुंड, सुरँग तेहि माहाँ। तहँ वह पंथ कहौं तोहि पाहाँ ॥
चोर बैठ जस सेंधि सँवारी। जुआ पैत जस लाव जुआरी ॥
जस मरजिया समुद धँस, हाथ आव तब सीप।
ढूँढ़ि लेइ जो सरग-दुआरी चढ़ै सो सिंघलदीप ॥ ९ ॥

दसवँ दुआर ताल कै लेखा। उलटि दिस्टि जो लाव सो देखा ॥
जाइ सो तहाँ साँस मन बंधी। जस धँसि लीन्ह कान्ह कालिंदी ॥
तू मन नाथु मारि कै साँसा। जो पै मरहि अवहि करू नासा ॥
परगट लोकचार कहु बाता। गुपुत लाउ मन जासौ राता ॥
"हौं हौं" कहत सबै मति खोई। जौ तू नाहि आहि सब कोई ॥
जियतहि जुरै मरै एक बारा। पुनि का मीचु, को मारै पारा ? ॥
आपुहि गुरू सो आपुहि चेला। आपुहि सब औ आपु अकेला ॥
आपुहि मीच जियन पुनि, आपुहि तन मन सोइ।
आपुहि आपु करै जो चाहै, कहाँ सो दूसर कोइ ? ॥१०॥

---

(९) ताका = उसका। जो लहि...चाँटी = जो गुरु से भेद पाकर चींटी के समान धीरे धीरे (योगियों के पिपीलिका मार्ग से) चढता है। पैंत = दाँव। (१०) ताल कै लेखा = ताड़ के समान (ऊँचा है) लोकचार = लोकाचार की। जुरै = जुट जाय।

## (२३) राजा-गढ़-छेंका-खंड

सिधि-गुटिका राजै जब पावा। पुनि भइ सिद्धि गनेस मनावा॥
जब संकर सिधि दीन्ह गुटेका। परी हूल, जोगिन्ह गढ़ छेंका॥
सबै पदमिनी देखहिं चढ़ी। सिंघल छेंकि उठा होइ मढ़ी॥
जस घर भरे चोर मत कीन्हा। तेहि बिधि सेंधि चाह गढ़ दीन्हा॥
गुपुत चोर जो रहै सो साँचा। परगट होइ जीउ नहि बाँचा॥
पौरि पौरि गढ़ लाग केवारा। औ राजा सौं भई पुकारा॥
जोगी आइ छेंकि गढ़ मेला। न जनौं कौन देस तें खेला॥

भएउ रजायसु देखौ, को भिखारि अस ढीठ।
वेगि बरज तेहि आवहु जन दुइ पठैं बसीठ॥ १॥

उतरि बसीठन्ह आइ जोहारे। "की तुम जोगी, की बनिजारे॥
भएउ रजायसु आगे खेलहि। गढ़ तर छाँड़ि अनत होइ मेलहिं॥
अस लागेहु केहि के सिख दीन्हे। आएहु मरै हाथ जिउ लीन्हे॥
इहाँ इंद्र अस राजा तपा। जबहि रिसाइ सूर डरि छपा॥
हौ बनिजार तौ बनिज बेसाहौ। भरि बैपार लेहु जो चाहौ॥
हौ जोगी तौ जुगुति सौ माँगौ। भुगुति लेहु, लै मारग लागौ॥
इहाँ देवता अस गए हारी। तुम्ह पतिग को अहौ भिखारी॥

तुम्ह जोगी बैरागी, कहत न मानहु कोहु।
लेहु माँगि किछु भिच्छा, खेलि अनत कहुँ होहु"॥ २॥

"आनु जो भीखि हौं आएउँ लेई। कस न लेउँ जौ राजा देई॥
पदमावति राजा कै बारी। हौं जोगी ओहि लागि भिखारी॥
खप्पर लेइ वार भा मांगौं। भुगुति देइ, लेइ मारग लागौं॥

---

(१) परी हूल = कोलाहल हुआ। जस घर भरे...कीन्हा = जैसे भरे घट में चोरी करने का विचार चोर ने किया हो। लाग = लगे, भिड़ गए। खेला = विचरता हुआ आया। रजायसु = राजाज्ञा। (२) खेलहि = विचरें, जायँ। अस लागेहु = ऐसे काम मे लगे। कोहु = क्रोध। (३) आएउँ लेई = लेने आया हूँ।

सोई भुगुति-परापति भूजा। कहाँ जाउँ अस वार न दूजा॥
अब धर इहाँ जीउ ओहि ठाऊँ। भसम होउँ वरु तजौं न नाऊँ॥
जस विनु प्रान पिंड है छूँछा। धरम लाइ कहिहौ जो पूछा॥
तुम्ह वसीठ राजा के ओरा। साखी होहु एहि भीख निहोरा॥

जोगी वार आव सो जेहि भिच्छा कै आस।
जो निरास दिढ़ आसन कित गौने केहु पास?"॥ ३॥

सुनि वसीठ मन उपनी रीसा। जौ पीसत घुन जाइहि पीसा॥
जोगी अस कहुँ कहै न कोई। सो कहु वात जोग जो होई॥
वह वड़ राज इंद्र कर पाटा। धरती परा सरग को चाटा?॥
जौ यह वात जाइ तहँ चली। छूटहि अवहि हस्ति सिंघली॥
औ जौ छुटहिं वज्र कर गोटा। विसरिहि भुगुति, होइ सव रोटा॥
जहँ केहु दिस्टि न जाइ पसारी। तहाँ पसारसि हाथ भिखारी॥
आगे देखि पाँव धरु, नाथा। तहाँ न हेरु टूट जहँ माथा॥

वह रानी तेहि जोग है जाहि राज औ पाटु।
सुंदरि जाइहि राजघर, जोगिहि वाँदर काटु॥ ४॥

जौं जोगी सत वाँदर काटा। एकै जोग, न दूसरि वाटा॥
और साधना आवै साधे। जोग-साधना आपुहि दाधे*॥
सरि पहुँचाव जोगि कर साथू। दिस्टि चाहि अगमन होइ हाथू॥

---

(३) भूजा = मेरे लिये भोग है। धरम लाइ = धर्म लिए हुए, सत्य सत्य। भीख निहोरा = भीख के संबध मे, अथवा इसी भीख को मै माँगता हूँ। निरासा = आशा या कामना से रहित। (४) धरती परा...चाटा = धरती पर पड़ा हुआ कौन स्वर्ग या आकाश चाटता है? कहावत है—"रहै भूई औ चाटै बादर"। गोटा = गोला। रोटा = दबकर गूँधे आँटे की बेली रोटी के समान। वाँदर काटु = बंदर काटे, मुहाविरा—अर्थात् जोगी का बुरा हो, जोगी चूल्हे मे जायँ। (५) सत = सौ। सरि पहुँचाव = बराबर या ठिकाने पहुँचा देता है। दिस्टि चाहि...हाथू = दृष्टि पहुँचने के पहले ही योगी का हाथ पहुँच जाता है।

* एक हस्तलिखित प्रति मे इसके आगे ये चौपाइयाँ हैं—

राजा तोर हस्ति कर साई। मोर जीउ यह एक गोसाईं॥
करकर है जो पावँ तर वारू। तेहि उठाइ कै करै पहारू॥
राजा करत तेहि भीख मँगावै। भीख माँग तेहि राज दियावै॥
मंदिर ढाहि उठावै नए। गढ़ करि गरब खेह मिलि गए॥

तुम्हरे जोर सिंघल के हाथी। हमरे हस्ति गुरू हैं साथी॥
अस्ति नास्ति ओहि करत न वारा। परवत करै पाँव कै छारा॥
जोर गिरे गढ़ जावत भए। जे गढ़ गरव करहिं ते नए॥
अंत क चलना कोइ न चीन्हा। जो आवा सो आपन कीन्हा॥

जोगिहि कोह न चाहिय, तस न मोहि रिस लागि।
जोग तंत ज्यों पानी, काह करै तेहि आगि ?॥ ५॥

बसिठन्ह जाइ कही अस बाता। राजा सुनत कोह भा राता॥
ठावहि ठाँव कुँवर सब माखे। केइ अवलीन्ह जोग, केइ राखे ?॥
अबहीं बेगिहि करौ सँजोऊ। तस मारहु हत्या नहि होऊ॥
मंत्रिन्ह कहा रहौ मन बूझे। पति न होइ जोगिन्ह सौ जूझे॥
ओहि मारे तौ काह भिखारी। लाज होइ जौ माना हारी॥
ना भल मुए, न मारे मोखू। दुवौ बात लागै सम दोखू॥
रहै देहु जौ गढ़ तर मेले। जोगी कित आछै बिनु खेले ?॥

आछै देहु जो गढ़ तरे, जनि चालहु यह बात।
तहँ जो पाहन भख करहि अस केहिके मुख दाँत॥ ६॥

गए बसीठ पुनि बहुरि न आए। राजै कहा बहुत दिन लाए॥
न जनौ सरग बात दहुँ काहा। काहु न आइ कही फिरि चाहा॥
पंख न काया, पौन न पाया। केहि बिधि मिलौ होइ कै छाया ?॥
सँवरि रकत नैनहिं भरि चूआ। रोइ हँकारेसि माझी सूआ॥
परी जो आसु रकत कै टूटी। रेंगि चली जस बीर-बहूटी॥
ओहि रकत लिखि दीन्ही पाती। सुआ जो लीन्ह चोंच भइ राती॥
बाँधी कंठ परा जरि काँठा। बिरह क जरा जाइ कित नाठा ?॥

मसि नैना, लिखनी बरुनि, रोइ रोइ लिखा अकत्थ।
आखर दहै, न कोइ छुवै, दीन्ह परेवा हत्थ॥ ७॥

---

यह दूतो के उस बात के उत्तर मे है "जहँ केहु दिस्टि न जाइ पसारी। तहाँ पसारसि हाथ भिखारी॥" चाहि = अपेक्षा, बनिस्बत। नए = नम्र हुए। (६) सँजोऊ = सामान। पति = बड़ाई, प्रतिष्ठा। जोगी...खेले = योगी कहाँ रहते है बिना (और जगह) गए ? (७) चाहा = चाह, खबर। माझी = मध्यस्थ। नाठा जाइ = नष्ट किया या मिटाया जाता है। मसि = स्याही। लिखनी = लेखनी, कलम। अकत्थ = अकथ्य बात।

औ मुख बचन जो कहा परेवा। पहिले मोरि बहुत कहि सेवा॥
पुनि रे सँवार कहेसि अस दूजी। जो बलि दीन्ह देवतन्ह पूजी॥
सो अबहीं तुम्ह सेव न लागा। बलि जिउ रहा, न तन सो जागा॥
भलेहि ईस हू तुम्ह बलि दीन्हा। जह तुम्ह तहाँ भाव बलि कीन्हा॥
जौ तुम्ह मया कीन्ह परु धारा। दिस्टि देखाइ बान-बिष मारा॥
जो जा कर अस आसामुखी। दुख महँ ऐस न मारै दुखी॥
नैन-भिखारि न मानहि सीखा। अगमन दौरि लेहिं पै भीखा॥

नैनहि नैन जो बेधि गए, नहि निकसै वै बान।
हिये जो आखर तुम्ह लिखे ते सुठि लीन्ह परान॥ ८॥

ते बिष-बान लिखौं कहे ताईं। रकत जो चुआ भीजि दुनियाईं॥
जान जो गारै रकत-पसेऊ। सुखी न जान दुखी कर भेऊ॥
जेहि न पीर तेहि काकरि चिंता। पीतम निठुर होइ अस निता॥
कासौं कहौ बिरह कै भाषा?। जासौं कहौ होइ जरि राखा॥
बिरह-आगि तन बन बन जरे। नैन-नीर सब सायर भरे॥
पाती लिखी सँवरि तुम्ह नावाँ। रकत लिखे आखर भए सावाँ॥
आखर जरहिं न काहू छूआ। तब दुख देखि चला लेइ सूआ॥

अब सुठि मरौं; छूछि गइ (पाती) पेम-पियारे हाथ।
भेंट होत दुख रोइ सुनावत जीउ जात जौ साथ॥ ९॥

कंचन-तार बाँधि गिउ पाती। लेइ गा सुआ जहाँ धनि राती॥
जैसे कवँल सूर के आसा। नीर कंठ लहि मरत पियासा॥
बिसरा भोग सेज सुख-बासा। जहाँ भौंर सब तहाँ हुलासा॥
तौ लगि धीर सुना नहिं पीऊ। सुना त घरी रहै नहि जीऊ॥
तौ लगि सुख हिय पेम न जाना। जहाँ पेम कत सुख बिसरामा?॥
अगर चँदन सुठि दहै सरीरू। औ भा अगिनि कया कर चीरू॥
कथा-कहानी सुनि जिउ जरा। जानहुँ घीउ बसंदर परा॥

---

(८) सेवा कहि = विनय कहकर। सँवार = संवाद, हाल। बलि जिउ रहा... जागा = जीव तो पहले ही बलि चढ़ गया था, (इसीसे तुम्हारे आने पर) वह शरीर न जगा। ईस = महादेव। भाव = भाता है। आसामुखी = मुख का आसरा देखनेवाला। (९) जान = जानता है। सावाँ = श्याम। छूछि = खाली। (१०) नीर कठ लहि...पियासा = कंठ तक पानी मे रहता है फिर भी प्यासो मरता है। बसंदर = वैश्वानर, अग्नि।

बिरह न आपु सँभारै, मैल चीर, सिर रूख।
पिउ पिउ करत राति दिन जस पपिहा मुख सूख ॥ १० ॥

ततखन गा हीरामन आई। मरत पियास छाँह जनु पाई ॥
भल तुम्ह, सुआ! कीन्ह है फेरा। कहहु कुसल अब पीतम केरा ॥
बाट न जानौं, अगम पहारा। हिरदय मिला न होइ निनारा ॥
सरस पानि कर जान पियासा। जो जल महँ ता कहँ का आसा? ॥
का रानी यह पूछहू बाता। जिनि कोइ होइ पेम कर राता ॥
तुम्हरे दरसन लागि वियोगी। अहा सो महादेव मठ जोगी ॥
तुम्ह बसंत लेइ तहाँ सिधाई। देव पूजि पुनि ओहि पहँ आई ॥

दिस्टि बान तस मारेहु घायल भा तेहि ठाँव।
दूसरि बात न बोलै, लेइ पदमावति नाँव ॥ ११ ॥

रोवँ रोवँ वै बान जो फूटे। सूतहि सूत रुहिर मुख छूटे ॥
नैनहि चली रकत कै धारा। कंथा भीजि भएउ रतनारा ॥
सूरुज बूड़ि उठा होइ ताता। औ मजीठ टेसू बन राता ॥
भा बसंत राती बनसपती। औ राते सब जोगी जती ॥
पुहुमि जो भीजि, भएउ सब गेरू। औ राते तहँ पंखि पखेरू ॥
राती सती अगिनि सब काया। गगन मेघ राते तेहि छाया ॥
ईंगुर भा पहार जौं भीजा। पै तुम्हार नहि रोवँ पसीजा ॥

तहाँ चकोर कोकिला, तिन्ह हिय मया पईठि।
नैन रकत भरि आए, तुम्ह फिरि कीन्हि न दीठि ॥ १२ ॥

ऐस बसंत तुमहिं पै खेलहु। रकत पराए सेंदुर मेलेहु ॥
तुम्ह तौ खेलि मँदिर महँ आईं। ओहि क मरम पै जान गोसाईं ॥
कहेसि जरै को बारहि बारा। एकहि बार होहु जरि छारा ॥
सर रचि चहा आगि जो लाई। महादेव गौरी सुधि पाई ॥
आइ बुझाइ दीन्ह पथ तहाँ। मरन-खेल कर आगम जहाँ ॥
उलटा पंथ पेम के बारा। चढ़ै सरग, जौ परै पतारा ॥

---

बिरह = विरह से। रूख = विना तेल का। (१२) रतनारा = लाल। नैन रकत भरि आए = चकोर और पहाड़ी कोकिला की आँखे लाल होती हैं। (१३) दीन्ह पथ तहाँ = वहाँ का रास्ता बताया। मरन खेल...जहाँ = जहाँ प्राण निछावर करने का आगम है। उलटा पंथ = योगियो का अंतर्मुख मार्ग; विषयो की ओर स्वभावतः जाते हुए मन को उलटा पीछे की ओर फेरकर ले जानेवाला मार्ग।

अब धँसि लीन्ह चहै तेहि आसा। पावै सँस, कि मरै निरासा॥
पाती लिखि सो पठाई, इहै सबै दुख रोइ।
दहुँ जिउ रहै कि निसरै, काह रजायसु होइ ?॥ १३॥

कहि कै सुआ जो छोड़ेसि पाती। जानहु दीप छुवत तस ताती॥
गीउ जो बाँधा कंचन-तागा। राता सँख कंठ जरि लागा॥
अगिनि साँस सँग निसरै ताती। तरुवर जरहिं ताहि कै पाती॥
रोइ रोइ सुआ कहै सो बाता। रकत कै आँसु भएउ मुख राता॥
देखु कंठ जरि लाग सो गेरा। सो कस जरै विरह अस घेरा॥
जरि जरि हाड़ भएउ सब चूना। तहाँ मासु का रकत बिहूना॥
वह तोहि लागि कया सब जारी। तपत मीन, जल देहि पवारी॥

तोहि कारन वह जोगी भसम कीन्ह तन दाहि।
तू असि निठुर निछोही, बात न पूछै ताहि॥ १४॥

कहेसि "सुआ! मोसौ सुनु बाता। चहौं तौ आज मिलौं जस राता॥
पै सो मरम न जाना भोरा। जानै प्रीति जो मरि कै जोरा॥
हौं जानति हौं अबही काँचा। ना वह प्रीति रंग थिर राँचा॥
ना वह भएउ मलयगिरि बासा। ना वह रवि होइ चढ़ा अकासा॥
ना वह भएउ भौंर कर रंगू। ना वह दीपक भएउ पतंगू॥
ना वह करा भृंग कै होई। ना वह आपु मरा जिउ खोई॥
ना वह प्रेम औटि एक भएऊ। ना ओहि हिये माँझ डर गएऊ॥

तेहि का कहिय रहब जिउ रहै जो पीतम लागि।
जहँ वह सुनै लेइ धँसि, का पानी, का आगि॥ १५॥

पुनि धनि कनक-पानि मसि माँगी। उतर लिखत भीजी तन आँगी॥
तस कंचन कहँ चहिय सोहागा। जौं निरमल नग होइ तौ लागा॥
हौं जो गई सिव-मंडप भोरी। तहँवाँ कस न गाँठि तै जोरी ?॥
भा बिसँभार देखि कै नैना। सखिन्ह लाज का बोलौं बैना ?॥
खेलहि मिस मैं चंदन घाला। मकु जागसि तौं देउँ जयमाला॥

---

(१४) ताहि कै पाती = उसकी उस चिट्ठी से। देखु कंठ जरि...गेरा = देख, कंठ जलने लगा (तब) उसे गिरा दिया। देहि पवारी = फेंक दे। (१५) काँचा = कच्चा। राँचा = रँग गया। औटि = पगकर। (१६) धनि = स्त्री। कनक-पानि = सोने का पानी। बिसँभार = बेसुध। घाला = डाला, लगाया। मकु = कदाचित्।

तवहुँ न जागा, गा तू सोई। जागे भेंट, न सोए होई॥
अब जौं सूर होइ चढ़ै अकासा। जौ जिउ देइ त आवै पासा॥
तौ लगि भुगुति न लेइ सका रावन सिय जब साथ।
कौन भरोसे अब कहौं? जीउ पराए हाथ॥ १६॥

अब जौ सूर गगन चढ़ि आवै। राहु होइ तौ ससि कहँ पावै॥
बहुतन्ह ऐस जीउ पर खेला। तू जोगी कित आहि अकेला॥
विक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गएउ पतारा॥
मधूपाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी॥
राजकुँवर कंचनपुर गएऊ। मिरगावति कहँ जोगी भएऊ॥
साध कुँवर खंडावत जोगू। मधु-मालति कर कीन्ह वियोगू॥
प्रेमावति कहँ सुरसर साधा। ऊषा लगि अनिरुध वर बाँधा॥
हौं रानी पदमावती, सात सरग पर बास।
हाथ चढ़ौं मैं तेहिके प्रथम करै अपनास॥ १७॥

हौं पुनि इहाँ ऐस तोहि राती। आधी भेंट पिरीतम-पाती॥
तहुँ जौ प्रीति निबाहै आँटा। और न देख केत कर काँटा॥
होइ पतंग अधरन्ह गहु दीया। लेसि समुद धँसि होइ मरजीया॥
रातु रंग जिमि दीपक बाती। नैन साउ होइ सीप सेवाती॥
चातक होइ पुकारु पियासा। पीउ न पानि सेवाति कै आसा॥
सारस कर जस बिछुरा जोरा। नैन होहि जस चंद चकोरा॥
होहि चकोर दिस्टि ससि पाहाँ। औ रवि होहि कँवलदल माहाँ॥
महुँ ऐसै होउँ तोहि कहँ, सकहि तौ ओर निबाहु।
राहु बेधि अरजुन होइ जीतु दुरपदी ब्याहु॥ १८॥

राजा इहाँ ऐस तप भूरा। भा जरि विरह छार कर कूरा॥
नैन लाइ सो गएउ बिमोही। भा बिनु जिउ, जिउ दीन्हेसि ओही॥
कहाँ पिंगला सुखमन नारी। सूनि समाधि लागि गइ तारी॥
बूँद समुद्र जैस होइ मेरा। गा हेराइ अस मिलै न हेरा॥

---

जागे भेंट...होई = जागने से भेंट होती है, सोने मे नही। (१७) अपनास = अपना नाश। (१८) निबाहै आँटा = निबाह सकता है। केत = केतकी। महुँ = महँ, मै भी। ओर निबाहु = प्रीति को अंत तक निबाह। (१९) कूरा = ढेर। पिंगला = दक्षिण नाडी। सुखमन = सुषुम्ना, मध्य नाड़ी। सूनि समाधि = शून्य समाधि। तारी = त्राटक, टकटकी।

रंगहि पान मिला जस होई। आपहि खोइ रहा होइ सोई॥
सुऐ जाइ जब देखा तासू। नैन रकत भरि आए आँसू॥
सदा पिरीतम गाढ़ करेई। ओहि न भुलाइ, भूलि जिउ देई॥
मूरि सजीवन आनि कै औ मुख मेला नीर।
गरुड़ पंख जस झारै अमृत बरसा कीर॥ १९॥
मुआ जिया अस बास जो पावा। लीन्हेसि साँस, पेट जिउ आवा॥
देखेसि जागि, सुआ सिर नावा। पाती देइ मुख बचन सुनावा॥
गुरू क बचन स्रवन दुइ मेला। कीन्हि सुदिस्टि, बेगि चलु चेला॥
तोहि अलि कीन्ह आप भइ केवा। हौं पठवा गुरु बीच परेवा॥
पौन साँस तोसौं मन लाई। जोवै मारग दिस्टि बिछाई॥
जस तुम्ह कया कीन्ह अगि-दाहू। सो सब गुरु कहँ भएउ अगाहू॥
तब उदंत छाला लिखि दीन्हा। बेगि आउ, चाहै सिध कोन्हा॥
आवहु सामि सुलच्छना, जीउ बसै तुम्ह नाँव।
नैनहि भीतर पंथ है, हिरदय भीतर ठाँव॥ २०॥
सुनि पदमावति कै असि मया। भा बसंत, उपनी नइ कया॥
सुआ क बोल पौन होइ लागा। उठा सोइ, हनुवँत अस जागा॥
चाँद मिलै कै दीन्हेसि आसा। सहसौ कला सूर परगासा॥
पाति लीन्हि, लेइ सीस चढ़ावा। दीठि चकोर चंद जस पावा॥
आस-पियासा जो जेहि केरा। जौ झिझकार, ओहि सहुँ हेरा॥
अब यह कौन पानि मैं पीया। भा तन पाँख, पतँग मरि जीया॥
उठा फूलि हिरदय न समाना। कंथा टूक-टूक बेहराना॥
जहाँ पिरीतम वै बसहि यह जिउ बलि तेहि बाट।
वह जो बोलावै पावँ सौं, हौं तहँ चलौं लिलाट॥ २१॥
जो पथ मिला महेसहि सेई। गएउ समुद ओहि धसि लेई॥
जहँ वह कुंड बिषम औगाहा। जाइ परा तह पाव न थाहा॥
बाउर अंध पेम कर लागू। सौहँ धँसा, किछु सूझ न आगू॥
लीन्हे सिधि साँसा मन मारा। गुरू मछंदरनाथ सँभारा॥

---

गाढ़ = कठिन अवस्था। (२०) केवा = केतकी। अगाहू भएउ = विदित हुआ। उदंत = (सं०) संवाद, वृत्तांत। छाला = पत्र। सामि = स्वामी। (२१) हनुवँत = हनुमान् के ऐसा बली। झिझकार = झिड़के। सहुँ = सामने। बेहराना = फटा। (२२) धँसि लेई = धँसकर लेने के लिये। लागू = लाग,

चेला परे न छाँड़हि पाछू। चेला मच्छ, गुरू जस काछू॥
जस धँसि लीन्ह समुद मरजीया। उघरे नैन, वरै जस दीया॥
खोजि लीन्ह सो सरग-दुवारा। वज्र जो मूँदे जाइ उघारा॥
बाँक चढ़ाव सरग-गढ़, चढ़त गएउ होइ भोर।
भइ पुकार गढ़ ऊपर, चढ़े सेंधि देइ चोर॥ २२॥

---

लगन। पैठ = पूर। बाँक = टेढ़ा, चक्करदार। सरगदुवार = दूसरे अर्थ में ब्रह्मरंध्र।

## (२४) गंधर्वसेन-मंत्री-खंड

राजै सुनि, जोगी गढ़ चढ़े। पूछै पास जो पंडित पढ़े॥
जोगी गढ़ जो सेंधि दै आवहिं। बोलहु सबद सिद्धि जस पावहिं॥
कहहिं बेद पढ़ि पंडित बेदी। जोगि भौंर जस मालति-भेदी॥
जैसे चोर सेंधि सिर मेलहिं। तस ए दुवौ जीउ पर खेलहिं॥
पंथ न चलहिं बेद जस लिखा। सरग जाए सूरी चढ़ि सिखा॥
चोर होइ सूरी पर मोखू। देइ जौ सूरि तिन्हहि नहिं दोखू॥
चोर पुकारि बेधि घर मूसा। खेलै राज-भँडार मँजूसा॥

जस ए राजमँदिर महँ दीन्ह रैनि कहँ सेंधि।
तस छेंकहु पुनि इन्ह कहँ, मारहु सूरी बेधि॥ १॥

राँध जो मंत्री बोले सोई। ऐस जो चोर सिद्ध पै कोई॥
सिद्ध निसंक रैनि दिन भवँहीं। ताका जहाँ तहाँ अपसवहीं॥
सिद्ध निडर अस अपने जीवा। खड़ग देखि कै नावहि गीवा॥
सिद्ध जाइ पै जिउबध जहाँ। औरहि मरन-पंख अस कहाँ?॥
चढ़ा जो कोपि गगन उपराही। थोरे साज मरै सो नाहीं॥
जंबुक जूझ चढ़ै जौ राजा। सिंघ साज कै चढ़ै तौ छाजा॥
सिद्ध अमर, काया जस पारा। छरहि मरहि, बर जाइ न मारा॥

छरही काज कृस्न कर, राजा चढ़ै रिसाइ।
सिद्धगिद्ध जिन्ह दिस्टि गगन पर, बिनु छर किछु न बसाइ॥२॥

अबही करहु गुदर मिस साजू। चढ़हि बजाइ जहाँ लगि राजू॥
होहिं सँजोवल कुँवर जो भोगी। सब दर छेकि धरहि अब जोगी॥
चौबिस लाख छत्रपति साजे। छपन कोटि दर बाजन बाजे॥

---

(१) सबद = व्यवस्था। सरग जाए = स्वर्ग जाना (अवधी)। सूरि = सूली। (२) राँध = पास, समीप। भवँहीं = फिरते हैं। अपसवहीं = जाते है। मरन-पख = मृत्यु के पख जैसे चींटो को जमते हैं। पारा = पारद। छरहि = छल से, युक्ति से। बर = बल से। (३) गुदर = राजा के दरबार मे हाजिरी, मोजरा; अथवा पाठांतर 'कदरमस' = युद्ध। सँजोवल = सावधान। दर = दल, सेना।

बाइस सहस हस्ति सिंघली। सकल पहार सहित महि हली॥
जगत बराबर वै सब चाँपा। डरा इंद्र, बासुकि हिय काँपा॥
पदुम कोट रथ साजे आवहिं। गिरि होइ खेह गगन कहँ धावहिं॥
जनु भुइँचाल चलत महि परा। टूटी कमठ-पीठि, हिय डरा॥

छत्रहि सरग छाइगा, सूरुज गयउ अलोपि।
दिनहि राति अस देखिय, चढ़ा इंद्र अस कोपि॥ २॥

देखि कटक औ मैमँत हाथी। बोले रतनसेन कर साथी॥
होत आव दल बहुत असूझा। अस जानिय किछु होइहि जूझा॥
राजा तू जोगी होइ खेला। एही दिवस कहँ हम भए चेला॥
जहाँ गाढ़ ठाकुर कहँ होइ। संग न छाँड़ै सेवक सोई॥
जो हम मरन-दिवस मन ताका। आजु आइ पूजी वह साका॥
बरु जिउ जाइ, जाइ नहि बोला। राजा सत-सुमेरु नहि बोला॥
गुरू केर जौ आयसु पावहि। सौंह होहिं औ चक्र चलावहिं॥

आजु करहि रन भारत सत वाचा देइ राखि।
सत्य देख सब कौतुक, सत्य भरै पुनि साखि॥ ४॥

गुरू कहा चेला सिध होहू। पेम-बार होइ करहु न कोहू॥
जाकहँ सीस नाइ कै दीजै। रंग न होइ ऊभ जौ कीजै॥
जेहि जिउ पेम पानि भा सोई। जेहि रँग मिलै ओहि रँग होई॥
जौ पै जाइ पेम सौं जूझा। कित तप मरहि सिद्ध जो बूझा?॥
एहि सेति बहुरि जूझ नहिं करिए। खड़ग देखि पानी होइ ढरिए॥
पानिहि काह खड़ग कै धारा। लौटि पानि होइ सोइ जो मारा॥
पानी सेती आगि का करई?। जाइ बुझाइ जौ पानी परई॥

सीस दीन्ह मै अगमन पेम-पानि सिर मेलि।
अब सो प्रीति निबाहौं, चलौं सिद्ध होइ खेलि॥ ५॥

राजै छेकि धरे सब जोगी। दुख ऊपर दुख सहै वियोगी॥
ना जिउ धरक धरत होइ कोई। नाहीं मरन जियन डर होई॥

---

बराबर चाँपा = पैर से रौंदकर समतल कर दिया। भुइँचाल = भूचाल, भूकंप। अलोपि गए = लुप्त हो गए। (४) साका पूजी = समय पूरा हुआ। बोला = वचन, प्रतिज्ञा। (५) ऊभ = ऊँचा। एहि सेति = इससे, इसलिये। पानिहि कहा...धारा = पानी में, तलवार मारने से पानी विदीर्ण नहीं होता, वह फिर ज्यों का त्यों बराबर हो जाता है। लौटि...मारा = जो मारता है वही उलटा पानी (कोमल या नम्र) हो जाता है। धरक = धड़क।

नाग-फाँस उन्ह मेला गीवा। हरप न विसमौ एकौ जीवा॥
जेइ जिउ दीन्ह सो लेइ निकासा। बिसरै नहि जौ लहि तन साँसा॥
कर किंगरी तेहि तंतु बजावै। इहै गीत बैरागी गावै॥
भलेहि आनि गिउ मेली फाँसी। है न सोच हिय, रिस सब नासी॥
मैं गिउ फाँद ओहि दिन मेला। जेहि दिन पेम-पंथ होइ खेला॥

परगट गुपुत सकल महँ पूरि रहा सो नाँव।
जहँ देखौं तहँ ओही, दूसर नहि जहँ जाँव॥ ६॥

जब लगि गुरु हौं अहा न चीन्हा। कोटि अँतरपट बीचहि दीन्हा॥
जब चीन्हा तब और न कोई। तन मन जिउ जीवन सब सोई॥
'हौं हौं' करत धोख इतराहीं। जय भा सिद्ध कहाँ परछाहीं?॥
मारै गुरू, कि गुरू जियावै। और को मार? मरै सब आवै॥
सूरी मेलु, हस्ति करु चुरू। हौं नहि जानौं; जानै गुरू॥
गुरू हस्ति पर चढ़ा सो पेखा। जगत जो नास्ति, नास्ति पै देखा॥
अंध मीन जस जल महँ धावा। जल जीवन चल दिस्टि न आवा॥

गुरु मोरे मोरे हिये, दिए तुरंगम ठाठ।
भीतर करहि डोलावै, बाहर नाचै काठ॥ ७॥

सो पदमावति गुरु हौं चेला। जोग-तंत जेहि कारन खेला॥
तजि वह बार न जानौं दूजा। जेहि दिन मिलै, जातरा पूजा॥
जीउ काढ़ि भुइँ धरौं लिलाटा। ओहि कहँ देउँ हिये महँ पाटा॥
को मोहि ओहि छुआवै पाया। नव अवतार, देइ नइ काया॥
जीउ चाहि जो अधिक पियारी। माँगै जीउ देउँ बलिहारी॥
माँगै सीस, देउँ सह गीवा। अधिक तरौ जौ मारै जीवा॥
अपने जिउ कर लोभ न मोहीं। पेम-बार होइ माँगौ ओही॥

दरसन ओहि कर दिया जस, हौं सो भिखारि पतंग।
जौं करवत सिर सारै, मरत न मोरौं अंग॥ ८॥

---

बिसमौ = विषाद (अवध)। रिस अस नासी = क्रोध भी सब प्रकार नष्ट कर दिया है। (७) अहा = था। अँतरपट = परदा, व्यवधान। इतराहीं = इतराते हैं, गर्व करते हैं। करु चूरू = चूर करे, पीस डाले। पै = ही। जल जीवन··· आवा = जल सा यह जीवन चचल है, यह दिखाई नहीं देता है। ठाठ = रचना, ढाँचा। काठ = जड़ वस्तु, शरीर। (८) जातरा पूजा = यात्रा सफल हुई। पाटा = सिंहासन। करवत सिर सारै = सिर पर आरा चलावे।

पदमावति कँवला ससि-जोती। हँसै फूल, रोवै सब मोती॥
बरजा पितै हँसी औ रोजू। लागे दूत, होइ निति खोजू॥
जबहि सुरुज कहँ लागा राहू। तबहिं कँवल मन भएउ अगाहू॥
बिरह अगस्त जो बिसमौ उएऊ। सरवर-हरप सूखि सब गएऊ॥
परगट ढारि सकै नहि आँसू। घटि घटि माँसु गुपुत होइ नासू॥
जस दिन माँझ रैनि होइ आई। बिगसत कँवल गएउ मुरझाई॥
राता बदन गएउ होइ सेता। भँवत भँवर गहि गए अचेता॥

चित्त जो चिंता कीन्ह धनि, रोवँ रोवँ समेत।
सहस साल सहि, आहि भरि, मुरुछि परी, गा चेत॥ ९॥

पदमावति सँग सखी सयानी। गनत नखत सब रैनि बिहानी॥
जानहिं मरम कँवल कर कोई। देखि बिथा बिरहिन कै रोई॥
बिरहा कठिन काल कै कला। बिरह न सहै, काल बरु भला॥
काल काढ़ि जिउ लेइ सिधारा। बिरह-काल मारे पर मारा॥
बिरह आगि पर मेलै आगी। बिरह घाव पर घाव बजागी॥
बिरह बान पर बान पसारा। बिरह रोग पर रोग सँचारा॥
बिरह साल पर साल नवेला। बिरह काल पर काल दुहेला॥

तन रावन होइ सर चढ़ा, बिरह भयउ हनुवंत।
जारे ऊपर जारै, चित मन करि भसमंत॥ १०॥

कोइ कुमोद पसारहिं पाया। कोइ मलयागिरि छिरकहिं काया॥
कोइ मुख सीतल नीर चुवावै। कोइ अंचल सौं पौन डोलावै॥
कोइ मुख अमृत आनि निचोवा। जनु बिष दीन्ह, अधिक धनि सीवा॥
जोवहि साँस खिनहि खिन सखी। कब जिउ फिरै पौन-पर पँखी॥
बिरह काल होइ हिये पईठा। जीउ काढ़ि लै हाथ बईठा॥
खिनहि मौन बाँधे, खिन खोला। गही जीभ मुख आव न बोला॥
खिनहि बेझि कै बानन्ह मारा। काँपि काँपि नारि मरै बेकरारा॥

---

(९) रोजू = रोदन, रोना। खोजू = चौकसी। अगस्त = एक नक्षत्र, जैसे, उदित अगस्त पंथ जल सोखा। बिसमौ = बिना समय के। भँवत भँवर... अचेता = डोलते हुए भौरे अर्थात् पुतलियाँ निश्चल हो गईं। (१०) कोई = कुमुदिनी, यहाँ सखियाँ। काल कै कला = काल के रूप। नवेला = नया। (११) पौन-पर = पवन के परवाला अर्थात् वायु रूप। बेकरारा = बेचैन, बेकरार।

कैसेहु विरह न छाँड़ै, भा ससि गहन गरास।
नखत चहूँ दिसि रोवहि, अंधर धरति अकास ॥११॥

धरी चारि इमि गहन गरासी। पुनि विधि हिये जोति परगासी॥
निसँस ऊभि भरि लीन्हेसि साँसा। भा अधार, जीवन कै आसा॥
बिनवहिं सखी, छूट ससि राहू। तुम्हरी जोति जोति सब काहू॥
तू ससि-बदन जगत उजियारी। केइ हरि लीन्ह, कीन्ह अँधियारी?॥
तू गजगामिनि गरब-गहेली। अब कस आस छाँड़ तू, बेली॥
तू हरि लंक हराए केहरि। अब कित हारि करति है हिय हरि?॥
तू कोकिल-बैनी जग मोहा। केइ ब्याधा होइ गहा निछोहा?॥

कँवल-कली तू पदमिनि! गइ निसि, भएउ बिहान।
अबहुँ न संपुट खोलसि जब रे उआ जग भानु ॥१२॥

भानु-नावँ सुनि कँवल बिगासा। फिरि कै भौंर लीन्ह मधु बासा॥
सरद-चंद मुख जबहि उघेली। खंजन-नैन उठे करि केली॥
विरह न बोल आव मुख ताईं। मरि मरि बोल जीउ बरियाईं॥
दवै विरह दारुन, हिय काँपा। खोलि न जाइ बिरह-दुख झाँपा॥
उदधि-समुद जस तरँग देखावा। चख घूमहिं; मुख बात न आवा॥
यह सुनि लहरि लहरि पर धावा। भँवर परा, जिउ थाह न पावा॥
सखी आनि बिष देहु तौ मरऊँ। जिउ न पियार, मरै का डरऊँ?॥

खिनहिं उठै, खिन बूड़ै, अस हिय कँवल सँकेत।
हीरामनहि बुलावहि, सखी! गहन जिउ लेत ॥१३॥

चेरी धाय सुनत खिन धाई। हीरामन लेइ आईं बोलाई॥
जनहु बैद ओषद लेइ आवा। रोगिया रोग मरत जिउ पावा॥
सुनत असीस नैन धनि खोले। बिरह-बैन कोकिल जिमि बोले॥
कँवलहि विरह-बिथा जस बाढ़ी। केसर-बरन पीर हिय गाढ़ी॥
कित कँवलहि भा पेम-अँकूरू। जो पै गहन लेहि दिन सूरू॥

---

अधर = अँधेरा। (१२) तू हरिलंक...केहरि = तूने सिंह से कटि छीनकर उसे हराया। हारि करति है = निराश होती है, हिम्मत हारती है। निछोहा = निष्ठुर। (१३) फिरि कै भौंर...मधु बासा = भौंरो ने फिर मधु-वास लिया अर्थात् काली पुतलियाँ खुलीं। बरियाईं = जबरदस्ती। दवै = दबाता है, पीसता है। झाँपा = ढका हुआ। सँकेत = संकट। गहन = सूर्य्य-रूप रत्नसेन का अदर्शन। (१४) अँकूरू = अंकुर।

पुरइनि-छाँह कँवल कै करी। सकल विथा सुनि अस तुम हरी॥
पुरुष गँभीर न बोलहिं काहू। जो बोलहिं तौ और निबाहू॥
एतनै बोल कहत मुख पुनि होइ गई अचेत।
पुनि को चेत सँभारै? उहै कहत मुख सेत॥१४॥
और दगध का कहौं अपारा। सती सो जरै कठिन अस झारा॥
होइ हनुवंत पैठ है कोई। लंकादाहु लागु करै सोई॥
लंका बुझी आगि जौ लागी। यह न बुझाइ आँच वज्रागी॥
जनहु अगिनि के उठहि पहारा। औ सब लागहिं अंग अँगारा॥
कटि कटि माँसु सराग पिरोवा। रकत कै आँसु माँसु सब रोवा॥
खिन एक वार माँसु अस भूजा। खिनहिं चबाइ सिंघ अस गूँजा॥
एहि रे दगध हुँत उतिम मरीजै। दगध न सहिय, जीउ वरु दीजै॥
जहँ लगि चंदन मलयगिरि औ सायर सब नीर।
सब मिलि आइ बुझावहि, बुझै न आगि सरीर॥१५॥

हीरामन जौ देखेसि नारी। प्रीति-वेल उपनी हिय-वारी॥
कहेसि कस न तुम्ह होहु दुहेली। अरुझी पेम जो पीतम बेली॥
प्रीति-वेलि जिनि अरुझै कोई। अरुझे, मुए न छूटै सोई॥
प्रीति-वेलि ऐसै तन डाढ़ा। पलुहत सुख, बाढ़त दुख बाढ़ा॥
प्रीति-वेलि कै अमर को बोई?। दिन दिन बढ़ै, छीन नहि होई॥
प्रीति-वेलि संग विरह अपारा। सरग पतार जरै तेहि झारा॥
प्रीति अकेलि वेलि चढ़ि छावा। दूसर वेलि न सँचरै पावा॥
प्रीति-वेलि अरुझै जव तव सुछाँह सुख-साख।
मिलै पिरीतम आइ कै, दाख-वेलि-रस चाख॥१६॥

पदमावति उठि टेकै पाया। तुम्ह हुँत देखौं पीतम-छाया॥
कहत लाज औ रहै न जीऊ। एक दिसि आगि दुसर दिसि पीऊ॥
सूर उदयगिरि चढ़त भुलाना। गहनै गहा, कँवल कुँभिलाना॥
ओहट होइ मरौं तौ झूरी। यह सुठि मरौ जो नियर, न दूरी॥
घट महँ निकट, विकट होइ मेरू। मिलहि न मिले, परा तस फेरू॥

---

काहू = कभी। (१५) झारा = झार, ज्वाला। सराग = शलाका, सीख। गूँजा = गरजा। दगध = दाह। उतिम = उत्तम। (१६) दुहेली = दुःखी। पलुहत = पल्लवित होते, पनपते हुए। (१७) तुम्ह हुँत = तुम्हारे द्वारा। ओहट = ओट में, दूर। मेरू = मेल, मिलाप। मिलहिं न मिले = मिलने

तुम्ह सो मोर खेवक गुरु देवा। उतरौं पार तेही बिधि खेवा॥
दमनहिं नलहिं जो हंस मेरावा। तुम्ह हीरामन नावँ कहावा॥
मूरि सजीवन दूरि है सालै सकती-बानु।
प्रान मुकुत अब होत है, बेगि देखावहु भानु॥ १७॥
हीरामन भुइँ धरा लिलाटू। तुम्ह रानी जुग जुग सुख-पाटू॥
जेहि के हाथ सजीवन मूरी। सो जानिय अब नाही दूरी॥
पिता तुम्हार राज कर भोगी। पूजै बिप्र मरावै जोगी॥
पौरि पौरि कोतवार जो बैठा। पेम क लुबुध सुरँग होइ पैठा॥
चढ़त रैनि गढ़ होइगा भोरू। आवत बार धरा कै चोरू॥
अब लेइ गए देइ ओहि सूरी। तेहि सौं अगाह बिथा तुम्ह पूरी॥
अब तुम्ह जिउ, काया वह जोगी। कया क रोग जानु पै रोगी॥
रूप तुम्हार जीउ कै (आपन) पिंड कमावा फेरि।
आपु हेराइ रहा, तेहि काल न पावै हेरि॥ १८॥

हीरामन जो बात यह कही। सूर के गहन चाँद तब गही॥
सूर के दुख सौं ससि भइ दुखी। सो कित दुख मानै करमुखी?॥
अब जौं जोगि मरै मोहि नेहा। मोहि ओहि साथ धरति गगनेहा॥
रहै त करौं जनम भरि सेवा। चलै त, यह जिउ साथ परेवा॥
कहेसि कि कौन करा है सोई। पर-काया परवेस जो होई॥
पलटि सो पंथ कौन बिधि खेला। चेला गुरू, गुरू भा चेला॥
कौन खंड अस रहा लुकाई। आवै काल, हेरि फिरि जाई॥
चेला सिद्धि सो पावै गुरु सौं करै अछेद।
गुरू करै जो किरिपा, पावै चेला भेद॥ १९॥

अनु रानी तुम गुरु, वह चेला। मोहि बूझहु कै सिद्ध नवेला?॥
तुम्ह चेला कहँ परसन भई। दरसन देइ मँडप चलि गई॥

---

पर भी ( पास होने पर भी ) नहीं मिलता। दमन = दमयती। मुकुत होत है = छूटता है। ( १८ ) रूप तुम्हार जीउ ..फेरि = तुम्हारे रूप ( शरीर ) मे अपने जीव को करके ( पर-काय-प्रवेश करके ) उसने मानो दूसरा शरीर प्राप्त किया। ( १९ ) करमुखी = काले मुँहवाली। गगनेहा = गगन मे, स्वर्ग मे। करा = कला। चेला सिद्धि सो पावै...भेद = यह शुक का उत्तर है। अछेद, अभेद = भेद, भाव का त्याग। ( २० ) अनु = फिर, आगे। मोहि बूझहु... नवेला = नया सिद्ध बनाकर उलटा मुझसे पूछती हो।

रूप गुरू कर चेलै डीठा। चित समाइ होइ चित्र पईठा॥
जीउ काढ़ि लै तुम्ह अपसई। वह भा कया, जीउ तुम्ह भई॥
कया जो लाग धूप औ सीऊ। कया न जान, जान पै जीऊ॥
भोग तुम्हार मिला ओहि जाई। जो ओहि बिथा सो तुम्ह कहँ आई॥
तुम ओहिके घट, वह तुम माहाँ। काल कहाँ पावै वह छाहाँ?॥

अस वह जोगी अमर भा पर-काया-परवेस।
आवै काल, गुरुहि तहँ देखि सो करै अदेस॥ २०॥

सुनि जोगी कै अमर जो करनी। नेवरी बिथा विरह कै मरनी॥
कवंल-करी होइ बिगसा जीऊ। जनु रवि देख छूटि गा सीऊ॥
जो अस सिद्ध को मारै पारा?। निपुरुष तेइ जरै होइ छारा॥
कहौं जाइ अब मोर सँदेसू। तजौं जोग अब, होहु नरेसू॥
जिनि जानहु हौं तुम्ह सौं दूरी। नैनन्ह माँझ गड़ी वह सूरी॥
तुम्ह परसेद घटे घट केरा। मोहि घट जीउ घटत नहि बेरा॥
तुम्ह कहं पाट हिये महँ साजा। अब तुम मोर दुहूँ जग राजा॥

जौ रे जियहि मिलि गर रहहि, मरहि तो एकै दोउ।
तुम्ह जिउ कहँ जिनि होइ किछु, मोहि जिउ होउ सो होउ॥२१॥

---

अपसई = चल दी। सीऊ = शीत। अदेस करै = नमस्कार करता है; 'आदेश गुरु' वह प्रणाम साधुओं में प्रचलित है। (२१) नेवरी = निबटी, छूटी। निपुरुष = पुरुषार्थहीन। सूरी = शूली जो रत्नसेन को दी जानेवाली है। परसेद = प्रस्वेद, पसीना। घट = घटने पर। बेरा = देर, विलंब।

## ( २५ ) रत्नसेन-सूली-खंड

बाँधि तपा आने जहँ सूरी। जुरे आइ सब सिंघलपूरी॥
पहिले गुरुहि देइ कहँ आना। देखि रूप सब कोइ पछिताना॥
लोग कहहिं यह होइ न जोगी। राजकुँवर कोई अहै वियोगी॥
काहुहि लागि भएउ है तपा। हिये सो माल, करहु मुख जपा॥
जस मारै कहँ बाजा तूरू। सूरी देखि हँसा मंसूरू॥
चमके दसन भएउ उजियारा। जो जहँ तहाँ बीजु अस मारा॥
जोगी केर करहु पै खोजू। मकु यह होइ न राजा भोजू॥
सब पूछहिं, कहु जोगी! जाति जनम औ नाँव।
जहाँ ठाँव रोवै कर हँसा सो कहु केहि भाव॥ १॥
का पूछहु अब जाति हमारी। हम जोगी औ तपा भिखारी॥
जोगिहि कौन जाति, हो राजा। गारि न कोह, मारि नहि लाजा॥
निलज भिखारि लाज जेइ खोई। तेहि के खोज परै जिनि कोई॥
जाकर जोउ मरै पर बसा। सूरी देखि सो कस नहि हँसा?॥
आजु नेह सौं होइ निबेरा। आजु पुहुमि तजि गगन बसेरा॥
आजु कया-पीजर-बँदि टूटा। आजुहि प्रान-परेवा छूटा॥
आजु नेह सौं होइ निनारा। आजु प्रेम-सँग चला पियारा॥
आजु अवधि सिर पहुँची, किए जाहु मुख रात।
बेगि होहु मोहिं मारहु जिनि चालहु यह बात॥ २॥
कहेन्हि सँवरु जेहि चाहसि सँवरा। हम तोहि करहिं केत कर भँवरा॥
कहेसि ओहि सँवरौं हरि फेरा। मुए जियत आहौं जेहि केरा॥
औ सँवरौं पदमावति रामा। यह जिउ नेवछावरि जेहि नामा॥
रकत क बूँद कया जस अहही। 'पदमावति पदमावति' कहही॥

---

( १ ) करहु मुख = हाथ से भी और मुख से भी। जस = जैसे ही। ( २ ) अवधि सिर पहुँची = अवधि किनारे पहुँची अर्थात् पूरी हुई। बेगि होहु = जल्दी करो। ( ३ ) करहिं ..भौंरा = हम तुम्हें अब सूली से ऐसा ही छेदेंगे जैसा केतकी के काँटे भौंरे का शरीर छेदते हैं। हरि = प्रत्येक। आहौं = हूँ।

रहै त बूँद बूँद महँ ठाऊँ। परै त सोई लेइ लेइ नाऊँ॥
रोव रोव तन तासौ ओधा। सूतहि सूत बेधि जिउ सोधा॥
हाड़हि हाड़ सबद सो होई। नस नस माँह उठै धुनि सोई॥
जागा विरह तहाँ का गूद माँसु कै हान?।
हौ पुनि साँचा होइ रहा ओहि के रूप समान॥ ३॥

जोगिहि जबहिं गाढ़ अस परा। महादेव कर आसन टरा॥
वै हँसि पारवती सौं कहा। जानहुँ सूर गहन अस गहा॥
आजु चढ़े गढ़ ऊपर तपा। राजै गहा सूर तब छपा॥
जग देखै गा कौतुक आजू। कीन्ह तपा मारै कहँ साजू॥
पारवती सुनि पाँयन्ह परी। चलि, महेस! देखैं एहि घरी॥
भेस भाँट भाँटिनि कर कीन्हा। औ हनुवंत वीर सँग लीन्हा॥
आए गुपुत होइ देखन लागी। वह मूरति कस सती सभागी॥
कटक असूझ देखि कै राजा गरब करेइ।
दैउ क दसा न देखै, दहुँ का कहँ जय देइ॥ ४॥

आसन लेइ रहा होइ तपा। 'पदमावति पदमावति' जपा॥
मन समाधि तासौं धुनि लागी। जेहि दरसन कारन बैरागी॥
रहा समाइ रूप औ नाऊ। और न सूझ बार जहँ जाऊँ॥
औ महेस कह करौ अदेसू। जेइ यह पंथ दीन्ह उपदेसू॥
पारवती पुनि सत्य सराहा। औ फिरि मुख महेस कर चाहा॥
हिय महेस जौ, कहै महेसी। कित सिर नावहिं ए परदेसी?॥
मरतहु लीन्ह तुम्हारहि नाऊँ। तुम्ह चित किए रहे एहि ठाऊँ॥
मारत ही परदेसी, राखि लेहु एहि वीर।
कोइ काहू कर नाही जो होइ चलै न तीर॥ ५॥
लेइ संदेस सुअटा गा तहाँ। सूरी देहि रतन कहँ जहाँ॥

---

ओधा = लगा, उलझा (सं० आबद्ध); जैसे, सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज, पाय सिख ओधे॥ —तुलसी। गूद = गूदा। हान = हानि। समान = समाया हुआ। (४) गाढ़ = सँकट। देखन लागी = देखने के लिये। (५) करौं अदेसू = आदेश करता हूँ, प्रणाम करता हूँ। चाहा = ताका। महेसी = पार्वती। हिय महेस.....परदेसी = पार्वती कहती है कि जब महेश इनके हृदय में हैं तब ये परदेसी क्यों किसी के सामने सिर झुकाएँ। तीर होइ चलै = साथ दे, पास जाकर सहायता करे।

देखि रतन हीरामन रोवा। राजा जिउ लोगन्ह हठि खोवा॥
देखि रुदन हीरामन केरा। रोवहि सब, राजा मुख हेरा॥
माँगहि सब विधिना सौं रोई। कै उपकार छोड़ावै कोई॥
कहि सँदेस सब विपति सुनाई। विकल बहुत, किछु कहा न जाई॥
काढ़ी प्रान बैठी लेइ हाथा। मरै तौ मरौं, जिओं एक साथा॥
सुनि सँदेस राजा तब हँसा। प्रान प्रान घट घट महँ बसा॥
सुअटा भाँट दसौंधी, भए जिउ पर एक ठाँव।
चलि सो जाइ अब देख तहँ जहँ बैठा रह राव॥ ६॥

राजा रहा दिस्टि कै औधी। रहि न सका तब भाँट दसौधी॥
कहेसि मेलि कै हाथ कटारी। पुरुष न आछे बैठ पेटारी॥
कान्ह कोपि जब मारा कंसू। तब जाना पूरुष कै बंसू॥
गंध्रवसेन जहाँ रिस-बाढ़ा। जाइ भाँट आगे भा ठाढ़ा॥
बोला गंध्रवसेन रिसाई। कस जोगी, कस भाँट असाई॥
ठाढ़ देख सब राजा राऊ। बाएँ हाथ दीन्ह बरम्हाऊ॥
जोगी पानि, आगि तू राजा। आगिहि पानि जूझ नहि छाजा॥
आगि बुझाइ पानि सौं, जूझु न, राजा! बूझु।
लीन्हे खप्पर वार तोहि, भिच्छा देहि, न जूझु॥ ७॥

जोगि न होइ, आहि सो भोजू। जानहु भेद करहु सो खोजू॥
भारत ओइ जूझ जौ ओधा। होहि सहाय आइ सब जोधा॥
महादेव रनघंट बजावा। सुनि कै सबद बरम्हा चलि आवा॥
फनपति फन पतार सौं काढ़ा। अस्टौ कुरी नाग भए ठाढ़ा॥
छप्पन कोटि बसंदर बरा। सवा लाख परबत फरहरा॥
चढ़े अत्र लै कृस्न मुरारी। इंद्रलोक सब लाग गोहारी॥
तैंतिस कोटि देवता साजा। औ छानवे मेघदल गाजा॥
नवौ नाथ चलि आवहि औ चौरासी सिद्ध।
आजु महाभारत चले, गगन गरुड़ औ गिद्ध॥ ८॥

---

(६) हेरा = हेर, ताकते हैं। दसौधी = भाँटो की एक जाति। जिउ पर भए = प्राण देने पर उद्यत हुए। (७) राजा = गंधर्वसेन। औधी = नीची। असाई = अताई (?) बेढंगा। (८) भारत = महाभारत का सा युद्ध। ओधा = ठाना, नाँधा। अस्टौ कुरी = अष्टकुल नाग। बसंदर = वैश्वानर, अग्नि। फरहरा = फड़क उठे। अत्र = अस्त्र। लाग गोहारी = सहायता के लिये दौड़ा। नवोनाथ

अइ अछा को भाँट अभाऊ। बाएँ हाथ देइ बरम्हाऊ॥
को जोगी अस नगरी मोरी। जो देइ सेंधि चढ़ै गढ़ चोरी॥
इंद्र डरै निति नावै माथा। जानत कृस्न सेस जेइ नाथा॥
बरम्हा डरै चतुर-मुख जासू। औ पातार डरै बलि बासू॥
मही हलै औ चलै सुमेरू। चाँद सूर औ गगन कुबेरू॥
मेघ डरै बिजुरी जेहि दीठी। कूरुम डरै धरति जेहि पीठी॥
चहौं आजु मांगौं धरि केसा। और को कीट पतंग नरेसा?॥

बोला भाँट, नरेस सुनु! गरब न छाजा जीउ।
कुंभकरन कै खोपरी बूड़त बाँचा भीउ॥ ९॥

रावन गरब बिरोधा रामू। ओही गरब भएउ संग्रामू॥
तस रावन अस को बरिबंडा। जेहि दस सीस, बीस भुजदंडा॥
सूरुज जेहि कै तपै रसोई। नितिहिं बसंदर धोती धोई॥
सूक सुमंता, ससि मसिआरा। पौन करै निति बार बोहारा॥
जमहि लाइ कै पाटी बाँधा। रहा न दूसर सपने काँधा॥
जो अस बज्र टरै नहिं टारा। सोउ मुवा दुइ तपसी मारा॥
नाती पूत कोटि दस अहा। रोवनहार न कोई रहा॥

ओछ जानि कै काहुहि जिनि कोई गरब करेइ।
ओछे पर जो देउ है जीति-पत्र तेइ देइ॥ १०॥

अब जो भाँट उहाँ हुत आगे। बिनै उठा राजहि रिस लागे॥
भाँट अहै संकर कै कला। राजा सहुँ राखै अरगला॥
भाँट मीचु पै आपु न दीसा। ता कह कौन करै अस रीसा?॥
भएउ रजायसु गंधबसेनी। काहे मीचु के चढ़ै नसेनी?॥
कहा आनि बानी अस पढ़ै?। करसि न बुद्धि भेंट जेहि कढ़ै॥

---

= गोरखपथियों के नौ नाथ। चौरासी सिद्ध = बौद्ध वज्रयान योगियों के चौरासी सिद्ध। (९) अभाऊ = आदर भाव न जाननेवाला, अशिष्ट, बेअदब। बरम्हाऊ = बरम्हाव, आशीर्वाद। बासू = वासुकि। माँगौं धरि केसा = बाल पकड़कर बुला माँगाऊँ। (१०) बरिबंड = बलवत, बली। तपै = पकाता (था)। सूक = शुक्र। सुमंता = मन्त्री। मसिआरा = मसियार, मशालची। बार = द्वार। बोहारा करै = झाड़ू देता था। सपने काँधा = जिसे उसने स्वप्न में भी कुछ समझा। काँधा = माना, स्वीकार किया। ओछ = छोटा। (११) सहुँ = सामने। अरगला = (सं० अर्गल) रोक, टेक, अड़। नसेनी = सीढ़ी। भेंट जेहि कढ़ै = जिससे इनाम निकले।

जाति भाँट कित औगुन लावसि। बाएँ हाथ राज बरम्हावसि॥
भाँट नाँव का मारौं जीवा?। अबहूँ बोलु नाइ कै गीवा॥
तूँ रे भाँट, ए जोगी, तोहि एहि काहे क संग?।
काह छरे अस पावा, काह भएउ चित-भंग॥ ११॥

जौ सत पूछसि गंधव राजा। सत पै कहौं परै नहि गाजा॥
भाँटहि काह मीचु सौं डरना। हाथ कटार, पेट हनि मरना॥
जंबूदीप चित्तउर देसा। चित्रसेन बड़ तहाँ नरेसा॥
रतनसेन यह ताकर बेटा। कुल चौहान जाइ नहिं मेटा॥
खाँड़ै अचल सुमेरु पहारा। टरै न जौं लागै संसारा॥
दान-सुमेरु देत नहि खाँगा। जो ओहि माँग न औरहि माँगा॥
दाहिन हाथ उठाएउँ ताही। और को अस बरम्हावौं जाही?॥
नाँव महापातर मोहिं, तेहिक भिखारी ढीठ।
जौ खरि बात कहे रिस लागै, कहै बसीठ॥ १२॥

ततखन पुनि महेस मन लाजा। भाँट-करा होइ बिनवा राजा॥
गंधवसेन! तुँ राजा महा। हौं महेस-मूरति, सुनु कहा॥
जौ पै बात होइ भलि आगे। कहा चहिय, का भा रिस लागे॥
राजकुँवर यह, होहि न जोगी। सुनि पदमावति भएउ बियोगी॥
जंबूदीप राजघर बेटा। जो है लिखा सो जाइ न मेटा॥
तुम्हरहि सुआ जाइ ओहि आना। औ जेहि कर, बर कै तेइ माना॥
पुनि यह बात सुनी सिव-लोका। करसि बियाह धरम है तोका॥
माँगै भीख खपर लेइ, मुए न छाँड़ै बार।
बूझहु, कनक-कचोरी भीखि देहु, नहिं मार॥ १३॥

ओहट होहु रे भाँट भिखारी। का तू मोहि देहि असि गारी॥
को मोहिं जोग जगत होइ पारा। जा सहुँ हेरौं जाइ पतारा॥
जोगी जती आव जो कोई। सुनतहि त्रासमान भा सोई॥
भीखि लेहिं फिरि माँगहि आगे। ए सब रैनि रहे गढ़ लागे॥

---

बरम्हावसि = आशीर्वाद देता है। काह छरे अस पावा = ऐसा छल करने से तू क्या पाता है? चितभग = विक्षेप। (१२) परै नहिं गाजा = चाहे वज्र ही न पड़े। महापातर = महापात्र (पहले भाँटो की पदवी होती थी)। (१३) भाँट करा = भाँट के समान, भाँट की कला धारण करके। (१४) ओहट = ओट, हट परे।

जस हींछा, चाहौ तिन्ह दीन्हा। नाहिं वेधि सूरी जिउ लीन्हा॥
जेहि अस साध होइ जिउ खोवा। सो पतंग दीपक तस रोवा॥
सुर, नर, मुनि सब गंधव देवा। तेहि को गनै? करहिं निति सेवा॥
मोसौं को सरवरि करै? सुनु, रे झूठे भाँट!
छार होइ जौ चालौं निज हस्तिन कर ठाट॥ १४॥

जोगी घिरि मेले सब पाछे। उरए माल आए रन काछे॥
मंत्रिन्ह कहा, सुनहु हो राजा। देखहु अब जोगिन्ह कर काजा॥
हम जो कहा तुम्ह करहु न जूझू। होत आव दर जगत असूझू॥
खिन इक महं झुरमुट होइ बीता। दर महँ चढ़ि जो रहै सो जीता॥
कै धीरज राजा तब कोपा। अंगद आइ पाँव रन रोपा॥
हस्ति पाँच जो अगमन धाए। तिन्ह अंगद धरि सूँड़ फिराए॥
दीन्ह उड़ाइ सरग कहँ गए। लौटि न फिरे, तहँहि के भए॥
देखत रहे अचंभौ जोगी, हस्ती बहुरि न आय।
जोगिन्ह कर अस जूझब, भूमि न लागत पाय॥ १५॥

कहहि बात, जोगी अब आए। खिनक माहँ चाहत हैं भाए॥
जौ लहि धावहि अस कै खेलहु। हस्तिन केर जूह सब पेलहु॥
जस गज पेलि होहि रन आगे। तस बगमेल करहु सँग लागे॥
हस्ति क जूह आय अगसारी। हनुवँत तबै लँगूर पसारी॥
जैसे सेन बीच रन आई। सबै लपेटि लँगूर चलाई॥
बहुतक टूटि भए नौ खंडा। बहुतक जाइ परे बरम्हंडा॥
बहुतक भँवत सोह अँतरीखा। रहे जो लाख भए ते लीखा॥
बहुतक परे समुद महं, परत न पावा खोज।
जहाँ गरब तहँ पीरा, जहाँ हँसी तहँ रोज॥ १६॥

---

(१५) मेले = जुटे। उरए = उत्साह या चाव से भरे (उराव = उत्साह, हौसला)। माल = मल्ल, पहलवान। दर = दल। झुरमुट = अँधेरा। होइ बीता = हुआ चाहता है। चढ़ि जो रहै = जो अग्रसर होकर बढ़ता है। अगमन = आगे। अचभौ = अद्भुत व्यापार। (१६) अस कै = इस प्रकार। जूह = यूथ। जस = जैसे ही। तस = तैसे ही। बगमेल = सवारों की पंक्ति। अगसारी = अग्रसर, आगे। भँवत = चक्कर खाते हुए। अँतरीख = अंतरिक्ष, आकाश। लीखा = लिख्या, एक मान जो पोस्ते के दाने के बराबर माना जाता है। खोज = पता, निशान। रोज = रोदन, रोना।

पुनि आगे का देखै राजा। ईसर केर घंट रन बाजा॥
सुना संख जो बिस्नू पूरा। आगे हनुवँत केर लँगूरा॥
लीन्हे फिरहिं लोक बरम्हंडा। सरग पतार लाइ मृदमंडा॥
बलि, बासुकि औ इंद्र नरिंदू। राहु, नखत, सूरुज औ चंदू॥
जावत दानव राच्छस पुरे। आठौ बज्र आइ रन जुरे॥
जेहि कर गरब करत हुत राजा। सो सब फिरि बैरी होइ साजा॥
जहवाँ महादेव रन खड़ा। सीस नाइ नृप पायँन्ह परा॥

केहि कारन रिस कीजिए? हौं सेवक औ चेर।
जेहि चाहिय तेहि दीजिय, बारि गोसाईं केर॥१७॥

पुनि महेस अब कीन्ह बसीठी। पहिले करुइ, सोइ अब मीठी॥
तूँ गंधर्व राजा जग पूजा। गुन चौदह, सिख देइ को दूजा?॥
हीरामन जो तुम्हार परेवा। गा चितउर औ कीन्हेसि सेवा॥
तेहि बोलाइ पूछहु वह देसू। दहुँ जोगी, की तहाँ नरेसू॥
हमरे कहत न जौ तुम्ह मानहु। जो वह कहै सोइ परवाँनहु॥
जहाँ बारि, बर आवा ओका। करहि बियाह धरम बड़ तोका॥
जो पहिले मन मानि न काँधै। परखै रतन गाँठि तब बाँधै॥

रतन छपाए ना छपै, पारिख होइ सो परोख।
घालि कसौटी दीजिए कनक-कचोरी भीख॥१८॥

राजै जब हीरामन सुना। गएउ रोस, हिरदय महँ गुना॥
अज्ञा भई बोलावहु सोई। पंडित हुँते धोख नहि होई॥
एकहि कहत सहस्रक धाए। हीरामनहि बेगि लेइ आए॥
खोला आगे आनि मँजूसा। मिला निकसि बहु दिनकर रूसा॥
अस्तुति करत मिला बहु भाँती। राजै सुना हिये भइ साँती॥
जानहुँ जरत आगि जल परा। होइ फुलवार रहस हिय भरा॥
राजै पुनि पूछी हँसि बाता। कस तन पियर, भएउ मुख राता॥

---

(१७) ईसर = महादेव। मृदमंडा = धूल से छा गया। फिरि = विमुख होकर। बारि = कन्या। (१८) बसीठी = दूत-कर्म। पहिले करुइ = जो पहले कड़वी थी। परवाँनहु = प्रमाण मानो। काँधै = अँगीकार करता है, स्वीकार करता है। परोख = परखता है। (१९) रूसा = रुष्ट। साँती = शांति। फुलवार = प्रफुल्ल। रहस = आनंद।

चतुर वेद तुम पंडित, पढ़े शास्त्र औ वेद।
कहाँ चढ़ाएहु जोगिन्ह, आइ कीन्ह गढ़ भेद ॥१९॥

हीरामन रसना रस खोला। दै असीस, कै अस्तुति बोला॥
इंद्रराज राजेसर महा। सुनि होइ रिस, किछु जाइ न कहा॥
पै जो बात होइ भलि आगे। सेवक निडर कहै रिस लागे॥
सुवा सुफल अमृत पै खोजा। होहु न राजा विक्रम भोजा॥
हौं सेवक, तुम आदि गोसाईं। सेवा करौं जिऔं जब ताईं॥
जेइ जिउ दीन्ह देखावा देसू। सो पै जिउ महँ बसै, नरेसू!॥
जो ओहि सँवरै 'एकै तुही'। सोई पंखि जगत रतमुही॥
नैन बैन औ सरवन सब ही तोर प्रसाद।
सेवा मोरि इहै निति बोलौं आसिरवाद ॥२०॥

जो अस सेवक जेइ तप कसा। तेहि क जीभ पै अमृत बसा॥
तेहि सेवक के करमहिं दोषू। सेवा करत करै पति रोषू॥
औ जेहि दोष निदोषहि लागा। सेवक डरा, जीउ लेइ भागा॥
जो पंछी कहवाँ थिर रहना। ताकै जहाँ जाइ भए डहना॥
सप्त दीप फिरि देखेउँ, राजा। जंबूदीप जाइ तब बाजा॥
तहँ चितउरगढ़ देखेउँ ऊँचा। ऊँच राज सरि तोहिं पहूँचा॥
रतनसेन यह तहाँ नरेसू। एहि आनेउँ जोगी के भेसू॥
सुआ सुफल लेइ आएउँ, तेहि गुन ते मुख रात।
कया पीत सो तेहि डर, सँवरौं विकम बात ॥२१॥

---

(२०) होहु न...भोजा = तुम विक्रम के समान भूल न करो। (कहानी प्रसिद्ध है कि एक सूए ने राजा विक्रम को दो अमृतफल यह कहकर दिए कि जो यह फल खायगा वह बुड्ढे से जवान हो जायगा। राजा ने फल रख छोड़े। सयोग से एक फल मे साँप के दाँत लग गए। वही फल परीक्षा के लिए एक कुत्ते को खिलाया गया और वह मर गया। राजा ने क्रुद्ध होकर सूए को मरवा डाला और बचे हुए दूसरे फल को बगीचे मे फेंकवा दिया। उस फल को एक बुड्ढे माली ने उठाकर खा लिया और वह जवान हो गया। इस पर विक्रम बहुत पछताया।) रतमुही = लाल मुँहवाली। (२१) तप कसा = तप मे शरीर को कसा। पति = स्वामी। निदोषहि = बिना दोष के। बाजा = पहुँचा। सरि = बराबरी। सँवरौं विक्रम बात = विक्रम के समान जो राजा गंधर्वसेन है उसके कोप का स्मरण करता हूँ; ऊपर कह आया है कि "होहु न राजा बिक्रम भोजा"।

पहिले भएउ भाँट सत भाखी। पुनि बोला हीरामन साखी॥
राजहि भा निसचय, मन माना। बाँधा रतन छोरि कै आना॥
कुल पूछा, चौहान कुलीना। रतन न बाँधे होइ मलीना॥
हीरा दसन पान-रँग पाके। बिहँसत सबै बीजु बर ताके॥
मुद्रा स्रवन बिनय सौं चाँपा। राजपना उघरा सब झाँपा॥
आना काटर एक तुखारू। कहा सो फेरौ, भा असवारू॥
फेरा तुरय, छतीसौ कुरी। सबै सराहा सिंघलपुरी॥

कुँवर बतीसौ लच्छना, सहस-किरिन जस भान।
काह कसौटी कसिए? कंचन बारह-बान॥ २२॥

देखि कुँवर बर कंचन जोगू। 'अस्ति अस्ति' बोला सब लोगू॥
मिला सो बंस अंस उजियारा। भा बरोक तब तिलक सँवारा॥
अनिरुध कहँ जो लिखा जयमारा। को मेटै? बानासुर हारा॥
आजु मिली अनिरुध कहँ ऊखा। देव अनंद, दैत सिर दूखा॥
सरग सूर, भुइँ सरवर केवा। बनखँड भवर होइ रसलेवा॥
पच्छिउँ कर बर पुरुब क बारी। जोरी लिखी न होइ निनारी॥
मानुष साज लाख मन साजा। होइ सोइ जो बिधि उपराजा॥

गए जो बाजन बाजत जिन्ह मारन रन माहि।
फिर बाजन तेइ बाजे मंगलचारि उनाहि॥ २३॥

बोल गोसाईं कर मैं माना। काह सो जुगुति उतर कहँ आना?॥
माना बोल, हरष जिउ बाढ़ा। औ बरोक भा, टीका काढ़ा॥
दूवौ मिले, मनावा भला। सुपुरुष आपु आपु कहँ चला॥
लीन्ह उतारि जाहि हित जोगू। जो तप करै सो पावै भोगू॥
वह मन चित जो एकै अहा। मारै लीन्ह न दूसर कहा॥

---

(२२) साखी = साक्षी। मुद्रा स्रवन...चाँपा = विनयपूर्वक कान की मुद्रा को पकड़ा। चाँपा = दबाया, थामा। झाँपा = ढका हुआ। काटर = कट्टर। तुखारू = घोड़ा। तुरय = घोड़ा। छतीसौ कुरी = छत्तीसो कुल के क्षत्रिय। (२३) 'अस्ति अस्ति' = हाँ हाँ, वाह वाह। बरोक = बरच्छा, फलदान। जयमार = जयमाल। केवा = कमल (सं० कुव)। उनाहि = उन्हीं के (मंगलचार के लिये)। (२४) काह सो जुगुति...आना = दूसरे उत्तर के लिये क्या युक्ति है? लीन्ह उतारि...जोगू = रत्नसेन जिसके लिये ऐसा योग साध रहा था उसे स्वर्ग से उतार लाया। मारै लीन्ह = मार

जो अस कोई जिउ पर छेवा। देवता आइ करहिं निति सेवा॥
दिन दस जीवन जो दुख देखा। भा जुग जुग सुख, जाइ न लेखा॥
रतनसेन सँग बरनौं पदमावति क बियाह।
मंदिर बेगि सँवारा, मादर तूर उछाह॥ २४॥

---

ही डाला चाहते थे (अवधी)। न दूसर कहा=पर दूसरी बात मुँह से न निकली। छेवा=(दुःख) झेला, डाला (स० क्षेपण) अथवा खेला।

## (२६) रत्नसेन-पद्मावती-विवाह-खंड

लगन धरा औ रचा वियाहू। सिघल नेवत फिरा सब काहू॥
बाजन बाजे कोटि पचासा। भा अनंद सगरौ कैलासा॥
जेहि दिन कहँ निति देव मनावा। सोइ दिवस पदमावति पावा॥
चाँद सुरुज मनि माथे भागू। औ गावहिं सब नखत सोहागू॥
रचि रचि मानिक मौंड़व छावा। औ भुइँ रात बिछाव बिछावा॥
चंदन खाँभ रचे बहु भाँती। मानिक-दिया बरहि दिन राती॥
घर घर बंदन रचे दुवारा। जावत नगर गीत झनकारा॥
हाट बाट सब सिघल जहँ देखहु तहं रात।
धनि रानी पदमावति जेहिकै ऐसि बरात॥ १॥
रतनसेन कहँ कापड़ आए। हीरा मोति पदारथ लाए॥
कुवर सहस दस आइ सभागे। बिनय करहि राजा सग लागे॥
जाहि लागि तन साधेहु जोगू। लेहु राज औ मानहु भोगू॥
मंजन करहु, भभूत उतारहु। करि अस्नान चित्र सब सारहु॥
काढ़हु मुद्रा फटिक अभाऊ। पहिरहु कुंडल कनक जराऊ॥
छोरहु जटा, फुलायल लेहू। झारहु केस, मकुट सिर देहू॥
काढ़हु कंथा चिरकुट-लावा। पहिरहु राता दगल सोहावा॥
पाँवरि तजहु, देहु पग पैरि जो बाँक तुखार।
बाँधि मौर, सिर छत्र देइ, वेगि होहु असवार॥ २॥
साजा राजा, बाजन बाजे। मदन सहाय दुवौ दर गाजे॥
औ राता सोने रथ साजा। भए बरात गोहने सब राजा॥
बाजत गाजत भा असवारा। सब सिघल नइ कीन्ह जोहारा॥

---

(१) सोहागू = सौभाग्य या विवाह के गीत। रात = लाल। बिछाव = बिछावन। बदन = बंदनवार। (२) लाए = लगाए हुए। चित्र सारहु = चंदन केसर की खौर बनाओ। अभाऊ = न भानेवाले, न सोहनेवाले। फुलायल = फुलेल। दगल = दगला, ढीला अंगरखा। पाँवरि—खडाऊँ। (३) द = दल। गोहने = साथ में। नइ = झुककर।

चहुँ दिसि मसियर नखत तराईं। सूरुज चढ़ा चाँद के ताईं॥
सब दिन तपे जैस हिय माहाँ। तैसि राति पाई सुख-छाहाँ॥
ऊपर रात छत्र तस छावा। इंद्रलोक सब देखै आवा॥
आजु इंद्र अछरी सौं मिला। सब कविलास होहि सोहिला॥

धरती सरग चहूँ दिसि पूरि रहे मसियार।
बाजत आवै मँदिर जहे होइ मंगलाचार॥ ३॥

पदमावति धौराहर चढ़ी। दहुँ कस रवि जेहि कहँ ससि गढ़ी॥
देखि बरात सखिन्ह सौं कहा। इन्ह महँ सो जोगी को अहा?॥
केइ सो जोग लै ओर निबाहा। भएउ सूर, चढ़ि चाँद बियाहा॥
कौन सिद्ध सो ऐस अकेला। जेइ सिर लाइ पेम सों खेला?॥
का सौं पिता बात अस हारी। उतर न दीन्ह, दीन्ह तेहि बारी*॥
का कहँ दैउ ऐस जिउ दीन्हा। जेइ जयमार जीति रन लीन्हा॥
धन्नि पुरुष अस नवै न नाए। औ सुपुरुष होइ देस पराए॥

को बरिवंड बीर अस, मोहि देखै कर चाव।
पुनि जाइहि जनवासहि, सखि! मोहिं बेगि देखाव॥ ४॥

सखी देखावहि चमकै बाहू। तू जस चाँद, सुरुज तोर नाहू॥
छपा न रहै सूर-परगासू। देखि कँवल मन होइ बिगासू॥
ऊ उजियार जगत उपराही। जग उजियार, सो तेहि परछाही॥
जस रवि, देखु, उठै परभाता। उठा छत्र तस बीच बराता॥
ओही माँझ भा दूलह सोई। और बरात संग सब कोई॥
सहसौ कला रूप बिधि गढ़ा। सोने के रथ आवै चढ़ा॥
मनि माथे, दरसन उजियारा। सौह निरखि नहिं जाइ निहारा॥

रूपवंत जस दरपन, धनि तू जाकर कंत।
चाहिय जैस मनोहर मिला सो मन-भावंत॥ ५॥

देखा चाँद सूर जस साजा। अस्टौ भाव मदन जनु गाजा॥
हुलसे नैन दरस मद माते। हुलसे अधर रंग-रस-राते॥

---

मसियर = मशाल। सोहिला = सोहला या सोहर नाम के गीत। मसियार = मशाल। (४) जेहि कहँ ससि गढी = जिसके लिये चंद्रमा (पद्मावती) बनाई गई। जयमार = जयमाल। (५) नाहु = नाथ, पति। निरखि = दृष्टि गड़ाकर। (६) गाजा = गरजा। अस्टौ भाव = आठो भावो से; पाठांतर—"सहसौ भाव"।

* पाठांतर—कासौं पिता बैन अस दीन्हा। महादेव जेहि किरपा कीन्हा॥

हुलसा वदन ओप रवि पाई। हुलसि हिया कंचुकि न समाई॥
हुलसे कुच कसनी-बेद टूटै। हुलसी भुजा, वलय कर फूटे॥
हुलसी लंक कि रावन राजू। राम लखन दर साजहि आजू॥
आजु चाँद-घर आवा सूरू। आजु सिंगार होइ सब चूरू॥
आजु कटक जोरा है कामू। आजु विरह सौ होइ संग्रामू॥

अंग अंग सब हुलसे, कोइ कतहूँ न समाइ।
ठावहिं ठाँव विमोही, गइ मुरछा तनु आइ॥ ६॥

सखी सँभारि पियावहि पानी। राजकुँवरि काहे कुँभिलानी॥
हम तौ तोहि देखावा पीऊ। तू मुरझानि, कैस भा जीऊ॥
सुनहु सखी सब कहहि वियाहू। मो कहँ भएउ चाँद कर राहू॥
तुम जानहु आवै पिउ साजा। यह सब सिर पर धम धम बाजा॥
जेते बराती औ असवारा। आए सबै चलावनहारा॥
सो आगम हौ देखति झखी। रहन न आपन देखौ, सखी!॥
होइ वियाह पुनि होइहि गवना। गवनब तहाँ बहुरि नहिं अवना॥

अब यह मिलन कहाँ होइ? परा बिछोहा टूटि।
तैसि गाँठि पिउ जोरब जनम न होइहि छूटि॥ ७॥

आइ बजावति बैठि बराता। पान, फूल, सेदुर सब राता॥
जहँ सोने कर चित्तर-सारी। लेइ बरात सब तहाँ उतारी॥
माँझ सिंघासन पाट सवारा। दूलह आनि तहाँ बैसारा॥
कनक-खंभ लागे चहुँ पाँती। मानिक-दिया बरहि दिन राती॥
भएउ अचल ध्रुव जोगि पखेरू। फूलि बैठ थिर जैस सुमेरू॥
आजु देउ हौ कीन्ह सभागा। जत दुख कीन्ह नेग सब लागा॥
आजु सूर ससि के घर आवा। ससि सूरहि जनु होइ मेरावा॥

आजु इंद्र होइ आएउँ सजि बरात कबिलास।
आजु मिली मोहि अपछरा, पूजी मन कै आस॥ ८॥

होइ लाग जेवनार-पसारा। कनक-पत्र पसरे पनवारा॥

---

कसनी = अँगिया। लंक = कटि और लंका। रावन = (१) रमण करनेवाला। (२) रावण। झँखी = झीखकर, पछताकर। (८) चित्तर-सारी = चित्रशाला। जोगि पखेरू = पक्षी के समान एक स्थान पर जमकर न रहनेवाला योगी। फूलि = आनंद से प्रफुल्ल होकर। नेग लागा = (मुहा०) सार्थक हुआ, सफल हुआ, हीले लगा। (९) पनवार = पत्तल।

सोन-थार मनि मानिक जरे। राय रंक के आगे धरे॥
रतन-जड़ाऊ खोरा खोरी। जन जन आगे दस दस जोरी॥
गडुवन हीर पदारथ लागे। देखि बिमोहे पुरप सभागे॥
जानहुँ नखत करहिं उजियारा। छपि गए दीपक औ मसियारा॥
गइ मिलि चाँद मुरुज कै करा। भा उदोत तैसे निरमरा॥
जेहि मानुप कहँ जोति न होती। तेहि भइ जोति देखि वह जोती॥

पाँति पाँति सब बैठे, भाँति भाँति जेवनार।
कनक-पत्र दोनन्ह तर, कनक-पत्र पनवार॥ ९॥

पहिले भात परोसे आना। जनहुँ सुबास कपूर बसाना॥
झालर माँड़े आए पोई। देखत उजर पाग जस धोई॥
लुचुई और सोहारी धरी। एक तौ ताती औ सुठि कोंवरी॥
खँडरा बचका औ डुभकौरी। बरी एकोतर सौ, कोहँड़ौरी॥
पुनि सँधाने आए बसाँधे। दूध दही के मुरंडा बाँधे॥
औ छप्पन परकार जो आए। नहिं अस देख, न कबहूँ खाए॥
पुनि जाउरि पछियाउरि आई। घिरित खाँड़ कै बनी मिठाई॥

जेंवत अधिक सुबासित, मुँह महँ परत बिलाइ।
सहस स्वाद सो पावै एक कौर जो खाइ॥ १०॥

जेंवन आवा, बीन न बाजा। बिनु बाजन नहिं जेवै राजा॥
सब कुँवरन्ह पुनि खैचा हाथू। ठाकुर जेंव तौ जेंवैं साथू॥
बिनय करहि पंडित बिद्वाना। काहे नहि जेवहि जजमाना?॥
यह कबिलास इंद्र कर बासू। जहाँ न अन्न न माछरि माँसू॥

---

खोरा = कटोरा। मसियार = मशाल। करा = कला। (१०) झालर = एक प्रकार का पकवान, झलरा। माँड़े = एक प्रकार की चपाती। पाग = पगड़ी। लुचुई = मैदे की बहुत महीन पूरी। सोहारी = पूरी। कोंवरी = मुलायम। खँडरा = फेंटे हुए बेसन के, भाप पर पके हुए, चौखूँटे टुकड़े जो रसे या दही में भिगोए जाते हैं; कतरा रसाज। बचका = बेसन और मैदे को एक मे फेंटकर जलेबी के समान टपका घी मे छानते है, फिर दूध मे भिगोकर रख देते हैं। एकोतर सौ = एकोत्तर शत, एक सौ एक। कोहँड़ौरी = पेठे की बरी। सँधाने = अचार। बसाँधे = सुगंधित। मुरंडा = भुने गेहूँ और गुड़ के लड्डू; यहाँ लड्डू। जाउरि = खीर। पछियाउरि = एक प्रकार का सिखरन या शरबत।

पान-फूल-आसी सब कोई। तुम्ह कारन यह कीन्हि रसोई॥
भूख, तौ जनु अमृत है सूखा। धूप, तौ सीअर नीवी रूखा॥
नींद, तौ भुइँ जनु सेज सपेती। छाँटहुँ का चतुराई एती?॥

कौन काज केहि कारन बिकल भएउ जजमान।
होइ रजायसु सोई वेगि देहि हम आन॥११॥

तुम पंडित जानहुँ सब भेदू। पहिले नाद भएउ, तब वेदू॥
आदि पिता जो विधि अवतारा। नाद संग जिउ ज्ञान सँचारा॥
सो तुम वरजि नीक का कीन्हा?। जेवन संग भोग विधि दीन्हा॥
नैन, रसन, नासिक, दुइ स्रवना। इन चारहु संग जेंवै अवना॥
जेवन देखा नैन सिराने। जीभहि स्वाद भुगुति रस जाने॥
नासिक सबै वासना पाई। स्रवनहि काह करत पहुनाई?॥
तेहि कर होइ नाद सौं पोखा। तब चारिहु कर होइ सँतोखा॥

औ सो सुनहि सबद एक जाहि परा किछु सूझि।
पंडित! नाद सुनै कहँ वरजेहु तुम का बूझि॥१२॥

राजा! उतर सुनहु अब सोई। महि डोलै जौ वेद न होई॥
नाद, वेद, मद, पैंड़ जो चारी। काया महँ ते, लेहु विचारी॥
नाद हिये, मद उपनै काया। जहँ मद तहाँ पैंड़ नहि छाया॥
होइ उनमद जूझा सो करै। जो न वेद-आँकुस सिर धरै॥
जोगी होइ नाद सो सुना। जेहि सुनि काय जरै चौगुना॥
कया जो परम तंत मन लावा। घूम माति, सुनि और न भावा॥
गए जो धरमपंथ होइ राजा। तिन कर पुनि जो सुनै तौ छाजा॥

जस मद पिए घूम कोइ नाद सुने पै घूम।
तेहिते वरजे नीक है, चढ़े रहसि कै दूम॥१३॥

---

(११) भूख.....सूखा = यदि भूख है तो रूखा-सूखा भी मानो अमृत है। नाद = शब्दब्रह्म, अनाहत नाद। (१२) सिरान = ठंढे हुए। पोख = पोषण। (१३) मद = प्रेम-मद। पैंड़ = ईश्वर की ओर ले जानेवाला मार्ग, मोक्ष का मार्ग। (बौद्धों का चौथा सत्य 'मार्ग' है। उन्हीं के यहाँ से वज्रयान योगियों के बीच होता हुआ शायद यह सूफ़ियों तक पहुँचता है।) उनमद = उन्मत्त। तिनकर पुनि...छाजा = राजधर्म में रत जो राजा हो गए हैं उनका पुण्य तू सुने तो शोभा देता है। चढ़े...दूम = मद चढ़ने पर उमग में आकर झूमने लगता है।

भइ जेंवनार, फिरा खँड़वानी। फिरा अरगजा कुँहकुँह-पानी॥
फिरा पान, बहुरा सब कोई। लाग बियाह-चार सब होई॥
माँड़ौं सोन क गगन सँवारा। बंदनवार लाग सब बारा॥
साजा पाट छत्र कै छाँहा। रतन-चौक पूरा तेहि माहाँ॥
कंचन-कलस नीर भरि धरा। इंद्र पास आनी अपछरा॥
गाँठि दुलह दुलहिन कै जोरी। दुऔ जगत जो जाइ न छोरी॥
बेद पढ़ैं पंडित तेहि ठाऊँ। कन्या तुला राशि लेइ नाऊँ॥

चाँद सुरुज दुऔ निरमल, दुऔ सँजोग अनूप।
सुरुज चाँद सौ भूला, चाँद सुरुज के रूप॥१४॥

दुऔ नाँव लै गावहि बारा। करहिं सो पदमिनि मंगल चारा॥
चाँद के हाथ दीन्ह जयमाला। चाँद आनि सूरुज गिउ घाला॥
सूरुज लीन्ह, चाँद पहिराई। हार नखत-तरइन्ह स्यो पाई॥
पुनि धनि भरि अंजुलि जल लीन्हा। जोवन जनम कंत कहँ दीन्हा॥
कंत लीन्ह, दीन्हा धनि हाथा। जोरी गाँठि दुऔ एक साथा॥
चाँद सुरुज सत भाँवरि लेहीं। नखत मोति नेवछावरि देहीं॥
फिरहि दुऔ सत फेर, घुटै कै। सातहु फेर गाँठि सो एकै॥

भइ भाँवरि, नेवछावरि, राज चार सब कीन्ह।
दायज कहौ कहाँ लगि? लिखि न जाइ जत दीन्ह॥१५॥

रतनसेन जब दायज पावा। गंधबसेन आइ सिर नावा॥
मानुस चित्त आनु किछु कोई। करै गोसाइँ सोइ पै होई॥
अब तुम्ह सिंघलदीप-गोसाईं। हम सेवक अहहीं सेवकाई॥
जस तुम्हार चितउरगढ़ देसू। तस तुम्ह इहाँ हमार नरेसू॥
जंबूदीप दूरि का काजू?। सिंघलदीप करहु अब राजू॥
रतनसेन बिनवा कर जोरी। अस्तुति-जोग जीभ कहँ मोरी॥
तुम्ह गोसाइँ जेइ छार छुड़ाई। कै मानुस अब दीन्हि बड़ाई॥

जौ तुम्ह दीन्ह तौ पावा जिवन जनम सुखभोग।
नातरु खेह पायँकै, हौं जोगी केहि जोग॥१६॥

---

(१४) खँड़वानी = शरबत। (१५) हार नखत...सो पाई = हार क्या पाया मानो चंद्रमा के साथ तारो को भी पाया। स्यो = साथ। घुटै कै गाँठ को दृढ़ करके; जैसे, आन गाँठि घुटि जाय त्यों मान गाँठि छुटि जाय।—बिहारी। (१६) आनु = लाए। नातरु = नहीं तो।

धौराहर पर दीन्हा बासू। सात खंड जहवाँ कविलासू॥
सखी सहसदस सेवा पाई। जनहुँ चाँद सँग नखत तराई॥
होइ मंडल ससि के चहुँ पासा। ससि सूरहि लेइ चढ़ी अकासा॥
चलु सूरुज दिन अथवै जहाँ। ससि निरमल तू पावसि तहाँ॥
गंधवसेन धौरहर कीन्हा। दीन्ह न राजहि, जोगिहि दीन्हा॥
मिलीं जाइ ससि के चहुँ पाहाँ। सूर न चाँपै पावै छाँहा॥
अब जोगी गुरु पावा सोई। उतरा जोग, भसम गा धोई॥

सात खंड धौराहर, सात रंग नग लाग।
देखत गा कविलासहि, दिस्टि-पाप सब भाग॥१७॥

सात खंड सातौ कविलासा। का बरनौ जग ऊपर बासा॥
हीरा ईंट कपूर गिलावा। मलयागिरि चंदन सब लावा॥
चूना कीन्ह औटि गजमोती। मोतिहु चाहि अधिक तेहि जोती॥
बिसुकरमै सो हाथ सँवारा। सात खंड सातहि चौपारा॥
अति निरमल नहि जाइ बिसेखा। जस दरपन महँ दरसन देखा॥
भुइँ गच जानहु समुद हिलोरा। कनकखंभ जनु रचा हिडोरा॥
रतन पदारथ होइ उजियारा। भूले दीपक औ मसियारा॥

तहँ अछरी पदमावति रतनसेन के पास।
सातौ सरग हाथ जनु औ सातौ कबिलास॥ १८॥

पुनि तहँ रतनसेन पगु धारा। जहाँ नौ रतन सेज सँवारा॥
पुतरी गढ़ि गढ़ि खंभन काढ़ी। जनु सजीव सेवा सब ठाढ़ी॥
काहू हाथ चँदन कै खोरी। कोइ सेंदुर, कोइ गहे सिंधोरी॥
कोइ कुहँकुहँ केसर लिहे रहै। लावै अंग रहसि जनु चहै॥
कोई लिहे कुमकुमा चोवा। धनि कब चहै, ठाढ़ि मुख जोवा॥
कोइ बीरा, कोइ लीन्हे बीरी। कोइ परिमल अति सुगँध-समीरी॥
काहू हाथ कस्तूरी भेदू। कोइ किछु लिहे, लागु तस भेदू॥

पाँतिहि पाँति चहूँ दिसि सब सोधे कै हाट।
माँझ रचा इंद्रासन, पदमावति कहँ पाट॥ १९॥

---

(१७) चहुँ पाहाँ = चारो ओर। चाँपै पावै = दबाने पाता है। (१८) गिलावा = गारा। गच = फर्श। भूले = खो से गए। मसियार = मशाल। अछरी = अप्सरा। (१९) खोरी = कटोरी। सिंधोरी = काठ की सुंदर डिबिया जिसमे स्त्रियाँ ईंगुर या सिंदूर रखती हैं। बीरी = दाँत रँगने का मंजन। परिमल = पुष्पगंध, इत्र। सुगँध-समीरी = सुगंध वायुवाला। सोंधे = गंधद्रव्य।

## (२७) पद्मावती-रत्नसेन-भेंट-खंड

सात खंड ऊपर कविलासू। तहवाँ नारि-सेज सुख-बासू॥
चारि खंभ चारिहु दिसि खरे। हीरा - रतन - पदारथ - जरे॥
मानिक दिया जरावा मोती। होइ उजियार रहा तेहि जोती॥
ऊपर राता चँदवा छावा। औ भुइँ सुरँग बिछाव बिछावा॥
तेहि महँ पालक सेज सो डासी। कीन्ह बिछावन फूलन्ह बासी॥
चहुँ दिसि गेडुवा औ गलसूई। काँची पाट भरी धुनि रूई॥
बिधि सो सेज रची केहि जोगू। को तहँ पौढ़ि मान रस भोगू?॥

अति सुकुवाँरि सेज सो डासी, छुवै न पारै कोइ।
देखत नवै खिनहि खिन, पाँव धरत कसि होइ॥ १॥

राजै तपत सेज जो पाई। गाँठि छोरि धनि सखिन्ह छपाई॥
कहै, कुँवर! हमरे अस चारू। आज कुँवरि कर करब सिंगारू॥
हरदि उतारि चढ़ाउब रँगू। तब निसि चाँद सुरुज सौं संगू॥
जस चातक-मुख बूँद सेवाती। राजा-चख जोहत तेहि भाँती॥
जोगि छरा जनु अछरी साथा। जोग हाथ कर भएउ बेहाथा॥
वै चातुरि कर लै अपसई। मंत्र अमोल छीनि लेइ गई॥
बैठेउ खोइ जरी औ बूटी। लाभ न पाव, मूरि भइ टूटी॥

खाइ रहा ठग-लाडू, तंत मंत बुधि खोइ।
भा धौराहर बनखँड, ना हँसि आव, न रोइ॥ २॥

---

(१) पालक = पलग। डासी = बिछाई। गेडुवा = तकिया। गलसूई = गाल के नीचे रखने का छोटा तकिया। काँची = गोटा पट्टा। पौढ़ि = लेटकर। सुकुवाँरि = कोमल। (२) तपत = तप करते हुए। चारू = चार, रीति, चाल। हरदि उतारि = ब्याह के लग्न मे शरीर मे जो हलदी लगती है उसे छुड़ाकर। रंगू = अगराग। छरा = ठगा गया, खोया। कर = हाथ से। टूटि भइ = घाटा हुआ, हानि हुई। ठग-लाडू = विष या नशा मिला हुआ लड्डू जिसे पथिकों को खिलाकर ठग लोग बेहोश करते थे।

अस तप करत गएउ दिन भारी। चारि पहर बीते जुग चारी॥
परी साँझ, पुनि सखी सो आई। चाँद रहा, उपनी जो तराई॥
पूँछहि "गुरू कहाँ, रे चेला!। बिनु ससि रे कस सूर अकेला?॥
"धातु कमाय सिखे तै जोगी। अब कस भा निरधातु वियोगी?॥
"कहाँ सो खोएहु बिरवा लोना। जेहि तें होइ रूप औ सोना॥
"का हरतार पार नहि पावा। गंधक काहे कुरकुटा खावा॥
"कहाँ छपाए चाँद हमारा?। जेहि बिनु रैनि जगत अँधियारा"॥

नैन कौड़िया, हिय समुद, गुरू सो तेहि महँ जोति।
मन मरजिया न होइ परे हाथ न आवै मोति॥ ३॥

का पूछहु तुम धातु, निछोही!। जो गुरु कीन्ह अँतरपट ओही॥
सिधि-गुटिका अब मो सँग कहा। भएउँ रँग, सत हिये न रहा॥
सो न रूप जासौ दुख खोलौ। गएउ भरोस तहाँ का बोलौ?॥
जहँ लोना बिरवा कै जाती। कहि कै सँदेस आन को पाती?॥
कै जो पार हरतार करीजै। गंधक देखि अबहि जिउ दीजै॥
तुम्ह जोरा कै सूर मयंकू। पुनि बिछोहि सो लीन्ह कलंकू॥
जो एहि घरी मिलावै मोहीं। सीस देउँ बलिहारी ओही॥

होइ अबरक ईंगुर भया, फेरि अगिनि महँ दीन्ह।
काया पीतर होइ कनक, जौ तुम चाहहु कीन्ह॥ ४॥

का बसाइ जौ गुरु अस बूझा। चकाबूह अभिमनु ज्यौं जूझा॥
बिष जो दीन्ह अमृत देखराई। तेहि रे निछोही को पतियाई?॥
मरै सोइ जो होइ निगूना। पीर न जानै बिरह बिहूना॥

---

(३) चाँद रहा...तराई = पद्मिनी तो रह गई, केवल उसकी सखियाँ दिखाई पड़ीं। निरधातु = निस्सार। बिरवा लोना = (क) अमलोनी नाम की घास जिसे रसायनी धातु सिद्ध करने के काम में लाते हैं। (ख) सुंदर वल्ली, पद्मावती। रूप = (क) रूपा। (ख) चाँदी। कौड़िया = कौड़िल्ला पक्षी जो मछली पकड़ने के लिये पानी के ऊपर मँडराता है। (४) निछोही = निष्ठुर। जो... ओही = जो उस गुरु (पद्मावती) को तुमने छिपा दिया है। रँग = रँगा। जोरा कै = (क) एक बार जोड़ी मिलाकर। (ख) तोले भर रँगे और तोले भर चाँदी का दो तोले चाँदी बनाना रसायनियों की बोली में जोड़ा करना कहलाता है। (५) का बसाइ = क्या वश चल सकता है?

पार न पाव जो गंधक पीया। सो हत्यार* कहौ किमि जीया॥
सिद्धि-गुटीका जा पहँ नाहीं। कौन धातु पूछहु तेहि पाहीं॥
अब तेहि बाज राँग भा डोलौं। होइ सार तौ बर कै बोलौं॥
अबरक कै पुनि ईंगुर कीन्हा। सो तन फेरि अगिनि महँ दीन्हा॥
मिलि जो पीतम बिछुरहि काया अगिनि जराइ।
की तेहि मिले तन तप बुझै, की अब मुए बुझाइ॥ ५॥
सुनि कै बात सखी सब हँसी। जनहुँ रैनि तरई परगसी॥
अब सो चाँद गगन महँ छपा। लालच कै कित पावसि तपा?॥
हमहुँ न जानहि दहुँ सो कहाँ। करब खोज औ बिनउब तहाँ॥
औ अस कहब आहि परदेसी। करहि मया; हत्या जनि लेसी॥
पीर तुम्हारि सुनत भा छोहू। दैउ मनाउ, होइ अस ओहू॥
तू जोगी फिरि तपि करु जोगू। तो कहँ कौन राजसुख-भोगू॥
वह रानी जहवाँ सुख राजू। बारह अभरन करै सो साजू॥
जोगी दिढ़ आसन करै अहथिर धरि मन ठाव।
जो न सुना तौ अब सुनहि बारह अभरन नाव†॥ ६॥
प्रथमै मज्जन होइ सरीरू। पुनि पहिरै तन चंदन चीरू॥
साजि माँग सिर सेंदुर सारै। पुनि लिलाट रचि तिलक सँवारै॥
पुनि अंजन दुहुँ नैनन्ह करै। औ कुंडल कानन्ह महँ पहिरै॥
पुनि नासिक भल फूल अमोला। पुनि राता मुख खाइ तमोला॥
गिउ अभरन पहिरै जहँ ताईं। औ पहिरै कर कँगन कलाई॥
कटि छुद्रावलि अभरन पूरा। पायन्ह पहिरै पायल चूरा॥

---

* पाठातर—हरतार।

बाज = बिना। बर = बल। (६) तपा = तपस्वी। जनि लेसी = न ले। दैउ मनाउ...ओहु = ईश्वर को मना कि उसे (पद्मावती की) भी वैसी ही दया हो जैसी हम लोगो को तुझ पर आ रही है।

†ग्रंथो में जो बारह आभरण गिनाए गए हैं वे ये हैं—नूपुर, किंकिणी, वलय, अँगुठी, ककण, अंगद, हार, कठश्री, बेसर, खूँट या बिरिया, टीका, सीसफूल। आभरणो के चार भेद कहे गए हैं—आवेध्य, बंधनीय, क्षेप्य, (जैसे, कड़ा, अँगूठी) और आरोप्य (जैसे, हार)। जायसी ने सोलह शृंगार और बारह आभरण की बाते लेकर एक मे गड़बड़ कर दिया है।

(७) फूल = नाक मे पहनने की लौग। छुद्रावलि = क्षुद्रघंटिका, करधनी। चूरा = कड़ा।

बारह अभरन अहैं बखाने। ते पहिरै बरहौ असथाने॥
पुनि सोरहौ सिंगार जस चारिहु चौक कुलीन।
दीरघ चारि, चारि लघु, चारि सुभर चौ खीन॥ ७॥

पदमावति जो सँवारै लीन्हा। पूनिउँ राति दैउ ससि कीन्हा॥
करि मज्जन तन कीन्ह नहानू। पहिरे चीर, गएउ छपि भानू॥
रचि पत्रावलि, माँग सदूरू। भरे मोति औ मानिक चूरू॥
चंदन चीर पहिर बहु भाँती। मेघघटा जानहुँ बग-पाँती॥
गूँथि जो रतन माँग बैसारा। जानहुँ गगन टूटि निसि तारा॥
तिलक लिलाट धरा तस दीठा। जनहुँ दुइज पर सुहल बईठा॥
कानन्ह कुंडल खूँट औ खूँटी। जानहुँ परी कचपची टूटी॥

पहिरि जराऊ ठाढ़ि भइ, कहि न जाइ तस भाव।
मानहुँ दरपन गगन भा तेहि ससि तार देखाव॥ ८॥

बाँक नैन औ अंजन-रेखा। खंजन मनहुँ सरद ऋतु देखा॥
जस जस हेर, फेर चख मोरी। लरै सरद महँ खंजन-जोरी॥
भौहैं धनुक धनुक पै हारा। नैनन्ह साधि बान-बिष मारा॥
करनफूल कानन्ह अति सोभा। ससि-मुख आइ सूर जनु लोभा॥
सुरँग अधर औ मिला तमोरा। सोहै पान फूल कर जोरा॥
कुसुमगंध, अति सुरँग कपोला। तेहि पर अलक-भुअंगिनि डोला॥
तिल कपोल अलि कवँल बईठा। बेधा सोइ जेइ वह तिल दीठा॥
देखि सिंगार अनूप विधि बिरह चला तब भागि।
काल-कस्ट इमि ओनवा, सब मोरे जिउ लागि॥ ९॥

---

चौक = चार चार का समूह। कुलीन = उत्तम। सुभर = शुभ्र। (८) सँवारै = शृंगार को। पत्रावलि = पत्रभग-रचना। दुइज = दूज का चद्रमा। सुहल = सुहेल (अगस्त्य) तारा जो दूज के चद्रमा के साथ दिखाई पडता है और अरबी-फारसी काव्य मे प्रसिद्ध है। खूँट = कान का एक चक्राकार गहना। मानहुँ दरपन.....देखाव = मानो आकाश-रूपी दर्पण मे जो चंद्रमा और तारे दिखाई पड़ते है वे इसी पद्मावती के प्रतिबिंब है। (९) खंजन..... देखा = पद्मावती का मुख-चद्र शरद के पूर्ण चद्र के समान होकर शरद ऋतु का आभास देता है। हेर = ताकती है। धनुक = इद्रधनुष। ओनवा = झुका, पड़ा। काल-कस्ट...लागि = विरह कहता है कि यह कालकष्ट आ पडा सब मेरे ही जी के लिये।

का वरनौं अभरन औ हारा। ससि पहिरे नखतन्ह कै मारा॥
चीर चारु औ चंदन चोला। हीर हार नग लाग अमोला॥
तेहि झाँपी रोमावलि कारी। नागिनि रूप डसै हत्यारी॥
कुच कंचुकी सिरीफल उभे। हुलसहिं चहहि कंत-हिय चुभे॥
बाहँन्ह बहुँटा टाँड़ सलोनी। डोलत बाहँ भाव गति लोनी॥
तरवन्ह कवँल-करी जनु बाँधी। बसा-लंक जानहुँ दुइ आधी॥
छुद्रघंट कटि कंचन-तागा। चलते उठहिं छतीसौ रागा॥
चूरा पायल अनवट पायँन्ह परहि वियोग।
हिये लाइ टुक हम कहे समदहु मानहुँ भोग॥१०॥

अस बारह सोरह धनि साजै। छाज न और; आहि पै छाजै॥
बिनवहिं सखी गहरु का कीजै?। जेहि जिउ दीन्ह ताहि जिउ दीजै॥
सवरि सेज धनि-मन भइ संका। ठाढ़ि तेवानि टेकि कर लंका॥
अनचिन्ह पिउ, कापौं मन माहाँ। का मैं कहब गहब जौ वाहाँ॥
बारि बैस गइ प्रीति न जानी। तरुनि भई मैमंत भुलानी॥
जोवन-गरब न मै किछु चेता। नेह न जानौं साव कि सेता॥
अब सो कंत जो पूछिहि बाता। कस मुख होइहि पीत कि राता॥
हौं बारी औ दुलहिनि, पीउ तरुन सह तेज।
ना जानौं कस होइहि चढ़त कंत के सेज॥११॥

सुनु धनि! डर हिरदय तव ताईं। जौ लगि रहसि मिलै नहि साईं॥
कौन कली जो भौंर न राई?। डार न टूट पुहुप गरुआई॥
मातु पिता जौ वियाहै सोई। जनम निबाह कंत सँग होई॥
भरि जीवन राखै जहं चहा। जाइ न मेटा ताकर कहा॥
ताकहँ विलँब न कीजै बारी। जो पिउ-आयसु सोइ पियारी॥
चलहु वेगि आयसु भा जैसे। कंत बोलावै रहिए कैसे?॥

---

(१०) मारा = माला। झाँपी = ढाँक दिया। उभे = उठे हुए। बहुँटा और टाँड़ = बाँह पर पहनने के गहने। पायल = पैर का एक गहना। अनवट = अँगूठे का एक गहना। समदहु = मिलो, आलिंगन करो। (११) गहरु = देर, विलंब। सँवरि = स्मरण करके। तेवानि = सोच या चिंता मे पड़ गई। अनचिन्ह = अपरिचित। साँव = श्याम। पूछिहि = पूछेगा। (१२) राई = अनुरक्त हुई। डार न टूट...गरुआई = कौन फूल अपने बोझ से ही डाल से टूटकर न गिरा?

मान न करसि, पोढ़ करु लाडू. । मान करत रिस मानै चाँडू. ॥
साजन लेइ पठावा, आयसु जाइ न मेट ।
तन, मन, जोवन, साजि कै देइ चली लेइ भेंट ॥ १२ ॥

पदमिनि-गवन हंस गए दूरी । कुंजर लाज मेल सिर धूरी ॥
बदन देखि घटि चंद छपाना । दसन देखि कै बीजु लजाना ॥
खंजन छपे देखि कै नैना । कोकिल छपी सुनत मधु बैना ॥
गीव देखि कै छपा मयूरू । लंक देखि कै छपा सदूरू ॥
भौहन्ह धनुक छपा आकारा । बेनी बासुकि छपा पतारा ॥
खड़ग छपा नासिका बिसेखी । अमृत छपा अधर-रस देखी ॥
पहुँचहि छपी कवँल पौनारी । जंघ छपा कदली होइ बारी ॥
अछरी रूप छपानीं जबहिं चली धनि साजि ।
जावत गरब-गहेली सबै छपीं मन लाजि ॥ १३ ॥

मिलीं गोहने सखी तराईं । लेइ चाँद सूरज पहँ आईं ॥
पारस रूप चाँद देखराई । देखत सूरुज गा मुरछाई ॥
सोरह कला दिस्टि ससि कीन्ही । सहसौ कला सुरुज कै लीन्ही ॥
भा रवि अस्त, तराई हँसी । सूर न रहा, चाँद परगसी ॥
जोगी आहि, न भोगी होई । खाइ कुरकुटा गा पै सोई ॥
पदमावति जसि निरमल गंगा । तू जो कंत जोगी भिखमंगा ॥
आइ जगावहिं 'चेला जागै । आवा गुरू, पायँ उठि लागै' ॥
बोलहि सबद सहेली कान लागि, गहि माथ ।
गोरख आइ ठाढ़ भा, उठु, रे चेला नाथ ! ॥ १४ ॥

सुनि यह सबद अमिय अस लागा । निद्रा टूटि, सोइ अस जागा * ॥
गही बाँह धनि सेजवाँ आनी । अंचल ओट रही छपि रानी ॥

---

पोढ़ = पुष्ट । लाडू. = लाड़, प्यार, प्रेम । चाँडू = गहरी चाहवाला । साजन = पति । ( १३ ) मेल = डालता है । सदूरू = शार्दूल, सिंह । पहुँचा = कलाई । पौनारी = पद्मनाल । खड़ग छपा = तलवार छिपी ( म्यान में ) । बारी होइ = बगीचे मे जाकर । गरब-गहेली = गर्व धारण करनेवाली । ( १४ ) गोहने = साथ मे । कुरकुटा = अन्न का टुकड़ा; मोटा रूखा अन्न । पै = निश्चयवाचक, ही । नाथ = जोगी ( गोरखपथी साधु नाथ कहलाते हैं ) ।

* पाठांतर—गोरख सबद सिद्ध भा राजा । रामा सुनि रावन होइ गाजा ॥

सकुचै डरै मनहि मन वारी। गहु न बाँह, रे जोगि भिखारी ?॥
ओहट होसि, जोगि ! तोरि चेरी। आवै बास कुरकुटा केरी॥
देखि भभूति छूति मोहि लागै। काँपै चाँद, सूर सौ भागै॥
जोगि तोरि तपसी कै काया। लागि चहै मोरे अँग छाया॥
वार भिखारि न माँगसि भीखा। माँगै आइ सरग पर सीखा॥
जोगि भिखारि कोई मँदिर न पैठै पार।
माँगि लेहु किछु भिच्छा जाइ ठाढ़ होइ वार॥ १५॥

मैं तुम्ह कारन, पेम-पियारी ! राज छाँड़ि के भएउँ भिखारी॥
नेह तुम्हार जो हिये समाना। चितउर सौ निसरेउँ होइ आना॥
जस मालति कहँ भौंर वियोगी। चढ़ा वियोग, चलेउँ होइ जोगी॥
भौंर खोजि जस पावै केवा। तुम्ह कारन मैं जिउ पर छेवा॥
भएउँ भिखारि नारि तुम्ह लागी। दीप-पतँग होइ अँगएउँ आगी॥
एक वार मरि मिलै जो आई। दूसरि वार मरै कित जाई ?॥
कित तेहि मीचु जो मरि कै जीया ?। भा सो अमर, अमृत-मधु पीया॥
भौंर जो पावै कँवल कहं बहु आरति, बहु आस।
भौंर होइ नेवछावरि, कँवल देइ हँसि बास॥ १६॥

अपने मुँह न बड़ाई छाजा। जोगी कतहुँ होहिं नहि राजा॥
हौं रानी, तू जोगि भिखारी। जोगिहि भोगिहि कौन चिन्हारी ?॥
जोगी सबै छंद अस खेला। तू भिखारि तेहि माहि अकेला॥
पौन बाँधि अपसवहिं अकासा। मनसहि जाहि ताहि के पासा॥
एही भाँति सिस्टि सब छरी। एही भेख रावन सिय हरी॥
भौंरहि मीचु नियर जब आवा। चंपा-बास लेइ कहँ धावा॥
दीपक-जोति देखि उजियारी। आइ पाँखि होइ परा भिखारी॥
रैनि जो देखै चंदमुख ससि तन होइ अलोप।
तुहुँ जोगी तस भूला करि राजा कर ओप॥ १७॥

---

( १५ ) बार = द्वार। पैठ पार = घुसने पाता है। ( १६ ) होइ आना = अन्य अर्थात् योगी होकर। केवा = कमल। छेवा = फेंका, डाला ( सं० क्षेपण ), या खेला। अँगएउँ = अँगेजा, शरीर पर सहा। ( १७ ) चिन्हारी = जान पहचान। छंद = कपट, धूर्त्तता। तेहि माहि अकेला = उनमे एक ही धूर्त्त है। अपसवहिं = जाते हैं। मनसहिं = मन मे ध्यान या कामना करते हैं।

अनु, धनि तू निसिअर निसि माहाँ। हौं दिनिअर जेहि कै तू छाहाँ॥
चाँदहि कहाँ जोति औ करा। सुरुज के जोति चाँद निरमरा॥
भौंर वास-चंपा नहि लेई। मालति जहाँ तहाँ जिउ देई॥
तुम्ह हुँत भएउँ पतँग कै करा। सिघलदीप आइ उड़ि परा॥
सेएउँ महादेव कर बारू। तजा अन्न, भा पवन अहारू॥
अस मैं प्रीति गाँठि हिय जोरी। कटै न काटे, छुटै न छोरी॥
सीतै भीखि रावनहि दीन्ही। तूँ असि निठुर अँतरपट कीन्ही॥

रंग तुम्हारेहि रातेउँ, चढ़ेउँ गगन होइ सूर।
जहँ ससि सीतल तहँ तपौं, मन हींछा, धनि! पूर॥ १८॥

जोगि भिखारि! करसि बहु बाता। कहसि रंग, देखौ नहिं राता॥
कापर रँगे रंग नहि होई। उपजै औटि रंग भल सोई॥
चाँद के रंग सुरुज जस राता। देखै जगत साँझ परभाता॥
दगधि बिरह निति होइ अँगारा। ओही आँच धिकै संसारा॥
जो मजीठ औटै बहु आँचा। सो रंग जनम न डोलै राँचा॥
जरै बिरह जस दीपक-बाती। भीतर जरै, उपर होइ राती॥
जरि परास होइ कोइल-भेसू। तब फूलै राता होइ टेसू॥

पान, सुपारी, खैर जिमि मेरइ करै चकचून।
तौ लगि रंग न राँचै जौ लगि होइ न चून॥ १९॥

का, धनि! पान-रंग, का चूना। जेहि तन नेह दाध तेहि दूना॥
हौं तुम्ह नेह पियर भा पानू। पेड़ी हुँत सोनरास बखानू॥
सुनि तुम्हार संसार बड़ौना। जोग लीन्ह, तन कीन्ह गड़ौना॥

---

(१८) निसिअर = निशाकर, चद्रमा। अनु = (अव्य०) फिर, आगे। करा = कला। तुम्ह हुँत = तुम्हारे लिये। पतँग कै करा = पतंग के रूप का। चारू = द्वार। देखै...जगत परभाता = संध्या सबेरे जो ललाई दिखाई पडती है। धिकै = तपता है। मजीठ = साहित्य मे पक्के राग या प्रेम को मजिष्ठा-राग कहते है। जनम न डोलै = जन्म भर नहीं दूर होता। चक-चून करै = चूर्ण करे। चून = चूना पत्थर या कंकड़ जलाकर बनाया जाता है। (२०) पेड़ी हुँत = पेड़ी ही से; जो पान डाल या पेड़ी ही मे पुराना होता है उसे भी पेड़ी ही कहते है। सोनरास = पका हुआ सफेद या पीला पान। बड़ौना = (क) बड़ाई। (ख) एक जाति का पान। गड़ौना = एक प्रकार का पान जो जमीन मे गाड़कर पकाया जाता है।

करहिं जो किंगरी लेइ वैरागी। नौती होइ बिरह कै आगी॥
फेरि फेरि तन कीन्ह भुँजौना। औटि रकत रँग हिरदय औना॥
सूखि सोपारी भा मन मारा। सिरहिं सरौता करवत सारा॥
हाड़ चून भा, विरहहि दहा। जानै सोइ जो दाध इमि सहा॥
सोई जान वह पीरा जेहि दुख ऐस सरीर।
रकत-पियासा होइ जो का जानै पर पीर ?॥ २०॥

जोगिन्ह बहुत छंद, न ओराहीं। बूँद सेवाती जैस पराहीं॥
परहिं भूमि पर होइ कचूरू। परहिं कदलि पर होइ कपूरू॥
परहि समुद्र खार जल ओही। परहि सीप तौ मोती होहीं॥
परहि मेरु पर अमृत होई। परहिं नागमुख बिष होइ सोई॥
जोगी भौंर निठुर ए दोऊ। केहि आपन भए ? कहै जौ कोऊ॥
एक ठाँव ए थिर न रहाही। रस लेइ खेलि अनत कहुँ जाहीं॥
होइ गृही पुनि होइ उदासी। अंत काल दूवौ विसवासी॥
तेहि सौं नेह को दिढ़ करै ? रहहिं न एकौ देस।
जोगी, भौंर, भिखारी इन्ह सौ दूरि अदेस॥ २१॥

थल थल नग न होहि जेहि जोती। जल जल सीप न उपनहि मोती॥
बन बन विरिछ न चंदन होई। तन तन बिरह न उपनै सोई॥
जेहि उपना सो औटि मरि गयऊ। जनम निनार न कबहूँ भएऊ॥
जब अंबुज, रवि रहै अकासा। जौं इन्ह प्रीति जानु एक पासा॥
जोगी भौंर जो थिर न रहाहीं। जेहि खोजहिं तेहि पावहि नाहीं॥
मैं तोहि पायउँ आपन जीऊ। छाँड़ि सेवाति न आनहि पीऊ॥
भौंर मालती मिलै जौ आई। सो तजि आन फूल कित जाई ?॥
चंपा प्रीति न भौंरहि, दिन दिन आगरि बास।
भौंर जो पावै मालती मुएहु न छाँड़ै पास॥ २२॥

ऐसे राजकुँवर नहीं मानौ। खेलु सारि पाँसा तब जानौ॥
काँचे बारह परा जो पाँसा। पाके पैत परी तनु रासा*॥

---

नौती = नूतन, ताजी। भुँजौना कीन्ह = भूना। औना = आना है, आ सकता है। (२१) ओराहीं = चुकते है। छद = छल, चाल। कचूर = हलदी की तरह का एक पौधा। दूरि अदेश = दूर ही से प्रणाम। (२२) न आनहिं पीऊ = दूसरा जल नहीं पीता। आगरि = अधिक। (२३) सारी = गोटी। पैत = दाँव। रास = ठीक।

* पाठांतर—काँचैं बारहि बार फिरासी। पाँके पौ फिर थिर न रहासी॥

रहै न आठ अठारह भाखा। सोरह सतरस रहैं त राखा॥
सत जो धरै सो खेलनहारा। ढारि इगारह जाइ न मारा॥
तूं लीन्हे आछसि मन दूवा। ओ जुग सारि चहसि पुनि छूवा॥
हौं नव नेह रचौं तोहि पाहाँ। दसवँ दाँव तोरे हिय माहाँ॥
तौ चौपर खेलौ करि हिया। जौ तरहेल होइ सौतिया॥

जेहि मिलि बिछुरन औ तपनि अंत होइ जौ नित।
तेहि मिलि गंजन को सहै? बरु बिनु मिलै निचित॥२३॥

बोलौं रानि! बचन सुनु साँचा। पुरुष क बोल सपथ औ बाचा॥
यह मन लाएउँ तोहि अस, नारी! दिन तुइ पासा औ निसि सारी॥
पौ परि बारहि बार मनाएउँ। सिर सौं खेलि पैत जिउ लाएउँ॥
हौं अब चौक पंज तें बाँची। तुम्ह बिच गोट न आवहि काँची॥
पाकि उठाएउँ आस करीता। हौं जिउ तोहि हारा, तुम जीता॥
मिलि कै जुग नहिं होहु निनारी। कहाँ बीच दूती देनिहारी?॥
अब जिउ जनम जनम तोहि पासा। चढ़ेउँ जोग, आएउँ कबिलासा॥

जाकर जीउ बसै जेहि तेहि पुनि ताकरि टेक।
कनक सोहाग न बिछुरै, औटि मिलै होइ एक॥२४॥

बिहँसी धनि सुनि कै सत बाता। निहचय तू मोरे रँग राता॥
निहचय भौंर कँवल-रस रसा। जो जेहि मन सो तेहि मन बसा॥
जब हीरामन भएउ सँदेसी। तुम्ह हुँत मँडप गइउँ, परदेसी॥

---

सत = (क) सात का दावँ। (ख) सत्य। इगारह = (क) दस इंद्रियाँ और मन। (ख) ग्यारह का दाँव। दूवा = (क) दुबधा॥ जुग सारि = (क) दो गोटियाँ (ख) कुच। दसवँ दावँ = दसवाँ दाँव (ख) अंत तक पहुँचानेवाली चाल। तरहेल = अधीन, नीचे पड़ा हुआ। सौतिया = (क) तिया, एक दाँव। (ख) सपत्नी। गंजन = नाश, दुःख। (२४) बाचा = प्रतिज्ञा। पैत लाएउँ = दाँव पर लगाया। चौक पंज = (क) चौका पंजा दावँ। (ख) छल-कपट, छक्का पंजा। तुम्ह बिच...काँची = कच्ची गोटी तुम्हारे बीच नहीं पड सकती। पाकि = पक्की गोटी। जुग निनारा होना = (क) चौसर में जुग फूटना। (ख) जोड़ा अलग होना। कहाँ बीच... देनिहारी = मध्यस्थ होनेवाली दूती की कहाँ आवश्यकता रह जाती है। (२५) सँदेसी = संदेसा ले जानेवाला। तुम्ह हुँत = तुम्हारे लिये।

तोर रूप तस देखिउँ लोना। जनु, जोगी! तू मेलेसि टोना॥
सिधि-गुटिका जो दिस्टि कमाई। पारहि मेलि रूप बैसाई॥
भुगुति देइ कहँ मै तोहि दीठा। कँवल-नैन होइ भौर बइठा॥
नैन पुहुप, तू अलि भा सोभी। रहा बेधि अस, उड़ा न लोभी॥

जाकरि आस होइ जेहि, तेहि पुनि ताकरि आस।
भौर जो दाधा कँवल कहँ, कस न पाव सो वास?॥२५॥

कौन मोहनी दहुँ हुति तोही। जो तोहि बिथा सो उपनी मोही॥
बिनु जल मीन तलफ जस जीऊ। चातकि भइउँ कहत "पिउ पीऊ"॥
जरिउँ बिरह जस दीपक-बाती। पंथ जोहत भइ सीप सेवाती॥
डाढ़ि डाढ़ि जिमि कोइल भई। भइउँ चकोरि, नींद निसि गई॥
तोरे पेम पेम मोहि भएऊ। राता हेम अगिनि जिमि तएऊ॥
हीरा दिपै जौ सूर उदोती। नाहि त कित पाहन कहँ जोती!॥
रवि परगासे कँवल बिगासा। नाहि त कित मधुकर, कित बासा॥

तासौं कौन अँतरपट जो अस पीतम पीउ।
नेवछावरि अब सारौं तन, मन, जोबन, जीउ॥२६॥

हँसि पदमावति मानी बाता। निहचय तू मोरे रँग राता॥
तू राजा दुहुँ कुल उजियारा। अस कै चरचिउँ मरम तुम्हारा॥
पै तूँ जंबूदीप बसेरा। किमि जानेसि कस सिंघल मोरा?॥
किमि जानेसि सो मानसर केवा। सुनि सो भौंर भा, जिउ पर छेवा॥
ना तुइ सुनी, न कबहूँ दीठी। कैस चित्र होइ चितहि पईठी?॥
जौ लहि अगिनि करै नहि भेदू। तौ लहि औटि चुवै नहि मेदू॥
कहँ संकर तोहि ऐस लखावा?। मिला अलख अस पेम चखावा॥

जेहि कर सत्य सँघाती तेहि कर डर सोइ मेट।
सो सत कहु कैसे भा, दुवौ भाँति जो भेट॥ २७॥

सत्य कहौ सुनु पदमावती। जहँ सत पुरुष तहाँ सुरसती॥
पाएउँ सुवा, कही वह बाता। भा निहचय देखत मुख राता॥
रूप तुम्हार सुनेउँ अस नीका। ना जेहि चढ़ा काहु कहँ टीका॥

---

रूप = (क) रूपा, चाँदी। (ख) स्वरूप। बैसाई = बैठाया, जमाया। कँवल-नैन...बइठा = मेरे नेत्रकमल मे तू भौरा (पुतली के समान) होकर बैठ गया। कँवल कहँ = कमल के लिये। (२७) चरचिउँ = मैने भाँपा (स्त्री० क्रिया)। बसेरा = निवासी। केवा = कमल। छेवा = डाला या खेला।

चित्र किएउँ पुनि लेइ लेइ नाऊँ। नैनहि लागि हिये भा ठाऊँ॥
हौं भा साँच सुनत ओहि घड़ी। तुम होइ रूप आइ चित चढ़ी॥
हौं भा काठ मूर्ति मन मारे। चहै जो कर सब हाथ तुम्हारे॥
तुम्ह जौ डोलाइहु तबही डोला। मौन साँस जौ दीन्ह तौ बोला॥

को सोवै, को जागै ? अस हौं गएउँ बिमोहि।
परगट गुपुत न दूसर, जहँ देखौं तहँ तोहि॥२८॥

बिहँसी धनि सुनि कै सत भाऊ। हौं रामा तू रावन राऊ॥
रहा जो भौंर कँवल के आसा। कस न भोग मानै रस बासा ?॥
जस सत कहा कुँवर ! तू मोही। तस मन मोर लाग पुनि तोही॥
जब-हुँत कहि गा पंखि सँदेसी। सुनिउँ कि आवा है परदेसी॥
तब-हुँत तुम बिनु रहै न जीऊ। चातकि भइउँ कहत "पिउ पिऊ"॥
भइउ चकोरि सो पंथ निहारी। समुद सीप जस नैन पसारी॥
भइउ बिरह दहि कोइल कारी। डार डार जिमि कूकि पुकारी॥

कौन सो दिन जब पिउ मिलै यह मन राता तासु।
वह दुख देखै मोर सब, हौं दुख देखौं तासु॥२९॥

कहि सत भाव भई कँठलागू। जनु कंचन औ मिला सोहागू॥
चौरासी आसन पर जोगी। खट रस, बंधक चतुर सो भोगी॥
कुसुम-माल असि मालति पाई। जनु चंपा गहि डार ओनाई॥
कली बेधि जनु भँवर भुलाना। हना राहु अरजुन के बाना॥
कंचन-करी जरी नग जोती। बरमा सौं बेधा जनु मोती॥
नारँग जानि कीर नख दिए। अधर आमरस जानहुँ लिए॥
कौतुक केलि करहिं दुख नंसा। खूँदहि कुरलहि जनु सर हंसा॥

रही बसाइ बासना चोवा चंदन मेद।
जुहि अस पदमिनि रानी सो जानै यह भेद॥३०॥

---

(२८) नैनहि लागि = आँखों से लेकर। साँच = (क) सत्य स्वरूप। (ख) साँचा। रूप = (क) रूप। (ख) चाँदी। (२९) रावन = (क) रमण करनेवाला। (ख) रावण। जब-हुँत = जब से। सुनिउँ = (मैंने) सुना (स्त्री० क्रिया)। तबहुँत = तब से। (३०) चौरासी आसन = योग के और कामशास्त्र के बंधक = कामशास्त्र के बंध। ओनाई = झुकाई। राहु = रोहू मछली। बरमा = छेद करने का औजार। नंसा करहिं = नष्ट करते है। खूँदहिं—कूदते हैं। कुरलहिं = हंस आदि के बोलने को कुरलना कहते है।

रतनसेन सो कंत सुजानू। खटरस-पंडित सोरह बानू॥
तस होइ मिले पुरुष औ गोरी। जैसी बिछुरी सारस-जोरी॥
रची सारि दूनौ एक पासा। होइ जुग जुग आवहिं कबिलासा॥
पिय धनि गही, दीन्हि गलबाहीं। धनि बिछुरी लागी उर माहीं॥
ते छकि रस नव केलि करेही। चोका लाइ अधर-रस लेही॥
धनि नौ सात, सात औ पाँचा। पूरुष दस ते रह किमि बाँचा?॥
लीन्ह बिधाँसि बिरह धनि साजा। औ सब रचन जीत हुत राजा॥

जनहुँ औटि कै मिलि गए तस दूनौ भए एक।
कंचन कसत कसौटी हाथ न कोऊ टेक॥३१॥

चतुर नारि चित अधिक चिहूँटी। जहाँ पेम बाढ़ै किमि छूटी॥
कुरला काम केरि मनुहारी। कुरला जेहिं नहिं सो न सुनारी॥
कुरलहि होइ कंत कर तोखू। कुरलहि किए पाव धनि मोखू॥
जेहि कुरला सो सोहाग सुभागी। चंदन जैस साम कँठ लागी॥
गेंद गोद कै जानहु लई। गेद चाहि धनि कोमल भई॥
दारिउँ, दाख, बेल रस चाखा। पिय के खेल धनि जीवन राखा॥
भएउ बसंत कली मुख खोली। बैन सोहावन कोकिल बोली॥

पिउ पिउ करत जो सूखि रहि धनि चातक की भाँति।
परी सो बूँद सीप जनु, मोती होइ सुख-सांति॥३२॥

भएउ जूझ जस रावन रामा। सेज बिधाँसि बिरह-संग्रामा॥
लीन्हि लंक, कंचन-गढ़ टूटा। कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा॥
औ जोबन मैमंत बिधाँसा। बिचला बिरह जीउ जो नासा॥
टूटे अंग अंग सब भेसा। छूटी माँग, भंग भए केसा॥
कंचुकि चूर, चूर भइ तानी। टूटे हार, मोति छहरानी॥

---

(३१) बानू = वर्ण, दीप्ति, कला। गोरी = स्त्री। सारि = चौपड़। चोका = चुहका, चूसने की क्रिया या भाव। चोका लाइ = चूसकर। नौ सात = सोलह शृंगार। सात औ पाँचा = बारह आभरण। पूरुष...बाँचा = वे शृंगार और आभरण पुरुष की दस उँगलियों से कैसे बचे रह सकते है। (३२) चिहूँटी = चिमटी। कुरला = क्रीड़ा। मनुहारी = शांति, तृप्ति। मोखू = मोक्ष, छुटकारा। चाहि = अपेक्षा, बनिस्बत। (३३) बिधाँसि = विध्वंस की गई, बिगड़ गई। जीउ जो नासा = जिसने जीव की दशा बिगाड़ रखी थी। तानी = तनी, बंद।

बारी, टाँण सलोनी टूटी। बाहूँ कँगन कलाई फूटी॥
चंदन अंग छूट अस भेटी। बेसरि टूटि, तिलक गा मेटी॥
पुहुप सिंगार सँवार सब जोवन नवल बसंत।
अरगज जिमि हिय लाइ कै मरगज कीन्हेउ कंत॥३३॥

विनय करै पदमावति बाला। सुधि न, सुराही पिएउ पियाला॥
पिउ-आयसु माथे पर लेऊँ। जो माँगै नइ नइ सिर देऊँ॥
पै, पिय! बचन एक सुनु मोरा। चाखु, पिया! मधु थोरै थोरा॥
पेम-सुरा सोई पै पिया। लखै न कोइ कि काहू दिया॥
चुवा दाख-मधु जो एक बारा। दूसरि बार लेत बेसँभारा॥
एक बार जो पी कै रहा। सुख-जीवन, सुख-भोजन लहा॥
पान फूल रस रंग करीजै। अधर अधर सौं चाखा कीजै॥
जो तुम चाहौ सो करौ, ना जानौ भल मंद।
जो भावै सो होइ मोहि तुम्ह, पिउ! चहौं अनंद॥३४॥

सुनु, धनि! प्रेम-सुरा के पिए। मरन जियन डर रहै न हिए॥
जेहि मद तेहि कहाँ संसारा। को सो घूमि रह, की मतवारा॥
सो पै जान पियै जो कोई। पी न अघाइ, जाइ परि सोई॥
जा कहँ होइ बार एक लाहा। रहै न ओहि बिनु, ओही चाहा॥
अरथ दरब सो देइ बहाई। की सब जाहु, न जाइ पियाई॥
रातिहु दिवस रहै रस-भीजा। लाभ न देख, न देखै छीजा॥
भोर होत तब पलुह सरीरू। पाव खुमारी सीतल नीरू॥
एक बार भरि देहु पियाला, बार बार को माँग?।
मुहमद किमि न पुकारै ऐस दाँव जो खाँग?॥३५॥

भा बिहान ऊठा रवि साईं। चहुँ दिसि आईं नखत तराईं॥
सब निसि सेज मिला ससि सूरू। हार चीर बलया भए चूरू॥
सो धनि पान, चून भइ चोली। रँग-रँगीलि निरँग भइ भोली॥

---

बारी = बालियाँ। अरगज = अरगजा नामक सुगंध-द्रव्य जिसका लेप किया जाता है। मरगज = मला-दला हुआ। (३४) नइ = नवाकर। (३५) जाइ परि सोई = पड़कर सो जाता है। छीजा = क्षति, हानि। पलुह = पनपता है। खाँग = कमी हुई। (३६) रवि = सूर्य और रत्नसेन। साई = स्वामी। नखत तराईं = सखियाँ। बलया = चूड़ी। पान = पके पान सी सफेद या पीली। चून = चूर्ण। निरँग = विवर्ण, बदरंग।

जागत रैनि भएउ भिनसारा। भई अलस सोवत बेकरारा॥
अलक सुरंगिनि हिरदय परी। नारँग छुव नागिनि बिष-भरी॥
लरी मुरी हिय-हार लपेटी। सुरसरि जनु कालिंदी भेंटी॥
जनु पयाग अरइल बिच मिली। सोभित बेनी रोमावली॥

नाभी लाभु पुन्नि कै कासीकुंड कहाव।
देवता करहि कलप सिर आपुहि दोष न लाव॥३६॥

बिहँसि जगावहिं सखी सयानी। सूर उठा, उठु पदमिनि रानी!॥
सुनत सूर जनु कँवल बिगासा। मधुकर आइ लीन्ह मधु बासा॥
जनहुँ माति निसयानी बसी। अति बेसँभार फूलि जनु अरसी॥
नैन कवँल जानहुँ दुइ फूले। चितवनि मोहि मिरिग जनु भूले॥
तन न सँभार केस औ चोली। चित अचेत जनु बाउरि भोली॥
भइ ससि हीन गहन अस गही। बिथुरे नखत, सेज भरि रही॥
कँवल माँह जनु केसरि दीठी। जोबन हुत सो गँवाइ बईठी॥

बेलि जो राखी इंद्र कहँ पवन बास नहि दीन्ह।
लागेउ आइ भौर तेहि, कली बेधि रस लीन्ह॥३७॥

हँसि हँसि पूछहिं सखी सरेखी। मानहुँ कुमुद चंद्र-मुख देखी॥
रानी! तुम ऐसी सुकुमारा। फूल बास तन जीव तुम्हारा॥
सहि नहिं सकहु हिये पर हारू। कैसे सहिउ कंत कर भारू?॥
मुख-अंबुज बिगसै दिन राती। सो कुँभिलान कहहु केहि भाँती?॥
अधर-कँवल जो सहा न पानू। कैसे सहा लाग मुख भानू?॥
लंक जो पैग देत मुरि जाई। कैसे रही जौ रावन राई?॥
चंदन चोव पवन अस पीऊ। भइउ चित्र ससि, कस भा जीऊ?॥

---

अलस = आलस्य-युक्त। छुव = छूती है। लरी मुरी = बाल की काली लटें मोतियो के हार से लिपटकर उलझीं। नाभी लाभु.....लाव = नाभि पुण्य-लाभ करके काशीकुंड कहलाती है इसी से देवता लोग उसपर सिर काटकर मरते हैं पर उसे दोष नही लगता। (३७) सुनत सूर.....मधु बासा = कमल खिला अर्थात् नेत्र खुले और भौरे मधु और सुगंध लेने बैठे अर्थात् काली पुतलियाँ दिखाई पड़ीं। निसयानी = सुध-बुध खोए हुए। बिथुरे नखत = आभूषण इधर-उधर बिखरे है। (३८) सरेखी = सयानी, चतुर। फूल बास... तुम्हारा = फूल शरीर और बास जीव। रावन = (क) रमण करनेवाला। (ख) रावण।

सब अरगज मरगज भयउ, लोचन बिंब सरोज।
'सत्य कहहु पद्मावति' सखी परीं सब खोज ॥३८॥

कहौ, सखी! आपन सतभाऊ। हौं जो कहति कस रावन राऊ॥
काँपी भौंर पुहुप पर देखे। जनु ससि गहन तैस मोहिं लेखे॥
आजु मरम मैं जाना सोई। जस पियार पिउ और न कोई॥
डर तौ लगि हिय मिला न पीऊ। भानु के दिस्टि छूटि गा सीऊ॥
जत खन भानु कीन्ह परगासू। कँवल-कली मन कीन्ह बिगासू॥
हिये छोह उपना औ सीऊ। पिउ न रिसाउ लेउ बरु जीऊ॥
हुत जो अपार बिरह-दुख दूखा। जनहुँ अगस्त-उदय जल सूखा॥

हौं रँग बहुतै आनति, लहरै जैस समुंद।
पै पिउ कै चतुराई खसेउ न एकौ बुंद ॥३९॥

करि सिंगार तापहँ का जाऊँ। ओही देखहुँ ठाँवहि ठाँऊँ॥
जौ जिउ महँ तौ उहै पियारा। तन मन सौं नहि होइ निनारा॥
नैन माँह है उहै समाना। देखौं तहाँ नाहिं कोउ आना॥
आपन रस आपुहि पै लेई। अधर सोइ लागे रस देई॥
हिया थार कुच कंचन लाडू। अगमन भेंट दीन्ह कै चाँडू॥
हुलसी लंक लंक सौं लसी। रावन रहसि कसौटी कसी॥
जोवन सबै मिला ओहि जाई। हौं रे बीच हुँत गइउँ हेराई॥

जस किछु देइ धरै कहँ, आपन लेइ सँभारि।
रसहि गारि तस लीन्हेसि, कीन्हेसि मोहि ठँठारि ॥४०॥

अनु रे छबीली! तोहि छबि लागी। नैन गुलाल कंत सँग जागी॥
चंप सुदरसन अस भा सोई। सोनजरद जस केसर होई॥
बैठ भौंर कुच नारँग बारी। लागे नख, उछरीं रँग-धारी॥
अधर अधर सो भीज तमोरा। अलकाउर मुरि मुरि गा तोरा॥

---

खोज परीं = पीछे पड़ीं। (३९) मोहिं लेखे = मेरे हिसाबसे, मेरी समझ मे। दूखा = नष्ट हुआ। खसेउ = गिरा। (४०) चाँडू = चाह। जस किछु देइ धरै कहँ = जैसे कोई वस्तु धरोहर रखे और फिर उसे सहेज कर ले ले। ठँठारि = खुक्ख। (४१) चप सुदरसन...होई = तेरा वह सुंदर चपा का सा रग जर्द चमेली सा पीला हो गया है। उछरीं = पड़ी हुई दिखाई पड़ीं। धारी = रेखा। तमोरा = ताबूल। अलकाउर = अलकावलि। तोरा = तेरा।

रायमुनी तुम औ रतमुही। अलिमुख लागि भई फुलचुहीं॥
जैस सिंगार-हार सौं मिली। मालति ऐसि सदा रहु खिली॥
पुनि सिंगार करु कला नेवारी। कदम सेवती बैठु पियारी॥

कुंद कली सम बिगसी ऋतु बसंत औ फाग।
फूलहु फरहु सदा सुख औ सुख सुफल सोहाग ॥४१॥

कहि यह बात सखी सब धाईं। चंपावति पहँ जाइ सुनाईं॥
आजु निरँग पद्मावती बारी। जीवन जानहुँ पवन-अधारी॥
तरकि तरकि गइ चंदन चोली। धरकि धरकि हिय उठै, न बोली॥
अही जो कली-कँवल रसपूरी। चूर चूर होइ गई सो चूरी॥
देखहु जाइ जैसि कुभिलानी। सुनि सोहाग रानी बिहँसानी॥
सेइ सँग सबही पदमिनि नारी। आई जहँ पदमावति बारी॥
आइ रूप सो सबही देखा। सोन-बरन होई रही सो रेखा॥

कुसुम फूल जस मरदै, निरँग देख सब अंग।
चंपावति भइ बारी, चूम केस औ मंग ॥४२॥

सब रनिवास बैठ चहुँ पासा। ससि-मंडल जनु बैठ अकासा॥
बोली सबै "बारि कुँभिलानी। करहु सँभार, देहु खँड़वानी॥
कँवल-कली कोमल रँग-भीनी। अति सुकुमारि, लंक कै छीनी॥
चाँद जैस धनि हुत परगासा। सहस करा होइ सूर बिगासा॥
तेहिके झार गहन अस गही। भइ निरंग, मुख-जोति न रही॥
दरब वारि किछु पुन्नि करेहू। औ तेहि लेइ संन्यासिहि देहू॥
भरि कै थार नखत गजमोती। वारा कीन्ह चंद कै जोती॥

---

रायमुनी = एक छोटी सुदर चिडिया। रतमुहीं = लाल मुँह वाली। फुलचुहीं = फुलसुँघनी नामकी छोटी चिड़िया। सिंगार हार = (क) सिंगार को अस्त-व्यस्त करनेवाला, नायक। (ख) परजाता फूल। (४१) कला = नकलबाजी, बहाना (अवधी)। नेवारी = (क) दूर कर। (ख) एक फूल। कदम सेवती = (क) चरणों की सेवा करती हुई। (ख) कदंब और सेवती फूल। (मुद्रा अलंकार।) (४२) निरग = विवर्ण, बदरग। पवन अधारी = इतनी सुकुमार है कि पवन ही के आधार पर मानो जीवन है। अही = थी। सोन-बरन...रेखा = ऊपर कह आए हैं कि "रावन रहसि कसौटी कसी"। वारी भइ = निछावरि हुई। मग = माँग। (४३) झार = ज्वाला, तेज। वारि = निछावर करके। वारा कीन्ह = चारो ओर घुमाकर उत्सर्ग किया।

कीन्ह अरगजा मरदन औ सखि कीन्ह नहानु।
पुनि भइ चौदसि चाँद सो रूप गएउ ठपि भानु ॥४३॥

पुनि वहु चीर आन सब छोरी। सारी कंचुकि लहर-पटोरी॥
फुँदिया और कसनिया राती। छायल बँद लाए गुजराती॥
चिकवा चीर मधौना लोने। मोति लाग औ छापे सोने॥
सुरँग चीर भल सिंघलदीपी। कीन्ह जो छापा धनि वह छीपी॥
पेमचा डरिया औ चौधारी। साम, सेत, पीयर, हरियारी॥
सात रंग औ चित्र चितेरे। भरि कै दीठि जाहि नहीं हेरे॥
चँदनौता औ खरदुक भारी। बाँसपूर झिलमिल कै सारी॥
पुनि अभरन वहु काढ़ा, अनवन भाँति जराव।
हेरि फेरि निति पहिरै, जब जैसे मन भाव ॥४४॥

---

(४४) लहर-पटोरी = पुरानी चाल का रेशमी लहरिया कपड़ा। फुँदिया = नीवी या इजारबंद के फुलरे। कसनिया = कसनी, एक प्रकार की अँगिया। छायल = एक प्रकार की कुरती। चिकवा = चिकट नाम का रेशमी कपड़ा। मधौना = मेघवर्ण अर्थात् नील का रँगा कपड़ा। पेमचा = एक प्रकार का कपड़ा (?) चौधारी = चारखाना। हरियारी = हरी। चितेरे = चित्रित। चँदनौता = एक प्रकार का लहँगा। खरदुक = कोई पहनावा (?)। बाँसपूर = ढाके की बहुत महीन तजेब जिसका थान बाँस की पतली नली मे आ जाता था। झिलमिल = एक बारीक कपड़ा। अनवन = अनेक।

## (२८) रत्नसेन-साथी-खंड

रतनसेन गए अपनी सभा। बैठे पाट जहाँ अठ खँभा।
आइ मिले चितउर के साथी। सबै बिहँसि कै दीन्ही हाथी॥
राजा कर भल मानहु भाई। जेइ हम कहँ यह भूमि देखाई॥
हम कहँ आनत जौ न नरेसू। तौ हम कहाँ, कहाँ यह देसू॥
धनि राजा तुइँ राज बिसेखा। जेहि के राज सबै किछु देखा॥
भोग-बिलास सबै किछु पावा। कहाँ जीभ जेहि अस्तुति आवा?॥
अब तुम आइ अँतरपट साजा। दरसन कहँ न तपावहु राजा॥

नैन सेराने, भूखि गइ देखे दरस तुम्हार।
नव अवतार आजु भा, जीवन सफल हमार॥ १॥

हँसि कै राज रजायसु दीन्हा। मै दरसन कारन एत कीन्हाँ॥
अपने जोग लागि अस खेला। गुरु भएउँ आपु, कीन्ह तुम्ह चेला॥
अहक मोरि पुरुषारथ देखेहु। गुरू चीन्हि कै जोग बिसेखेहु॥
जौ तुम्ह तप साधा मोहिं लागी। अब जिनि हिये होहु वैरागी॥
जो जेहि लागि सहै तप जोगू। सो तेहि के सँग मानै भोगू॥
सोरह सहस पदमिनी माँगी। सबै दीन्हि, नहि काहुहि खाँगी॥
सब कर मंदिर सोने साजा। सब अपने अपने घर राजा॥

हस्ति घोर औ कापर सबहिं दीन्ह नव साज।
भए गृही औ लखपती, घर घर मानहुँ राज॥ २॥

---

(१) हाथी दीन्ही = हाथ मिलाया। भल मानहु = भला मनाओ, एहसान मानो। अँतरपट साजा = आँख की ओट मे हुए। तपावहु = तरसाओ। सेराने = ठढे हुए। (२) एत = इतना सब। अहक = लालसा। खाँगी = घटी; कम हुई।

## (२६) षट्-ऋतु-वर्णन-खंड

पदमावति सब सखी बोलाई। चीर पटोर हार पहिराई॥
सीस सबन्ह के सेंदुर पूरा। औ राते सब अंग सेंदूरा॥
चंदन अगर चित्र सब भरीं। नए चार जानहु अवतरीं॥
जनहु कँवल सँग फूलीं कूई। जनहुँ चाँद सँग तरई ऊई॥
धनि पदमावति, धनि तोर नाहू। जेहि अभरन पहिरा सब काहू॥
बारह अभरन, सोरह सिंगारा। तोहि सौंह नहिं ससि उजियारा॥
ससि सकलंक रहै नहि पूजा। तू निकलंक, न सरि कोइ दूजा॥
काहू बीन गहा कर, काहू नाद मृदंग।
सबन्ह अनंद मनावा रहसि कूदि एक संग॥ १॥

पदमावति कह सुनहु, सहेली। हौं सो कँवल, तुम कुमुदिनि-बेली॥
कलस मानि हौं तेहि दिन आई। पूजा चलहु चढ़ावहिं जाई॥
मँझ पदमावति कर जो बेवानू। जनु परभात परै लखि भानू॥
आस पास बाजत चौडोला। दुंदुभि, झाँझ, तूर, डफ, ढोला॥
एक संग सब सोंधे-भरी। देव-दुवार उतरि भइ खरी॥
अपने हाथ देव नहवावा। कलस सहस इक घिरित भरावा॥
पोता मँडप अगर औ चंदन। देव भरा अरगज औ बंदन॥
कै प्रनाम आगे भई, विनय कीन्ह बहु भाँति।
रानी कहा चलहु घर, सखीं! होति है राति॥ २॥

भइ निसि, धनि जस ससि परगसी। राजै देखि भूमि फिर बसी॥
भइ कटकई सरद-ससि आवा। फेरि गगन रवि चाहै छावा॥
सुनि चनि भौंह-धनुक फिरि फेरा। काम कटाछन्ह कोरहि हेरा॥
जानहु नाहि पैज, पिय! खाँचौ। पिता सपथ हौं आजु न बाँचौ॥

---

(१) चार = ढग, चाल, प्रकार। जेहि = जिसकी बदौलत। सौंह = सामने। पूजा = पूरा। (२) चौडोल = पालकी (के आसपास)। सोंधे = सुगंध। बदन = सिंदूर या रोली। (३) कटकई = चढ़ाई, सेना का साज। कोरहि हेरा = कोने से ताका। पैज खाँचौ = प्रतिज्ञा करती हूँ। हौं = मुझसे।

काल्हि न होइ, रही महि रामा। आजु करहु रावन संग्रामा॥
सेन सिंगार महूँ है सजा। गज-गति चाल, अँचल-गति धजा॥
नैन समुद औ खड्ग नासिका। सरवरि जूझ को मो सहुँ टिका?॥

हौं रानी पदमावति, मैं जीता रस भोग।
तू सरवरि करु तासौं जो जोगी तोहि जोग॥ ३॥

हौं अस जोगि जान सब कोऊ। बीर सिंगार जिते मैं दोऊ॥
उहाँ सामुहें रिपु दल माहाँ। इहाँ त काम-कटक तुम्ह पाहाँ॥
उहाँ त हय चढ़ि कै दल मंडौं। इहाँ त अधर अमिय-रस खंडौं॥
उहाँ त खड्ग नरिंदहि मारौं। इहाँ त बिरह तुम्हार सँघारौं॥
उहाँ त गज पेलौं होइ केहरि। इहवाँ काम कामिनी-हिय हरि॥
उहाँ त लूटौं कटक खँधारू। इहाँ त जीतौं तोर सिंगारू॥
उहाँ त कुंभस्थल गज नावौं। इहाँ त कुच-कलसहि कर लावौं॥

परै बीच धरहरिया, प्रेम-राज को टेक?।
सानहि भोग छवौ ऋतु मिलि दूवौ होइ एक॥ ४॥

प्रथम बसंत नवल ऋतु आई। सुऋतु चैत बैसाख सोहाई॥
चंदन चीर पहिरि धनि अंगा। सेंदुर दीन्ह बिहँसि भरि मंगा॥
कुसुम हार औ परिमल बासू। मलयागिरि छिरका कबिलासू॥
सौर सुपेती फूलन डासी। धनि औ कंत मिले सुखबासी॥
पिउ सँजोग धनि जोबन बारी। भौंर पुहुप सँग करहि धमारी॥
होइ फाग भलि चाँचरि जोरी। बिरह जराइ दीन्ह जस होरी॥
धनि ससि सरिस, तपै पिय सूरू। नखत सिंगार होहि सब चूरू॥

जिन्ह घर कंता ऋतु भली, आव बसंत जो नित्त।
सुख भरि आवहिं देवहरै, दुःख न जानै कित्त॥ ५॥

ऋतु ग्रीषम कै तपनि न तहाँ। जेठ असाढ़ कंत घर जहाँ॥
पहिरि सुरंग चीर धनि झीना। परिमल मेद रहा तन भीना॥
पदमावति तन सिअर सुवासा। नैहर राज, कंत-घर पासा॥

---

रही महि = पृथ्वी पर पड़ी रही। धजा = ध्वजा, पताका। सहुँ = सामने। (४) मंडौं = शोभित करता हूँ। इहवाँ काम...हिय हरि = यहाँ कामिनी के हृदय से काम-ताप को हरकर ठेलता हूँ। खँधारू = स्कंधावार, तंबू छावनी। धरहरिया = बीच-बिचाव करनेवाला। (५) सौर = चादर। डासी = बिछाई हुई। देवहरै = देवमंदिर में। (६) झीना = महीन।

औ वड़ जूड़ तहाँ सोवनारा। अगर पोति, सुख तने ओहारा॥
सेज विछावन सौर सुपेती। भोग विलास कहिर सुख सेती॥
अधर तमोर कपुर भिमसेना। चंदन चरचि लाव तन वेना॥
भा अनंद सिवत्त सब कहूं। भागवंत कहँ सुख ऋतु छहूँ॥

दारिउँ दाख लेहि रस, आम सदाफर डार।
हरियर तन सुअटा कर जो अस चाखनहार॥ ६॥

रितु पावस वरसै, पिउ पावा। सावन भादौ अधिक सोहावा॥
पदमावति चाहत ऋतु पाई। गगन सोहावन, भूमि सोहाई॥
कोकिल बैन, पाति वग छूटो। धनि निसरीं जनु वीरवहूटी॥
चमक वीजु, वरसै जल सोना। दादुर मोर सवद सुठि लोना॥
रँग-राती पीतम संग जागी। गरजे गगन चौकि गर लागी॥
सीतल बूँद, उँच चौपारा। हरियर सब देखाइ संसारा॥
हरियर भूमि, कुसुंभी चोला। औ धनि पिउ सँग रचा हिडोला॥

पवन झकोरे होइ हरष, लागे सीतल वास।
धनि जानै यह पवन है, पवन सो अपने पास॥ ७॥

आइ सरद ऋतु अधिक पियारी। आसिन कातिक ऋतु उजियारी॥
पदमावति भइ पूनिउँ-कला। चौदसि चाँद उई सिवला॥
सोरह कला सिगार बनावा। नखत-भरा सूरुज ससि पावा॥
भा निरमल सब धरति अकासू। सेज सँवारि कीन्ह फुल-बासू॥
सेत विछावन औ उजियारी। हँसि हँसि मिलहिं पुरुप औ नारी॥
सोन-फूल भइ पुहुमी फूली। पिय धनि सौ, धनि पिय सौ भूली॥
चख अंजन देइ खंजन देखावा। होइ सारस जोरी रस पावा॥

एहि ऋतु कंता पास जेहि, सुख तेहि के हिय माहँ।
धनि हँसि लागै पिउ गरै, धनि-गर पिउ कै बाहँ॥८॥

---

सिअर = शीतल। सोवनार = शयनागार। ओहारा = परदे। सुख सेती = सुख से। (७) चाहति = मनचाही। बरसै जल सोना = कौंधे की चमक में पानी की बूँदें सोने की बूँदों सी लगती है। कुसुम्भी = कुसुम के (लाल) रंग का। चोला = पहनावा। धनि जानै...पास = स्त्री समझती है कि वह हर्ष और शीतल वास पवन मे है पर वह उस प्रिय मे है (उसके कारण है) जो उसके पास है (८) नखत-भरा-ससि = आभूषणों के सहित पद्मावती। फुल-बासू = फूलों से सुगंधित।

पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती। टेकु पियास, बाँधु मन थीती॥
धरतिहि जैस गगन सौं नेहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेहा॥
पुनि बसंत ऋतु आव नवेली। सो रस, सो मधुकर, सो बेली॥
जिनि अस जीव करसि तू बारी। यह तरिवर पुनि उठिहि सवारी॥
दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा। पुनि सोई सरवर, सोइ हंसा॥

मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेटि अहंत।
तपनि मृगसिरा जे सहै, ते अद्रा पलुहंत॥३॥

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा॥
धूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग-पाँति देखाए॥
खड़ग-बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद-बान बरसहि घन घोरा॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हौं घेरी॥
दादुर मोर कोकिला, पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ॥
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा?॥
अद्रा लाग, लागि भुइँ लेई। मोहि बिनु पिउ को आदर देई?॥

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब॥४॥

सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी॥
लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भइ बाउरि, कहँ कंत सरेखा॥
रकत कै आँसु परहि भुइँ टूटी। रेंगि चलीं जस बीरबहूटी॥
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियरि भूमि, कुसुंभी चोला॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देइ झकझोरा॥
बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी॥
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकि॥

---

टेकु पियास = प्यास सह। बाँधु मन थीती = मन मे स्थिरता बाँध। जिनि = मत। पलुहत = पल्लवित होते हैं, पनपते है। (४) गाजा = गरजा। धूम = धूमले रंग के। धौरे = धवल, सफेद। ओनई = झुकी। लेई लागि = खेतो मे लेवा लगा, खेत पानी से भर गए। गारौ = गौरव, अभिमान (प्राकृत—गारव, "आ च गौरवे")। (५) मेह = मेघ। भरनि परी = खेतो में भरनी लगी। सरेख = चतुर। भँभीरी = एक प्रकार का फतिंगा जो संध्याके समय बरसात में आकाश में उड़ता दिखाई पड़ता है।

परवत समुद अगम बिच, बीहड़ घन बनढाँख।
किमि कै भेटौं कंत तुम्ह ? ना मोहि पाँव न पाँख ॥ ५ ॥

भा भादों दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अँधियारी ॥
मँदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा ॥
रहौं अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी ॥
चमक बीजु, घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा ॥
बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुवै जस ओरी ॥
धनि सूखै भरे भादौ माहाँ। अबहु न आएन्हि सीचेन्हि नाहा ॥
पुरवा लाग भूमि जल पूरी। आक जवास भई तस भूरी ॥
थल जल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक।
जनि जोवन अवगाह महँ दे बूड़त, पिउ ! टेक ॥ ६ ॥

लाग कुवार, नीर जग घटा। अबहूँ आउ, कंत ! तन लटा ॥
तोहि देखे, पिउ ! पलुहै कया। उतरा चीतु, बहुरि करु मया ॥
चित्रा मित्र मीन कर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा ॥
उआ अगस्त, हस्ति-घन गाजा। तुरय पलानि चढ़े रन राजा ॥
स्वाति-बूद चातक मुख परे। समुद सीप मोती सब भरे ॥
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरलहि, खजन देखाए ॥
भा परगास, काँस बन फूले। कत न फिरे, बिदेसहि भूले ॥
बिरह-हस्ति तन सालै, घाय करै चित चूर।
बेगि आइ, पिउ ! बाजहु, गाजहु होइ सदूर ॥ ७ ॥

कातिक सरद-चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी ॥
चौदह करा चाँद परगासा। जनहु जरै सब धरति अकासा ॥
तन मन सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चंद, भएउ मोहि राहू ॥
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौ घर नाहीं कंत पियारा ॥
अबहूँ, निठुर ! आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा ॥

---

(६) दूभर = भारी कठिन। भरौं = काटूँ, बिताऊँ; जैसे—नैहर जनम भरब बरु जाई—तुलसी। अनतै = अन्यत्र। तरासा = डराता है। ओरी = ओलती। पुरवा = एक नक्षत्र। (७) लटा = शिथिल हुआ। पलुहै = पनपती है। उतरा चीतु = चित्त से उतरी या भूली बात ध्यान मे ला। चित्रा = एक नक्षत्र। तुरय = घोड़ा। पलानि = जीन कसकर। घाय = धाव। बाजहु = लड़ो। गाजहु = गरजो। सदूर = शार्दूल, सिंह।

ऋतु हेमंत सँग पिएउ पियाला। अगहन पूस सीत सुख-काला॥
धनि औ पिउ महँ सीउ सोहागा। दुहुँन्ह अंग एकै मिलि लागा॥
मन सौं मन, तन सौं तन गहा। हिय सौं हिय, विचहार न रहा॥
जानहुँ चंदन लागेउ अंगा। चंदन रहै न पावै संगा॥
भोग करहि सुख राजा रानी। उन्ह लेखे सब सिस्टि जुड़ानी॥
जूझ दुवौ जोवन सौं लागा। बिच हुँत सीउ जीउ लेइ भागा॥
दुइ घट मिलि एकै होइ जाहीं। ऐस मिलहि, तबहूँ न अघाहीं॥
हंसा केलि करहि जिमि, खूँदहि कुरलहि दोउ।
सीउ पुकारि कै पार भा, जस चकई क बिछोउ॥ ९॥
आइ सिसिर ऋतु, तहाँ न सीऊ। जहाँ माघ फागुन घर पीऊ॥
सौर सुपेती मंदिर राती। दगल चीर पहिरहि बहु भाँती॥
घर घर सिंघल होइ सुख जोजू। रहा न कतहुँ दुःख कर खोजू॥
जहँ धनि पुरुष सीउ नहि लागा। जानहुँ काग देखि सर भागा॥
जाइ इंद्र सौं कीन्ह पुकारा। हौ पदमावति देस निसारा॥
एहि ऋतु सदा संग महं सेवा। अब दरसन तें मोर बिछोवा॥
अब हँसि कै ससि सूरहि भेटा। रहा जो सीउ बीच सो मेटा॥
भएउ इंद्र कर आयसु, बड़ सताव यह सोइ।
कबहुँ काहु के पार भइ, कबहुँ काहु के होइ॥ १०॥

---

(९) धनि...सोहागा = शीत दोनों के बीच सोहागे के समान है जो सोने के दो टुकड़ों को मिलाकर एक करता है। उन्ह लेखे = उनकी समझ मे। बिच हुँत = बीच से। खूँदहि कुरलहि = उमंग मे क्रीड़ा करते हैं। बिछोउ = बिछोह, वियोग। (१०) सौर = चादर। राती = रात में। दगल = दगला, एक प्रकार का अँगरखा या चोला। जोजू = भोग। खोजू = निशान, चिह्न, पता। सर = बाण, तीर। जानहु काग = यहाँ इंद्र के पुत्र जयत की ओर लक्ष्य है। आयसु भएउ = (इंद्र ने) कहा। बड़ सताव यह सोइ = यह वही है जो लोगों को बहुत सताया करता है।

## (३०) नागमती-वियोग-खंड

नागमती चितउर-पथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा॥
नागर काहु नारि वस परा। तेइ मोर पिउ मोसौ हरा॥
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ॥
भएउ नरायन बावन करा। राज करत राजा बलि छरा॥
करन पास लीन्हेउ कै छंदू। बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू॥
मानत भोग गोपिचंद भोगी। लेइ अपसवा जलंधर जोगी॥
लेइगा कृस्नहि गरुड़ अलोपी। कठिन बिछोह, जियहिं किमि गोपी?॥
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह?।
झुरि झुरि पींजर हौ भई, बिरह काल मोहि दीन्ह॥१॥
पिउ-बियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा निति बोलै 'पिउ पीऊ'॥
अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेइ सुवा गएउ पिउ नामा॥
बिरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज, भींजि गइ चोली॥
सूखा हिया, हार भा भारी। हरे हरे प्रान तजहि सब नारी॥
खन एक आव पेट महँ! साँसा। खनहि जाइ जिउ, होइ निरासा॥
पवन डोलावहिं, सीचहि चोला। पहर एक समुझहिं मुख-बोला॥
प्रान पयान होत को राखा?। को सुनाव पीतम कै भाखा?॥
आहि जो मारै बिरह कै, आगि उठै तेहि लागि।
हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख जरा, गा भागि॥२॥
पाट-महादेइ! हिये न हारू। समुझि जीउ, चित चेतु सँभारू॥
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा। सवरि नेह मालति पहँ आवा॥

---

(१) पथ हेरा = रास्ता देखती है। नागर = नायक। बाँवन करा = वामन रूप। छरा = छला। करन = राजा कर्ण। छंदू = छल-छंद, धूर्त्तता। झिलमिल = कवच (सीकड़ों का)। अपसवा = चल दिया। पींजर = पंजर, ठटरी। (२) बाउर = बावला। हरे हरे = धीरे धीरे। नारी = नाड़ी। चोला = शरीर। पहर एक...बोला = इतना अस्पष्ट बोल निकालता है कि मतलब समझने में पहरों लग जाते हैं। हंस = हंस और जीव। (३) पाट महादेइ = पट्ट महादेवी, पटरानी। मेरावा = मिलाप।

सखि झूमक गावै अँग मोरी। हौं झुरावँ, बिछुरी मोरि जोरी॥
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा। मो कहँ बिरह, सवति-दुख दूजा॥
सखि मानै तिउहार सब गाइ, देवारी खेलि।
हौं का गावौं कंत बिनु, रही छार सिर मेलि॥ ८॥

अगहन दिवस घटा, निसि बाढ़ी। दूभर रैनि, जाइ किमि गाढ़ी?॥
अब यहि बिरह दिवस भा राती। जरौं बिरह जस दीपक-बाती॥
काँपै हिया जनावै सीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ॥
घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप-रँग लेइगा नाहू॥
पलटि त बहुरा गा जो बिछोई। अबहुँ फिरै, फिरै रँग सोई॥
बज्र-अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलुगि-सुलुगि दगधै होइ छारा॥
यह दुख-दगध न जानै कंतू। जोबन जनम करै भसमंतू॥
पिउ सौ कहेहु सँदेसड़ा, हे भौंरा! हे काग!
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुवाँ हम्ह लाग॥ ९॥

पूस जाड़ थर थर तन काँपा। सुरुज जाइ लंका-दिसि चाँपा॥
बिरह बाढ़, दारुन भा सीऊ। कंपि कंपि मरौं, लेइ हरि जीऊ॥
कंत कहाँ लागौं ओहि हियरे। पंथ अपार, सूझ नहिं नियरे॥
सौंर सपेती आवै जूड़ी। जानहु सेज हिवंचल बूड़ी॥
चकई निसि बिछुरै, दिन मिला। हौं दिन राति बिरह कोकिला॥
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी। कैसे जियै बिछोही पखी।
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा॥
रकत ढुरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीउ समेटहि पंख॥१०॥

लागेउ माघ, परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला॥
पहल पहल तन रूई झाँपै। हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै॥

---

(८) झूमक = मनोरा झूमक नाम का गीत। झुरावँ = सूखती हूँ। जनम = जीवन। (९) दूभर = भारी, कठिन। नाहू = नाथ। सो धनि बिरहै ···लाग = अर्थात् वही धुआँ लगने के कारण मानों भौंरे और कौए काले हो गए। (१०) लंका दिसि = दक्षिण दिशा को। चाँपा जाइ = दबा जाता है। कोकिला = जलकर कोयल (काली) हो गई। सचान = बाज। जाड़ा = जाड़े में। ररि मुई = रटकर मर गई। पीउ···पंख = प्रिय आकर अब पर समेटे। (११) जड़काला = जाड़े के मौसिम मे।

आइ सूर होइ तपु, रे नाहा। तोहि विनु जाड़ न छूटै माहा॥
एहि माह उपजै रसमूलू। तू सो भौंर, मोर जोवन फूलू॥
नैन चुवहि जस महवट नीरू। तोहि विनु अंग लाग सर-चीरू॥
टप टप बूंद परहि जस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला॥
केहि क सिंगार, को पहिरु पटोरा? गीउ न हार, रही होइ डोरा॥
तुम विनु कांपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर विरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल॥ ११॥

फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ नहि सहा॥
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥
तरिवर झरहिं, झरहिं वन ढाखा। भइ ओनंत फूलि फरि साखा॥
करहिं वनसपति हिये हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू॥
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी॥
जौ पै पीउ जरत अस पावा। जरत-मरत मोहि रोष न आवा॥
राति-दिवस बस यह जिउ मोरे। लगौ निहोर कंत अब तोरे॥
यह तन जारौ छार कै, कहौ कि 'पवन! उड़ाव'।
मकु तेहि मारग उड़ि परै कंत धरै जहँ पाव॥ १२॥

चैत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी॥
पंचम विरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौं वन ढारै॥
बूड़ि उठे सब तरिवर-पाता। भीजि मजीठ, टेसु बन राता॥
बौरे आम फरै अब लागै। अबहुँ आउ घर, कंत सभागे!॥
सहस भाव फूलीं वनसपती। मधुकर घूमहि सँवरि मालती॥

---

माहा = माघ मे। महवट = मघवट, माघ की झड़ी। चीरू = चीर, घाव। सर = बाण। झोला मारना = वात के प्रकोप से अंग का सुन्न हो जाना। केहि क सिंगार? = किसका शृंगार? कहाँ का शृंगार करना? पटोरा = एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। डोरा = क्षीण होकर डोरे के समान पतली। तिनउर = तिनके का समूह। झोल = राख, भस्म; जैसे—"आगि जो लागी समुद मे टुटि टुटि खसै जो झोल"—कबीर। (१२) ओनत = झुकी हुई। निहोर लगौं = यह शरीर तुम्हारे निहोरे लग जाय, तुम्हारे काम आ जाय। (१३) पंचम = कोकिल का स्वर या पंचम राग। (वसत पचमी माघ मे ही हो जाती है इससे 'पचमी' अर्थ नहीं ले सकते।) सगरौं = सारे। बूड़ि उठे... पाता = नए पत्तो मे ललाई मानो रक्त में भीगने के कारण है।

तपै लागि अब जेठ-असाढ़ी। मोहि पिउबिनु छाजनि भइ गाढ़ी॥
तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी॥
बंध नाहिं औ कंध न कोई। बात न आव कहौं का रोई?
सॉठि नाठि, जग बात को पूछा?। बिनु जिउ फिरै मूँज-तनु छूँछा॥
भई दुहेली टेक बिहूनी। थॉभ नाहि उठि सकै न थूनी॥
बरसै मेह, चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा॥
कोरौ कहाँ ठाट नव साजा? तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा॥
अबहूँ मया-दिस्टि करि, नाह निठुर! घर आउ।
मँदिर उजार होत है, नव कै आई बसाउ॥१६॥
रोइ गँवाए बारह मासा। सहस सहस दुख एक एक साँसा॥
तिल तिल बरख बरख परि जाई। पहर पहर जुग जुग न सेराई॥
सो नहि आवै रूप मुरारी। जासौं पाव सोहाग सुनारी॥
सॉझ भए झुरि झुरि पथ हेरा। कौनि सो घरी करै पिउ फेरा?॥
दहि कोइला भइ कंत सनेहा। तोला मॉसु रही नहि देहा॥
रकत न रहा, बिरह तन गरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा॥
पाय लागि जोरै धनि हाथा। जारा नेह, जुड़ावहु, नाथा॥
बरस दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झंखि।
मानुष घर घर बझि कै, बूझै निसरी पंखि॥ १७॥
भई पुछार, लीन्ह बनबासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिलवाँसू॥
होइ खर बान बिरह तनु लागा। जौ पिउ आवै उड़हि तौ कागा॥

---

(१६) तिनउर = तिनकों का ठाट। झूरौं = सूखती हूँ। बंध = ठाट बाँधने के लिये रस्सी। कंध न कोई = अपने ऊपर (सहायक) भी कोई नहीं है। सॉठि नाठि = पूँजी नष्ट हुई। मूँज-तनु छूँछा = बिना बंधन की मूँज के ऐसा शरीर। थॉभ = खंभा। थूनी = लकड़ी की टेक। छपर छपर = तराबोर। कोरौ = छाजन की ठाट मे लगे बाँस या लकड़ी। नव कै = नए सिर से। (१७) सहस सहस = सॉस = एक एक दीर्घ निश्वास सहस्रों दुःखों से भरा था, फिर बारह महीने कितने दुःखों से भरे बीते होगे। तिल तिल ··· परि जाई = तिल भर समय एक एक वर्ष के इतना पड जाता है। सेराई = समाप्त होता है। सोहाग = (क) सौभाग्य (ख) सोहागा। सुनारी = (क) वह स्त्री (ख) सुनारिन। झुरि = सूखकर। (१८) पुछार = (क) पूछनेवाली, (ख) मयूर। चिलवाँस = चिड़िया फँसाने का एक फंदा। कागा = स्त्रियाँ बैठे कौवे को देखकर कहती हैं कि 'प्रिय आता हो तो उड़ जा।'

हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा ? ॥
धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ। जौ चित रोख न दूसर ठाँऊँ ॥
जाहि बया होइ पिउ कँठ लवा। करै सेराव सोइ गौरवा ॥
कोइल भई पुकारति रही। महरि पुकारै 'लेइ लेइ दही' ॥
पेड़ तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठि विरह कटनंसा ॥
जेहि पंखी के निअर होइ कहै बिरह कै बात।
सोई पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात ॥ १८ ॥
कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत-आँसु घुँघुची बन बोई ॥
भइ करमुखी नैन तन राती। को सेराव ? बिरहा-दुख ताती ॥
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनबासी। तहँ तहँ होइ घुंघुचि कै रासी ॥
बूँद बूँद महँ जानहु जीऊ। गुंजा गूँजि करै 'पिउ पीऊ' ॥
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते ॥
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ ॥
देखौं जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता ? ॥
नहिं पावस ओहि देसरा; नहि हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत ॥ १९ ॥

---

(१८) हारिल = (क) थकी हुई, (ख) एक पक्षी। धौरी = (क) सफेद, (ख) एक चिड़िया। पंडुक = (क) पीली, (ख) एक चिड़िया। चित रोख = (क) हृदय मे रोष, (ख) एक पक्षी। जाहि बया = जा देश लेकर जा और फिर आ (बया = आ—फारसी)। कँठलवा = गले मे लगानेवाला। गौरवा = (क) गौरवयुक्त, बड़ा; (ख) गौरा पक्षी। दही = (क) दधि, (ख) जलाई। पेड़ = पेड़ पर। जल = जल मे। तिलोरी = तेलिया मैना। कटनंसा = (क) काटता और नष्ट करता है, (ख) कटनास या नीलकंठ। निपात = पत्रहीन। (१९) घुँघुची = गुंजा। सेराव = ठंडा करे। बिंब = बिंबाफल।

## (३१) नागमती-संदेश-खंड

फिरि फिरि रोव, कोइ नहि डोला। आधी राति विहंगम बोला॥
"तू फिरि फिरि दाहै सब पाँखी। केहि दुख रैनि न लावसि आँखी"?
नागमती कारन कै रोई। का सोवै जो कंत-बिछोई॥
मनचित हुँते न उतरै मोरे। नैन क जल चुकि रहा न मोरे॥
कोइ न जाइ ओहि सिंघलदीपा। जेहि सेवाति कहँ नैना सीपा॥
जोगी होइ निसरा सो नाहू। तब हुँत कहा सँदेस न काहू॥
निति पूछौं सब जोगी जंगम। कोइ न कहै निज बात, विहंगम!॥

चारिउ चक्र उजार भए, कोइ न सँदेसा टेक।
कहौं विरह दुख आपन, बैठि सुनहु दँड एक॥ १॥

तासौं दुख कहिए, हो बीरा। जेहि सुनि कै लागै पर-पीरा॥
को होइ भिउँ अँगवै पर-दाहा। को सिंघल पहुँचावै चाहा?॥
जहँवाँ कंत गए होइ जोगी। हौं किंगरी भइ मूरि वियोगी॥
वै सिंगी पूरी, गुरु भेटा। हौं भइ भसम, न आइ समेटा॥
कथा जो कहै आइ ओहि केरी। पाँवरि होउँ, जनम भरि चेरी॥
ओहि के गुन सँवरत भइ माला। अबहुँ न बहुरा उड़िगा छाला॥
विरह गुरू, खप्पर कै हीया। पवन अधार रहै सो जीया॥

हाड़ भए सब किंगरी, नसैं भई सब ताँति।
रोवँ रोवँ तें धुनि उठै, कहौं विथा केहि भाँति?॥ २॥

पदमावति सौं कहेहु, विहंगम। कंत लोभाइ रही करि संगम॥
तू घर घरनि भई पिउ-हरता। मोहि तन दीन्हेसि जप औ बरता॥
रावट कनक सो तोकहँ भएऊ। रावट लंक मोहि कै गएऊ॥
तोहि चैन सुख मिलै सरीरा। मो कहँ हिये दुंद दुख पूरा॥

---

(१) कारन कै = करुणा करके (अधव)। तब हुँत = तब से। टेक = ऊपर लेता है। (२) बीरा = भाई। भिउँ = भीम। अँगवै = अग पर सहे। चाहा = खबर। पाँवरि = जूती। (३) घर = अपने घर मे ही। घरनि = घर-वाली, गृहिणी। रावट = महल। लंक = जलती हुई लंका।

हमहुँ बियाही संग ओहि पीऊ। आपुहि पाइ जानु पर-जीऊ॥
अबहुँ सया करु, करु जिउ फेरा। मोहिं जियाउ कंत देइ मेरा॥
मोहि भोग सौं काज न बारी। सौंह दीठि कै चाहनहारी॥
सवति न होहि तू बैरिनि, मोर कंत जेहि हाथ।
आनि मिलाव एक बेर, तोर पाँय मोर माथ॥ ३॥
रतनसेन कै माइ सुरसती। गोपीचँद जसि मैनावती॥
आँधरि बूढ़ि होइ दुख रोवा। जीवन रतन कहाँ दहुँ खोवा॥
जीवन अहा लीन्ह सो काढ़ी। भइ बिनु टेक, करै को ठाढ़ी?॥
बिनु जीवन भइ आस पराई। कहाँ सो पूत खंभ होइ आई॥
नैन दीठ नहि दिया बराहीं। घर अँधियार पूत जौ नाहीं
को रे चलै सरवन के ठाँऊँ। टेक देइ औ टेकै पाऊँ॥
तुम सरवन होइ काँवरि सजा। डार लाइ अब काहे तजा?॥
"सरवन! सरवन!" रटि मुई माता काँवरि लागि।
तुम्ह बिनु पानि न पावै, दसरथ लावै आगि॥ ४॥

---

चाहनहारी = देखनेवाली। (४) खंभ = सहारा। बराहीं = जलते है। सरवन = 'श्रमणकुमार' जिसकी कथा उत्तरापथ मे घर घर प्रसिद्ध है। (एक प्रकार के भिखमगे सरवन की मातृ-पितृ-भक्ति की कथा करताल बजाकर गाते फिरते है। यह कथा वाल्मीकि रामायण मे दशरथ ने अपने मरने से पहले कौशल्या से कही है। दशरथ ने युवावस्था में शिकार खेलते समय एक वृद्ध तपस्वी के पुत्र को हाथी के धोखे मे मार डाला था। वह मुनिपुत्र अंधे वृद्ध माता-पिता के लिये पानी लेने आया था। वृद्ध मुनि ने दशरथ को शाप दिया कि तुम भी पुत्र-वियोग मे मरोगे। दशरथ का नाम न देकर यही कथा बौद्धो के 'सामजातक' मे भी आई है। पर उसमें अंधे मुनि बुद्ध के पूर्ण उपासक कहे गए हैं और उनके जी उठने की बात है। रामायण मे 'श्रमणकुमार' शब्द नहीं आया है, केवल मुनिपुत्र लिखा है। पर इस कथा का प्रचार बौद्धो मे अधिक हुआ इसी से यह 'सरवन' अर्थात् श्रमण (बौद्ध भिक्षु) की कथा के नाम से ही देश मे प्रसिद्ध है। 'सरवन' के गीत गानेवाले आरभ में एक प्रकार के बौद्ध भिक्षु ही थे। इसका आभास इस बात से मिलता है कि सरवन के गीत गानेवालो के लिये अभी थोड़े दिन पहले तक यह नियम था कि वे दिन निकलने के पीछे न माँगा करे, मुँह अँधेरे ही माँग लिया करे)। काँवरि = बाँस के डंडे के दोनो छोरों पर बँधे हुए झाबे, जिनमे तीर्थयात्री लोग गंगाजल आदि लेकर चला करते है (सरवन अपने माता-पिता को काँवरि मे बैठाकर ढोया करते थे)।

लेइ सो सँदेस बिहंगम चला। उठी आगि सगरौं सिंघला॥
बिरह-बजागि बीच को ठेघा?। धूम सो उठा साम भए मेघा॥
भरिगा गगन लूक अस छूटे। होइ सब नखत आइ भुइँ टूटे॥
जहँ जहँ भूमि जरी भा रेहू। बिरह के दाध भई जनु खेहू॥
राहु केतु, जब लंका जारी। चिनगी उड़ी चाँद महँ परी॥
जाइ बिहंगम समुद डफारा। जरे मच्छ, पानी भा खारा॥
दाधे बन बीहड़, जड़, सीपा। जाइ निअर भा सिंघलदीपा॥

समुद तीर एक तरिवर, जाइ बैठ तेहि रूख।
जौ लगि कहा सँदेस नहि, नहि पियास, नहि भूख॥ ५॥

रतनसेन बन करत अहेरा। कीन्ह ओही तरिवर-तर फेरा॥
सीतल बिरिछ समुद के तीरा। अति उतंग ओ छाहँ गँभीरा॥
तुरय बाँधि कै बैठ अकेला। साथी और करहिं सब खेला॥
देखत फिरै सो तरिवर-साखा। लाग सुनै पंखिन्ह कै भाखा॥
पंखिन्ह महँ सो बिहंगम अहा। नागमती जासौं दुख कहा॥
पूछहि सबै बिहंगम नामा। अहो मीत! काहे तुम सामा?॥
कहेसि "मीत! मासक दुइ भए। जंबूदीप तहाँ हम गए॥

नगर एक हम देखा, गढ़ चितउर ओहि नाँव।
सो दुख कहौं कहाँ लगि, हम दाढ़े तेहि ठाँव॥ ६॥

जोगी होइ निसरा सो राजा। सून नगर जानहु धुंध बाजा॥
नागमती है ताकरि रानी। जरी बिरह, भइ कोइल-बानी॥
अब लगि जरि भइ होइहि छारा। कही न जाइ बिरह कै झारा॥
हिया फाट वह जबही कूकी। परै आँसु सब होइ होइ लूकी॥
चहूँ खंड छिटकी वह आगी। धरती जरति गगन कहँ लागी॥
बिरह-दवा को जरत बुझावा?। जेहि लागै सो सौहै धावा॥
हौं पुनि तहाँ सो दाढ़ै लागा। तन भा साम, जीउ लेइ भागा॥

का तुम हँसहु गरब कै, करहु समुद महँ केलि।
मति ओहि बिरहा बस परै, दहै अगिनि जो मेलि"॥ ७॥

सुनि चितउर-राजा मन गुना। बिधि-सँदेस मै कासौं सुना॥

---

(५) ठेघा = ठिका, ठहरा। डफारा = चिल्लाया। (७) धुँध बाजा = धुंध या अधकार छाया। बानी = वर्ण की। भइ होइहि = हुई होगी। झार = ज्वाला। लूकी = लुक। दवा = दावाग्नि।

को तरिवरि पर पंखी-बेसा। नागमती कर कहै सँदेसा ?॥
को तुँ मीत मन-चित्त-बसेरू। देव कि दानव पवन पखेरू ?॥
ब्रह्म विस्नु बाचा है तोही। सो निज बात कहै तू मोही॥
कहाँ सो नागमती तैं देखी। कहेसि बिरह जस मनहिं बिसेखी॥
हौं सोई राजा भा जोगी। जेहि कारन वह ऐसि बियोगी॥
जस तूँ पंखि महूँ दिन भरौं। चाहौं कबहि जाइ उड़ि परौं॥

पंखि! आँखि तेहि मारग लागी सदा रहाहिं।
कोइ न सँदेसी आवहि, तेहि क सँदेश कहाँहि॥ ८॥

पूछसि कहा सँदेस-बियोगू। जोगि भए न जानसि भोगू॥
दहिने संख न, सिंगी पूरै। बाएँ पूरि राति दिन झूरै॥
तेलि-बैल जस बावं फिराई। परा भँवर महँ सो न तिराई॥
तुरय, नाव, दहिने रथ हाँका। बाएँ फिरै कोहाँर क चाका॥
तोहि अस नाहीं पंखि भुलाना। उड़े सो आव जगत महँ जाना॥
एक दीप का आएउँ तोरे। सब संसार पाँय-तर मोरे॥
दहिने फिरै सो अस उजियारा। जस जग चाँद सुरुज मनियारा॥

मुहमद बाई दिसि तजा, एक स्रवन, एक आँखि।
जब तें दाहिन होइ सिला बोल पपीहा पाँखि॥ ९॥

हौं ध्रुव अचल सौं दाहिनि लावा। फिर सुमेरु चितउर-गढ़ आवा॥
देखेउँ तोरे मँदिर घमोई। मातु तोरि आँधरि भइ रोई॥
जस स्रवन बिनु अंधी अंधा। तस ररि मुई, तोहि चित बँधा॥
कहेसि मरौं, को काँवरि लेई ?। पूत नाहि, पानी को देई ?॥
गई पियास लागि तेहि साथा। पानि दीन्ह दशरथ के हाथा॥

---

(८) बसेरू = बसनेवाला। दिन भरौं = दिन बिताता हूँ। महूँ = मै भी। (९) दहिने संख = दक्षिणावर्त शंख नहीं फूँकता। झूरै = सूखता है। तिराई = पानी के ऊपर आता है। तोहि अस...भुलाना = पक्षी तेरे ऐसा नहीं भूले है, वे जानते हैं कि हम उड़ने के लिये इस संसार मे आए है। मनियार = सोनक, चमकता हुआ। मुहमद बाँई...आँखि = मुहम्मद कवि ने बाई ओर आँख और कान करना छोड़ दिया (जायसी काने थे भी) अर्थात् वाम मार्ग छोड़कर दक्षिण मार्ग का अनुसरण किया। बोल = कहलाता है। (१०) दाहिन लावा = प्रदक्षिणा की। घमोई = सत्यानासी या भँड़भाँड़ नामक कटीला पौधा जो खँडहरो या उजड़े मकानो मे प्रायः उगता है।

पानि न पियै, आगि पै चाहा। तोहि अस सुत जनमे अस लाहा॥
होइ भगीरथ करु तहँ फेरा। जाहि सबार, मरन कै बेरा॥

तू सपूत माता कर, अस परदेस न लेहि।
अब ताईं मुइ होइहि, मुए जाइ गति देहि॥१०॥

नागमती दुख बिरह अपारा। धरती सरग जरै तेहि झारा॥
नगर कोट घर बाहर सूना। नौजि होइ घर पुरुष-बिहूना॥
तू काँवरू परा बस टोना। भूला जोग, छरा तोहि लोना॥
वह तोहि कारन मरि भइ छारा। रही नाग होइ पवन अधारा॥
कहुँ बोलहि 'मो कहँ लेइ खाहू'। माँसु न, काया रचै जो काहू॥
बिरह मयूर, नाग वह नारी। तू मजार करु बेगि गोहारी॥
माँसु गिरा, पाँजर होइ परी। जोगी! अबहुँ पहुँचु लेइ जरी॥

देखि बिरह-दुख ताकर मै सो तजा बनबास।
आएउँ भागि समुद्रतट तबहुँ न छाड़ै पास॥११॥

अस परजरा बिरह कर गठा। मेघ साम भए धूम जो उठा॥
दाढ़ा राहु, केतु गा दाधा। सूरज जरा, चाँद जरि आधा॥
औ सब नखत तराईं जरहीं। टूटहि लूक, धरति महँ परहीं॥
जरै सो धरती ठावँहिं ठाऊँ। दहकि पलास जरै तेहि दाऊँ॥
बिरह-साँस तस निकसै झारा। दहि दहि परबत होहि अँगारा॥
भँवर पतंग जरैं औ नागा। कोइल, भुजइल, डोमा कागा॥
बन-पंखी सब जिउ लेइ उड़े। जल महँ मच्छ दुखी होइ बुड़े॥

महूँ जरत तहँ निकसा, समुद बुझाएउँ आइ।
समुद, पानि जरि खार भा, धुँआ रहा जग छाइ॥१२॥

राजै कहा, रे सरग-सँदेसी। उतरि आउ, मोहिं मिलु, रे बिदेसी॥
पाय टेकि तोहि लायौं हियरे। प्रेम-सँदेस कहहु होइ नियरे॥
कहा बिहंगम जो बनबासी। "कित गिरही ते होइ उदासी?॥

---

सबार = जल्दी। (११) नौजि = न, ईश्वर न करे (अवध)। काँवरू = कामरूप में जो जादू के लिये प्रसिद्ध है। लोना = लोना चमारी जो जादू में एक थी। मजार = बिल्ली। जरी = जड़ी-बूटी। (१२) परजरा = प्रज्वलित हुआ, जला। गठा = गट्ठा, ढेर। दाऊँ = दवाग्नि। भुजइल = भुजंगा नाम का काला पक्षी। डोमा कागा = बड़ा कौवा जो सर्वांग काला होता है। (१३) सरग सँदेसी = स्वर्ग से (ऊपर से) सँदेसा कहनेवाला। गिरही = गृह।

"जेहि तरिवर-तर तुम्ह अस कोऊ। कोकिल काग बराबर दोऊ॥
"धरती महँ विष-चारा परा। हारिल जानि भूमि परिहरा॥
"फिरौ वियोगी डारहि डारा। करौं चलै कहँ पंख सँवारा॥
"जियै क घरी घटति निति जाही। सँझहिं जीउ रहै, दिन नाहीं॥
जौ लहि फिरौ मुकुत होइ परौं न पींजर माहँ।
जाउँ बेगि थल आपने, है जेहि बीच निबाह" ॥१३॥

कहि संदेस बिहंगम चला। आगि लागि सगरौ सिंघला॥
घरी एक राजा गोहरावा। भा अलोप, पुनि दिस्टि न आवा॥
पंखी नावँ न देखा पाँखा। राजा होइ फिरा कै साँखा॥
जस हेरत वह पंखि हेराना। दिन एक हमहूँ करब पयाना॥
जौ लगि प्रान पिंड एक ठाऊँ। एक बार चितउर गढ़ जाऊँ॥
आवा भँवर मँदिर महँ केवा। जीउ साथ लेइ गएउ परेवा॥
तन सिंघल, मन चितउर बसा। जिउ बिसँभर नागिनि जिमि डसा॥
जेति नारि हँसि पूछहि अमिय-बचन जिउ-तंत।
रस उतरा, बिष चढ़ि रहा, ना ओहि तंत न मंत ॥१४॥

बरिस एक तेहि सिंघल भएऊ। भोग बिलास करत दिन गयऊ॥
भा उदास जौ सुना सँदेसू। सँवरि चला मन चितउर देसू॥
कँवल उदास जो देखा भँवरा। थिर न रहै अब मालति सँवरा॥
जोगी, भँवरा, पवन परावा। कित सो रहै जो चित्त उठावा?॥
जौ पै काढ़ि देइ जिउ कोई। जोगी भँवर न आपन होई॥
तजा कँवल मालति हिय घाली। अब कित थिर आछै अलि, आली॥
गंधवसेन आव सुनि बारा। कस जिउ भएउ उदास तुम्हारा?॥
मैं तुम्हही जिउ लावा, दीन्ह नैन महँ बास।
जौ तुम होहु उदास तौ यह काकर कबिलास? ॥१५॥

---

हारिल...परिहरा = कहते हैं, हारिल भूमि पर पैर नहीं रखता; चंगुल में सदा लकड़ी लिए रहता है जिसमें पैर भूमि पर न पड़े। चलै कहँ = चलने के लिये। (१४) गोहरावा = पुकारा। साँखा = शंका, चिंता। पिंड = शरीर। मँदिर महँ केवा = कमल (पद्मावती) के घर मे। बिसँभर = बेसँभाल, सुध-बुध भूला हुआ। जेति नारि = जितनी स्त्रियाँ हैं सब। जिउ तंत = जी की बात (तत्त्व)। (१५) परावा = पराए, अपने नहीं। चित्त उठावा = जाने का संकल्प या विचार किया। हिय घाली = हृदय मे लाकर।

## (३२) रत्नसेन-बिदाई-खंड

रतनसेन विनवा कर जोरी। अस्तुति जोग जीभ नहिं मोरी॥
सहस जीभ जौ होहिं, गोसाईं। कहि न जाइ अस्तुति जहँ ताईं॥
काँच रहा तुम कंचन कीन्हा। तब भा रतन जोति तुम दीन्हा॥
गंग जो निरमल-नीर कुलीना। नार मिले जल होइ मलीना॥
पानि समुद्र मिला होइ सोती। पाप हरा, निरमल भा मोती॥
तस हौं अहा मलीनी कला। मिला आइ तुम्ह, भा निरमला॥
तुम्ह मन आवा सिंघलपुरी। तुम्ह तै चढ़ा राज औ कुरी॥
सात समुद तुम राजा, सरि न पाव कोइ खाट।
सबै आइ सिर नावहिं जहँ तुम साजा पाट॥ १॥
अब विनती एक करौं, गोसाईं। तौ लगि कया जीउ जब ताईं॥
आवा आजु हमार परेवा। पाती आनि दीन्ह मोहि देवा!॥
राज-काज औ भुइँ उपराहीं। सत्रु भाइ सम कोई नाहीं॥
आपन आपन करहि सो लीका। एकहि मारि एक चह टीका॥
भए अमावस नखतन्ह राजू। हम्ह कै चंद चलावहु आजू॥
राज हमार जहाँ चलि आवा। लिखि पठइनि अब होइ परावा॥
उहाँ नियर दिल्ली सुलतानू। होइ जो भोर उठै जिमि भानू॥
रहहु अमर महि गगन लगि तुम महि लेइ हम्ह आउ।
सीस हमार तहाँ निति जहाँ तुम्हारा पाउ॥ २॥
राजसभा पुनि उठी सवारी। "अनु, विनती राखिय पति भारी॥

---

(१) कुरी = कुल, कुलीनता। खाट = खटाता है, ठहरता है। सरि न पाव...खाट = बराबरी करनेमे कोई नहीं ठहर सकता। (२) देवा = हे देव! उपराहीं = ऊपर। लीका करहिं = अपना सिक्का जमाते हैं। लीका = थाप। हम्ह कै चाँद...आजू = उन नक्षत्रो के बीच चद्रमा (उनका स्वामी) बनाकर हमे भेजिए। भोर = (क) प्रभात, (ख) भूला हुआ, असावधान। महि लेइ... आउ = पृथ्वी पर हमारी आयु लेकर। (३) राजसभा = रत्नसेन के साथियो की सभा। सवारी = सब। अनु = हाँ, यही बात है।

भाइन्ह माहँ होइ जिनि फूटी। घर के भेद लंक अस टूटी॥
बिरवा लाइ न सूखै दीजै। पावै पानि दिस्टि सो कीजै॥
आनि रखा तुम दीपक लेसी। पै न रहै पाहुन परदेसी॥
जाकर राज जहाँ चलि आवा। उहै देस पै ताकहँ भावा॥
हम तुम नैन घालि कै राखे। ऐसि भाख एहि जीभ न भाखे॥
दिवस देहु सह कुसल सिधावहि। दीरघ आइ होइ, पुनि आवहि"॥

सबहि विचार परा अस, भा गवने कर साज।
सिद्धि गनेस मनावहिं, विधि पुरवहु सब काज॥ ३॥

बिनय करै पदमावति बारी। "हौं पिउ! जैसी कुंद नेवारी॥
मोहि असि कहाँ सो मालति वेली। कदम सेवती चंप चमेली॥
हौं सिंगारहार जस तागा। पुहुप-कली अस हिरदय लागा॥
हौं सो बसंत करौं निति पूजा। कुसुम गुलाल सुदरसन कूजा॥
बकुचन विनवौं रोस न मोही। सुनु, बकाउ तजि चाहु न चूही॥
नागसेर जो है मन तोरे। पूजि न सकै बोल सरि मोरे॥
होइ सदवरग लीन्ह मै सरना। आगे करु जो, कंत! तोहि करना"॥

केत बारि समुझावै, भँवर न काँटै बेध।
कहै मरौं पै चितउर, जज्ञ करौं असुमेध॥ ४॥

गवन-चार पदमावति सुना। उठा घसकि जिउ औ सिर धुना॥
गहबर नैन आए भरि आँसू। छाँड़व यह सिंघल कबिलासू॥
छाँड़िउँ नैहर, चलिउँ बिछोई। एहि रे दिवस कहँ हौं तब रोई॥
छाँड़िउँ आपन सखी सहेली। दूरि गवन, तजि चलिउँ अकेली॥
जहाँ न रहन भएउ विनु चालू। होतहि कस न तहाँ भा कालू॥

---

फूटी = फूट। दीपक लेसी = पद्मावती ऐसा दीपक प्रज्वलित करके। पाहुन = अतिथि। (४) मालति = अर्थात् नागमती। कदम सेवती = (क) चरणसेवा करती है, (ख) कदंब और सफेद गुलाब। हौं सिंगारहार...तागा = हार के बीच पड़े हुए डोरेके समान तुम हो। पुहुप-कली...लागा = कली के हृदय के भीतर इस प्रकार पैठे हुए हो। बकुचन = (क) बद्धाजलि, जुड़ा हुआ हाथ, (ख) गुच्छा। बकाउ = बकावली। नागसेर = (क) नागमती, (ख) एक फूल। बोल = एक झाड़ी जो अरब, शाम की ओर होती है। केत बारि = (क) केतकी-रूपवाला, (ख) कितना ही वह स्त्री। (५) घसकि उठा = दहल उठा। गहबर = गीले। होतहि...कालू = जन्म लेते ही क्यों न मर गई?

नैहर आइ काह सुख देखा ?। जनु होइगा सपने कर लेखा ॥
राखत बारि सो पिता निछोहा। कित बियाहि अस दीन्ह बिछोहा ?॥
हिये आइ दुख बाजा, जिउ जानहु गा छेकि।
मन तेवान कै रोवै हर मंदिर कर टेकि ॥ ५ ॥
पुनि पदमावति सखी बोलाई। सुनि कै गवन मिलै सब आई ॥
मिलहु, सखी ! हम तहँवाँ जाही। जहाँ जाइ पुनि आउब नाहीं ॥
सात समुद्र पार वह देसा। कित रे मिलन, कित आव सँदेसा ॥
अगम पंथ परदेस सिधारी। न जनौं कुसल कि बिथा हमारी ॥
पितै न छोह कीन्ह हिय माहाँ। तहँ को हमहि राख गहि बाहाँ ? ॥
हम तुम मिलि एकै सँग खेला। अंत बिछोह आनि गिउ मेला ॥
तुम्ह अस हित संघती पियारी। जियत जीउ नहिं करौं निनारी ॥
कंत चलाई का करौं आयसु जाइ न मेटि।
पुनि हम मिलहि कि ना मिलहि, लेहु सहेली भेटि ॥ ६ ॥
धनि रोवत रोवहि सब सखी। हम तुम्ह देखि आपु कहँ झँखी ॥
तुम्ह ऐसी जौ रहै न पाई। पुनि हम काह जो आहिं पराई ॥
आदि अंत जो पिता हमारा। ओहु न यह दिन हिये बिचारा ॥
छोह न कीन्ह निछोही ओहू। का हम्ह दोष लाग एक गोहूँ ॥
मकु गोहूँ कर हिया चिराना। पै सो पिता न हिये छोहाना ॥
औ हम देखा सखी सरेखा। एहि नैहर पाहुन के लेखा ॥
तब तेइ नैहर नाहीं चाहा। जौ ससुरारि होइ अति लाहा ॥
चालन कहँ हम अवतरी, चलन सिखा नहि आय।
अब सो चलन चलावै, को राखै गहि पाय ? ॥ ७ ॥
तुम बारी, पिउ दुहुँ जग राजा। गरब किरोध ओहि पै छाजा ॥
सब फर फूल ओहि के साखा। चहै सो तूरै, चाहै राखा ॥

---

बाजा = पड़ा। तेवान = सोच, चिंता। हर मंदिर = प्रत्येक घर मे। ( ६ ) बिथा = दुःख। गिउ मेला = गले पडा। ( ७ ) झखी = झीखी, पछताई। का हम्ह दोष...गोहूँ = हम लोगो को एक गेहूँ के कारण क्या ऐसा दोष लगा ( मुसलमानो के अनुसार जिस पौधे के फल को खुदा के मना करने पर भी हौवा ने आदम को खिलाया था वह गेहूँ था। इसी निषिद्ध फल के कारण खुदा ने हौवा को शाप दिया और दोनो को बहिश्त से निकाल दिया )। चिराना = बीच से चिर गया। छोहाना = दया की। सरेखा = चतुर। ( ८ ) तूरै = तोड़े।

आयसु लिहे रहिहु निति हाथा। सेवा करिहु लाइ भुइँ माथा॥
वर पीपर सिर ऊभ जो कीन्हा। पाकरि तिन्हहिं छीन फर दीन्हा॥
वौरि जो पौढ़ि सीस भुइँ लावा। वड़ फल सुफल ओहि जग पावा॥
आस जो फरि कै नवै तराहीं। फल अमृत भा सब उपराहीं॥
सोइ पियारी पियहि पिरीती। रहै जो आयसु सेवा जीती॥

पत्रा काढ़ि गवन दिन देखहि, कौन दिवस दहुँ चाल।
दिसासूल चक जोगिनी सौंह न चलिए, काल॥ ८॥

अदित सूक पच्छिउँ दिसि राहू। वीफै दखिन लंक-दिसि दाहू॥
सोम सनीचर पुरुव न चालू। मंगर वुद्ध उतर दिसि कालू॥
अवसि चला चाहै जो कोई। ओपद कहौं, रोग नहिं होई॥
मंगल चलत मेल मुख धनिया। चलत सोम देखै दरपनिया॥
सूकहि चलत मेल मुख राई। वीफै चलै दखिन गुड़ खाई॥
अदित तँवोल मेलि मुख मंडै। वायविरंग सनीचर खंडै॥
वुद्धहि दही चलहु करि भोजन। ओषद इहै, और नहिं खोजन॥

अव सुनु चक्र जोगिनी, ते पुनि थिर न रहाहिं।
तीसौ दिवस चंद्रमा आठो दिसा फिराहि॥ ९॥

वारह ओनइस चारि सताइस। जोगिनि परिच्छउँ दिसा गनाइस॥
नौ सोरह चौविस औ एका। दक्खिन पुरुव कोन तेइ टेका॥
तीन इगारह छविस अठारहु। जोगिनि दक्खिन दिसा विचारहु॥
दुइ पचीस सत्रह औ दसा। दक्खिन पछिउँ कोन विच वसा॥
तेइस तीस आठ पंद्रहा। जोगिनि होहिं पुरुव सामुहा॥
चौदह वाइस ओनतिस साता। जोगिनि ऊत्तर दिसि कहँ जाता॥
वीस अठाइस तेरह पाँचा। उत्तर पछिउँ कोन तेइ नाचा॥

एकइस औ छ जोगिनि उतर पुरुव के कोन।
यह गनि चक्र जोगिनि वाँचु जौ चह सिध होन॥१०॥

परिवा, नवमी पुरुव न भाए। दूइज दसमी उतर अदाए॥

---

ऊभ = ऊँचा, उठा हुआ। वौंरि = लता। पौढि = लेट कर। तराहा = नीचे। सेवा जीता = सेवा में सबसे जीती हुई अर्थात् बढ़कर रहे। (९) अदित = आदित्यवार। सूक = शुक्र। खंडै = चबाय। (१०) दसा = दस। सामुहा = सामने। वाँचु = तू बच। (११) न भाए = नहीं अच्छा है। अदाएँ = वाम, बुरा।

तीज एकादसि अगनिउ मारै। चौथि, दुवादसि नैऋत वारै॥
पाँचइँ तेरसि दखिन रमेसरी। छठि चौदसि पच्छिउँ परमेसरी॥
सतमी पूनिउँ वायब आछी। अठइँ अमावस ईसन लाछी॥
तिथि नछत्र पुनि बार कहीजै। सुदिन साध प्रस्थान धरीजै॥
सगुन दुघरिया लगन साधना। भद्रा औ दिकसूल वाँचना॥
चक्र जोगिनी गनै जो जानै। पर वर जीति लच्छि घर आनै॥

सुख समाधि आनंद घर कीन्ह पयाना पीउ।
थरथराइ तन काँपै धरकि धरकि उठ जीउ॥११॥

मेष, सिंह, धन पूरुब वसै। बिरिख, मकर कन्या जम-दिसै॥
मिथुन तुला औ कुंभ पछाहाँ। कनक, मीन, बिरछिक उतराहाँ॥
गवन करै कहँ उगरै कोई। सनमुख सोम लाभ बहु होई॥
दहिन चंद्रमा सुख सरवदा। बाएँ चंद त दुख आपदा॥
अदित होइ उत्तर कहँ कालू। सोम काल वायब नहिं चालू॥
भौम काल पच्छिउँ, बुध निऋता। गुरु दक्खिन औ सुक अगनइता॥
पूरव काल सनीचर बसै। पीठि काल देइ चलै त हँसै॥

धन नछत्र औ चंद्रमा औ तारा बल सोइ।
समय एक दिन गवनै लछमी केतिक होइ॥१२॥

पहिले चाँद पुरुब दिसि तारा। दूजे बसै इसान विचारा॥
तीजे उतर औ चौथे वायब। पँचएँ पच्छिउँ दिसा गनाइब॥
छठएँ नैऋत, दक्खिन सतएँ। बसै जाइ अगनिउँ सो अठएँ॥
नवएँ चंद्र सो पृथिवी वासा। दसएँ चंद जो रहै अकासा॥
ग्यरहें चंद पुरुब फिरि जाई। बहु कलेस सौ दिवस बिहाई॥
असुनी, भरनि, रेवती भली। मृगसिर, मूल, पुनरबसु वली॥
पुष्य, ज्येष्ठा, हस्त, अनुराधा। जो सुख चाहै पूजै साधा॥

---

अगनिउ = आग्नेय दिशा। मारै = घातक है। वारै = बचावे। रमेसरी = लक्ष्मी। परमेसरी = देवी। बायब = वायव्य। ईसन = ईशान कोण। लाछी = लक्ष्मी। सगुन दुघरिया = दुघरिया मुहूर्त्त जो होरा के अनुसार निकाला जाता है और जिसमें दिन का विचार नहीं किया जाता, रात दिन को दो दो घड़ियो मे विभक्त करके राशि के अनुसार शुभाशुभ का विचार किया जाता है। (१२) बिरछिक = वृश्चिक राशि। उगरै = निकले। अगनइता = आग्नेय दिशा।

तिथि, नछत्र और वार एक अस्ट सात खँड भाग।
आदि अंत बुध सो एहि दुख सुख अंकम लाग ॥१३॥

परिवा, छट्टि, एकादसि नंदा। दुइज, सत्तमी, द्वादसि मंदा॥
तीज, अस्टमी, तेरसि जया। चौथि चतुरदसि नवमी खया॥
पूरन पूनिउँ, दसमी, पाँचै। सुक्रै नंदै, बुध भए नाचै॥
अदित सौ हस्त नखत सिधि लहिए। वीफै पुष्य स्रवन ससि कहिए॥
भरनि रेवती बुध अनुराधा। भए अमावस रोहिनि साधा॥
राहु चंद्र भू संपति आए। चंद गहन तव लाग सजाए॥
सनि रिकता कुज अज्ञा लीजै। सिद्धि-जोग गुरु परिवा कीजै॥

छठे नछत्र होइ रवि, ओहि अमावस होइ।
वीचहि परिवा जौ मिलै सुरुज-गहन तव होइ॥१४॥

'चलहु चलहु' भा पिउ कर चालू। घरी न देख लेत जिउ कालू॥
समदि लोग पुनि चढ़ी विवाना। जेहि दिन डरी सो आइ तुलाना॥
रोवहि मात पिता औ भाई। कोउ न टेक जौ कंत चलाई॥
रोवहि सब नैहर सिघला। लेइ बजाइ कै राजा चला॥
तजा राज रावन, का केहू?। छाँड़ा लंक विभीषन लेहू॥
भरी सखी सब भेंटत फेरा। अंत कंत सौ भएउ गुरेरा॥
कोउ काहू कर नाहि निआना। मया मोह बाँधा अरुझाना॥

कंचन-कया सो रानी रहा न तोला माँसु।
कंत कसौटी घालि कै चूरा गढ़ै कि हाँसु॥१५॥

जब पहुँचाइ फिरा सब कोऊ। चला साथ गुन अवगुन दोऊ॥
औ सँग चला गवन सब साजा। उहै देइ अस पारै राजा॥
डोली सहस चलीं सँग चेरी। सबै पदमिनी सिंघल केरी॥
भले पटोर जराव सँवारे। लाख चारि एक भरे पेटारे॥

---

(१४) नदा = आनंददायिनी, शुभ। मदा = अशुभ। जया = विजय देनेवाली। खया = क्षय करनेवाली। सनि रिकता = शनि रिक्ता; शनिवार रिक्ता तिथि या खाली दिन्। (१५) समदि = विदा के समय मिलकर (समदन = विदाई; जैसे, पितृ समदन अमावास्या)। आइ तुलाना = आ पहुँचा। टेक = पकड़ता है। का केहू = और कोई क्या है?। गुरेरा = देखा-देखी, साक्षात्कार। निआना = निदान, अंत में। चूरा = कड़ा। हाँसु = हँसली नाम का गले का गहना। (१६) जराव = जड़ाऊ।

रतन पदारथ मानिक, मोती। काढ़ि भँडार दीन्ह रथ जोती॥
परखि सो रतन पारखिन्ह कहा। एक एक दीप एक एक लहा॥
सहसन पाँति तुरय के चली। औ सौ पाँति हस्ति सिंघली॥
लिखनी लागि जौ लेखै, कहै न परै जोरि।
अरब, खरब दस, नील, संख औ अरबुद पदुम करोरि॥१६॥
देखि दरब राजा गरबाना। दिस्टि माहँ कोइ और न आना॥
जौ मैं होहुँ समुद के पारा। को है मोहिं सरिस संसारा॥
दरब ते गरब, लोभ बिष-मूरी। दत्त न रहै, सत्त होइ दूरी॥
दत्त सत्त हैं दूनौं भाई। दत्त न रहै, सत्त पै जाई॥
जहाँ लोभ तहँ पाप सँघाती। सँचि कै मरै आन कै थाती॥
सिद्ध जो दरब आगि कै थापा। कोई जार, जारि कोइ तापा॥
काहू चाँद, काहु भा राहू। काहू अमृत, विष भा काहू॥
तस भुलान मन राजा लोभ पाप अँधकूप।
आइ समुद्र ठाढ़ भा कै दानी कर रूप॥१७॥

---

एक एक दीप.....लहा = एक एक रत्न का मोल एक एक द्वीप था। (१७) दत्त = दान। सत्त = सत्य। सँचि कै = संचित करके। सिद्ध जो...थापा = जो सिद्ध है वे द्रव्य को अग्नि ठहराते हैं। थापा = थापते हैं, ठहराते हैं। दानी = दान लेनेवाला, भिक्षुक। कै दानी कर रूप = मंगन का रूप धरकर।

## (३३) देशयात्रा-खंड

बोहित भरे, चला लेइ रानी। दान माँगि सत देखै दानी॥
लोभ न कीजै, दीजै दानू। दान पुन्नि तें होइ कल्यानू॥
दरब-दान देवै विधि कहा। दान मोख होइ, दुःख न रहा॥
दान आहि सब दरब क जूरू। दान लाभ होइ, बाँचै मूरू॥
दान करै रच्छा मँझ नीरा। दान खेइ कै लावै तीरा॥
दान करन दै दुइ जग तरा। रावन सँचा, अगिनि महँ जरा॥
दान मेरु बढ़ि लागि अकासा। सैति कुबेर मुए तेहि पासा॥

चालिस अंस दरब जहँ एक अंस तहँ मोर।
नाहि त जरै कि बूड़ै, की निसि मूसहि चोर॥ १॥

सुनि सो दान राजै रिस मानी। केइ बौराएसि बौरे दानी॥
सोई पुरुष दरब जेइ सैती। दरबहिं तै सुनु बातैं एती॥
दरब ते गरब करै जे चाहा। दरब ते धरती सरग बेसाहा॥
दरब ते हाथ आव कबिलासू। दरब ते अछरी चाँड़ न पासू॥
दरब तें निरगुन होइ गुनवंता। दरब तें कुबुज होइ रूपवंता॥
दरब रहै भुइँ दिपै लिलारा। अस मन दरब देइ को पारा?॥
दरब ते धरम करम औ राजा। दरब ते सुद्ध बुद्धि, बल गाजा॥

कहा समुद, रे लोभी! बैरी दरब, न झाँपु।
भएउ न काहू आपन, मूँद पेटारी साँपु॥ २॥

आधे समुद ते आए नाहीं। उठी बाउ आँधी उतराहीं॥
लहरैं उठी समुद उलथाना। भूला पंथ, सरग नियराना॥

---

(१) जूरू = जोड़ना। सँचा = संचित किया। दान = दान से। सैति = सहेजकर; संचित करके। (२) सैति = सचित किया। एती = इतनी। बेसाहा = खरीदते हैं। कुबुज = कुबड़ा। दरब रहै...लिलारा = द्रव्य धरती मे गड़ा रहता है और चमकता है माथा (असंगति का यह उदाहरण इस कहावत के रूप मे भी प्रसिद्ध है, "गाड़ा है मँडार, बरत है लिलार")। देइ को पारा = कौन दे सकता है। मूँद = मूँदा हुआ, बंद। (३) उतराहीं = उत्तर की हवा।

अदिन आइ जौ पहुँचै काऊ। पाहन उड़ै बहै सो बाऊ॥
बोहित चले जो चितउर ताके। भए कुपंथ, लंक-दिसि हाँके॥
जो लेइ भार निबाह न पारा। सो का गरब करै कंधारा?॥
दरब-भार सँग काहु न उठा। जेइ सँता नाही सौं रुठा॥
गहे पखान पंखि नहि उड़ै। 'मौर मोर' जो करै सो बुड़ै॥

दरब जो जानहिं आपना, भूलहि गरब मनाहिं।
जौ रे उठाइ न लेइ सके, बोरि चले जल माहि॥ ३॥

केवट एक बिभीषन केरा। आव मच्छ कर करत अहेरा॥
लंका कर राकस अति कारा। आवै चला होइ अँधियारा॥
पाँच मूँड़, दस बाहीं ताही। दहि भा सावँ लंक जब दाही॥
धुआँ उठै मुख साँस सँघाता। निकसै आगि कहै जौ बाता॥
फेंकरे मूँड़ चँवर जनु लाए। निकसि दाँत मुँह-बाहर आए॥
देह रीछ कै, रीछ डेराई। देखत दिस्टि धाइ जनु खाई॥
राते नैन नियर जौ आवा। देखि भयावन सब डर खावा॥

धरती पायँ सरग सिर, जनहुँ सहस्राबाहु।
चाँद सूर औ नखत महँ अस देखा जस राहु॥ ४॥

बोहित बहे, न मानहि खेवा। राजहि देखि हंस मन देवा॥
बहुतै दिनहि बार भइ दूजी। अजगर केरि आइ मुख पूजी॥
यह पदमिनी बिभीषन पावा। जानहु आजु अजोध्या छावा॥
जानहु रावन पाई सीता। लंका बसी राम कहँ जीता॥
मच्छ देखि जैसे बग आवा। टोइ टोइ भुइँ पावँ उठावा॥
आइ नियर होइ किन्ह जोहारू। पूछा खेम कुसल बेवहारू॥
जो बिस्वासघात कर देवा। बड़ बिसवास करै कै सेवा॥

कहाँ, मीत! तुम भूलेहु औ आएहु केहि घाट?।
हौं तुम्हार अस सेवक, लाइ देउँ तोहि बाट॥ ५॥

गाढ़ परे जिउ बाउर होई। जो भलि बात कहै भल सोई॥

---

अदिन = बुरा दिन। काऊ = कभी। मनाहिं = मन मे। (४) सँघाता = संग। फेंकरे = नगे, बिना टोपी या पगड़ी के (अवधी)। चँवर जनु लाए = चँवर के से खड़े बाल लगाए हुए। चाँद, सूर, नखत = पद्मावती, राजा और सखियाँ। (५) देवा = देव, राक्षस (फारसी)। बग = बगला। लाइ देउँ तोहि बाट = तुझे रास्ते पर लगा दूँ।

राजै राकस नियर बोलावा। आगे कीन्ह, पंथ जनु पावा॥
करि विस्वास राकसहि बोला। बोहित फेरु, जाइ नहिं डोला॥
तू खेवक खेवकन्ह उपराहीं। बोहित तीर लाउ गहि बाही॥
तोहि तें तीर घाट जौ पावौं। नौगिरिही तोड़र पहिरावौं॥
कुंडल स्रवन देउँ पहिराई। महरा कै सौंपौं महराई॥
तस मै तोरि पुरावौं आसा। रकसाई कै रहे न बासा॥
राजै बीरा दीन्हा, नहिं जाना विसवास।
वग अपने भख कारन होइ मच्छ कर दास॥ ६॥
राकस कहा "गोसाईं विनाती। भल सेवक राकस कै जाती॥
जहिया लंक दही श्रीरामा। सेव न छाँड़ा दहि भा सामा॥
अवहूँ सेव करौं सँग लागे। मनुप भुलाइ होउँ तेहि आगे॥
सेतुबंध जहँ राघव बाँधा। तहँवाँ चढ़ौं भार लेइ काँधा॥
पै अब तुरत दान किछु पावौं। तुरत खेइ ओहि बाँध चढ़ावौं॥
तुरत जो दान पानि हँसि दीजै। थोरे दान बहुत पुनि लीजै॥
सेव कराइ जौ दीजै दानू। दान नाहि, सेवा कर मानू॥
दिया बुझा, सत ना रहा हुत निरमल जेहि रूप।
आँधी बोहित उड़ाई कै लाइ कीन्ह अँधकूप॥ ७॥
जहाँ समुद मझधार मँड़ारू। फिरै पानि पातार-दुआरू॥
फिरि फिरि पानि ठाँव ओहि मरै। फेरि न निकसै जो तहँ परै॥
ओही ठाँव महिरावन-पुरी। हलका तर जम-कातर छुरी॥
ओही ठाँव महिरावन मारा। परे हाड़ जनु खरे पहारा॥
परी रीढ़ जो तेहि कै पीठी। सेतुबंध अस आवै दीठी॥
राकस आइ तहाँ के जुरे। बोहित भँवर-चक महँ परे॥
फिरै लगै बोहित तस आई। जस कोहाँर धरि चाक फिराई॥
राजै कहा, रे राकस! जानि बूझि बौरासि।
सेतुबंध यह देखै, कस न तहाँ लेइ जासि?॥ ८॥

---

(६) नौगिरिही = कलाई में पहनने का, स्त्रियों का, एक गहना जो बहुत से दानों को गूँथकर बनाया जाता है। तोड़र = तोड़ा, कलाई मे पहनने का गहना। महरा = मल्लाहों का सरदार। रकसाई = राक्षसपन। बासा = गंध। विसवास = विश्वासघात। (७) जहिया = जब। पानि = हाथ से। हुत = था। जेहि = जिससे। (८) मँड़ारू = दह, गड्ढा। हलका = हिलोर, लहर। तर = नीचे। बौरासि = बावला होता है तू।

'सेतुबंध' सुनि राकस हँसा। जानहु सरग टूटि भुइँ खसा॥
को बाउर ? बाउर तुम देखा। जो बाउर, भख लागि सरेखा॥
पाँखी जो बाउर घर माटी। जीभ बढ़ाइ भखै सब चाँटी॥
बाउर तुम जो भखै कह आने। तबहिं न समझे, पंथ भुलाने॥
महिरावन कै रीढ़ जो परी। कहहु सो सेतुबंध, बुधि छरी॥
यह तो आहि महिरावन-पुरी। जहवाँ सरग नियर, घर दुरी॥
अब पछिताहु दरब जस जोरा। करहु सरग चढ़ि हाथ मरोरा॥
जो रे जियत महिरावन लेत जगत कर भार।
सो मरि हाड़ न लेइगा, अस होइ परा पहार॥ ९॥
बोहित भवँहिं, भँवै सब पानी। नाचहिं राकस आस तुलानी॥
बूड़हिं हस्ती, घोर, मानवा। चहुँ दिसि आइ जुरे मँस-खवा॥
ततखन राज-पंखि एक आवा। सिखर टूट जस डसन डोलावा॥
परा दिस्टि वह राकस खोटा। ताकेसि जैस हस्ति बड़ मोटा॥
आइ ओही राकस पर टूटा। गहि लेइ उड़ा, भँवर जल छूटा॥
बोहित टूक टूक सब भए। एहु न जाना कहँ चलि गए॥
भए राजा रानी दुइ पाटा। दूनौं बहे, चले दुइ बाटा॥
काया जीउ मिलाइ कै, मारि किए दुइ खंड।
तन रोवै धरती परा; जीउ चला बरम्हंड॥१०॥

---

(९) जो बाउर...सरेखा = पागल भी अपना भक्ष्य ढूँढ़ने के लिये चतुर होता है। पाँखी = फतिंगा। घरमाटी = मिट्टी के घर मे। छरी = छली गई, भ्रांत हुई। (१०) भवँहिं = चक्कर खाते हैं। आस तुलानी = आशा जाती रही। मानवा = मनुष्य। डहन = डैना, पर।

## (३४) लक्ष्मी-समुद्र-खंड

मुरुछि परी पदमावति रानी। कहाँ जीउ, कहँ पीउ, न जानी॥
जानहु चित्र-मूर्त्ति गहि लाई। पाटा परी वही तस जाई॥
जनम न सहा पवन सुकुवाँरा। तेइ सो परी दुख-समुद अपारा॥
लछिमी नावँ समुद कै बेटी। तेहि कहँ लच्छि होइ जहँ भेंटी॥
खेलति अही सहेलिन्ह सेंती। पाटा जाइ लाग तेहि रेती॥
कहेसि सहेली "देखहु पाटा। मूरति एक लागि बहि घाटा॥
जौ देखा, तिवइ है साँसा। फूल मुवा, पै मुई न बासा॥
रंग जो राती प्रेम के, जानहु बीरवहूटि।
आइ वही दधि-समुद महँ, पै रंग गएउ न छूटि॥ १॥
लछमी लखन बतीसौ लखी। कहेसि "न मरै, सँभारहु, सखी!॥
कागर पतरा ऐस सरीरा। पवन उड़ाइ परा मँझ नीरा॥
लहरि झकोर उदधि-जल भीजा। तबहूँ रूप-रंग नहि छीजा"॥
आपु सीस लेइ बैठी कोरै। पवन डोलावै सखि चहुँ ओरै॥
बहुरि जो समुझि परा तन जीऊ। माँगेसि पानि बोलि कै पीऊ॥
पानि पियाइ सखी मुख धोई। पदमिनि जनहुँ कवँल सँग कोई॥
तब लछिमी दुख पूछा ओही। "तिरिया! समुझि बात कहु मोहीं॥
देखि रूप तोर आगर, लागि रहा चित मोर।
केहि नगरी कै नागरी, काह नावँ धनि तोर?"॥ २॥
नैन पसार देख धन चेती। देखै काह, समुद कै रेती॥
आपन कोइ न देखेसि तहाँ। पूछेसि, तुम्ह हौ को? हौ कहाँ?॥
कहाँ सो सखी कँवल सँग कोई। सो नाहीं, मोहि कहाँ बिछोई॥
कहाँ जगत महँ पीउ पियारा। जो सुमेरु, बिधि गरुअ सँवारा॥

---

(१) न जानी = न जाने। अही = थी। सेंती = से। रेती = बालू का किनारा। तीवइ = स्त्री मे। (२) कागर = कागज। पतरा = पतला। उड़ाइ = उड़कर। कोरै = गोद में। बोलि कै = पुकारकर। समुझि = सुध करके। (३) चेती = चेत करके, होश मे आकर। देखै काह = देखती क्या है कि।

साकर गरुई प्रीति अपारा। चढ़ी हिये जनु चढ़ा पहारा॥
रहौं जो गरुइ प्रीति सौं झाँपी। कैसे जिऔं भार-दुख चाँपी?॥
केवल-करी जिमि चूरी नाहाँ। दीन्ह बहाइ उदधि जल माहाँ॥

आवा पवन बिछोह कर, पाट परी बेकरार।
तरिवर तजा जौं चूरि कै, लागौं केहि के डार?॥ ३॥

कहेन्हि "न जानहिं हम तोर पीऊ। हम तोहिं पाव, रहा नहि जीऊ॥
पाट परी आई तुम वही। ऐस न जानहिं दुहुँ कहँ अही"॥
तब सुधि पदमावति मन भई। सँवरि बिछोह मुरुछि मरि गई॥
नैनहि रकत-सुराही ढरै। जनहुँ रकत सिर काटे परै॥
खन चेतै खन होइ बेकरारा। भा चंदन बंदन सब छारा॥
बाउरि होइ परी पुनि पाटा। देहुँ बहाइ कंत जेहि घाटा॥
को मोहिं आगि देइ रचि होरी। जियत न बिछुरै सारस-जोरी॥

जेहि सिर परा बिछोहा, देहु ओहि सिर आगि।
लोग कहै यह सिर चढ़ी, हौं सो जरौं पिउ लागि॥ ४॥

काया-उदधि चितव पिउ पाहाँ। देखौं रतन सो हिरदय माहाँ॥
जनहुँ आहि दरपन मोर हीया। तेहि महँ दरस देखावै पीया॥
नैन नियर, पहुँचत सुठि दूरी। अब तेहि लागि मरौं मैं भूरी॥
पिउ हिरदय महँ भेंट न होई। को रे मिलाव, कहौं केहि रोई?॥
साँस पास निति आवै जाई। सो न सँदेस कहै मोहिं आई॥
नैन कौड़िया होइ मँड़राहीं। थिरकि मार पै आवै नाहीं॥
मन भँवरा भा कवँल-बसेरी। होइ मरजिया न आनै हेरी॥

साथी आथि निआथि जो सकै साथ निरबाहि।
जौं जिउ जारे पिउ मिलै, भेंटु रे जिउ! जरि जाहि॥ ५॥

सतो होइ कहँ सीस उघारा। घन महँ बीजु घाव जिमि मारा॥

---

झाँपी = आच्छादित। चाँपी = दबी हुई। चूरी = चूर्ण किया। लागौं केहि के डार = (मुहा०) किसकी डाल लगूँ अर्थात् किसका सहारा लूँ? (४) पाव = पाया। सँवरि = स्मरण करके। सर = चिता। (५) थिरकि मार = थिरकता या चारो ओर नाचता है। साथी.....निरबाहि = साथी वही है जो धन और दरिद्रता दोनों में साथ निभा सके। आथि = सार, पूँजी। निआथि = निर्धनता। (६) घन महँ...मारा = काले बालो के बीच माँग ऐसी है जैसे बिजली की दरार।

सेंदुर, जरै आगि जनु लाई। सिर कै आगि सँभारि न जाई॥
छूटि माँग अस मोति-पिरोई। बारहि बार जरै जौं रोई॥
टूटहि मोति बिछोह जो भरै। सावन-बूद गिरहिं जनु झरे॥
झहर झहर कै जोबन बरा। जानहुँ कनक अगिनि महँ परा॥
अगिनि माँग, पै देइ न कोई। पाहुन पवन पानि सब कोई॥
खीन लंक टूटी दुखभरी। बिनु रावन केहि बर होइ खरी॥

रोवत पंखि बिमोहे जस कोकिला-अरंभ।
जाकरि कनक-लता सो बिछुरा पीतम खंभ॥ ६॥

लछिमी लागि बुझावै जीऊ। "ना मरु बहिन! मिलिहि तोर पीऊ॥
पीउ पानि, होउ पवन-अधारी। जसि हौं तहूँ समुद कै बारी॥
मै तोहि लागि लेउँ खटवाटू। खोजिहि पिता जहाँ लगि घाटू॥
हौ जेहि मिलौ ताहि बड़ भागू। राजपाट औ देउँ सोहागू"॥
कहि बुझाई लेइ मँदिर सिधारी। भइ जेवनार न जेवै बारी॥
जेहि रे कंत कर होइ बिछोवा। कहँ तेहि भूख, कहाँ सुख-सोवा?॥
कहाँ सुमेरु, कहाँ वह सेसा। को अस तेहि सौं कहै सँदेसा?॥

लछिमी जाइ समुद पहँ रोइ बात यह चालि।
कहा समुद "वह घट मोरे, आनि मिलावौ कालि"॥ ७॥

राजा जाइ तहाँ बहि लागा। जहाँ न कोइ सँदेसी कागा॥
तहाँ एक परबत अह डूँगा। जहँवाँ सब कपूर औ मूँगा॥
तेहि चढ़ि हेर कोइ नहिं साथा। दरब सैति किछु लाग न हाथा॥
अहा जो रावन लंक बसेरा। गा हेराइ, कोइ मिला न हेरा॥
ढाढ़ मारि कै राजा रोवा। केइ चितउरगढ़-राज बिछोवा?॥

---

झहर झहर = जगमगाता हुआ। माँग = माँगती है। पाहुन पवन...सब कोई = मेहमान समझकर सब पानी देती है और हवा करती है। बर = बल, सहारा। अरभ = रंभ, नाद, कूक। (७) बुझावै लागि = समझाने-बुझाने लगी। बारी = लड़की। लेउँ खटवाटू = खटपाटी लूँगी; रूसकर काम-धधा छोड़ पड़ रहूँगी (स्त्रियो का रूसकर खाना-पीना छोड़ खाट पर इसलिये पड़ रहना कि जब तक मेरी बात न मानी जायगी न उठूँगी, 'खटपाटी' लेना कहलाता है)। सुख सोवा = सुख से सोना (साधारण क्रिया का यह रूप बँगला से मिलता है।) कहाँ सुमेरु.....सेसा = आकाश पाताल का अतर। बात चालि = बात चलाई। (८) डूँगा = टीला।

कहाँ मोर सब दरब भँडारा। कहाँ मोर सब कटक खँधारा ?॥
कहाँ तुरंगम बाँका बली। कहाँ मोर हस्ती सिघली ?॥

कहँ रानी पदमावति जीउ बसै जेहि पाहँ।
'मोर मोर' कै खोएउँ, भूलि गरब अवगाह ॥८॥

भँवर केतकी गुरु जो मिलावै। माँगै राज वेगि सो पावै॥
पदमिनि-चाह जहाँ सुनि पावौं। परौं आगि औ पानि धँसावौं॥
खोजौं परवत मेरु पहारा। चढ़ौं सरग औ परौं पतारा॥
कहाँ सो गुरु पावौं उपदेसी। अगम पंथ जो कहै गवेसी ❀॥
परेउँ समुद्र माहँ अवगाहा। जहाँ न वार पार, नहि थाहा॥
सीता-हरन राम संग्रामा। हनुवँत मिला त पाई रामा॥
मोहिं न कोइ, विनवौं केहि रोई। को वर बाँधि गवेसी होई ?†॥

भँवर जो पावा कँवल कहँ, मन चीता बहु केलि।
आइ परा कोइ हस्ती, चूर कीन्ह सो वेलि ॥९॥

काहि पुकारौं, का पहँ जाऊँ। गाढ़े मीत होइ एहि ठाऊँ॥
को यह समुद मथै बल गाढ़ै। को मथि रतन पदारथ काढ़ै ?॥
कहाँ सो वरह्मा, विसुन महेसू। कहाँ सुमेरु, कहाँ वह सेसू ?॥
को अस साज देइ मोहिं आनी। वासुकि दाम, सुमेरु मथानी॥
को दधि-समुद मथै जस मथा ? करनी सार न कहिए कथा॥
जौ लहि मथै न कोइ देइ जीऊ। सूधी अँगुरि न निकसै घीऊ॥
लेइ नग मोर समुद भा वटा। गाढ़ परै तौ लेइ परगटा॥

लीलि रहा अब ढील होइ पेट पदारथ मेलि।
को उजियार करै जग झाँपा चंद उघेलि ?॥१०॥

---

खँधारा = स्कंधावार, डेरा तंबू। अवगाह = अथाह (समुद्र) में। (९) चाह = खबर। धँसावौं = धँसूँ। गवेसी = खोजी, ढूँढ़नेवाला, गवेषणा करनेवाला। ❀ पाठांतर—अगम पंथ कर होइ सँदेसी।
वर बाँधि = रेखा खींचकर, दृढ़ प्रतिज्ञा करके (आजकल 'वरैया बाँधि' बोलते है)। † पाठांतर = को सहाय उपदेसी होई।

(१०) मीत होइ = जो मित्र हो। गाढ़ै = संकट के समय मे। दाम = रस्सी। करनी सार...कथा = करनी मुख्य है, बात कहने से क्या है ? वटा भा = बटाऊ हुआ, चल दिया। ढील होइ रहा = चुपचाप बैठ रहा। उघेलि = खोलकर।

ए गोसाइँ! तू सिरजन हारा। तुइँ सिरजा यह समुद अपारा॥
तुइँ अस गगन अंतरिख थाँभा। जहाँ न टेक, न थूनि, न खाँभा॥
तुइँ जल ऊपर धरती राखी। जगत भार लेइ भार न थाकी॥
चाँद सुरुज औ नखतन्ह-पाँती। तोरे डर धावहिं दिन-राती॥
पानी पवन आगि औ माटी। सब के पीठ तोरि है साँटी॥
सो मूरुख औ बाउर अंधा। तोहि छाँड़ि चित औरहि बंधा॥
घट घट जगत तोरि है दीठी। हौं अंधा जेहि सूझ न पीठी॥
पवन होइ भा पानी, पानि होइ भा आगि।
आगि होइ भा माटी, गोरखधंधै लागि॥११॥

तुइँ जिउ तन मेरवसि देइ आऊ। तुही बिछोवसि, करसि मेराऊ॥
चौदह भुवन सो तोरे हाथा। जहँ लगि बिछुर आव एक साथा॥
सब कर मरम भेद तोहि पाहाँ। रोवँ जमावसि टूटै जाहाँ॥
जानसि सबै अवस्था मोरी। जस बिछुरी सारस कै जोरी॥
एक मुए रहि मुवै जो दूजी। रहा न जाइ, आउ अब पूजी॥
झूरत तपत बहुत दुख भरऊँ। कलपौं माँथ बेगि निस्तरऊँ॥
मरौं सो लेइ पदमावति नाऊँ। तुइँ करतार करेसि एक ठाऊँ॥
दुख सौं पीतम भेटि कै, सुख सौं सोव न कोइ।
एहि ठाँव मन डरपै, मिलि न बिछोहा होइ॥१२॥

कहि कै उठा समुद पह आवा। काढ़ि कटार गीउ महँ लावा॥
कहा समुद्र, पाप अब घटा। वाह्मन रूप आइ परगटा॥
तिलक दुवादस मस्तक कीन्हे। हाथ कनक-बैसाखी लीन्हे॥
मुद्रा स्रवन, जनेऊ काँधे। कनक-पत्र धोती तर बाँधे॥
पाँवरि कनक जराऊँ पाऊँ। दीन्हि असीस आइ तेहि ठाऊँ॥

---

(११) थाँभा = ठहराया, टिकाया। थूनि = लकड़ी का बल्ला जो टेक के लिये छप्पर के नीचे खड़ा किया जाता है। भार न थाकी = भार से नहीं थकी। सब के पीठि.....साँटी = सब की पीठ पर तेरी छड़ी है, अर्थात सब के ऊपर तेरा शासन है। (१२) मेरवसि = तू मिलाता है। आउ = आयु। बिछोवसि = बिछोह करता है। मेराऊ = मिलाप। जहाँ = जहाँ। कलपौं = काटूँ। करेसि = तुम करना। (१३) पाप अब घटा = यह तो बड़ा पाप मेरे सिर घटा चाहता है। बैसाखी = लाठी। पाँवरि = खड़ाऊँ। पाऊँ = पाँव मे।

कहसि कुँवर ! मोसौं सत बाता । काहे लागि करसि अपघाता ॥
परिहँस मरसि कि कौनिउ लाजा । आपन जीउ देसि केहि काजा ? ॥

जिनि कटार गर लावसि, समुझि देखु मन आप ।
सकति जीउ जौं काढ़ै, महा दोष औ पाप ॥१३॥

को तुम्ह उतर देइ, हो पाँड़े । सो बोलै जाकर जिउ भाँड़े ॥
जंबूदीप केर हौं राजा । सो मै कीन्ह जो करत न छाजा ॥
सिंघलदीप राजघर-बारी । सो मैं जाइ बियाही नारी ॥
बहु बोहित दायज उन दीन्हा । नग अमोल निरमर भरि लीन्हा ॥
रतन पदारथ मानिक मोती । हुती न काहु के संपति ओती ॥
बहल, घोड़, हस्ती सिंघली । औ सँग कुँवरि लाख दुइ चलीं ॥
ते गोहने सिंघल पदमिनि । एक सों एक चाहि रुपमनी ॥

पदमावती जग रूपमनि, कहँ लगि कहौं दुहेल ।
तेहि समुद्र महँ खोएउँ, हौं का जिऔं अकेल ? ॥१४॥

हँसा समुद, होइ उठा अँजोरा । जग बूड़ा सब कहि कहि 'मोरा' ॥
तोर होइ तोहि परे न बेरा । बूझि बिचारि तहूँ केहि केरा ॥
हाथ मरोरि धुनै सिर झाँखी । पै तोहि हिये न उघरै आँखी ॥
बहुतै आइ रोइ सिर मारा । हाथ न रहा झूठ संसारा ॥
जो पै जगत होति फुर माया । सैंतत सिद्धि न पावत, राया ! ॥
सिद्धै दरब न सैता गाड़ा । देखा भार चूमि कै छाँड़ा ॥
पानी कै पानी महँ गई । तू जो जिया कुसल सब भई ॥

जा कर दीन्ह कया जिउ, लेइ चाह जब भाव ।
धन लछिमी सब ताकर, लेइ त का पछिताव ? ॥१५॥

अनु, पाँड़े ! पुरुषहि का हानी । जौ पावौं पदमावति रानी ॥

---

काहे लागि = किस लिये । अपघात = आत्मघात । परिहँस = ईर्ष्या । ( १४ ) तुम्ह = तुम्हे । भाँड़े = घट मे, शरीर मे । ओती = उतनी । चाहि = बढ़कर । रूपमनी = रूपवती । दुहेल = दुःख । ( १५ ) तोर होइ...बेरा = तेरा होता तो तेरा बेड़ा तुझसे दूर न होता । झाँखी = झीखकर । उघरै = खुलती है । सैंतत सिद्धि...राया = तो हे राजा ! तुम द्रव्य संचित करते हुए सिद्धि पा न जाते । पानी कै...गई = जो वस्तुएँ ( रत्न आदि ) पानी की थीं वे पानी मे गईं । लेइ चाह = लिया ही चाहे । जब भाव = जब चाहे । ( १६ ) अनु = फिर, आगे ।

तपि कै पावा, मिली कै फूला। पुनि तेहि खोइ सोइ पथ भूला॥
पुरुष न आपनि नारि सराहा। मुए गए सँवरै पै चाहा॥
कहँ अस नारि जगत उपराही?। कहँ अस जीवन के सुख-छाहीं?॥
कहँ अस रहस भोग अब करना। ऐसे जिए चाहि भल मरना॥
जहँ अस परा समुद नग दीया। तहँ किमि जिया चहै मरजीया?॥
जस यह समुद दीन्ह दुख मोकाँ। देइ हत्या झगरौं सिवलोका॥

का मै ओहि क नसावा, का सँवरा सो दावँ?।
जाइ सरग पर होइहि एहि कर मोर नियाव॥१६॥

जौ तु मुवा, कित रोवसि खरा?। ना मुइ मरै, न रोवै मरा॥
जो मरि भा औ छाँड़ेसि काया। बहुरि न करै मरन कै दाँया॥
जो मरि भएउ न बूड़ै नीरा। बहा जाइ लागै पै तीरा॥
तुही एक मै बाउर भेंटा। जैस राम, दसरथ कर बेटा॥
ओहू नारि कर परा बिछोवा। एहि समुद महँ फिरि फिरि रोवा॥
उदधि आइ तेइ बंधन कीन्हा। हति दसमाथ अमरपद दीन्हा॥
तोहि बल नाहिं-मूंदु अब आँखी। लावौ तीर, टेक बैसाखी॥

बाउर अंध प्रेम कर सुनत लुबुधि भा बाट।
निमिष एक महँ लेइगा पदमावति जेहि घाट॥१७॥

पदमावति कहं दुख तस बीता। जस असोक-बीरो तर सीता॥
कनक-लता दुइ नारँग फरी। तेहि के भार उठि होइ न खरी॥
तेहि पर अलक भुअंगिनि डसा। सिर पर चढ़ै हिये परगसा॥
रही मृनाल टेकि दुख-दाधी। आधी कवल भई, ससि आधी॥
नलिन-खंड दुइ तस करिहाऊ। रोमावली बिछूक कहाऊँ॥
रही टूटि जिमि कंचन-तागू। को पिउ मेरवै, देइ सोहागू॥
पान न खाइ करै उपवासू। फूल सूख, तन रही न बासू॥

गगन धरति जल बुड़ि गए, बूड़त होइ निसाँस।
पिउ पिउ चातक ज्यों रटै, मरै सेवाति पियास॥१८॥

---

फूला = प्रफुल्ल हुआ। चाहि = अपेक्षा, बनिस्बत। मोकाँ = मोकहँ, मुझको। देइ हत्या = सिर पर हत्या चढ़ाकर। दाँव = बदला लेने का मौका। (१७) मरि भा = मर चुका। दायाँ = दावँ, आयोजन। बाट भा = रास्ता पकड़ा। (१८) बीरो = बिरवा, पेड़। दाधी = जली हुई। करिहाउँ = कमर, कटि। बिछूक = बिच्छू। सेवाति = स्वाति नक्षत्र मे।

लछमी चंचल नारि परेवा। जेहि सत होइ छरै कै सेवा॥
रतनसेन आवै जेहि घाटा। अगमन होइ बैठी तेहि बाटा॥
औ भइ पदमावति कै रूपा। कीन्हेसि छाँह जरै जहँ धूपा॥
देखि सो कँवल भँवर होइ धावा। साँस लीन्ह, वह बास न पावा॥
निरखत आइ लच्छमी दीठी। रतनसेन तब दीन्ही पीठी॥
जौ भलि होति लच्छमी नारी। तजि महेस कित होत भिखारी?॥
पुनि धनि फिरि आगे होइ रोई। पुरुष पीठि कस दीन्ह निछोई?॥

हौं रानी पदमावति, रतनसेन तू पीउ।
आनि समुद महं छाँड़ेहु, अब रोवौं देइ जीउ॥१९॥

मैं हौं सोइ भँवर औ भोजू। लेत फिरौं मालति कर खोजू॥
मालति नारि, भँवरा पीऊ। लहि वह बास रहै थिर जीऊ॥
का तुइँ नारि बैठि अस रोई। फूल सोइ पै बास न सोई॥
भँवर जो सब फूलन कर फेरा। बास न लेइ मालतिहि हेरा॥
जहाँ पाव मालति कर बासू। वारै जीउ तहाँ होइ दासू॥
कित वह बास पवन पहुँचावै। नव तन होइ, पेट जिउ आवै॥
हौं ओहि बास जीउ बलि देऊ। और फूल कै बास न लेऊँ॥

भँवर मालतिहि पै चहै, काँट न आवै दीठि।
सौंहै भाल खाइ, पै फिरि कै देइ न पीठि॥२०॥

तब हँसि कह राजा ओहि ठाऊँ। जहाँ सो मालति लेइ चलु, जाऊँ॥
लेइ सो आइ पदमावति पासा। पानि पियावा मरत पियासा॥
पानी पिया कवल जस तपा। निकसा सुरुज समुद महँ छपा॥
मै पावा पिउ समुद के घाटा। राजकुँवर मनि दिपै लिलाटा॥
दसन दिपै जस हीरा-जोती। नैन-कचोर भरे जनु मोती॥
भुजा लंक उर केहरि जीता। मूरति कान्ह देख गोपीता॥
जस राजा नल दमनहि पूछा। तस बिनु प्रान पिंड है छूँछा॥

---

(१९) छरै = छलती है। घाटा = मार्ग में। अगमन = आगे। दीठी = देखा। दीन्ही पीठी = पीठ दी, मुँह फेर लिया। (२०) खोजू = पता। कर फेरा = फेरा करता है। हेरा = ढूँढ़ता है। वारै = निछावर करता है। नव = नया। भाल = भाला। (२१) लेइ चलु, जाउँ = यदि ले चले तो जाऊँ। छपा = छिपा हुआ। कचोर = कटोरा। गोपीता = गोपी। दमनहि = दमयंती को। पिंड = शरीर। छूँछा = खाली।

जस तू पदिक पदारथ, तैस रतन तोहि जोग।
सिला भँवर मालति कहँ, करहु दोउ मिलि भोग ॥२१॥

पदिक पदारथ खीन जो होती। सुनतहि रतन चढ़ी मुख जोती॥
जानहुँ सूर कीन्ह परगासू। दिन बहुरा, भा कँवल-बिगासू॥
कवल जो बिहँसि सूर-मुख दरसा। सूरुज कँवल दिस्टि सौं परसा॥
लोचन-कँवल सिरी-मुख सूरू। भएउ अनंद दुहूँ रस-मूरू॥
मालति देखि भँवर गा भूली। भवर देखि मालति बन फूली॥
देखा दरस, भए एक पासा। वह ओहि के, वह ओहि के आसा॥
कंचन दाहि दीन्हि जनु जीऊ। ऊना सूर, छूटिगा सीऊ॥

पायँ परी धनि पीउ के, नैनन्ह सौं रज मेट।
अचरज भएउ सबन्ह कहँ, भइ ससि कवलहिं भेंट ॥२२॥

जिनि काहू कह होइ बिछोऊ। जस वै मिले मिलै सब कोऊ॥
पदमावति जौ पावा पीऊ। जनु मरजियहि परा तन जीऊ॥
कै नेवछावरि तन मन वारी। पायन्ह परी घालि गिउ नारी॥
नव अवतार दीन्ह बिधि आजू। रही छार भइ मानुप-साजू॥
राजा रोव घालि गिउ पागा। पदमावति के पायन्ह लागा॥
तन जिउ महँ बिधि दीन्ह बिछोऊ। अस न करै तौ चीन्ह न कोऊ॥
सोइ मारि छार कै मेटा। सोइ जियाइ करावै भेटा॥

मुहमद मीत जौ मन वसै, बिधि मिलाव ओहि आनि।
संपति बिपति पुरुष कहँ, काह लाभ, का हानि ॥२३॥

लछमी सौ पदमावति कहा। तुम्ह प्रसाद पाइउँ जो चहा॥
जौ सब खोइ जाहि हम दोऊ। जो देखै भल कहै न कोऊ॥

---

पदिक = गले मे पहनने का एक चौखूँटा गहना जिसमे रत्न जडे जाते हैं। (२२) पदिक पदारथ = अर्थात् पद्मावती। बहुरा = लौटा, फिरा। मूरू = मूल, जड़। एक पासा = एक साथ। सीऊ = शीत। रज मेट = आँसुओ से पैर की भूल धोती है। भइ ससि कँवलहि भेंट = शशि, पद्मावती का मुख और कमल, राजा के चरण। (२३) घालि गिउ = गरदन नीचे झुकाकर। मानुष-साजू = मनुष्य-रूप मे। घालि गिउ पागा = गले मे दुपट्टा डालकर। पागा = पगड़ी। तन जिउ.....चीन्ह न कोऊ = शरीर और जीव के बीच ईश्वर ने वियोग दिया; यदि वह ऐसा न करे तो उसे कोई न पहचाने। (२४) तुम्ह = तुम्हारे।

जे सब कुँवर आए हम साथी। औ जत हस्ति, घोड़ औ आथी॥
जौ पावैं, सुख जीवन भोगू। नाहिं त मरन, भरन दुख रोगू॥
तब लछमी गइ पिता के ठाऊँ। जो एहि कर सब बूड़ सो पाऊँ॥
तब सो जरी अमृत लेइ आवा। जो मरे हुत तिन्ह छिरिकि जियावा॥
एक एक कै दीन्ह सो आनी। भा सँतोष मन राजा रानी॥

आइ मिले सब साथी, हिलि मिलि करहिं अनंद।
भई प्राप्त सुख-संपति, गएउ छूटि दुख-द्वंद॥२४॥

और दीन्ह बहु रतन पखाना। सोन रूप तौ मनहि न आना॥
जे बहु मोल पदारथ नाऊँ। का तिन्ह बरनि कहौं तुम्ह ठाऊँ॥
तिन्ह कर रूप भाव को कहै। एक एक नग दीप जो लहै॥
हीर-फार बहु-मोल जो अहे। तेइ सब नग चुनि चुनि कै गहे॥
जौ एक रतन भँजावै कोई। करै सोइ जो मन महँ होई॥
दरब-गरब मन गएउ भुलाई। हम सम लच्छ मनहि नहि आई॥
लघु दीरघ जो दरब बखाना। जो जेहि चहिय सोइ तेइ माना॥

बड़ औ छोट दोउ सम, स्वामि-काज जो सोइ।
जो चाहिय जेहि काज कहँ, ओहि काज सो होइ॥२५॥

दिन दस रहे तहाँ पहुनाई। पुनि भए बिदा समुद सौं जाई॥
लछमी पदमावति सौं भेंटी। औ तेहि कहा 'मोरि तू बेटी'॥
दीन्ह समुद्र पान कर बीरा। भरि कै रतन पदारथ हीरा॥
और पाँच नग दीन्ह बिसेखे। सरवन सुना, नैन नहिं देखे।
एक तौ अमृत, दूसर हंसू। औ तीसर पंखी कर बंसू॥
चौथ दीन्ह सावक-सादूरू। पाँचवँ परस, जो कंचन-मूरू॥
तरुन तुरगम आनि चढ़ाए। जल-मानुष अगुवा सँग लाए॥

---

आथी = पूँजी, धन। जरी = जड़ी। (२५) पखाना = नग, पत्थर। सोन = सोना। रूप = चाँदी। तुम्ह ठाऊँ = तुम्हारे निकट, तुमसे। हीर-फार = हीरे के टुकड़े। फार = फाल, कतरा, टुकड़ा। हम सम लच्छ = हमारे ऐसे लाखों हैं। (२६) पहुनाई = मेहमानी। बिसेखे = विशेष प्रकार के। बंसू = वंश, कुल। सावक-सादूरू = शार्दूल-शावक, सिंह का बच्चा। परस = पारस पत्थर। कंचन-मूरू = सोने का मूल, अर्थात् सोना उत्पन्न करनेवाला। जल-मानुष = समुद्र के मनुष्य। अगुवा = पथ-प्रदर्शक। सँग लाए = संग में लगा दिए।

भेंट-घाँट कै समदि तब फिरे नाइकै माथ।
जल-मानुष तबही फिरे जब आए जगनाथ ॥२६॥

जगन्नाथ कहँ देखा आई। भोजन रींधा भात बिकाई॥
राजै पद्मावति सौं कहा। साँठि नाठि, किछु गाँठि न रहा॥
साँठि होइ जेहि तेहि सब बोला। निसँठ जो पुरुष पात जिमि डोला॥
साँठिहि रंक चलै झौराई। निसँठ राव सब कह बौराई॥
साँठिहि आव गरब तन फूला। निसँठहि बोल, बुद्धि बल भूला॥
साँठिहि जागि नींद निसि जाई। निसँठहि काह होइ औंघाई॥
साँठिहि दिस्टि, जोति होइ नैना। निसँठ होइ, मुख आव न बैना॥
साँठिहि रहै साधि तन, निसँठहि आगरि भूख।
बिनु गथ विरिछ निपात जिमि ठाढ़ ठाढ़ पै सूख ॥२७॥

पद्मावति बोली सुनु राजा। जीउ गए धन कौने काजा?॥
अहा दरब तब कीन्ह न गाँठी। पुनि कित मिलै लच्छि जौ नाठी॥
मुकती साँठि गाँठि जो करै। साँकर परे सोइ उपकरै॥
जेहि तन पंख, जाइ जहँ ताका। पैग पहार होइ जौ थाका॥
लछमी दीन्ह रहा मोहि बीरा। भरि कै रतन पदारथ हीरा॥
काढ़ि एक नग बेगि भजावा। बहुरी लच्छि, फेरि दिन पावा॥
दरब भरोस करै जिनि कोई। साँभर सोइ गाँठि जो होई॥
जोरि कटक पुनि राजा घर कहँ कीन्ह पयान।
दिवसहि भानु अलोप भा, बासुकि इंद्र सकान ॥२८॥

---

भेंट-घाँट = भेंट-मिलाप। समदि = विदा करके। (२७) रींधा = पका हुआ। साँठि = पूँजी, धन। नाठि = नष्ट हुई। झौराई = झूमकर। कह = कहते हैं। औंघाई = नींद। साधि तन = शरीर को सयत करके। आगरि = बढ़ी हुई, अधिक। गथ = पूँजी। (२८) नाठी = नष्ट हुई। मुकती = बहुत सी, अधिक। साँकर परे = संकट पड़ने पर। उपकरै = उपकार करती है, काम आती है। साँभर = संबल, राह का खर्च। सकान = डरा।

# (३५) चित्तौर-आगमन-खंड

चितउर आइ नियर भा राजा। बहुरा जीति, इंद्र अस गाजा॥
बाजन बाजहिं, होइ अँदोरा। आवहि बहल हस्ति औ घोरा॥
पदमावति चंडोल बईठी। पुनि गइ उलटि सरग सौं दीठी॥
यह मन ऐठा रहै न सूझा। विपति न सँवरै संपति-अरूझा॥
सहस बरिस दुख सहै जो कोई। घरी एक सुख बिसरै सोई॥
जोगी इहै जानि मन मारा। तौहुँ न यह मन मरै अपारा॥
रहा न बाँधा बाँधा जेही। तेलिया मारि डार पुनि तेही॥
मुहमद यह मन अमर है, केहुँ न मारा जाइ॥
ज्ञान मिलै जौ एहि घटै, घटतै घटत बिलाइ॥ १॥
नागमती कहँ अगम जनावा। गई तपनि बरपा जनु आवा।
रही जो मुइ नागिनि जसि तुचा। जिउ पाएँ तन कै भइ सुचा॥
सब दुख जस केचुरि गा छूटी। होइ निसरी जनु बीरबहूटी॥
जसि भुइँ दहि असाढ़ पलुहाई। परहिं बूँद औ सोधि बसाई॥
ओहि भाँति पलुही सुख-बारी। उठी कारेल नइ कोंप सँवारी॥
हुलसि गंग जिमि बाढ़िहि लेई। जोवन लाग हिलोरै देई॥
काम-धनुक सर लेइ भइ ठाढ़ी। भागेउ बिरह रहा जो डाढ़ी॥
पूछहिं सखी सहेलरी, हिरदय देखि अनंद।
आजु वदन तोर निरमल, अहै उवा जस चंद॥ २॥
अब लगि रहा पवन, सखि! ताता। आजु लाग मोहि सीअर गाता॥
महि हुलसै जस पावस-छाहाँ। तस उपना हुलास मन माहाँ॥

---

(१) अँदोरा = अदोर, हलचल, शोर (आदोल)। चडोल = पालकी। सरग सौं = ईश्वर से। तेलिया = सींगिया विष। तेलिया...तेही = चाहे उसे तेलिया विष से न मारे। केहुँ = किसी प्रकार। (२) तुचा = त्वचा, केचली। सुचा = सूचना, सुध, खबर। सोंधि = सोधी। सोधि बसाई = सुगंध से बस जाती है या सोधी महकती है। करिल = कल्ला। कोप = कोपल। (३) ताता = गरम।

दसवँ दावँ कै गा जो दसहरा। पलटा सोइ नाव लेइ महरा॥
अब जोबन गंगा होइ बाढ़ा। औटन कठिन मारि सब काढ़ा॥
हरियर सब देखौं संसारा। नए चार जनु भा अवतारा॥
भागेउ बिरह करत जो दाहू। भा मुख चंद, छूटि गा राहू॥
पलुहे नैन, बाँह हुलसाहीं। कोउ हितु आवै जाहि मिलाहीं॥

कहतहि बात सखिन्ह सौं, ततखन आवा भाँट।
राजा आइ निअर भा, मँदिर बिछावहु पाट॥ ३॥

सुनि तेहि खन राजा कर नाऊँ। भा हुलास सब ठाँवहिं ठाऊँ॥
पलटा जनु वरषा-ऋतु राजा। जस असाढ़ आवै दर साजा॥
देखि सो छत्र भई जग छाहाँ। हस्ति-मेघ ओनए जग माहाँ॥
सेन पूरि आई घन घोरा। रहस-चाव बरसै चहुँ ओरा॥
धरति सरग अब होइ मेरावा। भरीं सरित औ ताल तलावा॥
उठी लहकि महि सुनतहि नामा। ठावहिं ठावँ दूब अस जामा॥
दादुर मोर कोकिला बोले। हुत जो अलोप जोभ सब खोले॥

होइ असवार जो प्रथमै मिलै चले सब भाइ।
नदी अठारह गंडा मिलीं समुद कह जाइ॥ ४॥

बाजत गाजत राजा आवा। नगर चहूँ दिसि बाज बधावा॥
विहँसि आइ माता सौं मिला। राम जाइ भेंटी कौसिला॥
साजे मंदिर बंदनवारा। होइ लाग बहु मंगलचारा॥
पदमावति कर आव बेवानू। नागमती जिउ महँ भा आनू॥
जनहुँ छाँह महँ धूप देखाई। तैसइ झार लागि जौ आई॥
सही न जाइ सवति कै झारा। दुसरे मंदिर दीन्ह उतारा॥
भई उहाँ चहुँ खंड बखानी। रतनसेन पदमावति आनी॥

पुहुप गंध संसार महँ, रूप बखानि न जाइ।
हेम सेत जनु उघरि गा, जगत पात फहराइ॥ ५॥

---

दसवँ दावँ = दशम दशा, मरण। महरा = सरदार। औटन = ताप। नए चार = नए सिर से। (४) दर = दल। रहस-चाव = आनंद-उत्साह। लहकि उठी = लहलहा उठी। हुत = थे। अठारह गडा नदी = अवध मे जन-साधारण के बीच यह प्रसिद्ध है कि समुद्र में अठारह गंडे (अर्थात् ७२) नदियाँ मिलती हैं। (५) बेवान = विमान। जिउ महँ भा आनू = जी मे कुछ और भाव हुआ। झार = (क) लपट, (ख) ईर्ष्या, डाह। जौ = जब। उतारा दीन्ह = उतारा। हेम सेत = सफेद पाला या बर्फ।

बैठ सिंघासन, लोग जोहारा। निधनी निरगुन दरब बोहारा॥
अगनित दान निछावरि कीन्हा। मँगतन्ह दान बहुत कै दीन्हा॥
लेइ के हस्ति महाउत मिले। तुलसी लेइ उपरोहित चले॥
बेटा भाइ कुँवर जत आवहिं। हँसि हँसि राजा कंठ लगावहिं॥
नेगी गए, मिले अरकाना। पवरिहि बाजे घहरि निसाना॥
मिले कुँवर, कापर पहिराए। देइ दरब तिन्ह घरहिं पठाए॥
सब कै दसा फिरी पुनि दुनी। दान-डाँग सबही जग सुनी॥

बाजै पाँच सबद निति, सिद्धि बखानहि भाँट।
छतिस कूरि, षट दरसन, आइ जुरे ओहि पाट॥ ६॥

सब दिन राजा दान दिआवा। भइ निसि, नागमती पहँ आवा॥
नागमती मुख फेरि बईठी। सौंह न करै पुरुष सौं दीठी॥
ग्रीषम जरत छाँड़ि जो जाई। सो मुख कौन देखावै आई?॥
जबहिं जरै परबत बन लागे। उठी झार, पंखी उड़ि भागे॥
जब साखा देखै औ छाहाँ। को नहिं रहसि पसारै बाहाँ॥
को नहिं हरषि बैठ तेहि डारा। को नहिं करै केलि कुरिहारा?॥
तू जोगी होइगा बैरागी। हौं जरि छार भएउँ तोहि लागी॥

काह हँसौ तुम मोसौं, किएउ और सौं नेह।
तुम्ह मुख चमकै बीजुरी, मोहि मुख बरिसै मेह॥ ७॥

नागमती तू पहिलि बियाही। कठिन प्रीति दाहै जस दाही॥
बहुतै दिनन आव जो पीऊ। धनि न मिलै धनि पाहन जीऊ॥
पाहन लोह पोढ़ जग दोऊ। तेउ मिलहि जौ होइ बिछोऊ॥
भलेहि सेत गंगाजल दीठा। जमुन जो साम, नीर अति मीठा॥
काह भएउ तन दिन दस दहा। जौ बरषा सिर ऊपर अहा॥
कोइ केहु पास आस कै हेरा। धनि ओहि दरस-निरास न-फेरा॥
कंठ लाइ कै नारि मनाई। जरी जो बेलि सींचि पलुहाई॥

---

(६) बहुत कै = बहुत सा। जत = जितने। अरकाना = अरकाने दौलत, सरदार उमरा। दुनी = दुनिया में। डाँग = डंका। पाँच सबद = पच शब्द, पाँच बाजे—संत्री, ताल, झाँझ, नगाड़ा और तुरही। छतिस कूरि = छत्तीसो कुल के क्षत्रिय। षट दरसन = (लक्षण से) छः शास्त्रों के वक्ता। (७) दिआवा = दिलाया। कुरिहारा = कलरव, कोलाहल। (८) पोढ़ = दृढ़, मजबूत, कड़े।

फरे सहस साखा होइ दारिउँ, दाख, जँभीर।
सबै पंखि मिलि आइ जोहारे, लौटि उहै भइ भीर ॥ ८ ॥

जौ भा मेर भएउ रँग राता। नागमती हँसि पूछी बाता ॥
कहहु, कंत! ओहि देस लोभाने। कस धनि मिली, भोग कस माने ॥
जौ पदमावति सुठि होइ लोनी। मोरे रूप कि सरवरि होनी ? ॥
जहाँ राधिका गोपिन्ह माहाँ। चंद्रावलि सरि पूज न छाहाँ ॥
भँवर-पुरुष अस रहै न राखा। तजै दाख, महुआ-रस चाखा ॥
तजि नागेसर फूल सोहावा। कबँल बिसैधहिं सौं मन लावा ॥
जौ अन्हवाइ भरै अरगजा। तौहुँ बिसायँध वह नहि तजा ॥

काह कहौं हौं तोसौं, किछु न हिये तोहि भाव।
इहाँ बात मुख मोसौं, उहाँ जीउ ओहि ठाँव ॥ ९ ॥

कहि दुख कथा जौ रैनि बिहानी। भएउ भोर जहँ पदमिनि रानी ॥
भानु देख ससि-बदन मलीना। कँवल-नैन राते, तनु खीना ॥
रैनि नखत गनि कीन्ह बिहानू। बिकल भई देखा जब भानू ॥
सूर हँसै, ससि रोइ डफारा। टूट आँसु जनु नखतन्ह-मारा ॥
रहै न राखी होइ निसाँसी। तहवा जाहु जहाँ निसि बासी ॥
हौं कै नेह कुआँ महँ मेली। सींचै लागि झुरानी बेली ॥
नैन रहे होइ रहँट क घरी। भरी ते ढारी, छूँछी भरी ॥

सुभर सरोवर हंस चल, घटतहि गए बिछोइ।
कँवल न प्रीतम परिहरै, सूखि पंक बरु होइ ॥१०॥

पदमावति तुइँ जीउ पराना। जिउ तें जगत पियार न आना ॥
तुइ जिमि कँवल वसी हिय माहाँ। हौं होइ अलि बेधा तोहि पाहाँ ॥
मालति-कली भँवर जौ पावा। सो तजि आन फूल कित भावा ? ॥

---

फरे सहस.....भीर = अर्थात् नागमती मे फिर यौवन-श्री और रस आ गया और राजा के अग अग उससे मिले। (९) मेर = मेल, मिलाप। लोनी = सुदर। नागेसर = अर्थात् नागमती। कँवल = अर्थात् पद्मावती। बिसैंधा = बिसायँध गंधवाला, मछली की सी गंधवाला। भाव = प्रेम भाव। (१०) देख = देखा। भानू = (क) सूर्य्य, (ख) रत्नसेन। डफारा = ढाढ़ मारती है। मारा = माला। कुआँ महँ मेली = मुझे तो कुएँ मे डाल दिया, अर्थात् किनारे कर दिया। झुरान = सूखी। घरी = घड़ा। सुभर = भरा हुआ। (११) बेधा तोहि पाहाँ = तेरे पास उलझ गया हूँ।

मैं हौं सिंघल कै पदमिनी। सरि न पूज जंबू-नागिनी॥
हौं सुगंध निरमल उजियारी। वह विष-भरी डेरावनि कारी॥
मोरी वास भँवर सँग लागहि। ओहि देखत मानुष डरि भागहिं॥
हौं पुरुषन्ह कै चितवन दीठी। जेहिके जिउ अस अहौं पईठी॥
ऊंचे ठाँव जो बैठे, करै न नीचहि संग।
जहाँ सो नागिनि हिरकै करिया करै सो अंग॥११॥

पलुही नागमती कै वारी। सोने फूल फूलि फुलवारी॥
जावत पंखि रहे सब दहे। सबै पंखि बोलत गहगहे॥
सारिउँ सुवा महरि कोकिला। रहसत आइ पपीहा मिला॥
हारिल सबद, महोख सोहावा। काग कुराहर करि सुख पावा॥
भोग विलास कीन्ह कै फेरा। विहँसहिँ, रहसहिँ करहिँ बसेरा॥
नाचहिँ पंडुक मोर परेवा। विफल न जाइ काहुकै सेवा॥
होइ उजियार सूर जस तपै। खूसट मुख न देखावै छपै॥
संग सहेली नागमति, आपनि वारी माहँ।
फूल चुनहिँ, फल तूरहिँ, रहसि कूदि सुख-छाँह॥१२॥

---

डेरावनि = डरावनी। हिरकै = सटे। करिया = काला। (१२) पलुही = पल्लवित हुई, पनपी। गहगहे = आनंद-पूर्वक। कुराहर = कोलाहल। जस = जैसे ही। खूसट = उल्लू। तूरहिं = तोड़ती हैं।

## (३६) नागमती-पद्मावती-विवाद-खंड

जाही जूही तेहि फुलवारी। देखि रहस रहि सकी न वारी॥
दूतिन्ह बात न हिये समानी। पदमावति पह कहाँ सो आनी॥
नागमती है आपनि वारी। भँवर मिला रस करै धमारी॥
सखी साथ सब रहसहि कूदहि। औ सिंगार-हार सब गूँथहिं॥
तुम जो बकावरि तुम्ह सौं भर ना। बकुचन गहै चहै जो करना॥
नागमती नागेसरि नारी। कँवल न आछै आपनि वारी॥
जस सेवतीं गुलाल चमेली। तैसि एक जनु वहू अकेली॥

अलि जो सुदरसन कूजा, कित सदबरगै जोग ?
मिला भँवर नागेसरिहि, दीन्ह ओहि सुख-भोग॥ १॥

सुनि पदमावति रिस न सँभारी। सखिन्ह साथ आई फुलवारी॥
दुवौ सवति मिलि पाट वईठी। हिय विरोध, मुख बातै मीठी॥
वारी दिस्टि सुरँग सो आई। पदमावति हँसि बात चलाई॥
बारी सुफल अहै तुम रानी। है लाई, पै लाइ न जानी॥
नागेसर औ मालति जहाँ। सँगतराव नहिं चाही तहाँ॥
रहा जो मधुकर कँवल-पिरीता। लाइउ आनि करीलहि रीता॥

---

(१) धमारी करै = होली की सी धमार या क्रीड़ा करता है। तुम जो बकावरि.....भर ना = तुम जो बकावली फूल हो क्या तुमसे राजा का जी नहीं भरता ? बकुचन गहै.....करना = जो वह करना फूल को पकड़ना या आलिगन करना चाहता है। नागेसरि = नागकेसर। कँवल न...आपनि वारी = कँवल (पद्मावती) अपनी बारी ( बगीचा, जल ) या घर मे नहीं है अर्थात् घर नागमती का जान पड़ता है। जस सेवतीं...चमेली = जैसे सेवती और गुलाला आदि ( स्त्रियाँ ) नागमती की सेवा करती है वैसे ही एक पद्मिनी भी है। अलि जो...सदबरगै जोग = जो भँवरा सुदरसन फूल पर गूँजेगा वह सदवर्ग ( गेदा ) के योग्य कैसे रह जायगा ? (२) संगतराव = (क) सँगतरा नीबू; (ख) सगत राव, राजा का साथ।

जह अमिलीं पाकै हिय माहाँ। तहँ न भाव नौरँग कै छाहाँ॥

फूल फूल जस फर जहाँ, देखहु हिये बिचारि।
आँब लाग जेहि बारी जाँबु काह तेहि बारि? ॥ २ ॥

अनु, तुम कही नीक यह सोभा। पै फल सोइ भँवर जेहि लोभा॥
साम जाँबु कस्तूरी चोवा। आँब ऊँच, हिरदय तेहि रोवाँ॥
तेहि गुन अस भइ जाँबु पियारी। लाई आनि माँझ कै बारी॥
जल बाढ़े वहि इहाँ जो आई। है पाकी अमिली जेहि ठाईं॥
तुँ कस पराई बारी दूखी। तजा पानि, धाई मुँह-सूखी॥
उठै आगि दुइ डार अभेरा। कौन साथ तहँ बैरी केरा॥
जो देखी नागेसर बारी। लगे मरै सब सूआ सारी॥

जो सरवर-जल बाढ़ै रहै सो अपने ठाँव।
तजि कै सर औ कुंडहि जाइ न पर-अँबराव॥ ३ ॥

तुइँ अँबराव लीन्ह का जूरी?। काहे भई नीम विष-मूरी॥
भई बैरि कित कुटिल कटैली। तेदू टेटी चाहि कसैली॥
दारिउँ दाख न तोरि फुलवारी। देखि मरहि का सूआ सारी?॥
औ न सदाफर तुरँज जँभीरा। लागे कटहर बड़हर खीरा॥
कँवल के हिरदय भीतर केसर। तेहि न सरि पूजै नागेसर॥
जहँ कटहर ऊमर को पूछै?। बर पीपर का बोलहिं छूछै॥
जो फल देखा सोई फीका। गरब न करहि जानि मन नीका॥

रहु आपनि तू बारी, मो सौ जूझु, न बाजु।
मालति उपम न पूजै बन कर खूझा खाजु॥ ४॥

जो कटहर बड़हर झड़बेरी। तोहि असि नाहीं, कोकाबेरी!॥
साम जाँबु मोर तुरँज जँभीरा। करुई नीम तौ छाँह गँभीरा॥

---

( २ ) अमिलीं = (क) इमली; (ख) न मिली हुई, विरहिणी। नौरँग = (क) नारंगी; ( ख ) नए आमोद-प्रमोद। ( ३ ) अनु = और। तजा पानि = सरोवर का जल छोड़ा। अभेरा = भिड़त, रगड़ा। सारी = सारिका, मैना। सरवर-जल = सरोवर के जल मे। बाढ़ै = बढ़ता है। ( ४ ) तुइँ अँबराव... जूरी = तूने अपने अमराव मे इकट्ठा ही क्या किया है? ऊमर = गूलर। न बाजु = न लड़। खूझा खाजु = खर पतवार, नीरस फल। ( ५ ) झड़बेरी = झड़बेर, जंगली बेर। कोकाबेरी = कर्कबेरी।

नरियर दाख ओहि कहँ राखौं। गलगल जाउँ सवति नहि भाखौं॥
तोरे कहे होइ मोर काहा?। फरे बिरिछ कोइ ढेल न वाहा॥
नवै सदाफर सदा जो फरई। दारिउँ देखि फाटि हिय मरई॥
जयफर लौंग सोपारि छोहारा। मिरिच होइ जो सहै न झारा॥
हौं सो पान रँग पूज न कोई। विरह जो जरै चून जरि होई॥

लाजहिं बूड़ि मरसि नहिं, ऊभि उठावसि बाँह।
हौं रानी, पिय राजा; तो कहँ जोगी नाह॥ ५॥

हौं पदमिनी मानसर केवा। भँवर मराल करहिं मोरि सेवा॥
पूजा-जोग दई हम्ह गढ़ी। और महेस के माथे चढ़ी॥
जाने जगत कँवल कै करी। तोहि असि नहिं नागिनि विष-भरी॥
तुइँ सब लिए जगत के नागा। कोइल भेस न छाँड़ेसि कागा॥
तू भुजइल, हौं हंसिनि भोरी। मोहि तोहि मोति पोति कै जोरी॥
कंचन-करी रतन नग बाना। जहाँ पदारथ सोह न आना॥
तू तौ राहु, हौं ससि उजियारी। दिनहि न पूजै निसि अँधियारी॥

ठाढ़ि होसि जेहि ठाईं ससि लागै तेहि ठाव।
तेहि डर राँध न बैठौं मकु सँवरि होइ जाव॥ ६॥

कँवल सो कौन सोपारी रोठा। जेहि के हिये सहस दस कोठा॥
रहै न झाँपे आपन गटा। सो कित उघेलि चहै परगटा॥
कँवल-पत्र तर दारिउँ, चोली। देखे सूर देसि है खोली॥
ऊपर राता, भीतर पियरा। जारौं ओहि हरदि अस हियरा॥
इहाँ भँवर मुख बातन्ह लावसि। उहाँ सुरुज कहँ हंसि बहरावसि॥
सब निसि तपि तपि मरसि पियासी। भोर भए पावसि पिय बासी॥
सेजवाँ रोइ रोइ निसि भरसी। तू मोसौं का सरवरि करसी?॥

---

गल गल जाउँ = (क) चाहे गल जाऊँ; (ख) गलगल नीबू। सवति नहिं भाखौं = सपत्नी का नाम न लूँ। कोइ ढेल न बाहा = कोई ढेला न फेंके (उससे क्या होता है)। ऊभि = उठाकर। (६) केवा = कमल। कागा = कौवापन। भुजइल = भुजगा पक्षी। पोत = काँच या पत्थर की गुरिया। मसि = स्याही। राँध = पास, समीप। (७) रोठा = रोड़ा, टुकड़ा। जेहि के हिये.....कोठा = कँवल गट्टे के भीतर बहुत से बीज कोश होते है। गटा = कँवलगट्टा। उघेलि = खोलकर। दारिउँ = अनार के समान कँवल-गट्टा जो तेरा स्तन है। निसि भरसी = रात बिताती है तू। करसी = तू करती है।

सुरुज-किरिन बहरावै, सरवर लहरि न पूज।
भँवर हिया तोर पावै, धूप देह तोरि भूँज॥ ७॥

मैं हौं कँवल सुरुज कै जोरी। जौ पिय आपन तौ का चोरी?॥
हौं ओहि आपन दरपन लेखौं। करौं सिगार, भोर मुख देखौं॥
मोर बिगास ओहिक परगासू। तू जरि मरसि निहारि अकासू॥
हौं ओहि सौं, वह मोसौं राता। तिमिर बिलाइ होत परभाता॥
कँवल के हिरदय महँ जो गटा। हरि हर हार कीन्ह, का घटा?॥
जाकर दिवस तेहि पहँ आवा। कारि रैनि कित देखै पावा?॥
तू ऊमर जेहि भीतर माखी। चाहहि उड़ै मरन के पाँखी॥

धूप न देखहि, विषभरी! अमृत सो सर पाव।
जेहि नागिनि डस सो मरै, लहरि सुरुज कै आव॥ ८॥

फूल न कवँल भानु बिनु ऊए। पानी मैल होइ जरि छूए॥
फिरहि भँवर तोरे नयनाहाँ। नीर बिसाइँध होइ तोहि पाहाँ॥
मच्छ कच्छ दादुर कर बासा। बग अस पंखि बसहिं तोहि पासा॥
जे जे पंखि पास तोहि गए। पानी महँ सो बिसाइँध भए॥
जौ उजियार चाँद होइ ऊआ। बदन कलंक डोम लेइ छूआ॥
मोहि तोहि निसि दिन कर बीचू। राहु के हाथ चाँद कै मीचू॥
सहस बार जौ धोवै कोई। तौहु बिसाइँध जाइ न धोई॥

काह कहौं ओहि पिय कहँ, मोहि सिर धरेसि अँगारि।
तेहि के खेल भरोसे तुइ जीती, मै हारि॥ ९॥

तोर अकेल का जीतिउँ हारू। मै जीतिउँ जग कर सिगारू।
बदन जितिउँ सो ससि उजियारी। बेनी जितिउँ भुअंगिनि कारी॥
नैनन्ह जितिउँ मिरिग के नैना। कंठ जितिउँ कोकिल के बैना॥
भौंह जितिउँ अरजुन धनुधारी। गीउ जितिउँ तमचूर पुछारी॥
नासिक जितिउँ पुहुप-तिल, सूआ। सूक जितिउँ बेसरि होइ ऊआ॥
दामिनि जितिउँ दसन दमकाहीं। अधर-रंग जीतिउँ बिबाहीं॥

---

सरवर...पूज = ताल की लहर उसके पास तक नहीं पहुँचती; वह जल के ऊपर उठा रहता है। भूँज = भूनती है। (८) हरि हर हार कीन्ह = कमल की माला विष्णु और शिव पहनते है। मरन के पाँखी = कीडो को जो पख अत समय में निकलते हैं। (९) जरि = जड़, मूल। डोम छूआ = प्रवाद है कि चद्रमा डोमो के ऋणी है; वे जब घेरते हैं तब ग्रहण होता है।

केहरि जितिउँ, लंक मै लीन्हीं। जितिउँ मराल, चाल वै दीन्ही॥

पुहुप-बास मलयागिरि निरमल अंग बसाइ।
तू नागिनि आसा-लुबुध डससि काहु कहँ जाइ॥१०॥

का तोहि गरब सिंगार पराए। अबहीं लेहिं लूट सब ठाएँ॥
हौं साँवरि सलोन मोर नैना। सेत चीर, मुख चातक-बैना॥
नासिक खरग, फूल धुव तारा। भौंहैं धनुक गगन गा हारा॥
हीरा दसन सेत औ सामा। छपै बीजु जो बिहँसै बामा॥
विद्रुम अधर रंग रस-राते। जूड़ अमिय अस, रवि नहि ताते॥
चाल गयंद गरब अति भरी। बसा लंक, नागेसर-करी॥
साँवरि जहाँ लोनि सुठि नीकी। का सरवरि तू करसि जो फीकी॥

पुहुप-बास औ पवन अधारी कवँल मोर तरहेल।
चहौं केस धरि नावौं, तोर मरन मोर खेल॥११॥

पदमावति सुनि उतर न सही। नागमती नागिनि जिमि गही॥
वह ओहि कहँ, वह ओहि कहँ गहा। काह कहौं तस जाइ न कहा॥
दुवौ नवल भरि जोवन गाजैं। अछरी जनहुँ अखारे बाजैं॥
भा बाहुँन बाहुँन सौं जोरा। हिय सौं हिय, कोइ बाग न मोरा॥
कुच सो कुच भइ सौंहै अनी। नवहि न नाए, टूटहि तनी॥
कुंभस्थल जिमि गज मेमंता। दूवौ आइ भिरे चौदंता॥
देवलोक देखत हुत ठाढ़े। लगे बान हिय, जाहि न काढ़े॥

जनहुँ दीन्ह ठगलाडू देखि आइ तस मीचु।
रहा न कोइ धरहरिया करै दुहुँन्ह महँ बीचु॥१२॥

---

(१०) आसालुबुध = सुगंध की आशा से साँप चंदन मे लिपटे रहते है। (११) सिंगार पराए = दूसरो से लिया सिंगार जैसा कि ऊपर कहा है। जूड़ अमिय.....ताते = उन अधरो मे बालसूर्य की ललाई है पर वे अमृत के समान शीतल है, गरम नहीं। नागेसर-करी = नागेसर फूल की कली। तरहेल = नीचे पड़ा हुआ, अधीन। (१२) बाजै = लड़ती है। बाग न मोरा = बाग नही मोड़तीं, अर्थात् लडाई से हटतीं नहीं। अनी = नोक। तनी = चोली के बद। चौदंता = स्याम देश का एक प्रकार का हाथी, अथवा थोड़ी अवस्था का उद्दंड पशु (बैल, घोडे आदि के लिये इस शब्द का प्रयोग होता है)। ठगलाडू = ठगों के लड्डू जिन्हे खिलाकर वे मुसाफिरो को बेहोश करते है। धरहरिया = झगड़ा छुडानेवाला। बीचु करै = दोनों को अलग करे, झगडा मिटाए।

पवन स्रवन राजा के लागा। कहेसि लड़हि पदमिनि औ नागा॥
दूनौ सवति साम औ गोरी। मरहि तौ कहँ पावसि असि जोरी॥
चलि राजा आवा तेहि वारी। जरत बुझाई दूनौ नारी॥
एक वार जेइ पिय मन वूझा। सो दुसरे सौ काहे क जूझा?॥
अस गियान मन आव न कोई। कवहूँ राति, कवहुँ दिन होई॥
धूप छाँह दोउ पिय के रंगा। दूनौ मिली रहहि एक संगा॥
जूझ छाँड़ि अब वूझहु दोऊ। सेवा करहु सेव-फल होऊ॥

गंग जमुन तुम नारि दोउ, लिखा मुहम्मद जोग।
सेव करहु मिलि दूनौ तौ मानहु सुख भोग॥ १३॥

अस कहि दूनौ नारि मनाई। बिहँसि दोउ तब कंठ लगाई॥
लेइ दोउ संग मँदिर महँ आए। सोन-पलँग जहँ रहे बिछाए॥
सीझी पाँच अमृत-जेवनारा। औ भोजन छप्पन परकारा॥
हुलसीं सरस खजहजा खाई। भोग करत बिहँसी रहसाई॥
सोन-मँदिर नगमति कहँ दीन्हा। रूप-मँदिर पदमावति लीन्हा॥
मंदिर रतन रतन के खंभा। बैठा राज जोहारैं सभा॥
सभा सो सबै सुभर मन कहा। सोई अस जो गुरु भल कहा॥

वहु सुगंध, वहु भोग सुख, कुरलहिं केलि कराहि।
दुहुँ सौ केलि नित मानै, रहस अनँद दिन जाहिं॥१४॥

## (३७) रत्नसेन-संतति-खंड

जाएउ नागमती नगसेनहि। ऊँच भाग, ऊँचे दिन रैनहि॥
कवँलसेन पदमावति जाएउ। जानहुँ चंद धरति महँ आएउ॥
पंडित बहु बुधिवंत बोलाए। रासि बरग औ गरह गनाए॥
कहेन्हि बड़े दोउ राजा होहीं। ऐसे पूत होहि सब तोहीं॥
नवौ खंड के राजन्ह जाहीं। औ किछु दुंद होइ दल माहीं॥
खोलि भँडारहि दान देवावा। दुखी सुखी करि मान बढ़ावा॥
जाचक लोग, गुनीजन आए। औ अनंद के बाज बधाए॥
बहु किछु पावा जोतिसिन्ह औ देइ चले असीस।
पुत्र, कलत्र, कुटुम्ब सब जीयहिं कोटि बरीस॥ १॥

---

(१) जाएउ = उत्पन्न किया, जना। ऊँचे दिन रैनहि = दिन-रात में वैसा ही बढ़ना गया। दुंद = झगड़ा, लड़ाई।

## (३८) राघव-चेतन-देस-निकाला-खंड

राघव चेतन चेतन महा। आऊ सरि राजा पहँ रहा॥
चित चेता, जानै बहु भेऊ। कवि बियास पंडित सहदेऊ॥
बरनी आइ राज के कथा। पिंगल महँ सब सिंघल मथा॥
जो कवि सुनै सीस सो धुना। सरवन नाद वेद सो सुना॥
दिस्टि सो धरम-पंथ जेहि सूझा। ज्ञान सो जो परमारथ बूझा॥
जोगि, जो रहै समाधि समाना। भोगि सो, गुनी केर गुन जाना॥
बीर जो रिस मारै, मन गहा। सोइ सिंगार कंत जो चहा॥

वेद-भेद जस वररुचि, चित चेता तस चेत।
राजा भोज चतुरदस, भा चेतन सौ हेत॥ १॥

होइ अचेत घरी जौ आई। चेतन कै सब चेत भुलाई॥
भा दिन एक अमावस सोई। राजै कहा 'दुइज कब होई?'॥
राघव के मुख निकसा 'आजू'। पडितन्ह कहा 'कालिह, महराजू'॥
राजै दुवौ दिसा फिरि देखा। इन महँ को बाउर, को सरेखा॥
भुजा टेकि पंडित तब बोला। 'छाँड़हिं देस बचन जौ डोला'॥
राघव करै जाखिनी-पूजा। चहै सो भाव देखावै दूजा॥
तेहि ऊपर राघव बर खाँचा। 'दुइज आजु तौ पंडित साँचा'॥

राघव पूजि जाखिनी, दुइज देखाएसि साँझ।
वेद-पंथ जे नहि चलहिं ते भूलहिं बन माँझ*॥ २॥

---

(१) आऊ सरि = आयु पर्य्यंत, जन्म भर। चेता = ज्ञान प्राप्त। भेऊ = भेद, मर्म। पिंगल = छंद या कविता में। सिंघल मथा = सिंघलदीप की सारी कथा मथकर वर्णन की। मन गहा = मन को वश मे किया। राजा भोज चतुरदस = चौदहो विद्याओ मे राजा भोज के समान। (२) होइ अचेत... जौ आई = जब संयोग आ जाता है तब चेतन भी अचेत हो जाता है; बुद्धिमान् भी बुद्धि खो बैठता है। भुजा टेकि = हाथ मारकर, जोर देकर। जाखिनी = यक्षिणी। बर खाँचा = रेखा खींचकर कहा, जोर देकर कहा।

*पाठातर—पँडितहि पँडित न देखै, भएउ बैर तिन्ह माझ।

पँडितन्ह कहा परा नहिं धोखा। कौन अगस्त समुद जेइ सोखा॥
सो दिन गएउ साँझ भइ दूजी। देखी दुइज घरी वह पूजी॥
पँडितन्ह राजहि दीन्ह असीसा। अब कस यह कंचन औ सीसा॥
जौ यह दुइज काल्हि कै होती। आजु तेज देखत ससि-जोती॥
राघव दिस्टिबंध कल्हि खेला। सभा माँझ चेटक अस मेला*॥
एहि कर गुरू चमारिनि लोना। सिखा कँवरू पाढ़न टोना॥
दुइज अमावस कहँ जो देखावै। एक दिन राहु चाँद कहँ लावै॥

राज-दुआर अस गुनी न चाहिय जेहि टोना के खोज।
एहि चेटक औ विद्या छला सो राजा भोज॥ ३॥

राघव-चैन जो कंचन-रेखा। कसे बानि पीतर अस देखा॥
अज्ञा भई, रिसान नरेसू। मारहु नाहिं, निसारहु देसू॥
झूठ बोलि थिर रहै न राँचा। पंडित सोइ वेद-मत-साँचा॥
वेद-वचन मुख साँच जो कहा। सो जुग-जुग अहथिर होइ रहा॥
खोट रतन सोई फटकरै। केहि घर रतन जो दारिद हरै?॥
चहै लच्छि बाउर कवि सोई। जहँ सुरसती, लच्छि कित होई?॥
कविता-संग दारिद मतिभंगी। काँटै-कूँट पुहुप कै संगी॥

कवि तौ चेला, विधि गुरू; सीप सेवाती-बुंद।
तेहि मानुष कै आस का जो मरजिया समुंद?॥ ४॥

एहि रे बात पदमावति सुनी। देस निसारा राघव गुनी॥
ज्ञान-दिस्टि धनि अगम विचारा। भल न कीन्ह अस गुनी निसारा॥
जेइ जाखिनी पूजि ससि काढ़ा। सूर के ठावँ करै पुनि ठाढ़ा॥

---

(३) कौन अगस्त..सोखा = अर्थात् इतनी अधिक प्रत्यक्ष बात को कौन पी जा सकता है? अब कस...सीसा = अब यह कैसा कंचन कंचन और सीसा सीसा हो गया। काल्हि कै = कल को। दिस्टिबंध = इंद्रजाल, जादू। चेटक = माया। चमारिनि लोना = कामरूप की प्रसिद्ध जादूगरनी लोना चमारी। एक दिन राहु चाँद कहँ लावै = (क) जब चाहे चंद्रग्रहण कर दे; (ख) पद्मावती के कारण बादशाह की चढ़ाई का संकेत भी मिलता है। (४) फटकरै = फटक दे। मतिभंगी = बुद्धि भ्रष्ट करनेवाला। तेहि मानुष कै आस का = उसको मनुष्य की क्या आशा करनी चाहिए? (५) अगम = आगम, परिणाम। जाखिनी = यक्षिणी। सूर के ठावँ...ठाढा = सूर्य्य की जगह दूसरा सूर्य्य खड़ा कर दे। (राजा पर बादशाह को चढा लाने का इशारा है)।

* पाठांतर—पँडित न होइ, कँवरू-चेला।

कवि कै जीभ खड्ग हरद्वानी। एक दिसि आगि,दुसर दिसि पानी॥
जिनि अजुगुति काढ़ै मुख भोरे। जस बहुते, अपजस होइ थोरे॥
रानी राघव वेगि हँकारा। सूर-गहन भा लेहु उतारा॥
बाम्हन जहाँ दच्छिना पावा। सरग जाइ जौ होइ बोलावा॥

आवा राघव चेतन, धौराहर के पास।
ऐस न जाना ते हियै, बिजुरी बसै अकास॥ ५॥

पदमावति जो झरोखे आई। निहकलंक ससि दीन्ह दिखाई॥
ततखन राघव दीन्ह असीसा। भएउ चकोर चंदमुख दीसा॥
पहिरे ससि नखतन्ह कै मारा। धरती सरग भएउ उजियारा॥
औ पहिरे कर कंकन-जोरी। नग लागे जेहि महं नौ कोरी॥
कँकन एक कर काढ़ि पवारा। काढ़त हार टूट औ मारा॥
जानहुँ चाँद टूट लेइ तारा। छुटी अकास काल कै धारा॥
जानहु टूटि बीजु भुइँ परी। उठा चौंधि राघव चित हरी॥

परा आइ भुइँ कंकन, जगत भएउ उजियार।
राघव बिजुरी मारा, बिसँभर किछु न सँभार॥ ६॥

पदमावति हँसि दीन्ह झरोखा। जौ यह गुनी मरै, मोहि दोखा॥
सबै सहेली देखै धाईं। 'चेतन चेतु' जगावहि आईं॥
चेतन परा, न आवै चेतू। सबै कहा 'एहि लाग परेतू'॥
कोई कहै, आहि सनिपातू। कोई कहै, कि मिरगी बातू॥
कोइ कह, लाग पवन झर झोला। कैसेहु समुझि न चेतन बोला॥
पुनि उठाइ बैठाएन्हि छाहाँ। पूछहि, कौन पीर हिय माहाँ?॥
दहुँ काहू के दरसन हरा। की ठग धूत भूत तोहि छरा॥

की तोहि दीन्ह काहु किछु, की रे डसा तोहि साँप?।
कहु सचेत होइ चेतन, देह तोरि कस काँप॥ ७॥

भएउ चेत, चेतन चित चेता। नैन झरोखे, जीउ सँकेता॥
पुनि जो बोला मति बुधि खोवा। नैन झरोखा लाए रोवा॥

---

हरद्वानी = हरद्वान की तलवार प्रसिद्ध थी। अजुगुति = अनहोनी बात, अयुक्त बात। भोरे = भूलकर। जस बहुते ....थोरे = यश बहुत करने मे मिलता है, अपयश थोडे ही मे मिलता है। उतारा = निछावर किया हुआ दान। (६) कोरी = बीस की सख्या। पवारा = फेका। चौंधि उठा = आँखो मे चकाचौंध हो गई। (७) सनिपातू = सन्निपात, त्रिदोष। (८) सँकेता = संकट मे।

बाउर बहिर सीस पै धुना। आपनि कहै, पराइ न सुना॥
जानहु लाई काहु ठगौरी। खन पुकार, खन बातै बौरी॥
हौं रे ठगा एहि चितउर माहाँ। कासौ कहौं, जाउँ केहि पाहाँ॥
यह राजा सठ बड़ हत्यारा। जेइ राखा अस ठग बटपारा॥
ना कोइ बरज, न लाग गोहारी। अस एहि नगर होइ बटपारी॥

दिस्टि दीन्ह ठगलाडू, अलक-फाँस परे गीउ।
जहाँ भिखारि न बाँचै, तहाँ बाँच को जीउ?॥ ८॥

कित धोराहर आइ झरोखे?। लेइ गइ जीउ दच्छिना-धोखे॥
सरग ऊइ ससि करै अँजोरी। तेहि ते अधिक देहुँ केहि जोरी?॥
तहाँ ससिहि जौ होति वह जोती। दिन होइ राति, रैनि कस होती?॥
तेइ हँकारि मोहि कंकन दीन्हा। दिस्टि जो परी जीउ हरि लीन्हा॥
नैन-भिखारि ढीठ सतछँड़ा। लागै तहाँ बान होइ गड़ा॥
नैनहि नैन जो बेधि समाने। सीस धुनै निसरहिं नहि ताने॥
नवहिं न नाए निलज भिखारी। तबहिं न लागि रही मुख कारी॥

कित करमुहैं नैन भए, जीउ हरा जेहि बाट।
सरवर नीर-निछोह जिमि दरकि दरकि हिय फाट॥ ९॥

सखिन्ह कहा, चेतसि बिसँभारा। हिये चेतु जेहि जासि न मारा॥
जौ कोइ पावै आपन माँगा। ना कोइ मरै, न काहू खाँगा॥
वह पदमावति आहि अनूपा। बरनि न जाइ काहु के रूपा॥
जो देखा सो गुपुत चलि गएऊ। परगट कहाँ, जीउ बिनु भएऊ॥
तुम्ह अस बहुत बिमोहित भए। धुनि धुनि सीस जीउ देइ गए॥
बहुतन्ह दीन्ह नाइ कै गीवा। उतर देइ नहिं, मारै जीवा॥

---

ठगौरी लाई = ठग लिया, सुध-बुध नष्ट करके ठक कर लिया। बौरी = बावलों की सी। बरज = मना करता है। गोहारि लगना = पुकार सुनकर सहायता के लिये आना। (६) दच्छिना-धोखे = दक्षिणा का धोखा देकर। जोरी = पटतर, उपमा। दिन होइ राति = तो रात मे भी दिन होता और रात न होती। हँकारि = बुलाकर। सतछँडा = सत्य छोड़नेवाला। ताने = खींचने से। तबहि न.....कारी = तभी न (उसी कारण से) आँखों के मुँह मे कालिमा (काली पुतली) लग रही है। सरवर नीर.....फाट = तालाब के सूखने पर उसकी जमीन मे चारो ओर दरारे सी पड़ जाती है। (१०) बरनि न जाइ..... रूपा = किसी के साथ उसकी उपमा नहीं दी जा सकती।

तुइँ पै मरहिं होइ जरि भूई। अबहुँ उघेलु कान कै रूई॥
कोइ माँगे नहि पावै, कोइ माँगे बिनु पाव।
नृ चेतन औरहि समुझावै, तोकहँ को समुझाव ? ॥१०॥
भण्ड चेत, चित चेतन चेता। बहुरि न आइ सहौ दुख एता॥
रोवत आइ परे हम जहाँ। रोवत चले, कौन सुख तहाँ ?॥
जहाँ रहे संसौ जिउ केरा। कौन रहनि ? चलि चलै सवेरा॥
अब यह भीख तहाँ होइ माँगौ। देइ एत जेहि जनम न खाँगौ॥
अस कंकन जौ पावौं दूजा। दारिद हरै, आस मन पूजा॥
दिल्ली नगर आदि तुरकानू। जहाँ अलाउदीन सुलतानू॥
सोन ढरै जेहि के टकसारा। बारह बानी चलै दिनारा॥
कवँल बखानौ जाइ तहँ जहँ अलि अलाउदीन।
सुनि कै चढ़ै भानु होइ, रतन जो होइ मलीन ॥११॥

---

भूई = सरकंडे का घूआ। उघेलु.....रूई = सुन और चेत कर, कान की रूई खोल। (११) एता = इतना। संसौ = संशय। कौन रहनि = वहाँ का रहना क्या ? देइ एत...खाँगौं = इतना दो कि फिर मुझे कमी न हो। सोन ढरै = सोना ढलता है, सोने के सिक्के ढाले जाते हैं। बारहबानी = चोखा। दिनारा = दीनार नाम का प्रचलित सोने का सिक्का। अलि = भौंरा।

## (३६) राघव-चेतन-दिल्ली-गमन-खंड

राघव चेतन कीन्ह पयाना। दिल्ली नगर जाइ नियराना॥
आइ साह के वार पहूँचा। देखा राज जगत पर ऊँचा॥
छत्तिस लाख तुरुक असवारा। तीस सहस हस्ती दरवारा॥
जहँ लगि तपै जगत पर भानू। तहँ लगि राज करै सुलतानू॥
चहूँ खंड के राजा आवहि। ठाढ़ झुराहि, जोहार न पावहिं॥
मन तेवान कै राघव झूरा। नाहिं उवार, जीउ-डर पूरा॥
जहँ झुराहि दीन्हे सिर छाता। तहँ हमार को चालै बाता?॥

वार पार नहिं सूझै, लाखन उमर अमीर।
अब खुर-खेह जाहुँ मिलि, आइ परेउँ एहि भीर॥ १॥

बादसाह सब जाना चूझा। सरग पतार हिये महँ सूझा॥
जौ राजा अस सजग न होई। काकर राज, कहाँ कर कोई॥
जगत-भार उन्ह एक सँभारा। तौ थिर रहै सकल संसारा॥
औ अस ओहिक सिंघासन ऊँचा। सब काहू पर दिस्टि पहूँचा॥
सब दिन राजकाज सुख-भोगी। रैनि फिरै घर घर होइ जोगी॥
राव रंक जावत सब जाती। सब कै चाह लेइ दिन राती॥
पंथी परदेसी जत आवहि। सब कै चाह दूत पहुँचावहिं॥

एहू बात तहँ पहुँची, सदा छत्र सुख-छाहँ!
बाम्हन एक वार है, कँकन जराऊ बाहँ॥ २॥

मया साह मन सुनत भिखारी। परदेसी को? पूछु हँकारी॥

---

(१) बार = द्वार। ठाढ़ झुराहि = खडे खड़े सूखते हैं। जोहार = सलाम। तेवान = चिंता, सोच। झूरा = व्याकुल होता है, सूखता है। नाहिं उवार = यहाँ गुजर नही। दीन्हे सिर छाता = छत्रपति राजा लोग। उमर = उमरा, सरदार। खुर-खेह = घोड़ो की टापो से उठी धूल मे। (२) सजग = होशियार। रैनि फिरै·····जोगी = रात को जोगी के भेस मे प्रजा की दशा देखने को घूमता है। चाह = खबर। (३) मया साह मन = बादशाह के मन मे दया हुई।

हम्ह पुनि जाना है परदेसा। कौन पंथ, गवनब केहि भेसा ?॥
दिल्ली राज चित मन गाढ़ी। यह जग जैस दूध कै साढ़ी॥
सैंति विलोव कीन्ह बहु फेरा। मथि कै लीन्ह घीउ महि केरा॥
एहि दहि लेइ का रहै ढिलाई। साढ़ी काढु, दही जब ताई॥
एहि दहि लेइ कित होइ होइ गए। कै कै गरब खेइ मिलि गए॥
रावन लंक जारि सब तापा। रहा न जोवन, आव बुढ़ापा॥

भीख भिखारी दीजिए, का बाम्हन का भाँट।
अज्ञा भई हँकारहु, धरती धरै लिलाट॥ ३॥

राघव चेतन हुत जो निरासा। ततखन वेगि बोलावा पासा॥
सीस नाइ कै दीन्ह असीसा। चमकत नग कंकन कर दीसा॥
अज्ञा भइ पुनि राघव पाहाँ। तू मंगन, कंकन का बाहाँ ?॥
राघव फेरि सीस भुइँ धरा। जुग जुग राज भानु कै करा॥
पदमिनि सिंघलदीप क रानी। रतनसेन चितउरगढ़ आनी॥
कवँल न सरि पूजै तेहि बासा। रूप न पूजै चंद अकासा॥
जहाँ कँवल ससि सूर न पूजा। केहि सरि देउँ, और को दूजा ?॥

सोइ रानी संसार-मनि दछिना कंकन दीन्ह।
अछरी-रूप देखाइ कै जीउ झरोखे लीन्ह॥ ४॥

सुनि कै उतर साहि मन हँसा। जानहु बीजु चमकि परगसा॥
काँच-जोग जेहि कंचन पावा। मंगन ताहि सुमेरु चढ़ावा॥
नावँ भिखारि जीभ मुख बाँची। अबहुँ सँभारि बात कहु साँची॥
कहँ अस नारि जगत उपराहीं। जेहि के सरि सूरुज ससि नाहीं ?॥
जो पदमिनि सो मँदिर मोरे। सातौ दीप जहाँ कर जोरे॥
सात दीप महँ चुनि चुनि आनी। सो मोरे सोरह सै रानी॥
जौ उन्ह कै देखसि एक दासी। देखि लोन होइ लोन बिलासी॥

---

सैंति = संचित करके। विलोव कीन्ह = मथा। महि = (क) पृथ्वी, (ख) मही, मट्ठा। दहि लेइ = (क) दिल्ली मे; (ख) दही लेकर। खेइ = धूल, मिट्टी। (४) हुत = था। संसार-मनि = जगत् मे मणि के समान। (५) जेहि कंचन पावा = जिससे सोना पाया। नावँ भिखारि ..... बाँची = भिखारी के नाम पर अर्थात् भिखारी समझकर तेरे मुँह मे जीभ बची हुई है, खींच नहीं ली गई। लोन = लावण्य, सौंदर्य्य। होइ लोन बिलासी = तू नमक की तरह गल जाय।

चहूँ खंड हौ चक्कवै, जस रवि तपै अकास।
जौ पदमिनि तौ मोरे, अछरी तौ कबिलास ॥ ५ ॥

तुम बड़ राज छत्रपति भारी। अनु बाम्हन मैं अहौ भिखारी ॥
चारिउ खंड भीख कहँ बाजा। उदय अस्त तुम्ह ऐस न राजा ॥
धरमराज औ सत कलि माहाँ। झूठ जो कहै जीभ केहि पाहाँ ? ॥
किछु जो चारि सब किछु उपराही। ते एहि जंबूदीपहि नाहीं ॥
पदमिनि, अमृत, हंस, सदूरू। सिंघलदीप मिलहिं पै मूरू ॥
सातौ दीप देखि हौ आवा। तब राघव चेतन कहवावा ॥
अज्ञा होइ, न राखौ धोखा। कहौ सबै नारिन्ह गुन-दोषा ॥

इहाँ हस्तिनी, संखिनी औ चित्रिनि बहु बास।
कहाँ पदमिनी पदुम सरि, भँवर फिरै जेहि पास ? ॥ ६ ॥

---

चक्कवै = चक्रवर्त्ती। (६) अनु = और, फिर। भीख कहँ = भिक्षा के लिए। बाजा = पहुँचता है, डटता है। उदय-अस्त = उदयाचल से अस्ताचल तक। किछु जो चारि·····उपराहीं = जो चार चीजें सबसे ऊपर हैं। मूरू = मूल, असल। बहु बास = बहुत सी रहती है।

## (४०) स्त्री-भेद-वर्णन-खंड

पहिले कहौं हस्तिनी नारी। हस्ती कै परकीरति सारी॥
सिर औ पायँ सुभर, गिउ छोटी। उर कै खीनि, लंक कै मोटी॥
कुंभस्थल कुच, मद उर माहीं। गवन गयंद, ढाल जनु बाहीं॥
दिस्टि न आवै आपन पीऊ। पुरुष पराए ऊपर जीऊ॥
भोजन बहुत, बहुत रति-चाऊ। अछवाई नहि, थोर बनाऊ॥
मद जस मंद बसाइ पसेऊ। औ बिसवासि छरै सब केऊ॥
डर औ लाज न एकौ हिये। रहै जो राखे आँकुस दिये॥

गज-गति चलै चहूँ दिसि, चितवै लाए चोख।
कही हस्तिनी नारि यह, सब हस्तिन्ह के दोख॥ १॥

दूसरि कहौं संखिनी नारी। करै बहुत बल, अलप-अहारी॥
उर अति सुभर, खीन अति लंका। गरब भरी, मन करै न संका॥
बहुत रोष, चाहै पिउ हना। आगे घाल न काहू गना॥
अपनै अलंकार ओहि भावा। देखि न सकै सिंगार परावा॥
सिंघ क चाल चलै डग ढीली। रोवाँ बहुत जाँघ औ फीली॥
मोटि, माँसु रुचि भोजन तासू। औ मुख आव बिसायँध बासू॥
दिस्टि तरहुँडी, हेर न आगे। जनु मथवाह रहै सिर लागे॥

सेज मिलत स्वामी कहँ लावै उर नखवान।
जेहि गुन सबै सिंघ के सो संखिनि, सुलतान!॥ २॥

तीसरि कहौं चित्रिनी नारी। महा चतुर रस-प्रेम पियारी॥
रूप सुरूप, सिंगार सवाई। अछरी जैसि रहै अछवाई॥

---

(१) अछवाई = सफाई। बनाऊ = बनाव-सिंगार। बसाइ = दुर्गंध करता है। चोख = चचलता या नेत्र। (२) सुभर = भरा हुआ। चाहै पिउ हना = पति को कभी कभी मारने दौड़ती है। घाल न गना = कुछ नहीं समझती, पसंगे बराबर नहीं समझती। फीली = पिंडली। तरहुँड़ी = नीचा। हेर = देखती है। मथवाह = झालरदार पट्टी जो झड़कनेवाले घोडो के मत्थे पर इसलिये बाँध दी जाती है जिसमे वे इधर उधर की वस्तु देख न सकें। जेहि गुन सबै सिंघ के = कवि ने शायद शखिनी के स्थान पर 'सिंघिनी' समझा है। (३) सवाई = अधिक। अछवाई = साफ, निखरी।

रोष न जानै, हँसता-मुखी। जेहि असि नारी कंत सो सुखी॥
अपने पिउ कै जानै पूजा। एक पुरुष तजि आन न दूजा॥
चंदबदनि, रँग कुमुदिनि गोरी। चाल सोहाइ हंस कै जोरी॥
खीर खाँड़ रुचि, अलप अहारू। पान फूल तेहि अधिक पियारू॥
पदमिनि चाहि घाटि दुइ करा। और सबै गुन ओहि निरमरा॥

चित्रिनि जैस कुमुद-रँग, सोइ बासना अंग।
पदमिनि सब चंदन असि, भँवर फिरहि तेहि संग॥ ३॥

चौथी कहौं पदमिनी नारी। पदुम-गंध ससि दैउ सँवारी॥
पदमिनि जाति, पदुम-रँग ओही। पदुम-बास, मधुकर सँग होहीं॥
ना सुठि लाँबी, ना सुठि छोटी। ना सुठि पातरि, ना सुठि मोटी॥
सोरह करा रंग ओहि बानी। सो, सुलतान! पदमिनी जानी॥
दीरघ चारि, चारि लघु सोई। सुभर चारि, चहुँ खीनौ होई॥
औ ससि-बदन देखि सब मोहा। बाल मराल चलत गति सोहा॥
खीर अहार न कर सुकुवाँरी। पान फूल के रहै अधारी॥

सोरह करा सँपूरन औ सोरहौ सिगार।
अब ओहि भाँति कहत हौं जस बरनै संसार॥ ४॥

प्रथम केस दीरघ मन मोहै। औ दीरघ अँगुरी कर सोहै॥
दीरघ नैन तीख तहँ देखा। दीरघ गीउ, कंठ तिनि रेखा॥
पुनि लघु दसन होहि जनु हीरा। औ लघु कुच उत्तंग जँभीरा॥
लघु लिलाट दूइज परगासू। औ नाभी लघु, चंदन बासू॥
नासिक खीन खरग कै धारा। खीन लंक जनु केहरि हारा॥
खीन पेट जानहुँ नहि आँता। खीन अधर बिद्रुम-रँग-राता॥
सुभर कपोल, देख मुख सोभा। सुभर नितंब देखि मन लोभा॥

सुभर कलाई अति बनी, सुभर जंघ, गज चाल।
सोरह सिंगार बरनि कै, करहि देवता लाल॥ ५॥

---

चाहि = अपेक्षा, बनिस्बत। घाटि = घटकर। करा = कला। बासना = बास, महँक। (४) सुठि = खूब, बहुत। दीरघ चारि...होइ = ये सोलह शृंगार के विभाग हैं। (५) दीरघ = लंबे। तीख = तीखे। तिनि = तीन। केहरि हारा = सिंह ने हार कर दी। आँता = अंतड़ी। सुभर = भरे हुए। लाल = लालसा।

## (४१) पद्मावती-रूप-चर्चा-खंड

वह पदमिनि चितउर जो आनी। काया कुंदन द्वादसबानी॥
कुंदन कनक ताहि नहि बासा। वह सुगंध जस केवल बिगासा॥
कुंदन कनक कठोर सो अंगा। वह कोमल, रँग पुहुप सुरंगा॥
ओहि छुइ पवन विरिछ जेहि लागा। सोइ मलयागिरि भएउ सुभागा॥
काह न मूठि-भरी ओहि देही ?। असि मूरति केइ दैउ उरेही ?॥
सबै चितेर चित्र कै हारे। ओहिक रूप कोइ लिखै न पारे॥
कया कपूर, हाड़ सब मोती। तिन्हतें अधिक दीन्ह बिधि जोती॥

सुरुज-किरिन जसि निरमल, तेहिते अधिक सरीर।
सौंह दिस्टि नहि जाइ करि, नैनन्ह आवै नीर॥ १॥

ससि-मुख जबहि कहै किछु बाता। उठत ओठ सूरुज जस राता॥
दसन दसन सौ किरिन जो फूटहि। सब जग जनहुँ फुलझरी छूटहि॥
जानहु ससि महँ बीजु देखावा। चौंधि परै किछु कहै न आवा॥
कौंधत अह जस भादौं-रैनी। साम रैनि जनु चलै उड़ैनी॥
जनु बसंत ऋतु कोकिल बोली। सुरस सुनाइ मारि सर डोली॥
ओहि सिर सेस नाग जौ हरा। जाइ सरन बेनी होइ परा॥
जनु अमृत होइ बचन बिगासा। कवल जो बास बास धनि पासा॥

सबै मनहि हरि जाइ मरि जो देखै तस चार।
पहिले सो दुख बरनि कै, बरनौं ओहिक सिगार॥ २॥

कित हौं रहा काल कर काढ़ा। जाइ धौरहर तर भा ठाढ़ा॥
कित वह आइ झरोखे झाँकी। नैन कुरंगिनि, चितवनि बाँकी॥
बिहसी ससि तरई जनु परी। की सो रैनि छुटी फुलझरी॥

---

(१) बासा = महक, सुगंध। ओहि छुइ...सभागा = उसको छूकर वायु जिन पेड़ों मे लगी वे मलयागिरि चंदन हो गए। काह न मूठि...देही = उस मुट्ठी भर देह मे क्या नहीं है ? चितेर = चित्रकार। (२) साम रैनि = अँधेरी रात। उड़ैनी = जुगनू। सर = बाण। चार = ढंग, ढब। दुख = उसके दर्शन से उत्पन्न विकलता। (३) काल कर काढ़ा = काल का चुना हुआ।

चमक बीजु जस भादौं रैनी। जगत दिस्टि भरि रही उड़ैनी॥
काम-कटाछ दिस्टि विष बसा। नागिनि-अलक पलक महँ डसा॥
भौंह धनुष, पल काजर बूड़ी। वह भइ धानुक, हौं भा ऊड़ी॥
मारि चली, मारत हू हँसा। पाछे नाग रहा, हौं डँसा॥

काल घालि पाछे रखा, गरुड़ न मंतर कोइ।
मोरे पेट वह पैठा, कासौं पुकारौं रोइ? ॥ ३॥

बेनी छोरि झार जौ केसा। रैनि होइ, जग दीपक लेसा॥
सिर हुँत बिसहर परे भुइँ बारा। सगरौं देस भएउ अँधियारा॥
सकपकाहिं बिष-भरे पसारे। लहरि-भरे लहकहिं अति कारे॥
जानहुँ लोटहि चढ़े भुअंगा। बेधे बास मलयगिरि-अंगा॥
लुरहि मुरहि जनु मानहिं केली। नाग चढ़े मालति कै बेली॥
लहरै देइ जनहुँ कालिदी। फिरि फिरि भँवर होइ चित-बंदी॥
चँवर ढुरत आछै चहुँ पासा। भँवर न उड़हि जो लुबुधे बासा॥

होइ अँधियार बीजु घन लाँपै जबहि चीर गहि झाँप।
केस-नाग कित देख मै, सँवरि सँवरि जिय काँप॥ ४॥

माँग जो मानिक सेंदुर-रेखा। जनु बसंत राता जग देखा॥
कै पत्रावलि पाटी पारी। औ रुचि चित्र बिचित्र सँवारी॥
भए उरेह पुहुप सब नामा। जनु बग बिखरि रहे घन सामा॥
जमुना माँझ सुरसती मंगा। दुहुँ दिसि रही तरंगिनि गंगा॥
सेंदुर-रेख सो ऊपर राती। बीरबहूटिन्ह कै जसि पाँती॥
बलि देवता भए देखि सेंदूरू। पूजै माँग भोर उठि सूरू॥
भोर साँझ रबि होइ जो राता। ओहि रेखा राता होइ गाता॥

---

पल = पलक। बूड़ी = डूबी हुई। धानुक = धनुष चलानेवाली। ऊड़ी = पनडुब्बी चिड़िया। घालि.. रखा = डाल रखा। (४) झार = झारती है। जग दीपक लेसा = रात समझकर लोग दीया जलाने लगते हैं। सिर हुँत = सिर से। बिसहर = विषधर, साँप। सकपकाहिं = हिलते-डोलते हैं। लहकहिं = लहराते हैं, झपटते हैं। लुरहिं = लोटते हैं। फिरि फिरि भँवर = पानी के भँवर में चक्कर खाकर। बंदी = कैद, बँधुवा। ढुरत आछै = ढरता रहता है। झाँप = ढाँकती है। (५) पत्रावलि = पत्रभंग-रचना। पाटी = माँग के दोनों ओर बैठाए हुए बाल। उरेह = विचित्र सजावट। बग = बगले। पूजै = पूजन करता है।

वेनी कारी पुहुप लेइ निकसी जमुना आइ।
पूज इंद्र आनंद सौं सेंदुर सीस चढ़ाइ॥ ५॥

दुइज लिलाट अधिक मनियारा। संकर देखि माथ तहँ धारा॥
यह निति दुइज जगत सब दीसा। जगत जोहारै देइ असीसा॥
ससि जो होइ नहिं सरवरि छाजै। होइ सो अमावस छपि मन लाजै॥
तिलक सँवारि जो चुन्नी रची। दुइज माँझ जानहुँ कचपची॥
ससि पर करवत सारा राहू। नखतन्ह भरा दीन्ह बड़ दाहू॥
पारस-जोति लिलाटहि ओती। दिस्टि जो करै होइ तेहि जोती॥
सिरी जो रतन माँग बैठारा। जानहु गगन टूट निसि तारा॥

ससि औ सूर जो निरमल तेहि लिलाट के ओप।
निसि दिनदौरि न पूजहि, पुनि पुनि होहिं अलोप॥ ६॥

भौंहैं साम धनुक जनु चढ़ा। बेझ करै मानुस कहँ गढ़ा॥
चंद क मूठि धनुक वह ताना। काजर पनच, बरुनि विष-बाना॥
जा सहुँ हेर जाइ सो मारा। गिरिवर टरहिं भौंह जो टारा॥
सेतुबंध जेइ धनुप बिड़ारा। उहौ धनुष भौंहन्ह सौं हारा॥
हारा धनुप जो बेधा राहू। और धनुष कोइ गनै न काहू॥
कित सो धनुप मैं भौंहन्ह देखा। लाग बान तिन्ह आउ न लेखा॥
तिन्ह बाननह झाँझर भा हीया। जो अस मारा कैसे जीया?॥

सूत सूत तन बेधा, रोवँ रोवँ सब देह।
नस नस महँ ते सालहि, हाड़ हाड़ भए बेह॥७॥

नैन चित्र एहि रूप चितेरा। कँवल-पत्र पर मधुकर फेरा॥
समुद-तरंग उठहि जनु राते। डोलहि औ घूमहि रस-माते॥
सरद-चंद महँ खंजन-जोरी। फिरि फिरि लरैं बहोरि बहोरी॥

---

(६) मनियारा = कांतिमान्, साहावना। चुन्नी = चमकी या सितारे जो माथे या कपोलों पर चिपकाए जाते हैं। पारस-जोति = ऐसी ज्योति जिससे दूसरी वस्तु को ज्योति हो जाय। सिरी = श्री नाम का आभूषण। ओप = चमक। पूजहि = बराबरी को पहुँचते हैं। (७) बेझ करै = बेध करने के लिये। पनच = पनंचिका, धनुप की डोरी। बिहाड़ा = नष्ट किया। धनुप जो बेधा राहू = मत्स्यबेध करनेवाला अर्जुन का धनुष। आउ न लेखा = आयु को समाप्त समझा। बेह = बेध, छेद। (८) नैन चित्र...चितेरा = नेत्रों का चित्र इस रूप से चित्रित हुआ है। चितेरा = चित्रित किया गया। बहोरि बहोरी =

चपल बिलोल डोल उन्ह लागे। थिर न रहै चंचल बैरागे॥
निरखि अघाहि न हत्या हुँते। फिरि फिरि स्रवनन्ह लागहि मते॥
अंग सेत, मुख साम सो ओही। तिरछे चलहिं सूध नहि होहीं॥
सुर, नर, गंधव लाल कराहीं। उथले चलहि सरग कहँ जाहीं॥

अस वै नयन चक्र दुइ भँवर समुद उलथाहिं।
जनु जिउ घालि हिंडोलहिं लेइ आवहिं, लेइ जाहिं॥८॥

नासिक-खड़ग हरा धनि कीरू। जोग सिगार जिता औ बीरू॥
ससि-मुँह सौहँ खड़ग देइ रामा। रावन सौ चाहै संग्रामा॥
दुहुँ समुद्र महँ जनु बिच नीरू। सेतु बंध बाँधा रघुबीरू॥
तिल के पुहुप अस नासिक तासू। औ सुगंध दीन्ही विधि वासू॥
हीर-फूल पहिरे उजियारा। जनहुँ सरद ससि सोहिल तारा॥
सोहिल चाहि फूल वह ऊँचा। धावहि नखत, न जाइ पहूँचा॥
न जनौ कैस फूल वह गढ़ा। बिगसि फूल सब चाहहिं चढ़ा॥

अस वह फूल सुबासित भएउ नासिका-बंध।
जेत फूल ओहि हिरकहि तिन्ह कहँ होइ सुगंध॥९॥

अधर सुरंग, पान अस खीने। राते-रंग, अमिय - रस - भीने॥
आछहिं भिजे तँबोल सौं राते। जनु गुलाल दीसहि बिहँसाते॥
मानिक अधर, दसन जनु हीरा। बैन रसाल, खाँड़ मुख बीरा॥
काढ़े अधर डाभ जिमि चीरा। रुहिर चुवै जौ खाँड़ै बीरा॥
ढारै रसहि रसहि रस-गीली। रकत-भरी औ सुरँग रँगीली॥
जनु परभात राति रवि-रेखा। बिगसे बदन कँवल जनु देखा॥
अलक भुअंगिनि अधरहि राखा। गहै जो नागिनि सो रस चाखा॥

अधर अधर रस प्रेम कर, अलक भुअंगिनि बीच।
तब अमृत-रस पावै जब नागिनि गहि खीच॥१०॥

---

फिर फिर। फिरि फिरि = घूम घूमकर। मते सलाह = करने मे। अँग सेत... ओही = आखो के सफेद डेले और काली पुतलियाँ। लाल = लालसा। (९) कीरू = तोता। सोहिल तारा = सुहेल तारा जो चद्रमा के पास रहता है। बिगसि फूल...चढ़ा = फूल जो खिलते है मानों उसी पर निछावर होने के लिये। (१०) काढ़े अधर...चीर = जैसे कुश का चीरा लगा हो ऐसे पतले ओठ है। जौ खाँड़ै बीरा = जब बीड़ा चबाती है। जनु परभात... देखा = मानो विकसित कमलमुख पर सूर्य्य की लाल किरने पड़ी हों।

दसन साम पानन्ह-रँग-पाके। बिगसे कँवल माँह अलि ताके॥
ऐसि चमक मुख भीतर होई। जनु दारिउँ औ साम मकोई॥
चमकहिं चौंक बिहंस जौ नारी। बीजु चमक जस निसि अँधियारी॥
सेत साम अस चमकत दीठी। नीलम हीरक पाँति बईठी॥
केइ सो गढ़े अस दसन अमोला। मारै बीजु बिहँसि जो बोला॥
रतन भीजि रस-रँग भए सामा। ओही छाज पदारथ नामा॥
कित वै दसन देख रस—भीने। लेइ गइ जोति, नैन भए हीने॥

दसन-जोति होइ नैन-मग हिरदय माँझ पईठ।
परगट जग अँधियार जनु, गुपुत ओहि मै दीठ॥ ११॥

रसना सुनहु जो कह रस-बाता। कोकिल बैन सुनत मन राता॥
अमृत-कोंप जीभ जनु लाई। पान फूल असि बात सोहाई॥
चातक-बैन सुनत होइ साँती। सुनै सो परै प्रेम-मधु माती॥
बिरवा सूख पाव जस नीरू। सुनत बैन तस पलुह सरीरू॥
बोल सेवाति-बूँद जनु परहीं। स्रवन-सीप-मुख मोती भरहीं॥
धनि वे बैन जो प्रान-अधारू। भूखे स्रवनहि देहिं अहारू॥
उन्ह बैनन्ह कै काहि न आसा। मोहहि मिरिग बीन-बिस्वासा॥

कंठ सारदा मोहै, जीभ सुरसती काह?
इंद्र, चंद्र, रवि देवता सबै जगत मुख चाह॥ १२॥

स्रवन सुनहु जो कुंदन-सीपी। पहिरे कुंडल सिंघलदीपी॥
चाँद सुरुज दुहुँ दिसि चमकाही। नखतन्ह भरे निरखि नहिं जाही॥
खिन खिन करहि बीजु अस काँपा। अँबर-मेघ महे रहहि न झाँपा॥
सूक सनीचर दुहुँ दिसि मते। होहिं निनार न स्रवनन्ह-हुँते॥
काँपत रहहिं बोल जो बैना। स्रवनन्ह जौ लागहि फिर नैना॥
जस जस बात सखिन्ह सौ सुना। दुहुँ दिसि करहि सीस वै धुना॥
खूँट दुवौ अस दमकहि खूँटी। जनहु परै कचपचिया टूटी॥

---

(११) ताके = दिखाई पडे। मकोई = जंगली मकोय जो काली होती है। कित वै दसन···भीने = कहाँ से मैंने उन रग भीने दाँतो को देखा। (१२) कोप = कोपल, नया कल्ला। साँती = शाति। माती = मात कर। बिरवा = पेड़। सूख = सूखा हुआ। पलुह = पनपता है, हरा होता है। बीन बिस्वासा = बीन समझकर। (१३) कुंदन सीपी = कुंदन की सीप (ताल के सीपो का आधा संपुट)। अबर = वस्त्र। खूँट = कोना, ओर। खूँटी = खूँट नाम का गहना। कचपचिया = कृत्तिका नक्षत्र।

वेद पुरान ग्रंथ जत स्रवन सुनत सिखि लीन्ह।
नाद विनोद राग रस-बंधक स्रवन ओहि विधि दीन्ह ॥ १३ ॥

कँवल कपोल ओहि अस छाजै। और न काहु देउ अस साजै ॥
पुहुप-पंक रस-अमिय सँवारे। सुरँग गँद नारँग रतनारे ॥
पुनि कपोल बाएँ तिल परा। सो तिल विरह-चिनगि कै करा ॥
जो तिल देख जाइ जरि सोई। बाएं दिस्टि काहु जिनि होई ॥
जानहुँ भँवर पदुम पर टूटा। जीउ दीन्ह औ दिए न छूटा ॥
देखत तिल नैनन्ह गा गाड़ी। और न सूझै सो तिल छाँड़ी ॥
तेहि पर अलक मनि-जरी डोला। छुवै सो नागिनि सुरँग कपोला ॥

रच्छा करै मयूर वह, नाँघि न हिय पर लोट।
गहिरे जग को छुइ सकै, दुइ पहार के ओट ॥ १४ ॥

गीउ मयूर केरि जस ठाढ़ी। कुदै फेरि कुंदेरै काढ़ी ॥
धनि वह गीउ का वरनौं करा। बाँक तुरंग जनहुँ गहि परा ॥
घिरिनि परेवा गीउ उठावा। चहै बोल तमचूर सुनावा ॥
गीउ सुराही कै अस भई। अमिय पियाला कारन नई ॥
पुनि तेहि ठाँव परी तिनि रेखा। तेइ सोइ ठाँव होइ जो देखा ॥
सुरुज-किरिनि हुँत गिउ निरमली। देखे वेगि जाति हिय चली ॥
कंचन-तार सोह गिउ भरा। साजि कँवल तेहि ऊपर धरा ॥

नागिनि चढ़ी कँवल पर, चढ़ि कै बैठ कमंठ।
कर पसार जो काल कहँ, सो लागै ओहि कंठ ॥ १५ ॥

कनक दंड भुज बनी कलाई। डाँड़ी-कँवल फेरि जनु लाई ॥
चंदन खाँभहि भुजा सँवारी। जानहुँ मेलि कँवल-पौनारी ॥

---

( १४ ) पुहुप पक = फूल का कीचड या पराग। कै करा = के रूप, के समान। बाएँ दिस्टि.....होई = किसी की बाई ओर न जाय क्योंकि वहाँ तिल है। गा गाडी = गड़ गया। दुइ पहार = अर्थात् कुच। ( १५ ) कुदै = खराद पर। कुँदेरै = कुँदेरे ने। करा = कला, शोभा। घिरिनि परेवा = गिरहबाज कबूतर। तमचूर = मुर्गा। तेइ सोइ ठाँव.....देखा = जो उसे देखता है वह उसी जगह ठक रह जाता है। जति हिय चली = हृदय में बस जाती है। नागिनि = अर्थात् केश। कमंठ = कछुए के समान पीठ या खोपड़ी। ( १६ ) डाँड़ी कँवल.....लाई = कमलनाल उलटकर रखा हो।

तेहि डाँड़ी सँग कवँल-हथोरी। एक कँवल कै दूनौ जोरी॥
सहजहि जानहु मेहँदी रची। मुकुताहल लीन्हें जनु घुँघची॥
कर-पल्लव जो हथोरिन्ह साथा। वै सब रकत भरे तेहि हाथा॥
देखत हिया काढ़ि जनु लेई। हिया काढ़ि कै जाइ न देई॥
कनक-अँगूठी औ नग जरी। वह हत्यारिनि नखतन्ह भरी॥

जैसी भुजा कलाई, तेहि विधि जाइ न भाखि।
कंकन हाथ होइ जहें, तहँ दरपन का साखि? ॥१६॥

हिया थार, कुच कनक-कचोरा। जानहुँ दुवौ सिरीफल-जोरा॥
एक पाट वै दूनौ राजा। साम छत्र दूनहुँ सिर छाजा॥
जानहुँ दोउ लटू एक साथा। जग भा लटू, चढ़ै नहिं हाथा॥
पातर पेट आहि जनु पूरी। पान अधार, फूल अस फूरी॥
रोमावलि ऊपर लटु घूमा। जानहु दोउ साम औ रूमा॥
अलक भुअंगिनि तेहि पर लोटा। हिय-घर एक खेल दुइ गोटा॥
चान पगार उठे कुच दोऊ। नाँघि सरन्ह उन्ह पाव न कोऊ॥

कैसहु नवहि न नाए, जोवन गरब उठान।
जो पहिले कर लावै, सो पाछे रति मान॥१७॥

भृंग-लंक जनु माँझ न लागा। दुइ खँड-नलिन माँझ जनु तागा॥
जब फिरि चली देख मै पाछे। अछरी इंद्रलोक जनु काछे॥
जबहिं चली मन भा पछिताऊ। अबहूँ दिस्टि लागि ओहि ठाऊँ॥
अछरी लाजि छपी गति ओही। भई अलोप, न परगट होहीं॥
हंस लजाइ मानसर खेले। हस्ती लाजि धूरि सिर मेले॥
जगत बहुत तिय देखी महूँ। उदय अस्त अस नारि न कहूँ॥
महिमंडल तौ ऐसि न कोई। ब्रह्ममंडल जौ होइ तौ होई॥

बरनेउँ नारि, जहाँ लगि, दिस्टि झरोखे आइ।
और जो अही अदिस्ट धनि, सो किछु बरनि न जाइ॥१८॥

---

कर-पल्लव = उँगली। साखि = साक्षी। कंकन हाथ...साखि = हाथ कंगन को आरसी क्या? (१७) कचोरा = कटोरा। पाट = सिंहासन। साम छत्र = अर्थात् कुच का श्याम अग्रभाग। लटु = लट्टू। फूरी = फूली। साम = शाम (सीरिया) का मुल्क जो अरब के उत्तर है। घर = खाना, कोठा। गोटा = गोटी। पगार = प्राकार या परकोटे पर। (१८) देख = देखा। खेले = चले गए। ब्रह्ममंडल = स्वर्ग।

का धनि कहौं जैसि सुकुमारा। फूल के छूए होइ बेकरारा॥
पखुरी काढ़हि फूलन सेंती। सोई डासहिं सौंर सपेती॥
फूल समूचे रहै जौ पावा। व्याकुल होइ नींद नहिं आवा॥
सहै न खीर, खोड़ औ घाऊ। पान-अधार रहै तन जीऊ॥
नस पानन्ह कै काढ़हि हेरी। अधर न गड़ै फाँस ओहि केरी॥
मकरि क तार तेहि कर चीरू। सो पहिरे छिरि जाइ सरीरू॥
पालंग पावँ, क आछै पाटा। नेत बिछाव चलै जौ बाटा॥

घालि नैन ओहि राखिय, पल नहिं कीजिय ओट।
पेम का लुबुधा पाव ओहि, काह सो बड़ का छोट॥१६॥

जौ राघव धनि बरनि सुनाई। सुना साह, गइ मुरछा आई॥
जनु मूरति वह परगट भई। दरस देखाइ माहि छपि गई॥
जो जो मन्दिर पदमिनि लेखी। सुना जौ कँवल कुमुद अस देखी॥
होइ मालति धनि चित्त पईठी। और पुहुप कोइ आव न दीठी॥
मन होइ भँवर, भएउ बैरागा। कँवल छाँड़ि चित और न लागा॥
चाँद के रंग सुरुज जस राता। और नखत सो पूछ न बाता॥
तब कह अलाउदी जग-सूरू। लेउँ नारि चितउर कै चूरू॥

जौ वह पदमिनि मानसर, अलि न मलिन होइ जात।
चितउर महँ जो पदमिनी फेरि उहै कहु बात॥२०॥

ए जगसूर! कहौं तुम्ह पाहाँ। और पाच नग चितउर माहाँ॥
एक हंस है पंखि अमोला। मोती चुनै, पदारथ बोला॥
दूसर नग जो अमृत-बसा। सो विष हरै नाग कर डसा॥
तीसर पाहन परस पखाना। लोह छुए होइ कंचन-बाना॥
चौथ अहै सादूर अहेरी। जो बन हस्ति धरै सब घेरी॥

---

(१६) बेकरारा = बेचैन। डासहिं = बिछाती हैं। सौंर = चादर। फाँस = कड़ा तंतु। मकरि क तार = मकड़ी के जाले सा महीन। छिरि जाइ = छिल जाता है। पालँग पावँ.. पाटा = पैर या तो पलंग पर रहते हैं या सिंहासन पर। नेत = रेशमी कपड़े की चादर (सं० नेत्र)। (२०) माहि = भीतर (हृदय के)। जो जो मंदिर..... देखी = अपने घर की जिन जिन स्त्रियों को पद्मिनी समझ रखा था वे पद्मिनी (कँवल) का वृत्तांत सुनने पर कुमुदिनी के समान लगने लगीं। चूरू कै = तोड़कर। मखिन = हतोत्साह। (२१) पदारथ = बहुत उत्तम बोल। परस पखाना = पारस पत्थर। सादूर = शार्दूल, सिंह।

पाँचव नग सो तहाँ लागना। राजपंखि पेखा गरजना॥
हरिन रोझ कोइ भागि न बाँचा। देखत उड़ै सचान होइ नाचा॥

नग अमोल अस पाँचौ भेंट समुद ओहि दीन्ह।
इसकंदर जो न पावा सो सायर धँसि लीन्ह॥२१॥

पान दीन्ह राघव पहिरावा। दस गज हस्ति घोड़ सो पावा॥
औ दूसर कंकन कै जोरी। रतन लाग ओहि बत्तिस कोरी॥
लाख दिनार देवाई जेंवा। दारिद हरा समुद कै सेवा॥
हौं जेहि दिवस पदमिनी पावौं। तोहि राघव! चितउर बैठावौं॥
पहिले करि पाँचौ नग मूठी। सो नग लेउ जो कनक-अँगूठी॥
सरजा वीर पुरुष वरियारू। ताजन नाग, सिंघ असवारू॥
दीन्ह पत्र लिखि, वेगि चलावा। चितउर-गढ़ राजा पहँ आवा॥

राजै पत्रि वँचावा, लिखी जो करा अनेग।
सिंघल कै जो पदमिनी, पठै देहु तेहि वेग॥२२॥

---

लागना = लगनेवाला, शिकार करनेवाला। गरजना = गरजनेवाला। रोझ = नीलगाय। सचान = बाज। सायर = समुद्र। (२२) जेवा = दक्षिणा मे। ताजन नाग = नाग का कोड़ा। करा = कला से, चतुराई से।

## (४२) बादशाह-चढ़ाई-खंड

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा। जानौ दैउ तड़पि घन गाजा॥
का मोहिं सिघ देखावसि आई। कहौ तौ सारदूल धरि खाई॥
भलेहि साह पुहुमीपति भारी। माँग न कोउ पुरुष के नारी॥
जो सो चक्कवै ताकहँ राजू। मँदिर एक कहँ आपन साजू॥
अछरी जहाँ इंद्र पै आवै। और न सुनै न देखे पावै॥
कंस राज जीता जौ कोपी। कान्ह न दीन्ह काहु कहँ गोपी॥
को मोहि ते अस सूर अपारा। चढ़ै सरग, खसि परै पतारा॥

का तोहि जीउ मरावौं सकत आन के दोस?
जो नहि बुझै समुद्र-जल सो बुझाइ कित ओस? ॥१॥

राजा! अस न होहु रिस-राता। सुनु होइ जूड़, न जरि कहु बाता॥
मै हौं इहाँ मरै कहँ आवा। बादसाह अस जानि पठावा॥
जो तोहि भार, न औरहि लेना। पूछहि कालि उतर है देना॥
बादसाह कहँ ऐस न बोलू। चढ़ै तौ परै जगत महँ डोलू॥
सूरहि चढ़त न लागहि बारा। तपै आगि जेहि सरग पतारा॥
परबत उड़हि सूर के फूँके। यह गढ़ छार होइ एक झूँके॥
धँसै सुमेरु, समुद गा पाटा। पुहुमी डोल, सेस-फन फाटा॥

तासौं कौन लड़ाई? बैठहु चितउर खास।
ऊपर लेहु चँदेरी, का पदमिनि एक दासि? ॥२॥

जौ पै घरनि जाइ घर केरी। का चितउर, का राज चँदेरी॥
जिउ न लेइ घर कारन कोई। सो घर देइ जो जोगी होई॥
हौं रनथँभउर-नाह हमीरू। कलपि साथ जेइ दीन्ह सरीरू॥

---

(१) दैउ = (देव) आकाश में। मँदिर एक कहँ...साजू = घर बचाने भर को मेरे पास भी सामान है। पै = ही। कोपी = कोप करके। सकत = भरसक। दोस = दोष। (२) राता = लाल। जो तोहि भार...लेना = तेरी जवाबदेही तेरे ऊपर है। डोलू = हलचल। बारा = देर। जेहि = जिसकी। (३) घरनि = गृहिणी, स्त्री। जिउ न लेइ = चाहे जी ही न ले ले। हमीरू = रण-

हौं सो रतनसेन सक-बंधी। राहु बेधि जीता सैरंधी॥
हनुवँत सरिस भार जेइ काँधा। राघव सरिस समुद जो बाँधा॥
बिक्रम सरिस कीन्ह जेइ साका। सिंघलदीप लीन्ह जौ ताका॥
जौ अस लिखा भएउँ नहिं ओछा। जियत सिंघ कै गह को मोछा?॥

दरब लेई तौ मानौ, सेव करौं गहि पाउ।
चाहै जौ सो पदमिनी सिंघलदीपहि जाउ॥ ३॥

बोलु न, राजा! आपु जनाई। लीन्ह देवगिरि और छिताई॥
सातौ दीप राज सिर नावहि। औ सँग चली पदमिनी आवहिं॥
जेहि कै सेव करै संसारा। सिंघलदीप लेत कित बारा?॥
जिनि जानसि यह गढ़ तोहि पाहीं। ताकर सबै, तोर किछु नाहीं॥
जेहि दिन आइ गढ़ी कहँ छेकिहि। सरवस लेइ, हाथ को टेकिहि?॥
सीस न छाँड़ै खेह के लागे*। सो सिर छार होइ पुनि आगे॥
सेवा करु जौ जियन तोहि, भाई। नाहि त फेरि मँख होइ जाई॥

जाकर जीवन दीन्ह तेहि अगमन सीस जोहारि।
ते करनी सब जानै, काह पुरुष का नारि॥ ४॥

तुरुक! जाइ कहु मरै न धाई। होइहि इसकंदर कै नाई॥
सुनि अमृत कदलीवन धावा। हाथ न चढ़ा, रहा पछितावा॥
औ तेहि दीप पतँग होइ परा। अगिनि-पहार पाँव देइ जरा॥
धरती लोह, सरग भा ताँवा। जीउ दीन्ह, पहुँचत कर लाँवा॥
यह चितउरगढ़ सोइ पहारू। सूर उठै तब होइ अँगारू॥
जौ पै इसकंदर सरि कीन्हीं। समुद लेहु धँसि जस वै लीन्ही॥
जो छरि आनै जाइ छिताई। तेहि छर औ डर होइ मिताई॥

थंभौरगढ़ का राजा हम्मीर। सक-बंधी = साका चलानेवाला। सैरंधी = सैरंध्री, द्रौपदी। राहु = रोहू मछली। जाउ = जावे। (४) आपु जनाई = अपने को बहुत बड़ा प्रकट करके। छिताई = कोई स्त्री (?)। सीस न छाँड़ै .....लागे = धूल पड़ जाने से सिर न कटा, छोटी सी बात के लिये प्राण न दे।

* पाठांतर—"खीस के लागे"। खीस = खिसियाहट, रिस।

माख = क्रोध, नाराजगी। (५) कै नाई = की सी दशा। धरती लोह..... ताँवा = उस आग के पहाड़ की धरती लोहे के समान दृढ़ है और उसकी आँच से आकाश ताम्रवर्ण हो जाता है। जौ पै इसकंदर...कीन्ही = जो तुमने सिकंदर की बराबरी की है तो। छर औ डर = छल और भय दिखाने से।

महूँ समुझि अस अगमन सजि राखा गढ़ साजु।
काल्हि होइ जेहि आवन सो चलि आवै आजु॥ ५॥

सरजा पलटि साह पहँ आवा। देव न मानै बहुत मनावा॥
आगि जो जरै आगि पै सूझा। जरत रहै, न बुझाए बूझा॥
ऐसे माथ न नावै देवा। चढ़ै सुलेमाँ मानै सेवा॥
सुनि कै अस राता सुलतानू। जैसे तपै जेठ कर भानू॥
सहसौ करा रोष अस भरा। जेहि दिसि देखै तेइ दिसि जरा॥
हिंदू देव काह बर खाँचा?। सरगहु अब न सूर सौ बाँचा॥
एहि जग आगि जो भरि मुख लीन्हा। सो सँग आगि दुहूँ जग कीन्हा॥

रनथँभउर जस जरि बुझा चितउर परै सो आगि।
फेरि बुझाए ना बुझै, एक दिवस जौ लागि॥ ६॥

लिखा पत्र चारिहु दिसि धाए। जावत उमरा बेगि बोलाए॥
दुंद-घाव भा, इंद्र सकाना। डोला मेरु, सेस अकुलाना॥
धरती डोलि, कमठ खरभरा। मथन-अरंभ समुद महँ परा॥
साह बजाइ चढ़ा, जग जाना। तीस कोस भा पहिल पयाना॥
चितउर सौंह बारिगह तानी। जहँ लगि सुना कूच सुलतानी॥
उठि सरवान गगन लगि छाए। जानहु राते मेघ देखाए॥
जो जहँ तहँ सूता अस जागा। आइ जोहार कटक सब लागा॥

हस्ति घोड़ औ दर पुरुष जावत बेसरा ऊँट।
जहँ तहँ लीन्ह पलानै, कटक सरह अस छूट॥ ७॥

चले पंथ बेसर* सुलतानी। तीख तुरंग बाँक कनकानी॥

---

(६) देव = (क) राजा, (ख) राक्षस। सुलेमाँ = यहूदियों का बादशाह सुलेमान जिसने देवो और परियो को जीतकर वश मे कर लिया था। बर खाँचा = क्या हठ दिखाता है। रनथँभउर = रणथभौर का प्रसिद्ध वीर हम्मीर अलाउद्दीन से लड़कर मारा गया था। (७) दुंद घाव = डके पर चोट। सकाना = डरा। अरभ = शोर। बारिगह = बारगाह, दरबार (?)। बारिगह तानी = दरबार बढ़ा (?)। सरवान = झंडा या तंबू (?)। सूता = सोया हुआ। दर = दल, सेना। बेसरा = खच्चर। पलानै लीन्ह = घोड़े कसे। सरह = शलभ, टिड्डी। (८) कनकानी = एक प्रकार के घोड़े जो गदहे से कुछ ही बड़े और बड़े कदमबाज होते है।

* पाठांतर—"पैगह"।

कारे, कुमइत, लील, सुपेते। खिंग, कुरंग, वोज, दुर केते॥
अवलक, अरवी, लखी सिराजी। चौघर चाल, समँद भल, ताजी॥
किरमिज, नुकरा, जरदे, भले। रूपकरान, वोलसर, चले॥
पँचकल्यान, सँजाव, बखाने। महि सायर सव चुनि चुनि आने॥
मुशकी औ हिरमिजी, एराकी। तुरकी कहे भोथार वुलाकी॥
विखरि चले जो पाँतिहि पाँती। वरन वरन औ भाँतिहि भाँती॥

सिर औ पूँछ उठाए चहुँ दिसि साँस ओनाहि।
रोष भरे जस वाउर पवन-तुरास उड़ाहि॥८॥

लोहसार हस्ती पहिराए। मेघ साम जनु गरजत आए॥
मेघहि चाहि अधिक वै कारे। भएउ असूझ देखि अँधियारे॥
जसि भादौं निसि आवै दीठी। सरग जाइ हिरकी तिन्ह पीठी॥
सवा लाख हस्ती जव चाला। परवत सहित सवै जग हाला॥
चले गयंद माति मद आवहि। भागहिं हस्ती गंध जौ पावहिं॥
ऊपर जाइ गगन-सिर धंसा। औ धरती तर कहँ धसमसा॥
भा भुइँचाल चलत जग जानी। जहँ पग धरहि उठै तहँ पानी॥

चलत हस्ति जग काँपा, चाँपा सेस पतार।
कमठ जो धरती लेइ रहा, वैठि गएउ गजभार॥९॥

चले जो उमरा मीर वखाने। का वरनौ जस उन्ह कर वाने॥
खुरासान औ चला हरेऊ। गौर वँगाला रहा न केऊ॥
रहा न रूम-शाम-सुलतानू। कासमीर, ठट्टा मुलतानू॥
जावत वड़ वड़ तुरुक कै जाती। माँडौवाले औ गुजराती॥

---

कुमइत = कुम्मैत। खिंग = सफेद घोड़ा जिसके मुँह पर का पट्टा और चारो सुम गुलाबीपन लिए हो। कुरंग = कुलंग। लखी = लाखी। सिराजी = शीराज के। चौघर = सरपट या पोइयाँ चाल। किरमिज = किरमिजी रंग के। तुरास = वेग। (९) लोहसार = फौलाद। अँधियारे = काले। हिरकी = लगी, सटी। तिन्ह = उनकी। हस्ती = दिग्गज। तर कहँ = नीचे को। उठै तहँ पानी = गड्ढा हो जाता है और नीचे से पानी निकल पड़ता है। (१०) वाने = वेश, सजावट। हरेऊ = हरेव, 'हरउअती' (सं० सरस्वती, प्राचीन पारसी—हरह्वैती) या अरगदाब नदी के आसपास का प्रदेश, जो हिंदूकुश के दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। गौर = गौड़; वंग देश की राजधानी। शाम = अरब के उत्तर शाम का मुल्क।

पटना, उड़ीसा के सब चले। लेइ गज हस्ति जहाँ लगि भले॥
कवँरु, कामता औ पिड़वाए। देवगिरि लेइ उदयगिरि आए॥
चला परवती लेइ कुमाऊँ। खसिया मगर जहाँ लगि नाऊँ॥

उदय अस्त लहि देस जो को जानै तिन्ह नाँव ?।
सातौ दीप, नवौ खंड जुरे आइ एक ठाँव॥ १०॥

धनि सुलतान जेहिक संसारा। उहै कटक अस जोरै पारा॥
सबै तुरुक-सिरताज बखाने। तबल बाज औ बाँधे बाने॥
लाखन मार बहादुर जंगी। जँबुर, कमानै तीर खदंगी *॥
जीभा खोलि राग सौ मढ़े। लेजिम घालि एराकिन्ह चढ़े॥
चमकहि पाखर सार-सँवारी। दरपन चाहि अधिक उजियारी॥
बरन बरन औ पाँतिहि पाँती। चली सो सेना भाँतिहि भाँती॥
बेहर बेहर सब कै बोली। बिधि यह खानि कहाँ दहुँ खोली ?॥

सात सात जोजन कर एक दिन होइ पयान।
अगिलहि जहाँ पयान होइ पछिलहि तहाँ मिलान॥११॥

डोले गढ़, गढ़पति सब काँपे। जीउ न पेट; हाथ हिय चाँपे॥
काँपा रनथँभउर, गढ़ डोला। नरवर गएउ झुराइ, न बोला॥
जूनागढ़ औ चंपानेरी। काँपा माँड़ौ लेइ चँदेरी॥
गढ़ गुवालियर परी मथानी। औ अँधियार मथा भा पानी॥
कालिजर महँ परा भगाना। भागेउ जयगढ़, रहा न थाना॥
काँपा बाँधव, नरवर राना। डर रोहतास बिजयगिरि माना॥
काँप उदयगिरि, देवगिरि डरा। तब सो छपाइ आपु कहँ धरा॥

---

कामता, पिंडवा = कोई प्रदेश। मगर = अराकान जहाँ मग नाम की जाति रहती है। (११) जँबुर = जबूर, एक प्रकार की तोप जो ऊँटो पर चलती थी। कमान = तोप। खदंगी = खदंग, बाण।

* पाठातर—"तुफंगी"।

जीभा = जीभ। लेजिम = एक प्रकार की कमान जिसमे डोरी के स्थान पर लोहे का सीकड़ लगा रहता है और जिससे एक प्रकार की कसरत करते हैं। एराकिन्ह = एराक देश के घोड़ों पर। पाखर = लड़ाई की झूल। सार—लोहा। बहर बहर = अलग अलग। (१२) माँड़ो लेई = माँड़ौगढ़ से लेकर। मथानी परी = हलचल मचा। अँधियार = अँधियार और खटोला, दक्षिण के दो स्थान। पात = पत्ता। बोलि = चढ़ाई बोलकर।

जावत गढ़ औ गढ़पति सब काँपे जस पात।
का कहँ बोलि सौहँ भा बादसाह कर छात? ॥१२॥

चितउरगढ़ औ कुंभलनेरै। साजे दूनौ जैस सुमेरै॥
दूतन्ह आइ कहा जहँ राजा। चढ़ा तुरुक आवै दर साजा॥
सुनि राजा दौराई पाती। हिंदू-नावँ जहाँ लगि जाती॥
चितउर हिंदुन कर अस्थाना। सत्रु तुरुक हठि कीन्ह पयाना॥
आव समुद्र रहै नहिँ बाँधा। मैं होई मेड़ भार सिर काँधा॥
पुरवहु साथ, तुम्हारि बड़ाई। नाहिँ त सत को पार छँड़ाई?॥
जौ लहि मेड़, रहै सुख-साखा। टूटे बारि जौइ नहिँ राखा॥
सती जो जिउ महँ सत धरै, जरैं न छाँड़ै साथ।
जहँ बीरा तहँ चून है पान, सोपारी, काथ॥१३॥

करत जो राय साह कै सेवा। तिन्ह कहँ आइ सुनाव परेवा॥
सब होइ एकमते जबै सिधारे। बादसाह कहँ आइ जोहारे॥
है चितउर हिंदुन्ह कै माता। गाढ़ परे तजि जाइ न नाता॥
रतनसेन तहँ जौहर साजा। हिंदुन्ह माँझ आहि बड़ राजा॥
हिंदुन्ह केर पतँग कै लेखा। दौरि परहि अगिनी जहँ देखा॥
कृपा करहु चित बाँधहु धीरा। नातरु हमहि देहु हँसि बीरा॥
पुनि हम जाइ मरहि ओहि ठाऊँ। मेटि न जाइ लाज सौं नाऊँ॥
दीन्ह साह हँसि बीरा, और तीन दिन बीच।
तिन्ह सीतल को राखै, जिनहि अगिनि महँ मीचु?॥१४॥

रतनसेन चितउर महँ साजा। आइ बजाइ बैठ सब राजा॥
तोवँर, बैस, पवाँर सो आए। औ गहलौत आइ सिर नाए॥

---

छात,= छत्र। (१३) जैस सुमेरै = जैसे सुमेरु ही है। दर = दल। पाती = पत्री, चिट्ठी। मेड = बाँध। काँधा = ऊपर लिया। नाहि त सत...छँड़ाई = नहीं तो हमारा सत्य (प्रतिज्ञा) कौन छुड़ा सकता है, अर्थात् मै अकेले ही अडा रहूँगा। टूटे = बाँध टूटने पर। बारि = बारी, बगीचा। (१४) राय = राजा। परेवा = चिड़िया, यहाँ दूत। जौहर = लडाई के समय की चिता जो गढ़ में उस समय तैयार की जाती थी जब राजपूत बड़े भारी शत्रु से लड़ने निकलते थे और जिसमे हार का समाचार पाते ही सब स्त्रियाँ कूद पड़ती थीं। पतँग कै लेखा = पतंगो का सा हाल है। बीरा देहु = बिदा करो कि हम वहाँ जाकर राजा की ओर से लड़े।

पत्ती औ पँचवान, वघेले। अगरपार, चौहान, चँदेले॥
गहरवार, परिहार जो कुरे। औ कलहंस जो ठाकुर जुरे॥
आगे ठाढ़ वजावहि ढाढ़ी। पाछे धुजा मरन कै काढ़ी॥
बाजहि सिंगी, संख औ तूरा। चंदन खेवरे, भरे सेंदूरा॥
सजि संग्राम बाँध सब साका। छाँड़ा जियन, मरन सब ताका॥

गगन धरति जेइ टेका, तेहि का गरू पहार।
जौ लहि जिउ काया महँ, परै सो अँगवै भार॥१५॥

गढ़ तस सजा जौ चाहै कोई। बरिस बीस लगि खाँग न होई॥
बाँके चाहि बाँक गढ़ कीन्हा। औ सब कोट चित्र कै लीन्हा॥
खंड खंड चौखड सँवारा। धरी विषम गोलन्ह कै मारा॥
ठावँहि ठाव लीन्ह तिन्ह बाँटी। रहा न बीचु जो सँचरै चाँटी॥
बैठे धानुक कँगुरन कँगुरा। भूमि न आँटी अँगुरन अँगुरा॥
औ बाँधे गढ़ गज मतवारे। फाटै भूमि होहि जौ ठारे॥
बिच बिच बुर्ज बने चहुँ फेरी। बाजहिं तबल, ढोल औ भेरी॥

भा गढ़ राज सुमेरु जस, सरग छुवै पै चाह।
समुद न लेखे लावै, गंग सहसमुख काह?॥१६॥

बादसाह हठि कीन्ह पयाना। इंद्र भँडार डोल, भय माना॥
नवे लाख असवार जो चढ़ा। जो देखा सो लोहे-मढ़ा॥
बीस सहस घहराहि निसाना। गलगंजहि भेरी असमाना॥
बैरख ढाल गगन गा छाई। चला कटक धरती न समाई॥
सहस पाँति गज मत्त चलावा। धँसत अकास, धसत भुइँ आवा॥
विरिछ उचारि पेड़ि सौ लेही। मस्तक झारि डारि मुख देही॥
चढ़हि पहार हिये भय लागू। बनखँड खोह न देखहि आगू॥

कोइ काहू न सँभारै, होत आव तस चाँप।
धरति आपु कहँ काँपै, सरग आपु कहँ काँप॥१७॥

---

(१५) कुरे = कुल। ढाढ़ी = बाजा बजानेवाली एक जाति। खेवे = खौर लगाए हुए। अँगवै = ऊपर लेता है, सहता है। (१६) तस = ऐसा। खाँग = सामान की कमी। बाँके चाहि बाँक = विकट से विकट। मारा = माला, समूह। बीचु = अंतर, खाली जगह। सँचरै = चले। चाँटी = चींटी। ठारे = ठाढे, खड़े। सहसमुख = सहस्र धारावाली। (१७) इंद्र-भँडार = इंद्रलोक। बैरख = बैरक, झंडे। पेड़ि = पेड़ी, तना। आगू = आगे। चाँप = रेलपेल, धक्का।

चलीं कमानै जिन्ह मुख गोला। आवहिं चली, धरति सब डोला॥
लागे चक्र वज्र के गढ़े। चमकहिं रथ सोने सब मढ़े॥
तिन्ह पर विषम कमानै धरीं। साँचे अष्टधातु कै ढरीं॥
सौ सौ मन वै पीयहि दारू। लागहिं जहाँ सो टूट पहारू॥
माती रहहिं रथन्ह पर परी। सत्रुन्ह महँ ते होहिं उठि खरी॥
जौ लागै संसार न डोलहिं। होइ भुइँकंप जीभ जौ खोलहि॥
सहस सहस हस्तिन्ह कै पाँती। खींचहि रथ, डोलहिं नहिं माती॥
नदी नार सब पाटहिं जहाँ धरहि वै पाव।
ऊच खाल बन बीहड़ होत बराबर आव॥१८॥
कहौ सिंगार जैसि वै नारी। दारू पियहि जैसि मतवारी॥
उठै आगि जौ छाँड़हि साँसा। धुआँ जौ लागै जाइ अकासा॥
सेंदुर-आगि सीस उपराहीं। पहिया तरिवन चमकत जाहीं॥
कुच गोला दुइ हिरदय लाए। अंचल धुजा रहहि छिटकाए॥
रसना लूक रहहि मुख खोले। लंका जरै सो उनके बोले॥
अलक जँजीर बहुत गिउ बाँधे। खींचहि हस्ती, टूटहि काँधे॥
बीर सिंगार दोउ एक ठाऊँ। सत्रुसाल गढ़भंजन नाऊँ॥
तिलक पलीता माथे, दसन वज्र के बान।
जेहि हेरहि तेहि मारहि, चुरकुस करहि निदान॥१९॥
जेहि जेहि पंथ चली व आवहि। तहँ तहँ जरै, आगि जनु लावहि॥
जरहि जो परबत लागि अकासा। बनखँड धिकहि परास के पासा॥
गैंड गयंद जरे, भए कारे। औ बन-महिष रोझ भवँकारे॥
कोइल, नाग, काग औ भँवरा। और जो जरे तिनहिं को सँवरा॥

---

(१८) कमानैं = तोपें। चक्र = पहिए। दारू = (क) बारूद; (ख) शराब। माती = 'दारू' शब्द का प्रयोग कर चुके हैं इसलिये। बराबर = समतल। (१९) कहौ सिंगार.....मतवारी = इन पद्यों मे तोपों को स्त्री के रूपक में दिखाया है। तरिवन = ताटक नाम का कान का गहना। टूटहि काँधे = हाथियों के कंधे टूट जाते है। बीर सिंगार = वीररस और शृंगाररस। बान = गोले। हेरहि = ताकती हैं। चुरकुस = चकनाचूर। (२०) धिकहिं = तपते हैं। परास के बनखँड = पलाश के लाल फूल जो दिखाई देते हैं वे मानों वन के तपे हुए अँश है। गैंड = गैंडा। रोझ = नीलगाय। भवँकारे = भौंरे।

जरा समुद्र पानी भा खारा। जमुना साम भई तेहि झारा॥
धुआँ जाम, अँतरिख भए मेघा। गगन साम भा धुआँ जो ठेघा॥
सूरुज जरा चाँद औ राहू। धरती जरी, लंक भा दाहू॥
धरती सरग एक भा, तबहु न आगि बुझाइ।
उठे वज्र जरि डुंगवै, धूम रहा जग छाइ॥२०॥
आवै डोलत सरग पतारा। काँपै धरति, न अँगवै भारा॥
टूटहि परबत मेरु पहारा। होइ चकचून उड़हिं तेहि झारा॥
सत-खँड धरती भइ षटखंडा। ऊपर अष्ट भए बरम्हंडा॥
इंद्र आइ तिन्ह खंडन्ह छावा। चढ़ि सब कटक घोड़ दौरावा॥
जेहि पथ चल ऐरावत हाथी। अबहुं सो डगर गगन महँ आथी॥
औ जहँ जामि रही वह धूरी। अबहुं बसै सो हरिचँद-पूरी॥
गगन छपान खेह तस छाई। सूरुज छपा, रैनि होइ आई॥
गएउ सिकंदर कजरिबन, तस होइगा अँधियार।
हाथ पसारे न सूझै, बरै लाग मसियार॥२१॥
दिनहि राति अस परी अचाका। भा रवि अस्त, चंद्र रथ हाँका॥
मंदिर जगत दीप परगसे। पंथी चलत बसेरै बसे॥
दिन के पंखि चरत उड़ि भागे। निसि के निसरि चरै सब लागे॥
कँवल सँकेता, कुमुदिनि फूली। चकवा बिछुरा, चकई भूली॥
चला कटक-दल ऐस अपूरी। अगिलहि पानी, पछिलहि धूरी॥
महि उजरी, सायर सब सूखा। बनखँड रहेउ न एकौ रूखा॥

---

ठेवा = ठहरा, रुका। डुगवै = डूँगर, पहाड़। उठे बज्र जरि...छाइ = इस वज्र से (जैसे कि इद्र के वज्र से) पहाड़ जल उठे। (२१) चकचून = चकनाचूर। सत-खँड...षटखडा = पृथ्वी पर की इतनी धूल ऊपर उड़कर जा जमी कि पृथ्वी के सात खंड या स्तर के स्थान पर छः ही खड रह गए और ऊपर के लोको के सात के स्थान पर आठ खड हो गए। जेहि पथ ...आथी = ऊपर जो लोक बन गए उन पर इंद्र ऐरावत हाथी लेकर चले जिसके चलने का मार्ग ही आकाशगंगा है। आथी = है। हरिचँद-पूरी = वह लोक जिसमे हरिश्चंद्र गए। मसियार = मशाल। (२२) अचाका = अचानक, एकाएक। सँकेता = सँकुचित हुआ। अपूरी = भरा हुआ। अगिलहि पानी.....धूरी = अगली सेना को तो पानी मिलता है पर पिछली को धूल ही मिलती है। उजरी = उजड़ी।

गिरि पहार सब मिलि गे माटी। हस्ति हेराहिं तहाँ होइ चाँटी॥
जिन्ह घर खेह हेराने, हेरत फिरत सो खेह।
अब तौ दिस्टि तब आवै अंजन नैन उरेह॥२२॥
एहि विधि होत पयान सो आवा। आइ साह चितउर नियरावा॥
राजा राव देख सब चढ़ा। आव कटक सब लोहे-मढ़ा॥
चहुँ दिसि दिस्टि परा गजजूहा। साम-घटा मेघन्ह अस रूहा॥
अध ऊरध किछु सूझ न आना। सरगलोक घुम्मरहि निसाना॥
चढ़ि धौराहर देखहि रानी। धनि तुइं अस जाकर सुलतानी॥
की धनि रतनसेन तुइं राजा। जा कहं तुरुक कटक अस साजा॥
बैरख ढाल केरि परछाही। रैनि होति आवै दिन माहीं॥
अंध-कूप भा आवै, उड़त आव तस छार।
ताल तलावा पोखर धूरि भरी जेवनार॥२३॥
राजै कहा करहु जो करना। भएउ असूझ, सूझ अब मरना॥
जहँ लगि राज साज सब होऊ। ततखन भएउ सजोउ सँजोऊ॥
बाजे तबल अकूत जुझाऊ। चढ़े कोपि सब राजा राऊ॥
करहि तुखार पवन सौ रीसा। कंध ऊच, असवार न दीसा॥
का बरनौं अस ऊँच तुखारा। दुइ पौरी पहुँचै असवारा॥
बाँधे मोरछाँह सिर सारहि। भाँजहिं पूछ चँवर जनु ढारहिं॥
सजे सनाहा, पहुँची, टोपा। लोहसार पहिरे सब ओपा॥
तैसे चेवर बनाए औ घाले गलझंप।
बँधे सेत गजगाह तहँ, जो देखै सो कंप॥२४॥
राज-तुरंगम बरनौं काहा?। आने छोरि इंद्ररथ-बाहा॥

---

जिन्ह घर खेह·····खेह = जिनके घर धूल में खो गए हैं, अर्थात् ससार के मायामोह मे जिन्हे परलोक नहीं दिखाई पड़ता है। उरेह = लगाये। (२३) रूहा = चढ़ा। सुलतानी = बादशाहत। की धनि···राजा = या तो राजा तू धन्य है। बैरख = झंडा। परछाहीं = परछाई से। जेवनार = लोगो की रसोई में। (२४) सँजोऊ = तैयारी। अकूत = एकाएक, सहसा अथवा बहुत से। जुझाऊ = युद्ध के। तुखार = घोड़ा। रीसा = ईर्ष्या, बराबरी। पौरी = सीढ़ी के डडे। मोरछाँह = मोरछल। सनाहा = बकतर। पहुँची = बचाने का आवरण। ओपा = चमकते हैं। गलझंप = गले की झूल (लोहे की)। गजगाह = हाथी की झूल। (२५) इंद्ररस-बाहा = इंद्र का रथ खींचनेवाले।

ऐस तुरंगम परहि न दीठी। धनि असवार रहहिं तिन्ह पीठी ! ॥
जाति बालका समुद थहाए। सेत पूछ जनु चँवर बनाए ॥
बरन बरन पाखर अति लोने। जानहु चित्र सँवारे सोने ॥
मानिक जड़े सीस औ काँधे। चँवर लाग चौरासी बाँधे ॥
लागे रतन पदारथ हीरा। बाहन दीन्ह, दीन्ह तिन्ह बीरा ॥
चढ़हि कुँवर मन करहि उछाहू। आगे घाल गनहिं नहि काहू ॥

सेंदुर सीस चढ़ाए, चंदन खेवरे देह।
सो तन कहा लुकाइय अंत होइ जो खेह ॥२५॥

गज मैमँत बिखरे रजबारा। दीसहि जनहुँ मेघ अति कारा ॥
सेत गयंद, पीत औ राते। हरे साम घूमहि मद माते ॥
चमकहि दरपन लोहे सारी। जनु परबत पर परी अँबारी ॥
सिरी मेलि पहिराई सूँड़ै। देखत कटक पाँय तर रूँदै ॥
सोना मेलि कै दंत सँवारे। गिरिवर टरहि सो उन्ह के टारे ॥
परबत उलटि भूमि मह मारहि। परै जो भीर पत्र अस झारहिं ॥
अस गयंद साजे सिघली। मोटी कुरुम-पीठि कलमली ॥

ऊपर कनक-मंजूसा लाग चँवर और ढार।
भलपति बैठे भाल लेइ औ बैठे धनुकार ॥२६॥

असु-दल गज-दल दूनौ साजे। औ घन तबल जुझाऊ बाजे ॥
माथे मुकुट, छत्र सिर साजा। चढ़ा बजाइ इन्द्र अस राजा ॥
आगे रथ सेना सब ठाढ़ी। पाछे धुजा मरन कै काढ़ी ॥
चढ़ा बजाइ चढ़ा जस इंदू। देवलोक गोहने भए हिंदू ॥

---

बालका = टाँगन घोड़े। पाखर = झूल। चौरासी = घुघुरुओं का गुच्छा। बाहन दीन्ह..... बीरा = जिनको सवारी के लिये वे घोडे दिऐ उन्हे लडाई का बीड़ा भी दिया। घाल गनहि नहि = कुछ नहीं समझते। सेंदूर = यहाँ रोली समझना चाहिये। खेवरे = खौरे, खौर लगाए हुए। (२६) रजबारा = राजद्वार। दरपन = चार-आईनः, बकतर। लोहे सारी = लोहे की बनी। अँबारी = मडपदार हौदा। सिरी = माथे का गहना। रूँदै = रौदते है। कलमली = खलबलाई। मँजूसा = हौदा। ढार = ढाल। भलपति = भाला चलानेवाले। धनुकार = धनुष चलानेवाले। (२७) असुदल = अश्वदल। देवलोक..... इंद्र = जैसे इंद्र के साथ देवता चलते है वैसे ही राजा रत्नसेन के साथ हिंदू लोग चले।

## (४३) राजा-बादशाह-युद्ध-खंड

इहाँ राज अस सेन बनाई। उहाँ साह कै भई अवाई॥
अगिले दौरे आगे आए। पछिले पाछ कोस दस छाए॥
साह आइ चितउर गढ़ बाजा। हस्ती सहस बीस सँग साजा॥
ओनइ आए दूनौ दल साजे। हिंदू तुरक दुवौ रन गाजे॥
दुवौ समुद दधि उदधि अपारा। दूनौ मेरु खिखिंद पहारा॥
कोपि जुझार दुवौ दिसि मेले। औ हस्ती हस्ती सहुँ पेले॥
अँकुस चमकि बीजु अस बाजहि। गरजहि हस्ति मेघ जनु गाजहि॥
धरती सरग एक भा, जूहहि ऊपर जूह।
कोई टरै न टारे, दूनौ बज्र-समूह॥ १॥
हस्ती सहुं हस्ती हठि गाजहि। जनु परबत परबत सौं बाजहि॥
गरू गयंद न टारे टरहीं। टूटहि दाँत, माथ गिरि परही॥
परबत आइ जो परहि तराही। दर महँ चाँपि खेह मिलि जाही॥
कोइ हस्ती असवारहि लेही। सूँड़ समेटि पायँ तर देही॥
कोइ असवार सिघ होइ मारहि। हनि कै मस्तक सूँड़ उपारहि॥
गरब गयंदन्ह गगन पसीजा। रुहिर चुवै धरती सब भीजा॥
कोइ मैमंत सँभारहि नाही। तब जानहिं जब गुद सिर जाही॥
गगन रुहिर जस बरसै धरती बहै मिलाइ।
सिर धर टूटि बिलाहि तस पानी पंक बिलाइ॥ २॥
आठौ बज्र जूझ जस सुना। तेहि तें अधिक भएउ चौगुना॥
बाजहि खड्ग उठै दर आगी। भुइँ जरि चहै सरग कहँ लागी॥
चमकहिं बीजु होइ उजियारा। जेहि सिर परै होइ दुइ फारा॥

---

(१) बाजा = पहुँचा। गाजे = गरजे। दधि = दधिसमुद्र। उदधि = पानी का समुद्र। खिखिंद = किष्किंध पर्वत। सहुँ = सामने। पेले = जोर से चलाए। जूह = यूथ, दल। (२) तराहीं = नीचे। दर = दल। चाँपि = दब-कर। गरब = मदजल। गुद = सिर का गूदा। मिलाइ = धूल मिलाकर। (३) आठौ बज्र = आठो वज्रों का (?)। दर = दल मे। फारा = फाल, टुकड़ा।

मेघ जो हस्ति हस्ति सहुँ गाजहिं। बीजु जो खड़ग खड़ग सौं बाजहिं॥
बरसहि सेल बान होइ कॉदो। जस बरसै सावन औ भादों॥
झपटहिं कोपि, परहि तरवारी। औ गोला ओला जस भारी॥
जूझे बीर कहौं कहँ ताईं। लेइ अछरी कैलास सिधाईं॥

स्वामि-काज जो जूझे, सोइ गए मुख रात।
जो भागे सत छाँड़ि कै, मसि मुख चढ़ी परात॥ ३॥

भा संग्राम न भा अस काऊ। लोहे दुहुँ दिसि भए अगाऊ॥
सीस कंध कटि कटि भुइँ परे। रुहिर सलिल होइ सायर भरे॥
अनँद बधाव करहि मसखावा। अब भख जनम जनम कहँ पावा॥
चौंसठ जोगिनि खप्पर पूरा। बिग जंबुक घर बाजहि तूरा॥
गिद्ध चील सब माँड़ो छावहि। काग कलोल करहिं औ गावहि॥
आजु साह हठि अनी बियाही। पाई भुगुति जैसि चित चाही॥
जेइँ जस माँसू भखा परावा। तस तेहि कर लेइ औरन्ह खावा॥

काहू साथ न तन गा, सकति मुए सब पोखि।
ओछ पूर तेहि जानब, जो थिर आवत जोखि॥ ४॥

चाँद न टरै सूर सौं कोपा। दूसर छत्र सौंह कै रोपा॥
सुना साह अस भएउ समूहा। पेले सब हस्तिन्ह के जूहा॥
आजु चाँद तोर करौं निपातू। रहै न जग महँ दूसर छातू॥
सहस करा होइ किरिन पसारा। छेंका चाँद जहाँ लगि तारा॥
दर-लोहा दरपन भा आवा। घट घट जानहु भानु देखावा॥
अस क्रोधित कुठार लेइ धाए। अगिनि-पहार जरत जनु आए॥
खड़ग-बीजु सब तुरुक उठाए। ओड़न चाँद काल* कर पाए॥

---

सेल = बरछे। होइ = होता है। कॉदो = कीचड़। मुख रात = लाल मुख लेकर, सुर्खरू होकर। मसि = कालिमा, स्याही। परात = भागते हुए। (४) काऊ = कभी। लोहे = हथियार। अगाऊ = आगे, सामने। तूरा = तुरही। माँड़ो = मडप। अनी = सेना। सकति = शक्ति भर, भरसक। पोखि = पोषण करके। ओछ = ओछा, नीच। पूर = पूरा। जोखि आवत = विचारता आता है। जो थिर आवत जोखि = जो ऐसे शरीर को स्थिर समझता आता है। (५) चाँद = राजा। सूर = बादशाह। समूहा = शत्रु सेना की भीड़। छातू = छत्र। दर-लोहा = सेना के चमकते हुए हथियार। ओड़न = ढाल, रोकने की वस्तु।

* पाठातर—"कवँल"।

जगमग अनी देखि कै धाइ दिस्टि तेहि लागि।
छुए होइ जो लोहा मॉझ आव तेहि आगि ॥ ५ ॥

सूरुज देखि चाँद मन लाजा। बिगसा कँवल, कुमुद भा राजा ॥
भलेहि चाँद बड़ होइ निसि पाई। दिन दिनअर सहुँ कौन बड़ाई ? ॥
अहे जो नखत चंद संग तपे। सूर के दिस्टि गगन महँ छपे ॥
कै चिंता राजा मन बूझा। जो होइ सरग न धरती जूझा ॥
गढ़पति उतरि लड़ै नहिं धाए। हाथ परै गढ़ हाथ पराए ॥
गढ़पति इंद्र गगन-गढ़ गाजा। दिवस न निसर रैनि कर राजा ॥
चंद रैनि रह नखतन्ह मॉझा। सुरुज के सौंह न होइ, चहै साँझा ॥

देखा चंद भोर भा सूरुज के बड़ भाग।
चाँदा फिरा भा गढ़पति, सूर गगन-गढ़ लाग ॥ ६ ॥

कटक असूझ अलाउदि-साही। आवत कोइ न सँभारै ताही ॥
उदधि-समुद जस लहरै देखी। नयन देख, मुख जाइ न लेखी ॥
केते तजा चितउर कै घाटी। केते बजावत मिलि गए माटी ॥
केतेन्ह नितहि देइ नव साजा। कबहुँ न साज घटै तस राजा ॥
लाख जाहिं आवहिं दुइ लाखा। फरै झरै उपनै नव साखा ॥
जो आवै गढ़ लागै सोई। थिर होइ रहै न पावै कोई ॥

---

ओड़न चाँद...पाए = चद्रमा के बचाव के लिये समय-विशेष (रात्रि) मिला जब कि सूर्य सामने नहीं आता। जगमग = झलझलाती हुई। जगमग... लागि = राजा ने गढ पर से बादशाह की चमकती हुई सेना को देखा। छुए ...आगि = यदि लोहा सूर्य के सामने होने से तप जाता है तो जो उसे छुए रहता है उसके शरीर में भी गरमी आ जाती है, अर्थात् सूर्य के समान शाह की सेना का प्रकाश देख शस्त्रधारी राजा को जोश चढ़ आया। (६) कँवल = बादशाह। कुमुद = कुमुद के समान संकुचित। दिन...बडाई = दिन में सूर्य के सामने उसकी क्या बड़ाई है? तपे = प्रतापयुक्त थे। जो होइ सरग...जूझा = जो स्वर्ग (ऊँचे गढ) पर हो वह नीचे उतरकर युद्ध नहीं करता। हाथ परै गढ़ = लूट हो जाय गढ़ मे (मुहा०)। भा गढपति = किले मे हो गया, अर्थात् सूर्य के सामने नहीं आया। (७) उदधि समुद = पानी का समुद्र। केतेन्ह...साजा = न जाने कितनों को (जो नए भरती होते जाते हैं) नए नए सामान देता है। तस राजा = ऐसा बड़ा राजा वह अलाउद्दीन है।

उमरा मीर रहे जहँ ताईं। सबही बाँटि अलंगै पाईं॥
लाग कटक चारिहु दिसि, गढ़हि परा अगिदाहु।
सुरुज गहन भा चाहै, चाँदहि भा जस राहु॥ ७॥

अथवा दिवस, सूर भा बासा। परी रैनि, ससि उवा अकासा॥
चाँद छत्र देइ बैठा आई। चहुँ दिसि नखत दीन्ह छिटकाई॥
नखत अकासहि चढ़े दिपाही। टुटि टुटि लूक परहि, न बुझाही॥
परहिं सिला जस परै बजागी। पाहन पाहन सौं उठ आगी॥
गोला परहि, कोल्हु ढरकाही। चूर करत चारिउ दिसि जाहीं॥
ओनई घटा बरस भरि लाई। ओला टपकहि, परहि बिछाई॥
तुरुक न मुख फेरहि गढ़ लागे। एक मरै, दूसर होइ आगे॥
परहिं बान राजा के, सकै को सनमुख काढ़ि?
ओनई सेन साह कै रही भोर लगि ठाढ़ि॥ ८॥

भएउ बिहानु, भानु पुनि चढ़ा। सहसहु करा दिवस बिधि गढ़ा॥
भा धावा गढ़ कीन्ह गरेरा। कोपा कटक लाग चहुँ फेरा॥
बान करोर एक मुख छूटहिं। बाजहिं जहाँ फोक लहि फूटहिं॥
नखत गगन जस देखहिं घने। तस गढ़-कोटन्ह बानन्ह हने॥
बान बेधि साही कै राखा। गढ़ भा गरुड़ फुलावा पाँखा॥
ओहि रँग केरि कठिन है बाता। तौ पै कहै होइ मुख राता॥
पीठि न देहिं घाव के लागे। पैग पैग भुइँ चाँपहिं आगे॥
चारि पहर दिन जूझ भा, गढ़ न टूट तस बाँक।
गरुअ होत पै आवै दिन दिन नाकहि नाक॥ ९॥

---

अलगै = बाज, सेना का एक एक पक्ष। अगिदाहु = अग्निदाह। सुरुज गहन··· राहु = सूर्य (बादशाह) चद्रमा (राजा) के लिये ग्रहण-रूप हुआ चाहता है, वह चद्रमा (राजा) के लिये राहु-रूप हो गया है। (८) भा बासा = अपने डेरे में टिकान हुआ। नखत = राजा के सामत और सैनिक। लूक = अग्नि के समान बाण। उठ = उठती है। कोल्हु = कोल्हू। ढरकाहीं = लुढ़काए जाते हैं। सकै का·· काढ़ि = उन बाणो के सामने सेना को कौन आगे निकाल सकता है? (९) गरेरा = घेरा। एक मुख = एक ओर। बाजहिं = पड़ते हैं। फोक = तीर का पिछला छोर जिसमे पर लगे रहते है। बाजहि जहाँ···फूटहि = जहाँ पड़ते हैं पिछले छोर तक फट जाते हैं, ऐसे जोर से वे चलाए जाते हैं। रँग = रण-रग। नाक = नाका, मुख्य-स्थान।

छेका कोट जोर अस कीन्हा। घुसि कै सरग सुरँग तिन्ह दीन्हा॥
गरगज बाँधि कमानैं धरीं। वज्र-आगि मुख दारू भरीं॥
हवसी, रूमी और फिरंगी। वड़ बड़ गुनी और तिन्ह संगी॥
जिन्हके गोट कोट पर जाही। जेहि ताकहिं चूकहिं तेहि नाहीं॥
अस्ट धातु के गोला छूटहिं। गिरहिं पहार चून होइ फूटहिं॥
एक वार सव छूटहिं गोला। गरजै गगन, धरति सव डोला॥
फूटहिं कोट फूट जनु सीसा। ओदरहिं वुरुज जाहिं सव पीसा॥
लंका-रावट जस भई, दाह परी गढ़ सोइ।
रावन लिखा जरै कहँ, कहहु अजर किमि होइ॥१०॥

राजगीर लागे गढ़ थवई। फूटै जहाँ सँवारहिं सवई॥
वाँके पर सुठि वाँक करेही। रातिहि कोट चित्र कै लेही॥
गाजहिं गगन चढ़ा जस मेघा। वरिसहिं वज्र, सीस को ठेघा?॥
सौ सौ मन के वरिसहिं गोला। वरिसहिं तुपक तीर जस ओला॥
जानहुँ परहि सरग हुत गाजा। फाटै धरति आइ जहँ वाजा॥
गरगज चूर चूर होइ परही। हस्ति घोर मानुप संघरही॥
सवै कहा अव परलै आई। धरती सरग जूझ जनु लाई॥
आठौ वज्र जुरे सव एक डुंगवै लागि।
जगत जरै चारिउ दिसि, कैसेहु वुझै न आगि॥११॥
तवहूँ राजा हिये न हारा। राज-पौरि पर रचा अखारा॥

---

(१०) सुरँग = सुरंग, जमीन के नीचे खोदकर बनाया हुआ मार्ग (यह शब्द महाभारत में आया है और यूनानी "सिरिगस" से बना हुआ अनुमान किया गया है। श्री चितामणि वैद्य के अनुसार 'भारत' को 'महाभारत' के नाम से परिवर्द्धित रूप सिकंदर के आने पर दिया गया है)। गरगज = परकोटे का वह बुर्ज जिसपर तोप चढ़ाई जाती है। कमानैं = तोपें। दारू = बारूद। फिरंगी = पुर्तगाली (फारस में यह शब्द रूम से आया जहाँ 'धर्मयुद्ध' के समय योरप से आए हुए "फ्राक" लोगों के लिये पहले-पहल व्यवहृत हुआ। फारस से यह शब्द हिंदुस्तान मे आया और सबसे पहले आए पुर्तगालियों के लिये प्रयुक्त हुआ)। गोट = गोले। ओदरहिं = ढह जाते है। रावट = महल। अजर = जो न जले। (११) थवई = मकान बनानेवाले (सं० स्थपित)। चित्र = ठीक, दुरुस्त। तुपक = बंदूक। बाजा = पड़ते है। धरती सरग = आकाश और पृथ्वी के बीच। डुंगवा = टीला।

सोह साह कै बैठक जहाँ। समुह नाच करावै तहाँ॥
जंत्र पखाउज औ जत बाजा। सुर मादर रबाब भल साजा॥
बीना बेनु कमाइच गहे। बाजे अमृत तहँ गहगहे॥
चंग उपंग नाद सुर तूरा। महुअर बंसि बाज भरपूरा॥
हुड्डुक बाज, डफ बाज गँभीरा। औ बाजहिं बहु झाँझ मजीरा॥
तंत वितंत सुभर घनतारा। बाजहि सबद होइ झनकारा॥
जग-सिंगार मनमोहन पातुर नाचहि पाँच।
बादसाह गढ़ छेका, राजा भूला नाच॥१२॥
बीजानगर केर सब गुनी। करहिं अलाप जैस नहि सुनी॥
छवौ राग गाए सँग तारा। सगरी कटक सुनै झनकारा॥
प्रथम राग भैरव तिन्ह कीन्हा। दूसर मालकोस पुनि लीन्हा॥
पुनि हिंडोल राग भल गाए। मेघ मलार मेघ बरिसाए॥
पाँचवँ सिरी राग भल किया। छठवाँ दीपक बरि उठ दिया॥
ऊपर भए सो पातुर नाचहि। तर भए तुरुक कमानै खाँचहि॥
गढ़ माथे होइ उमरा झुमरा। तर भए देख मीर औ उमरा॥
सुनि सुनि सीस धुनहि सब, कर मलि मलि पछिताहि।
कब हम माथ चढ़हिं आंहि नैनन्ह के दुख जाहि॥१३॥
छवौ राग गावहिं पातुरनी। औ पुनि छत्तीसौ रागिनी॥
औ कल्यान कान्हरा होई। राग बिहाग केदारा सोई॥
परभाती होइ उठै बंगाला। आसावरी राग गुनमाला॥
धनासिरी औ सूहा कीन्हा। भएउ बिलावल, मारू लीन्हा॥
रामकली, नट, गौरी गाई। धुनि खम्माच सो राग सुनाई॥
साम गूजरी पुनि भल भाई। सारँग औ बिभास मुँह आई॥
पुरबी, सिंधी, देस, बरारी। टोड़ी गोंड़ सौ भई निरारी॥

---

(१२) समुहें = सामने। मादर = मर्दल, एक प्रकार का ढोल। रबाब = एक बाजा। कमाइच = (फा० कमानचा) सारंगी बजाने की कमान। उपग = एक बाजा। तूरा = तूर, तुरही। महुअर = सूखी तुमड़ी का बना बाजा जिसे प्रायः सँपेरे बजाते हैं। हुड्डुक = डमरू की तरह का बाजा जिसे प्रायः कहार बजाते हैं। तत = तंत्री। घनतार = बड़ा झाँझ। (१३) ऊपर भए; तर भए = ऊपर से; नीचे से (पंचमी विभक्ति के स्थान पर 'भए' का प्रयोग अब तक पूरबी हिंदी में होता है)। गढ़ माथे = किले के सिरे पर। उमरा झुमरा = झूमर, नाच।

सबै राग औ रागिनी सुरै अलापहिं ऊँच।
तहाँ तीर कहँ पहुँचै दिस्टि जहाँ न पहूँच ? ॥ १४ ॥

जहवाँ सौंह साह कै दीठी। पातुरि फिरत दीन्हि तहँ पीठी ॥
देखत साह सिंघासन गूँजा। कब लगि मिरिग चाँद तोहि भूजा*॥
छाँड़हि बान जाहि उपराही। का तैं गरब करसि इतराही ? ॥
बोलत बान लाख भए ऊचे। कोइ कोट, कोइ पौरि पहूँचे ॥
जहाँगीर कनउज कर राजा। ओहि क बान पातुरि के लागा ॥
बाजा बान, जाँघ तस नाचा। जिउ गा सरग, परा भुइँ साँचा ॥
उड़सा नाच, नचनिया मारा। रहसे तुरुक बजाइ कै तारा ॥

जो गढ़ साजै लाख दस, कोटि उठावै कोट।
बादशाह जब चाहै छपै न कौनिउ ओट ॥ १५ ॥

राजै पौरि अकास चढ़ाई। परा बाँध चहुँ फेर लगाई ॥
सेतुबन्ध जस राघव बाँधा। परा फेर, भुइँ भार न काँधा ॥
हनुवँत होइ सब लाग गोहारू। चहुँ दिसि ढोइ ढोइ कीन्ह पहारू ॥
सेत फटिक अस लागै गढ़ा। बाँध उठाइ चहूँ गढ़ मढ़ा ॥
खँड खँड ऊपर होइ पटाऊ। चित्र अनेक, अनेक कटाऊ ॥
सीढ़ी होति जाहि बहु भाँती। जहाँ चढ़ै हस्तिन कै पाँती ॥
भा गरगज कस कहत न आवा। जनहुँ उठाइ गगन लेइ आवा ॥

राहु लाग जस चाँदहि तस गढ़ लागा बाँध।
सरब आगि अस बरि रहा, ठाँव जाइ को काँध ? ॥१६॥

राजसभा सब मतै बईठी। देखि न जाइ, मूँदि गइ दीठी ॥

---

( १४ ) पहूँच = पहुँचती है। ( १५ ) फिरत = फिरते हुए। सिंघासन = सिंहासन पर। गूँजा = गरजा। मिरिग = मृग अर्थात् मृगनयनी। भूजा = भोग करेगा।

* पाठातर—'देखै चाँद, सूर भा भूजा', अर्थात् चद्रमा तो नाच देखे और सूर्य भुजवा हो गया कि उसकी ओर पीठ फेरी जाय।

( १५ ) भए ऊँचे = ऊपर की ओर चलाए गए। साँचा = शरीर। उड़सा = भंग हो गया। तारा = ताल, ताली। ( १६ ) अकास चढ़ाई = और ऊँचे पर बनवाई। चहुँ फेर लगाई = चारो ओर लगाकर। मढ़ा = घेरा। पटाऊ = पटाव। गगन लेइ = आकाश तक। को काँध = उस जगह जाने का भार कौन ऊपर ले सकता है ? ( १७ ) मतै = सलाह करने के लिये।

उठा बाँध, चहुँ दिसि गढ़ बाँधा। कीजै बेगि भार जस काँधा॥
उपजै आगि आगि जस बोई। अब मत कोई आन नहिं होई॥
भा तेवहार जौ चाँचरि जोरी। खेलि फाग अब लाइय होरी॥
समदि फाग मेलिय सिर धूरी। कीन्ह जो साका चाहिय पूरी॥
चंदन अगर मलयगिरि काढ़ा। घर घर कीन्ह सरा रचि ठाढ़ा॥
जौहर कहँ साजा रनिवासू। जिन्ह सत हिये कहाँ तिन्ह आँसू?॥

पुरुषन्ह खड्ग सँभारे, चंदन खेवरे देह।
मेहरिन्ह सेंदुर मेला, चहहि भई जरि खेह॥१७॥

आठ बरिस गढ़ छेंका रहा। धनि सुलतान कि राजा महा॥
आइ साह अँबराव जो लाए। फरे झरे पै गढ़ नहिं पाए॥
जौ तोरौं तौ जौहर होई। पदमिनि हाथ चढ़ै नहिं सोई॥
एहि बिधि ढील दीन्ह, तब ताईं। दिल्ली तै अरदासै आईं॥
पछिउँ हरेव दीन्हि जो पीठी। सो अब चढ़ा सौंह कै दीठी॥
जिन्ह भुइं माथ, गगन तेइ लागा। थाने उठे, आव सब भागा॥
उहाँ साह चितउरगढ़ छावा। इहाँ देस अब होइ परावा॥

जिन्ह जिन्ह पंथ न तृन परत, बाढ़े बेर बबूर।
निसि अँधियारी जाइ तब बेगि उठै जौ सूर॥१८॥

---

कीजै बेगि...काँधा = जैसा भारी युद्ध आपने लिया है उसी के अनुसार कीजिए, यही सलाह सबने दी। (१७) समदि = एक दूसरे से अंतिम बिदा लेकर। साका कीन्ह = कीर्त्ति स्थापित की है। चाहिय पूरी = पूरी होनी चाहिए। सरा = चिता। जौहर = गढ़ गिर जाने पर जब राजपूत गढ़ की रक्षा नहीं देखते थे तब स्त्रियाँ शत्रु के हाथ मे न पड़ने पाएँ इसके लिये पहले ही से चिता तैयार रखते थे। (जब गढ़ से निकलकर पुरुष लड़ाई मे काम आ जाते थे तब स्त्रियाँ चट चिता मे कूद पड़ती थीं। यही जौहर कहलाता था।) खेवरे = खौर लगाई। मेहरिन्ह = स्त्रियों ने। खेह = राख। (१८) आइ साह अँबराव...पाए = बादशाह ने आकर जो आम के पेड़ लगाए वे बड़े हुए, फलकर झड़ भी गए पर गढ़ नहीं टूटा। जो तोरौं = बादशाह कहता है कि यदि गढ़ को तोड़ता हूँ तो। अरदासै = अर्जदाश्त, प्रार्थनापत्र। हरेव = हेरात प्रदेश का पुराना नाम। थाने उठे = बादशाह की जो स्थान स्थान पर चौकियाँ थी वह उठ गईं। जिन्ह...बबूर = जिन जिन रास्तो मे घास भी उगकर बाधक नही हो सकती थी उनमे अब बादशाह के न रहने से बेर और बबूल उग आए हैं।

## (४४) राजा-बादशाह-मेल-खंड

सुना साह अरदासैं पढ़ी। चिंता आन आनि चित चढ़ी॥
तौ अगमन मन चीतै कोई। जौ आपन चीता किछु होई॥
मन झूठा, जिउ हाथ पराए। चिंता एक हिये दुइ ठाएँ॥
गढ़ सौं अरुझि जाइ तब छूटै। होइ मेराव, कि सो गढ़ टूटै॥
पाहन कर रिपु पाहन हीरा। बेधौं रतन पान देइ बीरा॥
सुरजा सेती कहा यह भेऊ। पलटि जाहु अब मानहु सेऊ॥
कहु तोहि सौं पदमिनि नहिं लेऊँ। चूरा कीन्ह छाँड़ि गढ़ देऊँ॥

आपन देस खाहु सब औ चंदेरी लेहु।
समुद जो समदन कीन्ह तोहि ते पाँचौ नग देहु॥ १॥

सुरजा पलटि सिंघ चढ़ि गाजा। अज्ञा जाइ कही जहँ राजा॥
अबहूँ हिये समुझु रे, राजा। बादसाह सौं जूझ न छाजा॥
जेहि कै देहरी पृथिवी सेई। चहै तौ मारै औ जिउ लेई॥
पिंजर माहँ ओहि कीन्ह परेवा। गढ़पति सोइ बाँच कै सेवा॥
जौ लगि जीभ अहै मुख तोरे। सँवरि उघेलु बिनय कर जोरे॥
पुनि जौ जीभ पकरि जिउ लेई। को खोलै, को बोलै देई?॥
आगे जस हमीर मैमंता। जौ तस करसि तोर भा अंता॥

---

(१) चीतै = सोचे, विचारे। चिंता एक.....ठाएँ = एक हृदय में दो ओर की चिंता लगी। गढ सौं.....टूटै = बादशाह सोचता है कि गढ़ लेने में जब उलझ गए हैं तब उससे तभी छूट सकते है जब या तो मेल हो जाय या गढ़ टूटे। पाहन कर रिपु.....हीरा = हीरे पत्थर का शत्रु हीरा पत्थर ही होता है अर्थात् हीरा हीरे से ही कटता है। पान देइ बीरा = ऊपर से मेल करके। मानहु सेऊ = आज्ञा मानो। चूरा कीन्ह = एक प्रकार से तोड़ा हुआ गढ़। खाहु = भोग करो। समदन कीन्ह = विदा के समय भेंट में दिए थे। (२) उघेलु = निकाल। हमीर = रनथंभौर का राजा, हम्मीरदेव जो अलाउद्दीन से लड़कर मारा गया था। तस = वैसा।

देखु ! काल्हि गढ़ टूटै, राज ओही कर होइ।
करु सेवा सिर नाइ कै, घर न घालु बुधि खोइ ॥ २ ॥

सरजा ! जौ हमीर अस ताका। ओर निबाहि बाँधि गा साका ॥
हौं सक-बंधी ओहि अस नाहीं। हौं सो भोज बिक्रम उपराहीं ॥
बरिस साठ लगि साँठि न खाँगा। पानि पहार चुवै बिनु माँगा ॥
तेहि ऊपर जौ पै गढ़ टूटा। सत सकबंधी केर न छूटा ॥
सोरह लाख कुँवर हैं मोरे। परहि पतँग जस दीप-अँजोरे ॥
जेहि दिन चाँचरि चाहौं जोरी। समदौं फागु लाइ कै होरी ॥
जौ निसि बीच, डरै नहिं कोई। देखु तौ काल्हि काह दहुँ होई* ॥

अवही जौहर साजिकै कीन्ह चहौं उजियार।
होरी खेलौं रन कठिन, कोइ समेटै छार ॥ ३ ॥

अनु राजा सो जरै निआना। बादसाह कै सेव न माना ॥
बहुतन्ह अस गढ़ कीन्ह सजवना। अंत भई लंका जस रवना ॥
जेहि दिन वह छेकै गढ़ घाटी। होइ अन्न ओही दिन माटी ॥
तू जानसि जल चुवै पहारू। सो रोवै मन सँवरि सँघारू ॥
सूतहि सूत सँवरि गढ़ रोवा। कस होइहि जौ होइहि ढोवा ॥
सँवरि पहार सो ढारै आँसू। पै तोहि सूझ न आपन नासू ॥
आजु काल्हि चाहै गढ़ टूटा। अवहुँ मानु जौ चाहसि छूटा ॥

है जो पाँच नग तो पहँ लेइ पाँचो कहँ भेट।
मकु सो एक गुन मानै, सब ऐगुन धरि मेट ॥ ४ ॥

---

घर न घालु = अपना घर न बिगाड़। (३) ताका = ऐसा बिचारा। साँठि = सामान। खाँगा = कम होगा। समदौं = बिदा के समय का मिलना मिलूँ। जौ निसि बीच.....दहुँ होई = (सरजा ने जो कहा था कि 'देखु काल्हि गढ़ टूटै' इसके उत्तरमें राजा कहता है कि) यदि रात बीच में पड़ती है (अभी रात भर का समय है) तो कोई डर की बात नहीं; देख तो कल क्या होता है?

* पाठांतर—"देहकै घरनि जो राखै जीऊ। सो कस आपुहि कहि सक पीऊ ॥"

(४) अनु = फिर। सजवना = तैयारी। रवना = रावण। अन्न माटी होइ = खाना पीना हराम हो जायगा। सँघारू = संहार; नाश। ढोवा = लूट। मकु सो एक गुन.....मेट = शायद वह तुम्हारे इस एक ही गुण से सब अवगुणों को भूल जाय।

अनु सरजा को मेटै पारा। बादसाह बड़ अहै तुम्हारा॥
ऐगुन मेटि सकै पुनि सोई। औ जो कीन्ह चहै सो होई॥
नग पाँचौ देइ देउँ भँडारा। इसकंदर सौं बाँचै दारा॥
जौ यह बचन त माथे मोरे। सेवा करौं ठाढ़ कर जोरे॥
पै बिनु सपथ न अस मन माना। सपथ बोल बाचा-परवाँना॥
खंभ जो गरुअ लीन्ह जग भारू। तेहि क बोल नहि टरै पहारू॥
नाव जो माँझ भार हुँत गीवा। सरजै कहा मंद वह जीवा॥

सरजै सपथ कीन्ह छल बैनहि मीठै मीठ।
राजा कर मन माना, माना तुरत बसीठ॥ ५॥

हंस कनक पींजर-हुँत आना। औ अमृत नग परस-पखाना॥
औ सोनहार सोन के डाँड़ी। सारदूल रूपे के काँड़ी॥
सो बसीठ सरजा लेइ आवा। बादसाह कहं आनि मेरावा॥
ए जगसूर भूमि-उजियारे। बिनती करहि काग मसि-कारे॥
बड़ परताप तोर जग तपा। नवौ खंड तोहि को नहि छपा?॥
कोह छोह दूनौ तोहि पाहाँ। मारसि धूप, जियावसि छाहाँ॥
जौ मन सूर चाँद सौ रूसा। गहन गरासा, परा मँजूसा॥

भोर होइ जौ लागै उठहि रोर कै काग।
मसि छूटै सब रैनि कै, कागहि केर अभाग॥ ६॥

---

(५) को मेट पारा = इस बात को कौन मिटा सकता है कि। भँडारा = भंडार से। जौ यह बचन = जो बादशाह का इतना ही कहना है तो मेरे सिर मत्थे पर है। बाचा-परवाँना = वचन का प्रमाण है। नाव जो माँझ..... गीवा = जो किसी बात का बोझ अपने ऊपर लेकर बीच मे गरदन हटाता है। छल = छल से। बसीठ माना = सुलह का सँदेसा मान लिया। (६) सोनहार = समुद्र का पक्षी। डाँड़ी = अड्डा। काँड़ी = पिंजरा? बिनती करहि काग मसि-कारे = हे सूर्य! कौए बिनती करते है कि उनकी कालिमा (दोष, अवगुण) दूर कर दे अर्थात् राजा के दोष क्षमा कर। कोह = क्रोध। छोह = दया, अनुग्रह। धूप = धूप से। छाहाँ = छाँह मे, अपनी छाया मे। परा मँजूसा = भ्रांवे मे पड़ गया अर्थात् घिर गया। कागहि केर अभाग = कौए का ही अभाग्य है कि उसकी कालिमा न छूटी।

करि विनती अज्ञा अस पाई। "कागहु कै मसि आपुहि लाई॥
"पहिलेहि धनुष नवै जब लागै। काग न टिकै, देखि सर भागै॥
"अबहूँ ते सर सौंहै होही। देखैं धनुक चलहिं फिरि त्योंही॥
"तिन्ह कागन्ह कै कौन बसीठी। जो मुख फेरि चलहि देइ पीठी॥
"जो सर सौंह होहि संग्रामा। कित बग होहि सेत वै सामा?॥
"करै न आपन ऊजर केसा। फिरि फिरि कहै परार सँदेसा॥
"काग नाग ए दूनौ बाँके। अपने चलत साम वै आँके॥

"कैसेहु जाइ न मेटा भएउ साम तिन्ह अंग।
सहस बार जौ धोवा तबहुँ न गा वह रंग॥७॥

"अब सेवा जो आइ जोहारे। अबहूँ देखु सेत की कारे॥
"कहौ जाइ जौ साँच, न डरना। जहवाँ सरन नाहिं तहँ मरना॥
"काल्हि आव गढ़ ऊपर भानू। जो रे धनुक, सौंह होइ बानू"॥
पान बसीठ मया करि पावा। लीन्ह पान, राजा पहँ आवा॥
जस हम भेंट कीन्ह गा कोहू। सेवा माँझ प्रीति औ छोहू॥

---

(७) कागहु कै मसि.....लाई = कौवे की स्याही तुम्हीं ने लगा ली है (छल करके), वे कौए नहीं हैं क्योंकि...। पहिलेहि ..भागै = जो कौवा होता है वह ज्योंही धनुष खींचा जाता है भाग जाता है। अबहूँ...होहीं = वे तो अब भी यदि उनके सामने बाण किया जाय तो तुरत लड़ने के लिये फिर पड़ेंगे। धनुक = (क) युद्ध के लिये चढ़ी कमान, (२) टेढ़ापन, कुटिलता। सर = (क) शर, तीर, (ख) ताल, सरोवर। जो सर...सामा = जो लड़ाई मे तीर के सामने आते हैं वे श्वेत बगले काले (कौए) कैसे हो सकते हैं? करै न आपन... सँदेसा = तू अपने को शुद्ध और उज्वल नहीं करता, केवल कौवों की तरह इधर का उधर सँदेसा कहता है (कवि लोग नायिकाओं का कौए से सँदेसा कहना वर्णन करते हैं)। अपने चलत...आँके = वे एक बात पर दृढ़ रहते हैं और सदा वही कालिमा ही प्रकट करते हैं पर तू अपने को और का और प्रकट करके छल करता है। (८) अब सेवा...जोहारे = उन्होने मेल कर लिया है, तू अब भी देख सकता है कि श्वेत हैं या काले अर्थात् वे छल नहीं करेंगे। जो रे धनुक...बानू = जो अब वह किले मे मेरे जाने पर किसी प्रकार की कुटिलता करेगा तो उसके सामने फिर बाण होगा (धनुष टेढ़ा होता है और बाण सीधा)।

काल्हि साह गढ़ देखै आवा। सेवा करहु जैस मन भावा॥
गुन सौं चलै जो वोहित बोझा। जहँवाँ धनुक बान तहँ सोझा॥
भा आयसु अस राजघर, वेगि दे करहु रसोइ।
ऐस सुरस रस मेरवहु जेहि सौं प्रीति-रस होइ॥ ८॥

---

गुन = गून, रस्सी। जहँवा धनुक ··· सोझा = जहाँ कुटिलता हुई कि सामने सीधा बाण तैयार है।

## (४५) बादशाह-भोज-खंड

छागर मेढ़ा बड़ औ छोटे। धरि धरि आने जहँ लगि मोटे॥
हरिन, रोझ, लगना बन बसे। चीतर गोइन, झाँख औ ससे॥
तीतर, बटई, लवा न बाँचे। सारस, कूज, पुछार जो नाचे॥
धरे परेवा पंडुक हेरी। खेहा, गुड़रू और बगेरी॥
हारिल, चरग, चाह बेंदि परे। बन-कुक्कुट, जल-कुक्कुट धरे॥
चकई चकवा और पिदारे। नकटा, लेदी, सोन सलारे॥
मोट बड़े सो टोइ टोइ धरे। ऊबर दूबर खुरुक न, चरे॥
कंठ परी जब छूरी रकत दुरा होइ आँसु।
कित आपन तन पोखा भखा परावा माँसु? ॥ १ ॥
धरे माछ पढ़िना औ रोहू। धीमर मारत करै न छोहू॥
सिधरी, सौरि, धरी जल गाढ़े। टेंगर टोइ टोइ सब काढ़े॥
सींगी भाकुर विनि सब धरी। पथरी बहुत बाँब बनगरी॥
मारे चरख औ चाल्ह पियासी। जल तजि कहाँ जाहिं जलबासी?॥
मन होइ मीन चरा सुख-चारा। परा जाल को दुख निरुवारा?॥

---

( १ ) रोझ = नीलगाय। लगना = एक वनमृग। चीतर = चित्रमृग। गोइन = कोई मृग (?)। झाँख = एक प्रकार का बड़ा जंगली हिरन; जैसे—ठाढ़े ढिग बाघ, बिग, चिते चितवत झाँख मृग शाखामृग सब रीझि रीझि रहे है। —देव। ससे = खरहे। पुछार = मोर। खेहा = केहा, बटेर की तरह की एक चिड़िया। गुड़रू = कोई पक्षी। बगेरी = भरद्वाज, भरुही। चरग = बाज की जाति की एक चिड़िया। चाह = चाहा नामक जलपक्षी। पिदारे = पिद्दे। नकटा = एक छोटी चिड़िया। सोन, सलारे = कोई पक्षी। खुरुक = खटका।
( २ ) पढ़िना = पाठीन मछली, पहिना। रोहू, सिधरी, सौरी, टेंगरा, सींगी, भाकुर, पथरी, बनगरी, चरख, पियासी = मछलियो के नाम। बाँब = बाम मछली जो देखने मे साँप की तरह लगती है। चाल्ह = चेल्हवा मछली। निरुवारा = छुड़ाए।

माँटी खाय मच्छ नहि बाँचे। बाँचहिं काह भोग-सुख-राँचे ?॥
मारै कहँ सब अस कै पाले। को उबार तेहि सरवर-घाले ?॥
एहि दुख काँटहिं सारि कै रकत न राखा देह।
पंथ भुलाइ आइ जल बाझे मूठे जगत सनेह॥ २॥
देखत गोहूँ कर हिय फाटा। आने तहाँ होव जहँ आटा॥
तब पीसे जब पहिले धोए। कपरछानि माँड़े, भल पोए॥
चढ़ी कराही, पाकहिं पूरी। मुख महँ परत होहि सो चूरी॥
जानहुँ तपत सेत औ उजरी। नैनू चाहि अधिक वै कोंवरी॥
मुख मेलत खन जाहिं विलाई। सहस सवाद सो पाव जो खाई॥
लुचुई पोइ पोइ घिउ-मेई। पाछे छानि खाँड़-रस मेई॥
पूरि सोहारी कर घिउ चूआ। छुअत विलाइ, डरन्ह को छूआ ?॥
कही न जाहिं मिठाई, कहत मीठ मुठि बात।
खात अघात न कोई, हियरा जात सेरात॥ ३॥
चढ़े जो चाउर बरनि न जाहीं। बरन बरन सब सुगँध बसाही॥
रायभोग औ काजर-रानी। झिनवा, रुदवा, दाउदखानी॥
बासमती, कजरी, रतनारी। मधुकर, ढेला, झीनासारी॥
घिउकाँदौ औ कुँवरविलासू। रामबास आवै अति बासू॥
लौंगचूर लाची अति बाँके। सोनखरीका कपुरा पाके॥
कोरहन, बड़हन, जड़हन मिला। औ संसारतिलक खँड़विला॥
धनिया देवल और अजाना। कहँ लगि बरनौं जावत धाना॥
सोंधे सहस बरन, अस सुगँध बासना छूटि।
मधुकर पुहुप जो बन रहे आइ परे सब टूटि॥ ४॥

---

(२) राँचे = अनुरक्त, लिप्त। तेहि सरवर-घाले = उस सरोवर मे पड़े हुए को कौन बचा सकता है (जीवपक्ष मे संसार-सागर मे पड़े हुए का कौन उद्धार कर सकता है!)। एहि मुख...देह = इसी दुख से तो मछली ने शरीर मे काँटे लगाकर, रक्त नहीं रखा। (३) तपत = जलती हुई, गरम गरम। नैनू = नवनीत, मक्खन। कोंवरी = कोमल। घिउ-मेई = घी का मोयन दी हुई। कहत मीठ...बात = उनके नाम लेने से मुँह मीठा हो जाता है। (४) काजर-रानी = रानी काजल नाम का चावल। रायभोग, झिनवा, रुदवा, दाउदखानी, बासमती, कजरी, मधुकर, ढेला, झीनासारी, घिउकाँदो, कुँवर-विलास, रामबास, लवँगचूर, लाची, सोनखरिका, कपूरी, संसारतिलक, खँड़विला, धनिया, देवल = चावलों के नाम। पुहुप = फूलों पर।

निरमल माँसु अनूप बघारा। तेहि के अब बरनौं परकारा॥
कटुवा, बटुवा मिला सुबासू। सीझा अनबन भाँति गरासू॥
बहुतै सोंधे घिउ महँ तरे। कस्तूरी केसर सौं भरे॥
सेधा लोन परा सब हाँड़ी। काटी कंदमूर कै आँड़ी॥
सोआ सौंफ उतारे घना। तिन्ह तें अधिक आव बासना॥
पानि उतारहि, ताकहि ताका। घीउ परेह माहि सब पाका॥
औ लीन्हें माँसुन्ह के खंडा। लागे चुरै सो बड़ बड़ हंडा॥

छागर बहुत समूची धरी सरागन्ह भूँजि।
जो अस जेवन जेवै उठै सिंघ अस गूँजि॥ ५॥

भूँजि समोसा घिउ महँ काढ़े। लौंग मरिच जिन्ह भीतर ठाढ़े॥
और माँसु जो अनवन बाँटा। भए फर फूल, आम औ भाँटा॥
नारँग, दारिउँ, तुरँज, जँभीरा। औ हिदवाना, बालम खीरा॥
कटहर बड़हर तेउ सँवारे। नरियर, दाख, खजूर, छोहारे॥
औ जावत जो खजहजा होहीं। जो जेहि बरन सवाद सो ओहीं॥
सिरका भेइ काढ़ि जनु आने। कवँल जो कीन्ह रहे बिगसाने॥
कीन्ह मसेवरा, सीझि रसोई। जो किछु सबै माँसु सौ होई॥

बारी आइ पुकारेसि लीन्ह सबै करि छूँछ।
सब रस लीन्ह रसोई, को अब मोकहँ पूछ?॥ ६॥

काटे माछ मेलि दधि धोए। औ पखारि बहु बार निचोए॥

---

(५) कटुवा = खड खड कटा हुआ। बटुवा = सिल पर बटा या पिसा हुआ। अनबन = विविध, अनेक। गरासू = ग्रास, कौर। तरे = तले हुए। आँड़ी = अंठी, गाँठ। ताकहिं ताका = तवा देखते हैं। परेह = रसा, शोरबा। सरागन्ह = सिखचों पर, शलाकाओं पर। गूँजि उठै = गरज उठे। (६) ठाढ़े = खड़ी, समूची। भए फर...भाँटा = मास ही अनेक प्रकार के फल-फूल के रूप मे बना है। हिदवाना = तरबूज, कलींदा। बालम खीरा = खीरे की एक जाति। खजहजा = खाने के फल। सिरका भेइ...आने = मानो सिरके में भिगोए हुए फल समूचे लाकर रखे गए है (सिरके में पड़े हुए फल ज्यों के त्यों रहते हैं)। मसेवरा = मांस की बनी चीजे। सीझि = पकी, सिद्ध हुई। बारी = काछी या माली। बारी आइ...छूँछ = माली ने पुकार मचाई कि मेरे यहाँ जो फल-फूल थे वे सब तो मुझे खाली करके ले लिए अर्थात् वे सब मांस ही के बना लिए गए। (७) पखारि = धोकर।

करुए तेल कीन्ह वसवारू। मेथी कर तब दीन्ह वघारू॥
जुगुति जुगुति सब माँछ वघारे। आम चीरि तिन्ह माँझ उतारे॥
औ परेह तिन्ह चुटपुट राखा। सो रस सुरस पाव जो चाखा॥
भाँति भाँति सब खाँड़र तरे। अंडा तरि तरि वेहर धरे॥
घीउ टाँक महँ सोंध सेरावा। लौंग मरिच तेहि ऊपर नावा॥
कुहुँकुहुँ परा कपूर-वसावा। नख ते वघारि कीन्ह अरदावा॥
घिरित परेह रहा तस हाथ पहुँच लगि वूड़।
विरिध खाइ नव जोवन सौ तिरिया सौ ऊड़॥ ७॥
भाँति भाँति सीझी तरकारी। कइउ भाँति कोहँड़न्ह कै फारी॥
वने आनि लौआ परवती। रयता कीन्ह काटि रती रती॥
चूक लाइ कै रींधे भाँटा। अरुई कहँ भल अरहन वाटा॥
तोरई, चिचिड़ा, डेंड़सी तरी। जीर धुँगार झार सब भरी॥
परवर कुँदरू भूँजे ठाढ़े। वहुतै घिउ महँ चुरमुर काढ़े॥
करुई काढ़ि करैला काटे। आदी मेलि तरे कै खाटे॥
रींधे ठाढ़ सेव के फारा। छौंकि साग पुनि सोंध उतारा॥
सीझीं सब तरकारी भा जेवन सब ऊँच।
दहुँ का रचै साह कहँ, केहि पर दिस्टि पहूँच॥ ८॥
घिउ कराह भरि, वेगर धरा। भाँति भाँति के पाकहि वरा॥
एक त आदी मरिच सौ पीठा। दूसर दूध खाँड़ सौ मीठा॥
भई मुगौछी मरिचै परी। कीन्ह मुगौरा औ वहु वरी॥

---

वसवारू = छौंक। परेह = रसा। चुटपुट = चुटपुटा। खाँड़र = कतले। तरि = तलकर। वेहर = अलग। टाँक = बरतन, कटोरा। सेरावा = ठंढा किया। नख = एक गंधद्रव्य। अरदावा = कुचला या भुरता। पहुँच लगि = पहुँचा या कलाई तक। ऊड़ = विवाह करे या रखे (ऊढ़)। (८) फारी = फाल, टुकड़े। लौआ = घीया, कद्दू। रयता = रायता। रती रती = महीन महीन। चूक = खटाई। रींधे = पकाए। अरहन = चने की पिसी दाल जो तरकारी मे पकाते समय डाली जाती है; रेहन। वाटा = पीसा। डेंड़सी = कुम्हड़े की तरह की एक तरकारी, टिंडा, (टिंडिस)। तरी = तली। धुँगार = छौंक। चुरमुर = कुरकुरे। करुई काढ़ि = कड़ुवापन निकालकर (नमक हल्दी के साथ मलकर)। कै खाटे = खट्टे करके। फारा = फाल, टुकड़े। (९) वेगर = उर्द या मूँग का रवादार आटा, धुवाँस। वरा = बड़ा। पीठा = पीसा गया। मुँगौछी = मूँग का पकवान। मुँगौरा = मूँग की पकौड़ी।

भई मेथौरी, सिरका परा। सोंठि नाइ कै खरसा धरा॥
माठा महि महियाउर नावा। भीज बरा नैनू जनु खावा॥
खंडै कीन्ह आमचुर - परा। लौंग लायची सौं खँड़बरा॥
कढ़ी सँवारी और फुलौरी। औ खँड़वानी लाइ बरौरी॥

रिकवँच कीन्हि नाइ कै हीग, मरिच औ आद।
एक खंड जौ खाइ तौ पावै सहस सवाद॥ ९॥

तहरी पाकि, लौंग औ गरी। परी चिरौंजी औ खरहरी॥
घिउ महँ भूँजि पकाए पेठा। औ अमृत गुरंब भरे मेटा॥
चुंवक - लोहँड़ा औटा खोवा। भा हलुवा घिउ गरत निचोवा॥
सिखरन सोध छनाई गाढ़ी। जामी दूध दही कै साढ़ी॥
दूध दही के मुरंडा बाँधे। और सँधाने अनवन साधे॥
भइ जो मिठाई कही न जाई। मुख मेलत खन जाइ बिलाई॥
मोतीचूर, छाल औ ठोरी। माठ, पिराकै और बुँदौरी॥

फेरी पापर भूँजे, भा अनेक परकार।
भइ जाउरि पछियाउरि, सीझी सब जेवनार॥१०॥

जत परकार रसोइ बखानी। तत सब भई पानि सौ सानी॥
पानी मूल, परिख जौ कोई। पानी बिना सवाद न होई॥
अमृत - पान यह अमृत आना। पानी सौ घट रहै पराना॥
पानी दूध औ पानी घीऊ। पानि घटै, घट रहै न जीऊ॥
पानी माँझ समानी जोती। पानिहि उपजै मानिक मोती॥

---

मेथौरी = एक प्रकार की बड़ी। खरसा = एक पकवान। महियाउर = मट्ठे मे पका चावल। नैनू = नवनीत, मक्खन। बरौरी = बड़ी। रिकवँच = अरुई या कचू के पत्ते पीठी मे लपेटकर बनाए हुए बड़े। आद = अदरक। (१०) तहरी = बड़ी और हरी मटर के दानो की खिचड़ी। खरहरी = खरिक, छुहारा। गुरब = शीरे में रखे हुए आम। मेटा = मिट्टी के बरतन, मटके। लोहँड़ा = लोहे का तसला। मुरंडा = पानी निथार कर पिंडाकार बँधा दही या छेना। सँधाने = अचार। छाल = एक मिठाई। ठोरी = ठोर। पिराकै = गोझिया। बुँदौरी = बुँदिया। पछियाउरि = मट्ठे मे भिगोई बुँदिया। सीझी = सिद्ध हुई, पकी। (११) जत = जितनी। तत = उतनी। पानी मूल.....कोई = जो कोई विचार कर देखे तो पानी ही सबका मूल है। अमृत-पान = अमृत पान के लिये।

## (४६) चित्तौरगढ़-वर्णन-खंड

जेवाँ साह जो भएउ विहाना। गढ़ देखै गवना सुलताना॥
कवँल-सहाय सूर सँग लीन्हा। राघव चेतन आगे कीन्हा॥
ततखन आइ विवाँन पहूँचा। मन तें अधिक, गगन तें ऊचा॥
उघरी पवँरि, चला सुलतानू। जानहु चला गगन कहँ भानू॥
पवँरी सात, सात खँड वाँके। सातौ खंड गाढ़ दुइ नाके॥
आजु पवँरि-मुख भा निरमरा। जौ सुलतान आइ पग धरा॥
जनहुँ उरेह काटि सब काढ़ी। चित्र क मूरति विनवहिं ठाढ़ी॥
लाखन बैठ पवँरिया जिन्ह तें नवहिं करोरि।
तिन्ह सब पवँरि उघारे, ठाढ़ भए कर जोरि॥ १॥
सातौ पँवरी कनक-केवारा। सातौ पर वाजहि घरियारा॥
सात रंग तिन्ह सातौ पँवरी। तब तिन्ह चढ़ै फिरै नव भँवरी॥
खँड खँड साज पलँग औ पीढ़ी। जानहुँ इंद्रलोक कै सीढ़ी॥
चंदन विरिछ सोह तहँ छाहाँ। अमृत-कुंड भरे तेहि माहाँ॥
फरे खजहजा दारिउँ दाखा। जो ओहि पंथ जाइ सो चाखा॥
कनक-छत्र सिंघासन साजा। पैठत पँवरि मिला लेइ राजा॥
वादशाह चढ़ि चितउर देखा। सब संसार पाँव तर लेखा॥
देखा साह गगन-गढ़ इंद्रलोक कर साज।
कहिय राज फुर ताकर सरग करै अस राज॥ २॥
चढ़ि गढ़ ऊपर संगति देखी। इंद्रसभा सो जानि विसेखी॥
ताल तलावा सरवर भरे। औ अँवराव चहूँ दिसि फरे॥
कुआँ वावरी भाँतिहि भाँती। मठ मंडप साजे चहुँ पाँती॥

---

(१) जेवाँ = भोजन किया। विहान = सवेरा। मन ते अधिक = मन से अधिक वेगवाला। पवँरि = ड्योढ़ी। गाढ़ = कठिन नाके = चौकियाँ। जिन्ह ते नवहि करोरि = जिनके सामने करोड़ो आदमी आवें तो सहम जायँ। (२) घरियारा = घटे। फिरै = जब फिरे। भँवरी = चक्कर। पीढ़ी = सिंहासन। लेखा = समझा, समझ पड़ा। फुर = सचमुच। (३) संगति = सभा।

राय रंक घर घर सुख चाऊ। कनक मंदिर मग कीन्ह जड़ाऊ॥
निसि दिन बाजहिं मादर तूरा। रहस कूद सब भरे सेंदूरा॥
रतन पदारथ नग जो बखाने। घूरन्ह माँह देख छहराने॥
मंदिर मंदिर फुलवारी बारी। बार बार बहु चित्र सँवारी॥

पासासारि कुँवर सब खेलहिं, गीतन्ह स्रवन ओनाहिं।
चैन चाव तस देखा जनु गढ़ छेंका नाहिं॥ ३॥

देखत साह कीन्ह तह फेरा। जहँ मंदिर पदमावति केरा॥
आस पास सरवर चहुँ पासा। माँझ मंदिर जनु लाग अकासा॥
कनक सँवारि नगन्ह सब जरा। गगन चंद जनु नखतन्ह भरा॥
सरवर चहुँ दिसि पुरइन फूली। देखत बारि रहा मन भूली॥
कुँवरि सहसदस बार अगोरे। दुहुँ दिसि पँवरि ठाढ़ि कर जोरे॥
सारदूल दुहुँ दिसि गढ़ि काढ़े। गलगाजहिं जानहु ते ठाढ़े॥
जावत कहिए चित्र कटाऊ। तावत पँवरिन्ह बने जड़ाऊ॥

साह मँदिर अस देखा जनु कैलास अनूप।
जाकर अस धौराहर सो रानी केहि रूप॥ ४॥

नाँघत पँवरि गए खँड साता। सतए भूमि बिछावन राता॥
आँगन साह ठाढ़ भा आई। मंदिर छाँह अति सीतल पाई॥
चहूँ पास फुलवारी बारी। माँझ सिंहासन धरा सँवारी॥
जनु बसंत फूला सब सोने। फल औ फूल बिगसि अति लोने॥
जहाँ जो ठाँव दिस्टि महँ आवा। दरपन भाव दरस देखरावा॥
तहाँ पाट राखा सुलतानी। बैठ साह, मन जहाँ सो रानी॥
कवँल सुभाय सूर सौं हँसा। सूर क मन चाँदहि पह बसा॥

सो पै जानै नयन-रस हिरदय प्रेम-अकूर।
चंद जो बसै चकोर चित नयनहि आव न सूर॥ ५॥

---

सुख चाउ = आनद मंगल। मादर = मर्दल, एक प्रकार का ढोल। घूरन्ह = कूड़ेखानों मे। छहराने = बिखरे हुए। पाँसासारि = चौपड़। ओनाहिं = झुके या लगे हैं। (४) पुरइन = (सं० पुटकिनी) कमल। अगोरे = रखवाली या सेवा मे खड़ी है। सारदूल = सिंह। गलगाजहिं = गरजते हैं। कटाऊ = कटाव, बेलबूटे। (५) राता = लाल। दरपन भाव...देखरावा = दर्पन के समान ऐसा साफ झकाझक है कि प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। अकूर = अंकुर। नयनहि न आव = नजर में नहीं जँचता है।

नौ (अभिजित् श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा (वारुणा), पूर्वभाद्रपदा, नी भरणी), स्वाति, पूर्वा और उत्तरा ये बारह नक्षत्र चन्द्रके प्रथम

रानी धौराहर उपराही। करै दिस्टि नहिं तहाँ तराहीं॥
सखी सरेखी साथ बईठी। तपै सूर, ससि आव न दीठी॥
राजा सेव करै कर जोरे। आजु साह घर आवा मोरे॥
नट नाटक, पातुरि औ बाजा। आइ अखाड़ माँह सब साजा॥
पेम क लुबुध बहिर औ अंधा। नाच-कूद जानहुँ सब धंधा॥
जानहुँ काठ नचावै कोई। जो नाचत सो प्रगट न होई॥
परगट कह राजा सौं बाता। गुपुत प्रेम पदमावति राता॥

गीत नाद अस धंधा, दहक बिरह कै आँच।
मन कै डोरि लाग तहँ, जहँ सो गहि गुन खाँच॥ ६॥

गोरा बादल राजा पाहाँ। रावत दुवौ दुवौ जनु बाहाँ॥
आइ स्रवन राजा के लागे। मूसि न जाहिं पुरुष जो जागे॥
बाचा परखि तुरुक हम बूझा। परगट मेर, गुपुत छल सूझा॥
तुम नहिं करौ तुरुक सौं मेरू। छल पै करहि अंत कै फेरू॥
बैरी कठिन कुटिल जस काँटा। सो मकोय रह राखै आँटा॥
सत्रु कोट जो आइ अगोटी। मीठी खाँड़ जेवाएहु रोटी॥
हम तेहि ओछ क पावा घातू। मूल गए सँग न रहै पातू॥

---

(६) उपराहीं = ऊपर। सूर = सूर्य्य के समान बादशाह। ससि = चंद्रमा के समान राजा। ससि.....दीठी = सूर्य्य के सामने चंद्रमा (राजा) की ओर नजर नहीं जाती है। अखाड़ा = अखाड़; रंगभूमि; जैसे—इंद्र का अखाड़ा। जानहुँ सब धंधा = मानो नाच-कूद तो संसार का काम ही है यह समझकर उस ओर ध्यान नहीं देता है। कह = कहता है। दहक = जिससे दहकता है। गुन = डोरी। खाँच = खींचती है। (७) रावत = सामंत। दुवौ जनु बाहाँ = मानो राजा की दोनों भुजाएँ हैं। स्रवन लागे = कान में लगकर सलाह देने लगे। मूसि न जाहिं = लूटे नहीं जाते हैं। बाचा परखि.....बूझा = उस मुसलमान की मैं बात परखकर समझ गया हूँ। मेर = मेल। कै फेरू = घुमा फिराकर। बैरी = (क) शत्रु; (ख) बेर का पेड़। सो मकोय रह...आँटा = उसे मकोय की तरह (काँटे लिए हुए) रहकर ओट या दाँव में रख सकते है। आँटा = दावँ जैसे—"न ये बिसासिए लखि नए दुर्जन दुसह सुभाय। आँटे पर प्रानन हरैं काँटे लौ लगि पाय॥"—बिहारी। अगोटी = छेंका। ओछ = ओछे, नीच। पावा घातू = दाँव-पेच समझ गया। मूल गए...पातू = उसने सोचा है कि राजा को पकड़ ले तो सेना-सामत

यह सो कृस्न बलिराज जस, कीन्ह चहै छर-बाँध ।
हम्ह बिचार अस आवै, मेर न दीजिय काँध ॥ ७ ॥

सुनि राजहि यह बात न भाई । जहाँ मेर तहँ नहिं अधमाई ॥
मंदहि भल जो करै भल सोई । अंतहि भला भले कर होई ॥
सत्र जो बिष देइ चाहै मारा । दीजिय लोन जानि विष-हारा ॥
विष दीन्हें बिसहर होइ खाई । लोन दिए होइ लोन बिलाई ॥
मारे खड़ग खड़ग कर लेई । मारे लोन नाइ सिर देई ॥
कौरव विष जो पंडवन्ह दीन्हा । अंतहि दाँव पंडवन्ह लीन्हा ॥
जो छल करै ओहि छल बाजा । जैसे सिंघ मँजूसा साजा* ॥

राजै लोन सुनावा, लाग दुहुन जस लोन ।
आए कोहाइ मँदिर कहँ, सिघ छान अब गोन ॥ ८ ॥

राजा कै सोरह सै दासी । तिन्ह महँ चुनि काढ़ीं चौरासी ॥
बरन बरन सारी पहिराई । निकसि मँदिर तें सेवा आई ॥
जनु निसरीं सब बीरबहूटी । रायमुनी पींजर-हुँत छूटी ॥
सबै परथमै जोबन सोहैं । नयन बान औ सारँग भौहै ॥
मारहिं धनुक फेरि सर ओही । पनिघट घाट धनुक जिति मोही ॥

---

आप ही न रह जायँगे । कृस्न = विष्णु, वामन । छर-बाँध = छल का आयोजन । काँध दीजिय = स्वीकार कीजिए । (८) बिष-हार = विष हरनेवाला । बिसहर = विषधर, साँप । होइ लोन बिलाई = नमक की तरह गल जाता है । कर लेई = हाथ मे लेता है । मारे लोन = नमक से मारने से, अर्थात् नमक का एहसान ऊपर डालने से । बाजा = ऊपर पड़ता है ।

* एक ब्राह्मण देवता ने दया करके एक शेर को पिंजड़े से निकाल दिया । शेर उन्हें खाने दौड़ा । ब्राह्मण ने कहा, भलाई के बदले मे बुराई नहीं करनी चाहिए । शेर कहने लगा, अपना भक्ष्य नहीं छोड़ना चाहिए । अंत में गीदड़ पंच हुआ । उसने कहा तुम दोनो जिस दशा मे थे उसी दशा मे थोड़ी देर के लिये फिर हो जाओ तो मै मामला समझूँ । शेर फिर पिंजडे मे चला गया । गीदड ने इशारा किया और ब्राह्मण ने पिजड़े का द्वार फिर बंद कर दिया ।

लोन जस लाग = अप्रिय लगा, बुरा लगा । कोहाइ = रूठकर । मदिर = अपने घर । छान = बाँधती है । गोन = रस्सी । सिघ...गोन = सिह अब रस्सी से बँधा चाहता है । (९) रायमुनी = मुनिया नाम की छोटी सुंदर चिड़िया । सारँग = धनुष ।

[illegible] धनिष्ठा, शतभिषा (वारुणी), पूर्वभाद्रपदा, [illegible]), स्वाति, पूर्वा और उत्तरा ये बारह नक्षत्र चन्द्रके प्रथम

काम-कटाछ हनहिं चित-हरनी। एक एक तें आगरि बरनी॥
जानहुँ इंद्रलोक तें काढ़ी। पाँतिहि पाँति भईं सब ठाढ़ी॥
साह पूछ राघव पहँ, ए सब अछरी आहिं।
तुइ जो पदमिनि बरनी, कहु सो कौन इन माहि॥९॥
दीरघ आउ, भूमिपति भारी। इन महँ नाहिं पदमिनी नारी॥
यह फुलवारि सो ओहि कै दासी। कहँ केतकी भँवर जहँ बासी॥
वह तौ पदारथ, यह सब मोती। कहँ ओह दीप पतँग जेहि जोति॥
ए सब तरई सेव कराहीं। कहँ वह ससि देखत छपि जाहीं॥
जौ लगि सूर क दिस्टि अकासू। तौ लगि ससि न करै परगासू॥
सुनि कै साह दिस्टि तर नावा। हम पाहुन, यह मँदिर परावा॥
पाहुन ऊपर हेरै नाहीं। हना राहु अर्जुन परछाहीं॥
तपै बीज जस धरती, सूख बिरह के घाम।
कब सुदिस्टि सो बरिसै, तन तरिवर होइ जाम॥१०॥
सेव करै दासी चहुँ पासा। अछरी मनहुँ इंद्र कबिलासा॥
कोउ परात कोउ लोटा लाई। साह सभा सब हाथ धोवाई॥
कोई आगे पनवार बिछावहिं। कोई जेंवन लेइ लेइ आवहिं॥
मॉड़े कोइ जाहि धरि जूरी। कोई भात परोसहि पूरी॥
कोई लेइ लेइ आवहि थारा। कोइ परसहिं छप्पन परकारा॥
पहिरि जो चीर परोसै आवहिं। दूसरि और बरन देखरावहिं॥
बरन बरन पहिरे हर फेरा। आव झुंड जस अछरिन्ह केरा॥
पुनि सँधान बहु आनहिं, परसहि बूकहि बूक।
करहि सँवार गोसाईं, जहाँ परै किछु चूक॥११॥

---

(१०) आउ = आयु। कहँ केतकी...बासी = वह केतकी यहाँ कहाँ है (अर्थात् नहीं है) जिसपर भौंरे बसते है। पदारथ = रत्न। जौ लगि सूर...परगासू = जब तक सूर्य्य ऊपर रहता है तब तक चंद्रमा का उदय नहीं होता; अर्थात् जब तक आपकी दृष्टि ऊपर लगी रहेगी तब तक पद्मिनी नहीं आएगी। हेरै = देखता है। हना राहु अर्जुन परछाही = जैसे अर्जुन ने नीचे छाया देखकर मत्स्य का वेध किया था वैसे ही आपको किसी प्रकार दर्पण आदिमे उसकी छाया देखकर ही उसे प्राप्त करनेका उद्योग करना होगा। सूख = सूखता है।
(११) पनवार = बड़ा पत्तल। मॉड़े = एक प्रकार की चपाती। जूरी = गड्ढी लगाकर। सँधान = अचार। बूकहि बूक = चंगुल भर भरकर। करहिं सँवार गोसाईं = डर के मारे ईश्वर का स्मरण करने लगती है।

जानहु नखत करहिं सब सेवा। बिनु ससि सूरहि भाव न जेंवा॥
बहु परकार फिरहि हर फेरे। हेरा बहुत न पावा हेरे॥
परीं असूझ सबै तरकारी। लोनी बिना लोन सब खारी॥
मच्छ छुवै आवहि गड़ि काटा। जहाँ कवँल तहँ हाथ न आँटा॥
मन लागेउ तेहि कवँल के दंडी। भावै नाहि एक कनउंडी॥
सो जेंवन नहिं जाकर भूखा। तेहि बिन लाग जनहुँ सब सूखा॥
अनभावत चाखै बैरागा। पंचामृत जानहुँ बिष लागा॥

बैठि सिंघासन गूँजै, सिंघ चरै नहिं घास।
जौ लगि मिरिग न पावै भोजन, करै उपास॥१२॥

पानि लिए दासी चहुँ ओरा। अमृत मानहुँ भरे कचोरा॥
पानी दहि कपूर क बासा। सो नहि पियै दरसकर प्यासा॥
दरसन-पानि देइ तौ जीऔं। बिनु रसना नयनहि सौं पीऔं॥
पपिहा बूंद-सेवातिहि अघा। कौन काज जौ बरिसै मघा?॥
पुनि लोटा कोपर लेइ आई। कै निरास अब हाथ धोवाई॥
हाथ जो धोवै बिरह करोरा। सँवरि सँवरि मन हाथ मरोरा॥
बिधि मिलाव जासौ मन लागा। जोरहि तूरि प्रेम कर तागा॥

हाथ धोइ जब बैठा, लीन्ह ऊबि कै साँस।
सँवरा सोइ गोसाईं देइ निरासहि आस॥१३॥

भइ जेवनार फिरा खँड़वानी। फिरा अरगजा कुहकुह-पानी॥
नग अमोल जो थारहि भरे। राजै सेव आनिकै धरे॥

---

(१२) नखत = पद्मिनी की दासियाँ। ससि = पद्मिनी। जेवा = भोजन करना। बहु परकार = बहुत प्रकार की स्त्रियाँ। परीं असूझ = आँख उनपर नहीं पड़ती। लोनी = सुंदरी पद्मिनी। लोन सब खारी = सब खारी नमक के समान कड़वी लगती हैं। आवहिं गड़ि = गड़ जाते है। न आँटा = नही पहुँचता है। कँवल के डडी = मृणाल-रूप पद्मिनी मे। कनउँड़ी = दासी। अनभावत = बिना मन से। बैरागा = विरक्त। उपास = उपवास। (१३) कचोरा = कटोरा। अघा = अघाता है, तृप्त होता है। मघा = मघा नक्षत्र। कोपर = एक प्रकार का बड़ा थाल या परात। हाथ धोवाई = बादशाह ने मानो पद्मिनी के दर्शन से हाथ धोया। बिरह करोरा = हाथ जो धोने के लिये मलता है मानो विरह खरोच रहा है। हाथ मरोरा = हाथ धोता है, मानो पछताकर हाथ मलता है। (१४) सेव = सेवा में।

बिनती कीन्ह घालि गिउ पागा। ए जगसूर! सीउ मोहि लागा॥
ऐगुन-भरा काँप यह जीऊ। जहाँ भानु तहँ रहै न सीऊ॥
चारिउ खंड भानु अस तपा। जेहि के दिस्टि रैनि-मसि छपा॥
औ भानुहि अस निरमल कला। दरस जो पावै सो निरमला॥
कवंल भानु देखे पै हँसा। औ भा तेहु चाहि परगसा॥

रतन साम हौ रैनि-मसि, ए रवि! तिमिर सँघार।
करु सो कृपा-दिस्टि अब, दिवस देहि उजियार॥१४॥

सुनि विनती विहंसा सुलतानू। सहसौ करा दिपा जस भानू॥
ए राजा! तुइ साँच जुड़ावा। भइ सुदिस्टि अब, सीउ छुड़ावा॥
भानु क सेवा जो कर जीऊ। तेहि मसि कहाँ, कहाँ तेहि सीऊ?॥
खाहु देस आपन करि सेवा। और देउ माँडौ तोहि, देवा!॥
लीक-पखान पुरुप कर बोला। धुव सुमेरु ऊपर नहि डोला॥
फेरि पसाउ दीन्ह नग सूरू। लाभ देखाइ लीन्ह चह मूरू॥
हँसि हँसि बोले, टेकै काँधा। प्रीति भुलाइ चहै छल बाँधा॥

माया-बोल बहुत के साह पान हँसि दीन्ह।
पहिले रतन हाथ के चहै पदारथ लीन्ह॥१५॥

माया-मोह-विवस भा राजा। साह खेल सतरँज कर साजा॥
राजा! है जौ लगि सिर घामू। हम तुम घरिक करहिं विसरामू॥
दरपन साह भीति तहँ लावा। देखौ जबहि झरोखे आवा॥
खेलहिं दुऔ साह औ राजा। साह क रुख दरपन रह साजा॥
प्रेम क लुबुध पियादे पाऊँ। ताकै सौह चलै कर ठाऊँ॥

---

घालि गिउ पागा=गले में पगड़ी डालकर (अधीनतासूचक)। सीऊ=शीत। रैनि-मसि=रात की कालिमा। तेहु चाहि=उससे भी बढ़कर। सँघार=नष्ट कर। (१५) दिपा=चमका। मसि=कालिमा। खाहु=भोग करो। माँडौ=माडौगढ़। देवा=देव, राजा। लीक-पखान=पत्थर की लीक सा (न मिटनेवाला)। धुव=ध्रुव। पसाउ=प्रसाद, भेंट। मूरू=मूलधन। प्रीति=प्रीति से। छल=छल से। रतन=राजा रत्नसेन। पदारथ=पद्मिनी। (१६) घरिक=एक घड़ी, थोड़ी देर। भीति=दीवार में। लावा=लगाया। रह साजा=लगा रहता है। पियादे पाऊँ=पैदल। पियादे=शतरंज की एक गोटी।

घोड़ा देइ फरजीबंद लावा। जेहि मोहरा रुख चहै सो पावा॥
राजा पील देइ शह माँगा। शह देइ चाह मरै रथ-खाँगा॥
पीलहि पील देखावा भए दुऔ चौदान।
राजा चहै बुर्द भा, साह चहै शह-मात॥१६॥
सूर देख जौ तरई-दासी। जहँ ससि तहाँ जाइ परगासी॥
सुना जो हम दिल्ली-सुलतानू। देखा आजु तपै जस भानू॥
ऊँच छत्र जाकर जग माहाँ। जग जो छाँह सब ओहि कै छाहाँ॥
बैठि सिंघासन गरवहि गूँजा। एक छत्र चारिउ खँड भूजा॥
निरखि न जाइ सौंह ओहि पाहीं। सबै नवहि करि दिस्टि तराहीं॥
मनि माथे, ओहि रूप न दूजा। सब रूपवंत करहि ओहि पूजा॥
हम अस कसा कसौटी आरस। तहूँ देखु कस कंचन, पारस॥
बादसाह दिल्ली कर कित चितउर महँ आव।
देखि लेहु पद्मावति! जेहि न रहै पछितावा॥१७॥
बिगसै कुमुद कहे ससि ठाऊ। बिगसै कँवल सुने रवि-नाऊँ॥
भइ निसि, ससि धौराहर चढ़ी। सोरह कला जैस बिधि गढ़ी॥
बिहँसि झरोखे आइ सरेखी। निरखि साह दरपन महँ देखी॥
होतहि दरस परस भा लोना। धरती सरग भएउ सब सोना॥

---

फरजी = शतरंज का वह मोहरा जो सीधा और टेढ़ा दोनो चलता है। फरजीबंद = वह घात जिसमे फरजी किसी प्यादे के जोर पर बादशाह को ऐसी शह देता है जिससे विपक्षी की हार होती है। शह = बादशाह को रोकनेवाला घात। रथ = शतरंज का वह मोहरा जिसे आजकल ऊँट कहते हैं (जब चतुरंग का पुराना खेल हिंदुस्तान से फारस-अरब की ओर गया तब वहाँ 'रथ' के स्थान पर 'ऊँट' हो गया)। बुर्द = खेल मे वह अवस्था जिसमे किसी पक्ष के सब मोहरे मारे जाते हैं, केवल बादशाह बच रहता है; यह आधी हार मानी जाती है। शह-मात = पूरी हार। (१७) सूर देख.....तरई-दासी = दासी-रूप नक्षत्रो ने जब सूर्य्य-रूप बादशाह को देखा। जहँ ससि.....परगासी = जहाँ चन्द्र-रूप पद्मावती थी वहाँ जाकर कहा। परगासी = प्रगट किया, कहा। भूजा = भोग करता है। आरस = आदर्श, दर्पण। कसा कसौटी आरस = दर्पण मे देखकर परीक्षा की। कित आव = फिर कहाँ आता है, अर्थात् न आएगा। (१८) कहे ससि ठाऊँ = इस जगह चंद्रमा है, यह कहने से। सुने = सुनने से। परस भा लोना = पारस या

रुख माँगत रुख ता सहुँ भएऊ। भा शह-मात, खेल मिटि गएऊ॥
राजा भेद न जानै झाँपा। भा बिसँभार, पवन बिनु काँपा॥
राघव कहा कि लागि सोपारी। लेइ पौढ़ावहि सेज सँवारी॥

रैनि बीति गइ, भोर भा, उठा सूर तब जागि।
जो देखै ससि नाहीं, रही करा चित लागि॥१८॥

भोजन-प्रेम सो जान जो जेवा। भँवरहि रुचै बास-रस-केवा॥
दरस देखाइ जाइ ससि छपी। उठा भानु जस जोगी तपी॥
राघव चेति साह पहँ गयउ। सूरज देखि कवँल बिसमयऊ॥
छत्रपती मन कीन्ह सो पहुँचा। छत्र तुम्हार जगत पर ऊँचा॥
पाट तुम्हार देवतन्ह पीठी। सरग पतार रहै दिन दीठी॥
छोह ते पलुहहिं उकठे रूखा। कोह ते महि सायर सब सूखा॥
सकल जगत तुरह नावै माथा। सब कर जियन तुम्हारे हाथा॥

दिनहि नयन लाएहु तुम, रैनि भएहु नहिं जाग।
कस निचित अस सोएहु, काह बिलंब अस लाग? ॥१९॥

देखि एक कौतुक हौं रहा। रहा अँतरपट, पै नहि अहा॥

---

स्पर्शमणि का स्पर्श सा हो गया। रुख = शतरंज का रुख। रुख = सामना। भा शह-मात = (क) शतरंज में पूरी हार हुई; (ख) बादशाह बेसुध या मत-वाला हो गया। झाँपा = छिपा, गुप्त। भा बिसँभार = बादशाह बेसुध हो गया। लागि सोपारी = सुपारी के टुकड़े निगलने मे छाती मे रुक जाने से कभी कभी एकबारगी पीड़ा होने लगती है जिससे आदमी बेचैन हो जाता है; इसी को सुपारी लगना कहते हैं। देखै = जो उठकर देखता है तो। करा = कला, शोभा। (१६) भोजन-प्रेम = प्रेम का भोजन (इस प्रकार के उलटे समास जायसी में प्रायः मिलते हैं—शायद फारसी के ढग पर हो)। सो जान = वह जानता है। बास-रस-केवा = केवा-बास रस अर्थात् कमल का गंध और रस। सूरुज देखि ··· बिसमयऊ = (वहाँ जाकर देखा कि) सूर्य्य बादशाह कमल पद्मिनी को देखकर स्तब्ध हो गया है। दिन = प्रतिदिन, सदा। पलुहहिं = पनपते हैं। उकठे = सूखे। तुम्ह = तुम्हें। दिनहि नयन ····· जाग = दिन के सोये सोये आप रात होने पर भी न जागे। निचित = बेखबर। (२०) रहा अँतरपट ··· अहा = (क) परदा था भी और नहीं भी था अर्थात् परदे के कारण मैं उस तक पहुँच नहीं सकता था। पर उसकी झलक देखता था (पद्मावती के प्रतिबिंब को शाह ने दर्पण में देखा था); (ख) यह जगत्

सरवर देख एक मैं सोई। रहा पानि, पै पान न होई॥
सरग आइ धरती महँ छावा। रहा धरति, पै धरत न आवा॥
तिन्ह महँ पुनि एक मंदिर ऊँचा। करन्ह अहा, पर कर न पहूँचा॥
तेहि मंडप मूरति मै देखी। बिनु तन, बिनु जिउ जाइ बिसेखी॥
पूरन चंद होइ जनु तपी। पारस रूप दरस देइ छपी॥
अब जहँ चतुरदसी जिउ तहाँ। भानु अमावस पावा कहाँ?॥

बिगसा कँवल सरग निसि, जनहुँ लौकि गइ बीजु।
ओहि राहु भा भानुहि, राघव मनहि पतीजु॥२०॥

अति बिचित्र देखा सो ठाढ़ी। चित कै चित्र, लीन्ह जीउ काढ़ी॥
सिंघ-लंक, कुंभस्थल जोरू। ऑकुस नाग, महाउत मोरू॥
तेहि ऊपर भा कँवल बिगासू। फिरि अलि लीन्ह पुहुप-मधु-बासू॥
दुइ खंजन बिच बैठेउ सूआ। दुइज क चाँद धनुक लेइ ऊआ॥
सिरिग देखाइ गवन फिरि किया। ससि भा नाग, सूर भा दिया॥

---

ब्रह्म और जीव के बीच परदा है पर इसमें उसकी झलक भी दिखाई पड़ती है। रहा पानि···न होई = उसमें पानी था पर उस तक पहुँचकर मैं पी नहीं सकता था। सरवर = वह दर्पण ही यहाँ सरोवर के समान दिखाई पड़ा। सरग आइ धरती·····आवा = सरोवर मे आकाश (उसका प्रतिबिंब) दिखाई पड़ता है पर उसे कोई छू नहीं सकता। धरति = धरती पर। धरत न आवा = पकड़ाई नहीं देता था। करन्ह अहा = हाथों मे ही था। अब जहँ चतुरदसी·····कहाँ = चौदस (पूर्णिमा) के चंद्र के समान जहाँ पद्मिनी है जीव तो वहाँ है, अमावस्या मे सूर्य्य (शाह) तो है ही नही। वह तो चतुर्दशी मे है; चतुर्दशी मे ही उसे अद्भुत ग्रहण लग रहा है। लौकि गई = चमक उठी, दिखाई पड गई। (२१) चित कै चित्र = चित्त या हृदय में अपना चित्र पैठाकर। कुभस्थल जोरू = हाथी के उठे हुए मस्तको का जोडा (अर्थात् दोनो कुच)। ऑकुस नाग = साँपों (अर्थात् बाल की लटो) का अकुश। मोरू = मयूर। मिरिग = अर्थात् मृगनयनी पद्मावती। गवन फिरि किया = पीछे फिरकर चली गई। ससि भा नाग = उसके पीछे फिरने से चद्रमा के स्थान पर नाग हो गया, अर्थात् मुख के स्थान पर वेणी दिखाई पड़ी। सूर भा दिया = उस नाग को देखते ही सूर्य्य (बादशाह) दीपक के समान तेज-हीन हो गया (ऐसा कहा जाता है कि साँप के सामने दीपक की लौ झिल-मिलाने लगती है)।

सुठि ऊँचे देखत वह उचका। दिस्टि पहुँचि, कर पहुँचि न सका॥
पहुँच-बिहून दिस्टि कित भई ?। गहि न सका, देखत वह गई॥
राघव ! हेरत जिउ गएउ, कित आछत जो असाध ?
यह तन राख पाँख कै सकै न, केहि अपराध ? ॥२१॥
राघव सुनत सीस भुइ धरा। जुग जुग राज भानु कै करा॥
उहै कला, वह रूप बिसेखी। निसचै तुम्ह पदमावति देखी॥
केहरि लंक, कुंभस्थल हिया। गीउ मयूर, अलक बेधिया॥
कँवल वदन औ बास सरीरू। खंजन नयन, नासिका कीरू॥
भौंह धनुक, ससि-दुइज लिलाटू। सब रानिन्ह ऊपर ओहि पाटू॥
सोई मिरिग देखाइ जो गएऊ। बेनी नाग, दिया चित भएऊ॥
दरपन महे देखी परछाहीं। सो मूरति, भीतर जिउ नाहीं॥
सबै सिगार-बनी धनि, अब सोई मति कीज।
अलक जो लटकै अधर पर सो गहि कै रस लीज ॥२२॥

---

पहुँच बिहूँन·····कित भई ? = जहाँ पहुँच नहीं हो सकती वहाँ दृष्टि क्यो जाती है ? हेरत जिउ गएउ = देखते ही मेरा जीव चला गया। कित आछत जो असाध = जो वश मे नहीं था वह रहता कैसे ? यह तन·····अपराध = यह मिट्टी का शरीर पंख लगाकर क्यों नहीं जा सकता, इसने क्या अपराध किया है ? (२२) बेधिया = बेध करनेवाला अंकुश। ओहि = उसका। दिया चित भएउ = वह तुम्हारा चित्र था जो नाग के सामने दीपक के समान तेज-हीन हो गया। मति कीज = ऐसी सलाह या युक्ति कीजिए। अलक·····रस लीज = साँप की तरह जो लटे है उन्हें पकड़कर अधर रस लीजिए ( राजा को पकड़ने का इशारा करता है )।

## (४७) रत्नसेन-बंधन-खंड

मीत भै मोंगा वेगि विवोंनू। चला सूर, सँवरा अस्थानू॥
चलत पंथ राखा जौ पाऊ। कहाँ रहै थिर चलत बटाऊ॥
पंथी कहाँ कहाँ सुसताई। पंथ चलै तब पंथ सेराई॥
छर कीजै बर जहाँ न आँटा। लोजै फूल टारिकै काँटा॥
बहुत मया सुनि राजा फूला। चला साथ पहुँचावै भूला॥
साह हेतु राजा सौं बाँधा। बातन्ह लाइ लीन्ह, गहि काँधा॥
घिउ मधु सानि दीन्ह रस सोई। जो मुह मीठ, पेट बिष होई॥

अमिय-बचन औ माया को न मुएउ रस-भीज ?।
सत्रु मरै जौ अमृत, कित ता कहँ विप दीज ?॥ १॥

चाँद घरहि जौ सूरुज आवा। होइ सो अलोप अमावस पावा॥
पूछहि नखत मलीन सो मोती। सोरह कला न एकौ जोती॥
चाँद क गहन अगाह जनावा। राज भूल गहि साह चलावा॥
पहिलौ पँवरि नाँघि जौ आवा। ठाढ़ होइ राजहि पहिरावा॥
सौ तुपार, तेइस गज पावा। दुंदुभि औ चौघड़ा दियावा॥
दूजी पँवरि दीन्ह असवारा। तीजि पंवरि नग दीन्ह अपारा॥
चौथि पँवरि देइ दरव करोरी। पँचईं दुइ हीरा कै जोरी॥

छठईं पँवरि देइ माँडौ, सतईं दीन्ह चँदेरि।
सात पँवरि नाँघत नृपहि लेइगा बाँधि गरेरि॥ २॥

---

( १ ) मीत भै = मित्र से ('भै' के इस प्रयोग पर नोट दिया जा चुका है)। सेराई = समाप्त होता है। छर = छल। बर = बल। न आँटा = नही पूरा पड़ता है। हेतु = प्रेम। घिउ मधु = कहते है, घी और शहद बराबर मिलाने से विष हो जाता है। मुँह = मुँह मे। पेट = पेट मे। ( २ ) चाँद = पद्मावती। सूरुज = बादशाह। नखत = अर्थात् पद्मावती की सखियाँ। अगाह = आगे से, पहले से। राज भूल = राजा भूला हुआ है। पहिरावा = राजा को खिलअत पहनाई। चौघड़ा = एक प्रकार का बाजा। माँड़ौ = माँड़ौगढ। चँदेरि = चँदेरी का राज्य। गरेरि = घेरकर।

एहि जग बहुत नदी-जल जूड़ा। कोउ पार भा, कोऊ बूड़ा॥
कोउ अंध भा आगु न देखा। कोउ भएउ डिठियार सरेखा॥
राजा कहँ बियाध भइ माया। तजि कबिलास धरा भुइँ पाया॥
जेहि कारन गढ़ कीन्ह अगोठी। कित छाँड़ै जौ आवै मूठी?॥
सत्रुहि कोउ पाव जौ बाँधी। छोड़ि आपु कहँ करै बियाधी॥
चारा मेलि धरा जस माछू। जल हुँत निकसि मुवै कित काछू?॥
सत्रू नाग पेटारी मूँदा। बाँधा मिरिग पैग नहि खूँदा॥
राजहि धरा, आनि कै तन पहिरावा लोह।
ऐस लोह सो पहिरै चीत सामि कै दोह॥ ३॥

पायँन्ह गाढ़ी बेड़ी परी। साँकर गीउ, हाथ हथकरी॥
औ धरि बाँधि मँजूपा मेला। ऐस सत्रु जिनि होइ दुहेला!॥
सुनि चितउर महँ परा बखाना। देस देस चारिउ दिसि जाना॥
आजु नरायन फिरि जग खूँदा। आजु सो सिघ मंजूपा मूँदा॥
आजु खसे रावन दस माथा। आजु कान्ह कालीफन नाथा॥
आजु परान कंस कर ढीला। आजु मीन संखासुर लीला॥
आजु परे पंडव बदि माहाँ। आजु दुसासन उतरी बाहाँ॥
आजु धरा बलि राजा, मेला बाँधि पतार।
आजु सूर दिन अथवा, भा चितउर अँधियार॥ ४॥
देव सुलैमाँ के बँदि परा। जह लगि देव सबै सत-हरा॥

---

(३) एहि जग.....जूडा = (यह ससार समुद्र है) इसमे बहुत सी नदियों का जल इकट्ठा हुआ है, अर्थात् इसमे बहुत तरह के लोग है। आगु = आगम। डिठियार = दृष्टिवाला। सरेखा = चतुर। तजि कबिलास...पाया = किले से नीचे उतरा; सुख के स्थान से दुःख के स्थान मे गिरा। अगोठी = अगोठा, छेका, घेरा। जल हुँत.....काछू = वही कछुवा है जो जल से नहीं निकलता और नहीं मरता। सत्रू.....मूँदा = शत्रु रूपी नाग को पेटारी मे बंद कर लिया। पैग नहीं खूँदा = एक कदम भी नहीं कूदता। चीत सामि कै दोह = जो स्वामी का द्रोह मन में बिचारता है। (४) ऐसे सत्रु.....दुहेला = शत्रु भी ऐसे दुख मे न पडे। बखाना = चर्चा। जग खूँदा = संसार मे आकर कूदे। मूँदा = बद किया। मीन = मत्स्य अवतार। पंडव = पाडव। (५) देव = (क) राजा; (ख) दैत्य। सुलेमाँ = यहूदियो के बादशाह सुलेमान ने देवो और परियो को वश मे किया था। बँदि परा = कैद मे पडा। सत-हरा = सत्य छोड़े हुए, बिना सत्य के।

साहि लीन्ह गहि कीन्ह पयाना। जो जहँ सत्रु सो तहाँ बिलाना॥
खुरासान औ डरा हरेऊ। काँपा बिदर, धरा अस देऊ!॥
बाँधौ, देवगिरि, धौलागिरी। काँपी सिस्टि, दोहाई फिरी॥
उवा सूर, भइ सामुहँ करा। पाला फूट, पानि होइ ढरा॥
दुंदुहि डाँड़ दीन्ह, जहँ ताईं। आइ दंडवत कीन्ह सवाईं॥
दुंद डाँड़ सब सरगहि गई। भूमि जो डोली अहथिर भई॥

बादशाह दिल्ली महँ, आइ बैठ सुख-पाट।
जेइ जेइ सीस उठावा धरती धरा लिलाट॥ ५॥

हबसी बँदवाना जिउ-बधा। तेहि सौंपा राजा अगिदधा॥
पानि पवन कहँ आस करेई। सो जिउ-बधिक साँस भर देई॥
माँगत पानि आगि लेइ धावा। मुँगरी एक आनि सिर लावा॥
पानि पवन तुइ पिया सो पीया। अब को आनि देइ पानीया?॥
तब चितउर जिउ रहा न तोरे। बादसाह है सिर पर मोरे॥
जबहि हँकारै है उठि चलना। सकती करै होइ कर मलना॥
करै सो मीत गाढ़ बँदि जहाँ। पान फूल पहुँचावै तहाँ॥

जब अंजल मुँह, सोवा; समुद न सँवरा जागि।
अब धरि काढ़ि मच्छ जिमि, पानी माँगति आगि॥ ६॥

पुनि चलि दुइ जन पूछै आए। ओउ सुठि दगध आइ देखराए॥
तुइ मरपुरी न कबहूँ देखी। हाड़ जो बिथुरै देखि न लेखी॥
जाना नहि कि होब अस महूँ। खोजे खोज न पाउब कहूँ॥
अब हम्ह उतर देहु, रे देवा। कौने गरब न मानेसि सेवा?॥
तोहि अस बहुत गाड़ि खनि मूदे। बहुरि न निकसि बार होइ खूँदे॥

---

धरा अस देऊ = कि ऐसे बड़े राजा को पकड़ लिया। दुंदुहि = दुंदुभी या नगाड़े पर। डाँड़ दीन्ह = डंडा या चोट मारी। (६) बँदवाना = बंदीगृह का रक्षक, दारोगा। जिउ-बधा = बधिक, जल्लाद। अगिदधा = आग से जले हुए। साँस भर = साँस भर रहने के लिये। पानीया = पानी। जिउ रहा = जी में यह बात नहीं रही कि। सकती = बल। जब अंजल मुँह सोवा = जब तक अन्न-जल मुँह मे पडता रहा तब तक तो सोया किया। (७) मरपुरी = यमपुरी। हाड़ जो...लेखी = बिखरी हुई हड्डियो को देखकर भी तुझे उसका चेत न हुआ। महूँ = मै भी। खोज = पता। बार होइ खूँदे = अपने द्वार पर पैर न रखा।

जो जस हँसा तो तैसे रोवा। खेलत हँसत अभय भुइं सोवा॥
जस अपने मुह काढ़े धूवाँ। मेलेसि आनि नरक के कूआँ॥
जरसि मरसि अब बाँधा तैस लाग तोहि दोख।
अबहूँ माँगु पदमिनी, जौ चाहसि भा मोख॥ ७॥

पूछहि बहुत, न बोला राजा। लीन्हेसि जोउ मीचु कर साजा*॥
खनि गड़वा चरनन्ह देइ राखा। नित उठि दगध होहिं नौ लाखा॥
ठाँव सो साँकर औ अँधियारा। दूसर करवट लेइ न पारा॥
बीछी साँप आनि तहँ मेला। बाँका आइ छुआवहि हेला॥
धरहि सँड़ासन्ह, छूटै नारी। राति-दिवस दुख पहुँचै भारी॥
जो दुख कठिन न सहै पहारू। सो अँगवा मानुप-सिर भारू॥
जो सिर परै आइ सो सहै। किछु न बसाइ, काह सौ कहै?॥
दुख जारै, दुख भूँजै, दुख खोवै सब लाज।
गाजहु चाहि अधिक दुख, दुखी जान जेहि बाज॥ ८॥

---

धूवाँ = गर्व या क्रोध की बात। तस = ऐसा। माँग = बुला भेज।

* पाठांतर—पूछहिं बहुत न राजा बोला। दिहे केवार, न कैसेहु खोला॥

(८) गड़वा = गड्ढा। चरनन्ह देइ राखा = पैरों को गड्ढे मे गाड़ दिया। बाँका = धरकारों का टेढ़ा औजार जिससे वे बाँस छीलते हैं। हेला = डोम। सँड़ास = सँसी, जिससे पकड़कर गरम बटलोई उतारते है। गाजहु चाहि = बज्र से भी बढ़कर। बाज = पड़ता है।

## (४८) पद्मावती-नागमती-विलाप-खंड

पदमावति बिनु कंत दुहेली। बिनु जल कँवल सूखि जस बेली॥
गाढ़ी प्रीति सो मोसौं लाए। दिल्ली कंत निचित होइ छाए॥
सो दिल्ली अस निबहुर देसू। कोइ न बहुरा कहै सँदेसू॥
जो गवनै सो तहाँ कर होई। जो आवै किछु जान न सोई॥
अगम पंथ पिय तहाँ सिधावा। जो रे गएउ सो बहुरि न आवा॥
कुवाँ धार जल जैस बिछोवा। डोल भरे नैनन्ह धनि रोवा॥
लेजुरि भई नाह बिनु तोही। कुवाँ परी, धरि काढ़सि मोहीं॥

नैन डोल भरि ढारै, हिये न आगि बुझाइ।
घरी घरी जिउ आवै, घरी घरी जिउ जाइ॥ १॥

नीर गँभीर कहाँ, हो पीया। तुम्ह बिनु फाटै सरवर-हीया॥
गएहु हेराइ, परेहु केहि हाथा?। चलत सरोवर लीन्ह न साथा॥
चरत जो पंखि केलि कै नीरा। नीर घटे कोइ आव न तीरा॥
कँवल सूख, पखुरी बेहरानी। गलि गलि कै मिलि छार हेरानी॥
बिरह-रेत कंचन तन लावा। चून चून कै खेह मेरावा॥
कनक जो कन कन होइ बेहराई। पिय कहँ? छार समेटै आई॥
बिरह पवन वह छार सरीरू। छारहि आनि मेरावहु नीरू॥

अबहुँ जियावहु कै मया, बिथुरी छार समेट।
नइ काया, अवतार नव होइ तुम्हारे भेंट॥ २॥

नैन-सीप, मोती भरि आँसू। टुटि टुटि परहिं, करहि तन नासू॥
पदिक पदारथ पदमिनि नारी। पिय बिनु भइ कौड़ी बर बारी॥
सँग लेइ गएउ रतन सब जोती। कंचन-कया काँच कै पोती॥
बूड़ति हौं दुख-दगध गँभीरा। तुम बिनु, कंत! लाव को तीरा?॥

---

(१) निबहुर = जहाँ से कोई न लौटे (स्त्रियाँ निबहुरा कहकर गाली भी देती है)। लेजुरि = रस्सी, डोरी (रज्जु का मागधी रूप)। (२) बह = बहता है, उड़ा उड़ा फिरता है। छारहि ····नीरू = तुम जल होकर धूल के कणों को मिलाकर फिर शरीर दो। (३) पोती = गुरिया।

हिये बिरह होइ चढ़ा पहारू। चल जोबन सहि सकै न भारू॥
जल महँ अगिनि सो जान बिछूना। पाहन जरहिं, होहि सब चूना॥
कौने जतन, कंत! तुम्ह पावौं। आजु आगि हौं जरत बुझावौं॥
कौन खंड हौं हेरौं, कहाँ बंधे हौ, नाह।
हेरे कतहुँ न पावौं, बसै तु हिरदय माहँ॥ ३॥
नागमतिहि 'पिय पिय' रट लागी। निसि दिन तपै मच्छ जिमि आगी॥
भँवर, भुजंग कहाँ, हो पिया। हम ठेघा, तुम्ह कान न किया॥
भूलि न जाहि कवल के पाहाँ। बाँधत बिलँब न लागै नाहा॥
कहाँ सो सूर पास हौं जाऊँ। बाँधा भँवर छोरि कै लाऊँ॥
कहाँ जाउँ, को कहै सँदेसा?। जाउँ सो तहँ जोगिन के भेसा॥
फारि पटोरहि, पहिरौं कंथा। जौ मोहिं कोउ देखावै पंथा॥
वह पथ पलकन्ह जाइ बोहारौं। सीस चरन कै तहाँ सिधारौं॥
को गुरु अगुवा होइ, सखि! मोहि लावै पथ माँह।
तन मन धन बलि बलि करौं जो रे मिलावै नाह॥ ४॥
कै कै कारन रोवै बाला। जनु टूटहि मोतिन्ह कै माला॥
रोवति भई, न साँस सँभारा। नैन चुवहिं जस ओरति-धारा॥
जाकर रतन परै पर हाथा। सो अनाथ किमि जीवै, नाथा!॥
पाँच रतन ओहि रतनहि लागे। बेगि आउ, पिय रतन सभागे!॥
रही न जोति नैन भए खीने। स्रवन न सुनौं, बैन तुम लीने॥
रसनहिं रस नहि एकौ भावा। नासिक और बास नहि आवा॥
तचि तचि तुम्ह बिनु अंग मोहि लागे। पाँचौ दगधि बिरह अब जागे॥
बिरह सो जारि भसम कै, चहै उड़ावा खेह।
आइ जो धनि पिय मेरवै, करि सो देइ नइ देह॥ ५॥

---

चल = चंचल, अस्थिर। बिछूना = बिछोह। जल महँ ..... बिछूना = वियोग को जल में की आग समझो, जिससे पत्थर के टुकड़े पिघलकर चूना हो जाते हैं (चूने के कड़े टुकड़ों पर पानी पड़ते ही वे गरम होकर गल जाते हैं)। (४) आगी = आग में। ठेघा = सहारा या आश्रय लिया। सूर = भौंरे का प्रतिद्वंद्वी सूर्य्य। बोहारौं = झाड़ू लगाऊँ। सीस चरन कै = सिर को पैर बनाकर अर्थात् सिर के बल चलकर। (५) कारन = कारुण्य, करुणा, विलाप (अवधी)। ओरति = ओलती। पाँच रतन = पाँचों इंद्रियाँ। ओहि रतनहि लागे = उस रत्नसेन की ओर लगे हैं। तचि तचि = जल जलकर, तपते से। पाँचौ = पाँचो इंद्रियाँ।

पिय विनु व्याकुल बिलपै नागा। बिरहा-तपनि साम भए कागा॥
पवन पानि कहँ सीतल पीऊ?। जेहि देखे पलुहै तन जीऊ॥
कहँ सो बास मलयगिरि नाहा। जेहि कल परति देत गल बाहाँ॥
पदमिनि ठगिनि भई कित साथा। जेहिं तें रतन परा पर-हाथा॥
होइ बसंत आवहु पिय केसरि। देखे फिर फूलै नागेसरि॥
तुम्ह विनु, नाह! रहै हिय तचा। अब नहिं बिरह-गरुड़ सौं बचा॥
अब अँधियार परा, मसि लागी। तुम्ह विनु कौन बुझावै आगी?॥
नैन, स्रवन, रस रसना सबै खीन भए, नाह।
कौन सो दिन जेहि भेंटि कै, आइ करै सुख-छाँह॥ ६॥

---

(६) नागा = नागमती। गरुड़ = गरुड़ जो नाग (यहाँ नागमती) का शत्रु है।

## (४६) देवपाल-दूती-खंड

कुभलनेर - राय देवपालू। राजा केर सत्रु हिय - सालू॥
वह पै सुना कि राजा बाँधा। पाछिल वैर सँवरि छर साधा॥
सत्रु-साल तव नेवरै सोई। जौ घर आव सत्रु कै जोई॥
दूती एक विरिध तेहि ठाऊँ। वाम्हनि जाति, कुमोदिनि नाऊँ॥
ओहि हँकारि कै बीरा दीन्हा। तोरे वर मै वर जिउ कीन्हा॥
तुइ जो कुमोदिनि कँवल के नियरे। सरग जो चाँद बसै तोहि हियरे॥
चितउर महँ जो पदमिनि रानी। कर वर छर सौं दे मोहिं आनी॥

रूप जगत-मन-मोहन औ पदमावति नावँ।
कोटि दरव तोहि देइहौं, आनि करसि एहि ठावँ॥ १॥

कुमुदिनि कहा 'देखु, हौं सो हौं। मानुप काह, देवता मोहौं॥
जस काँवरू चमारिनि लोना। को नहिं छर पाढ़त कै टोना॥
विसहर नाचहिं पाढ़त मारे। औ धरि मूदहि घालि पेटारे॥
विरिछ चलै पाढ़त कै बोला। नदी उलटि वह, परवत डोला॥
पढ़त हरै पंडित मन गहिरे। और को अंध, गूँग औ बहिरे॥
पाढ़त ऐस देवतन्ह लागा। मानुप कहँ पाढ़त सौं भागा?॥
चढ़ि अकास कै काढ़त पानी। कहाँ जाइ पदमावति रानी'॥

दूती बहुत पैज कै बोली पाढ़त बोल।
जाकर सत्त सुमेरु है, लागे जगत न डोल॥ २॥

---

(१) राजा केर = राजा रत्नसेन का। हिय-साल = हृदय मे कसकने-वाला। पै = निश्चय। छर = छल। सत्रु-साल तव नेवरै = शत्रु के मन की कसर तब पूरी पूरी निकलती है। नेवरै = पूरी होती है। जोइ = जोय, स्त्री। (२) का नहिं छर = कौन नहीं छला गया? पाढत कै = पढ़ते हुए। पाढ़त = पढंत, मत्र जो पढ़ा जाता है, टोना, मंत्र, जादू। भागा = बचकर जा सकता है। पैज = प्रतिज्ञा।

दूती बहुत पकावन साधे। मोतिलाडू औ खरौरा बाँधे॥
माठ, पिराकै, फेनी, पापर। पहिरे बूझि दूति के कापर॥
लेइ पूरी भरि डाल अछूती। चितउर चली पैज कै दूती॥
विरिध बैस जौ बाँधे पाऊ। कहाँ सो जोवन, कित बेवसाऊ?॥
तन बूढ़ा, मन बूढ़ न होई। बल न रहा, पै लालच सोई॥
कहाँ सो रूप जगत सब राता। कहाँ सो गरब हस्ति जस माता॥
कहाँ सो तीख नयन, तन ठाढ़ा। सबै मारि जोबन-पन काढ़ा॥

मुहमद बिरधि जो नइ चलै, काह चलै भुइँ टोइ।
जोबन-रतन हेरान है, मकु धरती महँ होइ॥ ३॥

आइ कुमोदिनि चितउर चढ़ी। जोहन-मोहन पाढ़त पढ़ी॥
पूछि लीन्ह रनिवास बरोठा। पैठी पँवरी भीतर कोठा॥
जहाँ पदमिनी ससि उजियारी। लेइ दूती पकवान उतारी॥
हाथ पसारि धाइ कै भेंटी। "चीन्हा नहिं, राजा कै बेटी?॥
हौ बाम्हनि जेहि कुमुदिनि नाऊँ। हम तुम उपने एकै ठाऊँ॥
नावँ पिता कर दूबे बेनी। सोइ पुरोहित गंधरबसेनी॥
तुम बारी तब सिंघलदीपा। लीन्हे दूध पियाइउँ सीपा॥

ठाँव कीन्ह मै दूसर कुँभलनेरै आइ।
सुनि तुम्ह कहँ चितउर महँ,कहिउँ कि भेंटौं जाइ"॥ ४॥

सुनि निसचै नैहर कै कोई। गरे लागि पदमावति रोई॥
नैन-गगन रबि बिनु अँधियारे। ससि-मुख आँसु टूट जनु तारे॥
जग अँधियार गहन धनि परा। कब लगि ससि नखतन्ह निसि भरा॥

---

(३) पकावन = पकवान। साधे = बनवाए। खरौरा = खँडौरा, खाँड़ या मिस्री के लड्डू। बूझि = खूब सोच-समझकर। कापर = कपड़े। डाल = डला या बड़ा थाल। जौ बाँधे पाऊ = जब पैर बाँध दिए अर्थात् बेबस कर दिया। बेवसाऊ = व्यवसाय, रोजगार। तन ठाढ़ा = तनी हुई देह। (४) जोहन-मोहन = देखते ही मोहनेवाला। बरोठा = बैठकखाना। चीन्हा नहि = क्या नहीं पहचाना? जेहि = जिसका। उपने = उत्पन्न हुए। लीन्हे = गोद मे लिए। सीपा = सीप मे रखकर; शुक्ति मे। (इधर स्त्रियाँ छोटे बच्चों को ताल की सीपों में रखकर दूध पिलाती हैं क्योंकि उसका आकार चम्मच का सा होता है।) (५) नैहर = मायका; पीहर। नैन-गगन = गगन-नयन, नेत्र-रूपी आकाश।

माय बाप कित जनमी बारी। गीउ तूरि कित जनम न मारी ?॥
कित बियाहि दुख दीन्ह दुहेला। चितउर पंथ कंत बँदि मेला॥
अब एहि जियन चाहि भल मरना। भएउ पहार जनम दुख भरना॥
निकसि न जाइ निलज यह जीऊ। देखौं मंदिर सून बिनु पीऊ॥

कुहुकि जो रोई ससि नखत नैन है रात चकोर।
अबहूँ बोलै तेहि कुहुक कोकिल, चातक, मोर॥ ५॥

कुमुदिनि कंठ लागि सुठि रोई। पुनि लेइ रूप-डार मुख धोई॥
तुइ ससि-रूप जगत उजियारी। मुख न झाँपु निसि होइ अँधियारी॥
सुनि चकोर-कोकिल-दुख दुखी। घुँघची भई नैन करमुखी॥
केतौ धाइ मरै कोइ बाटा। सोइ पाव जो लिखा लिलाटा॥
जो बिधि लिखा आन नहि होई। कित धावै, कित रोवै कोई॥
कित कोउ हीछ करै औ पूजा। जो बिधि लिखा होइ नहि दूजा॥
जेतिक कुमुदिनि बैन करेई। तस पदमावति स्रवन न देई॥

सेदुर चीर मैल तस, सूखि रही जस फूल।
जेहि सिंगार पिय तजिगा जनम न पहिरै भूल॥ ६॥

तब पकवान उघारा दूती। पदमावति नहि छुवै अछूती॥
मोहि अपने पिय केर खभारू। पान फूल कस होइ अहारू ?॥
मोकहँ फूल भए सब काँटै। बाँटि देहु जौ चाहहु बाँटै॥
रतन छुवा जिन्ह हाथन्ह सेंती। और न छुवौ सो हाथ सँकेती॥
ओहि के रंग भा हाथ मँजीठी। मुकुता लेउँ तौ घुँघची दीठी॥

---

जनमी = जनी, पैदा की। बारी = लड़की। तूरि = तोड़कर, मरोड़कर। जनम = जन्मकाल मे ही। कंत बँदि = पति की कैद मे। जियन चाहि = जीने की अपेक्षा। कुहुकि = कूककर। तेहि कुहुक = उसी कूक से, उसी कूक को लेकर। (६) सुठि = खूब। रूप-डार = चांदी का थाल या परात। केतौ = कितना ही। हीछ = इच्छा। बैन करेई = बकवाद करती है। भूल = भूल, भूलकर भी। (७) उघारा = खोला। खभारू = खभार, शोक। हाथन्ह सेंती = हाथों से। हाँथ सँकेती = हाथ से बटोरकर। मुकुता लेउँ...दीठी = हाथ मे मोती लेते ही हाथों की ललाई से (जो रत्नसेन-रूपी रत्न या माणिक्य के स्पर्श के प्रभाव से है) वह लाल हो जाता है; फिर जब उसकी ओर देखती हूँ तब पुतली की छाया पड़ने से उसके ऊपर काला दाग भी दिखाई देने लगता है, इस प्रकार वह मोती घुँघची दिखाई पड़ता है अर्थात् उसका कुछ भी मूल्य

नैन करमुहें, राती काया। मोति होहिं घुँघची जेहि छाया॥
अस कै ओछ नैन हत्यारे। देखत गा पिउ, गहै न पारे॥
का तोर छुवौ पकवान, गुड़ करुवा, घिउ रूख।
जेहि मिलि होत सवाद रस, लेइ सो गएउ पिउ भूख॥ ७॥

कुमुदिनि रही कँवल के पासा। बैरी सूर, चाँद कै आसा॥
दिन कुंभिलानि रही, भइ चूरू। बिगसि रैनि बातन्ह कर भूरू॥
कस तुइ, बारि! रहसि कुँभलानी। सूखि वेलि जस पाव न पानी॥
अबही कँवल-करी तुइँ बारी। कोवँरि बैस, उठत पौनारी॥
बेनी तोरि मेलि औ रूखी। सरवर माहँ रहसि कस सूखी?॥
पान-बेलि बिधि कया जमाई। सींचत रहै तवहि पलुहाई॥
करु सिगार सुख फूल तमोरा। बैठु सिंघासन, मूलु हिडोरा॥
हार चीर निति पहिरहु, सिर कर करहु सँभार।
भोग मानि लेहु दिन दस, जोवन जात न बार॥ ८॥

बिहँसि जो जोवन कुमुदिनि कहा। कँवल न बिगसा, संपुट रहा॥
ए कुमुदिनि! जोबन तेहि माहाँ। जो आछै पिउ के सुख-छाहाँ॥
जाकर छत्र सो बाहर छावा। सो उजार घर कौन बसावा?॥
अहा न राजा रतन अँजोरा। केहिक सिंघासन, केहिक पटोरा?॥
को पालक पौढ़ै, को माढ़ी?। सोवनहार परा बँदि गाढ़ी॥
चहुँ दिसि यह घर भा अँधियारा। सब सिगार लेइ साथ सिधारा॥
कया वेलि तब जानौ जामी। सींचनहार आव घर स्वामी॥
तौ लहि रहौ झुरानी जौ लहि आव सो कंत।
एहि फूल, एहि सेंदुर नव होइ उठै बसंत॥ ९॥

जिनि तुइ, बारि! करसि अस जीऊ। जौ लहि जोबन तौ लहि पीऊ॥
पुरुष संग आपन केहि केरा। एक कोहाँइ, दुसर सहुँ हेरा॥

---

मुझे नहीं मालूम होता। राती = लाल। छाया = लाल और काली छाया से। (८) कँवल = अर्थात् पद्मावती। बैरी सूर···आसा = कुमुदिनी का बैरी सूर्य है और वह कुमुदिनी चंद्र की आशा मे है अर्थात् उस दूती का रत्नसेन शत्रु है और वह दूती पद्मावती को प्राप्त करने की आशा मे है। बिगसि रैनि···भूरू = रत्नसेन के अभावरूपी रात मे विकसित या प्रसन्न होकर बातो से भुलाया चाहती है। रहसि = तू रहती है। कोवँरि = कोमल। पौनारि = मृणाल। बार = देर। (९) अँजोरा = प्रकाशवाला। माढी = मच, मचिया। बँदि = बंदी मे। एहि फूल = इसी फूल से। (१०) कोहाँइ = रूठती है। सहुँ = सामने।

जोवन-जल दिन दिन जस घटा। भँवर छपान, हंस परगटा॥
सुभर सरोवर जौ लहि नीरा। बहु आदर, पंखी बहु तीरा॥
नीर घटे पुनि पूछ न कोई। बिरसि जो लीज हाथ रह सोई॥
जौ लगि कालिंदी, होहि बिरासी। पुनि सुरसरि होइ समुद परासी॥
जोवन भवँर, फूल तन तोरा। बिरिध पहुँचि जस हाथ मरोरा॥

कुस्न जो जोवन कारनै गोपीतन्ह के साथ।
छरि कै जाइहि बानपै, धनुक रहै तोरे हाथ॥ १०॥

जौ पिउ रतन सेन मोर राजा। बिनु पिउ जोवन कौने काजा?॥
जौ पै जिउ तौ जोबन कहे। बिनु जिउ जोवन काह सो अहे?॥
जौ जिउ तौ यह जोवन भला। आपन जैस करै निरमला॥
कुल कर पुरुप-सिंघ जेहि खेरा। तेहि थर कैस-सियार बसेरा?॥
हिया फार कूकुर तेहि केरा। सिंघहि तजि सियार-मुख हेरा॥
जोवन-नीर घटे का घटा?। सत्त के वर जौ नहिं हिय फटा॥
सघन मेघ होइ साम बरीसहिं। जोबन नव तरिवर होइ दीसहि॥

रावन पाप जो जिउ धरा दुवौ जगत मुहँ कार।
राम सत्त जो मन धरा, ताहि छरै को पार?॥ ११॥

---

भँवर = (क) पानी का भँवर; (ख) भौंरे के समान काले केश। भँवर छपान... परगटा = पानी का भँवर गया और हंस आया (जल की बरसाती बाढ़ हट जाने पर शरत् मे हंस आ जाते है) अर्थात् काले केश न रह गए, सफेद बाल हुए। बिरसि जो लीज = जो बिलस लीजिए, जो बिलास कर लीजिए। जौ लगि कालिंदि.... परासी = जब तक कालिंदी या जमुना है बिलास कर ले फिर तो गगा मे मिलकर, गगा होकर, समुद्र मे दौड़कर जाना ही पड़ेगा, अर्थात् जब तक काले बालो का यौवन है तब तक बिलास कर ले फिर तो सफेद बालोवाला बुढापा आवेगा और मृत्यु की ओर झटपट ले जायगा। बिरासी = बिलासी। परासी = तू भागती है अर्थात् भागेगी। (१०) जोवन भँवर.... तोरा = इस समय जोवनरूपी भौंरा (काले केश) है और फूल सा तेरा शरीर है। बिरिध = वृद्धावस्था। हाथ मरोरा = इस फूल को हाथ से मल देगा। बान = (क) तीर; (ख) वर्ण, कांति। धनुक = टेढ़ी कमर। (११) आपन जैस = अपने ऐसा। खेरा = घर, बस्ती। थर = स्थल, जगह। फार = फाडे। सत्य के..... फटा = यदि सत्त के बल से हृदय न फटे अर्थात् प्रीति मे अन्तर न पड़े (पानी घटने से ताल की जमीन मे दरारें पड़ जाती है)। छरै को पार = कौन छल सकता है।

कित पावसि पुनि जोवन राता। मैमँत, चढ़ा साम सिर छाता॥
जोवन बिना बिरिध होइ नाऊँ। बिनु जोवन थाकै सब ठाऊँ॥
जोवन हेरत मिलै न हेरा। सो जौ जाइ, करै नहि फेरा॥
है जो केस नग भँवर जो बसा। पुनि बग होहिं, जगत सब हँसा॥
सेवर सेव न चित करु सूआ। पुनि पछितासि अंत जब भूआ॥
रूप तोर जग ऊपर लोना। यह जोवन पाहुन चल होना॥
भोग बिलास केरि यह बेरा। मानि लेहु, पुनि को केहि केरा?॥

उठत कोप जस तरिवर तस जोवन तोहि रात।
तौ लगि रंग लेहु रचि, पुनि सो पियर होइ पात॥ १२॥

कुमुदिनि-बैन सुनत हिय जरी। पदमिनि-उरहि आगि जनु परी॥
रँग ताकर हौं जारौं काँचा। आपन तजि जो पराएहि राँचा॥
दूसर करै जाइ दुइ बाटा। राजा दुइ न होहि एक पाटा॥
जेहि के जीउ प्रीति दिढ़ होई। मुख सोहाग सौं बैठे सोई॥
जोवन जाउ, जाउ सो भँवरा। पिय कै प्रीति न जाइ, जो सँवरा॥
एहि जग जौ पिउ करहिं न फेरा। ओहि जग मिलहि जौ दिनदिनहेरा॥
जोवन मोर रतन जहँ पीऊ। वलि तेहि पिउ पर जोवन जीऊ॥

भरथरि बिछुरि पिंगला आहि करत जिउ दीन्ह।
हौं पापिनि जो जियत हौं, इहै दोप हम कीन्ह॥ १३॥

पदमावति! सो कौन रसोई। जेहि परकार न दूसर होई॥
रस दूसर जेहि जीभ बईठा। सो जानै रस खाटा मीठा॥
भँवर बास बहु फूलन्ह लेई। फूल बास बहु भँवरन्ह देई॥
दूसर पुरुष न रस तुइ पावा। तिन्ह जाना जिन्ह लीन्ह परावा॥

---

(१२) राता = ललित। साम सिर छाता = अर्थात् काले केश। थाकै = थक जाता है। बग = बगलों के समान श्वेत। चल होना = चल देनेवाला है। कोप = कोपल, कल्ला। रँग लेहु रचि = (क) रंग लो, (ख) भोग-विलास कर लो। (१३) काँचा = कच्चा। राँचा = अनुरक्त हुआ। जाइ दुइ बाटा = दुर्गति को प्राप्त होता है। जाउ = चाहे चला जाय। भँवरा = काले केश। जो सँवरा = जिसका स्मरण किया करती हूँ। जौ दिन दिन हेरा = यदि लगातार ढूंढती रहूँगी। (१४) कौनि रसोई = किस काम की रसोई है? जेहि परकार... होई = जिसमे दूसरा प्रकार न हो, जो एक ही प्रकार की हो। दूसर पुरुष = दूसरे पुरुष का।

एक चुल्लू रस भरै न हीया। जौ लहि नहिं फिर दूसर पीया॥
तोर जोवन जस समुद हिलोरा। देखि देखि जिउ बूड़ै मोरा॥
रंग और नहि पाइय वैसे। जरे मरे विनु पाउब कैसे?॥

देखि धनुक तोर नैना, मोहि लाग विष-बान।
विहँसि कँवल जो मानै, भँवर मिलावौं आन॥१४॥

कुमुदिनि! तुइ वैरिनि, नहिं धाई। तुइ मसि बोलि चढ़ावसि आई॥
निरमल जगत नीर कर नामा। जौ मसि परै होइ सो सामा॥
जहँवा धरम पाप नहिं दीसा। कनक सोहाग माँझ जस सीसा॥
जो मसि परे होइ ससि कारी। सो मसि लाइ देसि मोहि गारी॥
कापर महँ न छूट मसि-अंकू। सो मसि लेइ मोहि देसि कलंकू॥
साम भँवर मोर सूरुज-करा। और जो भँवर साम मसि-भरा॥
कँवल भवरि-रवि देखै आँखी। चंदन-वास न बैठै माखी॥

साम समुद मोर निरमल रतनसेन जगसेन।
दूसर सरि जो कहावै सो विलाइ जस फेन॥१५॥

पदमिनि! पुनि मसि बोल न बैना। सो मसि देखु दुहूँ तोरे नैना॥
मसि सिगार, काजर सब बोला। मसि क बुंद तिल सोह कपोला॥
लोना सोइ जहाँ मसि-रेखा। मसि पुतरिन्ह तिन्हसौं जग देखा॥
जो मसि घालि नयन दुहुँ लीन्ही। सो मसि फेरि जाइ नहि कीन्ही॥
मसि-मुद्रा दुइ कुच उपराहीं। मसि भँवरा जे कवल भँवाहीं॥
मसि केसहि, मसि भौंह उरेही। मसि विनु दसन सोह नहि देही॥
सो कस सेत जहाँ मसि नाहीं?। सो कस पिंड न जेहि परछाहीं?॥

अस देवपाल राय मसि, छत्र धरा सिर फेर।
चितउर राज बिसरिगा गएउ जो कुंभलनेर॥१६॥

---

वैसे = बैठे रहने से, उद्योग न करने से। आन = दूसरा। (१५) धाई = धाय, धात्री। मसि चढ़ावसि = मेरे ऊपर तू स्याही पोतती है। जस सीसा = जैसे सीसा नहीं दिखाई पड़ता है। लाइ = लगाकर। कापर = कपड़ा। सरि = (क) बराबरी का; (ख) नदी। (१६) घालि लीन्ही = डाल रखी है। मुद्रा = मुहर। उपराही = ऊपर। भँवाहीं = घूमते है। कँवल = कमल को, कमल के चारो ओर। सो कस···नाहीं = ऐसी सफेदी कहाँ जहाँ स्याही नहीं, अर्थात् स्याही के भाव के बिना सफेदी की भावना हो ही नहीं सकती। पिंड = साकार वस्तु या शरीर। जेहि = जिसमे।

सुनि देवपाल जो कुंभलनेरी। पंकजनैन भौंह-धनु फेरी॥
सत्रु मोरे पिउ कर देवपालू। सो कित पूज सिंघ सरि भालू?॥
दुःख-भरा तन जेत न केसा। तेहि का सँदेस सुनावसि, वेसा?॥
सोन नदी अस मोर पिउ गरुवा। पाहन होइ परै जौ हरुवा॥
जेहि ऊपर अस गरुवा पीऊ। सो कस डोलाए डोलै जीऊ?॥
फेरत नैन चेरि सौ छूटीं। भइ कूटन कुटनी तस कूटीं॥
नाक-कान काटेन्हि, मसि लाई। मूँड़ मूँड़ि कै गदहे चढ़ाई॥
मुहमद विधि जेहि गरु गढ़ा का कोई तेहि फूँक।
जेहि के भार जग थिर रहा, उड़ै न पवन के झूँक॥१७॥

---

(१७) भौंह धनु फेरी = क्रोध से टेढ़ी भौं की। सरि पूज = बराबरी को पहुँच सकता है। दुःख-भरा तन··· केसा = शरीर में जितने रोयें या बाल नहीं उतने दुःख भरे हुए हैं। सोन नदी···गरुवा = महाभारत मे शिला नाम की एक ऐसी नदी का उल्लेख है जिसमें कोई हलकी चीज डाल दी जाय तो भी डूब जाती है और पत्थर हो जाती है (मेगस्थिनीज ने भी ऐसा ही लिखा है। गढ़वाल के कुछ सोतो के पानी में इतना रेत और चूना रहता है कि पड़ी हुई लकड़ी पर क्रमशः जमकर उसे पत्थर के रूप मे कर देता है)। पाहन होइ···हरुवा = हलकी वस्तु भी हो तो उसमे पड़ने पर पत्थर हो जाती है। चेरि = दासियाँ। छूटीं = दौड़ीं। कूटन = कुटाई, प्रहार। कुटनी = कुट्टिनी, दूती। झूँक = झोंका।

## (५०) बादशाह-दूती-खंड

रानी धरमसार पुनि साजा। बंदि मोख जेहि पावहिं राजा॥
जावत परदेसी चलि आवहिं। अन्नदान औ पानी पावहिं॥
जोगि जती आवहि जत कंथी। पूछै पियहि, जान कोइ पंथी॥
दान जो देत बाहँ भइ ऊँची। जाइ साह पहँ बात पहूँची॥
पातुरि एक हुति जोगि-सवाँगी। साह अखारे हुँत ओहि माँगी॥
जोगिनि-भेस बियोगिनि कीन्हा। सींगी-सबद मूल तँत लीन्हा॥
पदमिनि पहँ पठई करि जोगिनि। वेगि आनु करि बिरह-बियोगिनि॥

चतुर कला मनमोहन, परकाया-परवेस।
आइ चढ़ी चितउरगढ़ होइ जोगिनि के भेस॥१॥

माँगत राजदुवार चलि आई। भीतर चेरिन्ह बात जनाई॥
जोगिनि एक बार है कोई। माँगै जैसि बियोगिनि सोई॥
आवहीं नव जोवन तप लीन्हा। फारि पटोरहि कंथा कीन्हा॥
बिरह-भभूत, जटा बैरागी। छाला काँध, जाप कँठलागी॥
मुद्रा स्रवन, नाहिं थिर जीऊ। तन तिरसूल, अधारी पीऊ॥
छात न छाहँ, धूप जनु मरई। पावँ न पवरी, भूभुर जरई॥
सिंगी सबद, धँधारी करा। जरै सो ठाँव पावँ जहँ धरा॥

किंगरी गहे बियोग बजावै, बारहि बार सुनाव।
नयन चक्र चारिउ दिसि (हेरहि), दहुँ दरसन कब पाव॥२॥

सुनि पदमावति मँदिर बोलाई। पूछा "कौन देस ते आई?॥

---

(१) धरमसार = धर्मशाला, सदाव्रत, खैरातखाना। मोख पावहि = छूटे। जत = जितने। हुती = थी। जोगि-सवाँगी = जोगिन का स्वाँग बनानेवाली। अखारे हुँत = रंगशाला से, नाचघर से। माँगी = बुला भेजा। तँत = तत्त्व। कला मनमोहन = मन मोहने की कला मे। (२) राजदुवार = राजद्वार। बार = द्वार। तन तिरसूल...पीऊ = सारा शरीर ही त्रिशूलमय हो गया है और अधारी के स्थान पर प्रिय ही है अर्थात् उसी का सहारा है। पवँरी = चट्टी या खड़ाऊँ। भूभुर = धूप से तपी धूल या बालू। धँधारी = गोरखधधा।

तरुन बैस तोहि छाज न जोगू। केहि कारन अस कीन्ह वियोगू?" ॥
कहेसि विरह-दुख जान न कोई। बिरहिन जान विरह जेहि होई ॥
कंत हमार गएउ परदेसा। तेहि कारन हम जोगिनि भेसा ॥
काकर जिउ, जोवन औ देहा। जौ पिउ गएउ, भएउ सब खेहा ॥
फारि पटोर कीन्ह मैं कंथा। जहँ पिउ मिलहिं लेउँ सो पंथा ॥
फिरौं, करौं चहुँ चक्र पुकारा। जटा परी, का सीस सँभारा ? ॥

हिरदय भीतर पिउ बसै, मिलै न पूछौं काहि ?
सून जगत सब लागै, ओहि विनु किछु नहि आहि ॥ ३ ॥

स्रवन छेद महँ मुद्रा मेला। सबद ओनाउँ कहाँ पिउ खेला ॥
तेहि वियोग सिंगी निति पूरौं। बार बार किंगरी लेइ झूरौं ॥
को मोहि लेइ पिउ कंठ लगावै। परम अधारी बात जनावै ॥
पाँवरि टूटि चलत, पर छाला। मन न मरै, तन जोवन बाला ॥
गइउँ पयाग, मिला नहि पीऊ। करवत लीन्ह, दीन्ह बलि जीऊ ॥
जाइ बनारस जारिउँ कया। पारिउ पिंड नहाइउँ गया ॥
जगन्नाथ जगरन कै आई। पुनि दुवारिका जाइ नहाई ॥

जाइ केदार दाग तन, तहँ न मिला तिन्ह आँक।
ढूँढ़ि अजोध्या आइउँ सरग दुवारी झाँक ॥४॥

गउमुख हरिद्वार फिर कीन्हिउँ। नगरकोट कटि रसना दीन्हिउँ ॥
ढूँढ़िउँ बालनाथ कर टीला। मथुरा मथिउँ, न सो पिउ मीला ॥

---

(३) छाज न = नहीं सोहता। खेहा = धूल, मिट्टी। चहुँ चक्र = पृथ्वी के चारों खूँट मे। आहि = है। (४) ओनाउँ = झुकती हूँ, झुककर कान लगाती हूँ। सबद ओनाउँ...खेला = आहट लेने के लिए कान लगाए रहती हूँ कि प्रिय कहाँ गया। झूरौं = सूखती हूँ। अधारी = सहारा देनेवाली। पर = पड़ता है। बाला = नवीन। जगरन = जागरण। दाग = दागा, तप्त मुद्रा ली। तिन्ह = उस प्रिय का। आँक = चिह्न, पता। सरगदुवारी = अयोध्या मे एक स्थान। (५) गउमुख = गोमुख तीर्थ, गंगोत्तरी का वह स्थान जहाँ से गगा निकलती है। नगरकोट = नागरकोट, जहाँ देवी का स्थान है। कटि रसना दीन्हिउँ = जीभ काटकर चढाई। बालनाथ कर टीला = पंजाब में सिंध और झेलम के बीच पड़नेवाले नमक के पहाड़ो की एक चोटी। मीला = मिला।

सुरुजकुंड महँ जारिउँ देहा। बद्री मिला न जासौ नेहा॥
रामकुंड, गोमति, गुरुद्वारू। दाहिनवरत कीन्ह कै वारू॥
सेतुबन्ध, कैलास, सुमेरू। गइउँ अलकपुर जहाँ कुवेरू॥
बरम्हावरत ब्रह्मावति परसी। बेनी-संगम सीझिउँ करसी॥
नीमषार मिसरिख कुरुछेता। गोरखनाथ अस्थान समेता॥
पटना पुरुब सो घर घर हाँड़ि फिरिउँ संसार।
हेरत कहूँ न पिउ मिला, ना कोइ मिलवनहार॥ ५॥
बन बन सब हेरेउँ नव खंडा। जल जल नदी अठारह गंडा॥
चौंसठ तीरथ के सब ठाऊँ। लेत फिरिउँ ओहि पिउ कर नाऊँ॥
दिल्ली सब देखिउँ तुरकानू। औ सुलतान केर बँदिखानू॥
रतनसेन देखिउँ बँदि माहाँ। जरै धूप, खन पाव न छाहाँ॥
सब राजहि बाँधे औ दागे। जोगिनि जान राज पग लागे॥
का सो भोग जेहि अंत न केऊ। यह दुख लेइ सो गएउ सुखदेऊ॥
दिल्ली नावँ न जानहु ढीली। सुठि बँदि गाढ़ि, निकस नहिं कीली॥
देखि दगध दुख ताकर अबहुँ कया नहिं जीउ।
सो धनि कैसे दहुँ जियै जाकर बँदि अस पीउ?॥ ६॥
पदमावति जौ सुना बँदि पीऊ। परा अगिनि महँ मानहुँ घीऊ॥
दौरि पायँ जोगिनि के परी। उठी आगि अस जोगिनि जरी॥
पायँ देहि, दुइ नैनन्ह लाऊँ। लेइ चलु तहाँ कंत जेहि ठाऊँ॥
जिन्ह नैनन्ह तुइ देखा पीऊ। मोहिं देखाउ, देहुँ बलि जीऊ॥
सत औ धरम देहुँ सब तोही। पिउ कै बात कहै जौ मोहीं॥
तुइ मोर गुरू, तोरि हौं चेली। भूली फिरत पंथ जेहि मेली॥

---

सुरुजकुंड = अयोध्या, हरिद्वार आदि कई तीर्थों मे इस नाम के कुंड हैं। बद्री = बदरिकाश्रम मे। कै बारू = कई बार। अलकपुर = अलकापुरी। ब्रम्हावति = कोई नदी। भरसी = करीषाग्नि मे; उपले की आग मे। हाँड़ि फिरिउँ = छान डाला, ढूँढ़ डाला, टटोल डाला। (६) राज पग लागे = राजा ने प्रणाम किया। न केऊ = पास मे कोई न रह जाय। (यह दुख) लेइ गएउ = लेने या भोगने गया। सुखदेऊ = सुख देनेवाला तुम्हारा प्रिय। दिल्ली नावँ = दिल्ली या ढिल्ली इस नाम से (पृथ्वीराज रासो मे किल्ली ढिल्ली कथा है)। सुठि = खूब। कीली = कारागार के द्वार का अर्गल। अबहुँ कया नहि जीउ = अब भी मेरे होश ठिकाने नही।

दंड एक माया करु मोरे। जोगिन होउँ, चलौं सँग तोरे॥
सखिन्ह कहा, सुनु रानी करहु न परगट भेस।
जोगी जोगवै गुपुत मन लेइ गुरु कर उपदेस॥ ७॥
भीख लेहु, जोगिनि! फिरि माँगू। कंत न पाइय किए सवाँगू॥
यह बड़ जोग बियोग जो सहना। जेहुँ पीउ राखै तेहुँ रहना॥
घर ही महँ रहु भई उदासा। अँजुरी खप्पर, सिंगी साँसा॥
रहै प्रेम मन अरुझा गटा। बिरह धँधारि, अलक सिर जटा॥
नैन चक्र हेरै पिउ-पंथा। कया जो कापर सोई कंथा॥
छाला भूमि, गगन सिर छाता। रंग करत रह हिरदय राता॥
मन-माला फेरै तँत ओही। पाँचौ भूत भसम तन होही॥
कुंडल सोइ, सुनु पिउ-कथा, पँवरि पाँव पर रेहु।
दंडक गोरा बादलहि जाइ अधारी लेहु॥ ८॥

---

(७) माया = मया, दया। (८) फिरि माँगू = जाओ, और जगह घूमकर माँगो। सवाँग = स्वाँग, नकल, आडबर। यह बड़ ....सहना = वियोग का जो सहना है यही बडा भारी योग है। जेहुँ = जैसे, ज्यो, जिस प्रकार। तेहुँ = त्यो, उस प्रकार। सिंगी साँसा = लंबी साँस लेने को ही सिंगी फूँकना (बजाना) समझो। गटा = गटरमाला। रहै प्रेम..गटा—जिसमे उलझा हुआ मन है उसी प्रेम को गटरमाला समझो। छाला = मृगछाला। तँत = तंत, तत्त्व या मत्र। पाँचौ भूत..होही = शरीर के पचभूतो को ही रमी हुई भभूत या भस्म समझो। पँवरि पाँच पर रेहु = पाँव पर जो धूल लगे उसी को खड़ाऊँ समझ। अधारी = अड्डे के आकार की लकड़ी जिसे सहारे के लिये साधु रखते है। अधारी लेहु = सहारा लो।

## (५१) पद्मावती-गोरा-बादल-संवाद-खंड

सखिन्ह बुझाई दगध अपारा। गइ गोरा बादल के बारा॥
चरन-कँवल भुइँ जनम न धरे। जात तहाँ लगि छाला परे॥
निसरि आए छत्री सुनि दोऊ। तस काँपे जस काँप न कोऊ॥
केस छोरि चरनन्ह-रज झारा। कहाँ पार्व पदमावति धारा?॥
राखा आनि पाट सोनवानी। बिरह-बियोगिनि बैठी रानी॥
दोउ ठाढ़ होइ चँवर डोलावहिं। "माथे छात, रजायसु पावहिं॥
उलटि वहा गंगा कर पानी। सेवक-बार आइ जो रानी॥
का अस कस्ट कीन्ह तुम्ह,जो तुम्ह करत न छाज।
अज्ञा होइ वेगि सो, जीउ तुम्हारे काज"॥ १॥
कही रोइ पदमावति बाता। नैनन्ह रकत दीख जग राता॥
उलथ समुद जस मानिक-भरे। रोइसि रुहिर-आँसु तस ढरे॥
रतन के रंग नैन पै वारौं। रती रती कै लोहू ढारौं॥
भँवरा ऊपर कँवल भवावौं। लेइ चलु तहाँ सूर जहँ पावौं॥
हिय कै हरदि, वदन कै लोहू। जिउ वलि देउँ सो संवरि बिछोहू॥
परहिं आँसु जस सावन-नीरू। हरियरि भूमि, कुसुंभी चीरू॥
चढ़ी भुअंगिनि लट लट केसा। भइ रोवति जोगिन के भेसा॥
बीर बहूटी भइ चली, तवहुँ रहहि नहिं आँसु।
नैनहि पंथ न सूझै, लागेउ भादौ मासु॥ २॥

---

(१) बारा = द्वार पर। काँपे = चौंक पड़े। सोनवानी = सुनहरी। माथे छात = आपके माथे पर सदा छत्र बना रहे! बार = द्वार पर। का = क्या। तुम्ह न छाज = तुम्हे नहीं सोहता। (२) दीख = दिखाई पड़ा। राता = लाल। उलथ = उमड़ता है। रुहिर = रुधिर। रग = रंग पर। पै = अवश्य; निश्चय। भँवरा = रत्नसेन। कँवल = नेत्र (पद्मिनी के)। हरदि = कमल के भीतर छाते का रंग पीला होता है। वदन कै लोहू = कमल के दल का रग रक्त होता है।

तुम गोरा बादल खँभ दोऊ। जस रन पारथ और न कोऊ॥
दुख बरखा अब रहै न राखा। मूल पतार, सरग भइ साखा॥
छाया रही सकल महि पूरी। बिरह-बेलि भइ बाढ़ि खजूरी॥
तेहि दुख लेत बिरिछ बन बाढ़े। सीस उघारे रोवहिं ठाढ़े॥
पुहुमि पूरि, सायर दुःख पाटा। कौड़ी केर बेहरि हिय फाटा॥
बेहरा हिये खजूर क बिया। बेहर नाहि मोर पाहन-हिया॥
पिय जेहि बंदि जोगिनि होइ धावौं। हौं बँदि लेउँ, पियहि मुकरावौं॥

सूरुज गहन-गरासा, कँवल न बैठे पाट।
महूँ पंथ तेहि गवनब, कंत गए जेहि बाट॥ ३॥

गोरा बादल दोउ पसीजे। रोवत रुहिर बूड़ि तन भीजे॥
हम राजा सौं इहै कोहाँने। तुम न मिलौ, धरिहैं तुरकाने॥
जो मति सुनि हम गये कोहाँई। सो निआन हम्ह माथे आई॥
जौ लगि जिउ, नहिं भागहिं दोऊ। स्वामि जियत कित जोगिनि होऊ॥
उए अगस्त हस्ति जब गाजा। नीर घटे घर आइहि राजा॥
बरषा गए, अगस्त जौ दीठिहि। परिहि पलानि तुरंगम पीठिहि॥
बेधौं राहु, छोड़ावहुँ सूरू। रहै न दुख कर मूल अँकूरू॥

सोइ सूर, तुम ससहर, आनि मिलावौं सोइ।
तस दुख महँ सुख उपजै, रैनि माहँ दिनि होइ॥ ४॥

लीन्ह पान बादल औ गोरा। "केहि लेइ देउँ उपम तुम्ह जोरा?॥
तुम सावंत, न सरवरि कोऊ। तुम्ह हनुवंत अँगद सम दोऊ॥
तुम अरजुन औ भीम भुवारा। तुम बल रन-दल-मंडनहारा॥

---

(३) खँभ = खंभे, राज्य के आधार स्वरूप। पारथ = पार्थ, अर्जुन। बरखा = वर्षा मे। तेहि दुख लेत·····बाढे = उसी दुःख की बाढ़ को लेकर जंगल के पेड़ बढकर इतने ऊँचे हुए हैं। बेहरि = विदीर्ण होकर। जेहि बँदि = जिस बंदीगृह मे। मुकरावौं = मुक्त कराऊँ, छुड़ाऊँ। (४) तुरकान = मुसल मान लोग। उए अगस्त = अगस्त्य के उदय होने पर, शरत् आने पर। हस्ति जब गाजा = हाथी चढाई पर गरजेंगे; या हस्त नक्षत्र गरजेगा। आइहि = आवेगा। दीठिहि = दिखाई देगा। परिहि पलानि·····पीठिहि = घोड़ों की पीठ पर जीन पडेगी, चढ़ाई के लिये घोड़े कसे जायँगे। अँकूरू = अँकुर। ससहर = शशधर, चद्रमा। (५) लीन्ह पान = बीड़ा लिया, प्रतिज्ञा की। केहि··· जोरा = यहाँ से पद्मावती के वचन हैं। सावंत = सामंत। भुवारा = भूपाल।

तुम टारन भारन्ह जग जाने। तुम सुपुरुष जस करन बखाने॥
तुम बलबीर जैस जगदेऊ। तुम संकर औ मालकदेऊ॥
तुम अस मोरे बादल गोरा। काकर मुख हेरौं, बँदिछोरा?॥
जस हनुवँत राघव बँदि छोरी। तस तुम छोरि मेरावहु जोरी॥
जैसे जरत लखाघर, साहस कीन्हा भीउँ।
जरत खंभ तस काढ़हु, कै पुरुषारथ जीउ॥ ५॥
राम लखन तुम दैत-सँघारा। तुमहीं घर बलभद्र भुवारा॥
तुमही द्रोन और गंगेऊ। तुम्ह लेखौं जैसे सहदेऊ॥
तुमहिं युधिष्ठिर औ दुरजोधन। तुमहिं नील नल दोउ संबोधन॥
परसुराम राघव तुम जोधा। तुम्ह परतिज्ञा तें हिय बोधा॥
तुमहिं सत्रुहन भरत कुमारा। तुमहिं कृस्न चानूर सँघारा॥
तुम परदुम्न औ अनिरुध दोऊ। तुम अभिमन्यु बोल सब कोऊ॥
तुम्ह सरि पूज न बिक्रम साके। तुम हमीर हरिचँद सत आँके॥
जस अति संकट पंडवन्ह भएउ भीवँ बँदि छोर।
तस परबस पिउ काढ़हु, राखि लेहु भ्रम मोर"॥ ६॥
गोरा बादल बीरा लीन्हा। जस हनुवँत अंगद बर कीन्हा॥
सजहु सिंघासन, तानहु छातू। तुम्ह माथे जुग जुग अहिवातू॥
कँवल-चरन भुइँ धरि दुख पावहु। चढ़ि सिंघासन मँदिर सिधावहु॥
सुनतहि सूर कँवल हिय जागा। केसरि-बरन फूल हिय लागा॥
जनु निसि महँ दिन दीन्ह देखाई। भा उदोत, मसि गई बिलाई॥
चढ़ी सिंघासन झमकति चली। जानहुँ चाँद दुइज निरमली॥
औ संग सखी कुमोद तराईं। ढारत चवर मँदिर लेइ आईं॥
देखि दुइज सिंघासन संकर धरा लिलाट।
कँवल-चरन पदमावति लेइ बैठारी पाट॥ ७॥

---

टारन भारन्ह = भार हटानेवाले। करन = कर्ण। मालकदेऊ = मालदेव (?)। बँदिछोर = बंधन छुड़ानेवाले। लखाघर = लाक्षागृह। खभ = राज्य का स्तंभ, रत्नसेन। (६) दैत सँघारा = दैत्यों का सहार करनेवाले। गंगेऊ = गांगेय, भीष्म पितामह। तुम्ह लेखौं = तुमको समझती हूँ। संबोधन = ढाढस देनेवाले। तुम्ह परतिज्ञा = तुम्हारी प्रतिज्ञा से। बोधा = प्रबोध, तसल्ली। सत आँके = सत्य की रेखा खींची है। भ्रम = प्रतिष्ठा, सम्मान। (७) बर = बल। अहिवातू = सौभाग्य सोहाग। उदोत = प्रकाश। देखि दुइज ··· लिलाट = दूज के चद्रमा को देख उसे बैठने के लिये शिवजी ने अपना ललाट-रूपी सिंहासन रखा अर्थात् अपने मस्तक पर रखा।

# (५२) गोरा-बादल-युद्ध-यात्रा-खंड

बादल केरि जसोवै माया। आइ गहेसि बादल कर पाया॥
बादल राय! मोर तुइ बारा। का जानसि कस होइ जुझारा॥
बादसाह पुहुमी-पति राजा। सनमुख होइ न हमीरहि छाजा॥
छत्तिस लाख तुरय दर साजहिं। बीस सहस हस्ती रन गाजहिं॥
जवहीं आइ चढ़ै दल ठटा। दीखत जैसि गगन घन-घटा॥
चमकहि खड्ग जो बीजु समाना। घुमरहिं गलगाजहिं नीसाना॥
बरिसहि सेल बान घनघोरा। धीरज धीर न बाँधिहि तोरा॥
जहाँ दलपती दलि मरहि, तहाँ तोर का काज?।
आजु गवन तोर आवै, बैठि मानु सुख राज॥ १॥
मातु! न जानसि बालक आदी। हौं बादला सिंघ रनवादी॥
सुनि गज-जूह अधिक जिउ तपा। सिंघ क जाति रहै किमि छपा?॥
तौ लगि गाज, न गाज सिंघेला। सौंह साह सौं जुरौं अकेला॥
को मोहिं सौंह होइ मैमंता। फारौं सूँड़, उखारौं दंता॥
जुरौं स्वामि-सँकरे जस ढारा। पेलौं जस दुरजोधन भारा॥
अंगद कोपि पाँव जस राखा। टेकौं कटक छतीसौ लाखा॥
हनुवंत सरिस जंघ बर जोरौं। दहौं समुद्र, स्वामि-बँदि छोरौं॥
सो तुम, मातु जसोवै! मोहि न जानहु बार।
जहँ राजा बलि बाँधा छोरौं पैठि पतार॥ २॥
बादल गवन जूझ कर साजा। तैसेहि गवन आइ घर बाजा॥

---

(१) जसोवै = यह 'यशोदा' शब्द का प्राकृत या अपभ्रंश रूप है। पाया = पैर। जुझारा = युद्ध। ठटा = समूह बाँधकर। (२) आदी = नितांत, बिलकुल। सिंघेला = सिंह का बच्चा। मैमंता = मस्त हाथी। स्वामि सँकरे = स्वामी के संकट के समय में। जस ढारा = ढाल के समान होकर। पेलौं = जोर से चलाऊँ। भारा = भाला। टेकौं = रोक लूँ। जब बर जोरौं = जाँघों में बल लाऊँ। बार = बालक। (३) जूझ = युद्ध। गवन = वधू का प्रथम प्रवेश।

का बरनौं गवने कर चारू। चंद्रबदनि रचि कीन्ह सिंगारू॥
माँग मोति भरि सेंदुर पूरा। बैठ मयूर, बाँक तस जूरा॥
भौंहैं धनुक टकोरि परीखे। काजर नैन, सार सर तीखे॥
घालि कचपची टीका सजा। तिलक जो देख ठाँव जिउ तजा॥
मनि-कुंडल डोलैं दुइ स्रवना। सीस धुनहि सुनि सुनि पिउगवना॥
नागिनि अलक, झलक उर हारू। भएउ सिंगार कंत बिनु भारू॥

गवन जो आवा पँवरि महँ, पिउ गवने परदेस।
सखी बुझावहिं किमि अनल, बुझै सो केहि उपदेस? ॥३॥

मानि गवन सो घूँघुट काढ़ी। बिनवै आइ बार भइ ठाढ़ी॥
तीखे हेरि चीर गहि ओढ़ा। कंत न हेर, कीन्ह जिउ पोढ़ा॥
तब धनि बिहँसि कीन्हि सहुँ दीठी। बादल ओहि दीन्हि फिरि पीठी॥
मुख फिराइ मन अपने रीसा। चलत न तिरिया कर मुख दीसा॥
भा मिन-मेप नारि के लेखे। कस पिउ पीठि दीन्हि मोहिं देखे॥
मकु पिउ दिस्टि समानेउ सालू। हुलसी पीठि कढ़ावौं फालू॥
कुच तूँबी अब पीठि गड़ोवौं। गहै जो हूकि, गाढ़ रस धोवौं॥

रहौं लजाइ त पिउ चलै, गहौं त कह मोहि ढीठ।
ठाढ़ि तेवानि कि का करौं, दूभर दुओ बईठ॥ ४॥

लाज किए जौं पिउ नहिं पावौं। तजौं लाज कर जोरि मनावौं॥
करि हठ कंत जाइ जेहि लाजा। घूँघुट लाज आव केहि काजा॥
तब धनि बिहँसि कहा गहि फेटा। नारि जो बिनवै कंत न मेटा॥

---

चारू = रीति व्यवहार। बाँक = बाँका, सुंदर। जूरा = बँधी हुई चोटी का गुच्छा। टकोरि = टंकार देकर। परीखे = परीक्षा की, आजमाया। घालि = डालकर, लगाकर। कचपची = कृत्तिका नक्षत्र; यहाँ चमकी। (४) बार = द्वार। हेर = ताकता है। पोढा = कड़ा। मिन-मेप = आगा-पीछा, सोच-विचार। मकु·····सालू = शायद मेरी तीखी दृष्टि का साल उसके हृदय मे पैठ गया है। हुलसी····फालू = वह साल पीठ की ओर हुलसकर जा निकला है इससे मै वह गड़ा हुआ तीर का फल निकलवा दूँ। कुच तूँबी···गड़ोवौं = जैसे धँसे हुए काँटे आदि को तूँबी लगाकर निकालते हैं वैसे ही अपनी कुच रूपी तूँबी जरा पीठ में लगाऊँ। गहै जो···धोवौं = पीड़ा से चौंककर जब वह मुझे पकड़े तब मै गाढ़े रस से उसे धो डालूँ अर्थात् रसमग्न कर दूँ। तेवानि = चिंता मे पड़ी हुई। दुओ = दोनो बातें।

आजु गवन हौं आई, नाहाँ ! तुम न, कंत ! गवनहु रन माहाँ ॥
गवन आव धनि मिलै के ताईं । कौन गवन जौ बिछुरै साईं ॥
धनि न नैन भरि देखा पीऊ । पिउ न मिला धनि सौं भरि जीऊ ॥
जहँ अस आस-भरा है केवा । भँवर न तजै बास-रसलेवा ॥

पायँन्ह धरा लिलाट धनि, बिनय सुनहु, हो राय !
अलक परी फँदवार होइ, कैसेहु तजै न पाय ॥ ५ ॥

छाँड़ु फेंट धनि ! बादल कहा । पुरुप-गवन धनि फेंट न गहा ॥
जौ तुइ गवन आइ, गजगामी ! गवन मोर जहँवाँ मोर स्वामी ॥
जौ लगि राजा छूटि न आवा । भावै बीर, सिंगार न भावा ॥
तिरिया भूमि खड़ग कै चेरी । जीत जो खड़ग होइ तेहि केरी ॥
जेहि घर खड़ग मोछ तेहि गाढ़ी । जहाँ न खड़ग मोछ नहि दाढ़ी ॥
तब मुहँ मोंछ, जीउ पर खेलौ । स्वामि-काज इंद्रासन पेलौ ॥
पुरुप बोलि कै टरै न पाछू । दसन गयंद, गीउ नहिं काछू ॥

तुइ अबला, धनि ! कुबुधि-बुधि,जानै काह जुझार ।
जेहि पुरुपहि हिय बीर रस, भावै तेहिं न सिंगार ॥ ६ ॥

जौ तुम चहहु जूझि, पिउ ! बाजा । कीन्ह सिंगार-जूझ मैं साजा ॥
जोवन आइ सौंह होइ रोपा । बिखरा बिरह, काम-दल कोपा ॥
बहेउ बीररस सेंदुर माँगा । राता रुहिर खड़ग जस नाँगा ॥
भौंहे धनुक नैन-सर साधे । काजर पनच, बरुनि बिप-बाँधे ॥
जनु कटाछ स्यो सान सँवारे । नखसिख बान सेल अनियारे ॥
अलक फाँस गिउ मेल असूझा । अधर अधर सौं चाहहि जूझा ॥
कुंभस्थल कुच दोउ मैमंता । पैलौ सौंह, सँभारहु, कंता ! ॥

कोप सिंगार, बिरह-दल टूटि होइ दुइ आध ।
पहिले मोहि संग्राम कै करहु जूझ कै साध ॥ ७ ॥

---

( ५ ) मिलै के ताईं = मिलने के लिये । फँदवार = फंदा । ( ६ ) पुरुष-गवन = पुरुप के चलते समय । बीर = वीर रस । मोछ = मूँछे । दसन गयद··· काछू = वह हाथी के दाँत के समान है ( जो निकलकर पीछे नहीं जाते ) कछुए की गर्दन के समान नहीं, जो जरा सी आहट पाकर पीछे घुस जाता है । ( ७ ) बाजा चहहु = लड़ा चाहते हो । पनच = धनुष की डोरी । अनियारे = नुकीले, तीखे । कोप = कोपा है । मोहिं = मुझ से ।

एकौ विनति न मानै नाहाँ। आगि परी चित उर धनि माहाँ॥
उठा जो धूम नैन करुवाने। लागे परै आँसु झहराने॥
भीजे हार, चीर, हिय चोली। रही अछूत कंत नहि खोली॥
भीजी अलक छुए कटि-मंडन। भीजे कवल भँवर सिर-फुंदन॥
चुइ चुइ काजर आँचर भीजा। तबहुँ न पिउ कर रोवँ पसीजा॥
जौ तुम कंत! जूझ जिउ काँधा। तुम किय साहस, मै सत बाँधा❀॥
रन संग्राम जूझि जिति आवहु। लाज होइ जौ पीठि देखावहु॥
तुम्ह पिउ साहस बाँधा, मै दिय माँग सेंदूर।
दोउ सँभारे होइ सँग, बाजै मादर तूर॥८॥

---

(८) चित उर = (क) मन और हृदय मे, (ख) चित्तौर। आगि परी... माहाँ = इस पंक्ति में कवि ने आगे चलकर चित्तौर की स्त्रियों के सती होने का संकेत भी किया है। करुवाने = कड़वे धुएँ से दुखने लगे। कटिमंडन = कर धनी। फुंदन = चोटी का फुलरा।

❀ कई प्रतियों में यह पाठ है—

छाड़ि चला, हिरदय देइ दाहू। निठुर नाह आपन नहिं काहू॥
सबै सिंगार भीजि भुइँ चूवा। छार मिलाइ कंत नहि छूवा॥
रोए कंत न बहुरै, तेहि रोए का काज?
कत धरा मन जूझ रन, धनि साजा सर साज॥

# (५३) गोरा-बादल-युद्ध-खंड

मतैं बैठि बादल औ गोरा। सो मत कीज परै नहिं भोरा॥
पुरुष न करहि नारि-मति काँची। जस नौशावा कीन्ह न बाँची॥
परा हाथ इसकंदर बैरी। सो कित छोड़ि कै भई बँदेरी?॥
सुबुधि सौ ससा सिंघ कहँ मारा। कुबुधि सिंघ कूआँ परि हारा॥
देवहि छरा आइ अस आँटी। सज्जन कंचन, दुर्जन माटी॥
कंचन जुरै भए दस खंडा। फूटि न मिलै काँच कर भंडा॥
जस तुरकन्ह राजा छर साजा। तस हम साजि छोड़ावहि राजा॥
पुरुष तहाँ पै करै छर जहँ बर किए न आँट।
जहाँ फूल तहँ फूल है, जहाँ काँट तहँ काँट॥१॥
सोरह सै चंडोल सँवारे। कुँवर सजोइल कै बैठारे॥
पदमावति कर सजा बिवानू। बैठ लोहार न जानै भानू॥
रचि बिवान सो साजि सँवारा। चहुँ दिसि चँवर करहिं सब ढारा॥
साजि सबै चंडोल चलाए। सुरँग ओहार, मोति बहु लाए॥
भए सँग गोरा बादल बली। कहत चले पदमावति चली॥
हीरा रतन पदारथ मूलहिं। देखि बिवान देवता भूलहिं॥
सोरह सै संग चली सहेली। कवल न रहा, और को बेली?॥

---

(१) मतै = सलाह करते है। कीज = कीजिए। नौशावा = सिकंदरनामा के अनुसार एक रानी जिसके यहाँ सिकंदर पहले दूत बन कर गया था। उसने सिकदर को पहचान कर भी छोड दिया। पीछे सिकदर ने उसे अपना अधीन मित्र बनाया और उसने बड़ी धूमधाम से सिकंदर की दावत की। देवहि छरा = राजा को उसने (अलाउद्दीन ने) छला। आइ अस आँटी = इस प्रकार आटी पर चढकर अर्थात् कब्जे मे आकर भी। भंडा = भाँड़ा, बरतन। न आँट = नहीं पार पा सकते। (२) चंडोल = पालकी। कुँवर = राजपूत सरदार। सजोइल = हथियारो से तैयार। बैठ लोहार···भानू = पद्मावती के लिये जो पालकी बनी थी उसके भीतर एक लुहार बैठा, इस बात का सूर्य्य को भी पता न लगा। ओहार = पालकी ढाँकने का परदा। कँवल···बेली = जब पद्मावती

राजहि चलौं छोड़ावै तहं रानी होइ ओल।
तीस सहस तुरि खिंची सँग, सौरह सै चंडोल ॥२॥

राजा बेदि जेहि के सौंपना। गा गोरा तेहि पहं अगमना॥
टका लाख दस दीन्ह अँकोरा। बिनती कीन्हि पायँ गहि गोरा॥
बिनवा बादसाह सौं जाई। अब रानी पदमावति आई॥
बिनती करै आइ हौं दिल्ली। चितउर कै मोहि स्यो है किल्ली॥
बिनती करै, जहाँ है पूजी। सब भँडार कै मोहि स्यो कूजी॥
एक घरी जौ अज्ञा पावौं। राजहि सौंपि मँदिर महँ आवौं॥
तब रखवार गए सुलतानी। देखि अँकोर भए जस पानी॥

लीन्ह अँकोर हाथ जेहि, जीउ दीन्ह तेहि हाथ।
जहाँ चलावै तहँ चलै, फेरे फिरै न माथ ॥३॥

लोभ पाप कै नदी अँकोरा। सत्त न रहै हाथ जौ बोरा॥
जहं अँकोर तहँ नीक न राजू। ठाकुर केर बिनासै काजू॥
भा जिउ घिउ रखवारन्ह केरा। दरब-लोभ चंडोल न हेरा॥
जाइ साह आगे सिर नावा। ए जगसूर! चाँद चलि आवा॥
जावत हैं सब नखत तराई। सोरह सै चँडोल सो आई॥
चितउर जेति राज कै पूँजी। लेइ सो आइ पदमावति कूँजी॥
बिनती करै जोरि कर खरी। लेइ सौंपौ राजा एक घरी॥

इहाँ उहाँ कर स्वामी! दुऔ जगत मोहिं आस।
पहिले दरस देखावहु तौ पठवहु कबिलास ॥४॥

आज्ञा भई, जाइ एक घरी। छूँछि जो घरी फेरि बिधि भरी॥
चलि बिवान राजा पहँ आवा। सँग चंडोल जगत सब छावा॥

---

ही नहीं रही तब और सखियों का क्या? ओल होइ = ओल होकर, इस शर्त पर बादशाह के यहाँ रहने जाकर कि राजा छोड़ दिए जायँ (कोई व्यक्ति जमानत के तौर पर यदि रख लिया जाता है तो उसे ओल कहते है)। तुरि = घोड़ियाँ। (३) सौंपना = देखरेख मे, सुपुर्दगी में। अगमना = आगे, पहले। अँकोर = भेंट, घूस, रिशवत। स्यो = साथ, पास। किल्ली = कुंजी। पानी भए = नरम हो गए। हाथ जेहि = जिसके हाथ से। (४) घिउ भा = पिघलकर नरम हो गया। न हेरा = तलाशी नहीं ली, जाँच नहीं की। इहाँ उहाँ कर स्वामी = मेरा पति राजा। कबिलास = स्वर्ग, यहाँ शाही महल। (५) छूँछि ··· भरी = जो बड़ा खाली था ईश्वर ने फिर भरा, अर्थात् अच्छी

पदमावति के भेस लोहारू। निकसि काटि बेंदि कीन्ह जोहारू॥
उठा कोपि जस छूटा राजा। चढ़ा तुरंग, सिंघ अस गाजा॥
गोरा बादल खाँड़ै काढ़े। निकसि कुँवर चढ़ि चढ़ि भए ठाढ़े॥
तीख तुरंग गगन सिर लागा। केहुँ जुगुति करि टेकी बागा॥
जो जिउ ऊपर खड़ग सँभारा। मरनहार सो सहसन्ह मारा॥

भई पुकार साह सौं, ससि औ नखत सो नाहि।
छरकै गहन गरासा, गहन गरासे जाहिं॥५॥

लेइ राजा चितउर कहँ चले। छूटेउ सिंघ, मिरिग खलभले॥
चढ़ा साहि, चढ़ि लागि गोहारी। कटक असूझ परी जग कारी॥
फिरि गोरा बादल सौं कहा। गहन छूटि पुनि चाहै गहा॥
चहुँ दिसि आवै लोपत भानू। अब इहै गोइ, इहै मैदानू॥
तुइ अब राजहि लेइ चलु गोरा। हौं अब उलटि जुरौं भा जोरा॥
वह चौगान तुरुक कस खेला। होइ खेलार रन जुरौं अकेला॥
तौ पावौं बादल अस नाऊँ। जौ मैदान गोइ लेइ जाऊँ॥

आजु खड़ग चौगान गहि करौं सीस-रिपु गोइ।
खेलौं सौह साह सौं, हाल जगत महँ होइ॥६॥

तब अगमन होइ गोरा मिला। तुइ राजहि लेइ चलु, बादला!॥
पिता मरै जो सँकरे साथा। मीचु न देइ पूत के माथा॥
मै अब आउ भरी औ भूँजी। का पछिताव आउ जौ पूजी?॥
बहुतन्ह मारि मरौं जौ जूझी। तुम जिनि रोएहु तौ मन बूझी॥
कुँवर सहस सँग गोरा लीन्हे। और बीर बादल सँग कीन्हे॥
गोरहि समदि मेघ अस गाजा। चला लिए आगे करि राजा॥
गोरा उलटि खेत भा ठाढ़ा। पूरुष देखि चाव मन बाढ़ा॥

---

बढ़ी फिर पलटी। जस = जैसे ही। जिउ ऊपर = प्राण-रक्षा के लिये। छर कै गहन...जाहिं = जिनपर छल से ग्रहण लगाया था वे ग्रहण लगाकर जाते है। (६) कारी = कालिमा, अधकार। फिरि = लौटकर, पीछे ताककर। गोइ = गोय, गेद। जोरा = खेल का जोड़ा या प्रतिद्वंद्वी। गोइ लेइ जाऊँ = बल्ले से गेद निकाल ले जाऊँ। सीस-रिपु = शत्रु के सिर पर। चौगान = गेद मारने का डडा। हाल = कप, हलचल। (७) अगमन = आगे। सँकरे साथ = संकट की स्थिति मे। समदि = बिदा लेकर। पुरुष = योद्धा।

आव कटक सुलतानी, गगन छपा मसि माँझ।
परति आव जग कारी, होनि आव दिन साँझ ॥७॥

होइ मैदान परी अब गोई। खेल हार दहुँ काकरि होई॥
जोवन-तुरी चढ़ी जो रानी। चली जीति यह खेल सयानी॥
कटि चौगान, गोइ कुच साजी। हिय मैदान चली लेइ बाजी॥
हाल सो करै गोइ लेइ बाढ़ा। कूरी दुवौ पैज कै काढ़ा॥
भइँ पहार वै दूनौ कूरी। दिस्टि नियर, पहुँचत सुठि दूरी॥
ठाढ़ बान अस जानहु दोऊ। साले हिये न काढ़ै कोऊ॥
सालहि हिय, न जाहि सहि ठाढ़े। सालहि मरै चहै अनकाढ़े॥

मुहमद खेल प्रेम कर गहिर कठिन चौगान।
सीस न दीजै गोइ जिमि, हाल न होइ मैदान ॥८॥

फिरि आगे गोरा तब हाँका। खेलौ, करौ आजु रन-साका॥
हौं कहिए धौलागिरि गोरा। टरौं न टारे, अंग न मोरा॥
सोहिल जैस गगन उपराही। मेघ-घटा मोहि देखि बिलाहीं॥
सहसौ सीस सेस सम लेखौं। सहसौ नैन इंद्र सम देखौं॥
चारिउ भुजा चतुरभुज आजू। कंस न रहा और को साजू?॥
हौं होइ भीम आजु रन गाजा। पाछे घालि डुंगवै राजा॥
होइ हनुवंत जमकातर ढाहौं। आजु स्वामि साँकरे निबाहौं॥

होइ नल नील आजु हौं देहुँ समुद महँ मेड़।
कटक साह कर टेकौं होइ सुमेरु रन बेड़ ॥९॥

ओनई घटा चहूँ दिसि आई। छूटहि बान मेघ-झरि लाई॥
डोलै नाहिं देव अस आदी। पहुँचे आइ तुरुक सब बादी॥
हाथन्ह गहे खड्ग हरद्दानी। चमकहि सेल बीजु कै बानी॥

---

मसि = अंधकार। (८) गोई = गेंद। खेल = खेल में। काकरि = किसकी। हाल करै = हलचल मचावै, मैदान मारे। कूरी = घुस या टीला जिसे गेंद को लाँघाना पड़ता है। पैज = प्रतिज्ञा। अनकाढे = बिना निकाले। (९) हाँका = ललकारा। गोरा = (क) गोरा सामत; (ख) श्वेत। सोहिल = सुहैल, अगस्त्य तारा। डुंगवै = टीला या घुस्स। पाछे घालि...राजा = राजा रत्नसेन को पहाड़ या घुस्स के पीछे रखकर। साँकरे = संकट में। निबाहौं = निस्तार करूँ। बेंड़ = बेड़ा, आड़ा। (१०) देव = दैत्य। आदी = बिल्कुल, पूरा। बादी = शत्रु। हरद्दानी = हरद्दान की तलवार प्रसिद्ध थी। बानी = कांति, चमक।

सोझ बान जस आवहिं गाजा। बासुकि डरै सीस जनु बाजा॥
नेजा उठे डरै मन इंदू। आइ न बाज जानि कै हिंदू॥
गोरै साथ लीन्ह सब साथी। जस मैमंत सूँड़ बिनु हाथी॥
सब मिलि पहिलि उठौनी कीन्ही। आवत आइ हाँक रन दीन्ही॥

रुंड मुंड अब टूटहि स्यो बखतर औ कूँड़।
तुरय होहि बिनु काँधे, हस्ति होहि बिनु सूँड़॥१०॥

ओनवत आइ सेन सुलतानी। जानहुँ परलय आव तुलानी॥
लोहे सेन सूझ सब कारी। तिल एक कहूँ न सूझ उघारी॥
खड़ग फोलाद तुरुक सब काढ़े। धरे बीजु अस चमकहिं ठाढ़े॥
पीलवान गज पेले बाँके। जानहुँ काल करहि दुइ फाँके॥
जनु जमकात करहिं सब भवाँ। जिउ लेइ चहहिं सरग अपसवाँ॥
सेल सरप जनु चाहहिं डसा। लेहि काढ़ि जिउ मुख बिष-बसा॥
तिन्ह सामुहँ गोरा रन कोपा। अंगद सरिस पाव भुइ रोपा॥

सुपुरुष भागि न जानै, भुइँ जौ फिरि फिरि लेइ।
सूर गहे दोऊ कर स्वामि-काज जिउ देइ॥११॥

भइ बगमेल, सेल घनघोरा। औ गज-पेल; अकेल सो गोरा॥
सहस कुँवर सहसौ सत बाँधा। भार-पहार जूझ कर काँधा॥
लगे मरै गोरा के आगे। बाग न मोर घाव मुख लागे॥
जैस पतंग आगि धँसि लेई। एक मुवै, दूसर जिउ देई॥
टूटहि सीस, अधर धर मारै। लोटहिं कंधहिं कंध निरारै॥
कोई परहि रुहिर होइ राते। कोई घायल घूमहि माते।

---

गाजा = वज्र। इंदू = इंद्र। आइ न बाज...हिंदू = कहीं हिंदू जानकर मुझ पर न पड़े। गोरै = गोरा ने। उठौनी = पहला धावा। स्यो = साथ। कूँड़ = लोहे की टोपी जो लड़ाई मे पहनी जाती है। (११) ओनवत = झुकती और उमड़ती हुई। लोहे = लोहे से। सूझ = दिखाई पड़ती है। फोलाद = फौलाद। करहिं दुइ फाँके = चीरना चाहते हैं। फाँके = टुकड़े। जमकात = यम का खाँड़ा, एक प्रकार का खाँड़ा। भवाँ करहि = घूमते हैं। अपसवाँ चहहिं = चल देना चाहते हैं। सेल = बरछे। सरप = साँप। भुइँ लेइ = गिर पड़े। सूर = शूल, भाला। (१२) बगमेल = घोड़ो का बाग से बाग मिलाकर चलना, सवारो की पक्ति का धावा। अधर धर मारै = धड़ या कबंध अधर मे वार करता है। कंध = धड़। निरारै = बिल्कुल, यहाँ से वहाँ तक (अवध)।

कोइ खुरखेह गए भरि भोगी। भसम चढ़ाइ परे होइ जोगी ॥
घरी एक भारत भा, भा असवारन्ह मेल।
जूझि कुंवर सब निवरे, गोरा रहा अकेल ॥१२॥

गोरै देख साथि सब जूझा। आपन काल नियर भा, बूझा ॥
कोपि सिंघ सामुहँ रन मेला। लाखन्ह सौं नहिं मरै अकेला ॥
लेइ हाँकि हस्तिन्ह कै ठटा। जैसे पवन विदारै घटा ॥
जेहि सिर देइ कोपि करवारू। स्यो घोड़े टूटै असवारू ॥
लोटहि सीस कबंध निनारे। माठ मजीठ जनहुँ रन ढारे ॥
खेलि फाग सेंदुर छिरकावा। चाँचरि खेलि आगि जनु लावा ॥
हस्ती घोड़ धाइ जो धूका। ताहि कीन्ह सो रुहिर भभूका ॥

भइ अज्ञा सुलतानी, "वेगि करहु एहि हाथ।
रतन जात है आगे लिए पदारथ साथ" ॥१३॥

सबै कटक मिलि गोरहि छेका। गूँजत सिंघ जाइ नहि टेक ॥
जेहि दिसि उठै सोइ जनु खावा। पलटि सिंघ तेहि ठावँ न आवा ॥
तुरुक बोलावहि, बोलै बाहाँ। गोरै मीचु धरी जिउ माहाँ ॥
मुए पुनि जूझि जाज, जगदेऊ। जियत न रहा जगत महँ केऊ ॥
जिनि जानहु गोरा सो अकेला। सिंघ के मोछ हाथ को मेला ? ॥
सिंघ जियत नहि आपु धरावा। मुए पाछ कोई घिसियावा ॥
करै सिंघ मुख-सौंहहिं दीठी। जौ लगि जियै देइ नहिं पीठी ॥

रतनसेन जो बाँधा, मसि गोरा के गात।
जौ लगि रुधिर न धोवौ तौ लगि होइ न रात ॥१४॥

---

भोगी = भोग-विलास करनेवाले सरदार थे। भारत = घोर युद्ध। कुँवर = गोरा के साथी राजपूत। निवरे = समाप्त हुए। (१३) गोरै = गोरा ने। करवारू = करवाल, तलवार। स्यो = साथ। टूटै = कट जाता है। निनारे = अलग। धूका = झुका। रुहिर = रुधिर से। भभूका = अंगारे सा लाल। एहि हाथ करहु = इसे पकड़ो। (१४) गूँजत = गरजता हुआ। टेका = पकड़ा। पलटि सिंह... आवा = जहाँ से आगे बढ़ता है वहाँ पीछे हट कर नहीं आता। बोलै बाहाँ (वह मुँह से नहीं बोलता है) उसकी बाहें खड़कती हैं। गोरै = गोरा ने। जाज, जगदेऊ = जाजा और जगदेव कोई ऐतिहासिक वीर जान पड़ते हैं। घिसियावा = घिसियावे, घसीटे। रतनसेन जो ...गात = रत्नसेन जो बाँधे गए इसका कलंक गोरा के शरीर पर लगा हुआ है। रुहिर = रुधिर से। रात = लाल, अर्थात् कलंक-रहित।

सरजा बीर सिंघ चढ़ि गाजा। आइ सौंह गोरा सौं बाजा॥
पहलवान सो बखाना बली। मदद मीर हमजा औ अली॥
लँघउर धरा देव जस आदी। और को बर बाँधै, को बादी?॥
मदद अयूब सीस चढ़ि कोपे। महामाल जेइ नावँ अलोपे॥
औ ताया सालार सो आए। जेइ कौरव पंडव पिंड पाए॥
पहुँचा आइ सिंघ असवारू। जहाँ सिंघ गोरा बरियारू॥
मारेसि साँग पेट महँ धंसी। काढ़ेसि हुमुकि आँति भुइँ खसी॥

भाँट कहा, धनि गोरा! तू भा रावन राव।
आँति समेटि बाँधि कै तुरय देत है पाव॥१५॥

कहेसि अंत अब भा भुइँ परना। अंत त खसे खेह सिर भरना॥
कहि कै गरजि सिंघ अस धावा। सरजा सारदूल पहँ आवा॥
सरजै लीन्ह साँग पर धाऊ। परा खड़ग जनु परा निहाऊ॥
बज्र क साँग, बज्र कै डाँड़ा। उठा आगि तस बाजा खाँड़ा॥
जानहु बज्र बज्र सौं बाजा। सब ही कहा परी अब गाजा॥
दूसर खड़ग कंध पर दीन्हा। सरजै ओहि ओड़न पर लीन्हा॥
तीसर खड़ग कूँड़ पर लावा। काँध गुरुज हुत, घाव न आवा॥

तस मारा हठि गोरै, उठी बज्र कै आगि।
कोइ नियरे नहि आवै सिंघ सदूरहि लागि॥१६॥

---

(१५) मीर हमजा = मीर हमजा मुहम्मद साहब के चचा थे जिनकी वीरता की बहुत सी कल्पित कहानियाँ पीछे से जोड़ी गईं। लँघउर = लंघौर देव नामक एक कल्पित हिंदू राजा जिसे मीर हमजा ने जीत कर अपना मित्र बनाया था; मीर हमजा के दास्तान मे यह बड़े डील-डौल का और बड़ा भारी वीर कहा गया है। मदद...अली = मानो इन सब वीरो की छाया उसके ऊपर थी। बर बाँधे = हठ या प्रतिज्ञा करके सामने आए। बादी = शत्रु। महामाल = कोई क्षत्रिय राजा या वीर। जेइ = जिसने। सालार = शायद सालार मसऊद गाजी (गाजी मियाँ)। बरियारू = बलवान्। हुमुकि = जोर से। काढेसि हुमुकि = सरजा ने जब भाला जोर से खीचा। खसी = गिरी। (१६) सरजै = सरजा ने। जनु परा निहाऊ = मानो निहाई पर पड़ा (अर्थात् साँग को न काट सका)। डाँडा = दंड या खंग। ओड़न = ढाल। कूँड़ = लोहे का टोप। गुरुज = गुर्ज, गदा। काँध गुरुज हुत = कधे पर गुर्ज था (इससे)। लागि = मुठभेड़ या युद्ध मे।

तव सरजा कोपा बरिवंडा। जनहु सदूर केर भुजदंडा॥
कोपि गरजि मारेसि तस बाजा। जानहु परी टूटि सिर गाजा॥
ठाँठर टूट, फूट सिर तासू। स्यो सुमेरु जनु टूट अकासू॥
धमकि उठा सब सरग पतारू। फिरि गइ दीठि, फिरा संसारू॥
भइ परलय अस सबही जाना। काढ़ा खड़ग सरग नियराना॥
तस मारेसि स्यो घोड़ै काटा। धरती फाटि, सेस-फन फाटा॥
जौ अति सिंह बरी होइ आई। सारदूल सौं कौनि बड़ाई?॥

गोरा परा खेत महँ, सुर पहुँचावा पान।
बादल लेइगा राजा, लेइ चितउर नियरान॥१७॥

---

(१५) बरिवंडा = बलवान। सदूर = शार्दूल। तस बाजा = ऐसा आघात पड़ा। ठाँठर = ठठरी। फिरा संसारू = आँखों के सामने संसार न रह गया। स्यो = सहित। सुर पहुँचावा पान = देवताओं ने पान का बीड़ा, अर्थात् स्वर्ग का निमंत्रण, दिया।

## (५४) बंधन-मोक्ष; पद्मावती-मिलन-खंड

पदमावति मन रही जो झूरी। सुनत सरोवर-हिय गा पूरी॥
अद्रा महि-हुलास जिमि होई। सुख सोहाग आदर भा सोई॥
नलिन नीक दल कीन्ह अँकूरू। बिगसा कँवल उवा जब सूरू॥
पुरइनि पूर सँवारे पाता। औ सिर आनि धरा विधि छाता॥
लागेउ उदय होइ जस भोरा। रैनि गई, दिन कीन्ह अँजोरा॥
अस्ति अस्ति कै पाई कला। आगे वली कटक सब चला॥
देखि चाँद अस पदमिनि रानी। सखी कुमोद सबै बिगसानी॥

गहन छूट दिनिअर कर, ससि सौ भएउ मेराव।
मँदिर सिंघासन साजा, बाजा नगर बधाव॥ १॥

बिहँसि चाँद देइ माँग सेंदूरू। आरति करै चली जहँ सूरू॥
औ गोहन ससि नखत तराईं। चितउर कै रानी जहँ ताईं॥
जनु बसंत ऋतु पलुही छूटी। की सावन महँ बीर बहूटी॥
भा अनंद, बाजा घन तूरू। जगत रात होइ चला सेंदूरू॥
डफ मृदंग मंदिर बहु बाजे। इंद्र सबद सुनि सबै सो लाजे॥
राजा जहाँ सूर परगासा। पदमावति मुख-कँवल बिगासा॥
कवंल पायँ सूरुज के परा। सूरुज कवँल आनि सिर धरा॥

सेंदुर फूल तमोल सौं, सखी सहेली साथ।
धनि पूजे पिउ पायँ दुइ, पिउ पूजा धनि माथ॥ २॥

पूजा कौनि देउँ तुम्ह राजा?। सबै तुम्हार; आव मोहि लाजा॥
तन मन जोवन आरति करऊँ। जीव काढ़ि नेवछावरि धरऊँ॥
पंथ पूरि कै दिस्टि बिछावौं। तुम पग धरहु, सीस मैं लावौं॥
पायँ निहारत पलक न मारौं। बरुनी सेंति चरन-रज झारौं॥

---

(१) झूरी रही = सूख रही थी। अस्ति, अस्ति = वाहवाह। दिनिअर = दिनकर, सूर्य्य। (३) आरति = आरती। पूरि कै = भरकर। सेंति = से।

हिय सो मंदिर तुम्हरै, नाहा। नैन-पंथ पैठहु तेहि माहाँ॥
बैठहु पाट छत्र नव फेरी। तुम्हरे गरब गरुइ मैं चेरी॥
तुम जिउ, मै तन जौ लहि मया। कहै जो जीव करै सो कया॥
जौ सूरज सिर ऊपर, तौ रे कँवल सिर छात।
नाहिं त भरे सरोवर, सूखे पुरइन-पात॥ ३॥

परसि पायँ राजा के रानी। पुनि आरति बादल कहँ आनी॥
पूजे बादल के भुजदंडा। तुरय के पायँ दाब कर-खंडा॥
यह गजगवन गरब जो मोरा। तुम राखा, बादल औ गोरा॥
सेंदुर-तिलक जो अँकुस अहा। तुम राखा, माथे तौ रहा॥
काछ काछि तुम जिउ पर खेला। तुम जिउ आनि मँजूषा मेला॥
राखा छात, चँवर औधारा। राखा छुद्रघंट-झनकारा॥
तुम हनुवँत होइ धुजा पईठे। तब चितउर पिय आइ बईठे॥
पुनि गजमत्त चढ़ावा, नेत बिछाई खाट।
बाजत गाजत राजा, आइ बैठ सुखपाट॥ ४॥

निसि राजै रानी कँठ लाई। पिउ मरि जिया, नारि जनु पाई॥
रति रति राजै दुख उगसारा। जियत जीउ नहि होउँ निनारा॥
कठिन बंदि तुरुकन्ह लेइ गहा। जौ सँवरा जिउ पेट न रहा॥
घालि निगड़ ओबरी लेइ मेला। साँकरि औ अँधियार दुहेला॥
खन खन करहि सड़ासन्ह आँका। औ निति डोम छुआवहि बाँका॥
पाछे साँप रहहि चहुँ पासा। भोजन सोइ, रहै भर साँसा॥

---

तुम्हरै = तुम्हारा ही। गरुइ = गरुई, गौरवमयी। छात = छत्र (कमल के बीच छत्ता होता भी है)। (४) तुरय के...कर-खंडा = बादल के घोड़े के पैर भी दाबे अपने हाथ से। सेंदुर तिलक...अहा = सिंदूर की रेखा जो मुझ गजगामिनी के सिर पर अंकुश के समान है अर्थात् मुझ पर दाब रखनेवाले मेरे स्वामी का (अर्थात् सौभाग्य का) सूचक है। तुम जिउ...मेला = तुमने मेरे शरीर में प्राण डाले। औधारा = ढारा। छुद्रघंट = घुँघरूदार करधनी। नेत = रेशमी चादर; जैसे, ओढ़े नेत पिछौरा—गीत। (५) रति रति = रत्ती रत्ती, थोड़ा थोड़ा करके सब। उगसारा = निकाला, खोला, प्रकट किया। निगड़ = बेड़ी। ओबरी = तग कोठरी। आँका करहिं = दागा करते थे। बाँका = हँसिए की तरह झुका हुआ टेढ़ा औजार जिससे घरकार (बीजन, मोढ़े आदि बनानेवाले) बाँस छीलते है। भोजन सोइ...साँसा = भोजन इतना ही मिलता था जितने से साँस या प्राण बना रहे।

रॉध न तहेवा दूसर कोई। न जनौ पवन पानि कस होई॥
आस तुम्हारि मिलन कै, तब सो रहा जिउ पेट।
नाहि त होत निरास जौ, किन जीवन, कित भेंट?॥५॥

तुम्ह पिउ! आइ-परी असि बेरा। अब दुख सुनहु कँवल-धनि केरा॥
छोड़ि गएउ सरवर महँ मोहीं। सरवर सूखि गएउ बिनु तोहीं॥
केलि जो करत हंस उड़ि गयऊ। दिनिअर निपट सो बैरी भयऊ॥
गई तजि लहरैं पुरइन-पाता। मुइउँ धूप, सिर रहेउ न छाता॥
भइउँ मीन, तन तलफै लागा। बिरह आइ बैठा होइ कागा॥
काग चोंच, तस साले, नाहा। जब बँदि तोरि साल हिय माहा॥
कहो 'काग! अब तहँ लेइ जाही। जहँवा पिउ देखै मोहिं खाही'॥
काग औ गिद्ध न खंडहिं, का मारहि, बहु मंदि?॥
एहि पछितावै सुठि मुइउँ, गइउँ न पिउ सँग बंदि॥ ६॥

तेहि ऊपर का कहौ जो मारी। बिषम पहार परा दुख भारी॥
दूती एक देवपाल पठाई। बाम्हनि-भेस छरै मोहिं आई॥
कहै तोरि हौं आहुँ सहेली। चलि लेइ जाउं भँवर जहँ, बेली!॥
तब मै ज्ञान कीन्ह, सत बाँधा। ओहि कर बोल लाग बिष-साँधा॥
कहूँ कँवल नहि करत अहेरा। चाहै भँवर करै सै फेरा॥
पाँच भूत आतमा नेवारिउँ। बारहि बार फिरत मन मारिउँ॥
रोइ बुझाइउँ आपन हियरा। कंत न दूर, अहै सुठि नियरा॥
फूल बास, घिउ छीर जेउँ नियर मिले एक ठाईं।
तस कंता घट-घर कै जिइउँ अगिनि कह खाइ॥ ७॥

---

रॉध = पास, समीप। (६) तुम्ह पिउ...बेरा = तुम पर तो ऐसा समय पड़ा। न खडहि = नहीं खाते थे, नहीं चबाते थे। का मारहिं, बहु मंदि = वे मुझे क्या मारते, मैं बहुत क्षीण हो रही थी। (७) मारी = मार, चोट। साँधा = सना, मिला। कहूँ कँवल...सै फेरा = चाहे भौंरा (पुरुष) सौ जगह फेरे लगाए पर कमल (स्त्री) दूसरो को फँसाने नहीं जाता। पाँच भूत···मारिउँ = फिर योगिनी बनकर उस योगिनी के साथ जाने की इच्छा हुई पर अपने शरीर और आत्मा को घर बैठे ही वश किया और योगिनी होकर द्वार द्वार फिरने की इच्छा को रोका। जेउँ = ज्यो, जिस प्रकार। फूल बास ..खाइ = जैसे फल मे महँक और दूध मे घी मिला रहता है वैसे ही अपने शरीर मे तुम्हे मिला समझकर इतना संताप सहकर मै जीती रही।

## (५५) रत्नसेन-देवपाल-युद्ध-खंड

सुनि देवपाल राय कर चालू। राजहि कठिन परा हिय सालू॥
दादुर कतहुँ कँवल कहँ पेखा। गादुर-मुख न सूर कर देखा॥
अपने रँग जस नाच मयूरू। तेहि सरि साध करै तमचूरू॥
जो लगि आइ तुरुक गढ़ बाजा। तौ लगि धरि आनौं तौ राजा॥
नींद न लीन्ह, रैनि सब जागा। होत बिहान जाइ गढ़ लागा॥
कुंभलनेर अगम गढ़ बाँका। विषम पंथ चढ़ि जाइ न झाँका॥
राजहि तहाँ गएउ लेइ कालू। होइ सामुहँ रोपा देवपालू॥

दुवौ अनी सनमुख भईं, लोहा भएउ असूझ।
सत्रु जूझि तब नेवरै, एक दुवौ महँ जूझ॥ १॥

जौ देवपाल राव रन गाजा। मोहि तोहि जूझ एकौझा, राजा!॥
मेलेसि साँग आइ विष-भरी। मेटि न जाइ काल कै घरी॥
आइ नाभि पर साँग बईठी। नाभि बेधि निकसी सो पीठी॥
चला मारि, तब राजै मारा। टूट कंध, धड़ भएउ निनारा॥
सीस काटि कै बैरी बाँधा। पावा दावँ बैर जस साधा॥
जियत फिरा आएउ बल-भरा। मँझ बाट होइ लोहै धरा॥
कारी घाव जाइ नहिं डोला। रही जीभ जम गही, को बोला?॥

सुधि बुधि तौ सब बिसरी, भार परा मझ बाट।
हस्ति घोर को काकर? घर आनी गइ खाट॥२॥

---

(१) पेखा = देखता है। गादुर = चमगादर। सूर = सूर्य्य। सरि = बराबरी। लोहा भएउ = युद्ध हुआ। नेवरे = समाप्त हो, निबटे। (२) एकौझा = अकेले, द्वंद्व युद्ध। चला मारि...मारा = वह भाला मारकर चला जाता था तब राजा रत्नसेन ने फिरकर उस पर भी वार किया। बैरी = शत्रु देवपाल को। मँझ बाट...धरा = आधे रास्ते पहुँचकर हथियार छोड़ दिया। कारी = गहरा, भारी। भार परा मँझ बाट = बोझ की तरह राजा रत्नसेन बीच रास्ते मे गिर पडे।

## (५६) राजा-रत्नसेन वैकुंठवास-खंड

तौ लहि साँस पेट महँ अही। जौ लहि दसा जीउ कै रही॥
काल आइ देखराई साँटी। उठि जिउ चला छोड़ि कै माटी॥
काकर लोग, कुटुंब, घर वारू। काकर अरथ दरव संसारू॥
ओही घरी सब भएउ परावा। आपन सोइ जो परसा, खावा॥
अहे जे हितू साथ के नेगी। सबै लाग काढ़ै तेहि वेगी॥
हाथ झारि जस चलै जुवारी। तजा राज, होइ चला भिखारी॥
जब हुत जीउ, रतन सब कहा। भा विनु जीउ, न कौड़ी लहा॥
गढ़ सौंपा बादल कहँ गए टिकठि बसि देव।
छोड़ी राम अजोध्या, जो भावै सो लेव॥१॥

---

(१) साँटी = छड़ी। आपन सोइ.....खावा = अपना वही हुआ जो खाया और दूसरे को खिलाया। नेगी = पानेवाले। हुत = था। टिकठि = टिकठी, अरथी जिसपर मुरदा ले जाते हैं। देव = राजा। जो भावै सो लेव = जो चाहे सो ले।

## (५७) पद्मावती-नागमती-सती-खंड

पदमावति पुनि पहिरि पटोरी। चली साथ पिउ के होइ जोरी॥
सूरुज छपा, रैनि होइ गई। पूनो-ससि सो अमावस भई॥
छोरे केस, मोति लर छूटीं। जानहुँ रैनि नखत सब टूटीं॥
सेंदुर परा जो सीस उघारा। आगि लागि चह जग अँधियारा॥
यही दिवस हौं चाहति, नाहा। चलौं साथ, पिउ! देइ गलबाहाँ॥
सारस पंखि न जियै निनारे। हौं तुम्ह बिनु का जिऔं, पियारे॥
नेवछावरि कै तन छहरावौं। छार होउँ सँग, बहुरि न आवौं॥

दीपक प्रीति पतँग जेउँ जनम निबाह करेउँ।
नेवछावरि चहुँ पास होइ कंठ लागि जिउ देउँ॥ १॥

नागमती पदमावति रानी। दुवौ महा सत सती बखानी॥
दुवौ सवति चढ़ि खाट बईठीं। औ सिवलोक परा तिन्ह दीठी॥
बैठौ कोइ राज औ पाटा। अंत सबै बैठे पुनि खाटा॥
चंदन अगर काठ सर साजा। औ गति देइ चले लेइ राजा॥
बाजन बाजहिं होइ अगूता। दुवौ कंत लेइ चाहहिं सूता॥
एक जो बाजा भएउ बियाहू। अब दुसरे होइ ओर-निबाहू॥
जियत जो जरै कंत के आसा। मुएँ रहसि बैठे एक पासा॥

आजु सूर दिन अथवा, आजु रैनि ससि बूड़।
आजु नाचि जिउ दीजिय, आजु आगि हम्ह जूड़॥२॥

---

(१) आगि लागि... अँधियार = काले बालों के बीच लाल सिंदूर मानो यह सूचित करता था कि अँधेरे संसार में अब आग लगा चाहती है (पद्मावती के सती होने का आभास मिलता है)। छहरावौं = छितराऊँ। (२) महा सत = सत्य में। तिन्ह दीठि परा = उन्हे दिखाई पड़ा। बैठौ = चाहे बैठे। खाटा = अर्थी, टिकठी। अगूता होइ = आगे होकर। सूता चहहिं = सोना चाहती है। बाजा = बाजे से। ओर-निबाहू = अंत का निर्वाह। रहसि = प्रसन्न होकर। बूड़ = डूबा। हम्ह = हमे, हमारे लिये। जूड़ = ठंढी।

सर रचि दान पुन्नि बहु कीन्हा। सात बार फिरि भाँवरि लीन्हा॥
एक जो भाँवरि भई बियाही। अब दुसरे होइ गोहन जाहीं॥
जियत, कंत! तुम हम्ह गर लाई। मुए कंठ नहि छोड़हि, साईं!॥
औ जो गाँठि, कंत! तुम्ह जोरी। आदि अंत लहि जाइ न छोरी॥
यह जग काह जो अछहि न आथी। हम तुम, नाह! दुहूँ जग साथी॥
लेइ सर ऊपर खाट बिछाई। पौढ़ी दुवौ कंत गर लाई॥
लागी कंठ आगि देइ होरी। छार भईं जरि, अंग न मोरी॥

रातीं पिउ के नेह गईं, सरग भएउ रतनार।
जो रे उवा, सो अथवा; रहा न कोइ संसार॥३॥

वै सहगवन भईं जब जाई। बादसाह गढ़ छेका आई॥
तौ लगि सो अवसर होइ बीता। भए अलोप राम औ सीता॥
आइ साह जौ सुना अखारा। होइगा राति दिवस उजियारा॥
छार उठाइ लीन्ह एक मूठी। दीन्ह उड़ाइ, पिरथिमी झूठी॥
सगरिउ कटक उठाई माटी। पुल बाँधा जहें जहँ गढ़-घाटी॥
जौ लहि ऊपर छार न परै। तौ लहि यह तिस्ना नहि मरै॥
भा धावा, भइ जूझ असूझा। बादल आइ पँवरि पर जूझा॥

जौहर भईं सब इस्तिरी, पुरुष भए संग्राम।
बादसाह गढ़ चूरा, चितउर भा इसलाम। ४॥

---

(३) सर = चिता। गोहन = साथ। हम्ह गर लाईं = हमे गले लगाया। अंत लहि = अंत तक। अछहि = है। आथी = सार, पूँजी, अस्तित्व। अछहि न आथी = जो स्थिर या सारवान् नहीं है। रतनार = लाल, प्रेममय या आभा-पूर्ण। (४) सहगवन भईं = पति के साथ सहगमन किया, सती हुई। तौ लगि...बीता = तब तक तो वहाँ सब कुछ हो चुका था। अखारा = अखाड़े या सभा में, दरबार मे। गढ़ घाटी = गढ़ की खाईं। पुल बाँधा...घाटी = सती स्त्रियों की एक एक मुट्ठी राख इतनी हो गई कि उससे जगह जगह खाईं पट गईं और पुल-सा बँध गया। जौ लहि = जब तक। तिस्ना = तृष्णा। जौहर भईं = राजपूत प्रथा के अनुसार जल मरीं। संग्राम भए = खेत रहे, लड़कर मरे। चितउर भा इसलाम = चित्तौरगढ़ मे भी मुसलमानी अमलदारी हो गई।

# उपसंहार

मै एहि अरथ पंडितन्ह बूझा। कहा कि हम्ह किछु और न सूझा॥
चौदह भुवन जो तर उपराही। ते सब मानुष के घट माही॥
तन चितउर, मन राजा कीन्हा। हिय सिंघल, बुधि पदमिनि चीन्हा॥
गुरू सुआ जेइ पंथ देखावा। बिनु गुरु जगत को निरगुन पावा?॥
नागमती यह दुनिया-धंधा। बाँचा सोइ न एहि चित बंधा॥
राघव दूत सोई सैतानू। माया अलाउदी सुलतानू॥
प्रेम-कथा एहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझै पारहु॥

तुरकी, अरबी, हिदुई, भाषा जेती आहि।
जेहि महँ मारग प्रेम कर सबै सराहै ताहि॥ १॥

मुहमद कबि यह जोरि सुनावा। सुना सो पीर प्रेम कर पावा॥
जोरी लाइ रकत कै लेई। गाढ़ि प्रीति नयनन्ह जल भेई॥
औ मै जानि गीत अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा॥
कहाँ सो रतनसेन अब राजा?। कहाँ सुआ अस बुधि उपराजा?॥
कहाँ अलाउदीन सुलतानू?। कहँ राघव जेइ कीन्ह बखानू?॥
कहँ सुरूप पदमावति रानी?। कोइ न रहा, जग रही कहानी॥
धनि सोई जस कीरति जासू। फूल मरै, पै मरै न बासू॥

---

(१) एहि = इसका। पडितन्ह = पंडितों से। कहा.....सूझा = उन्होने कहा, हमे तो सिवा इसके और कुछ नहीं सूझता है कि। उपराहीं = ऊपर। निरगुन = ब्रह्म, ईश्वर। (२) जोरी लाइ.....भेई = इस कविता को मै ने रक्त की लेई लगा कर जोड़ा है और गाढी प्रीति को आँसुओ से भिगो-भिगोकर गीला किया है। चीन्हा = चिह्न, निशान। उपराजा = उत्पन्न किया। अब बुधि उपराजा = जिसने राजा रत्नसेन के मन मे ऐसी बुद्धि उत्पन्न की।

केइ न जगत जस बेंचा, केइ न लीन्ह जस मोल ?।
जो यह पढ़ै कहानी हम्ह सँवरै दुइ बोल ॥ २ ॥

मुहमद बिरिध बैस जो भई। जोबन हुत, सो अवस्था गई ॥
बल जो गएउ कै खीन सरीरू। दिस्टि गई नैनहिं देइ नीरू ॥
दसन गए कै पचा कपोला। बैन गए अनरुच देइ बोला ॥
बुधि जो गई देइ हिय बौराई। गरब गएउ तरहुँत सिर नाई ॥
सरवन गए ऊँच जो सुना। स्याही गई, सीस भा धुना ॥
भवँर गए केसहि देइ भूवा। जोबन गएउ जीति लेइ जूवा ॥
जौ लहि जीवन जोबन-साथा। पुनि सो मीचु पराए हाथा ॥
बिरिध जो सीस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़ी आऊ होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीस ? ॥ ३ ॥

---

केइ न जगत जस बेचा = किसने इस ससार मे थोड़े के लिये अपना यश नहीं खोया ? अर्थात् बहुत से लोग ऐसे हैं। हम्ह सँवरै = हमे याद करेगा। दुइ बोल = दो शब्दो में, दो बार। ( ३ ) पचा = पिचका हुआ। अनरुच = अरुचिकर। बौराई = बावलापन; जैसे, करत फिरत बौराई।—तुलसी। तरहुँत = नीचे की ओर। धुना = धुनी रूई। भूवा = काँस के फूल, धुवा। जौ लहि हाथा = कवि कहता है कि जबतक जिंदगी रहे जवानी के साथ रहे, फिर जब दूसरे का आश्रित होना पड़े तब तो मरना ही अच्छा है। रीस = रिस या क्रोध से। केइ...असीस = किसने व्यर्थ ऐसा आशीर्वाद दिया ?

# अखरावट

दोहा

गगन हुता नहि महि हुती, हुते चंद नहिं सूर।
ऐसइ अंधकूप महँ रचा मुहम्मद नूर॥

सोरठा

सांई केरा नावँ हिया पूर, काया भरी।
मुहमद रहा न ठाँव, दूसर कोइ न समाइ अब॥

आदिहु ते जो आदि गोसाईं। जेइ सब खेल रचा दुनियाईं॥
जस खेलेसि तस जाइ न कहा। चौदह भुवन पूरि सब रहा॥
एक अकेल, न दूसर जाती। उपजे सहस अठारह भाँती॥
जौ वै आनि जोति निरमई। दीन्हेसि ज्ञान, समुझि मोहि भई॥
औ उन्ह आनि बार मुख खोला। भइ मुख जीभ बोल मै बोला॥
वै सब किछु, करता किछु नाहीं। जैसे चलै मेघ परछाहीं॥
परगट गुपुत बिचारि सो बूझा। सो तजि दूसर और न सूझा॥

दोहा

कहौं सो ज्ञान ककहरा सब आखर महँ लेखि।
पंडित पढ़ अखरावटी, टूटा जोरेहु देखि॥

---

(१) हुता = था। अधकूप = शून्य अधकार। नूर = ज्योति, हदीस के अनुसार ईश्वर ने सबसे पहले मुहम्मद पैगंबर की ज्योति उत्पन्न की। केरा = का। मुहम्मद रहा.....अब = कवि मुहम्मद कहते है कि नाम ही तन मन में भर रहा है, अब दूसरी वस्तु के लिये हृदय मे कहीं जगह ही नहीं है। न दूसर जाती = दूसरी जिन्स नहीं थी, दूसरे प्रकार की कोई वस्तु नहीं थी। सहस अठारह भाँती = जैसे हमारे यहाँ चौरासी लाख योनियों की कल्पना है वैसे ही मुसलमानो के यहाँ अठारह हजार की। बार = बाल से (साधारण कल्पना है कि ईश्वर ने कुश या बाल से चीरकर मुँह बनाया)। करता = जीव जो कर्म करता दिखाई पड़ता है।

होतै विरवा भए दुइ पाता। पिता सरग औं धरती माता॥
सूरुज, चाँद दिवस औ राती। एकहि दूसर भएउ सँघाती॥
चलि सो लिखनी भइ दुइ फारा। बिरिछ एक उपनी दुइ डारा॥
भेटेन्हि जाइ पुन्नि औ पापू। दुख औ सुख, आनँद संतापू॥
औ तब भए नरक बैकूँठू। भल औ मंद, साँच औ झूठू॥

दोहा

नूर मुहम्मद देखि तब भा हुलास मन सोइ।
पुनि इबलीस सँचारेउ, डरत रहै सब कोइ॥

सोरठा

हुता जो एकहि संग, हौं तुम्ह काहे बीछुरा?
अब जिउ उठै तरंग, मुहमद कहा न जाइ किछु॥ ३॥

जौ उतपति उपराजै चहा। आपनि प्रभुता आपु सौं कहा॥
रहा जो एक जल गुपुत समुंदा। बरसा सहस अठारह बुंदा॥
सोई अंस घटै घट मेला। ओ सोइ बरन बरन होइ खेला॥
भए आपु औ कहा गोसाईं। सिर नावहु सगरिउ दुनियाईं॥
आने फूल भाँति बहु फूले। बास बेधि कौतुक सब भूले॥
जिया जंतु सब अस्तुति कीन्हा। भा संतोष सबै मिलि चीन्हा॥
तुम करता बड़ सिरजन-हारा। हरता धरता सब संसारा॥

---

पिता सरग.....धरती माता = चित् पक्ष और अचित् (जड़) पक्ष। अँगरेज कवि मरडिथ (Meredith) ने स्वर्ग और पृथ्वी के विवाह की ऐसी ही कल्पना की है। चलि सो...दुइ फारा = कलम का पेट चीरकर जब दो फाले की जाती हैं तब वह चलती है, इसी प्रकार जब आरंभ मे दो विभाग (द्वंद्व) हुए तब सृष्टि का क्रम आगे चला। इबलीस = शैतान, जो बहकाकर लोगो को ईश्वर के विरुद्ध किया करता है। हुता जो एकहि संग = जीव पहले ईश्वर से अलग नहीं था। उठै तरंग = वियोग के कारण मन मे भाव उठते है। (४) उतपति = सृष्टि। आपनि प्रभुता...कहा = यह जो सृष्टि उत्पन्न की मानो अपनी प्रभुता अपने को ही प्रकट की (अर्थात् यह जगत् ईश्वर की शक्ति का ही विकास है)। एक जल गुपुत समुंदा = अर्थात् आत्म-तत्त्व या परमात्मा। बरसा...बुंदा = नाना योनियो मे प्रकट हुआ। घटै घट = प्रत्येक घट या शरीर मे। भए आपु = आप ही जगत् के रूप मे प्रकट हुआ। घरता = धारण करनेवाला।

दोहा

भरा भँडार गुपुत तहँ, जहाँ छाँह नहिं धूप।
पुनि अनबन परकार सौ खेला परगट रूप॥

सोरठा

परै प्रेम के झेल, पिंड सहुँ धनि मुख सो करै।
जो सिर सेंती खेल, मुहमद खेल सो प्रेम-रस॥ ४॥

एक चाक सब पिंडा चढ़े। भाँति भाँति के भाँड़ा गढ़े॥
जबहीं जगत किएउ सब साजा। आदि चहेउ आदम उपराजा॥
पहिलेइ रचे चारि अढ़वायक। भए सब अढ़वैयन के नायक॥
भइ आयसु चारिहु के नाऊँ। चारि वस्तु मेरवहु एक ठाऊँ॥
तिन्ह चारिहु के मँदिर सँवारा। पाँच भूत तेहि महँ पैसारा॥
आपु आपु महँ अरुझी माया। ऐस न जानै दहुँ केहि काया॥
नव द्वारा राखे मँझियारा। दसवँ मूँदि कै दिएउ केवारा॥

दोहा

रकत माँसु भरि, पूरि हिय, पाँच भूत कै संग।
प्रेम-देस तेहि ऊपर बाज रूप औ रंग॥

सोरठा

रहेउ न दुइ महँ बीचु, बालक जैसे गरभ महँ।
जग लेइ आई मीचु, मुहमद रोएउ बिछुरि कै॥ ५॥

उहँई कीन्हेउ पिंड उरेहा। भइ सँजूत आदम कै देहा॥

---

छाँह नहिं धूप = सुख या दुःख नहीं। अनबन = अनेक। झेल = थपेड़ा, हिलोरा। सहुँ = सामने। सेंती = से। (५) पिंडा = मिट्टी का लोदा जो बरतन बनाने के लिये कुम्हार के चाक पर रखा जाता है। भाँडा = बरतन, यहाँ शरीर। आदम पैगंबरी या किताबी मतो के अनुसार आदि-मनुष्य। अढ़वायक = अढ़वनेवाले, काम मे लगानेवाले। चारि अढ़वायक = चार फरिश्ते। चारि वस्तु = चारो भूत। मदिर = घर अर्थात् शरीर। पाँच भूत = पचभूतात्मक इंद्रियाँ। पैसारा = घुसाया। केहि काया = किसकी यह काया है। मँझियारा = बीच मे। दसवँ = दसवाँ द्वार, ब्रह्मरध्र। बाज = बिना, बगैर। रहेउ न दुइ...महँ = आदम जब तक स्वर्ग मे था तब तक वह ईश्वर से भिन्न न था; वैसे ही था जैसे माता के गर्भ मे बच्चा रहता है। (६) उहँई = वहीं अर्थात् स्वर्ग मे। सँजूत भइ = संयुक्त हुई, बनी।

भइ आयसु, 'यह जग भा दूजा। सब मिलि नवहु, करहु एहि पूजा॥
परगट सुना सबद, सिर नावा। नारद कहँ विधि गुपुत देखावा॥
तू सेवक है मोर निनारा। दसई पँवरि होसि रखवारा॥
भइ आयसु, जब वह सुनि पावा। उठा गरब कै सीस नवावा॥
धरिमिहि धरि पापी जेइ कीन्हा। लाइ संग आदम के दीन्हा॥
उठि नारद जिउ आइ सँचारा। आइ छींक, उठि दीन्ह केवारा॥

दोहा

आदम होवा कहँ सूजा, लेइ घाला कबिलास।
पुनि तहँवाँ तें काढ़ा, नारद के बिसवास॥

---

भइ आयसु = ईश्वर ने कहा। यह जग भा दूजा = ससार मे यह जगत के अनुरूप ही दूसरा जगत् उत्पन्न हुआ (जो ब्रह्माड मे है वही मनुष्य पिंड में है)। सब मिलि नवहु = मुसलमानी धर्मपुस्तक में लिखा है कि ईश्वरने आदम को बनाकर फरिश्तों से सिजदः करने (सिर नवाने) को कहा: सबने सिजदः किया पर शैतान ने न किया इससे वह स्वर्ग से निकाला गया। विधि = ईश्वर ने। गुपुत = आत्मा या ब्रह्म का गुप्त स्थान। दसई पँवरि = सुषुम्ना नाड़ी नाभी के नीचे की कुंडलिनी से लेकर हृत्कमल से होती हुई ब्रह्मरंध्र तक चली गई है; यही गुप्त मार्ग या द्वार है जिससे ब्रह्म तक वृत्ति पहुँचकर लीन हो सकती है। धरिमिहि·····कीन्हा = जिस नारद ने मनुष्य को धर्ममार्ग से बहकाकर पापी कर दिया (यहाँ कवि ने योग के अंतराय या विघ्न की कल्पना और शैतान की कल्पना का अद्भुत मिश्रण किया है। शैतान के लिये यहाँ 'नारद' शब्द लाया गया है। नारद पुराणों मे भगवान् के सब से बड़े भक्त कहे गए हैं। वे इधर-उधर झगडा लगानेवाले भी माने जाते हैं। सामी मत शैतान को ईश्वर का प्रतिद्वंद्वी मानते है, पर सूफी ईश्वर का प्रतिद्वद्वी असंभव मानते है। वे शैतान को भी ईश्वर का भक्त या सेवक ही मानते हैं, जो ईश्वर के आदेश से ही भक्तों और साधको की कठिन परीक्षा किया करता है वह विरोध द्वारा ही ईश्वर की सेवा करता है। वैष्णव भक्ति-मार्ग में भी शत्रु-भाव से भजने वाले स्वीकार किए गए हैं। रावण, कंस आदि की गणना ऐसे ही भक्तो में है।) कबिलास = स्वर्ग। बिसवास = विश्वासघात से (शैतान के बहकाने से ही आदम ने गेहूँ खा लिया जिसके खाने का निषेध ईश्वर ने कर रखा था और स्वर्ग से निकाले गए)।

सोरठा

आदि किएउ आदेरा, सुन्नहि तें अस्थूल भए।
आपु करै सब भेस मुहमद चादर-ओट जेउँ ॥ ६ ॥

का-करतार चहिय अस कीन्हा ? आपन दोष आन सिर दीन्हा ॥
खाएनि गोहूँ कुमति भुलाने। परे आइ जग महँ, पछिताने ॥
छोड़ि जमाल-जलालहि रोवा। कौन ठाँव तें दैउ बिछोवा ॥
अंधकूप सगरउँ संसारू। कहाँ सो पुरुष, कहाँ मेहरारू ? ॥
रैनि छ मास तैसि झरि लाई। रोइ रोइ आँसू नदी बहाई ॥
पुनि माया करता कहँ भई। भा भिनसार, रैनि हटि गई ॥
सूरुज उए, कँवल-दल फूले। दूवौ मिले पंथ कर भूले ॥

दोहा

तिन्ह संतति उपराजा भाँतिहि भाँति कुलीन।
हिंदू तुरुक दुवौ भए अपने अपने दीन ॥

सोरठा

बुन्दहि समुद समान, यह अचरज कासौं कहौं ?
जो हेरा सो हेरान, मुहमद आपुहि आपु महँ ॥ ७ ॥

खा-खेलार जस है दुइ करा। उहै रूप आदम अवतरा ॥
दुहूँ भाँति तस सिरजा काया। भए दुइ हाथ, भए दुइ पाया ॥
भए दुइ नयन स्रवन दुइ भाँती। भए दुइ अधर, दसन दुइ पाँती ॥

---

अस्थूल = स्थूल। जेऊँ = ज्यो, जिस प्रकार। (७) जमाल = सौदर्य्य और माधुर्य्य पक्ष। जलाल = शक्ति, प्रताप और ऐश्वर्य्य पक्ष। दुवौ = आदम और हौवा। बुंदहि समुद समान = एक बूँद मे समुद्र समाया हुआ है अर्थात् मनुष्य-पिंड के भीतर ही ब्रह्म और समस्त ब्रह्माड है (ऊपर कह आए है—"गुपुत समुंदा बरसा सहस अठारह बुन्दा")। हेरा = (अपने भीतर ही) ढूँढा। हेरान = आप लापता हो गया, अर्थात् उसी अनंत सत्ता मे वह मिल गया। (८) खेलार = खेलाड़ी, ईश्वर। दुइ करा = दो कलाओ सहित अर्थात् पुरुष और प्रकृति दो पक्षो से युक्त। उहै रूप·····अवतरा = उसी के अनुरूप आदम का अवतार हुआ (यहूदियो और ईसाइयो की धर्मपुस्तक मे लिखा है कि ईश्वर ने आदम को अपने अनुरूप रचा)। दुहूँ भाँति·····काया = यही दो पक्षों की व्यवस्था शरीर की रचना मे भी है।

माथ सरग, धर धरती भएऊ। मिलि तिन्ह जग दूसर होइ गएऊ॥
माटी माँसु, रकत भा नीरू। नसै नदी, हिय समुद गँभीरू॥
रीढ़ सुमेरु कीन्ह तेहि केरा। हाड़ पहार जुरे चहुँ फेरा॥
वार विरिछ, रोवाँ खर जामा। सूत सूत निसरे तन चामा॥

दोहा

सातौ दीप, नवौ खँड, आठौ दिसा जो आहि।
जो बरम्हंड सो पिंड है, हेरत अंत न जाहिं॥

सोरठा

आगि, बाउ, जल, धूरि चारि मेरइ भाँड़ा गढ़ा।
आपु रहा भरि पूरि मुहमद आपुहिं आपु महँ॥ ८॥

गा-गौरहु अब सुनहु गियानी। कहौं ग्यान संसार बखानी॥
नासिक पुल सरात पथ चला। तेहि कर भौहैं है दुइ पला॥
चाँद सुरुज दूनौ सुर चलही। सेत लिलार नखत झलमलहीं॥
जागत दिन-निसि सोवत माँझा। हरष भोर, बिसमय होइ साँझा॥
सुख बैकुंठ भुगुति औ भोगू। दुख है नरक, जो उपजै रोगू॥
बरखा रुदन, गरज अति कोहू। बिजुरी हँसी हिवंचल छोहू॥
घरी पहर बेहर हर साँसा। बीतै छओ ऋतु, बारह मासा॥

---

मिलि तिन्ह.....गएऊ = इन दो पद्यो से मिलकर मानो दूसरा ब्रह्माड हो गया (यहाँ से कवि ने पिंड और ब्रह्मांड की एकता का प्रतिपादन किया है)। रीढ़ = पीठ की खड़ी हड्डी, मेरुदड। खर = तृण। जाहि = जिसका। मेरइ = मिलाकर। (९) नासिक पुल..... चला = नाक मानो 'पुले सरात' (मुसलमानो की वैतरणी का पुल जो पापियो के लिये तो बाल के बराबर पतला हो जायगा और दीनदारो के लिये खासी चौड़ी सड़क) का रास्ता चला गया है। भौहैं है दुइ पला = भौहैं मानो उस पुल के दो पार्श्व हैं = दाहिने पार्श्व से पुण्यात्मा और बाएँ से पापी जाते है। सुर = श्वास का प्रवाह जो कभी बाएँ नथुने से चलता है कभी दहने (इसी को बायाँ सुर या दहना सुर कहते हैं)। जागत दिन = शरीर की जाग्रत अवस्था को दिन समझो। हरष भोर = शरीर में जब हर्ष का संचार होता है तब प्रभात समझो। बिसमय = विषाद (अवध)। हिवचल छोहू = कृपा या दया, बर्फ पड़ना समझो (इस प्रकार चद्र, सूर्य्य, रात, दिन, ऋतु, मास, वर्षा, चमक, गरज, घड़ी, पहर, युग इत्यादि सब शरीर के भीतर समझो)। बेहर = अलग अलग होते है। हर = प्रत्येक

दोहा

जुग जुग बीतैं पलहि पल, अवधि घटति निति जाइ।
मीचु नियर जब आवै, जानहु परलय आइ॥

सोरठा

जेहि घर ठग है पाँच, नवौ बार चहुँदिसि फिरिहिं।
सो घर केहि मिस बाँच? मुहमद जौ निसि जागिए॥ ९॥

घा-घट जगत बराबर जाना। जेहि महँ धरती सरग समाना॥
माथ ऊँच मक्का बन ठाऊँ। हिया मदीना नबी क नाऊँ॥
सरवन, आँखि, नाक, मुख चारी। चारिहु सेवक लेहु बिचारी॥
भाव चारि फिरिस्ते जानहु। भावै चारि यार पहिचानहुँ॥
भावै चारिहु मुरसिद कहऊ। भावै चारि किताबैं पढ़ऊ॥
भावै चारि इमाम जे आगे। भावै चारि खंभ जे लागे॥
भाव चारिहु जुग सति-पूरी। भावै आगि, बाउ, जल, धूरी॥

दोहा

नाभि-कँवल तर नारद लिए पाँच कोटवार।
नवौ दुवारि फिरै निति दसई कर रखवार॥

सोरठा

पवनहु ते मन चाँड़, मन तें आसु उतावला।
कतहूँ भेड़ न डाँड़, मुहमद वहूँ बिस्तार सो॥१०॥

ना-नारद तस पाहरु काया। चारा मेलि फाँद जग माया॥

---

पाँच ठग = काम, क्रोध इत्यादि। (१०) माथ ऊँच.....नाऊँ = माथे को मक्का समझो और हृदय को मदीना जिसमे नबी या पैगंबर का नाम सदा रहता है। फिरिस्ते = स्वर्ग के चार दूत—जिबरईल, मकाईल, इसराफील, इजराईल। चारि यार = उमर, उसमान आदि चार खलीफा। मुरसिद = मुरशिद, गुरु, पीर। चार किताबै = चार आसमानी किताबे—तौरेत, जबूर (दाउद के गीत), इंजील, कुरान। इमाम = धर्म के अधिष्ठाता; जैसे, अली हसन, हुसेन। भावै = चाहे। नाभि-कँवल तर = वह स्थान जहाँ योगी कुंडलिनी मानते है। पाँच कोटवार = काम, क्रोध आदि चौकीदार। चाँड़ = प्रचंड, प्रबल। आसु = असु, चित्त, चेतन तत्त्व। कतहूँ मेड़.....सो = चित असीम और व्यापक है। (११) तस = ऐसा। पाहरु = पहरेदार। फाँद = फँसा रखा है।

नाद, वेद औ भूत सँचारा। सब अरुझाइ रहा संसारा॥
आपु निपट निरमल होइ रहा। एकहु बार जाइ नहि गहा॥
जस चौदह खंड तैस सरीरा। जहँवै दुख है तहँवै पीरा॥
जौन देस महँ सँवरे जहवाँ। तौन देस सो जानहु तहँवाँ॥
देखहु मन हिरदय बसि रहा। खन महँ जाइ जहाँ कोइ चहा॥
सोवत अंत अंत महँ डोलै। जब बोलै तब घट महँ बोलै॥

दोहा

तन-तुरंग पर मनुआ, मन-मस्तक पर आसु।
सोई आसु बोलावई अनहद बाजा पासु॥

सोरठा

देखहु कौतुक आइ, रूख समाना बीज महँ।
आपुहि खोदि जमाइ मुहमद सो फल चाखई॥ ११॥

**चा**-चरित्र जौ चाहहु देखा। बूझहु विधना केर अलेखा॥
पवन चाहि मन बहुत उताइल। तेहिं तें परम आसु सुठि पाइल॥
मन एक खंड न पहुँचै पावै। आसु भुवन चौदह फिरि आवै॥
भा जेहि ज्ञान हिये सो बूझै। जो धर ध्यान न मन तेहि रूझै॥

---

नाद = शब्द-ब्रह्म। वेद = धर्म पुस्तकें। भूत = भूतात्मक इंद्रियां। आपु = ईश्वर। जहवैं दुख···पीरा = जहाँ क्लेश है वहीं उनका अनुभव भी। सँवरै = स्मरण करे। तौन देस·····तहँवाँ = वहाँ उसी स्थान मे उस ईश्वर को समझो। खन महँ जाइ·····चहा = मन एक क्षण मे चाहे जहाँ पहुँच सकता है। अत = अंतस, भीतर। सोवत अंत·····डोलै = स्वप्न की दशा में मन आप अपने भीतर ही भीतर डोलता है (और संसार छानता हुआ जान पड़ता है।) जब बोलै·····बोलै = स्वप्न मे जब वह बोलता है तब भीतर ही भीतर। मनुआ = मन। अनहद बाजा = शब्द योग मे अनाहत नाद। देखहु कौतुक·····चाखई = सारा संसार-वृक्ष बीज रूपी ब्रह्म में ही अव्यक्त भाव से निहित रहता है और वही बीज आप अपने को जमाता है और फल का भोक्ता भी आप ही होता है। (१२) अलेखा = विचित्र व्यवस्था। चाहि = अपेक्षा, बनिस्बत। उताइल = जल्दी चलनेवाला। आसु = जीव, चेतन तत्त्व। पाइल = तेज चलनेवाला (तेज चलनेवाले हाथी को 'पायल' कहते हैं)। तेहिं ते परम·····पाइल = उससे भी अधिक शीघ्रगामी चित् तत्त्व है। मन तेहि = उसका मन। रूझै = उलझता है।

पुतरी मह जो बिंदि एक कारी। देखे जगत सो पट बिस्तारी॥
हेरत दिस्टि उघरि नस आई। निरखि सुन्न महँ सुन्न समाई॥
पेम-समुंद सो अति अवगाहा। बूड़ै जगत न पावै थाहा॥

दोहा

जबहिं नींद चख आवै उपजि उठै संसार।
जागत ऐस न जानै, दहुँ सो कौन भंडार॥

सोरठा

सुन्न समुद चख माहिं जल जैसी लहरैं उठहिं।
उठि उठि मिटि मिटि जाहिं,मुहमद खोज न पाइए॥ १२॥

छा-छाया जस बुंद अलोपू। ओठईं सौं आनि रहा करि गोपू॥
सोइ चित्त सो मनुवाँ जागे। ओहि मिलि कौतुक खेलै लागे॥
देखि पिंड कहँ बोली बोलै। अब मोहिं बिनु कस नैन न खोलै?॥
परमहंस तेहि ऊपर देई। सोऽहं सोऽहं साँस लेई॥
तन सराय, मन जानहु दीया। आसु तेल, दम बाती कीआ॥
दीपक महँ बिधि-जोति समानी। आपुहि बरै बाति निरबानी॥

---

बदि = आँख की पुतली के बीच का तिल। हेरत दिस्टि···समाई = इस बात को देखकर कुछ ज्ञान होता है कि किस प्रकार एक बिंदी या शून्य के भीतर शून्य से उत्पन्न जगत समाता है (हठयोग मे अनिमेष रूप से देर तक किसी बिंदु पर दृष्टि जमाने की एक क्रिया भी है जिसे त्राटक कर्म कहते हैं)। चख = नेत्र। उपजि उठै संसार = स्वप्न की दशा मे मनुष्य के भीतर ही एक संसार खड़ा हो जाता है (जिससे इस बात का संकेत मिलता है कि आत्मतत्त्व के भीतर ब्रह्मांड है)। जागत ऐस·····भँडार = पर जागने पर मनुष्य यह नहीं जानता कि वह कौन सा ऐसा भांडार है जहाँ से इतनी वस्तुएँ निकलती चली आती हैं। खोज = पता, निशान। (१३) छाया···अलोपू = इस संसार में आकर चित् तत्त्व का वह बिंदु अदृश्य रहता है। ओठईं सौं = वहाँ स्वर्ग से। ओठईं सौं·····गोपू = स्वर्ग से चित् तत्त्व के बिंदु अर्थात् जीवात्मा को लाकर यहाँ छिपा रखा है। बोली बोलै = चित् या जीव ताना मारता है। परमहंस = शुद्ध ब्रह्म या आत्मा। ऊपर देई = ऊपर से। सोऽहं = मै वह (ब्रह्म) हूँ। दम = साँस का आना जाना। बिधि-जोति = ईश्वर की ज्योति। बाति निरबानी = निर्वाण या मोक्ष का मार्ग दिखानेवाली बत्ती।

निघटे तेल झूरि भइ बाती। गा दीपक बुझि, अँधियरि राती॥

दोहा

गा सो प्रान-परेवा, के पींजर-तन छूँछ।
मुए पिंड कस फूलै? चेला गुरु सन पूछ॥

सोरठा

बिगरि गए सब नावँ, हाथ पाँव मुँह सीस धर।
तोर नाव केहि ठाँव, मुहमद सोइ बिचारिए॥१३॥

जा-जानहु अस तन महँ भेदू। जैसे रहै अंड महँ मेदू॥
बिरिछ एक लागीं दुइ डारा। एकहि तें नाना परकारा॥
मातु के रकत पिता के बिंदू। उपने दुवौ तुरुक औ हिंदू॥
रकत हुतें तन भए चौरंगा। बिंदु हुते जिउ पाँचौ संगा॥
जस ए चारिउ धरति बिलाहीं। तस वै पाँचौ सरगहि जाहीं॥
फूलै पवन, पानि सब गरई। अगिनि जारि तन माटी करई॥
जस वै सरग के मारग माहाँ। तस ए धरति देखि चित चाहा॥

---

निघटे = घट जाने पर, चुक जाने पर। नावँ = नाम रूप। बिगर गए..... धर = हाथ, पाँव इत्यादि जो अलग अलग नाम थे वे तो न रह गए। तोर नावँ..... बिचारिए = जब नाम रूपात्मक कोई वस्तु नहीं रह गई तब तेरी वास्तव सत्ता कहाँ है और क्या है, इसका विचार कर। (१४) जानहु अस भेदू = शरीर के भीतर इसी प्रकार अनेक-रूपात्मक सृष्टि है। मेदू = मेद, कलल जिससे अनेक अंग आदि बनते हैं। बिरिछ एक..डारा = एक ही ब्रह्म के दो पक्ष हैं—पुरुष और प्रकृति अथवा पितृ-पक्ष और मातृ-पक्ष; सृष्टि के आरंभ में आकाश या स्वर्ग पितृ-पक्ष का और पृथ्वी मातृ-पक्ष का अभिव्यक्त रूप हुआ। मातु के रकत..... बिंदू = माता के रज से और पिता के शुक्रबिंदु से सब मनुष्य उत्पन्न हुए (आत्मतत्त्व के समुद्र स्वर्ग से जीवात्माओं के रूप में बिंदुओं का आना पहले कह आए है)। चौरंगा = चार तत्त्वों से युक्त। हुते = से। जिउ पाँचौ संगा = ज्ञानेंद्रियों के सहित जीवात्मा (इंद्रियों से इंद्रियों के स्थूल अधिष्ठान न समझना चाहिए, बल्कि सवेदन-वृत्ति)। जस ए चारिउ.....जाहीं = मरने पर जैसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, प्रकृति के ये चारों तत्त्व पृथ्वी में मिल जाते हैं वैसे ही अपनी ज्ञान-वृत्तियों के सहित जीवात्मा स्वर्ग में फिर जा मिलता है। फूलै पवन = वायु से शव फूलता है।

दोहा

जस तन तस यह धरती, जस मन तैस अकास।
परमहंस तेहि मानस, जैसि फूल महँ बास॥

सोरठा

तन दरपन कहँ साजु दरसन देखा जौं चहै।
मन सौं लीजिय माँजि मुहमद निरमल होइ दिआ॥१४॥

झा-झाँखर-तन महँ मन भूलै। काँटन्ह माँह फूल जनु फूलै॥
देखहुँ परमहंस परछाहीं। नयन जोति सो बिछुरति नाहीं॥
जगमग जल महँ दीखत जैसे। नाहिं मिला, नहिं बेहरा तैसे॥
जस दरपन महँ दरसन देखा। हिय निरमल तेहि महँ जग देखा॥
तेहि संग लागी पाँचौ छाया। काम, कोह, तिस्ना, मद, माया॥
चख महँ नियर, निहारत दूरी। सब घट माँह रहा भरिपूरी॥
पवन न उड़ै, न भीजै पानी। अगिनि जरै जस निरमल बानी॥

दोहा

दूध माँझ जस घीउ है, समुद माहँ जस मोति।
नैन मीजि जो देखहु, चमकि उठै तस जोति॥

सोरठा

एकहि ते दुइ होइ, दुइ सौं राज न चलि सकै।
बीचु ते आपुहि खोइ, मुहमद एकै होइ रहु॥१५॥

ना-नगरी काया बिधि कीन्हा। लेइ खोजा पाया, तेइ चीन्हा॥
तन महँ जोग भोग औ रोगू। सूझि परै संसार-सँजोगू॥

---

जस तन.....अकास = शरीर वैसा ही स्थूल भौतिक तत्त्व है जैसे पृथ्वी और मन या चित् वैसा ही सूक्ष्म तत्त्व है जैसे स्वर्ग या आकाश। (१५) झाँखर = झाड़-झंखाड़। बानी = वर्ण, काति। दूध माँझ ..जोति = अर्थात् वह ज्योति भी इसी जगत् के भीतर भीतर भासित हो रही है। बीचु तें आपुहि खोइ = एक ही ब्रह्म के चित् और अचित् दो पक्ष हुए; दोनो के बीच तेरी अलग सत्ता कहाँ से आई? अपनी अलग सत्ता के भ्रम या अहंभाव को मिटाकर ब्रह्म में मिलकर एक हो जा। (१६) नगरी काया.....कीन्हा = ईश्वर ने इस शरीर की रचना एक नगर के रूप में की है। संसार-सँजोगू = ससार की रचना।

रामपुरी ओ कीन्ह कुकरमा। मौन लाइ सोधै अस्तर माँ॥
पै सुठि अगम पंथ बड़ बाँका। तस मारग जस सुई क नाका॥
बाँक चढ़ाव, सात खँड ऊँचा। चारि बसेरे जाइ पहूँचा॥
जस सुमेरु पर अमृत मूरी। देखत नियर, चढ़त बड़ि दूरी॥
नोवि हिवंचल जो तहँ जाई। अमृत-मूरि-पाइ सो खाई॥

दोहा

एहि बाट पर नारद बैठ कटक कै साज।
जो ओहि पेलि पईठै, करै दुवौ जग राज॥

सोरठा

'हौं' कहते भए ओट, पियै खंड मोसौं किएउ।
भए बहु फाटक कोट, मुहमद अब कैसे मिलहि? ॥१६॥

टा-टुक झाँकहु सातौ खंडा। खंडै खंड लखहु बरम्हंडा॥
पहिल खंड जो सनीचर नाऊँ। लखि न अँटकु, पौरी महँ ठाऊँ॥
दूसर खंड बृहस्पति तहँवाँ। काम-दुवार भोग-घर जहँवाँ॥
तीसर खंड जो मंगल जानहु। नाभि-कवँल महँ ओहि अस्थानहु॥
चौथ खंड जो आदित अहई। बाईं दिसि अस्तन महं रहई॥

---

रामपुरी = स्वर्ग; ब्रह्म का स्थान। कुकरमा = नरक। अस्तर = तह। सोधै अस्तर माँ = (जो उस रामपुरी या ब्रह्मद्वार तक पहुँचना चाहता हो वह) चुपचाप भीतरी तह में ढूँढ़े। बाँका = टेढ़ा, विकट। सुई क नाका = सुई का छेद। चारि बसेरे = योग के ध्यान, धारणा, प्रत्याहार और समाधि अथवा सूफियों के अनुसार शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारफत—साधक की ये चार अवस्थाएँ। जस सुमेरु पर अमृत मूरी = जैसे सुमेरु पर सजीवनी है उसी प्रकार ऊपर कपाल में ब्रह्म स्वरूपा मूर्द्धज्योति है। एहि बाट पर = सुषुम्ना का मार्ग जो नाभिचक्र से ऊपर ब्रह्मद्वार (दशम द्वार) की ओर गया है। 'हौं' कहते भए ओट = अहंकार आते ही ब्रह्म और जीव के बीच व्यवधान पड़ गया। पियै = प्रिय या ईश्वर ने। खंड = भेद। (१७) पहिल खण्ड जो सनीचर नाऊँ = (जिस प्रकार ऊपर नीचे ग्रहों की स्थिति है उसी प्रकार शरीर में क्रमशः सात खंड हैं जिनमें) सब से पहले या नीचे सनीचर है जो शरीर में पौली या लात समझना चाहिए। कवि ने जो एक के ऊपर दूसरे ग्रह की स्थिति लिखी है वह ज्योतिष के ग्रंथों के अनुसार तो ठीक है पर इससे हठयोग के मूलाधार और चक्रों की व्यवस्था ठीक नहीं बैठती।

पाँचवँ खंड सुक्र उपराहीं। कंठ माहँ औ जीभ-तराहीं॥
छठएँ खंड बुद्ध कर बासा। दुइ भौहन्ह के बीच निवासा॥

दोहा

सातवँ सोम कपार महँ, कहा सो दसवँ दुवार।
जो वह पँवरि उघारै सो बड़ सिद्ध अपार॥

सोरठा

जौ न होत अवतार, कहाँ कुटुम परिवार सब।
झूठ सबै संसार, मुहमद चित्त न लाइए॥ १७॥

ठा-ठाकुर बड़ आप गोसाईं। जेइ सिरजा जग अपनिहि नाईं॥
आपुहि आपु जो देखै चहा। आपनि प्रभुता आपु सौं कहा॥
सबै जगत दरपन कै लेखा। आपुहि दरपन, आपुहि देखा॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू। आपुहि सौजा, आपु अहेरू॥
आपुहि पुहुप फूलि बन फूले। आपुहि भँवर बास-रस भूले॥
आपुहि फल, आपुहि रखवारा। आपुहि सो रस चाखनहारा॥
आपुहि घट घट महँ मुख चाहै। आपुहि आपन रूप सराहै॥

दोहा

आपुहि कागद, आपु मसि, आपुहि लेखनहार।
आपुहि लिखनी, आखर, आपुहि पँडित अपार॥

सोरठा

केहु नहि लागिहि साथ जब गौनब कबिलास महँ।
चलब झारि दोउ हाथ मुहमद यह जग छोड़ि कै॥ १८॥

ड-डरपहु मन सरगहि खोई। जेहि पाछे पछितावा न होई॥
गरब करै, जो 'हौं हौं' करई। बैरी सोइ गोसाईं क अहई॥

---

(१८) सिरजा = उत्पन्न किया। अपनिहि नाईं = अर्थात् यह जगत् ईश्वर का ही प्रतिभास है। आपुहि आपु जौ देखै चहा = अपने आपको जब देखना चाहा, अर्थात् अपनी शक्ति के विस्तार की लीला जब देखनी चाही (शक्ति या प्रकृति ब्रह्म की ही है, उससे पृथक् उसकी कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं जैसा कि साख्यवाले मानते हैं)। सबै जगत दरपन कै लेखा = इस जगत् को दर्पण समझो जिसमें ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है (प्रतिबिंबवाद)। मुख चाहै = मुख देखता है। (१९) सरगहि खोई = आदम अपराध के कारण ही स्वर्ग से निकाले गए इससे मन में डरा।

जो जानै निहचय है मरना। तेहि कहँ 'मोर तोर' का करना ?॥
नैन, बैन, सरवन विधि दीन्हा। हाथ पाँव सब सेवक कीन्हा॥
जेहिके राज भोग-सुख करई। तेइ सवाद जगत जस चहई॥
सो सब पूछिहि, मैं जो दीन्हा। तै ओहि कर कस अवगुन कीन्हा॥
कौन उतर, का करब बहाना। बाँधे बधुर, लवै कित धाना ?॥

दोहा

कै किछु लेइ, न सकब तब, नितिहि अवधि नियराइ।
सो दिन आइ जो पहुँचै, पुनि किछु कीन्ह न जाइ॥

सोरठा

जेइ न चिन्हारी कीन्ह, यह जिउ जौ लहि पिंड महँ।
पुनि किछु परै न चीन्हि, मुहमद यह जग धुंध होइ॥१९

ढा-ढारै जो रकत पसेऊ। सो जानै एहि बात क भेऊ॥
जेहि कर ठाकुर पहरे जागै। सो सेवक कस सोवै लागै ?॥
जो सेवक सोवै चित देई। तेहि ठाकुर नहि मया करेई॥
जेइ अवतरि उन्ह कहँ नहि चीन्हा। तेइ यह जनम अँबिरथा कीन्हा॥
मूँदे नैन जगत महँ अवना। अंधधुंध तैसे पै गवना॥
तेइ किछु स्वाद जागि नहिं पावा। भरा मास तेइ सोइ गँवावा॥

---

जगत = जगत् में। पूछिहि = पूछेगा। मैं जो दीन्हा = मैंने जो हाथ, पैर आदि तुझे दिए थे। अवगुन कीन्हा = दुरुपयोग किया, उसे बुरे काम में लाया। लवै = काटे। धना = धाना। कै किछु लेइ = कुछ कर ले। न सकब तब = फिर पीछे कुछ नहीं कर सकेगा। चिन्हारी = जान-पहचान। जौ लहि = जब तक। पुनि किछु परै न चीन्हि = जब शरीर और आत्मा का वियोग हो जायगा तब फिर अनेक रूपो का ज्ञान नहीं रह जायगा, ईश्वर को नही पहचान सकेगा (जायसी बाह्य और अन्तःकरण-विशिष्ट आत्मा को ही ब्रह्म के परिचय के योग्य समझते है यह बात ध्यान देने की है)। धुंध = अधकार। यह जग धुध होइ = यह ससार अधकार हो जायगा अर्थात् इसके नाना रूप, जिन्हे ब्रह्म के स्वरूप का प्रतिबिम्ब कह आए है, तिरोहित हो जायँगे। (२०) पसेऊ = प्रस्वेद, पसीना। सोवै = सोने मे। तेइ किछु...पावा = इस जगत् में आकर भी सचेत होकर नाना रूपों मे ईश्वर के साक्षात्कार का स्वाद न लेने पाया। भरा मास...गँवावा = बरसात की भरनी का महीना (जिसमें उत्तम बीज बोने का उद्योग करना चाहिए) उसने सोकर खो दिया।

रहै नींद-दुख-भरम लपेटा। आइ फिरै तिन्ह कतहुँ न भेंटा॥

दोहा

धावत बीते रैनि दिन, परम सनेही साथ।
तेहि पर भएउ बिहान जब रोइ रोइ मीजै हाथ॥

सोरठा

लछिमी सत कै चेरि लाल करै बहु, मुख चहै।
दीठि न देखै फेरि मुहमद राता प्रेम जो॥२०॥

नि-निसता जो आपु न भएऊ। सो एहि रसहि मारि बिष किएऊ॥

यह संसार झूठ, थिर नाहीं। उठहि मेघ जेउँ जाइ बिलाहीं॥
जो एहि रस के बाएँ भएऊ। तेहि कहं रस बिषभर होइ गएऊ॥
तेइ सब तजा अरथ बेवहारू। औ घर बार कुटुम परिवारू॥
खीर खाँड़ तेहि मीठ न लागे। उहै बार होइ भिच्छा माँगै॥
जस जस नियर होइ वह देखै। तस तस जगत हिया महं लेखै॥
पुहुमी देखि न लावै दीठी। हेरै नवै न आपनि पीठी॥

दोहा

छोड़ि देहु सब धंधा, काढ़ि जगत सौं हाथ।
घर माया कर छोड़ि कै, धरु काया कर साथ॥

सोरठा

सॉईं के भंडारु, बहु मानिक मुकुता भरे।
मन-चोरहि पैसारु, मुहमद तौ किछु पाइए॥२१॥

---

तिन्ह = उन ईश्वर को। धावत बीते·····साथ = खोज मे इधर उधर दौड़ते रात दिन बीते और परम स्नेही प्रियतम (ईश्वर) साथ ही था, कहीं बाहर नही। लाल = लालसा। दीठि न·····जो = किंतु जो ईश्वर के प्रेम में रँगा है वह उस लक्ष्मी की ओर फिरकर नहीं देखता। (२१) निसता = बिना सत्य का। एहि रसहि = इस संसार के रस या सुख को। बिष किएऊ = अपने लिये विष सा समझता है। बिषभर = विषभरा। उहै बार = उसी ईश्वर के द्वार पर। नियर होइ = निकट से। हेरै नवै·····पीठी = पृथ्वी मे कुछ ढूँढ़ने के लिये अपनी पीठ नहीं झुकाता। धरु काया कर साथ = अपनी काया के भीतर खोज कर। पैसारु = घुसा दे। मन-चोरहि पैसारु = मन-रूपी चोर को उस दसवे द्वार मे पहुँचा (मिलाइए—"चोर पैठ जस सेधि सँवारी"—पदमावत; पार्वती-महेश-खंड)।

**ता**-तप साधहु एक पथ लागे। करहु सेव दिन राति, सभागे ! ॥
ओहि मन लावहु, रहै न रूठा। छोड़हु झगरा, यह जग झूठा ॥
जब हँकार ठाकुर कर आइहि। एक घरी जिउ रहै न पाइहि ॥
ऋतु वसंत सब खेल धमारी। दगला अस तन, चढ़व अटारी ! ॥
सोइ सोहागिनि जाहि सोहागू। कंत मिलै जो खेलै फागू ॥
कै सिंगार सिर सेंदुर मेलै। सबहि आइ मिलि चाँचरि खेलै ॥
औ जो रहै गरब कै गोरी। चढ़ै दुहाग, जरै जस होरी ॥

दोहा

खेलि लेहु जस खेलना, ऊख आगि देइ लाइ।
झूमरि खेलहु झूमि कै पूजि मनोरा गाइ ॥

सोरठा

कहाँ तें उपने आइ, सुधि बुधि हिरदय उपजिए।
पुनि कहँ जाहिं समाइ, मुहमद सो खँड खोजिए ॥२२॥

**था**-थापहु वहु ज्ञान विचारू। जेहि महँ सब समाइ संसारू ॥
जैसी अहै पिरथिमी सगरी। तैसिहि जानहु काया-नगरी ॥
तन महँ पीर औ वेदन पूरी। तन महँ वैद औ ओषद मूरी ॥
तन महँ विष औ अमृत वसई। जानै सो जो कसौटी कसई ॥
का भा पढ़े गुने औ लिखे ?। करनी साथ किए औ सिखे ॥
आपुहि खोइ ओहि जो पावा। सो बीरौ मनु लाइ जमावा ॥
जो ओहि हेरत जाइ हेराई। सो पावै अमृत-फल खाई ॥

---

(२२) ओहि = उस ईश्वर को । हँकार = बुलावा । आइहि = आएगा । दगला = चोल, कुरता । दगला...अटारी = शरीर पर कपड़ा ऐसा मैला है और जाना है ऊपर प्रियतम के महल पर । दुहाग = दुर्भाग्य । ऊख = शरीर या मन जिसमे संसार का रस रहता है । लाइ = जलाकर । मनोरा = मनोरा झूमक, एक प्रकार के गीत । उपने = उत्पन्न हुए । उपजिए = उत्पन्न कीजिए, लाइए । (२३) कसौटी कसई = शरीर को तप आदि की कसौटी पर कसे तो अमृत विष का पता लग जायगा । करनी साथ किए = देखादेखी कर्मों के करने से । ओहि = उस ईश्वर को । बीरौ = बिरवा, पौधा, पेड़ । सो बीरौ...जमावा = उसने मानों ऐसा पेड़ लगाया जिसका फल अमृत है ।

दोहा

आपुहि खोए पिउ मिलै, पिउ खोए सब जाइ।
देखहु बूझि विचार मन, लेहु न हेरि हेराइ॥

सोरठा

कटु है पिउ कर खोज; जो पावा सो मरजिया।
तहँ नहिं हँसी, न रोज; मुहमद ऐसै ठाँवँ वह॥२३॥

दा-दाया जाकहँ गुरु करई। सो सिख पंथ समुझि पग धरई॥
सात खंड औ चारि निसेनी। अगम चढ़ाव, पंथ तिरवेनी॥
तौ वह चढ़ै जौ गुरू चढ़ावै। पाँव न डगै, अधिक बल पावै॥
जो गुरु सकति भगति भा चेला। होइ खेलार खेल बहु खेला॥
जो अपने बल चढ़ि कै नाँघा। सो खसि परा, टूटि गइ जाँघा॥
नारद दौरि संग तेहि मिला। लेइ तेहि साथ कुमारग चला॥
तेली-बैल जो निसि दिन फिरई। एकौ परग न सो अगुसरई॥

दोहा

सोइ सोधु लागा रहै जेहि चलि आगे जाइ।
नतु फिरि पाछे आवई, मारग चलि न सिराइ॥

सोरठा

सुनि हस्ती कर नावँ, अँधरन्ह टोवा धाइ कै।
जेइ टोवा जेहि ठावँ, मुहमद सो तैसै कहा॥२४॥

---

लेहु न हेरि हेराइ = स्वय खो जाकर (अपने को खोकर) उसे ढूँढ़ न लो। कटु = कड़ुवा, कठिन। मरजिया = जान जोखों मे डालकर विकट स्थानों से व्यापार की वस्तुएँ (जैसे मोती, सिलाजीत) लानेवाले। रोज = रोदन, रोना। (२४) दाया = दया। सिख = शिष्य, चेला। निसेनी = सीढ़ी। पंथ तिरवेनी = इला, पिंगला और सुषुम्ना तीनो नाड़ियाँ। सकति = शक्ति। खसि परा = गिर पड़ा। नारद = शैतान। अगुसरई = अग्रसर होता है, आगे बढ़ता है। सोधु = खोज, मार्ग। जेहि = जिससे। नतु = नहीं तो। सिराइ = चुकता है, खतम होता है। सुनि हस्ती कर...कहा = चार अंधे, यह देखने के लिये कि हाथी कैसा होता है, हाथी को टटोलने लगे। जिसने पूँछ टटोली वह कहने लगा रस्सी के ऐसा होता है, जिसने पैर टटोला वह कहने लगा कि खंभे के ऐसा होता है, इसी प्रकार जिसने जो अंग टटोला वह उसी के अनुसार हाथी का स्वरूप कहने लगा (यही दशा ईश्वर और जगत् के संबंध मे लोगो के ज्ञान की है। 'एकांग-दस्सिन' का यह दृष्टांत पहले पहल भगवान् बुद्ध ने देकर समझाया था)।

**धा**-धावहु तेहि मारग लागे। जेहि निसतार होइ सब आगे॥
विधिना के मारग हैं ते ते। सरग-नखत तन-रोवाँ जेते॥
जेइ हेरा तेइ तहँवैं पावा। भा संतोष, समुझि मन गावा॥
तेहि मह पंथ कहौं भल गाई। जेहि दूनौ जग छाज बड़ाई॥
सो बड़ पंथ मुहम्मद केरा। है निरमल कविलास बसेरा॥
लिखि पुरान विधि पठवा साँचा। भा परवाँन, दुवौ जग बाँचा॥
सुनत ताहि नारद उठि भागै। छूटै पाप, पुन्नि सुनि लागै॥

दोहा

वह मारग जो पावै सो पहुँचै भव पार।
जो भूला होइ अनतहि तेहि लूटा वटपार॥

सोरठा

साईं केरा बार, जो थिर देखै औ सुनै।
नइ नइ करै जोहार मुहमद निति उठि पाँच बेर॥२५॥

**ना**-नमाज है दीन क थूनी। पढ़ै नमाज सोइ बड़ गूनी॥
कही तरीकत चिसती पीरू। उधरित असरफ औ जहँगीरू॥
तेहि के नाव चढ़ा हौं धाई। देखि समुद-जल जिउ न डेराई॥
जेहि के ऐसन खेवक भला। जाइ उतरि निरभय सो चला॥
राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुड्डू की॥

(२५) विधिना के मारग.....जेते = इसमे जायसी ने ईश्वर तक पहुँचने के लिये अनेक मार्गों का उदारता पूर्वक स्वीकार किया है, यद्यपि अपने इसलाम मत के अनुरोध से उन्होने 'मुहम्मद के पथ' की प्रशसा की है। पुरान = कुरान। विधि = ईश्वर। परवाँन = प्रमाण। सुनत ताहि.....भागै = कुरान की आयत सुनते ही शैतान भाग जाता है। पुन्नि = पुण्य। अनतहि = अन्यत्र, और जगह। वटपार = डाकू, (काम, क्रोध आदि)। बार = द्वार। नइ नइ = झुक-झुककर। जोहार = वंदना, सिजदा। पाँच बेर = पाँचो वक्त की नमाज। (२६) दीन = धर्म, मजहब। थूनी = टेक, खम्भा। गूनी = गुणी। तरीकत = बाहरी क्रिया-कलाप से परे होकर हृदय की शुद्धता पूर्वक ईश्वर का ध्यान। चिसती = निजामुद्दीन चिश्ती। पीर = गुरु, आचार्य्य। उधरित = उद्धरणी। की। खेवक = खेनेवाला। हकीकत = सत्य का बोध। चूकी = चूक भूल। मारफत = सिद्धावस्था। बुड्डू की = बुड्ढी, गोता।

ढूँढ़ि उठै लेइ मानिक मोती। जाइ समाइ जोति महँ जोती॥
जेहि कहँ उन्ह अस नाव चढ़ावा। कर गहि तीर खेइ लेइ आवा॥

दोहा

साँची राह सरीअत, जेहि बिसवास न होइ।
पाँव राख तेहि सीढ़ी निभरम पहुँचै सोइ॥

सोरठा

जेइ पावा गुरु मीठ सो सुख-मारग महँ चलै।
सुख अनंद भा डीठ, मुहमद साथी पोढ़ जेहि॥२६॥

पा-पाएउँ गुरु मोहदी मीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा॥
नावँ पियार सेख बुरहानू। नगर कालपी हुत गुरु-थानू॥
औ तिन्ह दरस गोसाईं पावा। अलहदाद गुरु पंथ लखावा॥
अलहदाद गुरु सिद्ध नवेला। सैयद मुहमद के वै चेला॥
सैयद मुहमद दीनहिं साँचा। दानियाल सिख दीन्ह सुवाचा॥
जुग जुग अमर सो हजरत ख्वाजे। हजरत नवी रसूल नेवाजे॥
दानियाल तइँ परगट कीन्हा। हजरत ख्वाज खिजिर पथ दीन्हा॥

दोहा

खड़ग दीन्ह उन्ह जाइ कहँ, देखि डरै इबलीस।
नावँ सुनत सो भागै, धुनै ओट होइ सीस॥

सोरठा

देखि समुद महँ सीप, बिनु बूड़े पावै नहीं।
होइ पतंग जल-दीप मुहमद तेहि धँसि लीजिए॥२७॥

फा-फल मीठ जो गुरु हुँत पावै। सो बीरौ मन लाइ जमावै॥
जौ पखारि तन आपन राखै। निसि दिन जागै सो फल चाखै॥

---

जाइ समाइ···जोती = ब्रह्म की ज्योति में यह ज्योति (आत्मा) लीन हो जाती है। बिसवास = विश्वासघात, धोखा। डीठ भा = दिखाई पड़ा। पोढ़ = मजबूत। (२७) गुरु = यहाँ गुरु का गुड़ के साथ श्लेष भी है। मोहदी = मुहीउद्दीन। हुत = था। गुरुथानू = गुरु का स्थान। सुवाचा = सुन्दर वचनों से। नेवाजे = निवाजिश की; अनुग्रह किया। तइँ = प्रति, के सामने। पथ दीन्हा = रास्ता पकड़ाया। जाइ कहँ = ईश्वर के मार्ग पर जाने के लिये। इबलीस = शैतान। (२८) गुरु हुँत = गुरु से। बीरौ = पेड़। पखारि = धोकर।

चित भूलै जस भूलै ऊखा। तजि कै दोउ नींद औ भूखा॥
चिता रहै ऊख पहँ सारू। भूमि कुल्हाड़ी करै प्रहारू॥
तन कोल्हू, मन कातर फेरै। पाँचौ भूत आतमहि पेरै॥
जैसे भाठी तप दिन राती। जग-धंधा जारै जस बाती॥
आपुहि पेरि उड़ावै खोई। तब रस औटि पाकि गुड़ होई॥

दोहा

अस कै रस औटावहु जामत गुड़ होइ जाइ।
गुड़ तें खाँड़ मीठि भइ, सब परकार मिठाइ॥

सोरठा

धूप रहै जग छाइ, चहूँ खंड संसार महँ।
पुनि कहँ जाइ समाइ, मुहमद सो खंड खोजिए॥२८॥

**बा**-बिनु जिउ तन अस अँधियारा। जौ नहि होत नयन उजियारा॥
मसि क बुंद जो नैनन्ह माहीं। सोई प्रेम-अंस परछाहीं॥
ओहि जोति सौ परखै हीरा। ओहि सौं निरमल सकल सरीरा॥
उहै जोति नैनन्ह महँ आवै। चमकि उठै जस बीजु देखावै॥
मग ओहि सगरे जाहिं विचारू। सॉकर मुँह तेहि वड़ विसतारू॥
जहवाँ किछु नहिं, है सत करा। जहाँ छूँछ तहँ वह रस भरा॥
निरमल जोति बरनि नहि जाई। निरखि सुन्न यह सुन्न समाई॥

दोहा

माटी तें जल निरमल, जल ते निरमल वाउ।
वाउहु ते सुठि निरमल, सुनु यह जाकर भाउ॥

सोरठा

इहै जगत कै पुन्नि, यह जप तप सब साधना।
जानि परै जेहि सुन्न मुहमद सोई सिद्ध भा॥२९॥

---

सारू = सार, तत्त्व। कातर = कोल्हू का पाटा जिस पर बैठकर हाँकनेवाला बैल हाँकता है। तप = जलती है। खोई = गन्ने की सीठी जिसका रस निकाल लिया गया हो। अस कै = इतना। (२६) बुंद = बिंदी अर्थात् पुतली के बीच का तिल। सतकरा = सत्य की ज्योति। वह रस = अर्थात् ईश्वर का भाव। यह जाकर भाउ = यह सब भाव जिसका है; जिससे संसार के रूप का दर्शन होता है और मन में भावना होती है अर्थात् ज्योति या तेज। जानि परै जेहि सुन्न = जिसे इस शून्य का भेद मिल गया (एक परमाणु के भीतर ही सारे

अ-अल सोइ जो सुन्नहि जानै। सुन्नहि तें सब जग पहिचानै॥
सुन्नहि तें है सुन्न उपाती। सुन्नहि तें उपजहिं बहु भाँती॥
सुन्नहि माँझ इंद्र बरम्हंडा। सुन्नहि तें टीके नवखंडा॥
सुन्नहि तें उपजे सब कोई। पुनि बिलाई सब सुन्नहि होई॥
सुन्नहि सात सरग उपराहीं। सुन्नहि सातौ धरति तराही॥
सुन्नहि ठाट लाग सब एका। जीवहिं लाग पिंड सगरे का॥
सुन्नम सुन्नम सब उतिराई। सुन्नहि महँ सब रहे समाई॥

दोहा

सुन्नहि महँ मन-रूख जस काया महँ जीउ।
काठी माँझ आगि जस, दूध माहँ जस घीउ॥

सोरठा

जावँन एकहि बूँद जामै देखहु छीर सब।
मुहमद मोति समुद काढ़हु मथनि अरंभ कै॥३०॥

अ-मन मथन करै तन खीरू। दुहै सोइ जो आपु अहीरू॥
पाँचौ भूत आतमहि मारै। दरब-गरब करसी कै जारै॥
मन माठा सम अस कै धोवै। तन खैला तेहि माहँ बिलोवै॥
जपहु बुद्धि कै दुइ सन फेरहु। दही चूर अस हिया अभेरहु॥
पछवाँ कदुई कैसन फेरहु। ओहि जोति महँ जोति अभेरहु॥
जस अंतरपट साढ़ी फूटै। निरमल होइ मया सब छूटै॥

---

ब्रह्मांड की व्यवस्था छिपी हुई है इसी बात की भावना योगी बिंदु द्वारा करते हैं)। (३०) उपाती = उत्पत्ति। टिके = टिके हुए है। ठाट = सारे संसार का ढाँचा। लगा सब एका = उसी के एक शून्य से लगा अर्थात् उसी पर ठहरा है। जीवहि.....सगरे का = सब का शरीर जीव पर ही टिका हुआ है। सुन्नम सुन्नम = शून्य ही शून्य मे। सुन्नहि महँ मन-रूख = उसी शून्य के भीतर ही मनरूपी वृक्ष (सर्वात्मा) है। काठी = लकड़ी। जावँन = थोड़ा सा दही या खटाई जिसे दूध मे डालने से वह जमकर दही हो जाता है। (३१) करसी = उपले की राख। खैला = कवेड, मथानी। दुइ सन फेरहु = एक ही में ध्यान जमाओ, द्विविधा छोड़ो। चूर = चूर हो, फूटे। पछवाँ = पीछे से। कदुई = छोटा बेला या दीया जिसे मटके मे डालकर दही निकालते हैं। जोति = ब्रह्मज्योति। अभेरहु = मिलाओ। अंतरपट = माया का परदा जिससे हृदय उस ब्रह्मज्योति का साक्षात्कार नहीं कर सकता। मया = माया।

माखन मूल उठै लेइ जोती। समुद मॉह जस उलथै मोती॥

दोहा

जस घिउ होइ जराइ कै तस जिउ निरमल होइँ।
मथै महेरा दूरि करि, भोग करै सुख सोइ॥

सोरठा

हिया कँवल जस फूल, जिउ तेहि महँ जस बासना।
तन तजि मन महँ भूल, मुहमद तब पहचानिए॥३१॥

**जा**-जानहु जिउ बसै सो तहँवाँ। रहै कँवल-हिय संपुट जहँवाँ॥
दीपक जैस बरत हिय-आरे। सब घर उजियर तेहि उजियारे॥
तेहि महँ अंस समानेउ आई। सुन्न सहज मिलि आवै जाई॥
तहाँ उठै धुनि आउंकारा। अनहद सबद होइ झनकारा॥
तेहि महँ जोति अनूपम भाँती। दीपक एक, बरै दुइ बाती॥
एक जो परगट होइ उजियारा। दूसर गुपुत सो दसवँ दुवारा॥
मन जस टेम, प्रेम जस दीया। आसु तेल, दम बाती कीया॥

दोहा

तहँवा जस*जस भँवरा फिरा करै चहुँ पास।
मीचु पवन जब पहुँचै, लेइ फिरै सो बास॥

सोरठा

सुनहु बचन एक मोर, दीपक जस आरे बरै।
सब घर होइ अँजोर, मुहमद तस जिउ हीय महँ॥३२॥

---

उलथै = उमड़कर ऊपर आता है। मथै = मथे। महेरा = मही, मट्ठा। बासना = बास, सुगंध। (३२) कँवल-हिय = सुषुम्ना नाड़ी पर जो हृदय-कमल है। आरे = आले पर। अंस = ब्रह्म का अश। सुन्न = शून्य निर्गुण अव्यक्त ब्रह्मसत्ता। सहज = प्रकृति। आउकारा = ओंकार प्रणव। अनहद सबद = अनाहत नाद; यह अतःस्थ नाद आँख, कान, नाक आदि इंद्रियो के व्यापारो को बन्द करके ध्यान करने से सुनाई पड़ता है। दुइ बाती = एक अंतर्मुख, दूसरी बहिर्मुख। दसवँ दुआरा = ब्रह्मरध्र। टेम = दीपक की लौ। आसु = असु, प्राण। दम = श्वास।

* पाठांतर—जिउ।

सो बास = जीव जो हृदय-कमल मे सुगंध के समान है।

दो०-रातहु अब तेहि के रंगा। वेगि लागु प्रीतम के संगा॥
अरध उरध अस है दुइ हीया। परगट, गुपुत वरै जस दीया॥
परगट मया मोह जस लावै। गुपुत सुदरसन आप लखावै॥
अस दरगाह जाइ नहि पैठा। नारद पँवरि कटक लेइ बैठा॥
ताकहँ मंत्र एक है साँचा। जो वह पढ़ै जाइ सो बाँचा॥
पंडित पढ़ै सो लेइ लेइ नाऊँ। नारद छाँड़ि देइ सो ठाऊँ॥
जेकरे हाथ होइ वह कूँजी। खोलि केवार लेइ सो पूजी॥

दोहा

उघरै नैन हिया कर, आछै दरसन रात।
देखै भुवन सो चौदहौ औ जानै सब बात॥

सोरठा

कंत पियारे भेट, देखौ तूलम तूल* होइ।
भए वयस दुइ हेंठ मुहमद निति सरवरि करै॥३३॥

ला०-लखई सोई लखि आवा। जो एहि मारग आपु गँवावा॥
पीउ सुनत धनि आपु विसारै। चित्त लखै, तन खोइ अडारै॥
'हौं हौं' करव अडारहु खोई। परगट गुपुत रहा भरि सोई॥
बाहर भीतर सोइ समाना। कौतुक सपना सो निजु जाना॥
सोइ देखै औ सोई गुनई। सोई सब मधुरी धुनि सुनई॥
सोई करै कीन्ह जो चहई। सोई जानि बूझि चुप रहई॥
सोई घट घट होइ रस लेई। सोइ पूछै, सोइ ऊतर देई॥

---

(३३) अरध···हीय = मन या हृदय एक अंतर्मुख है दूसरा बहिर्मुख; अंतर्मुख से आत्मस्वरूप का ज्ञान होता है और बहिर्मुख से बाह्य जगत के विषयो का। नारद = शैतान। कटक = काम, क्रोध, मोह आदि। जेकरे = जिसके (अवध)। सो पूँजी = अर्थात् ईश्वर का दर्शन। आछै दरसन रात = दर्शन पाकर आनंद मग्न हो। तूलम तूल = बराबर पर, आमने सामने। भए वयस दुइ हेंठ = अवस्था में तीसरे स्थान पर होने पर भी (पहले ईश्वर, फिर फिरिश्ते हुए, उसके पीछे मनुष्य हुआ), अवस्था मे कनिष्ठता होने पर भी। सरवरि = बराबरी।

* पाठांतर—देखौ जो मतलूब होइ।

(३४) आपु गँवावा = अपने को खो दे। धनि = स्त्री। खोइ अडारै = खो डालै। खोइ अडारहु = खो डालो।

दोहा

सोई साजै अँतरपट, खेलै आपु अकेल।
वह भूला जग सेंती, जग भूला ओहि खेल॥

सोरठा

जौ लगि सुनै न मीचु, तौ लगि मारै जियत जिउ।
कोई हुतेउ न बीचु, मुहमद एकै होइ रहै॥३४॥

**वा**-वह रूप न जाइ बखानी। अगम अगोचर अकथ कहानी॥
छंदहि छंद भएउ सो बंदा। छन एक माहँ हँसी रोवंदा॥
बारे खेल, तरुन वह सोवा। लउटी बूढ़ लेइ पुनि रोवा॥
सो सब रंग गोसाईं केरा। भा निरमल कविलास बसेरा॥
सो परगट महँ आइ भुलावै। गुपुत में आपन दरस देखावै॥
तुम अनु गुपुत मते तस सेऊ। ऐसन सेउ न जानै केऊ॥
आपु मरे बिनु सरग न छूवा। आँधर कहहि, चाँद कहँ ऊवा?॥

दोहा

पानी महँ जस बुल्ला, तस यह जग उतिराइ।
एकहि आवत देखिए, एक है जगत बिलाइ॥

सोरठा

दीन्ह रतन बिधि चारि, नैन, बैन, सरवन्न मुख।
पुनि जब मेटिहि मारि, मुहमद तब पछिताव मै॥३५॥

**सा**-साँसा जौ लहि दिन चारी। ठाकुर से करि लेहु चिन्हारी॥
अंध न रहहु, होहु डिठियारा। चीन्हि लेहु जो तोहि सँवारा॥

---

जग सेंती = ससार से। ओहि खेल = उसके खेल में। जौ लगि...मीचु = जब तक मृत्यु न आ जाय। मारै जियत जिउ = जीते जी जीव को मारे, अपनी अलग सत्ता भूल जाय या मन का दमन करे। (३५) छंदहि छंद = नकल ही नकल मे; खेल ही खेल में। बदा = बँधुवा, बदी। रोवदा = रोना। उलटी = लकुटी, लाठी। आइ भुलावै = ससार मे आकर भूला हुआ दिखाई पड़ता है। आपन दरस = अपना शुद्ध स्वरूप। अनु = फिर। गुपुत मते = गुप्त रूप से, मन के भीतर ही भीतर। तस = इस प्रकार। केऊ = कोई। आपु मरे...छूवा = बिना मरे स्वर्ग नहीं दिखाई देता (कहावत)। बुल्ला = बुलबुला। मेटिहि = मिटावेगा, नष्ट कर देगा। (३६) चिन्हारी = जान पहचान। डिठियारा = दृष्टिवाला।

पहिले से जो ठाकुर कीजिय। ऐसे जियन मरन नहिं छीजिय॥
छाँड़हु घिउ औ मछरी माँसू। सूखे भोजन करहु गरासू॥
दूध, माँसु, घिउ कर न अहारू। रोटी सानि करहु फरहारू॥
एहि विधि काम घटावहु काया। काम, क्रोध, तिसना, मद, माया॥
सब बैठहु वज्रासन मारी। गहि सुखमना पिंगला नारी॥

दोहा

प्रेम तंतु तस लाग रहु करहु ध्यान चित बाँधि।
पारस जैस अहेर कहँ लाग रहै सर साधि॥

सोरठा

अपने कौतुक लागि उपजाएन्हि बहु भाँति कै।
चीन्हि लेहु सो जागि, मुहमद सोइ न खोइए॥३६॥

खेला-खेलहु, खेलहु ओहि भेंटा। पुनि का खेलहु, खेल समेटा॥
कठिन खेल औ मारग सँकरा। बहुतन्ह खाइ फिरे सिर टकरा॥
मरन-खेल देखा सो हँसा। होइ पतंग दीपक महँ धँसा॥
तन-पतंग कै भिरिंग कै नाई। सिद्ध होइ सो जुग जुग ताई।
बिनु जिउ दिए न पावै कोई। जो मरजिया अमर भा सोई॥
नीम जो जामै चंदन पासा। चंदन बेधि होइ तेहि बासा॥
पावँन्ह जाइ बली सन टेका। जौ लहि जिउ तन, तौलहि भेका॥

दोहा

अस जानै है सब महँ औ सब भावहि सोइ।
हौं कोहाँर कर माटी, जो चाहै सो होइ॥

सोरठा

सिद्ध पदारथ तीनि बुद्धि, पावँ औ सिर, कया।
पुनि लेइहि सब छीनि, मुहमद तब पछितावै मैं॥३७॥

---

जियन मरन = जीवन-मरण के चक्र मे। छीजिय = नष्ट हों। वज्रासन = योग मे एक आसन। सुखमना = सुषुम्ना नाड़ी। तंतु = तत्त्व। पारधि = अहेरी, शिकारी। (३७) ओहि भेंटा = उसके सयोग या मिलाप मे। टकरा = टक्कर, ठोकर। तन पतंग...नाईं = जैसे पतंग अपना स्वरूप छोड़ भृंग के रूप का हो जाता है। बली सन टेका = बली का सहारा ले। भेका = वेष, रूप। कया = काया में।

**सा**-साहस जाकर जग पूरी। सो पावा वह अमृत-मूरी॥
कहौं मंत्र जो आपनि पूँजी। खोलु केवारा ताला कूँजी॥
साठि बरिस जो लपई झपई। छन एक गुपुत जाप जो जपई॥
जानहु दुवौ बराबर सेवा। ऐसन चलै मुहमदी खेवा॥
करनी करै जो पूजै आसा। सँवरै नावँ जो लेइ लेइ साँसा॥
काठी घँसत उठै जस आगी। दरसन देखि उठै तस जागी॥
जस सरवर महँ पंकज देखा। हिय कै आँखि दरस सब लेखा॥

दोहा

जासु कया दरपन कै देखु आप मुँह आप।
आपुहि आपु जाइ मिलु जहँ नहि पुन्नि न पाप॥

सोरठा

मनुवाँ चंचल ढाँप, बरजे अहथिर ना रहै।
पाल पेटारे साँप, मुहमद तेहि विधि राखिए॥ ३८॥

**हा**-हिय ऐसन बरजे रहई। बूड़ि न जाइ, बूड़ अति अहई॥
सोइ हिरदय कै सीढ़ी चढ़ई। जिमि लोहार घन दरपन गढ़ई॥
चिनगि जोति करसी तें भागै। परम तंतु परचावै लागै॥
पाँच भूत लोहा गति तावै। दुहूँ साँस भाठी सुलगावै॥
कया ताइ कै खरतर* करई। प्रेम के सँड़सी पोढ़ कै धरई॥
हनि हथेव हिय दरपन साजै। छोलनी जाप लिहे तन माँजै॥
तिल तिल दिस्टि जोति सहुँ ठानै। साँस चढ़ाइ कै ऊपर आनै॥

---

(३८) लपई झपई = पचे, हैरान हो। साठि बरिस···जपई = साठ बरस अनेक यत्न करके हैरान होना और एक क्षण भर गुप्त मंत्र का जाप क'ना दोनो बराबर हैं। मुहमदी खेवा = मुहम्मद का मत या मार्ग। काठी = लकड़ी। घँसत = घिसते हुए। मनुवाँ = मन। अहथिर = स्थिर। (३९) जिमि लोहार··· गढ़ई = जैसे लोहार घन की चोट मार मारकर दरपन गढ़ता है (पुराने समय में लोहे को खूब माँज और चमकाकर दर्पण बनाए जाते थे, बिहारी ने जो 'दरपन का मोरचा' कहा है वह लोहे के दर्पण के संबंध मे है)। चिनगि··· भागै = उपले की राख मे चिनगारी नहीं रह सकती। परम तंतु = मूल मंत्र से। लोहा गति = लोहे के समान। खरतर = खूब खरा या लाल।

* पाठ "केकरि दर" है, जिसका कुछ अर्थ नही लगता।

पोढ़ कै = मजबूती से। हनि = मारकर। हथेव = हथौड़ा।

दोहा

तौ निरमल मुख देखै जोग होइ तेहि ऊप।
होइ डिठियार सो देखै अंधन के अधकूप॥

सोरठा

जेकर पास अनफाँस कहु हिय फिकिर सँभारि कै।
कहत रहै हर साँस मुहमद निरमल होइ तव॥ ३९॥

खा-खेलन औ खेल पसारा। कठिन खेल औ खेलनहारा॥
आपुहि आपुहि चाह देखावा। आदम-रूप भेस धरि आवा॥
अलिफ एक अल्ला वड़ सोई। दाल दीन दुनिया सब कोई॥
मीम मुहम्मद प्रीति पियारा। तिनि आखर यह अरथ विचारा॥
मुख विधि अपने हाथ उरेहा। दुइ जग साजि सँवारा देहा॥
कै दरपन अस रचा विसेखा। आपन दरस आप महँ देखा॥
जो यह खोज आप महँ कीन्हा। तेइ आपुहि खोजा, सब चीन्हा॥

दोहा

भागि किया दुइ मारग, पाप पुन्नि दुइ ठाँव।
दहिने सो सुठि दाहिने, वाएँ सो सुठि वावँ॥

सोरठा

भा अपूर सब ठावं, गुड़िला मोम सँवारि कै।
राखा आदम नाव, मुहमद सब आदम कहै॥ ४०॥

औ उन्ह नावँ सीखि जो पावा। अलख नाव लेइ सिद्ध कहावा॥
अनहद ते भा आदम दूजा। आप नगर करवावै पूजा॥
घट घट महँ होइ निति सब ठाऊँ। लाग पुकारै आपन नाऊँ॥
अनहद सुन्न रहै सब लागे। कबहुँ न विसरै सोए जागे॥
लिखि पुरान महँ कहा विसेखी। मोहि नहि देखहु, मैं तुम्ह देखी॥

---

ऊप = ओप, प्रकाश। पास अनफाँस = बंधन और मोक्ष। फिकिर = फिक्र, सामीप्य प्राप्त करने के लिये चिंतन। (४०) आपुहि··देखावा = अपना रूप अपने को ही दिखाना चाहा। अलिफ = अरबी का आकारसूचक वर्ण। दाल = 'द' सूचक वर्ण। मीम = 'म' सूचक वर्ण। तिनि = 'आमद' शब्द के तीन अक्षर। भागि = विभाग करके, बाँटकर। गुड़िला = पुतला, मूर्त्ति। मोम = मोम का। (४१) अनहद = नादब्रह्म। मोहि नहि देखहु··देखी = तुम मुझे नहीं देखते हो, मैं तुम्हें देखता हूँ।

तू तस सोइ न मोहि बिसारसि। तू सेवा जीतै, नहि हारसि॥
अस निरमल जस दरपन आगे। निसि दिन तोरि दिस्टि मोहिं लागे॥

दोहा

पुहुप बास जस हिरदय रहा नैन भरिपूरि।
नियरे से सुठि नीयरे, ओहट से सुठि दूरि॥

सोरठा

दुवौ दिस्टि टक लाइ दरपन जो देखा चहै।
दरपन जाइ देखाइ मुहमद तौ मुख देखिए॥४१॥

**छा**-छाँड़ेहु कलंक जेहि नाहीं। केहु न बराबरि तेहि परछाहीं॥
सूरुज तपै परै अति घामू। लागे गहन गसत होइ सामू॥
ससि कलंक का पटतर दीन्हा। घटै बढ़ै औ गहनै लीन्हा॥
आगि बुझाइ जौ पानी परई। पानि सूख, माटी सब सरई॥
सब जाइहि जो जग महँ होई। सदा सरबदा अहथिर सोई॥
निहकलंक निरमल सब अंगा। अस नाहीं केहु रूप न रंगा॥
जो जानै सो भेद न कहई। मन महँ जानि बूझि चुप रहई॥

दोहा

मति ठाकुर कै सुनि कै, कहै जो हिय मझियार।
बहुरि न मत तासौं करै ठाकुर दूजी बार॥

सोरठा

गगरी सहस पचास जौ कोउ पानी भरि धरै॥
सूरुज दिपै अकास, मुहमद सब महँ देखिए॥४२॥

**ना**-नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहै सौ मै हारा॥

---

सेवा = सेवा से। ओहट = अलग, दूर। मुख = ईश्वर का रूप। (४२) छाँड़ेहु··· नाहीं = तुमने उस ईश्वर को छोड़ दिया जो निष्कलंक है। केहु = कोई। सामू = श्याम, काला। गहनै लीन्हा = गहन से लिया गया, ग्रस्त हुआ (यह प्रयोग बहुत प्राचीन है, इसी कर्मवाच्य प्रयोग से आज-कल के कर्तृवाच्य प्रयोग बने है)। सरई = सड़ती है। रूप न रंगा = न रूप मे, न रग मे। मति ठाकुर····बार = अपने अतःकरण मे ईश्वर की सलाह सुनकर जो उस हृदय की बात को बाहर कहता है उससे फिर ईश्वर दूसरी बार सलाह नहीं करता। गगरी सहस = प्रतिबिंबवाद का यह उदाहरण बहुत पुराना है।

प्रेम-तंतु निति ताना तनई। जप तप साधि सैकरा भरई॥
दरब गरब सब देइ बिथारी। गनि साथी सब लेहि सँभारी॥
पाँच भूत माँड़ी गनि मलई। ओहि सौं मोर न एकौ चलई॥
बिधि कहँ सँवरि साज सो साजै। लेइ लेइ नावँ कूँच सौं माँजै॥
मन मुर्री देइ सब अँग मोरै। तन सो बिनै दोउ कर जोरै॥
सूत सूत सो कया मँजाई। सीझा❀ काम बिनत सिधि पाई॥

दोहा

राउर आगे का कहै जो सँवरै मन लाइ।
तेहि राजा निति सँवरै पूछै धरम बोलाइ॥

सोरठा

तेहि मुख लावा लूक, समुझाए समुझै नहीं।
परै खरी† तेहि चूक मुहमद जेइ जाना नहीं॥४३॥

मन सौं देइ कढ़नी दुइ गाढ़ी। गाढ़े छीर रहै होइ साढ़ी॥
ना ओहि लेखे राति, न दिना। करगह बैठि साट सो बिना॥
खरिका लाइ करै तन घीसू‡। नियर न होइ, डरै इबलीसू॥
भरै सॉस जब नावै नरी। निसरै छूछो, पैठै भरी॥
लाइ लाइ कै नरी चढ़ाई। इललिलाह कै ढारि चलाई॥
चित डोलै नहि खूँटी टरई। पल पल पेखि आग अनुसरई॥
सीधे मारग पहुँचै जाई। जो एहि भाँति करै सिधि पाई॥

---

(४३) तंतु = तागा। बिथारी = बिखेर दे। माँड़ी = कलप जो कपड़े पर दिया जाता है। कूँच = जुलाहो की कूँची। मुर्री = ऐंठन। बिनै = (क) बुने, (ख) विनय करके। पाई = पतली छड़ियो का ढाँचा जिसपर ताने का सूत फैलाते हैं। राउर = आपके। आगे = सामने। धरम = धर्म से।

❀ पाठातर—"सीया"। † पाठातर—'घड़ी'।

(४४) कढ़नी = मथानी मे लगाने की डोरी, नेती। गाढ़े छीर...साढ़ी = नहीं तो गाढ़ा दूध मलाई हो जाता है। साट = वस्त्र, धोती। खरिका = कमाची ?। घीसू = माँजा, रगड़। इबलीस = शैतान।

‡ पाठ 'चीसू' है, जिसका कुछ अर्थ नही जान पड़ता।

नरी = ढरकी के भीतर की नली जिस पर तार लपेटा रहता है। इललिलाह = ईश्वर का नाम। ढारि = ढरकी। खूँटी = जिसमे ताना लपेटा रहता है। आग अनुसरई = आगे बढ़ता है।

दोहा

चलै साँस तेहि मारग, जेहि से तारन होइ।
धरै पावँ तेहि सीढ़ी, तुरते पहुँचै सोइ॥

सोरठा

दरपन बालक हाथ, मुख देखे दूसर गनै।
तस भा दुइ एक साथ, मुहमद एकै जानिए॥४४॥

कहा मुहम्मद प्रेम-कहानी। सुनि सो ज्ञानी भए धियानी॥
चेलै समुझि गुरू सौं पूछा। देखहुँ निरखि भरा औ छूँछा॥
दुहूँ रूप है एक अकेला। औ अनबन परकार सो खेला॥
औ भा चहै दुवौ मिलि एका। को सिख देइ काहि, को टेका?॥
कैसे आपु बीच सो मेटै?। कैसे आप हेराइ सो भेंटै?॥
जौ लहि आपु न जीयत मरई। हँसै दूरि सौं बात न करई॥
तेहि कर रूप बदन सब देखै। उठै घरी महँ भाँति बिसेखै॥

दोहा

सो तौ आपु हेरान है, तन मन जीवन खोइ।
चेला पूछै गुरू कहँ, तेहि कस अगरे होइ?॥

सोरठा

मन अहथिर कै टेकु, दूसर कहना छाँड़ि दे।
आदि अंत जो एक, मुहमद कहु, दूसर कहाँ॥४५॥

सुनु चेला! उत्तर गुरु कहई। एक होइ सो लाखन लहई॥
अहथिर कै जो पिंडा छाँड़ै। औ लेइकै धरती महँ गाड़ै॥

---

चलै साँस तेहि मारग = इला और पिंगला दोनो से दहिने और बाएँ श्वास का चलना हठयोगवाले मानते हैं। तारन = उद्धार। (४५) ज्ञानी = तत्त्वज्ञ। ध्यानी = योग साधनेवाले। चेलै = चेले ने। देखहुँ निरखि...छूँछा = इस ससार मे ईश्वर को व्याप्त देखता भी हूँ नहीं भी देखता हूँ। अनबन = अनेक, नाना। को टेका = कौन वह शिक्षा ग्रहण करता है? बीच = अंतर (ईश्वर और जीव के बीच का)। हँसै = वह प्रियतम ईश्वर हँसता है। तेहि कर रूप.....बिसेखै = कभी तो वह सब को उसी का रूप देखता है और फिर वही दूसरे क्षण मे (व्यवहार मे) भिन्न भिन्न रूप और प्रकार निर्दिष्ट करता है। तेहि अगरे = उसके सामने। (४६) लाखन लहई = लाखो रूप धारण करता है। अहथिर कै = जीवात्मा को स्थिर करके।

काह कहौं जस तू परछाहीं। जौ पै किछु आपन वस नाहीं॥
जो वाहर सो अंत समाना। सो जानै जो ओहि पहिचाना॥
तू हेरै भीतर सौं मिंता। सोइ करै जेहि लहै न चिंता॥
अस मन बूझि छाँड़ु; को तोरा?। होहु समान, करहु मति 'मोरा'॥
दुइ हुँत चलै न राज न रैयत। तब वेइ सीख जो होइ मग ऐयत॥

दोहा

अस मन बूझहु अब तुम, करता है सो एक।
सोइ सूरत सोइ मूरत, सुनै गुरू सौं टेक॥

सोरठा

नवरस गुरु पहँ भीज, गुरु-परसाद सो पिउ मिलै।
जामि उठै सो बीज, मुहमद सोई सहस बुँद॥४६॥

माया जरि अस आपुहि खोई। रहै न पाप, मैलि गइ धोई॥
गौ दूसर भा सुन्नहि सुन्नू। कहँ कर पाप, कहाँ कर पुन्नू॥
आपुहि गुरू, आपु भा चेला। आपुहि सब औ आपु अकेला॥
अहै सो जोगी, अहै सो भोगी। अहै सो निरमल, अहै सो रोगी॥
अहै सो कड़वा, अहै सो मीठा। अहै सो आमिल, अहै सो सीठा॥
वै आपुहि कहँ सब महँ मेला। रहै सो सब महँ, खेलै खेला॥
उहै दोउ मिलि एकै भएऊ। वात करत दूसर होइ गएऊ॥

दोहा

जो किछु है सो है सब, ओहि बिनु नाहिन कोइ।
जो मन चाहा सो किया, जो चाहै सो होइ॥

---

जो पै किछु...नाहीं = जो वास्तव मे कुछ है वह अपने वश के बाहर है, अर्थात् वस्तु-सत्ता तक हमारी पहुँच नहीं। चिंता = सांसारिक चिंता। छाँड़ु = सब को छोड़ दे। को तोरा = तेरा कौन है?। समान = समदर्शी। करहु मति 'मोरा' = 'मेरा मेरा' मत कर। हुँत = से। तब वेइ.....ऐयत = वे ही सीखते हैं जो सच्चे मार्ग पर आ जाते हैं। टेक = निश्चय वचन। सोई सहस बुँद = आत्मतत्व या जीव (जिसका अठारह हजार बूँदो से बरसना पहले कह आए हैं)। (४७) गौ दूसर = दूसरे पक्ष में, अध्यात्म पक्ष मे। आमिल = अम्ल, खट्टा। सीठा = नीरस। वात करत = ससार के व्यवहार मे, कहने सुनने को।

सोरठा

एक मे दूसर नाहिं बाहर भीतर बूझि ले।
खाँड़ा दुइ न समाहिं, मुहमद एक मियान महँ ॥४७॥

पूछौं गुरू बात एक तोही। हिया सोच एक उपजा मोही॥
तोहि अस कतहुँ न मोहि अस कोई। जो किछु है सो ठहरा सोई॥
तस देखा मैं यह संसारा। जस सब भाँड़ा गढ़ै कोहाँरा॥
काहू माँझ खाँड़ भरि धरई। काहू माँझ सो गोवर भरई॥
वह सब किछु कैसे कै कहई। आपु बिचारि बूझि चुप रहई॥
मानुष तौ नीके सँग लागै। देखि घिनाइ त उठि कै भागै॥
सीझ चाम सब काहू भावा। देखि सरा सो नियर न आवा॥

दोहा

पुनि साईं सब जन रमै, औ निरमल सब चाहि।
जेहि न मैलि किछु लागै, लावा जाइ न ताहि॥

सोरठा

जोगि, उदासी दास, तिन्हहि न दुख औ सुख हिया।
घरही माहँ उदास, मुहमद सोइ सराहिए॥४८॥

सुनु चेला! जस सब संसारू। ओहि भाँति तुम कया बिचारू॥
जौ जिउ कया तौ दुख सौं भीजा। पाप के ओट पुन्नि सब छीजा॥
जस सूरुज उअ देख अकासू। सब जग पुन्नि उहै परगासू॥

---

खाँड़ा दुइ·····महँ = अद्वैतवाद का तर्क कि अपरिच्छिन्न सत्ता एक ही हो सकती है; एक से अधिक होने से सब परिच्छिन्न होगी। (४८) तोहि अस···कोई = न मेरा रूप सत्य है, न तेरा। वह सब किछु ··कहई = जब देखते हैं कि कोई अच्छा है, कोई बुरा तब सब कुछ वही है यह कैसे कहा जाय क्योंकि ऐसा कहने से बुराई भी उसमें लग जाती है। सीझ = सीझा हुआ। सरा = सड़ा हुआ। सब चाहि = सब से बढ़कर। जेहि न मैलि···ताहि = जो निष्कलंक है उसमे कलंक या बुराई का आरोप करते नही बनता। घरही माहँ उदास = जो गृहस्थी में रहकर अपना कर्म करता हुआ भी उदासीन या निष्काम रहता है। (४९) ओही भाँति···बिचारू = जैसी जीवात्मा शुद्ध आनंदस्वरूप है पर शरीर के सयोग में दुःख आदि से युक्त दिखाई पड़ता है वैसे ही शुद्ध ब्रह्म संसार के व्यावहारिक क्षेत्र में भला बुरा आदि कई रूपो मे दिखाई पड़ता है (शरीर और जगत् की एकता पहले कह आए है)।

भल औ मंद जहाँ लगि होई। सब पर धूप रहै पुनि सोई॥
मंदे पर वह दिस्टि जो परई। ताकर मैलि नैन सौ ढरई॥
अस वह निरमल धरति अकासा। जैसे मिली फूल महँ बासा॥
सबै ठाँव औ सब परकारा। ना वह मिला, न रहै निनारा॥

दोहा

ओहि जोति परछाहीं, नवौ खंड उजियार।
सूरुज चाँद कै जोती, उदित अहै संसार॥

सोरठा

जेहि कै जोति-सरूप, चाँद सुरुज तारा भए।
तेहि कर रूप अनूप, मुहमद बरनि न जाइ किछु॥४९॥

चेलै समुझि गुरू सौ पूछा। धरती सरग बीच सब छूँछा॥
कीन्ह न थूनी, भीति, न पाखा। केहि बिधि टेकि गगन यह राखा?॥
कहाँ से आइ मेघ बरिसावै। सेत साम सब होइ कै धावै?॥
पानी भरै समुद्रहि जाई। कहाँ से उतरै, बरसि बिलाई?॥
पानी माँझ उठै बजरागी। कहाँ से लौकि बीजु भुइँ लागी?॥
कहँवाँ सूर, चंद औ तारा। लागि अकास करहि उजियारा?॥
सूरुज उवै बिहानहि आई। पुनि सो अथ कहाँ कहँ जाई?॥

दोहा

काहे चंद घटत है, काहे सूरुज पूर।
काहे होइ अमावस, काहे लागै मूर?॥

सोरठा

जस किछु माया मोह, तैसे मेघा, पवन, जल।
बिजुरी जैसे कोह, मुहमद तहाँ समाइ यह॥५०॥

सुनु चेला! एहि जग कर अवना। सब बादर भीतर है पवना॥
सुन्न सहित बिधि पवनहि भरा। तहाँ आप होइ निरमल करा॥
पवनहि महँ जो आप समाना। सब भा बरन ज्यों आप समाना॥

---

परछाहीं = परछाईं से। (५०) चेलै = चेले ने। थूनी = टेक। बजरागी = बज्राग्नि, बिजली। लौकि = चमक कर। मूर = मूल नक्षत्र। कोह = क्रोध। तहाँ = जहाँ माया मोह हैं। (५१) अवना = आना, रचा जाना। बिधि = ईश्वर। पवनहि = पवन में। करा = कला, ज्योति। सब भा बरन···समाना = आप या उस ईश्वर के अनुकूल सब का रूप रंग हुआ।

जैस डोलाए वेना डोलै। पवन सबद होइ किछुहु न बोलै॥
पवनहि मिला मेघ जल भरई। पवनहि मिला बुंद भुइँ परई॥
पवनहि माहँ जो बुल्ला होई। पवनहि फुटै, जाइ मिलि सोई॥
पवनहि पवन अंत होइ जाई। पवनहि तन कहँ छार मिलाई॥

दोहा

जिया जंतु जत सिरजा, सब महँ पवन सो पूरि।
पवनहि पवन जाइ मिलि, आगि, बाउ, जल धूरि॥

सोरठा

निति सो आयसु होइ, साईं जो आज्ञा करै॥
पवन-परेवा सोइ, मुहमद विधि राखे रहै॥५१॥

बड़ करतार जिवन कर राजा। पवन बिना किछु करत न छाजा॥
तेहि पवन सौं बिजुरी साजा। ओहि मेघ परवत उपराजा॥
उहै मेघ सौं निकरि देखावै। उहै माँझ पुनि जाइ छपावै॥
उहै चलावै चहुँ दिसि सोई। जस जस पाँव धरै जो कोई॥
जहाँ चलावै तहवाँ चलई। जस जस नावै तस तस नवई॥
बहुरि न आवै छिटकत झाँपै। तेहि मेघ सँग खन खन काँपै॥
जस पिउ सेवा चूके रूठै। परै गाज पुहुमी तपि कूटै॥

दोहा

अगिनि, पानि औ माटी, पवन फूल कर मूल।
उहई सिरजन कीन्हा, मारि कीन्ह अस्थूल॥

---

पवनहि फुटै = पवन ही से वह बुल्बुला फूटता है। जाइ मिलि = जल मे फिर मिल जाता है। पवनहि पवन जाइ मिलि = कवि ने प्राचीन पाश्चात्य तत्त्वज्ञों के अनुसार वायु को ही सबसे सूक्ष्म तत्त्व माना है और उसी को सबके मूल मे रखा है (उपनिषद् मे आकाश आदिम और मूलभूत कहा गया है।) परेवा = पक्षी दूत। (५२) ओहि = उसी पवन से। उपराजा = उत्पन्न किया। उहै = वही ईश्वर। जाइ छपावै = जाकर अपने को छिपाता है। नावै = झुकाता है, प्रवृत्त करता है। छिटकत...झाँपै = (बिजली) छिटकते ही फिर छिप जाती है। सेवा = सेवा मे। चूके = चूकने पर। कूटै = मारता है, पीटता है। मारि = वश में करके। अस्थूल = स्थूल।

सोरठा

देखु गुरू, मन चीन्ह, कहाँ जाइ खोजत रहै।
जानि परै परबीन, मुहमद तेहि सुधि पाइए ॥५२॥

चेला चरचत गुरु-गुन गावा। खोजत पूछि परम गति पावा॥
गुरु बिचारि चेला जेहि चीन्हा। उत्तर कहत भरम लेइ लीन्हा॥
जगमग देख उहै उजियारा। तीनि लोक लहि किरिन पसारा॥
ओहि ना बरन, न जाति अजाती। चंद न सुरुज, दिवस ना राती॥
कथा न अहै, अकथ भा रहई। बिना बिचार समुझि का परई?॥
सोऽहं सोऽहं बसि जो करई। जो बूझै सो धीरज धरई॥
कहै प्रेम कै बरनि कहानी। जो बूझै सो सिद्धि गियानी॥

दोहा

माटी कर तन भाँड़ा, माटी महँ नव खंड।
जे केहु खेलै माटि कहँ, माटी प्रेम प्रचंड॥

सोरठा

गलि सोइ माटी होइ लिखनेहारा बापुरा।
जौ न मिटावै कोइ, लिखा रहै बहुतै दिना॥५३॥

---

कहाँ जाइ खोजत रहै = बिना गुरु कहाँ इधर उधर भटकता रहै। जानि परै = जो समझ पड़े। तेहि सुधि पाइए = उससे ईश्वर से मिलने के मार्ग का पता मिल जायगा। (५३) चरचत = पहचानते ही। पूछि = जिज्ञासा करके। चेला = अधिकारी शिष्य। लहि = तक। जे केहु = जो कोई। खेलै माटि कहँ = शरीर को लेकर प्रेम का खेल खेल डाले। माटी = मिट्टी मे, शरीर मे।

# आखिरी कलाम

पहिले नावँ दैउ कर लीन्हा। जेइ जिउ दीन्ह, बोल मुख कीन्हा॥
दीन्हेसि सिर जो सँवारै पागा। दीन्हेसि कया जो पहिरै बागा॥
दीन्हेसि नयन-जोति, उजियारा। दीन्हेसि देखै कहँ संसारा॥
दीन्हेसि स्रवन बात जेहि सुनै। दीन्हेसि बुद्धि, ज्ञान बहु गुनै॥
दीन्हेसि नासिक लीजै बासा। दीन्हेसि सुमन सुगंध-बिरासा॥
दीन्हेसि जीभ बैन-रस भाखै। दीन्हेसि भुगुति, साध सब राखै॥
दीन्हेसि दसन, सुरंग कपोला। दीन्हेसि अधर जे रचै तँबोला॥
दीन्हेसि बदन सुरूप रँग, दीन्हेसि माथे भाग।
देखि दयाल, 'मुहम्मद' सीस नाइ पद लाग॥ १॥

दीन्हेसि कंठ बोल जेहि माहाँ। दीन्हेसि भुजादंड, बल बाहाँ॥
दीन्हेसि हिया भोग जेहि जमा। दीन्हेसि पाँच भूत, आतमा॥
दीन्हेसि बदन सीत औ घामू। दीन्हेसि सुक्ख-नींद बिसरामू॥
दीन्हेसि हाथ चाह जस कीजै। दीन्हेसि कर-पल्लव गहि लीजै॥
दीन्हेसि रहस कूद बहुतेरा। दीन्हेसि हरष हिया बहु मेरा॥
दीन्हेसि बैठक आसन मारै। दीन्हेसि बूत जो उठें सँभारै॥
दीन्हेसि सबै सँपूरन काया। दीन्हेसि दोइ चलै कहँ पाया॥
दीन्हेसि नौ नौ फाटका, दीन्हेसि दसवँ दुवार।
सो अस दानि 'मुहम्मद', तिन्ह कै हौं बलिहार॥ २॥

मरम नैन कर अँधरै बूझा। तेहि बिसरै संसार न सूझा॥
मरम स्रवन कर बहिरै जाना। जो न सुनै, किछु दीजै साना॥
मरम जीभ कर गूँगै पावा। साध मरै, पै निकर न नावाँ॥
मरम बाहँ कै लूलै चीन्हा। जेहि बिधि हाथन्ह पाँगुर कीन्हा॥

---

(१) बागा = पहनावा, पोशाक। बिरासा = विलास। रचै = रँग जाते हैं। (२) रहस = आनंद। मेर = मेल, भाँति। फाटका = नव द्वार। (३) बिहरे = फूटने पर। सान दीजै = इशारा कीजिए (तो समझे)। (अवधी)

मरम कया कै कुस्टी भेंटा। नित चिरकुट जो रहै लपेटा॥
मरम बैठ उठ तेहि पै गुना। जो रे मिरिग कस्तूरी पहाँ॥(?)
मरम पावँ कै तेहि पै दीठा। होइ अपाय भुइँ चलै बईठा॥
अति सुख दीन्ह बिधातै, औ सब सेवक ताहि।
आपन मरम 'मुहम्मद' अवहूँ समुझ, कि नाहिं॥ ३॥

भा औतार मोर नौ सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी॥
आवत उधत-चार बिधि ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना॥
धरती दीन्ह चक्र-बिधि लाईं। फिरै अकास रहँट कै नाईं॥
गिरि-पहार मेदिनि तस हाला। जस चाला चलनी भरि चाला॥
मिरित-लोक ज्यों रचा हिंडोला। सरग पताल पवन-खट डोला॥
गिरि पहार परबत ढहि गए। सात समुद्र कीच मिलि भए॥
धरती फाटि, छात भहरानी। पुनि भइ मया जौ सिष्टि समानी॥
जो अस खंभन्ह पाइ कै, सहस जीभ गहिराइँ।
सो अस कीन्ह 'मुहम्मद', तोहि अस बपुरे काइँ॥ ४॥

सूरुज (अस) सेवक ताकर अहै। आठौ पहर फिरत जो रहै॥
आयसु लिए राति दिन धावै। सरग पताल दुवौ फिरि आवै॥
दगधि आगि महँ होइ अँगारा। तेहि कै आँच धिकै संसारा॥
सो अस बपुरै गहनै लीन्हा। औ धरि बाँधि चँडालै दीन्हा॥
गा अलोप होइ, भा अँधियारा। दीखै दीनहि सरग महँ तारा॥
उवतै झप्पि लीन्ह, घुप चाँपै। लाग सरब जिउ थर थर काँपै॥
जिउ कहँ परे ज्ञान सब झूठै। तब होइ मोख गहन जौ छूटै॥
ताकह एता तरासै जो सेवक अस नित।
अवहुँ न डरसि 'मुहम्मद', काह रहसि निहचित॥ ५॥

---

चिरकुट = चीथड़ा। बिधातै = विधाता ने। (४) उधत चार = उद्धतचार, उत्पात। आवत.....अकुलाना = जान पड़ता है, जिस दिन मलिक मुहम्मद पैदा हुए थे उस दिन भारी भूकप आया था। भाइँ दीन्ह = फिराया। चाला = छलनी में डाला हुआ अनाज। पवनखट = पवन-खटोला। खंभन्ह = अर्थात् पहाड़ों को (धरती पहाड़ो से कीली कही गई है)। गहिराइँ = गहराई या पाताल मे थामे हैं। (५) धिकै = तपता है। औ धरि...चँडालै दीन्हा = प्रवाद है कि सूर्य्य चद्र डोमों या चाडालो के ऋणी हैं इसी से ग्रहण द्वारा बार बार सताए जाते है। घुप = अंधकार।

बल हमजा कर जैस सँभारा। जो बरियार उठा तेहि मारा॥
पहलवान नाए सब आदी। रहा न कतहुँ बाद करि बादी॥
बड़ परताप आप तप साधे। धरम के पंथ दई चित बाँधे॥
दरब जोरि सब काहुहि दिए। आपुन बिरह आउ-जस लिए॥
राजा होइ करै, सब छाँड़ि, जगत महँ राज।
तब अस कहै 'मुहम्मद', वै कीन्हा किछु काज॥ ८॥
मानिक एक पाएउँ उजियारा। सैयद असरफ पीर पियारा॥
जहाँगीर चिस्ती निरमरा। कुल जग महँ दीपक बिधि धरा॥
औ निहंग दरिया-जल माहाँ। बूड़त कहँ धरि काढ़त बाहाँ॥
समुद माहँ जो बाहति फिरई। लेतै नावँ सौहँ होइ तरई॥
तिन्ह घर हौ मुरीद, सो पीरू। सँवरत बिनु गुन लावै तीरू॥
कर गहि धरम-पंथ देखरावा। गा भुलाइ तेहि मारग लावा॥
जो अस पुरुषहि मन चित लावै। इच्छा पूजै, आस तुलावै॥
जौ चालिस दिन सेवै, बार बुहारै कोइ।
दरसन होइ 'मुहम्मद', पाप जाइ सब धोइ॥ ९॥
जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नावँ आदि उदयानू॥
तहाँ दिवस दस पहुने आएउँ। भा बैराग बहुत सुख पाएउँ॥
सुख भा, सोचि एक दिन मानौं। ओहि बिनु जिवन मरन कै जानौं॥
नैन रूप सो गएउ समाई। रहा पूरि भर हिरदय छाई॥
जहवै देखौं तहँवै सोई। और न आव दिस्टि तर कोई॥
आपुन देखि देखि मन राखौं। दूसर नाहिं, सो कासौं भाखौं॥
सबै जगत दरपन कै लेखा। आपन दरसन आपुहि देखा॥
अपने कौकुत कारन मीर पसारिन हाट।
मलिक मुहम्मद बिहनै होइ निकसिन तेहि बाट॥१०॥
धूत एक मारत गनि गुना। कपट-रूप नारद करि चुना।
'नावँ न साधु', साधि कहवावै। तेहि लगि चलै जौ गारी पावै॥

---

पहलवान = योद्धा, वीर। नाए = झुकाए। आदि = पूरे, बिलकुल। आउ-जस = आयु भर की कीर्त्ति। (९) निहग = बिलकुल। बार = द्वार। (१०) उदयानू = 'जायस' का यही पुराना नाम वहाँ के लोग बतलाते है। कौकुत = कौतुक (अवध)। मोर = सरदार, यहाँ परमेश्वर। बिहनै = सबेरे सबेरे; प्रातःकाल ही। (११) धूत = धूर्त। नारद = शैतान। नावँ न साधु = ईश्वर का नाम न जप।

भाव गाठि अस मुख, कर भाँजा। कारिख तेल घालि मुख माँजा॥
परतहि दीठि छरत मोहि लेखे। दिनहि माँझ अँधियर मुख देखे॥
लीन्हे चंग राति दिन रहई। परपँच कीन्ह लोगन महँ चहई॥
भाइ बंधु महँ लाई लावै। बाप पूत महँ कहै कहावै॥
मेहरी भेस रैनि के आवै। तरपड़ कै पूरुख ओनवावै॥

मन-मैली कै ठगि ठगै, ठगे न पायौ काहु।
बरजेउ सबहिं 'मुहम्मद', असि जिन तुम पतियाहु॥११॥

अंग चढ़ावहु सूरी भारा। जाइ गहौ तब चंग अधारा॥
जौ काहू सौ आनि चिहूँटै। सुनहु मोर बिधि कैसे छूटै॥
उहै नावँ करता कर लेऊ। पढ़ौ पलीता धूआँ देऊ॥
जौ यह धुवाँ नासिकहि लागै। मिनती करै औ उठि उठि भागै॥
धरि बाईं लट सीस झकोरै। करि पाँ तर, गहि हाथ मरोरै॥
सबहि सँकोच अधिक ओहि होवै। 'छाँड़हु, छाँड़हु!' कहि कै रोवै॥
धरि बाही लै थुवा उड़ावै। नासौ डरै जो ऐस छोड़ावै॥

है नरकी औ पापी, टेढ़ बदन औ आँखि।
चीन्हत उहै 'मुहम्मद', झूठ-भरी सब साखि॥१२॥

नौ सै बरस छतीस जो भए। तब एहि कथा क आखर कहे॥
देखौ जगत धुंध कलि माहाँ। उवत धूप धरि आवत छाहाँ॥
यह संसार सपन कर लेखा। माँगत बदन नैन भरि देखा॥
लाभ, दिउ बिनु भोग, न पाउब। परिहि डाँड़ जहँ मूर गँवाउब॥
राति क सपन जागि पछिताना। ना जानौ कब होइ बिहाना॥
अस मन जानि बेसाहहु सोई। मूर न घटै, लाभ जेहि होई॥
ना जानेहु बाढ़त दिन जाई। तिल तिल घटै आउ नियराई॥

---

भाव गाँठि...भाँजा = मुँह पर ऐसा हाव भाव बनाकर हाथ से ऐसे ऐसे इशारे करती है। कारिख = काजल, मिस्सी, तेल आदि स्त्रियों का शृंगार। अँधियर = अँधेरा। लाई लावै = झगड़ा लगाती है। मेहरी = स्त्री, जोरू। तरपड़ = नीचे। ओनवावै = झुकाती है। कै ठगि = ठीग करके। (१२) भारा = भाला। चिहूँटै = चिमटे, लगे। लेऊ = ले। देऊ = दे (अवधी)। थुवा उड़ावै = थू थू करे; थूके। साखि = विश्वास दिलाकर कहे हुए वचन। (१३) माँगत... देखा = सबको मुँह से माँगते ही देखा।

अस जिन जानेहु बढ़त है, दिन आवत नियरात।
कहै सो बूझि 'मुहम्मद' फिर न कहौं असि बात ॥१३॥

जबहि अंत कर परलै आई। धरमी लोग रहै ना पाई॥
जबहीं सिद्ध साधु गए पारा। तबहीं चलै चोर बटपारा॥
जाइहि मया-मोह सब केरा। मच्छ-रूप कै आइहि बेरा॥
उठिहैं पंडित वेद-पुराना। दत्त सत्त दोउ करिहि पयाना॥
धूम-बरन सूरुज होइ जाई। कृस्न बरन सब सिष्टि दिखाई॥
दधा पुरुष दिसि उइहै जहाँ। पुनि फिरि आइ अथइहै तहाँ॥
चढ़ि गदहा निकसै धरि जालू। हाथ खंड होइ, आवै कालू॥
जो रे मिलै तेहि मारै, फिरि फिरि आइ कै गाज।
सबही मारि 'मुहम्मद' भूज अरहिता राज ॥१४॥

पुनि धरती कहँ आयसु होई। उगिलै दरब, लेइ सब कोई॥
'मोर मोर' करि उठिहै झारी। आपु आपु महँ करिहै मारी॥
अस न कोइ जानै मन माहाँ। जो यह सँचा अहै सो कहाँ॥
सैति सैति लेइ लेइ घर भरही। रहस-कूद अपने जिउ करही॥
खनहिं उतंग, खनहि फिर साँती। नितहि हुलंब उठै बहु भाँती॥
पुनि एक अचरज सँचरै आई। नावँ 'मजारी' भँवै बिलाई॥
ओहि के सूँघे जियै न कोई। जो न मरै तेहि भक्खै सोई॥
सब संसार फिराइँ औ लावै गहिरी घात।
उनहूँ कहै 'मुहम्मद' बार न लागिहि जात ॥१५॥

पुनि मैकाइल आयसु पाए। उन बहु भाँति मेघ बरसाए॥
पहिले लागै परै अँगारा। धरति सरग होइ उजियारा॥
लागी सबै पिरथिवी जरै। पाछे लागे पाथर परै॥

---

(१४) आई = आइहि, आएगा। मच्छ रूप...बेरा = जैसे बड़ी मछलियाँ छोटी मछलियो को पकड़ कर खा जाती हैं, वैसा ही व्यवहार मनुष्यो के बीच हो जायगा। दत्त सत्त = दान और सत्य। दधा = जला हुआ। खड = खाँड़ा। भूज = भोगेगा। अरहिता = निर्जन निष्कंटक। (१५) झारी = सब के सब, बिलकुल। सँचा = सचित किया, जुटाया। सैति = समेटकर, सहेजकर। उतग = उभार, जोर शोर। साँती = शांति। हुलंब = हुलड़, हल्ला, हलचल। भँवै = फिरती है। बिलाई = बिल्ली। फिराइँ = फिरते है। उनहूँ कहँ = उनको भी। (१६) मैकाइल = मकाईल नामक फरिश्ता।

सौ सौ मन कै एक एक सिला। चलै पिंड घुटि आवैं मिला॥
वजर-गोट तस छूटै भारी। टूटै रूख बिरुख-सब झारी॥
परत धमाकि धरति सब हालै। उधिरत उठै सरग लौ सालै॥
अधाधार बरसै बहु भाँती। लागि रहै चालिस दिन-राती॥

जिया-जंतु सब मरि घटे जित सिरजा संसार।
कोइ न रहै 'मुहम्मद', होइ बीता संघार॥१६॥

जिबरईल पाउब फरमानू। आइ सिस्टि देखब मैदानू॥
जियत न रहा जगत केउ ठाढ़ा। मारा झोरि कचरि सब गाढ़ा॥
मरि गंधाहिं, साँस नहि आवै। उठै बिगंध, सड़ाइँध आवै॥
जाइ दैउ से करहु बिनाती। कहब जाइ जस देखब भाँती॥
देखहु जाइ सिस्टि बेवहारू। जगत उजाड़, सून संसारू॥
अस्ट दिसा उजारि सब मारा। कोइ न रहा नावँ-लेनिहारा॥
मारि माछ जस पिरथिवीं पाटी। परै पिछानि न, दीखै माटी॥

सून पिरथिवीं होइ गई, दहुँ धरती सब लीप।
जेतनी सिस्टि 'मुहम्मद' सबै भाइ जल-दीप॥१७॥

मकाईल पुनि कहब बुलाई। बरसहु मेघ पिरथिवी जाई॥
उनै मेघ भरि उठिहै पानी। गरजि गरजि बरसहि अतबानी॥
झरी लागि चालिस दिन राती। घरी न निबुसै एकहु भाँती॥
छूट पानि परलय की नाईं। चढ़ा छापि सगरिउँ दुनियाईं॥
बूड़हि परबत मेरु पहारा। जल हुलि उमड़ि चलै असरारा॥
जहँ लगि मगर माछ जित होई। लेइ बहाइ जाइहि भुइँ धोई॥
पुनि घटि नीर भँडारै आई। जनौ न बरसा तैस सुखाई॥

सून पिरथिवी होइहि, बूझै हँसै ठठाइ।
एतनि जो सिस्टि 'मुहम्मद', सो कहँ गई हेराइ॥१८॥

पुनि इसराफीलहि फरमाए। फूँके, सब संसार उड़ाए॥

---

घुटि = जमकर। गोट = गोले। उधिरत उठै = उघड़ती या उचटती जाती है। (१७) जिबरईल = एक फरिश्ता। केउ = कोई (अवधी)। बिगध = दुर्गंध। भाइ = भासित होती है, जान पड़ती है। जल-दीप = नदी या समुद्र के बीच पड़ा सुनसान टापू। (१८) मकाईल = एक फरिश्ता। अतबानी = (?)। निबुसै = (मेह) थमता है, निकलता है। हुलि = ठिलकर। असरारा = लगातार। (१९) इसराफील = एक फरिश्ता।

दै मुख सूर भरै जो साँसा। डोलै धरती, लपत अकासा॥
भुवन चौदहो गिरि मनु डोला। जानौ घालि झुलाव हिंडोला॥
पहिले एक फूँक जो आई। ऊँच-नीच एक-सम होइ जाई॥
नदी नार सब जैहै पाटी। अस होइ मिले ज्यो ठाढ़ी माटी॥
दूसरि फूँक जो मेरु उड़ैहै। परवत समुद एक होइ जैहै॥
चाँद सुरुज तारा घट टूटै। परतहि खंभ सेस घट फूटै॥
तिसरे बजर महाउब, अस भुइँ लेब महाइ।
पूरुब पछिउँ 'मुहम्मद' एक रूप होइ जाइ॥१९॥

अजराइल कहँ बेगि बोलावै। जीउ जहाँ लगि सबै लियावै॥
पहिले जिउ जिबरैल क लेई। लोटि जीउ मैकाइल देई॥
पुनि जिउ देइहि इसराफीलू। तीनिहु कहँ मारै अजराईलू॥
काल फिरिस्तन केर जौ होई। कोइ न जागै, निसि असि होई॥
पुनि पूछब "जम! सब जिउ लीन्हा?। एकौ रहा बाँचि जो दीन्हा?॥"
सुनि अजराइल आगे होइ आउब। उत्तर देब, सीस भुइँ नाउब॥
आयसु होइ करौ अब सोई। की हम, की तुम, और न कोई॥
जो जम आन जिउ लेत हैं, संकर तिनहू कर जिउ लेब।
सो अवतरें 'मुहम्मद' देखु तहूँ जिउ देब॥२०॥

पुनि फरमाए आप गोसाईं। तुमहूँ दैउ जिवाइहि नाहीं॥
सुनि आयसु पाछे कहँ ढाए। तिसरी पौरि नाँघि नहि पाए॥
परत जीउ जब निसरन लागै। होइ बड़ कष्ट, घरी एक जागै॥
प्रान देत सँवरै मन माहाँ। उबत धूप धरि आवत छाहाँ॥
जस जिउ देत मोहि दुख होई। ऐसै दुखै अहा सब कोई॥
जौ जनत्यों अस दुख जिउ देता। तौ जिउ काहू केर न लेता॥
लौटि काल तिनहूँ कर होवै। आइ नींद, निधरक होइ सोवै॥

---

सूर = तुरही बाजा (अरबी)। लपत = लचता है। खंभ = स्तंभ-रूप पर्वत। बजर = वज्र। महाउब = मथाएगा। (२०) अजराईल = मारनेवाला फरिश्ता। पुनि पूछब = खुदा फिर पूछेगा। बाँचि जो दीन्हा = जिसको बचा दिया। की हम, की तुम = अब तो बस हम है, या तुम हो। जम = यमराज जो पैगंबरी मजहबों मे अजराईल कहलाता है। संकर = शकर, शिव जो महाकाल हैं। तहूँ = तू भी। (२१) ढाए = ढह पड़े, गिर पड़े। उबत धूप...छाहाँ = अत समय मे जब ज्ञान होता है तब मृत्यु का अंधकार घेर लेता है।

भंजन, गढ़न संवारन जिन खेला सब खेल।
सब कहँ टारि 'मुहम्मद', अब होइ रहा अकेल ॥२१॥

चालिस बरस जबहि होइ जैहै। उठिहि मया, पछिले सब ऐहै॥
मया-मोह कै किरपा आए। आपहि काहि आप फरमाए॥
मै संसार जो सिरजा एता। मोर नावं कोई नहि लेता॥
जेतने परे सब सबहि उठावौं। पुल सरात कर पंथ रेगावौं॥
पाछे जिए पूछौं अब लेखा। नैन माहँ जेता हौं देखा॥
जस जाकर सरवन मै सुना। धरम पाप, गुन औगुन गुना॥
कै निरमल कौसर अन्हवावौं। पुनि जीउन्ह बैकुण्ठ पठावौं॥

मरन गँजन घन होइ जस, जस दुख देखत लोग।
तस सुख होइ 'मुहम्मद', दिन दिन मानै भोग ॥२२॥

पहिले सेवक चारि जियाउब। तिन्ह सब काजै-काज पठाउब॥
जिबराइल औ मैकाईलू। असराफील औ अजराईलू॥
जिबरईल पिरथिवीं महँ आए। आइ मुहम्मद कहँ गोहराए॥
जिबरईल जग आइ पुकारब। नावँ मुहम्मद लेत हँकारब॥
होइहै जहाँ मुहम्मद नाऊँ। कइउ लाख बोलिहै एक ठाऊँ॥
ढूँढ़त रहै, कहहुँ नहि पावै। फिरि कै जाइ मारि गोहरावै॥
कहै "गोसाइँ! कहाँ मैं पावौं। लाखन बोलै जौ रे बोलावौं॥

सब धरती फिरि आएउँ, जहाँ नावँ सो लेउँ।
लाखन उठैं मुहम्मद, केहि कहँ उत्तर देउँ?" ॥२३॥

जिबराइल पुनि आयसु पावै। "सूँघे जगत ठाँव सो पावै॥
बास सुबास लेउ है जहाँ। नावं रसूल पुकारसि तहाँ॥"
जिबराइल फिरि पिरथिवीं आए। सूँघत जगत ठावँ सो पाए॥
उठहु मुहम्मद, होहु बड़ नेगी। देन जोहार बोलावहिं बेगी॥

---

(२२) पुल सरात = वह पुल जिसे कयामत के दिन सब जीवों को पार करना पड़ेगा और जो पुण्यात्माओं के लिए खासा चौड़ा और पापियों के लिए बाल बराबर पतला हो जायगा। कौसर = बिहिश्त (स्वर्ग) की एक नदी या चश्मा। गँजन = गंजन, पीड़ा, क्लेश। (२३) काजै-काज = एक एक काम पर। गोहराए = पुकारा। मारि गोहरावै = बहुत पुकारता है (अवधी)। (२४) नेगी = प्रसाद या इनाम पाने वाले। जुहार देन = बंदगी के लिये।

बेगि हँकारेउ उमत समेता। आवहु तुरत साथ सब लेता॥
एतने वचन ज्योंहि मुख काढ़े। सुनत रसूल भए उठि ठाढ़े॥
जहँ लगि जीउ मुकहि सब पाए। अपने अपने पिंजरे आए॥
कइउ जुगन के सोवत उठे लोग मनो जागि।
अस सब कहै 'मुहम्मद', नैन पलक ना लागि॥२४॥
उठत उमत कहँ आलस लागे। नींद-भरी सोवत नहि जागे॥
पौढ़त बार न हम कहँ भएउ। अबहिन अवधि आइ कब गएऊ?
जिबराइल तब कहब पुकारी। अबहूँ नींद न गई तुम्हारी॥
सोवत तुमहि कइउ जुग बीते। ऐसे तौ तुम मोहे, न चीते॥
कइउ करोरि बरस भुइँ परे। उठहु न बेगि मुहम्मद खरे॥
सुनि कै जगत उठिहि सब झारी। जेतना सिरजा पुरुष औ नारी॥
नँगा-नाँग उठिहै संसारू। नैना होइहै सब के तारू॥
कोइ न केहु तन हेरै, दिस्टि सरग सब केरि।
ऐसे जतन 'मुहम्मद' सिस्टि चलै सब बेरि॥२५॥
पुनि रसूल जैहै होइ आगे। उम्मत चलि सब पाछे लागे॥
अंध गियान होइ सब केरा। ऊँच नीच जहँ होइ अभेरा॥
सबही जियत चहै संसारा। नैनन नीर चलै असरारा॥
सो दिन सँवरि उमत सब रोवै। ना जानौ आगे कस होवै॥
जो न रहै, तेहि का यह संगा?। मुख सूखै तेहि पर यह दंगा॥
जेहि दिन कहँ नित करत डरावा। सोइ दिवस अब आगे आवा॥
जौ पै हमसे लेखा लेबा। का हम कहब, उतर का देबा॥
एत सब सँवरि कै मन महँ चहैं जाइ सो भूलि।
पैगहि पैग 'मुहम्मद' चित्त रहै सब झूलि॥२६॥
पुल सरात पुनि होइ अभेरा। लेखा लेब उमत सब केरा॥
एक दिसि बैठि मुहम्मद रोइहै। जिबरईल दूसर दिसि होइहै॥

---

उमत = उम्मत, पैगंबर के अनुयायियो का समूह। मुकहि पाए = कब्रो से छूट पाए। पिंजरे = अर्थात् शरीर। (२५) पौढ़त = लेटते या सोते। बार = देर। अबहिन = अभी ही; इतनी जल्दी। खरे = खड़े। तारू = तालू मे। केहु तन = किसी की ओर। ऐसे जतन = इस ढंग से, इस प्रकार। (२६) असरारा = लगातार। चित्त झूलि रहै = मन मे बार बार आया करता है। (२७) अभेरा = सामना।

वार पार किछु सूझत नाहीं। दूसर नाहि, को टेकै बाहीं ? ॥
तीस सहस्र कोस कै बाटा। अस साँकर जेहि चलै न चाँटा ॥
बारहु तें पतरा अस झीना। खड़ग-धार से अधिकौ पैना ॥
दोउ दिसि नरक-कुंड है भरे। खोज न पाउब तिन्ह महँ परे ॥
देखत काँपै लागै जाँघा। सो पथ कैसे जैहै नाँघा ॥

तहाँ चलत सब परखब, को रे पूर, को ऊन।
अबहि को जान 'मुहम्मद', भरे पाप और पून ॥२७॥

जो धरमी होइहि संसारा। चमकि बीजु अस जाइहि पारा ॥
बहुतक जनौ तुरँग भल धइहै। बहुतक जानु पखेरु उड़इहै ॥
बहुतक चाल चलै महँ जइहै। बहुतक मरि मरि पावँ उठइहै ॥
बहुतक जानु पखेरु उड़इहै। पवन कै नाईं तेहि महँ जइहै ॥
बहुतक जानौ रेगहि चाँटी। बहुतक बहै दाँत धरि माटी ॥
बहुतक नरक-कुंड महँ गिरही। बहुतक रकत पीब महँ परही ॥
जेहि के जाँघ भरोस न होई। सो पंथी निभरोसी रोई ॥

परै तरास सो नाँघत, कोइ रे वार, कोइ पार।
कोइ तिर रहा 'मुहम्मद', कोइ बूड़ा मझ-धार ॥२८॥

लौटि हँकारब वह तब भानू। तपै कहै होइहि फरमानू ॥
पूछब कटक जेता है आवा। को सेवक, को बैठे खावा ? ॥
जेहि जस आउ जियन मै दीन्हा। तेहि तस संबर चाहौ लीन्हा ॥
अब लगि राज देस कर भूजा। अब दिन आइ लेखा कर पूजा ॥
छः मास कर दिन करौ आजू। आउ क लेउँ औ देखौ साजू ॥
से चौराहै बैठे आवै। एक एक जन कें पूछि पकरावै।
नीर खीर हुँत काढ़ब छानी। करब निनार दूध औ पानी ॥

धरम पाप फरियाउब, गुन औगुन सब दोख।
दुखी न होहु 'मुहम्मद', जोखि लेब धरि जोख ॥२९॥

पुनि कस होइहि दिवस छ मासू। सूरुज आइ तपहिं होइ पासू ॥

---

चाँटा = चींटी। खोज = पता, निशान। ऊन = त्रुटिपूर्ण, ओछा। (२८) बीजु = बिजली। चाल चलै महँ = मनुष्य की साधारण चाल से। तरास = त्रास। (२९) तपै कहैं = तपने को (अवध)। संबर = सामान; कमाई। भूजा = भोग किया। से = वह; सूर्य। एक एक...पकरावै = एक एक प्राणी से सवाल जवाब करके उसे पकड़ाए। कें = कहँ, को। जोख = तराजू।

कै सउँहैं नियरे रथ हाँकै। तेहिकै आँच गूद सिर पाकै॥
वजरागिन अस लागै तैसे। बिलखैं लोग पियासन बैसे॥
उनै अगिन अस बरसै धामू। भूँज देह, जरि जावै चामू॥
जेइ किछु धरम कीन्ह जग माँहा। तेहि सिर पर किछु आवै छाहाँ॥
धरिमिहि आनि पियाउब पानी। पापी बपुरहि छाह न पानी॥
जो राजता सो काज न आवै। इहाँ क दीन्ह उहाँ सो पावै॥

जो लखपती कहावै, लहै न कौड़ी आधि।
चौदह धजा 'मुहम्मद' ठाढ़ करहिं सब बाँधि॥३०॥

सवा लाख पैगंवर जेते। अपने अपने पाएँ तेते॥
एक रसूल न बैठहि छाहाँ। सबही धूप लेहिं सिर माहाँ॥
घामै दुखी उमत जेहि केरी। सो का मानै सुख अवसेरी?॥
दुखी उमत तौ पुनि मै दुखी। तेहि सुख होइ तौ पुनि मै सुखी॥
पुनि करता कै आयसु होई। उमत हँकारु लेखा मोहि देई॥
कहब रसूल कि आयसु पावौं। पहिले सब धरमी लै आवौं॥
होइ उतर 'तिन्ह हौं ना चाहौं। पापी घालि नरक महँ वाहौं॥

पाप पुन्नि कै तखरी होइ चाहत है पोच।
अस मन जानि मुहम्मद हिरदै मानेउ सोच॥३१॥

पुनि जैहै आदम के पासा। 'पिता! तुम्हारि बहुत मोहिं आसा॥
'उमत मोरि गाढ़े है परी। भा न दान, लेखा का धरी?॥
'दुखिया पूत होत जो अहै। सब दुख पै बापै सौ कहै॥
'बाप बाप कै जो कछु खाँगै। तुमहि छाँड़ि कासौं पुनि माँगै?॥
'तुम जठेर पुनि सबहिन्ह केरा। अहै सँतति, मुख तुम्हरै हेरा॥
'जेठ जठेर जो करिहै मिनती। ठाकुर तबहीं सुनिहै मिनती॥
'जाइ देउ सों बिनवौ रोई। मुख दयाल दाहिन तोहि होई॥

'कहहु जाइ जस देखेउ, जेहि होवै उदघाट।
'बहु दुख दुखी मुहम्मद, बिधि! संकट तेहि काट'॥३२॥

---

(३०) सउँहैं = सामने। गूद सिर पाकै = खोपड़ी का गूदा पक जाता है। बैसे = बैठे। बपुरहि = बेचारे को। राजता = राजत्व, राजापन। चौदह धजा = चौदह धजियों या बघनो से। (३१) पाएँ = पाए या आसन पर। अवसेरी = दुःख से व्यग्र, चिंताग्रस्त। बाहौं = फेकूँ, डालूँ। तखरी = तकड़ी, तराजू (पंजाबी)। (३२) गाढ़े = संकट में। धरी = धरिहि, धरेगी (अवध)। खाँगै = घटता है। जठेर = बड़ा, जेठा, बुजुर्ग। उदघाट = छुटकारा, उद्धार।

'सुनहु पूत ! आपन दुख कहऊँ। हौं अपने दुख बाउर रहऊँ॥
'होइ बैकुंठ जो आयसु ठेलेउँ। दूत के कहे मुख गोहूँ मेलेउँ॥
'दुखिया पेट लागि सँग धावा। काढ़ि बिहिस्त से मैल ओढ़ावा॥
'परलै जाइ मँडल संसारा। नैन न सूझै, निसि-अँधियारा॥
'सकल जगत मैं फिरि फिरि रोवा। जीउ अजान बाँधि कै खोवा॥
'भएँ उजियार पिरथिवी जइहौं। औ गोसाइँ कै अस्तुति कहिहौं॥
'लौटि मिलै जौ हौवा आई। तौ जिउ कहँ धीरज होइ जाई॥

'तेहि हुँत लाजि उठै जिउ, मुहँ न सकौं दरसाइ।
'सो मुहँ लेइ, मुहम्मद ! बात कहौं का जाइ' ? ॥३३॥

पुनि जैहैं मूसा क दोहाई। 'ऐ बंधू ! मोहि उपकरु आई॥
'तुम कहँ बिधिना आयसु दीन्हा। तुम नेरे होइ बातैं कीन्हा॥
'उम्मत मोरि बहुत दुख देखा। भा न दान, माँगत है लेखा॥
'अब जौ भाइ मोर तुम अहौ। एक बात मोहि कारन कहौ॥
'तुम अस ठटै बात का कोई। सोई कहौ बात जेहि होई॥
'गाढ़े मीत ! कहौ का काहू ?। कहहु जाइ जेहि होइ निबाहू॥
'तुम सँवारि कै जानहु बाता। मकु सुनि माया करै बिधाता॥

'मिनती करहु मोर हुँत सीस नाइ, कर जोरि'।
हा हा करैं मुहम्मद 'उमत दुखी है मोरि' ॥३४॥

'सुनहु रसूल बात का कहौं। हौं अपने दुख बाउर रहौं॥
'कै कै देखेउँ बहुत ढिठाई। मुँह गरुवाना खात मिठाई॥
'पहिले मो कहँ आयसु दीन्हा। फरऊँ से मैं झगरा कीन्हा॥

---

(३३) बाउर = बावला। मैल ओढ़ावा = कलंक लगा दिया। भएँ = होने पर। तेहि हुँत = उसी से, उसी कारण। (३४) उपकरु = उपकार कर। ठटै = बनाए। बात जेहि होई = जिससे काम हो जाय। कै जानहु बाता = बात करना जानते हो। मकु = कदाचित्, शायद। मोर हुँत = मेरी ओर से। (३५) मुँह गरुवाना...मिठाई = कृपा की भिक्षा माँगते माँगते मुँह भारी हो गया है, अब और मुँह नहीं खुलता। फरऊँ = मिस्र का बादशाह जिसने इसराईल की संतानो को बहुत सताया था और वे मूसा के नायकत्व मे मिस्र से भागे थे ( जब मिस्र की सेना ने उनका पीछा किया था तब खुदा ने उनके लिये तो नील नद या समुद्र का पानी हटा दिया था, पर मिस्री सेना के सामने उसे और बढ़ा दिया था )।

'रोधि नील क डारेसि झुरा। फुर भा झूठ, झूठ भा फुरा॥
'पुनि देखै बैकुंठ पठाएउ। एकौ दिसि कर पंथ न पाएउँ॥
'पुनि जो मो कहँ दरसन भएऊ। कोह तूर रावट होइ गएऊ॥
'भाँति अनेक मैं फिर फिर जापा। हर दावँन कै लीन्हेसि झाँपा॥

'निरखि नैन मैं देखौं, कतहुँ परै नहिं सूझि।
'रहौं लजाइ, मुहम्मद! बात कहौं का बूझि'? ॥३५॥

दौरि दौरि सबही पहँ जैहैं। उतर देइ सब फिर बहरैहै॥
ईसा कहिन कि कस ना कहत्यों। जौ किछु कहे क उत्तर पवत्यों॥
मैं मुए मानुस बहुत जियावा। औ बहुतै जिउ-दान दियावा॥
इब्राहिम कह, कस ना कहत्यों। बात कहे बिन मैं ना रहत्यों॥
मोसौं खेल बंधु जो खेला। सर रचि बाँधि अगिन महँ मेला॥
तहाँ अगिन हुँत भइ फुलवारी। अपडर डरौं, न परहि सँभारी॥
नूह कहिन, जब परलै आवा। सब जग बूड़, रहेउँ चढ़ि नावा॥

काह कहै काहू से, सबै ओढ़ाउब भार॥
जस कै बनै मुहम्मद, करु आपन निस्तार॥३६॥

सबै भार अस ठेलि ओढ़ाउब। फिर फिर कहब, उतर ना पाउब॥
पुनि रसूल जैहै दरबारा। पैग मारि भुइँ करब पुकारा॥
तै सब जानसि एक गोसाईं। कोइ न आव उमत के ताईं॥
जेहि सौं कहौं सो चुप होइ रहै। उमत लाइ केहु बात न कहै॥
मोरे चाँड़ केहु नहि चाड़ा। देखा दुख, सबही मोहि छाड़ा॥
मोहिं अस तहीं लाग करतारा। तोहि होइ भल सोइ निस्तारा॥
जो दुख चहसि उमत कहँ दीन्हा। सो सब मैं अपने सिर लीन्हा॥

लेखि जोखि जो आवै मरन गँजन दुख दाहु।
सो सब सहै मुहम्मद, दुखी कर जनि काहु॥३७॥

---

रोधि = रोककर। फुर = सच, सत्य। कोह तूर = वह पहाड़ जिस पर मूसा को ईश्वर की ज्योति दिखाई पड़ी थी। रावट = महल, जगमगाता स्थान। जापा = पुकारा। हर दाँवन = हर अवसर पर। झाँपा = परदा, ओट। (३६) बहरैहै = बहलाएगा। सर = चिता। (३७) भार ठेलि ओढ़ाउब = भार मुहम्मद ही पर डालेंगे। पैग मारि = आसन मारकर। केहु = कोई (अवधी)। चाँड़ = चाह, कामना। तहीं = तू ही। गँजन = पीड़ा, साँसत।

पुन रिसाइ कै कहै गोसाईं। फातिम कहँ ढूँढ़हु दुनियाईं॥
का मोसौं उन झगर पसारा। हसन हुसैन कहौ को मारा॥
ढूँढ़े जगत कतहुँ ना पैहैं। फिरि कै जाइ मारि गोहरैहैं॥
'ढूँढ़ि जगत दुनिया सब आएउँ। फातिम-खोज कतहुँ ना पाएउँ॥
'आयसु होइ, अहैं पुनि कहाँ'। उठा नाद हैं धरती महाँ॥
'मूँदै नैन सकल संसारा। बीबी उठैं, करैं निस्तारा॥
'जो कोइ देखै नैन उघारी। तेहि कहँ छार करौं धरि जारी'॥

आयसु होइहि देउ कर, नैन रहैं सब झाँपि।
एक ओर डरै मुहम्मद, उमत मरै डरि काँपि॥३८॥

उट्ठिन बीबी तब रिस किहें। हसन-हुसेन दुवौ सँग लीहें॥
'तैं करता हरता सब जानसि। झूँठै फुरै नीक पहिचानसि॥
'हसन हुसेन दुवौ मोर बारे। दुनहु यजीद कौन गुन मारे?॥
'पहिले मोर नियाव निबारू। तेहि पाछे जेतना संसारू॥
'समुझैं जीउ आगि महँ दहऊँ। देहु दादि तौ चुप कै रहऊँ॥
'नाहि त देउँ सराप रिसाई। मारौ आहि अर्श जरि जाई॥

'बहु संताप उठै निज, कैसहु समुझि न जाइ।
'बरजहु मोह मुहम्मद, अधिक उठै दुख-दाइ'॥३९॥

पुनि रसूल कहँ आयसु होई। फातिम कहँ समुझावहु सोई॥
'मारै आहि अर्श जरि जाई। तेहि पाछे आपुहि पछिताई॥
'जौ नहि बात क करै बिषादू। जानौ मोहि दीन्ह परसादू॥
'जौ बीबी छाँड़हि यह दोखू। तौ मै करौं उमत कै मोखू॥
'नाहि त घालि नरक महँ जारौं। लौटि जियाइ मुए पर मारौं॥
'अग्नि-खंभ देखहु जस आगे। हिरकत छार होइ तेहि लागे॥
'चहुँ दिसि फेरि सरग लै लावौं। मुँगरन्ह मारौं, लोह चटावौं॥

---

(३८) फातिम = बीबी फातिमा, मुहम्मद साहब की कन्या जिनके दो लड़के हसन और हुसैन करबला के मैदान मे कष्ट से मारे गए और कोई खड़ा न हुआ। मारि = बहुत (अवध)। गोहरैहै = पुकारेंगे। नाद = आकाशवाणी। (३९) किहें लिहे = किए, लिए (अवध)। बारे = बालक, लड़के। दादि देहु = इसाफ करो। अर्श = आसमान (का सबसे ऊँचा तबक)। दुखदाइ = दुःखदाह। (४०) जानौ मोहिं..... परसादू = तो समझो कि मैं प्रसन्न हो गया या मैंने बख्श दिया। लौटि = फिर फिर। हिरकत = सटते ही।

तेहि पाछे धरि मारौं घालि नरक के काँठ।
बीबी कहँ समुझावहु, जौ रे उमत कै चाँट ॥४०॥

पुनि रसूल तलफत तहँ जैहै। बीबिहि बार बार समुझैहै॥
बीबी कहब, 'घाम कत सहहू? कस ना बैठि छाहँ महँ रहहू?
'सब पैगंबर बैठे छाहाँ। तुम कस तपौ बजर अस माहाँ'?
कहब रसूल, छाहँ का बैठौं? उमत लागि धूपहु नहिं बैठौं॥
'तिन्ह सब बाँधि घाम महँ मेले। का भा मोरे छाहँ अकेले॥
'तुम्हरे कोह सबहि जो मरै। समुझहु जीउ, तबहि निस्तरै॥
'जो मोहि चहौ निवारहु कोहू। तब विधि करै उमत पर छोहू'॥

बहु दुख देखि पिता कर, बीबी समुझा जीउ।
जाइ मुहम्मद विनवा, ठाढ़ पाग कै गीउ ॥४१॥

तब रसूल के कहें भइ माया। जिन चिंता मानहु, भइ दाया॥
जौ बीबी अबहूँ रिसियाई। सबहि उमत-सिर आइ बिसाई॥
अब फातिम कहँ बेगि बोलावहु। देइ दाद तौ उमत छोड़ावहु॥
फातिम आइ कै पार लगावा। धरि यजीद दोजख महँ गवा॥
अंत कहा, धरि जान से मारै। जिउ देइ देइ पुनि लौटि पछारै॥
तस मारब जेहि भुइँ गड़ि जाई। खन खन मारै लौटि जियाई॥
बजर-अगिन जारब कै छारा। लौटि दहै जस दहै लोहारा॥

मारि मारि घिसियावैं, धरि दोजख महँ देव।
जेतनी सिस्टि मुहम्मद सबहि पुकारै लेव ॥४२॥

पुनि सब उम्मत लेव बुलाई। हरू गरू लागब बहिराई॥
निरखि रहौती काढ़ब छानी। करब निनार दूध औ पानी॥
बाप क पूत, न पूत क बापू। पाइहि तहाँ न पुन्नि न पापू॥
आपहि आप आइकै परी। कोउ न कोउ क धरहरि करी॥

---

काँठ = किनारे, तट पर। जौ रे...चाँट = यदि तुम्हे अपनी उम्मत की इतनी चाह है। (४१) बजर = बज्र धूप। समुझहु जीउ = अपने जी मे दाढ़स बाँधो। पाग कै गीउ = गले मे पगड़ी डालकर, बड़ी अधीनता से। (४२) यजीद = जिसने हसन-हुसैन को मारा था। गवा = गया। घिसियावैं = घसीटते हैं। पुकारै लेव = पुकार लेंगे। (४३) हरू = हलका, ओछा। गरू = भारी, गभीर। बहिराइ लागब = निकलने लगेंगे। रहौती = रहन-सहन, आचरण। निनार = न्यारा, अलग। धरहरि = धर-पकड़, सहायता। करी = करिहि, करेगा।

कागज काढ़ि लेब सब लेखा। दुख सुख जो पिरथिवी महँ देखा॥
पुन्नि पियाला लेखा माँगब। उतर देत उन पानी खाँगब॥
नैन क देखा, स्रवन क सुना। कहब, करब, औगुन औ गुना॥

हाथ, पाँव, मुख, काया, स्रवन, सीस औ आँखि।
पाप न छपै 'मुहम्मद', आइ भरै सब साखि॥४३॥

देह क रोवाँ बैरी होइहै। बजर-बिया एहि जीउ के बोइहै॥
पाप पुन्नि निरमल कै धोउब। राखब पुन्नि, पाप सब खोउब॥
पुनि कौसर पठउब अन्हवावै। जहाँ कया निरमल सब पावै॥
बुड़की देब देह-सुख लागी। पलुहब उठि, सोवत अस जागी॥
खोरि नहाइ धोइ सब दुंदू। होइ निकरहि पूनिउ कै चंदू॥
सब क सरीर सुबास बसाई। चंदन कै अस घानी आई॥
झूठे सबहि, आप पुनि साँचे। सबहि नबी के पाछे बाँचे॥

नबिहि छाँड़ि होइहि सबहि बारह बरस क राह।
सब अस जान 'मुहम्मद' होइ बरस कै राह॥४४॥

पुनि रसूल नेवतब जेवनारा। बहुत भाँति होइहि परकारा॥
ना अस देखा, ना अस सुना। जौ सरहौं तौ है दसगुना॥
पुनि अनेक बिस्तर तहँ डासब। बास सुबास कपूर से बासब॥
होइ आयसु जौं बेगि बोलाउब। औ सब उमत साथ लेइ आउब॥
जिबरईल आगे होइ जइहै। पग डारै कहँ आयसु देइहै॥
चलब रसूल उमत लेइ साथा। परग परग पर नावत माथा॥
'आवहु भीतर', बेगि बोलाउब। बिस्तर जहाँ तहाँ बैठाउब॥

झारि उमत सब बैठी जोरि कै एकै पाँति।
सब के माँझ मुहम्मद, जानौ दुलह बराति॥४५॥

पुनि जेंवन कहँ आवै लागैं। सब के आगे धरत न खाँगै॥
भाँति भाँति कर देखब थारा। जानब ना दहुँ कौन प्रकारा॥
पुनि फरमाउब आप गोसाईं। बहुतै दुख देखेउ दुनियाईं॥
हाथन्ह से जेंवन मुख डारत। जीभ पसारत, दाँत उघारत॥

---

(४४) कौसर = स्वर्ग की एक नदी या चश्मा। बुड़की = गोता। पलुहब = पनपेगी। खोरि = अवगाहन करके। दुंदू = द्वंद्व, प्रपंच। घानी = ढेर।
(४५) जौ सरहौं.....दस गुना = यदि सराहता हूँ तो उसका दस गुना ठहरता है।

कूँचत खात बहुत दुख पाएउ। तहँ ऐसै जेवनार जेवाँएउँ॥
अब जिन लौटि कस्ट जिउ करहू। सुख सवाद औ इंद्री भरहू॥
पाँच भूत, आतमा सेराई। बैठि अघाउ, उदर ना आई॥
ऐस करब पहुनाई, तब होइहि संतोख।
दुखी न होहु मुहम्मद, पोखि लेहु फुर पोख॥४६॥
हाथन्ह से केहु कौर न लेई। जोइ चाह मुख पैठे सोई॥
दाँत, जीभ, मुख किछु न डोलाउब। जस जस रुचि है तस तस खाउब॥
जैस अन्न बिनु कूँचे रूचै। तैस सिठाइ जौ कोऊ कूँचै॥
एक एक परकार जो आए। सत्तर सत्तर स्वाद सो पाए॥
जहँ जहँ जाइ के परै जुड़ाई। इच्छा पूजै, खाइ अघाई॥
अनचखे राते फर चाखा। सब अस लेइ अपरस रस राखा॥
जलम जलम कै भूख बुझाई। भोजन केरे साथै जाई॥
जेवन अँचवन होइ पुनि, पुनि होइहिं खिलवान।
अमृत-भरा कटोरा पियहु मुहम्मद पान॥४७॥
एक तौ अमृत, बास कपूरा। तेहि कहँ कहा शराब-तहूरा॥
लागव भरि भरि देइ कटोरा। पुरुष ज्ञान अस भरै महोरा॥
ओहि कै मिठाइ माति एक दाऊँ। जलम न मानव होइ अब काहूँ॥
सचु-मतवार रहब होइ सदा। रहसै कूदै सदा सरबदा॥
कबहुँ न खोवै जलम खुमारी। जनौ बिहान उठै भरि बारी॥
ततखन बासि बासि जनु घाला। घरी घरी जस लेब पियाला॥
सबहि क भा मन सो मद पिया। नव औतार भवा औ जिया॥
फिरै तँबोल, मया से कहब 'अपुन लेइ खाहु।
भा परसाद, मुहम्मद, उठि बिहिस्त महँ जाहु'॥४८॥

---

(४६) तहँ = ससार मे। लौटि = स्वर्ग मे लौट आकर। सेराई = शीतल हो। उदर ना भाई = यहाँ पेट नहीं है जिसे भरना पड़े। फुर पोख = सच्ची तुष्टि। (४७) तैस सिठाइ.....कूँचै = कूँचने पर वह वैसा ही सीठी सा नीरस लगता है। सिठाइ = सीठी सा फीका लगता है। अपरस = अछूता। जलम = जन्म (अवध)। खिलवान = खिलारी (धनिया, खरबूजे आदि के तले बीज जो भोजन के पीछे दिए जाते है।) (४८) शराब-तहूरा = शराबुन्तहूरा, स्वर्ग की शराब। महोग = महुआरा, मधु, मद्य। सचु-मतवार = आनन्द से मतवाला। बिहान.....बारी = मानो नित्य मुहँ तक भरा प्याला मिल जाता है। परसाद = प्रसन्नता, कृपा।

कहव रसूल, 'विहिस्त न जाऊँ। जौ लगि दरस तुम्हार न पाऊँ॥
'उघर न नैन तुमहिं विनु देखे। सवहि अँविरथा मोरे लेखे॥
'तौ लै केहु वैकुंठ न जाई। जौ लै तुम्हरा दरस न पाई॥
'करु दीदार, देखौं मै तोही। तौ पै जीउ जाइ सुख मोहीं॥
'देखें दरस नैन भरि लेऊँ। सीस नाइ पै भुइँ कहँ देऊँ॥
'जलम मोर लागा सव थारा। पलुहै जीउ जो गीउ उभारा॥
'होइ दयाल करु दिस्टि फिरावा। तोहि छाँड़ि मोहि और न भावा॥
'सीस पायँ भुइँ लावौं, जौ देखौं तोहि आँखि।
'दरसन देखि मुहम्मद, हिये भरौं तोरि साखि' ॥४९॥

सुनहु रसूल! 'होत फरमानू। वोल तुम्हार कीन्ह परमानू॥
'तहाँ हुतेउँ जहँ हुतेउ न ठाऊँ। पहिले रचेउँ मुहम्मद नाऊँ॥
'तुम विनु अवहुँ न परगट कीन्हेंउँ। सहस अठारह कहँ जिउ दीन्हेउँ॥
'चौदह खँड ऊपर तर राखेउँ। नाद चलाइ भेद वहु भाखेउँ॥
'चार फिरिस्तन वड़ औतारेउँ। सात खंड वैकुंठ सँवारेउँ॥
सवा लाख पैगंवर सिरजेउँ। कर करतूति उन्हहि धै वँधेउँ॥
औरन्ह कर आगे कत लेखा। जेतना सिरजा को ओहि देखा?॥

तुम तहँ एता सिरजा, आप कै अंतरहेत।
देखहु दरस मुहम्मद! आपनि उमत समेत॥५०॥

सुनि फरमान हरष जिउ वाढ़े। एक पाँव से भए उठि ठाढ़े॥
भारि उमत लागी तव तारी। जेना सिरजा पुरुप औ नारी॥
लाग सवन्ह सहुँ दरसन होई। ओहि विनु देखे रहा न कोई॥
एक चमकार होइ उजियारा। छपै वीजु तेहि के चमकारा॥
चाँद सुरुज छपिहैं वहु जोती। रतन पदारथ मानिक मोती॥

---

(४९) अँविरथा = वृथा, व्यर्थ। जाई = जाइहि, जायगा। पाई = पाइहि, पाएगा। जाइ = उत्पन्न हो। जलम = जन्म। थारा = थाला (जिसमे पौदा लगाया जाता है)। गीउ उभारा = गर्दन ऊपर की, ऊपर दृष्टि की। (५०) हुतेउँ = मैं था। हुतेउ न ठाऊँ = जहाँ कोई स्थान था, लामकान। अवहुँ = अव तक। नाद = कलाम। कहि करतूति = कर्त्तव्य वतलाकर। अंतरहेत = अंतर्हित, ओट में, अदृश्य। (५१) भारि = सारी, कुल। तारी लागी = टकटकी लग गई, पलकों का गिरना वद हो गया। सहुँ = संमुख, साक्षात्। चमकार = चमत्कार, ज्योति।

सो मनि दिपें जो कीन्हि थिराई। छपा सो रंग गात पर आई॥
ओहु रूप निरमल होइ जाई। और रूप ओहि रूप समाई॥
ना अस कबहूँ देखा, ना केहू ओहि भाँति।
दरसन देखि मुहम्मद मोहि परे बहु भाँति॥५१॥
दुइ दिन लहि कोउ सुधि न सँभारे। बिनु सुधि रहे, न नैन उघारे॥
तिसरे दिन जिबरैल जौ आए। सब मदमाते आनि जगाए॥
जे हिय भेदि सुदरसन राते। परे परे लोटैं जस माते॥
सब अस्तुति कै करै बिसेखा। ऐस रूप हम कतहुँ न देखा॥
अब सब गएउ जलम-दुख धोई। जो चाहिय हठि पावा सोई॥
अब निहचित जीउ बिधि कीन्हा। जौ पिय आपन दरसन दीन्हा॥
मन कै जेति आस सब पूजी। रही न कोइ आस गति दूजी॥
मरन, गँजन औ परिहँस, दुख, दलिद्र सब भाग।
सब सुख देखि मुहम्मद, रहस कूद जिउ लाग॥५२॥
जिबराइल कहँ आयसु होइहि। अछरिन्ह आइ आगे पय जोइहिं॥
उमत रसूल केर बहिराउब। कै असवार बिहिस्त पहुँचाउब॥
सात बिहिस्त बिधिनै औतारा। औ आठईं शदाद सँवारा॥
सो सब देव उमत कहँ बाँटी। एक बराबर सब कहँ आँटी॥
एक एक कहँ दीन्ह निवासू। जगत-लोक बिरसैं कबिलासू॥
चालिस चालिस हूरैं सोई। औ सँग लागि बियाही जोई॥
औ सेवा कहँ अछरिन्ह केरी। एक एक जनि कहँ सौ-सौ चेरी॥
ऐसे जतन बियाहै जस साजै बरियात।
दूलह जतन मुहम्मद बिहिस्त चले बिहँसात॥५३॥
जिबराइल इतात कहँ धाए। चोल आनि उम्मत पहिराए॥
पहिरहु दगल सुरँग-रँग-राते। करहु सोहाग जनहु मद-माते॥
ताज कुलह सिर मुहम्मद सोहै। चंद बदन औ कोकब मोहै॥

---

कीन्हि थिराई = स्थिर रह सके। छपा सो रंग...आई = उनके शरीर पर उस ज्योति की छाप लग गई। (५२) लहि = तक। परिहँस = ईर्ष्या, डाह, कुढ़न (अवध)। रहस = आनंद। (५३) अछरी = अप्सरा। बहिराउब = निकालेंगे, चलाएँगे। बिरसैं = विलास करते हैं। हूर = बिहिश्त की अप्सरा। जोई = जोय, स्त्री। ऐसे जतन = इस ढग से, इस प्रकार। (५४) इतात = आज्ञा-पालन। चोल = वस्त्र, पहनावा। दगल = लंबा अँगरखा। कुलह = टोप।

न्हाइ खोरि अस वनी वराता। नवी तँबोल खात मुख राता॥
तुम्हरे रुचे उमत सब आनव। औ सँवारि बहु भाँति बखानव॥
खड़े गिरत मद-माते ऐहैं। चढ़ि कै घोड़न कहं कुदरैहै॥
जिन भरि जलम बहुत हिय जारा। बैठि पाँव देइ जमै ते पारा॥

जैसे नवी सँवारे, तैसे बने पुनि साज।
दूलह जतन मुहम्मद विहिस्त करै सुख राज॥५४॥

तानव छत्र मुहम्मद माथे। औ पहिरै फूलन्ह बिनु गाँथे॥
दूलह जतन होव असवारा। लिए बरात जैहै संसारा॥
रचि रचि अछरिन्ह कीन्ह सिंगारा। बास सुबास उठै महकारा॥
आज रसूल बियाहन ऐहैं। सब दुलहिन दूलह सहुँ नैहैं॥
आरति करि सब आगे ऐहै। नंद सरोदन सब मिलि गैहै॥
मँदिरन्ह होइहि सेज बिछावन। आजु सबहि कहँ मिलिहैं रावन॥
बाजन बाजै बिहिस्त-दुवारा। भीतर गीत उठै झनकारा॥

बनि बनि बैठीं अछरी, बैठि जोहै कविलास।
बेगिहि आउ मुहम्मद, पूजै मन कै आस॥५५॥

जिबरईल पहिले से जैहै। जाइ रसूल बिहिस्त नियरैहै॥
खुलिहैं आठौ पँवरि दुवारा। औ पैठे लागे असवारा॥
सकल लोग जब भीतर जैहै। पाछे होइ रसूल सिधैहै॥
मिलि हूरैं नेवछावरि करिहै। सबके मुखन्ह फूल अस झरिहैं॥
रहसि रहसि तिन करब किरीड़ा। अगर कुंकुमा भरा सरीरा॥
बहुत भाँति कर नंद सरोदू। बास सुबास उठै परमोदू॥
अगर, कपूर, बेना, कस्तूरी। मँदिर सुबास रहब भरपूरी॥

सोवन आजु जो चाहै, साजन मरदन होइ।
देहि सोहाग मुहम्मद, सुख बिरसै सब कोइ॥५६॥

पैठि बिहिस्त जौ नौनिधि पैहै। अपने अपने मँदिर सिधैहैं॥
एक एक मंदिर सात दुवारा। अगर चँदन के लाग केवारा॥
हरे हरे बहु खंड सँवारे। बहुत भाँति दइ आपु सँवारे॥

---

बहुत हिय जारा = ईश्वर के विरह में लीन रहे। जतन = प्रकार, समान। (५५) नंद = आनंद। सरोद = स्वर (फारसी)। रावण = रमण करनेवाला, प्रियतम। (५६) पँवरि = ड्योढ़ी। साजन = स्वजन, प्रियतम। मरदन = आलिंगन। बिरसै = बिलसे। (५७) दइ = दैव, विधाता।

सोने रूपै घालि उँचावा। निरमल कुहँकुहं लाग गिलावा॥
हीरा रतन पदारथ जरे। तेहि क जोति दीपक जस बरै॥
नदी दूध अतरन कै बहहीं। मानिक मोति परे भुइँ रहहीं॥
ऊपर गा अब छाहँ सोहाई। एक एक खंड चहा दुनियाई॥

तात न जूड़ न कुनकुन, दिवस राति नहि दुक्ख।
नींद न भूख मुहम्मद, सब बिरसैं अति सुक्ख॥५७॥

देखत अछरिन केरि निकाई। रूप तें मोहि रहत मुरछाई॥
लाल करत मुख जोहब पासा। कीन्ह चहैं किछु भोग-बिलासा॥
हैं आगे बिनवैं सब रानी। और कहै खब चेरिन्ह आनी॥
ए सब आवैं मोरे निवासा। तुम आगे लेइ आउ कबिलासा॥
जो अस रूप पाट-परधानी। औ सबहिन्ह चेरिन्ह कै रानी॥
बदन जोति मनि माथे भागू। औ बिधि आगर दीन्ह सोहागू॥
साहस करैं सिंगार सँवारी। रूप सुरूप पदमिनी नारी॥

पाट बैठि नित जोहैं, बिरहन्ह जारैं मॉस।
दीन-दयाल, मुहम्मद! मानहु भोग-बिलास॥५८॥

सुनहि सुरूप अबहि बहु भाँती। इनहिं चाहि जो हैं रुपवॉती॥
सातौ पवँरि नघत तिन्ह पेखब। सातइँ आए सो कौकुत देखब॥
चले जाब आगे तेहि आसा। जाइ परब भीतर कबिलासा॥
तखत बैठि सब देखब रानी। जे सब चाहि पाट-परधानी॥
दसन-जोति उट्ठ चमकारा। सकल बिहिस्त होइ उजियारा॥
बारहबानी कर जो सोना। तेहि ते चाहि रूप अति लोना॥
निरमल बदन चद कै जोती। सब क सरीर दिपैं जस मोती॥

बास सुबास छुवै जेहि बेधि भँवर कहँ जात।
बर सो देखि मुहम्मद हिरदै महँ न समात॥५९॥

पैग पै जस जस नियराउब। अधिक सवाद मिलै कर पाउब॥
नैन समाइ रहै चुप लागे। सब कहँ आइ लेहिं होइ आगे॥
बिसरहु दूलह जोबन-बारी। पाएउ दुलहिन राजकुमारी॥

---

गिलावा = गारा। तात = गरम। कुनकुन = कुनकुना, आधा गरम। (५८) लाल = प्यार, दुलार। आगर = बढ़कर। (५९) रुपवॉती = रूपवती। कौकुत = कौतुक, चमत्कार। चाहि = बढ़कर। बास सुबास···जात = जिस भौंरे को बेधकर छूने के लिये सुगध जाती है। (६०) जोबन बारी = (क) यौवन की

एहि महँ सो कर गहि लेइ जैहैं। आधे तखत पै लै बैठैहैं॥
सब अछूत तुम कहँ भरि राखे। महै सवाद होइ जौ चाखै॥
नित पिरीत, नित नव नव नेहू। नित उठि चौगुन होइ सनेहू॥
नित्तइ नित्त जो बारि बियाहै। बीसौ बीस अधिक ओहिं चाहै॥
तहाँ त मीचु, न नींद दुख, रह न देह महँ रोग।
सदा अनंद 'मुहम्मद', सब सुख मानै भोग॥६०॥

---

बाटिका, (ख) युवती बालाएँ। महै = बहुत ही। बीसा बीस = पहले से और बढ़कर।